अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और उनके द्वारा भगवत्स्तुति

राजा प्रजापालने पूछा—महान्! इस प्रकार महात्मा अग्निदेवका जन्म तो हो गया; किंतु विराट् पुरुषके प्राण-अपानरूप अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति कैसे हुई?

मुनिवर महातपाने कहा—राजन्! मरीचि मुनि ब्रह्माजीके पुत्र हैं। स्वयं ब्रह्माजीने ही (अपने पुत्रोंके रूपमें) चौदह स्वरूप धारण किये थे। उनमें मरीचि सबसे बड़े थे। उन मरीचिके पुत्र महान् तेजस्वी कश्यप मुनि हुए। ये प्रजापतियोंमें सबसे अधिक श्रीसम्पन्न थे; क्योंकि ये देवताओंके पिता थे। राजन्! बारहों आदित्य उन्हींके पुत्र हैं। ये बारह आदित्य भगवान् नारायणके ही तेजोरूप हैं—ऐसा कहा गया है। इस प्रकार ये बारह आदित्य बारह मासके प्रतीक हैं और संवत्सर भगवान् श्रीहरिका रूप है। द्वादश आदित्योंमें मार्तण्ड महान् प्रतापशाली हैं। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी परम तेजोमयी कन्या संज्ञाका विवाह मार्तण्डसे कर दिया। उससे इनकी दो संतानें उत्पन्न हुईं, जिनमें पुत्रका नाम यम और कन्याका नाम यमुना हुआ। संज्ञासे सूर्यका तेज सहा नहीं जा रहा था, अतः उसने मनके समान गतिशाली वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किया और अपनी छायाको सूर्यके घरमें स्थापितकर उत्तर-कुरुमें चली गयी। अब उसकी प्रतिच्छाया वहाँ रहने लगी और सूर्यदेवकी उससे भी दो संतानें हुईं, जिनमें पुत्र शनि नामसे विख्यात हुआ और कन्या तपती नामसे प्रसिद्ध हुई। जब छाया संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करने लगी तो सूर्यदेवकी आँखें क्रोधसे लाल हो उठीं। उन्होंने छायासे कहा—'भामिनि! तुम्हारा अपनी इन संतानोंके प्रति विषमताका व्यवहार करना उचित नहीं है।' सूर्यके [illegible] भी जब छायाके विचारमें [illegible] एक दिन अत्यन्त दुःखित होकर कहा—'तात! यह हमलोगोंकी माता नहीं है; क्योंकि अपनी दोनों संतानों—शनि और तपतीसे तो यह प्यार करती है और हमलोगोंके प्रति शत्रुता रखती है। यह विमाताके समान हमलोगोंसे विषमतापूर्ण व्यवहार करती है।'

उस समय यमकी ऐसी बात सुनकर छाया क्रोधसे भर उठी और उसने यमको शाप दे दिया—'तुम शीघ्र ही प्रेतोंके राजा होओगे।' जब छायाके ऐसे कटु वचन सूर्यने सुने तो पुत्रके कल्याणकी कामनासे वे बोल उठे—'बेटा! चिन्ताकी कोई बात नहीं—तुम वहाँ मनुष्योंके धर्म और पापका निर्णय करोगे और लोकपालक रूपसे स्वर्गमें भी तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी।' उस अवसरपर छायाके प्रति क्रोध हो जानेके कारण सूर्यका चित्त चञ्चल हो उठा था। अतः उन्होंने बदलेमें शनिको शाप दे डाला—'पुत्र! माताके दोषसे तुम्हारी दृष्टिमें भी क्रूरता भरी रहेगी।'

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य उठे और संज्ञाको ढूँढ़नेके लिये चल पड़े। उन्होंने देखा, उत्तर कुरुदेशमें संज्ञा घोड़ीका वेष बनाकर विचर रही है। तत्पश्चात् वे भी अश्वका रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी धामरूपा संज्ञासे सुश्लिष्टताके सदृश्यसे समागम किया। अब प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त सूर्यने वडवारूपिणी संज्ञामें गर्भाधान किया तो उनका तेज अत्यन्त प्रज्वलित हो दो भागोंमें विभक्त होकर गिर पड़ा। आत्मविजयी प्राण और अपान पहलेसे ही संज्ञाकी योनिमें अव्यक्तरूपसे स्थित थे। सूर्यदेवके तेजके सम्बन्धसे वे दोनों मूर्तिमान् हो गये। इस प्रकार घोड़ीका रूप धारण करनेवाली विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे इन दोनों पुरुषरत्नोंका जन्म हुआ। इसी कारण ये दोनों देवता सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंके नामसे प्रसिद्ध हुए। सूर्य स्वयं प्रजापति कश्यपके पुत्र हैं और

गौरीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, द्वितीया तिथि एवं रुद्रद्वारा जलमें तपस्या, दक्षके यज्ञमें रुद्र और विष्णुका संघर्ष

राजा प्रजापालने पूछा—महाप्राज्ञ ! परम पुरुष [परमा]त्माकी शक्तिरूपा गौरीने, जिनका सभी देव-दानव [पूज]न करते रहते हैं, किस वरदानके प्रभावसे सगुण [देह] धारण किया ?

मुनिवर महातपाने कहा—जब अनेक रूपोंवाले [सृष्टि]की उत्पत्ति हो गयी तो उनके पिता प्रजापति [ब्रह्मा]ने स्वयं भगवान् नारायणके श्रीविग्रहसे प्रकटित [इस] परममङ्गलमयी गौरीको भार्यारूपमें वरण करनेके [लि]ये दे दिया। इन गौरीदेवीको 'भारती' भी कहा जाता [है]। परम सुन्दरी गौरीको पाकर रुद्रकी प्रसन्नताकी सीमा [न रही]। तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—'रुद्र ! तुम तपके [द्वारा] प्रजाओंकी सृष्टि करो।' इसपर रुद्र मौन हो [गये]। [फि]र ब्रह्माने जब बार-बार प्रेरणा की तो रुद्रने [कहा]—'इस कार्यमें मैं असमर्थ हूँ।' इसपर ब्रह्माजीने [कहा—]'तब तुम तपरूपी धनका संचय करो। क्योंकि कोई [तपो]हीन पुरुष प्रजाओंकी सृष्टि नहीं कर सकता।' [ऐसा सुन]कर परमशक्तिशाली रुद्र जलमें निमग्न हो गये।

[जब] देवाधिदेव रुद्र जलमें प्रविष्ट हो गये तो [ब्रह्माजीने] उस परमसुन्दरी कन्या गौरीको पुनः अपने भीतर अन्तर्हित कर लिया। तत्पश्चात् उनके [पु]नः सृष्टिका संकल्प होनेपर सात मानस पुत्रोंकी [उत्पत्ति] हुई। प्रजापति दक्ष भी उनके साथ प्रकट [हुए]। [इ]सके बाद प्रजाओंकी सृष्टि सम्यक् प्रकारसे बढ़ने [लगी]। इन्द्रसहित समस्त देवता, आठ वसु, रुद्र, [आदित्य] और मरुद्गण—ये सभी प्रजापति दक्षकी [कन्या]ओंके वंशज विख्यात हुए। इन गौरीके विषयमें [पहले] ही कहा जा चुका है। कालान्तरमें ब्रह्माजीने उन्हें [दक्षप्रजा]पतिको पुत्रीके रूपमें प्रदान किया। ब्रह्माजीने पूर्व [समयमें] ... विवाह महात्मा रुद्रके साथ किया था। नृपवर ! भगवान् श्रीहरिके विग्रहसे प्रकट हुई यही गौरी दक्षकी पुत्री होकर 'दाक्षायणी' कहलायीं। दक्षप्रजापतिने जब अपनी कन्याओंसे उत्पन्न हुए दौहित्रों—देवताओंके समाजको देखा तो उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर उठा। साथ ही अपने कुलकी समृद्धि-कामनासे प्रजापति ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उस यज्ञमें मरीचि आदि सभी ब्रह्माके पुत्र अपने-अपने विभागमें व्यवस्थित होकर ऋत्विजोंका कार्य करने लगे। स्वयं मुनिवर मरीचि ब्रह्मा बने। दूसरे ब्रह्मपुत्र अन्य-अन्य स्थानोंपर नियुक्त हुए। अत्रि ऋषिको यज्ञमें अन्य स्थान प्राप्त हुआ। अङ्गिरा मुनि इस यज्ञमें आग्नीध्र बने, पुलस्त्य होता हुए और पुलह उद्गाता। उस यज्ञमें महान् तपस्वी क्रतु प्रस्तोता बने। प्रचेतामुनि प्रतिहर्ताका स्थान सुशोभित कर रहे थे। महर्षि वसिष्ठ उस यज्ञमें सुब्रह्मण्य-पदपर अधिष्ठित थे। चारों सनत्कुमार यज्ञके सभासद थे।

इस प्रकार ब्रह्माजीसे सभी लोकोंकी सृष्टि हुई है। अतएव वे सभीके द्वारा यजन करने योग्य हैं। इसी कारण यज्ञके आराध्य ब्रह्माजी स्वयं उस यज्ञमें उपस्थित थे। पितृगण भी प्रत्यक्ष रूप धारण करके वहाँ पधारे थे। इन लोगोंकी प्रसन्नतासे जगत्में प्रसन्नता छा जाती है। वहाँ अपना भाग चाहनेवाले सभी देवता, आदित्य, वसुगण, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व और मरुद्गण—सबको निर्दिष्ट यथोचित भाग प्राप्त हो गये। ठीक उसी समय वे रुद्र, जो बहुत पहले ब्रह्माजीके कोपसे प्रकट हुए थे और जिन्होंने अगाध जलमें मग्न होकर तप आरम्भ कर दिया था—पुनः जलसे बाहर निकल पड़े। उस समय उनका श्रीविग्रह ऐसा उद्दीप्त हो रहा था,

—'भद्रे ! मैं अत्यन्त भूखा ब्राह्मण हूँ, मुझे कुछ भोज्य पदार्थ दो ।'

उनके इस प्रकार कहनेपर परम कल्याणमयी गिरिनन्दिनी उमाने उन ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! मैं तो भोजनार्थ फल आदि पदार्थ दे रही हूँ । आप शीघ्र स्नानकर इच्छानुसार उन्हें ग्रहण करें ।' उनके कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता पासमें ही बहती हुई नदीके जलमें स्नान करनेके लिये उतरे । उन ब्राह्मणवेषधारी शिवने स्नान करते समय ही स्वयं नक्ररूप एक भयंकर मकरका रूप धारण कर उन ब्राह्मण (अपना) पैर पकड़ लिया । फिर पार्वतीको स्वयं ढोंग दिखाते हुए कहने लगे—'दौड़ो-दौड़ो, मैं भारी विपत्तिमें पड़ गया हूँ । इस मकरसे तुम प्राणोंकी रक्षा करो और जबतक इसके द्वारा मैं नष्ट नहीं कर दिया जाता, तबतक तुम मुझे बचा लो ।'

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर पार्वतीने सोचा—'गिरिराज तो मेरे पिता हैं । उनका मैं त्रिभुवनमें स्पर्श समयका त्याग उन्हें स्मरण हो आया । अत्यन्त लज्जाके कारण उन परमसुन्दरी उमाके मुखसे भगवान् शंकरके प्रति कोई वचन नहीं निकल रहा था । वे बिल्कुल मौन हो गयीं । इसपर भगवान् रुद्र मुसकराते हुए कहने लगे—'भद्रे ! तुम मेरा हाथ पकड़ चुकी हो, फिर मेरा त्याग करना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है । कल्याणि ! तुम यदि मेरा पाणिग्रहण निष्फल कर दोगी तो मुझे अब अपने भोजनके लिये ब्रह्मपुत्री सरस्वतीसे कहना पड़ेगा ।'

'यह उपहासकी परम्परा आगे न बढ़े'—ऐसा सोचकर कुछ लज्जित-सी हुई पार्वती कहने लगीं—'देवाधिदेव ! महेश्वर ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं । आपको पानेके लिये मेरा यह प्रयत्न है । पूर्वजन्ममें भी आप ही मेरे पतिदेव थे । इस जन्ममें भी आप ही मेरे पति होंगे, कोई दूसरा नहीं । किंतु अभी मेरे संरक्षक पिता पर्वतराज हिमालय हैं, अब मैं उनके पास जाती हूँ । उन्हें जनाकर आप विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें ।'

इसमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर उनसे स्वीकृति लेकर मैं आपसे पूछने आयी हूँ। अतः इस अवसरपर मेरा जो कर्तव्य हो, उसे आप शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रीसे कहने लगे—'सुमुखि! मैं आज संसारमें अत्यन्त धन्य हूँ, जो स्वयं भगवान् शंकर मेरे जामाता होनेवाले हैं। तुम्हारे द्वारा मैं सचमुच संततिवान् बन गया। पुत्रि! तुमने मुझको देवताओंका सिरमौर बना दिया है; पर क्षणभर रुकना। मेरे आनेतक थोड़ी प्रतीक्षा करना।'

इस प्रकार कहकर पर्वतराज हिमालय सम्पूर्ण देवताओंके पितामह ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ उनका दर्शन कर गिरिराजने नम्रतापूर्वक कहा—'भगवन्! उमा मेरी पुत्री है। आज मैं उसे भगवान् रुद्रको देना चाहता हूँ।' इसपर श्रीब्रह्माजीने भी उन्हें 'दे दो' कहकर अनुमति दे दी।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पर्वतराज हिमालय अपने घरपर गये और तुरंत ही तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहूको बुलाया। फिर किंनरों, असुरों और राक्षसोंको भी सूचना दी। अनेक पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, ओषधिवर्ग तथा छोटे-बड़े अन्य पाषाण भी मूर्ति धारणकर भगवान् शंकरके साथ होनेवाले पार्वतीके विवाहको देखनेके लिये वहाँ आये। उस विवाहमें पृथ्वी ही वेदी बनी और सातों समुद्र ही कलश। सूर्य एवं चन्द्रमा उस शुभ अवसरपर दीपकका कार्य कर रहे थे तथा नदियाँ जल ढोने-परसनेका काम कर रही थीं। जब इस प्रकार सारी व्यवस्था हो गयी, तब गिरिराज हिमालयने मन्दराचलको भगवान् शंकरके पास भेजा। भगवान् शंकरकी स्वीकृतिसे मन्दराचल तत्काल वापस आ गये। फिर तो भगवान् शंकरने विधिपूर्वक उमाका पाणिग्रहण किया। उस विवाहके उत्सवपर पर्वत और नारद—ये दोनों गान कर रहे थे। सिद्धोंने नाचनेका काम पूरा किया था। वनस्पतियाँ अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं तथा सुन्दर रूपवती अप्सराएँ उच्चस्वरसे गा-गाकर नृत्य करनेमें संलग्न थीं। उस विवाह-महोत्सवमें लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्माजी स्वयं ब्रह्माके स्थानपर विराजमान थे। उन्होंने प्रसन्न होकर उमासे कहा—पुत्रि! संसारमें तुम-जैसी पत्नी और शंकर-सरीखे पति सबको सुलभ हों।' भगवान् शंकर और भगवती उमा—दोनों एक साथ बैठे थे। उनसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अपने धामको लौट आये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! रुद्रका प्राकट्य, गौरीका जन्म तथा विवाह—यह सारा प्रसङ्ग राजा प्रजापालके पूछनेपर परम तपस्वी महातपा ऋषिने उन्हें जैसे सुनाया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम्हें बता दिया। देवी गौरीके जन्म, विवाहादि—सभी कार्य तृतीया तिथिको ही सम्पन्न हुए थे, अतएव तृतीया उनकी तिथि मानी जाती है। उस तिथिको नमक खाना सर्वथा निषिद्ध है। जो स्त्री उस दिन उपवास करती है, उसे अचल सौभाग्य-की प्राप्ति होती है। दुर्भाग्यग्रस्त स्त्री या पुरुष तृतीया तिथिको लवणके परित्यागपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करे तो उसको सौभाग्य, धन-सम्पत्ति और मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, उसे जगत्में उत्तम स्वास्थ्य, कान्ति और पुष्टिका भी लाभ होता है।

(अध्याय २२)

संग्रामका रूप अत्यन्त भयावह हो गया। रुद्रने भगदेवताके दोनों नेत्र एक ही बाणसे छेद दिये। उनके बाणोंसे भग नेत्रहीन हो गये। यह देखकर तेजस्वी पूषाको क्रोध आ गया और वे रुद्रसे जा भिड़े। उस महान् युद्धमें पूषाने बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। यह देखकर शत्रुहन्ता रुद्रने पूषाके सभी दाँत तोड़ डाले। रुद्रद्वारा पूषाका दन्तभङ्ग देखकर देवसेनामें सब ओर भगदड़ मच गयी। फिर तो ग्यारहों रुद्र वहाँ आ गये। तदनन्तर आदित्योंमें सबसे कनिष्ठ परम प्रतापी भगवान् विष्णु सहसा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देवसेनाको इस प्रकार हतोत्साह हो दिशा-विदिशाओंमें भागते देखकर कहा—'वीरो! पुरुषार्थका परित्याग करके तुमलोग कहाँ भागे जा रहे हो? तुम वीरोचित दर्प, महिमा, दृढनिश्चय, कुलमर्यादा और ऐश्वर्यभाव—इतनी जल्दी कैसे भुला बैठे? तुम्हारे भीतर ब्रह्माके सभी गुण विराजमान हैं। तुम्हें दीर्घायु भी प्राप्त हो चुकी है। अतएव मुनिवर पिरकर उन पद्मयोनि प्रजापतिको साष्टाङ्ग प्रणाम करो। यह प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जायगा और युद्धके लिये सन्नद्ध हो जाओ।'

उस समय भगवान् जनार्दनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा विद्यमान थे। देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि गरुड़पर आरूढ हो गये। फिर तो भगवान् रुद्रसे उनका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। रुद्रने पाशुपतास्त्रसे विष्णुको और विष्णुने कुपित होकर रुद्रपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। उनके द्वारा प्रयुक्त नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र परस्पर टकराने लगे। एक उनका यह भीषण एकके मस्तक

सिर जटाजालसे भूषित था। एक शङ्ख बजा रहे थे तो दूसरेके हाथमें मङ्गलमय डमरूका वादन हो रहा था। एक तलवार लिये हुए थे तो दूसरे दण्ड। एकका सर्वाङ्ग कण्ठहारमें संलग्न कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा था तो दूसरेके श्रीअङ्ग भस्मद्वारा भूषित हो रहे थे। एक पीताम्बर धारण किये हुए थे, तो दूसरे सर्पकी मेखला। ऐसे ही उनके रौद्रास्त्र और नारायणास्त्रमें भी परस्पर होड़ मची हुई थी। उन हरि और हर—दोनोंमें बलकी एक-से-एक अधिकता प्रतीत होती थी। यह देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे अनुरोध किया—'आप दोनों उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले हैं; अतएव अपने-अपने स्वभावके अनुसार अस्त्रोंको शान्त कर दें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर विष्णु और शिव—दोनों शान्त हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उन दोनोंसे कहा—'आप दोनों महानुभाव हरि और हरके नामसे जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। यद्यपि दक्षका यह यज्ञ विध्वंस हो चुका है। फिर भी यह सम्पूर्णताको प्राप्त होगा। दक्षको इन देव-सन्तानोंसे ससार भी यशस्वी होगा।'

लोकपितामह ब्रह्माजी विष्णु और रुद्रसे कहकर वहाँ उपस्थित देवमण्डलीसे इस प्रकार बोले—'देवताओ! आपलोग इस यज्ञमें भगवान् रुद्रको भाग अवश्य दें; क्योंकि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि यज्ञमें रुद्रका भाग परम प्रशस्त है। इन रुद्रदेवका तुम सभी स्तवन करो। जिनके प्रहारसे भग देवताके नेत्र नष्ट हुए हैं तथा जिन्होंने पूषाके दाँत तोड़ डाले हैं, उन ... उपवह ... ... करना ठीक नहीं ... होकर तुमलोगोंके लिये

...री संज्ञा उनकी पराशक्ति है। संज्ञाके ...ं पहले अमूर्त थे। अब सूर्यका अंश ...मूर्तिमान् हो गये। उत्पन्न होनेके बाद ...ीकुमार सूर्यके निकट गये और उन्होंने ... अभिलाषा व्यक्त की—'भगवन्! हम ...ापकी क्या आज्ञा है?'

...हा—पुत्रो! तुम दोनों देवश्रेष्ठ प्रजापति ...णकी भक्तिपूर्वक आराधना करो। वे ...ं अवश्य वर प्रदान करेंगे।

...र भगवान् सूर्यके कहनेपर अश्विनीकुमार ... तप करनेमें तत्पर हो गये। वे चित्तको ...ब्रह्मपार' नामक स्तोत्रका निरन्तर जप ...हुत समयतक तपस्या करनेपर नारायण- ...उनसे संतुष्ट हो गये और बड़े प्रेमसे उन्हें ...

...तापालने कहा—महान्! अश्विनीकुमारोंने ... भगवान् श्रीहरिकी जिस स्तोत्रद्वारा ...थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। आप ...कृपा करें।

... महातपा कहते हैं—राजन्! अश्विनी- ... प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी स्तुति की ...ीके परिणामस्वरूप उन्हें ऐसा फल प्राप्त ...मुझसे सुनो। वह स्तुति इस प्रकार है— ... निष्क्रिय, निष्प्रपञ्च और निराश्रय हैं। आपको ...ा एवं अवयव नहीं है। आप गुणातीत, ...सर्वाधार, ममताशून्य और किसी दूसरे ...अपेक्षासे रहित हैं। ऐसे अव्यक्तस्वरूप ... मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप ..., ब्रह्मणोंके प्रेमी तथा पुरुष, महापुरुष ... हैं। महादेव! देवोत्तम, स्थाणु—ये ...ं हैं। सबका पालन करना आपका ...भूत, महाभूत, भूताधिपति; यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञाधिपति; गुह्य, महागुह्य, गुह्याधिपति तथा सौम्य, महासौम्य और सौम्याधिपति—ये सभी शब्द आपमें ही सार्थक होते हैं। पक्षी, महापक्षी और पक्षिपति; दैत्य, महादैत्य एवं दैत्यपति तथा विष्णु, महाविष्णु और विष्णुपति—ये सभी आपके नाम हैं। आप प्रजाओंके एकमात्र अधिपति हैं। ऐसे परमेश्वर भगवान् नारायणको हमारा नमस्कार है।'

इस प्रकार अश्विनीकुमारोंके स्तुति करनेपर प्रजापति ब्रह्मा संतुष्ट हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ कहा—'वर माँगो। तुम लोगोंको मैं अभी वह वर देता हूँ, जो देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है तथा जिसके प्रभावसे तीनों लोकोंमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे।'

अश्विनीकुमार बोले—भगवन्! हमें यज्ञोंमें देव-भाग देनेकी कृपा करें। प्रजापते! हम चाहते हैं कि देवताओंके समान सदा सोमपान करनेका अधिकार मुझे प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त देवताओंके रूपमें हम-लोगोंकी शाश्वत प्रतिष्ठा हो।

ब्रह्माजीने कहा—रूप, कान्ति, अनुपम आयुर्वेद-शास्त्रका ज्ञान तथा सोम-रस पीनेका अधिकार—ये सब तुम्हें सभी लोकोंमें सुलभ होंगे।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजीने अश्विनीकुमारोंको ये शुभ वरदान द्वितीया तिथिको दिये थे, इसलिये यह परम श्रेष्ठ तिथि उनकी मानी गयी है। सुन्दर रूपकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको इस तिथिमें व्रत करना चाहिये। यह व्रत एक वर्षमें पूरा होता है। इसमें सदा पवित्र रहकर पुष्पोंका आहार करनेकी विधि है। इससे व्रतीको सुन्दरता प्राप्त ... ।

...कुमारोंके जो गुण ...

सुलभ हो जाते ...

... ३४९ ...

यह स ...

गौरीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, द्वितीया तिथि एवं रुद्रद्वारा जलमें तपस्या, दक्षके यज्ञमें रुद्र और विष्णुका संघर्ष

राजा प्रजापालने पूछा—महाप्राज्ञ ! परम पुरुष परमात्माकी शक्तिरूपा गौरीने, जिनका सभी देव-दानव सेवन करते रहते हैं, किस वरदानके प्रभावसे सगुण विग्रह धारण किया ?

मुनिवर महातपाने कहा—जब अनेक रूपोंवाले रुद्रकी उत्पत्ति हो गयी तो उनके पिता प्रजापति ब्रह्माने स्वयं भगवान् नारायणके श्रीविग्रहसे प्रकटित हुई परममङ्गलमयी गौरीको भार्यारूपमें वरण करनेके लिये दे दिया। इन गौरीदेवीको 'भारती' भी कहा जाता है। परम सुन्दरी गौरीको पाकर रुद्रकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—'रुद्र ! तुम तपके प्रभावसे प्रजाओंकी सृष्टि करो।' इसपर रुद्र मौन हो गये। फिर ब्रह्माने जब बार-बार प्रेरणा की तो रुद्रने उत्तर दिया—'इस कार्यमें मैं असमर्थ हूँ।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'तब तुम तपरूपी धनका संचय करो। क्योंकि कोई भी तपोहीन पुरुष प्रजाओंकी सृष्टि नहीं कर सकता।' यह सुनकर परमशक्तिशाली रुद्र जलमें निमग्न हो गये।

जब देवाधिदेव रुद्र जलमें प्रविष्ट हो गये तो ब्रह्माजीने उस परमसुन्दरी कन्या गौरीको पुनः अपने शरीरके भीतर अन्तर्हित कर लिया। तत्पश्चात् उनके मनमें पुनः सृष्टिका संकल्प होनेपर सात मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। प्रजापति दक्ष भी उनके साथ प्रकट हुए। इसके बाद प्रजाओंकी सृष्टि सम्यक् प्रकारसे बढ़ने लगी। इन्द्रसहित समस्त देवता, आठ वसु, रुद्र, आदित्य और मरुद्गण—ये सभी प्रजापति दक्षकी कन्याओंके वंशज विख्यात हुए। इन गौरीके विषयमें पहले भी कहा जा चुका है। कालान्तरमें ब्रह्माजीने उन्हें दक्षप्रजापतिको पुत्रीके रूपमें प्रदान किया। ब्रह्माजीने पूर्व कालमें इन्हीं गौरीका विवाह महात्मा रुद्रके साथ किया था। नृपवर ! भगवान् श्रीहरिके विग्रहसे प्रकट हुई वही गौरी दक्षकी पुत्री होकर 'दाक्षायणी' कहलायीं। दक्षप्रजापतिने जब अपनी कन्याओंसे उत्पन्न हुए दौहित्रों—देवताओंके समाजको देखा तो उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर उठा। साथ ही अपने कुलकी अभिवृद्धि-कामनासे प्रजापति ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया।

उस यज्ञमें मरीचि आदि सभी ब्रह्माके पुत्र अपने-अपने विभागमें व्यवस्थित होकर ऋत्विजोंका कार्य करने लगे। स्वयं मुनिवर मरीचि ब्रह्मा बने। दूसरे ब्रह्मपुत्र अन्य-अन्य स्थानोंपर नियुक्त हुए। अत्रि ऋषिको यज्ञमें अन्य स्थान प्राप्त हुआ। अङ्गिरा मुनि इस यज्ञमें आग्नीध्र बने, पुलस्त्य होता हुए और पुलह उद्गाता। उस यज्ञमें महान् तपस्वी क्रतु प्रस्तोता बने। प्रचेतामुनि प्रतिहर्ताका स्थान सुशोभित कर रहे थे। महर्षि वसिष्ठ उस यज्ञमें सुब्रह्मण्य-पदपर अधिष्ठित थे। चारों सनत्कुमार यज्ञके सभासद थे।

इस प्रकार ब्रह्माजीसे सभी लोकोंकी सृष्टि हुई है। अतएव वे सभीके द्वारा यजन करने योग्य हैं। इसी कारण यज्ञके आराध्य ब्रह्माजी स्वयं उस यज्ञमें उपस्थित थे। पितृगण भी प्रत्यक्ष रूप धारण करके वहाँ पधारे थे। उन दोनोंकी प्रसन्नतासे जगत्में प्रसन्नता छा जाती है। वहाँ अपना भाग चाहनेवाले सभी देवता, आदित्य, वसुगण, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व और मरुद्गण—सबको निर्दिष्ट यथोचित भाग प्राप्त हो गये। ठीक उसी समय वे रुद्र, जो बहुत पहले ब्रह्माजीके कोपसे प्रकट हुए थे और जिन्होंने अगाध जलमें मग्न होकर तप आरम्भ कर दिया था—पुनः जलसे बाहर निकल पड़े। उस समय उनका श्रीविग्रह ऐसा उद्दीप्त हो रहा था,

संग्रामका रूप अत्यन्त भयावह हो गया। रुद्रने भगदेवताके दोनों नेत्र एक ही बाणसे छेद दिये। उनके बाणोंसे भग नेत्रहीन हो गये। यह देखकर तेजस्वी पूषाको क्रोध आ गया और वे रुद्रसे जा भिड़े। उस महान् युद्धमें पूषाने बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। यह देखकर शत्रुहन्ता रुद्रने पूषाके सभी दाँत तोड़ डाले। रुद्रद्वारा पूषाका दन्तभङ्ग देखकर देवसेनामें सब ओर भगदड़ मच गयी। फिर तो ग्यारहों रुद्र वहाँ आ गये। तदनन्तर आदित्योंमें सबसे कनिष्ठ परम प्रतापी भगवान् विष्णु सहसा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देवसेनाको इस प्रकार हतोत्साह हो दिशा-विदिशाओंमें भागते देखकर कहा—'वीरो! पुरुषार्थका परित्याग करके तुमलोग कहाँ भागे जा रहे हो? तुम वीरोचित दर्प, महिमा, दृढ़निश्चय, कुलमर्यादा और ऐश्वर्यभाव-इतनी जल्दी कैसे भुला बैठे? तुम्हारे भीतर ब्रह्माके सभी गुण विराजमान हैं। तुम्हें दीर्घायु भी प्राप्त हो चुकी है। अतएव भूमिपर गिरकर उन पद्मयोनि प्रजापतिको साष्टाङ्ग प्रणाम करो। यह प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जायगा और युद्धके लिये सन्नद्ध हो जाओ।'

उस समय भगवान् जनार्दनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा विद्यमान थे। देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि गरुड़पर आरूढ हो गये। फिर तो भगवान् रुद्रसे उनका रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया। रुद्रने पाशुपतास्त्रसे विष्णुको और विष्णुने कुपित होकर रुद्रपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। उनके द्वारा प्रयुक्त नारायणास्त्र और पाशुपतास्त्र—दोनों आकाशमें परस्पर टकराने लगे। एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनका यह भीषण युद्ध चलता रहा। उस संग्राममें एकके मस्तकपर मुकुट सुशोभित हो रहा था तो दूसरेका सिर जटाजालसे भूषित था। एक शङ्ख बजा रहे थे तो दूसरेके हाथमें मङ्गलमय डमरूका वादन हो रहा था। एक तलवार लिये हुए थे तो दूसरे दण्ड। एकका सर्वाङ्ग कण्ठहारमें संलग्न कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा था तो दूसरेके श्रीअङ्ग भस्मद्वारा भूषित हो रहे थे। एक पीताम्बर धारण किये हुए थे, तो दूसरे सर्पकी मेखला। ऐसे ही उनके रौद्रास्त्र और नारायणास्त्रमें भी परस्पर होड़ मची हुई थी। इन हरि और हर—दोनोंमें बलकी एक-से-एक अधिकता प्रतीत होती थी। यह देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे अनुरोध किया—'आप दोनों उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले हैं; अतएव अपने-अपने स्वभावके अनुसार शस्त्रोंको शान्त कर दें।'

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर विष्णु और शिव—दोनों शान्त हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उन दोनोंसे कहा—'आप दोनों महानुभाव हरि और हरके नामसे जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। यद्यपि दक्षका यह यज्ञ विध्वंस हो चुका है। फिर भी यह सम्पूर्णताको प्राप्त होगा। दक्षकी इन देव-संतानोंसे संसार भी यशस्वी होगा।'

लोकपितामह ब्रह्माजी विष्णु और रुद्रसे कहकर वहाँ उपस्थित देवमण्डलीसे इस प्रकार बोले—'देवताओ! आपलोग इस यज्ञमें भगवान् रुद्रको भाग अवश्य दें; क्योंकि वेदकी ऐसी आज्ञा है कि यज्ञमें रुद्रका भाग परम प्रशस्त है। इन रुद्रदेवका तुम सभी स्तवन करो। जिनके प्रहारसे भग देवताके नेत्र नष्ट हुए हैं तथा जिन्होंने पूषाके दाँत तोड़ डाले हैं, उन भगवान् रुद्रकी इस लीलासे सम्बद्ध नामोंसे स्तुति करनी चाहिये। इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसके फलस्वरूप ये प्रसन्न होकर तुमलोगोंके लिये वरदाता हो जायँगे।'

जब ब्रह्माजीने देवताओंसे इस प्रकार कहा तो वे आपलोगोंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके परम अनुरागपूर्वक परमात्मा भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—'भगवन्! आप विषम नेत्रोंवाले त्र्यम्बकको मेरा निरन्तर नमस्कार है। आपके सहस्र (अनन्त) नेत्र हैं तथा आप हाथमें त्रिशूल धारण करते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। खट्वाङ्ग और दण्ड धारण करनेवाले आप प्रभुको मेरा बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आपका रूप अग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओं एवं करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् है। प्रभो! आपका दर्शन प्राप्त न होनेसे हमलोग जड़ विज्ञानका आश्रय लेकर पशुत्वको प्राप्त हो गये थे। त्रिशूलपाणे! तीन नेत्र आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आर्तजनोंका दुःख दूर करना आपका स्वभाव है। आप विकृत मुख एवं आकृति बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण देवता आपके शासनवर्ती हैं। आप परम शुद्धस्वरूप, सबके स्रष्टा तथा रुद्र एवं अच्युत नामसे प्रसिद्ध हैं। आप हमपर प्रसन्न हों। इन पूषाके दाँत आपके हाथोंसे भग्न हुए हैं। आपका रूप भयावह है। बृहत्काय वासुकिनागको धारण करनेसे आपका कण्ठदेश अत्यन्त मनोरम प्रतीत हो रहा है। अच्युत! आप विशाल शरीरवाले हैं। हम देवताओंपर अनुग्रह करनेके हैं। आपने जो यज्ञकूट शिवका धन लिया। इसीसे आपका यज्ञ-भाग नीच मर्यादाका हो गया है। सर्वेश्वर! विश्वमूर्ते! आप हमपर प्रसन्न होकर कृपा करें। भगके नेत्रको नष्ट करनेमें पटु देवेश्वर! आप इस यज्ञका प्रधान भाग स्वीकार करके रक्षा कीजिये। नीलकण्ठ! आप सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। प्रभो! आप प्रसन्न हों और हमारी रक्षा करें। भगवन्! आपका स्वच्छ सिद्ध स्वरूप गौरवर्णसे शोभा पाता है। कपाली, त्रिपुरारि और उमापति—ये आपके ही नाम हैं। पद्मयोनि ब्रह्मासे प्रकट होनेवाले भगवन्! आप सभी भयोंसे हमारी रक्षा करें। देवेश्वर! आपके श्रीविग्रहके अन्तर्गत हम अनेक सर्ग एवं यज्ञोंसहित सम्पूर्ण वेद विद्याओं, उपनिषदों तथा सभी अग्नियोंको भी देख रहे हैं। परम प्रभो! भव, शर्व, महादेव, पिनाकी, हर और रुद्र—ये सभी आपके ही नाम हैं। विश्वेश्वर! हम आपको प्रणाम करते हैं। आप हम सबकी रक्षा कीजिये।*

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवाधिदेव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर उनके प्रति बोले—

भगवान् रुद्रने कहा—देवताओ! भगके नेत्र तथा पूषाके दाँत पुनः प्राप्त हो जायँ। दक्षका यज्ञ पूर्ण हो जाय। देवताओ! तुमलोगोंमें पशुत्व आ

---

* नमो विषमनेत्राय नमस्ते त्र्यम्बकाय च ॥
नमः सहस्रनेत्राय नमस्ते शूलपाणये। नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते दण्डधारिणे ॥
त्वं देव हुतभुग्ज्वालाकोटिभानुसमप्रभः। अदर्शने वयं देव मूढविज्ञानतोऽधुना ॥
नमस्त्रिनेत्रार्तिहराय शम्भो त्रिशूलपाणे विकृतास्यरूप। समस्तदेवेश्वर शुद्धभाव प्रसीद रुद्राच्युत सर्वभाव ॥
पूष्णोऽस्य दन्तान्तक भीमरूप प्रलम्बभोगीन्द्र मनोज्ञकण्ठ। विशालदेहाच्युत नीलकण्ठ प्रसीद विश्वेश्वर विश्वमूर्ते ॥
भगाक्षिसंस्फोटनदक्षकर्मन् गृहाण भागं मखतः प्रधानम्। प्रसीद देवेश्वर नीलकण्ठ प्रपाहि नः सर्वगुणोपपन्न ॥
सिताङ्गरागाप्रतिपन्नमूर्ते कपालधारिंस्त्रिपुरघ्न देव। प्रसीद नः सर्वभयेषु चैवमुमापते पुष्करनालजन्म ॥
पश्यामि ते देहगतान् सुरेश सर्गांश्चनेकान् वेदवरानन्त। साङ्गान् सविद्यान् सपदक्रमांश्च सर्वानलांश्च त्वयि देवदेव ॥
भव शर्व महादेव पिनाकिन् रुद्र ते हर। नताः स्म सर्वे विश्वेश त्राहि नः परमेश्वर ॥
(वराहपु० २१।६९-७७)

गया था, उसे भी मैं दूर कर दूँगा। मेरे दर्शनके प्रभावसे देवता उस पशुत्वसे मुक्त होकर शीघ्र ही पशुपतित्वको प्राप्त होंगे। मैं आदि सनातनकालसे सम्पूर्ण विद्याओंका अधीश्वर हूँ, पशुओं (बद्धजीवों)में मैं उनके अधीश्वररूपमें था, अतः लोकमें मेरा नाम पशुपति होगा। जो मेरी उपासना करेंगे, वे पाशुपत दीक्षासे युक्त होंगे।

भगवान् रुद्रके ऐसा कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी अत्यन्त स्नेहपूर्वक हँसते हुए उनसे बोले—'रुद्रदेव! आप निश्चय ही जगत्‌में पशुपति नामसे प्रसिद्ध होंगे। साथ ही यह दक्ष भी आपके सम्बन्धसे शुद्ध होकर संसारमें ख्याति प्राप्त करेगा। सम्पूर्ण संसारद्वारा इसका सम्मान होगा।

परम मेधावी ब्रह्माजी रुद्रसे ऐसा कहकर दक्षसे बोले—'वत्स! मैंने गौरीको तुम्हें पहलेसे सौंप रखा है। उसे तुम इन रुद्रको दे दो।' परमसुन्दरी गौरीने दक्षके घरमें कन्यारूपसे जन्म ग्रहण किया था। ब्रह्माजीके कहनेपर उन्होंने महाभाग रुद्रके साथ उनका विवाह कर दिया। दक्षकन्या गौरीका रुद्रके पाणिग्रहण कर लेनेपर दक्षका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता गया। जब ब्रह्माजीने रुद्रको निवासके लिये कैलासपर्वत प्रदान किया, तब रुद्र अपने गणोंके साथ कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी दक्षप्रजापतिको साथ लेकर अपनी पुरीमें पधारे।

(अध्याय २१)

तृतीया तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें हिमालयकी पुत्रीरूपमें गौरीकी उत्पत्तिका वर्णन और भगवान् शंकरके साथ उनके विवाहकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! जब भगवान् रुद्र कैलासपर निवास करने लगे तो कुछ समय बाद अपने पिता दक्षसे प्राणपति महादेवके साथ वैरका प्रसङ्ग गौरीको स्मरण हो आया। अब सहसा उनके मनमें रोषका भाव उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगीं—'मेरे पिता दक्षने इन देवाधिदेवको यज्ञमें भाग न देकर कितना बड़ा अपराध किया था, जिसके फलस्वरूप मेरे पिताको यज्ञके निमित्त बनाया हुआ नगर तथा उनके यज्ञका भी विध्वंस करना पड़ा। अतएव शिवके अपराधी पितासे उत्पन्न शरीरका मुझे त्याग कर देना चाहिये और तपस्याद्वारा इन महेश्वरकी आराधना कर दूसरा जन्म ग्रहण कर इनकी अर्धाङ्गिनी बनकर मुझे इन्हें प्राप्त करना चाहिये। पिता दक्षमें तो बान्धवोचित प्रेमका लेश भी नहीं रह गया है। अतएव अब उनके घर मेरा जाना भी नहीं हो सकता।'

इस प्रकार भलीभाँति विचार करके परमसुन्दरी गौरी तप करनेके उद्देश्यसे गिरिराज हिमालयपर चली गयीं। दीर्घकालतक तपस्या करके उन्होंने अपने शरीरको सुखा डाला। फिर योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको दग्ध कर वे पर्वतराज हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं और उमा तथा महाकाली आदि उनके नाम हुए। हिमवान्‌के घरमें परम सुन्दर रूपसे सुशोभित होकर वे अवतीर्ण हुईं कि फिर 'भगवान् रुद्र ही मुझे पतिरूपसे प्राप्त हों'। इस संकल्पसे त्रिलोचन भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए उन्होंने पुनः कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। इस प्रकार जब गिरिराज हिमालयपर दीर्घकालतक तपद्वारा आराधना की तब ब्राह्मणका वेष धारण करके भगवान् शिव वहाँ पधारे। उस समय उनका वृद्ध शरीर था और सभी अङ्ग शिथिल हो रहे थे। साथ ही वे पग-पगपर गिरते-पड़ते चल रहे थे। बड़ी कठिनाईसे वे पार्वतीके पास पहुँचकर

बोले—'भद्रे ! मैं अत्यन्त भूखा ब्राह्मण हूँ, मुझे कुछ खाने योग्य पदार्थ दो ।'

उनके इस प्रकार कहनेपर परम कल्याणमयी शैलेन्द्रनन्दिनी उमाने उन ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! मैं आपको भोजनार्थ फल आदि पदार्थ दे रही हूँ । आप यथाशीघ्र स्नानकर इच्छानुसार उन्हें ग्रहण करें ।' उनके यों कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता पासमें ही बहती हुई गङ्गाके जलमें स्नान करनेके लिये उतरे । उन ब्राह्मण-वेषधारी शिवने स्नान करते समय ही स्वयं मायास्वरूप एक भयंकर मकरका रूप धारण कर उन ब्राह्मणका (अपना) पैर पकड़ लिया । फिर पार्वतीको यह सब लीला दिखाते हुए कहने लगे—'दौड़ो-दौड़ो, मैं भारी विपत्तिमें पड़ गया हूँ । इस मकरसे तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करो और जबतक इसके द्वारा मैं नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर दिया जाता, तभीतक तुम मुझे बचा लो ।'

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर पार्वतीने सोचा—'गिरिराज हिमालय तो मेरे पिता हैं । उनका मैं पितृभावसे स्पर्श करती हूँ और भगवान् शंकरका पति-भावसे । पर मैं तपस्विनी कैसे इन ब्राह्मणदेवताको स्पर्श करूँ ! परंतु इस समय जलमें ग्राहद्वारा पकड़े जानेपर भी यदि मैं इन्हें बाहर नहीं खींचती तो निःसंदेह मुझे ब्रह्महत्याका दोष लगेगा । दूसरी बात यह है कि अन्य धर्मवर्जित त्रुटियों या प्रत्यवायोंका प्रायश्चित्तद्वारा शोधन भी सम्भव है; किंतु इस ब्रह्महत्या-दोषका तो शोधक कोई प्रायश्चित्त भी नहीं दीखता ।' इस प्रकार मन-ही-मन कह वे तुरंत दौड़कर वहाँ पहुँच गयीं और हाथसे पकड़कर ब्राह्मणको अपने बाहर खींचने लगीं । [illegible]

समयका त्याग उन्हें स्मरण हो आया । अत्यन्त लज्जाके कारण उन परमसुन्दरी उमाके मुखसे भगवान् शंकरके प्रति कोई वचन नहीं निकल रहा था । वे बिल्कुल मौन हो गयीं । इसपर भगवान् रुद्र मुसकराते हुए कहने लगे—'भद्रे! तुम मेरा हाथ पकड़ चुकी हो, फिर मेरा त्याग करना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है । कल्याणि ! तुम यदि मेरा पाणिग्रहण निष्फल कर दोगी तो मुझे अब अपने भोजनके लिये ब्रह्मपुत्री सरस्वतीसे कहना पड़ेगा ।'

'यह उपहासकी परम्परा आगे न बढ़े'—ऐसा सोचकर कुछ लज्जित-सी हुई पार्वती कहने लगीं—'देवाधिदेव ! महेश्वर ! आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं । आपको पानेके लिये मेरा यह प्रयत्न है । पूर्वजन्ममें भी आप ही मेरे पतिदेव थे । इस जन्ममें भी आप ही मेरे पति होंगे, कोई दूसरा नहीं । किंतु अभी मेरे संरक्षक पिता पर्वतराज हिमालय हैं, अब मैं उनके पास जाती हूँ । उन्हें जताकर आप विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें ।'

इस प्रकार कहकर परमसुन्दरी भगवती उमा अपने पिता हिमालयके पास गयीं और हाथ जोड़कर उनसे कहा—'पिताजी ! मुझे अनेक लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि पूर्वजन्ममें भगवान् रुद्र ही मेरे पति रहे हैं । उन्होंने ही दक्षके यज्ञका विध्वंस किया था । वे ही संसारके संरक्षक रुद्र, ब्राह्मणका वेष धारण कर तपोवनमें मेरे पास आये और मुझसे भोजनकी याचना की । 'आप स्नान कर आइये'—मेरी इस प्रेरणापर वे वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाये हुए गङ्गामें गये । फिर वहाँ मकरद्वारा ग्रस्त हो जानेपर उन्होंने मुझे सहायताके लिये पुकारा । परंतु पिताजी ! मुझे ब्रह्महत्या न लग जाय, इस भयसे मैंने अपने हाथसे उन्हें पकड़ लिया । मेरे पकड़ते ही वे अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गये और कहने लगे—'देवि ! यह तो पाणिग्रहण है । [illegible]

इसमें तुम्हें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर उनसे स्वीकृति लेकर मैं आपसे पूछने आयी हूँ। अतः इस अवसरपर मेरा जो कर्तव्य हो, उसे आप शीघ्र बतानेकी कृपा कीजिये।

पार्वतीकी ऐसी बात सुनकर हिमालय बड़े प्रसन्न हुए और अपनी पुत्रीसे कहने लगे—'सुमुखि! मैं आज संसारमें अत्यन्त धन्य हूँ, जो स्वयं भगवान् शंकर मेरे जामाता होनेवाले हैं। तुम्हारे द्वारा मैं सचमुच संततिवान् बन गया। पुत्रि! तुमने मुझको देवताओंका सिरमौर बना दिया है; पर क्षणभर रुकना। मेरे आनेतक थोड़ी प्रतीक्षा करना।'

इस प्रकार कहकर पर्वतराज हिमालय सम्पूर्ण देवताओंके पितामह ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ उनका दर्शन कर गिरिराजने नम्रतापूर्वक कहा—'भगवन्! उमा मेरी पुत्री है। आज मैं उसे भगवान् रुद्रको देना चाहता हूँ।' इसपर श्रीब्रह्माजीने भी उन्हें 'दे दो' कहकर अनुमति दे दी।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पर्वतराज हिमालय अपने घरपर गये और तुरंत ही तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहूको बुलाया। फिर किंनरों, असुरों और ... पर्वत, नदियाँ, ... पाषाण भी ... हो

गयीं, तब गिरिराज हिमालयने मन्दराचलको भगवान् शंकरके पास भेजा। भगवान् शंकरकी स्वीकृतिसे मन्दराचल तत्काल वापस आ गये। फिर तो भगवान् शंकरने विधिपूर्वक उमाका पाणिग्रहण किया। उस विवाहके उत्सवपर पर्वत और नारद—ये दोनों गान कर रहे थे। सिद्धोंने नाचनेका काम पूरा किया था। वनस्पतियाँ अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं तथा सुन्दर रूपवती अप्सराएँ उच्चस्वरसे गा-गाकर नृत्य करनेमें संलग्न थीं। उस विवाह-महोत्सवमें लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्माजी स्वयं ब्रह्माके स्थानपर विराजमान थे। उन्होंने प्रसन्न होकर उमासे कहा—पुत्रि! संसारमें तुम-जैसी पत्नी और शंकर-सरीखे पति सबको सुलभ हों।' भगवान् शंकर और भगवती उमा—दोनों एक साथ बैठे थे। उनसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी अपने धामको लौट आये।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! रुद्रका प्राकट्य, गौरीका जन्म तथा विवाह—यह सारा प्रसङ्ग राजा प्रजापालके पूछनेपर परम तपस्वी महातपा ऋषिने उन्हें जैसे सुनाया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुम्हें बता दिया। देवी गौरीके जन्म, विवाहादि—सभी कार्य तृतीया तिथिको ही सम्पन्न हुए थे, अतएव तृतीया उनकी तिथि मानी जाती है। उस तिथिको नमक खाना सर्वथा निषिद्ध है। जो स्त्री उस दिन उपवास करती है, उसे अचल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। दुर्भाग्यग्रस्त स्त्री या पुरुष तृतीया तिथिको लवणके परित्यागपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करे तो उसको सौभाग्य, धन-सम्पत्ति और मनोवाञ्छित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, उसे जगत्में उत्तम स्वास्थ्य, कान्ति और पुष्टिका भी लाभ होता है।

(अध्याय २२)

गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी तिथिका माहात्म्य

राजा प्रजापालने पूछा—महामुने ! गणपतिका जन्म कैसे हुआ, उन्होंने सगुणरूप कैसे धारण किया ? यह संशय मेरे हृदयके लिये कष्टप्रद बन गया है । अतः आप इसे दूर करनेकी कृपा कीजिये ।

महातपा बोले—राजन् ! पूर्व समयकी बात है—सम्पूर्ण देवता और तपको ही धन माननेवाले ऋषिगण कार्य आरम्भ करते थे और उसमें उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी । फिर ऐसी स्थिति आ गयी कि अच्छे मार्गपर चलनेवाले लोग विघ्नका सामना करते हुए किसी प्रकार कार्यमें सफलता पाने लगे, पर निकृष्ट कार्य-शील व्यक्तिकी कार्य-सिद्धिमें कोई विघ्न नहीं आता । तब पितरोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि विघ्न तो असत् कार्योंमें होना चाहिये । अतः इस विषयपर वे परस्पर विचार करने लगे । इस प्रकार मन्त्रणा करते-करते उन देवताओंके मनमें भगवान् शंकरके पास चलकर इस गुत्थीको सुलझानेकी इच्छा हुई । अतएव कैलास पहुँचकर उन्होंने परम गुरु शंकरको प्रणामकर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की ।

देवता बोले—देवाधिदेव ! महादेव ! शूलपाणि ! त्रिलोचन ! भगवन् ! हम देवताओंसे भिन्न असुरोंके कार्यमें ही विघ्न उपस्थित करना आपके लिये उचित है, हमारे कार्योंमें नहीं । देवताओंके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे निर्निमेष दृष्टिसे भगवती उमाको देखने लगे । देवता भी वहीं थे । पार्वतीकी ओर देखते हुए वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अरे, इस आकाशका कोई स्वरूप क्यों नहीं दीखता ? पृथ्वी, जल, तेज और वायुकी मूर्ति तो चक्षुगोचर होती है; किंतु आकाशकी मूर्ति क्यों नहीं दीखती ।' ऐसा सोचकर ज्ञानशक्तिके भण्डार परमप्रभु भगवान् रुद्र हँस पड़े । आकाशकी मूर्ति न देखकर शम्भुने जो हँस दिया, इसका अभिप्राय था—'[illegible] पहले [illegible] [illegible] [illegible] कि शरीरधारी व्यक्तियोंका ही दर्शन होता है । आकाशके शरीरधारी न होनेके कारण इसकी मूर्ति असम्भव है । फिर तो उन परमप्रभु रुद्रके हास्य पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन चारोंके सहयोगसे यह एक अद्भुत कार्य सम्भव हो गया । अभी हँसी बंद भी नहीं हुई थी, इतनेमें एक परम तेजस्वी कुमार प्रकट हो गया । उसका मुख तेजसे चमक रहा था । उस तेजसे दिशाएँ चमकने लगीं । भगवान् शिवके सभी गुण उसमें संनिहित थे । ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् दूसरे रुद्र ही हों । वह कुमार एक महान् आत्मा था । वह प्रकट होकर अपनी सस्मित दृष्टि, अद्भुत कान्ति, दीप्त मूर्ति तथा रूपके कारण देवताओंके मनको मोहित कर रहा था । उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था । भगवती उमा उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगीं । यह अद्भुत कार्य देखकर तथा 'स्त्रीका स्वभाव चञ्चल होता है, सम्भवतः उमाकी आँखें भी इस अनुपम सुन्दर बालकपर मुग्ध हो गयी हैं'—यह मानकर भगवान् रुद्रके मनमें क्रोधका आविर्भाव हो गया । अतः उन परम प्रभुने गणेशजीको शाप दे दिया—'कुमार ! तुम्हारा मुख हाथीके मुख-जैसा और पेट लम्बा होगा । सर्प ही तुम्हारे यज्ञोपवीतका काम देंगे—यह नितान्त सत्य है ।'

इस प्रकार गणेशजीको शाप देनेपर भी भगवान् शंकरका रोष शान्त नहीं हुआ । उनका शरीर क्रोधसे काँप रहा था । वे उठकर खड़े हो गये । त्रिशूल-धारी रुद्रका शरीर जैसे-जैसे हिलता, वैसे-वैसे उनके श्रीविग्रहके रोमकूपोंसे तेजोमय जल निकलकर बाहर गिरने लगा । उससे दूसरे अनेक विनायक उत्पन्न हो गये । उन सभीके मुख हाथीके मुख-जैसे थे तथा उनके शरीरकी आभा काले [illegible] या अञ्जनके

समान थी। वे हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। अब देवता व्यग्र-मनसे सोचने लगे—'अरे, यह क्या हो गया! एक ही बालक ऐसा अनुचित महान् कार्य कर रहा है। हम देवताओंकी अभिलाषा अनायास ही पूरी हो गयी। पर इसके चारों ओर ये वैसे ही गण कहाँसे आ पहुँचे!'

उस समय उन विनायकोंके कारण देवताओंकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पृथ्वीमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब चार मुखोंसे शोभा पानेवाले ब्रह्माजी अनुपम विमानपर विराजमान होकर आकाशमें आये और यों कहा—'देवताओ! तुम लोग धन्य हो। यों तुम सभी तीन नेत्रवाले अद्भुत रूपधारी भगवान् रुद्रके कृपापात्र हो। साथ ही तुमने असुरोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले गणेशजीको प्रणाम करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है।' उनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् ब्रह्माजीने भगवान् रुद्रसे कहा—'विभो! आपके मुखसे प्रकट हुआ जो यह बालक है, इसे ही आप इन विनायकोंका स्वामी बना दें। ये शेष दूसरे विनायक इनके अनुगामी—अनुचर बनकर रहें। प्रभो! साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आपके वर-प्रभावसे आकाशको भी शरीरधारी बनकर पृथ्वी आदि चारों महाभूतोंमें रहनेका सुअवसर मिल जाय। इससे एक ही आकाश अनेक प्रकारसे व्यवस्थित हो सकता है।'

इस प्रकार भगवान् रुद्र और ब्रह्माजी बातें कर ही रहे थे कि विनायक वहाँसे चले गये। फिर पितामह-ने शम्भुसे कहा—'देव! आपके हाथमें अनेक समुचित अस्त्र हैं। आप ये अस्त्र तथा वर अब इस बालकको प्रदान करें, यह मेरी प्रार्थना है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये। तब भगवान् शंकरने अपने सुपुत्र गणेशजीसे कहा—'पुत्र! विनायक, विघ्नहर, गजास्य और भवपुत्र—इन नामोंसे तुम प्रसिद्ध होगे। क्रूर-दृष्टिवाले ये विनायक बड़े उग्र स्वभावके हैं। पर ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे। प्रकृष्ट यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मके प्रभावसे शक्तिशाली बनकर ये कार्योंमें सिद्धि प्रदान करेंगे। देवताओं, यज्ञों तथा अन्य कार्योंमें भी सबसे श्रेष्ठ स्थान तुम्हें प्राप्त होगा। सर्वप्रथम पूजा पानेका अधिकार तुम्हारा है। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे द्वारा उस कार्यकी सफलता बाधित होगी।'

महाराज! जब ये बातें समाप्त हो गयीं तो भगवान् शंकरने देवताओंके साथ जलपूर्ण सुवर्ण कलशोंके विभिन्न तीर्थोंके जलसे उन गणेशजीका अभिषेक किया। राजन्! इस प्रकार जलसे अभिषिक्त होकर विनायकोंके स्वामी भगवान् गणेशकी अद्भुत शोभा होने लगी। उन्हें अभिषिक्त देखकर सभी देवता भगवान् शंकरके सामने ही उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवता बोले—गजानन! आप गणोंके स्वामी हैं। आपका एक नाम विनायक है। आप प्रचण्ड पराक्रमी हैं। आपको हमारा निरन्तर नमस्कार है। भगवन्! विघ्न दूर करना आपका स्वभाव है। आप सर्पकी मेखला पहनते हैं। भगवान् शंकरके मुखसे आपका प्रादुर्भाव हुआ है। लम्बे पेटसे आपकी आकृति उद्भासित होती है। हम सम्पूर्ण देवता आपको प्रणाम करते हैं। आप हमारे सभी विघ्न सदाके लिये शान्त कर दें।*

---

* नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक। विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥
नमोऽस्तु ते विघ्नहर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल। नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित॥
सर्वदेवनमस्काराद्विघ्नं कुरु सर्वदा। (वराहपु० २३ । ३३-३४)

असीम क्रोध उत्पन्न हो गया । उन्होंने वासुकि प्रभृति प्रमुख सर्पोंको बुलाया और उन्हें शाप दे दिया ।

ब्रह्माजीने कहा—नागो ! तुम मेरेद्वारा उत्पन्न किये हुए मनुष्योंकी मृत्युके कारण बन गये हो । अतः आगे स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तुम्हारा अपनी ही माताके शापद्वारा घोर संहार होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

जब ब्रह्माजीने इस प्रकार उन श्रेष्ठ सर्पोंसे कहा तब सर्पोंके शरीरमें भयसे कँपकँपी मच गयी । वे उन प्रभुके पैरोंपर गिर पड़े और ये वचन कहे ।

नाग बोले—भगवन् ! आपने ही तो कुटिल जातिमें हमारा जन्म दिया है । विष उगलना, दुष्टता करना, किसी वस्तुको देखकर उसे नष्ट कर देना—यह हमारा अमिट स्वभाव आपके द्वारा ही निर्मित है । अब आप ही उसे शान्त करनेकी कृपा करें ।

ब्रह्माजीने कहा—मैं मानता हूँ, तुम्हें मैंने उत्पन्न किया है और तुममें कुटिलता भी भर दी है, पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम निर्दय होकर नित्य मनुष्योंको खाया करो ।

सर्पोंने कहा—भगवन् ! आप हमें अलग-अलग रहनेके लिये कोई सुनिश्चित स्थानकी व्यवस्था कर दीजिये और हमारे द्वारा डँसे जानेकी स्थिति एवं नियम भी बता दें ।

राजन् ! नागोंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'सर्पो ! तुमलोग मनुष्योंके साथ भी रह सको—इसके लिये मैं स्थानका निर्णय कर देता हूँ । तुम सबलोग मनको एकाग्र कर मेरी आज्ञा सुनो—'सुतल, वितल और पाताल—ये तीन लोक कहे गये हैं । तुम्हें रहनेकी इच्छा हो तो वहीं निवास करो । वहाँ मेरी आज्ञा तथा व्यवस्थासे अनेक प्रकारके भोग तुम्हें भोगनेके लिये प्राप्त होंगे । रातके सातवें पहरतक तुम्हें वहाँ रहना है । फिर वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भमें कश्यपजीके यहाँ तुम्हारा जन्म होगा । देवतालोग तुम्हारे बन्धु-बान्धव होंगे । बुद्धिमान् गरुडसे तुम्हारा भाईपनेका सम्बन्ध होगा । उस समय कारणवश तुम्हारी सारी संतान (जनमेजयके यज्ञमें) अग्निके द्वारा जलकर स्वाहा हो जायगी । इसमें निश्चय ही तुम्हारा कोई दोष न होगा । जो सर्प अत्यन्त दुष्ट और उच्छृङ्खल होंगे, उन्हींकी उस शापसे जीवनलीला समाप्त होगी । जो ऐसे न होंगे, वे जीवित रहेंगे । हाँ, अपकार करनेपर या जिनका काल ही आ गया हो, उन मनुष्योंको समयानुसार निगलने या काटनेके लिये तुम स्वतन्त्र हो । गरुडसम्बन्धी मन्त्र, औषध और बद्ध गारुडमण्डलद्वारा दाँत कुण्ठित करनेकी कलाएँ जिन्हें ज्ञात होंगी, उनसे निश्चय ही तुम्हें डरकर रहना चाहिये, अन्यथा तुम लोगोंका विनाश निश्चित है ।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वे सम्पूर्ण सर्प पृथ्वीके नीचे पाताललोकोंमें चले गये । इस प्रकार ब्रह्माजीसे शाप एवं वरदान पाकर वे पातालमें आनन्दपूर्वक निवास करने लगे । ये सारी बातें उन नाग महानुभावोंके साथ पञ्चमी तिथिके दिन ही घटित हुई थीं । अतः यह तिथि धन्य, प्रिय, पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका संहारक सिद्ध हो गयी । इस तिथिमें जो खट्टे पदार्थके भोजनका परित्याग करेगा और दूधसे नागोंको स्नान करायेगा, सर्प उसके मित्र बन जायँगे ।

(अध्याय २४)

राजन्! जब इस प्रकार भगवान् रुद्रने महान् पुरुष श्रीगणेशजीका अभिषेक कर दिया और देवताओंद्वारा उनकी स्तुति सम्पन्न हो गयी, तब वे भगवती पार्वतीके पुत्रके रूपमें शोभा पाने लगे। गणाध्यक्ष गणेशजीकी (जन्म एवं अभिषेक आदि) सारी क्रियाएँ चतुर्थी तिथिके दिन ही सम्पन्न हुई थीं। अतएव तभीसे यह तिथि समस्त तिथियोंमें परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुई। राजन्! जो भाग्यशाली मानव इस तिथिको तिलोंका आहार कर भक्तिपूर्वक गणपतिकी आराधना करता है, उसपर वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। महाराज! जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, उसके पास विघ्न कभी नहीं फटकते और न उसके पास लेशमात्र पाप ही शेष रह जाता है।

(अध्याय २१)

सर्पोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और पञ्चमी तिथिकी महिमा

पृथ्वीने पूछा—मेरा उद्धार करनेवाले भगवन्! आपके श्रीविग्रहका स्पर्श पाकर महान् विक्रमशाली सर्प कैसे मूर्तिमान् बन गये तथा उन्हें आपने क्यों बनाया?

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे! गणपतिके जन्मका वृत्तान्त सुननेके पश्चात् राजा प्रजापालने यही प्रसङ्ग बड़ी मीठी वाणीमें उत्तमव्रती महातपासे पूछा था।

राजा प्रजापालने पूछा—भगवन्! कश्यपजीके वंशसे उत्पन्न नाग तो बड़े ही दुष्ट प्रकृतिके थे। फिर उन्हें विराट् शरीर धारण करनेका अवसर कैसे मिल गया? यह प्रसङ्ग आप मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

मुनिवर महातपाजी कहते हैं—राजन्! मरीचि ब्रह्माजीके प्रथम मानस पुत्र थे। उनके पुत्र कश्यपजी हुए। दक्ष प्रजापतिकी पुत्री कद्रू उनकी भार्या हुई। उनसे कश्यपजीके अनन्त, वासुकि, महाबली कम्बल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलिक और [illegible] आदि [illegible] अनेक पुत्र हुए। नरेन्द्र! [illegible] ये सब [illegible] कश्यपजीके पुत्र हैं। [illegible] वे बड़े [illegible] कुटिल और [illegible] थे। उनके [illegible] अत्यन्त [illegible] मनुष्योंको [illegible] या काटकर भी भस्म कर सकते थे। राजन्! उनका दंश शब्दकी ही तरह तीव्र गामी था। उससे भी मनुष्योंकी मृत्यु हो जाती। इस प्रकार प्रजाका प्रतिदिन दारुण संहार होने लगा। यों अपना भीषण संहार देखकर प्रजावर्ग एकत्र होकर सबको शरण देनेमें समर्थ परमप्रभु भगवान् ब्रह्माजीकी शरणमें गये। राजन्! इसी उद्देश्यको सामने रखकर प्रजाओंने कमल-पर प्रकट होनेवाले ब्रह्माजीसे कहा—'भगवन्! आपमें असीम शक्ति है। इन तीखे दाँतोंवाले सर्पोंसे आप हमारी रक्षा करें। इनकी दृष्टि पड़ते ही मनुष्य तथा पशुसमूह भस्म हो जाते हैं—यह प्रतिदिनकी बात हो गयी है। भगवन्! इन सर्पोंद्वारा आपकी सृष्टिका संहार हो रहा है। महामते! आप इसकी जानकारी प्राप्तकर ऐसा प्रयत्न करें कि यह दुःखद परिस्थिति शीघ्र दूर हो जाय।'

ब्रह्माजी बोले—प्रजापालो! तुम [illegible] हो। मैं तुम्हारी रक्षा अवश्य करूँगा। [illegible]

[illegible]

भाजन हैं। देवेश्वर! अच्युत गणेश, भूतेश, शिव, अक्षय, अयन और दैत्यवरान्तक आपकी संज्ञाएँ हैं। भगवन्! आप हमारी रक्षा करें। पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंमें आप प्रतिष्ठित हैं। आपके प्रधान गुण भी पाँच हैं। विशेषता यह है कि आप आकाशमें तो केवल ध्वनिरूपसे लीन रहते हैं, अग्निमें शब्द एवं रूप—इन दो गुणोंसे, वायुमें तीन रूपोंसे, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस—इन चार रूपोंसे और पृथ्वीमें गन्धसहित पाँच रूपोंसे विराजते हैं। भगवन्! अग्नि आपका स्वरूप है। वृक्ष, पत्थर और तिल आदिमें आप साररूपसे स्थित हैं। भगवन्! आप महान् शक्तिशाली पुरुष हैं। इस समय दैत्योंद्वारा हमें अत्यन्त दुःख भोगना पड़ रहा है। अतः आप हमारी रक्षा करें। त्रिलोचन! जिस समय यह सारा विश्व सृष्टिशून्य था तथा ये सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र आदि भी नहीं थे, उस समय त्रिनेत्र! सभी प्रमाणोंसे परे, समस्त बाधाओंसे वर्जित केवल आपकी ही सत्ता विराजित थी। भगवन्! आप कपालकी माला पहनते हैं। द्वितीयाके चन्द्रमा आपके मस्तककी शोभा बढ़ाते हैं। श्मशान-भूमिमें आप निवास करते हैं। भस्मसे आपकी अनुपम शोभा होती है। आप शेषनागका यज्ञोपवीत पहनते हैं। देवेश्वर! मृत्युंजय! आप अपनी तीव्र बुद्धिके सहारे हमारी रक्षा करें। भगवन्! आप पुरुष हैं और ये श्रीगिरिजा अर्द्ध देहरूपमें आपकी शक्ति हैं। आपमें ही यह जगत् स्थित है। आहवनीय आदि अग्नियोंने आपके तीनों नेत्रोंमें स्थान पाया है। समस्त सागर तथा पर्वतोंसे निरन्तर समुद्रतक जानेवाली नदियाँ आपकी जटाएँ हैं। आप विशुद्ध ज्ञानघन हैं। जिनकी दृष्टि दूषित है, वे ही उसे भौतिकरूपमें देखते हैं। जगत्के उत्पत्तिकर्ता भगवान् नारायण तथा चार मुखोंसे शोभा पानेवाले ब्रह्मा भी आप ही हैं। सत्त्व आदि तीनों गुणों, आहवनीय, आवसथ्य आदि तीनों अग्नियों तथा कृत-त्रेता आदि युगोंके भेदसे आप त्रिमूर्ति बन जाते हैं। प्रभो! ये प्रधान देवता आपकी सहायता चाहते हैं। ये आपको अपना पोषक एवं रक्षक कहते हैं। क्योंकि रुद्र! विश्वका भरण-पोषण करना आपका स्वभाव है। अतः भस्मको भूषणरूपमें धारण करनेवाले प्रभो! आप हमारी रक्षा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर पशुपति भगवान् शंकर स्थिर होकर बोले—'देवताओ! आपका क्या कार्य है? शीघ्र बतलाएँ।'

देवगण बोले—देवेश! दानवोंके वधके लिये आप हमें एक सेनापति प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। ब्रह्माजीकी अध्यक्षतामें रहनेवाले हम सभी देवताओंका इस समय इसीमें कल्याण है।

भगवान् रुद्रने कहा—'देवगण! आप लोग स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जायँ। अभी थोड़ी देरमें मैं आपलोगोंको सेनापति देता हूँ।'

राजन्! यों कहकर भगवान् रुद्रने देवताओंको जानेकी आज्ञा दे दी और पुत्रोत्पत्तिके निमित्त अपने शरीरमें रहनेवाली शक्तिको प्रेरित किया। उनके द्वारा शक्तिके क्षुब्ध होते ही एक कुमार प्रकट हो गया। उसकी प्रभा ऐसी थी, मानो तपता हुआ सूर्य ही हो। वह अपनी जन्मजात शक्तिसे इस प्रकार प्रज्वलित हो रहा था, मानो वह शक्ति ज्ञानमय

षष्ठी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें स्वामी कार्तिकेयके जन्मकी कथा

राजा प्रजापालने कहा—द्विजवर! मेरा एक प्रश्न यह भी है कि अहंकारसे कार्तिकेयकी उत्पत्ति कैसे हुई! महामते! आप मेरे संदेहको दूर करनेकी कृपा कीजिये।

मुनिवर महातपा बोले—राजन्! सम्पूर्ण तत्त्वोंमें जिन्हें प्रधान स्थान प्राप्त है, उन्हें परम पुरुष परमात्मा कहा जाता है। सबके आरम्भमें उन्हींसे अव्यक्त-तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। ये तत्त्व तीन प्रकारके हैं। परम पुरुष और अव्यक्तके योगसे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ। इसी महत्तत्त्वको अहंकार भी कहते हैं। इनमें जो पुंस्तत्त्व है, वह भगवान् विष्णु अथवा शिव नामसे प्रसिद्ध है। अव्यक्तप्रकृति भगवती उमादेवी या कमल-नयना लक्ष्मी हैं। उन्हीं भगवान् शंकर और उमाके संयोगसे अहंकारकी उत्पत्ति हुई। वे ही सेनापति कार्तिकेय हैं। महामते राजन्! मैं अब उन कार्तिकेयकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो।

सर्वप्रथम एकमात्र भगवान् नारायण ही विराजमान थे, फिर उनसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् स्वायम्भुव मनु तथा मरीचि और सूर्य आदि प्रकट हुए। फिर इन देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंकी सृष्टि हुई। यही सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टिका विस्तार हो जानेपर देवताओं और दानवोंमें एक दूसरेको परास्त करनेकी इच्छासे सदा युद्ध होने लगा; क्योंकि उन दोनों दलोंमें अपार बल था और उनमें सदा वैरकी भावना बनी रहती थी। दैत्योंके सेनाध्यक्ष बड़े बलवान् थे, जिन्हें युद्धमें कोई हरा नहीं सकता था। उनके नाम इस प्रकार हैं—हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, महासुर विप्रचित्ति, विचित्र, भीमाक्ष और क्रौञ्च। इन सभी वीरोंके बलकी सीमा न थी। उस घोर संग्रामके अवसरपर देवसेनामें आतङ्कित देवता दानवोंके तीक्ष्ण बाणोंसे प्रतिदिन हार रहे थे। उनकी पराजय देखकर बृहस्पतिजीने कहा—'देवताओ! तुम्हारी सेनामें कोई सेनाध्यक्ष नहीं है। केवल एक इन्द्रसे इस सेनाकी रक्षा हो सके—यह नितान्त असम्भव है। अतः तुमलोग अपने लिये किसी सेनाध्यक्षका अन्वेषण करो। अब इसमें देर करना ठीक नहीं है।'

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर देवता ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने व्याकुल होकर उनसे कहा—'भगवन्! हमें आप कोई सेनाध्यक्ष देनेकी कृपा करें।' इसपर ब्रह्माजीने ध्यान लगाकर देखा—'इन देवताओंके लिये मुझे क्या करना चाहिये।' इतनेमें उनका ध्यान भगवान् शंकरकी ओर गया और फिर सभी देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध एवं चारण ब्रह्माजीको आगे करके कैलास पर्वतको चले। वहाँ पशुपति भगवान् शंकरका दर्शनकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा सभीने उनकी स्तुति आरम्भ कर दी।

देवता बोले—महेश्वर! हम समस्त देवता आपकी शरणमें आये हैं। भूतभावन! आप त्रिनेत्र, भगवान् शंकर, उमापति, विश्वपति, मरुत्पति और जगत्पति नामसे विख्यात हैं! आपको हमारा प्रणाम है। प्रभो! आप हमारी रक्षा करें। भगवन्! आपके जटापुञ्जके अग्रभागपर बैठे हुए चन्द्रमाकी किरणोंके प्रकाशसे तीनों जगत् स्वच्छ हो रहे हैं। आप ही अच्युत, त्रिशूलपाणि और पुरुषोत्तम कहलाते हैं। दैत्योंद्वारा उत्पन्न भय हमारे ऊपर आ गया है। आप उससे हमारी रक्षा करनेकी कृपा कीजिये। श्रेष्ठ देवताओंमें भी परमश्रेष्ठ प्रभो! आदिदेव, पुरुषोत्तम, हर, भव, महेश, त्रिपुरान्तक, विभु, भगदेवताके नेत्र हरनेवाले, दैत्यरिपु, पुरातन और वृषभध्वज—इस प्रकार आपके अनन्त नाम हैं। भगवन्! हमारी रक्षामें आप ही सक्षम हैं। गिरिजापति प्रभो! पर्वतपुत्री मेनाके आप जामाता

सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा

राजा प्रजापालने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दिव्य ज्योतिः-ब्रह्मका शरीर-धारण बड़े आश्चर्यकी बात है । कृपया मेरे शरणागतकी इस शङ्काका आप निराकरण करें ।

मुनिवर महातपाजी कहने लगे—राजन् ! ज्ञानात्मा, सनातन ज्ञानशक्तिको जब किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा हुई तो उसके शरीरसे एक प्रकाशमान तेज निकल पड़ा, जो सूर्य कहलाया । यह उन महान् पुरुषका ही एक दूसरा रूप है । फिर इस मूर्तिमें सम्पूर्ण तेज स्थान पा गये । तब उससे तीनों लोकोंमें प्रकाश फैल गया । उस तेजमें अखिल महर्षियोंसहित सम्पूर्ण देवता और सिद्ध अधिष्ठित थे । इसीलिये उन प्रभुको स्वयम्भू कहा जाता है । उन्हींसे सूर्यका प्राकट्य हुआ । वे ही स्वयं सूर्य-रूपसे लक्षित हैं । उस विग्रहमें तुरंत तेजोंका समावेश हो गया । अतः वे परम तेजस्वी शरीरवाले बन गये । वेदवादी मुनिगण इसी तेजको सूर्य आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं । जब वे आकाशमें ऊपर उठकर सभी लोकोंको प्रकाशित करने लगे, तब उनका अनुगुण नाम 'भास्कर' पड़ गया । इसी प्रकार चारों ओर प्रकाश फैलानेके कारण इनकी 'प्रभाकर' नामसे भी प्रसिद्धि हुई । दिवा और दिवस—ये दोनों शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं । इनके द्वारा दिवसका निर्माण हुआ, अतः ये दिवाकर कहलाये । सम्पूर्ण संसारके आदिमें ये विराजते थे, अतः इन्हें आदित्य कहते हैं । फिर इन्हीं भगवान् सूर्यके तेजसे भिन्न-भिन्न बारह आदित्य उत्पन्न हुए । वैसे प्रधानतया एक ही रूपमें ये जगत्में घूमते रहते हैं । जब इनके शरीरमें स्थान पाये हुए देवताओंने देखा कि ये ही परब्रह्म परमेश्वर जगत्में व्याप्त होकर तेज फैला रहे हैं, तब वे श्रीविग्रहसे बाहर निकल आये और भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—भगवन् ! आपसे जगत्‌की सृष्टि होती है । आपके द्वारा ही इस विश्वका पालन और संहार होता है । आप आकाशमें ऊँचे जाकर निरन्तर विश्वमें चक्कर लगाते हैं । ऐसे प्रभुकी हम सदा उपासना करते हैं । जगत्‌की रचना हो जानेपर प्रतापी सूर्यका रूप धारणकर आप सर्वत्र तेज भर देते हैं । जिसे सात घोड़े खींचते हैं, जिसकी कालरूपी धुरी है और जो बड़े वेगसे चलता है, ऐसा रथ आपकी सवारी है । प्रभो ! आप प्रभाकर और रवि कहलाते हैं । चर और अचर—सम्पूर्ण संसारकी आत्मा आप ही हैं । सिद्ध पुरुष कहते हैं कि ब्रह्मा, वरुण, यम, भूत और भविष्य—सब कुछ आप ही हैं । भगवन् ! वेद आपकी मूर्ति हैं । अन्धकार दूर करना आपका स्वभाव है । आप वेदान्त आदि शास्त्रोंकी सहायतासे ही जाने जाते हैं । यज्ञोंमें विष्णुके रूपसे आपके ही निमित्त हवन होता है । हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा करें । देवेश्वर ! अब हमलोगोंके द्वारा भक्तिपूर्वक की हुई आपकी स्तुति सम्पन्न हो गयी । प्रभो ! विशेष आग्रह है कि आप हमारी रक्षाका प्रबन्ध करें ।

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने तेजोमयी मूर्तिको सौम्य बना लिया और उनके सामने शीघ्र ही साधारण प्रकाश फैलाने लगे । (उस अवसरपर देवताओंने कहा—) 'भगवन् ! इस सम्पूर्ण देवगणमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी थी । अब आपकी कृपासे सभी शान्तिका अनुभव कर

बनकर एकमात्र उसीके पास पुञ्जीभूत हो गयी है। राजेन्द्र! उस कुमारकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अनेक प्रकारकी कथाएँ हैं। बहुत-से मन्वन्तरों तथा कल्पोंमें देवताओंके सेनापति होनेके विविध प्रसङ्ग हैं। भगवान् शंकरके शरीरमें अहंकाररूपसे जिन देवताओंकी प्रसिद्धि थी, वे सभी देवता प्रयोजनवश देवसेनापति बनकर शोभा पाने लगे। उस कुमारके उत्पन्न हो जानेपर स्वयं ब्रह्माजी देवताओंके साथ आये और उन देवाधिदेव भगवान् शंकरकी पूजा की। समस्त देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और भगवान् शंकरने उस सेनापति होनेवाले बालकको पाल-पोसकर बड़ा किया। तब उस बालकने देवताओंसे कहा—'आपलोग मुझे दो सहायक तथा कुछ खिलौने दें।' उस समय भगवान् रुद्रने उस बालककी बात सुनकर यह वचन कहा—'पुत्र! तुम्हें खेलनेके लिये कुक्कुट तथा सेना-सहयोगके लिये शाख एवं विशाख नामवाले दो अनुचर देता हूँ। कुमार! तुम भूत, ग्रह एवं विनायकोंके नेता बनो और देवताओंकी सेनाके सेनापति हो जाओ।' राजन्! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो अभिलषित [illegible] उच्चारण करके सेनापति भगवान् स्कन्दकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—प्रभो! आप भगवान् शंकरके पुत्र हैं। आप हमारी [illegible] करनेकी कृपा करें। आप षडानन, स्कन्द, विशाख, कुक्कुटध्वज, [illegible] करनेवाले, कुमार, [illegible] करनेवाले, [illegible] (क्रौञ्च [illegible] अन्तमें सिद्ध हैं, [illegible] करनेवाले), [illegible], त्रिपुरारि, [illegible] करनेवाले, [illegible] पुत्र हैं। [illegible] आपको हमारा नमस्कार है।

राजन्! देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करने रुद्रकुमार भगवान् स्कन्दकी आकृति तेजीसे बढ़ने लगी फिर तो वे बारह आदित्योंके समान तेजस्वी एवं पराक्रमी गये और उनके तेजसे तीनों लोकोंमें ताप छा गया।

राजा प्रजापालने पूछा—गुरो! आपने स्कन्द कृत्तिका-पुत्र कैसे कहा है? अथवा वे कुमार, पाव और षण्मातृनन्दन क्यों कहे जाते हैं? इसका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! मन्वन्तर प्रारम्भमें कार्तिकेयकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई थी, प्रसङ्ग मैंने बताया है। देवतालोग तो भूत और भविष्य बातें भी जानते हैं। अतएव उनके द्वारा इन गुणयोग नामोंका उच्चारण हुआ है। अग्निके पुत्र होनेसे इनका नाम 'पावकि' हुआ है। यद्यपि इनकी माता गौ हैं, किंतु जन्ममें कृत्तिकादि छः माताओंने इन्हें दुग्ध-पान कराकर पाला था, अतः वे 'कार्तिकेय' कहलाये। महाराज! तुम्हारे प्रश्नका इस प्रकार समाधान हो गया। आत्मविद्यारूपी अमृतका य विषय अत्यन्त गुह्य है। भगवान् शंकरके अहंकार यह मूर्तरूप है। सम्पूर्ण पापोंके प्रशमन करनेवा स्वयं भगवान् शंकर ही स्कन्दरूपमें प्रकट हुए थे

पितामह ब्रह्माजीने इनके अभिषेकके सम इन्हें षष्ठी तिथि प्रदान की थी। अतः [illegible] इस तिथिमें संयमपूर्वक केवल फलके आहार रहकर इनकी पूजा करता है, उसे यदि पुत्र न हो तो पुत्रकी प्राप्ति तथा निर्धन हो तो धनकी प्राप्ति [illegible] जाती है। इतना ही नहीं, मनुष्य मनसे भी जिन जिन वस्तुओंकी इच्छा करेगा, वह उसे प्राप्त हो जायगी जो पुरुष भगवान् कार्तिकेयके उपर्युक्त गुणानुवादपूर्ण स्तोत्रका पाठ करता है, उसके घरमें [illegible] कल्याण होता है और वे [illegible] रहते हैं।

(अध्याय २५

सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा

राजा प्रजापालने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दिव्य ज्योतिः-
[illegible]का शरीर-धारण बड़े आश्चर्यकी बात है । कृपया
शरणागतकी इस शङ्काका आप निराकरण करें ।

मुनिवर महातपाजी कहने लगे—राजन् !
[illegible]त्मा, सनातन ज्ञानशक्तिको जब किसी दूसरी
[illegible]की अपेक्षा हुई तो उसके शरीरसे एक प्रकाशमान
[illegible] निकल पड़ा, जो सूर्य कहलाया । यह उन
[illegible]न् पुरुषका ही एक दूसरा रूप है । फिर
[illegible] मूर्तिमें सम्पूर्ण तेज स्थान पा गये । तब उससे
[illegible]नों लोकोंमें प्रकाश फैल गया । उस तेजमें अखिल
[illegible]र्षियोंसहित सम्पूर्ण देवता और सिद्ध अधिष्ठित
[illegible] । इसीलिये उन प्रभुको स्वयम्भू कहा जाता है ।
[illegible]हींसे सूर्यका प्राकट्य हुआ । वे ही स्वयं सूर्य-
[illegible]पसे लक्षित हैं । उस विग्रहमें तुरंत तेजोंका समावेश
[illegible] गया । अतः वे परम तेजस्वी शरीरवाले बन
[illegible]ये । वेदवादी मुनिगण इसी तेजको सूर्य आदि
[illegible]मोंसे व्यवहृत करते हैं । जब वे आकाशमें ऊपर
उठकर सभी लोकोंको प्रकाशित करने लगे, तब उनका
अनुगुण नाम 'भास्कर' पड़ गया । इसी प्रकार चारों
ओर प्रकाश फैलानेके कारण इनकी 'प्रभाकर' नामसे
भी प्रसिद्धि हुई । दिवा और दिवस—ये दोनों शब्द
एक ही अर्थके बोधक हैं । इनके द्वारा दिवसका
निर्माण हुआ, अतः ये दिवाकर कहलाये । सम्पूर्ण
संसारके आदिमें ये विराजते थे, अतः इन्हें आदित्य
कहते हैं । फिर इन्हीं भगवान् सूर्यके तेजसे भिन्न-
भिन्न बारह आदित्य उत्पन्न हुए । वैसे प्रधानतया एक
ही रूपमें ये जगत्में घूमते रहते हैं । जब इनके
शरीरमें स्थान पाये हुए देवताओंने देखा कि ये ही
परब्रह्म परमेश्वर जगत्में व्याप्त होकर तेज फैला रहे
हैं, तब वे श्रीविग्रहसे बाहर निकल आये और
भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—भगवन् ! आपसे जगत्की सृष्टि
होती है । आपके द्वारा ही इस विश्वका पालन और
संहार होता है । आप आकाशमें ऊँचे जाकर निरन्तर
विश्वमें चक्कर लगाते हैं । ऐसे प्रभुकी हम सदा
उपासना करते हैं । जगत्की रचना हो जानेपर
प्रतापी सूर्यका रूप धारणकर आप सर्वत्र तेज
भर देते हैं । जिसे सात घोड़े खींचते हैं, जिसकी
कालरूपी धुरी है और जो बड़े वेगसे चलता है,
ऐसा रथ आपकी सवारी है । प्रभो ! आप प्रभाकर
और रवि कहलाते हैं । चर और अचर—सम्पूर्ण
संसारकी आत्मा आप ही हैं । सिद्ध पुरुष कहते हैं
कि ब्रह्मा, वरुण, यम, भूत और भविष्य—सब कुछ
आप ही हैं । भगवन् ! वेद आपकी मूर्ति हैं ।
अन्धकार दूर करना आपका स्वभाव है । आप वेदान्त
आदि शास्त्रोंकी सहायतासे ही जाने जाते हैं । यज्ञोंमें
विष्णुके रूपसे आपके ही निमित्त हवन होता है । हम
सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप प्रसन्न होकर
सदा हमारी रक्षा करें । देवेश्वर ! अब हमलोगोंके द्वारा
भक्तिपूर्वक की हुई आपकी स्तुति सम्पन्न हो गयी । प्रभो !
विशेष आग्रह है कि आप हमारी रक्षाका प्रबन्ध करें ।

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान्
सूर्यने तेजोमयी मूर्तिको सौम्य बना लिया और
उनके सामने शीघ्र ही साधारण प्रकाश फैलाने
लगे । (उस अवसरपर देवताओंने कहा—)
'भगवन् ! इस सम्पूर्ण देवगणमें बेचैनी उत्पन्न हो
गयी थी । अब आपकी कृपासे सभी शान्तिका अनुभव कर

बनकर एकमात्र उसीके पास पुञ्जीभूत हो गयी है। राजेन्द्र ! उस कुमारकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अनेक प्रकारकी कथाएँ हैं। यत्नसे गन्धर्वों तथा यक्षोंसे देवताओंके सेनापति होनेके विविध प्रसङ्ग हैं। भगवान् शंकरके शरीरमें अहंकाररूपसे जिन देवताओंकी प्रसिद्धि थी, वे सभी देवता प्रयोजनवश देवसेनापति बनकर शोभा पाने लगे। उस कुमारके उत्पन्न हो जानेपर स्वयं प्रजापति देवताओंके साथ आये और उन देवाधिदेव भगवान् शंकरकी पूजा की। समस्त देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और भगवान् शंकरने उस सेनापति होनेवाले बालकको पाल-पोसकर बड़ा किया। तब उस बालकने देवताओंसे कहा—'आप लोग मुझे दो सहायक तथा कुछ खिलौने दें।' उस समय भगवान् रुद्रने उस बालककी बात सुनकर यह वचन कहा—'पुत्र ! तुम्हें खेलनेके लिये कुक्कुट तथा सेवा-सहयोगके लिये शाख एवं विशाख नामवाले दो अनुचर देता हूँ। कुमार ! तुम भूत, ग्रह एवं विनायकोंके नेता बनो और देवताओंकी सेनाके सेनापति हो जाओ।' राजन् ! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो अभिलषित वाक्योंका उच्चारण करके सेनाध्यक्ष भगवान् स्कन्दकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—प्रभो ! आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं। आप हमारी सेनाकी अध्यक्षता स्वीकार करनेकी कृपा करें। आप षण्मुख, स्कन्द, विश्वेश, कुक्कुटध्वज, पावकि, शत्रुओंको कम्पित करनेवाले, कुमारेश, बाल-ग्रहानुग, शत्रुओंको परास्त करनेवाले, क्रौञ्चविध्वंसक (क्रौञ्चनामक पर्वतको, जो आसाममें स्थित है, विदीर्ण करनेवाले), कृत्तिकानन्दन, शिवकुमार, भूतों तथा ग्रहोंके स्वामी, अग्निनन्दन तथा भूतभावन भगवान् शंकरकी संतान हैं। त्रिलोचन ! आपको हमारा नमस्कार है।

राजन् ! देवताओंके इस प्रकार [illegible] [illegible] भगवान् [illegible] [illegible] [illegible] आदित्योंके [illegible] गये और उनके तेजसे तीनों लोकोंमें [illegible]

राजा प्रजापालने पूछा—गुरो ! आपने [illegible] कृत्तिका-पुत्र कैसे कहा है ? अथवा वे कुमार, [illegible] और पावकिनन्दन क्यों कहे जाते हैं ? [illegible] मुझे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! [illegible] प्रारम्भमें कार्तिकेयकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई [illegible] प्रसङ्ग मैंने बताया है। देवतालोग तो भूत और भविष्य[illegible] बातें भी जानते हैं। अतएव उनके द्वारा इन गुह्य नामोंका उच्चारण हुआ है। अग्निके पुत्र होनेसे इनका नाम 'पावकि' हुआ है। यद्यपि इनको माता [illegible] हैं, किंतु जन्ममें कृत्तिकादि छः माताओंने [illegible] दुग्ध-पान कराकर पाला था, अतः वे कार्तिकेय कहलाये। महाराज ! तुम्हारे प्रश्नका इस प्रकार समाधान हो गया। आत्मविद्यारूपी अमृतका [illegible] विषय अत्यन्त गुह्य है। भगवान् शंकरके अहंकार[illegible] यह मूर्तरूप है। सम्पूर्ण पापोंके प्रशमन करनेवाले स्वयं भगवान् शंकर ही स्कन्दरूपमें प्रकट हुए थे।

पितामह ब्रह्माजीने इनके अभिषेकके समय इन्हें षष्ठी तिथि प्रदान की थी। अतः जो व्यक्ति इस तिथिमें संयमपूर्वक केवल फलके आहारपर रहकर इनकी पूजा करता है, उसे यदि पुत्र न हो तो पुत्रकी प्राप्ति अथवा निर्धन हो तो धनकी प्राप्ति हो जाती है। इतना ही नहीं, मनुष्य मनसे भी जिन-जिन वस्तुओंकी इच्छा करेगा, वह उसे सुलभ हो जायगी। जो पुरुष स्वामी कार्तिकेयके उपर्युक्त गुणनामपूर्ण स्तोत्रका पाठ करता है, उसके घरमें बच्चोंका [illegible] होता है और वे नीरोग रहते हैं [illegible]

सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा

राजा प्रजापालने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दिव्य ज्योतिः-स्वरूप प्रभुका शरीर-धारण बड़े आश्चर्यकी बात है । कृपया मुझ शरणागतकी इस शङ्काका आप निराकरण करें ।

मुनिवर महातपाजी कहने लगे—राजन् ! ज्ञानात्मा, सनातन ज्ञानशक्तिको जब किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा हुई तो उसके शरीरसे एक प्रकाशमान तेज निकल पड़ा, जो सूर्य कहलाया । यह उन महान् पुरुषका ही एक दूसरा रूप है । फिर उस मूर्तिमें सम्पूर्ण तेज स्थान पा गये । तब उससे तीनों लोकोंमें प्रकाश फैल गया । उस तेजमें अखिल महर्षियोंसहित सम्पूर्ण देवता और सिद्ध अधिष्ठित हैं । इसीलिये उन प्रभुको स्वयम्भू कहा जाता है । उन्हींसे सूर्यका प्राकट्य हुआ । वे ही स्वयं सूर्यरूपसे लक्षित हैं । उस विग्रहमें तुरंत तेजोंका समावेश हो गया । अतः वे परम तेजस्वी शरीरवाले बन गये । वेदवादी मुनिगण इसी तेजको सूर्य आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं । जब वे आकाशमें ऊपर उठकर सभी लोकोंको प्रकाशित करने लगे, तब उनका अनुगुण नाम 'भास्कर' पड़ गया । इसी प्रकार चारों ओर प्रकाश फैलानेके कारण इनकी 'प्रभाकर' नामसे भी प्रसिद्धि हुई । दिवा और दिवस—ये दोनों शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं । इनके द्वारा दिवसका निर्माण हुआ, अतः ये दिवाकर कहलाये । सम्पूर्ण संसारके आदिमें ये विराजते थे, अतः इन्हें आदित्य कहते हैं । फिर इन्हीं भगवान् सूर्यके तेजसे भिन्न-भिन्न बारह आदित्य उत्पन्न हुए । वैसे प्रधानतया एक ही रूपमें ये जगत्में घूमते रहते हैं । जब इनके शरीरमें स्थान पाये हुए देवताओंने देखा कि ये ही परब्रह्म परमेश्वर जगत्में व्याप्त होकर तेज फैला रहे हैं, तब वे श्रीविग्रहसे बाहर निकल आये और भगवान्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—भगवन् ! आपसे जगत्की सृष्टि होती है । आपके द्वारा ही इस विश्वका पालन और संहार होता है । आप आकाशमें ऊँचे जाकर निरन्तर विश्वमें चक्कर लगाते हैं । ऐसे प्रभुकी हम सदा उपासना करते हैं । जगत्की रचना हो जानेपर प्रतापी सूर्यका रूप धारणकर आप सर्वत्र तेज भर देते हैं । जिसे सात घोड़े खींचते हैं, जिसकी कालरूपी धुरी है और जो बड़े वेगसे चलता है, ऐसा रथ आपकी सवारी है । प्रभो ! आप प्रभाकर और रवि कहलाते हैं । चर और अचर—सम्पूर्ण संसारकी आत्मा आप ही हैं । सिद्ध पुरुष कहते हैं कि ब्रह्मा, वरुण, यम, भूत और भविष्य—सब कुछ आप ही हैं । भगवन् ! वेद आपकी मूर्ति हैं । अन्धकार दूर करना आपका स्वभाव है । आप वेदान्त आदि शास्त्रोंकी सहायतासे ही जाने जाते हैं । यज्ञोंमें विष्णुके रूपसे आपके ही निमित्त हवन होता है । हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा करें । देवेश्वर ! अब हमलोगोंके द्वारा भक्तिपूर्वक की हुई आपकी स्तुति सम्पन्न हो गयी । प्रभो ! विशेष आग्रह है कि आप हमारी रक्षाका प्रबन्ध करें ।

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने तेजोमयी मूर्तिको सौम्य बना लिया और उनके सामने शीघ्र ही साधारण प्रकाश फैलाने लगे । (उस अवसरपर देवताओंने कहा—) 'भगवन् ! इस सम्पूर्ण देवगणमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी थी । अब आपकी कृपासे सभी शान्तिका अनुभव कर

बनकर एकमात्र उसीके पास पुञ्जीभूत हो गयी है। राजेन्द्र ! उस कुमारकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अनेक प्रकारकी कथाएँ हैं। बहुत-से मन्वन्तरों तथा कल्पोंमें देवताओंके सेनापति होनेके विविध प्रसङ्ग हैं। भगवान् शंकरके शरीरमें अहंकाररूपसे जिन देवताओंकी प्रसिद्धि थी, वे सभी देवता प्रयोजनवश देवसेनापति बनकर शोभा पाने लगे। उस कुमारके उत्पन्न हो जानेपर स्वयं ब्रह्माजी देवताओंके साथ आये और उन देवाधिदेव भगवान् शंकरकी पूजा की। समस्त देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और भगवान् शंकरने उस सेनापति होनेवाले बालकको पाल-पोसकर बड़ा किया। तब उस बालकने देवताओंसे कहा—'आप लोग मुझे दो सहायक तथा कुछ खिलौने दें।' उस समय भगवान् रुद्रने उस बालककी बात सुनकर यह वचन कहा—'पुत्र ! तुम्हें खेलनेके लिये कुक्कुट तथा सेना-सहयोगके लिये शाख एवं विशाख नामवाले दो अनुचर देता हूँ। कुमार ! तुम भूत, ग्रह एवं विनायकोंके नेता बनो और देवताओंकी सेनाके सेनापति हो जाओ।' राजन् ! भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो अभिलषित [illegible] उच्चारण करते हुए सेनाध्यक्ष भगवान् स्कन्दकी स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—प्रभो ! आप भगवान् शंकरके पुत्र हैं। आप हमारी सेनाकी अध्यक्षता स्वीकार करनेकी कृपा करें। आप षण्मुख, स्कन्द, विशाख, कुक्कुटध्वज, [illegible], शत्रुओंको [illegible] करनेवाले, कुमार, [illegible], शत्रुओंको [illegible] करनेवाले, [illegible] ([illegible] जो आपमें स्थित है, [illegible]-करनेवाले), [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], अग्निनन्दन [illegible] भगवान् शंकरकी संतान हैं। [illegible] ! आपको हमारा नमस्कार है।

राजन् ! देवताओंके 'इस प्रकार प्रार्थना क… रुद्रकुमार भगवान् स्कन्दकी आकृति तेजीसे बढ़ने ल… फिर तो वे बारह आदित्योंके समान तेजस्वी एवं प्रका… गये और उनके तेजसे तीनों लोकोंमें ताप छा ग…

राजा प्रजापालने पूछा—गुरो ! आपने स्क… कृत्तिका-पुत्र कैसे कहा है ? अथवा वे कुमार, … और षण्मातृनन्दन क्यों कहे जाते हैं ? इसका … मुझे बतानेकी कृपा करें।

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! मन्वन्त… प्रारम्भमें कार्तिकेयकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई थी, … प्रसङ्ग मैंने बताया है। देवतालोग तो भूत और भविष्य… बातें भी जानते हैं। अतएव उनके द्वारा इन गुणवाले… नामोंका उच्चारण हुआ है। अग्निके पुत्र होनेसे इनका… नाम 'पावकि' हुआ है। यद्यपि इनको माता … हैं, किंतु जन्ममें कृत्तिकादि छः माताओंने … दुग्ध-पान कराकर पाला था, अतः वे कार्तिके… कहलाये। महाराज ! तुम्हारे प्रश्नका इस प्रका… समाधान हो गया। आत्मविद्यारूपी अमृतका … विषय अत्यन्त गुप्त है। भगवान् शंकरके अहंकार… यह मूर्तरूप है। सम्पूर्ण पापोंके प्रशमन करनेके… स्वयं भगवान् शंकर ही स्कन्दरूपमें प्रकट हुए थे।

पितामह ब्रह्माजीने इनके अभिषेकके सम… इन्हें षष्ठी तिथि प्रदान की थी। अतः जो… व्यक्ति इस तिथिमें संयमपूर्वक केवल फलके आहार… रहकर इनकी पूजा करता है, उसे यदि पुत्र न हो तो… पुत्रकी प्राप्ति, अथवा निर्धन हो तो धनकी प्राप्ति हो… जाती है। इतना ही नहीं, मनुष्य मनसे भी जिन-जिन… वस्तुओंकी इच्छा करेगा, वह उसे सुलभ हो जायगी। … जो पुरुष [illegible] उपर्युक्त गुणनामपूर्ण स्तोत्रका… पाठ करता है, उसके सारे क्लेश … होते हैं और वे [illegible]

सप्तमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें आदित्योंकी उत्पत्तिकी कथा

राजा प्रजापालने पूछा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दिव्य ज्योतिः-स्वरूप प्रभुका शरीर-धारण बड़े आश्चर्यकी बात है । कृपया मुझ शरणागतकी इस शङ्काका आप निराकरण करें ।

मुनिवर महातपाजी कहने लगे—राजन् ! ज्ञानात्मा, सनातन ज्ञानशक्तिको जब किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा हुई तो उसके शरीरसे एक प्रकाशमान तेज निकल पड़ा, जो सूर्य कहलाया । यह उन महान् पुरुषका ही एक दूसरा रूप है । फिर उस मूर्तिमें सम्पूर्ण तेज स्थान पा गये । तब उससे तीनों लोकोंमें प्रकाश फैल गया । उस तेजमें अखिल ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता और सिद्ध अधिष्ठित हैं । इसीलिये उन प्रभुको स्वयम्भू कहा जाता है । उन्हींसे सूर्यका प्राकट्य हुआ । वे ही स्वयं सूर्यरूपसे लक्षित हैं । उस विग्रहमें तुरंत तेजोंका समावेश हो गया । अतः वे परम तेजस्वी शरीरवाले बन गये । वेदवादी मुनिगण इसी तेजको सूर्य आदि नामोंसे व्यवहृत करते हैं । जब वे आकाशमें ऊपर जाकर सभी लोकोंको प्रकाशित करने लगे, तब उनका गुणानुरूप नाम 'भास्कर' पड़ गया । इसी प्रकार चारों ओर प्रकाश फैलानेके कारण इनकी 'प्रभाकर' नामसे प्रसिद्धि हुई । दिवा और दिवस—ये दोनों शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं । इनके द्वारा दिवसका निर्माण हुआ, अतः ये दिवाकर कहलाये । सम्पूर्ण संसारके आदिमें ये विराजते थे, अतः इन्हें आदित्य कहते हैं । फिर इन्हीं भगवान् सूर्यके तेजसे भिन्न-भिन्न बारह आदित्य उत्पन्न हुए । वैसे प्रधानतया एक ही रूपमें ये जगत्में घूमते रहते हैं । जब इनके तेजमें स्थान पाये हुए देवताओंने देखा कि ये ही परमेश्वर जगत्में व्याप्त होकर तेज फैला रहे हैं, तब वे श्रीविग्रहसे बाहर निकल आये और भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवता बोले—भगवन् ! आपसे जगत्‌की सृष्टि होती है । आपके द्वारा ही इस विश्वका पालन और संहार होता है । आप आकाशमें ऊँचे जाकर निरन्तर विश्वमें चक्कर लगाते हैं । ऐसे प्रभुकी हम सदा उपासना करते हैं । जगत्‌की रचना हो जानेपर प्रतापी सूर्यका रूप धारणकर आप सर्वत्र तेज भर देते हैं । जिसे सात घोड़े खींचते हैं, जिसकी कालरूपी धुरी है और जो बड़े वेगसे चलता है, ऐसा रथ आपकी सवारी है । प्रभो ! आप प्रभाकर और रवि कहलाते हैं । चर और अचर—सम्पूर्ण संसारकी आत्मा आप ही हैं । सिद्ध पुरुष कहते हैं कि ब्रह्मा, वरुण, यम, भूत और भविष्य—सब कुछ आप ही हैं । भगवन् ! वेद आपकी मूर्ति हैं । अन्धकार दूर करना आपका स्वभाव है । आप वेदान्त आदि शास्त्रोंकी सहायतासे ही जाने जाते हैं । यज्ञोंमें विष्णुके रूपसे आपके ही निमित्त हवन होता है । हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं । आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा करें । देवेश्वर ! अब हमलोगोंके द्वारा भक्तिपूर्वक की हुई आपकी स्तुति सम्पन्न हो गयी । प्रभो ! विशेष आग्रह है कि आप हमारी रक्षाका प्रबन्ध करें ।

इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने तेजोमयी मूर्तिको सौम्य बना लिया और उनके सामने शीघ्र ही साधारण प्रकाश फैलाने लगे । (उस अवसरपर देवताओंने कहा—) 'भगवन् ! इस सम्पूर्ण देवगणमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी थी । अब आपकी कृपासे सभी शान्तिका अनुभव कर

रहे हैं। (महातपा मुनि कहते हैं—राजन्!) सप्तमी तिथिके दिन भगवान् सूर्यका प्राकट्य हुआ था, अतः इस तिथिको उपवास करके जो पुरुष भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा करता है, भास्करस्वरूपी प्रभु उसकी इच्छाके अनुसार फल प्रदान कर देते हैं। राजन्! सूर्यसे सम्बन्धित यह कथा बहुत पुरानी है, ... सुन चुके। अब आदि मातृकाओंकी (उत्पत्तिविषयक) एक अन्य आख्यान कहता सुनो।'

(क्रम

अष्टमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें मातृकाओंकी उत्पत्तिकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! पूर्व समयकी बात है, भूमण्डलपर एक महान् पराक्रमी राक्षस था, जिसकी अन्धक नामसे ख्याति थी। ब्रह्माजीके द्वारा वर प्राप्तकर उसका अहंकार चरम सीमापर पहुँच गया था। सभी देवता उसके अधीन हो गये थे। उसकी सेवा असह्य होनेके कारण देवताओंने सुमेरु पर्वत छोड़ दिया और उस दानवके भयसे दुःखी होकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उस समय वहाँ आये हुए प्रधान देवताओंसे पितामहने कहा—'सुरगणो! कहो, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है? तुम क्या चाहते हो?'

देवताओंने कहा—जगत्पते! आप चतुर्मुख एवं जगत्-पितामह हैं। भगवन्! आपको हमारा नमस्कार है। अन्धकासुरके द्वारा हम सभी देवता महान् दुःखी हैं। आप हम सबकी रक्षा करें।

ब्रह्माजी बोले—श्रेष्ठ देवताओ! अन्धकासुरसे रक्षा करना मेरे वशकी बात नहीं है। हाँ, महाभाग शंकरजी अवश्य सर्वसमर्थ हैं। हम सभी उनकी ही शरणमें चलें; क्योंकि मैंने ही उसे वर दिया था कि तुम्हें कोई भी मार न सकेगा और तुम्हारा शरीर भी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करेगा। फिर भी उस परम पराक्रमी असुरको शत्रुओंके संहार करनेवाले भगवान् ... अतः हम

राजन्! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ भगवान् शंकरके पास गये। उन्हें देखकर भगवान् शंकरने प्रत्युत्थानादिद्वारा सत्कार कर उनसे कहा—'आप सभी देवता किस कारणसे यहाँ पधारे हैं। आप शीघ्र आज्ञा दें, जिससे मैं आपलोगोंका कार्य तुरंत सम्पन्न कर दूँ।'

इसपर देवताओंने कहा—'भगवन्! दुर्धर्ष, महाबली अन्धकासुरसे आप हमारी रक्षा करें।' अभी वे ऐसा कह ही रहे थे कि विशाल सेना लिये अन्धकासुर वहीं आ धमका। उस समय वह दानव पूरे दलबलके साथ आया था। उसकी इच्छा थी कि वह युद्धमें चतुरङ्गिणी सेनाके सहारे शंकरजीको मारकर उनकी पत्नी पार्वतीका अपहरण कर ले। उसे सहसा इस प्रकार प्रहारके लिये उद्यत देखकर रुद्र भी युद्धके लिये उद्यत हो गये। सभी देवता भी उनका साथ देनेको तैयार हुए। फिर उन प्रभुने वासुकि, तक्षक और धनंजयको स्मरण किया और उन्हें क्रमसे अपना कङ्कण और करधनी बनाया। इतनेमें नील नामसे प्रसिद्ध एक प्रधान दैत्य हाथीका रूप धारणकर भगवान् शंकरके पास आया। नन्दी उसकी माया जान गये और वीरभद्रको बतलाया। बस! क्या था, वीरभद्रने भी सिंहका रूप धारणकर उसे तत्काल मार डाला। उस हाथीका चर्म अञ्जनके समान काला था। वीरभद्रने उसकी चमड़ी उधेड़कर उसे भगवान् शंकरको समर्पित कर

दिया । तब रुद्रने उसे वस्त्रके स्थानपर पहन लिया । तभीसे वे गजाजिनधारी हुए । इस प्रकार गजचर्म पहनकर उन्होंने श्वेत सर्पका भूषण भी धारण कर लिया । फिर हाथमें त्रिशूल लेकर अपने गणोंके साथ उन्होंने अन्धकासुरपर धावा बोल दिया । अब देवता एवं दानवोंमें भीषण संग्राम प्रारम्भ हो गया । उस अवसरपर इन्द्र आदि सभी लोकपाल, सेनापति स्कन्द एवं अन्य सभी देवता भी समराङ्गणमें उतर आये । यह स्थिति देखकर नारदजी तुरंत भगवान् नारायणके पास गये और बोले—'भगवन् ! कैलासपर देवताओंका दानवोंके साथ घोर युद्ध हो रहा है ।'

यह सुनना था कि भगवान् जनार्दन भी हाथमें चक्र लेकर गरुड़पर बैठे और युद्ध-स्थलमें पहुँचकर दानवोंके साथ युद्ध करने लगे । उनके वहाँ आ जानेपर देवताओंका उत्साह कुछ बढ़ा अवश्य, किंतु उस समरमें उनका मन एक प्रकारसे म्लान हो चुका था, अतः वे सभी भाग चले । जब देवताओंकी शक्ति समाप्त हो गयी तो स्वयं भगवान् रुद्र अन्धकासुरके सामने गये । उसके साथ उनका भीमाश्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया । उस समय उन प्रभुने उस दानवपर त्रिशूलसे भीषण प्रहार किया । फिर तो घायल हो जानेपर अन्धकासुरके शरीरसे जो रक्त जमीनपर गिरा, उससे उसी क्षण दूसरे असंख्य अन्धकासुर उत्पन्न हो गये । युद्धभूमिमें ऐसा अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण दृश्य देखकर परम प्रभु भगवान् रुद्रने प्रधान अन्धकासुरको त्रिशूलके अग्रभागसे बाँध दिया और उसे लिये हुए नाचने लगे । शेष मायामय अन्धकासुरोंको भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे काट डाला । शूल-प्रोत प्रधान अन्धकासुरके शरीरसे रक्तकी धाराएँ अब भी निरन्तर प्रवाहित हो रहीं थीं; अतः रुद्रके मनमें भीषण क्रोधाग्नि भड़क उठी, जिससे उनके मुखसे अग्निकी ज्वाला बाहर निकलने लगी । उस ज्वालाने एक देवीका रूप धारण कर लिया, जिसे लोग योगेश्वरी कहने लगे ।

इसी प्रकार भगवान् विष्णुने भी अपने रूपके सदृश (ज्वालाद्वारा) अन्य शक्तिका निर्माण किया । ऐसे ही ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र, यम, वराह, महादेव, विष्णु और नारायण—इनके प्रभावसे आठ मातृकाएँ प्रकट हो गयीं । जब श्रीहरिने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहका रूप धारण किया था, उस समय जिन्हें अपनाया वे वाराही हैं । इस प्रकार ब्राह्मी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, यमी, योगेश्वरी, माहेश्वरी और माहेन्द्री—ये आठ मातृकाएँ हैं । क्षेत्रज्ञ श्रीहरिने, जिनका जिस-कारणसे निर्माण हुआ था, उसपर विचार करके उनका वही नाम रख दिया । ऐसे ही काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, पैशुन्य और असूया—इनकी आठ शक्तियाँ मातृका नामसे प्रसिद्ध हुईं । काम 'योगेश्वरी', क्रोध 'माहेश्वरी', लोभ 'वैष्णवी', मद 'ब्रह्माणी', मोह 'कौमारी', मात्सर्य 'इन्द्राणी', पैशुन्य 'यमदण्डधरा' और असूया 'वाराही' नामसे कही गयी हैं—ऐसा जानना चाहिये । ये कामादिगण भी भगवान् नारायणके शरीर कहे जाते हैं । उन प्रभुने जैसी मूर्ति धारण की, उनका वैसा नाम तुम्हें बता दिया ।

तदनन्तर इन मातृ-देवियोंके प्रयाससे अन्धकासुरकी रक्तधाराका प्रवाह सूख गया । उसकी आसुरी माया समाप्त हो गयी । फिर अन्धकासुर भी सिद्ध हो गया । राजन् ! मैंने तुमसे यह आत्मविद्यामृत-तत्त्वका वर्णन किया है । मातृकाओंकी उत्पत्तिका यह कल्याणकारी प्रसङ्ग जो सदा सुनता है, ये माताएँ उसकी प्रतिदिन सभी प्रकार रक्षा करती हैं । राजेन्द्र ! जो मुखसे इन मातृकाओंके जन्मचरित्रका पाठ करता है, वह इस लोकमें सर्वथा धन्यवादका पात्र माना जाता

है । अन्तमें उसको भगवान् शिवके लोककी प्राप्ति सुलभ हो जाती है । महाभाग ब्रह्माने उन मातृकाओंके लिये उत्तम अष्टमी तिथि प्रदान की है । मनुष्यको चाहिये कि इस तिथिमें बिल्वके आहारपर रहकर भक्ति-पूर्वक सदा इनकी पूजा करे । इससे परम संतुष्ट होकर ये मातृकाएँ उसको कल्याण एवं आरोग्य प्रदान करती हैं ।

(अध्याय २१)

नवमी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें दुर्गादेवीकी उत्पत्ति-कथा

राजा प्रजापालने पूछा—मुने ! सृष्टिके आदिमें सूक्ष्म रूपमें स्थित निर्गुणा एवं अव्यक्त-ब्रह्मस्वरूपा कल्याणी भगवती महामाया, दुर्गा भगवती सगुण स्वरूप धारणकर पृथक् रूपमें कैसे प्रकट हुई ?

महातपाजी कहते हैं—राजन् ! प्राचीन समयकी बात है । वरुणके अंशसे उत्पन्न सिन्धुद्वीप नामका एक प्रबल प्रतापी नरेश था । वह इन्द्रको मारनेवाले पुत्रकी कामनासे जंगलमें जाकर तप करने लगा । सुव्रत ! इस प्रकार एक ही आसनसे भीषण तप करते हुए उसने अपने शरीरको सुखा दिया ।

राजा प्रजापालने पूछा—द्विजवर ! उसका इन्द्रने कौन-सा अपकार किया था, जिससे वह उनके मारनेवाले पुत्रकी इच्छासे तपमें लग गया ?

महातपाजी बोले—राजन् ! सिन्धुद्वीप पिछले जन्ममें विश्वकर्माका पुत्र नमुचि नामक दैत्य था, जो वीरोंमें प्रधान था । वह सम्पूर्ण शस्त्रोंद्वारा अवध्य था । अतः इन्द्रद्वारा जलके फेनसे उसकी मृत्यु हुई थी । (युद्धके अन्तमें इन्द्रने उसे जलके फेनसे मारा था) । वही पुनः ब्रह्माजीके वंशमें सिन्धुद्वीपके नामसे उत्पन्न हुआ । इन्द्रके उसी वैरको स्मरणकर वह अत्यन्त कठिन तपस्या करनेके लिये बैठ गया था ।

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर पवित्र नदी वेत्रवती- (मध्यप्रदेशकी बेतवा नदी) ने अत्यन्त सुन्दर मानुषी स्त्रीका रूप [illegible] अलंकारोंसे सज-धजकर सिंधुद्वीप जहाँ वेदवर महान् तप कर रहा था, वहाँ पहुँची । उस सुन्दरी स्त्रीको देखकर राजाका मन क्षुब्ध हो उठा, अतः उसने पूछा—'सुन्दर कटिभागवाली भामिनि ! तुम कौन हो ! सब सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ।

नदीने उत्तर दिया—मेरा नाम वेत्रवती है । मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा हो गयी है । अतः मैं यहाँ आ गयी हूँ । महाराज ! इस बातपर तथा मेरे भावोंको विचारकर आप मुझ दासीको स्वीकार करनेकी कृपा करें ।

राजन् ! वेत्रवतीके इस प्रकार कहनेपर राजा सिन्धुद्वीपने भी उसे स्वीकार कर लिया । समय पाकर शीघ्र ही उससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई । उस बालकमें बारह सूर्यों-जैसा तेज था । वेत्रवतीके उदरसे जन्म होनेके कारण वह वेत्रासुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ । उसमें पर्याप्त बल था । उसके तेजकी सीमा न थी । धीरे-धीरे वह प्राग्ज्योतिषपुर (कामरूप-आसाम)का नरेश बन गया और युवा होनेपर तो उसके बल-विक्रम बहुत बढ़ गये । उसने अब महायोगशक्तिद्वारा सात द्वीपोंवाली इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया । बादमें कालकेयोंको जीतनेके लिये उसने मेरु-पर्वतपर चढ़ाई की । जब वह असुर इन्द्रके पास गया तो वे भयसे वहाँसे भाग चले । अग्निने तो उसे देखते ही अपना स्थान छोड़ दिया ।

ऐसे ही यम, निर्ऋति और वरुण—ये सब-के-सब उसके आनेपर अपने स्थानसे हटते गये। अन्तमें इन्द्रप्रभृतिको साथ लेकर वरुण देवता वायुदेवताके संनिकट गये। फिर पवनदेव भी इन्द्र आदि समस्त देवताओंके सहित धनाध्यक्ष कुबेरके पास पहुँचे। शंकरजी कुबेरके मित्र हैं; अतः धनाध्यक्ष कुबेर देवताओंको साथ लेकर शंकरजीके पास पधारे। राजन्! इतनेमें बलाभिमानी वेत्रासुर भी गदा लिये हुए कैलासपर जा पहुँचा। इधर भगवान् शिव उसे अवध्य समझकर देवताओंके साथ ब्रह्म-लोक पहुँचे थे। वहाँ पुण्यकर्म करनेवाले बहुत-से देवता और सिद्धोंका समाज उनकी स्तुति कर रहा था। उस समय जगत्‌की रचना करनेमें कुशल ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट हुई गङ्गाके पावन जलमें प्रविष्ट होकर क्षेत्रज्ञ परमात्माकी माया गायत्रीका नियमपूर्वक जप कर रहे थे। अब देवता बड़े जोरसे चिल्लाकर कहने लगे—'प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले भगवन्! हमें बचाइये। वेत्रासुरसे हम समस्त देवता और ऋषि अत्यन्त भयभीत हो गये हैं। आप हमारी रक्षा करें! रक्षा करें!'

देवताओंके इस प्रकार पुकार मचानेपर ब्रह्माजीकी दृष्टि वहाँ आये हुए उन देवताओंकी ओर गयी। वे सोचने लगे—'अहो! भगवान् नारायणकी माया बड़ी विचित्र है। इस विश्वका कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है। असुरों और राक्षसोंसे भला मेरा क्या सम्बन्ध?' वे इस प्रकार अभी चिन्तन कर ही रहे थे कि तबतक वहाँ एक अयोनिजा कन्या प्रकट हो गयी। उसका शरीर श्वेतवस्त्रोंसे सुशोभित हो रहा था। उसके गलेमें माला तथा मस्तकपर किरीट उद्भासित हो रहा था। उसकी कान्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी तथा उसकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें क्रमसे शङ्ख, चक्र, गदा, पाश (शक्ति) तलवार, घण्टा और धनुष—ये दिव्य आयुध सुशोभित हो रहे थे। वह देवी तूणीर आदि अन्य सभी युद्धोप-करणोंसे भी सुसज्जित होकर जलसे बाहर निकल पड़ी। वह महायोगेश्वरी परब्रह्म परमात्माकी शक्ति सिंहपर समासीन थी। अब सहसा वह अनेक रूप धारणकर सभी असुरोंके साथ युद्ध करने लगी। उस देवीमें अपार शक्ति थी। उसके पास बहुत-से दिव्य अस्त्र थे। इस प्रकार देवताओंके वर्षोंसे यह युद्ध एक हजार वर्षोंतक चलता रहा और अन्तमें इस संग्राममें देवी-द्वारा भयंकर वेत्रासुर मार डाला गया। अब देवताओं-की सेनामें बड़े जोरसे आनन्दकी ध्वनि होने लगी। उस दैत्यकी मृत्यु हो जानेपर सभी देवता युद्धभूमिमें ही—'भगवती! आपकी जय हो! जय हो!' कहकर स्तुति-प्रणाम करने लगे। साथ ही भगवान् शंकरने उनकी इस प्रकार स्तुति की—

भगवान् शंकर बोले—महामाये! महाप्रभे! गायत्री देवि! आपकी जय हो! महाभागे! आपके सौभाग्य, बल, आनन्द—सभी असीम हैं। दिव्य गन्ध एवं अनुलेपन आपके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परमानन्दमयी देवि! दिव्य मालाएँ एवं गन्ध आपके श्रीविग्रहकी छवि बढ़ाती हैं। महेश्वरि! आप वेदोंकी माता हैं। आप ही वर्णोंकी मातृका हैं। आप तीनों लोकोंमें व्याप्त हैं। तीनों अग्नियोंमें जो शक्ति है, वह आपका ही तेज है। त्रिशूल धारण करनेवाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! आप त्रिनेत्रा, भीमवक्त्रा और भयानका आदि अर्थानुरूप नामोंसे व्यवहृत होती हैं। आप ही गायत्री और सरस्वती हैं। आपके लिये हमारा नमस्कार है। अम्बिके! आपकी आँखें कमलके समान हैं। आप महामाया हैं। आपसे अमृतकी वृष्टि होती रहती है। सर्वगे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी अधिष्ठात्री हैं। स्वाहा और स्वधा आपकी ही प्रतिकृतियाँ हैं; अतः आपको मेरा नमस्कार है। महान् दैत्योंका दलन करनेवाली देवि! आप सभी प्रकारसे परिपूर्ण हैं। आपके मुखकी आभा पूर्ण चन्द्रके समान है। आपके शरीरसे महान् तेज

[illegible] रहा है। आपसे ही यह जगत् जिस प्रकार होता है। आप सर्वविद्या और महाविद्या हैं। [illegible] देवि! [illegible] आपसे ही उत्पन्न होता है। आप [illegible] लघु एवं बृहत् शरीर को धारण कर लेती हैं। [illegible]! आप कीर्ति, सरस्वती, पृथ्वी एवं [illegible] हैं। देवि! आप धी, श्री तथा [illegible] हैं। परमेश्वरि! [illegible] विराजमान होकर आप [illegible] हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।

राजन्! इस प्रकार परम शक्तिशाली भगवान् शंकरने उन देवीकी स्तुति की और देवतालोग भी बड़े उच्च स्वरसे उन परमेश्वरीकी जयध्वनि करने लगे। अबतक ब्रह्माजी जलमें जप ही कर रहे थे। अब जब (जयध्वनि उन्हें श्रवणगोचर हुई तो) वे जलसे बाहर निकले और देखा, परम कुशल देवी सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करके सामने विराजमान हैं। अब उन्होंने यह तो भलीभाँति जान लिया कि देवताओंका कार्य सिद्ध हो गया, परंतु भविष्यके कार्यको परिलक्ष्यकर उन्होंने ये वचन कहे—

ब्रह्माजी बोले—देवताओ! अनुपम अङ्गोंसे शोभा पानेवाली ये देवी अब हिमालय पर्वतपर पधारें और आपलोग भी अब तुरंत वहाँ चलकर आनन्दसे रहें। नवमी तिथिके दिन इन देवीकी सदा स्थिरचित्त एवं ध्यान-[illegible] करने वाले हैं। देव कार्योंके सम्पूर्ण [illegible] होंगे, [illegible] सिद्ध होंगी। इस (नवमी) तिथिको जो पुरुष आपकी [illegible] करेंगे, उनके सभी [illegible] सिद्ध हो जायँगे।

राजन्! फिर ब्रह्माने भगवान् शंकरसे कहा— 'देव! [illegible] जो पुरुष [illegible] करेगा, उसे आप [illegible] प्रदान करें और सम्पूर्ण संकटोंसे उसका उद्धार करें— यह प्रार्थना है।'

इस प्रकार भगवान् शंकरसे कहकर उन्होंने पुनः देवीसे कहा— 'देवि! आपके द्वारा यही कार्य सम्पन्न हुआ। किंतु अभी हमारा एक दूसरा बहुत बड़ा कार्य शेष है। वह यह कि आगे महिषासुर नामका एक राक्षस उत्पन्न होगा, जिसका विनाश भी आपके ही द्वारा सम्भव है।'

राजन्! इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता देवीको हिमालय पर्वतपर प्रतिष्ठितकर यथास्थान प्रस्थित हो गये। हिमवान् पर्वतपर आनन्दमें विराजनेके कारण उनका नाम 'नन्दादेवी' हुआ। जो व्यक्ति भगवतीके इस प्रकट होनेकी कथाको स्वयं पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कैवल्य-मोक्षका अधिकारी होगा।

(अध्याय २८)

दशमी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें दिशाओंकी उत्पत्तिकी कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! अब जिस प्रकार भगवान् श्रीहरिके कानोंसे दिशाएँ उत्पन्न हुईं, वह कथा मैं कहता हूँ, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो। आदि-सर्गके आरम्भमें ब्रह्माजीको सृष्टि करते हुए यह चिन्ता हुई कि 'मेरी उत्पन्न प्रजाका आधार क्या होगा? अतः उन्होंने संकल्प किया कि अब आभ्यन्तर-स्थान उत्पन्न हों।' उनके इस [illegible] कानोंसे दस तेजस्वी कन्याओंका प्रादुर्भाव हुआ। राजन्! उनमें वे पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा, ऊर्ध्वा और अधरा—ये छः कन्याएँ तो मुख्य मानी गयीं। साथ ही उन कन्याओंके मध्यमें और चार कन्याएँ, जो परम सुन्दर रूपवाली गम्भीर भावोंवाली तथा महाभाग्यशालिनी थीं, उत्पन्न हुईं। उस समय उन [illegible] व्रताके साथ

शुद्धस्वरूप ब्रह्माजीसे प्रार्थना की—'देवेश्वर ! आप प्रजाके पालक हैं । हमें स्थान देनेकी कृपा कीजिये । स्थान ऐसा चाहिये, जहाँ हम सभी अपने पतियोंके साथ सुखपूर्वक निवास कर सकें । अव्यक्तजन्मा प्रभो ! हमें आप महान् भाग्यशाली पति प्रदान करनेकी कृपा करें ।'

ब्रह्माजी बोले—कमनीय कटिभागसे शोभा पानेवाली दिशाओ ! यह ब्रह्माण्ड सौ करोड़का विस्तारवाला है । इसके अन्तर्गत तुम संतुष्ट होकर यथेष्ट स्थानोंपर निवास करो । मैं शीघ्र ही तुम्हारे अनुरूप सुन्दर एवं नवयुवक पतियोंका भी निर्माण करके देता हूँ । तदनन्तर इच्छानुसार तुम सभी अपने-अपने स्थानपर चली जाओ ।

राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार कहा तो वे सभी कन्याएँ इच्छित स्थानोंको चल पड़ीं । फिर उन प्रभुने उसी क्षण महान् पराक्रमी लोकपालोंकी रचना कर एक बार उन कन्याओंको पुनः अपने पास वापस बुलाया । उनके आ जानेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने उन कन्याओंका उन लोकपालोंके साथ विवाह कर दिया । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन् ! उस अवसरपर उन परम प्रभुने पूर्वा नामवाली कन्याका विवाह इन्द्रके साथ, आग्नेयीदिक्का अग्निदेवके साथ, दक्षिणाका यमके साथ, नैर्ऋतीका निर्ऋतिके साथ, पश्चिमाका वरुणके साथ, वायवीदिक्का वायुके साथ, उत्तराका कुबेरके साथ तथा ईशानीदिक्का भगवान् शंकरके साथ विवाहका प्रबन्ध कर दिया । ऊर्ध्व दिशाके अधिष्ठाता वे स्वयं बने और अधोलोककी अध्यक्षता उन्होंने शेषनागको दी । इस प्रकार उन दिशाओंको पति प्रदान करनेके बाद ब्रह्माजीने उनके लिये दशमी तिथि निर्धारित कर दी । वही तिथि उन्हें अत्यन्त प्रिय बन गयी । राजन् ! जो उत्तम व्रतका पालक पुरुष दशमीतिथिके दिन केवल दही खाकर व्रत करता है, उसके पापका नाश करनेके लिये वे देवियाँ सदा तत्पर रहती हैं । जो मनुष्य मनको वशमें करके दिशाओंके जन्मादिसे सम्बन्ध रखनेवाले इस प्रसङ्गको सुनता है, वह इस लोकमें प्रतिष्ठा पाता और अन्तमें ब्रह्माजीका लोक प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं ।

(अध्याय २९)

एकादशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें कुबेरकी उत्पत्ति-कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन् ! अब एक दूसरी कथा कहता हूँ । इसमें धनके स्वामी कुबेरकी उत्पत्तिका वर्णन है । यह प्रसङ्ग पापका नाश करनेवाला है । पहले कुबेरजी वायुके रूपमें अमूर्त ही थे । पश्चात् वे मूर्तिमान् बनकर उपस्थित हुए । परब्रह्म परमात्माका जो शरीर है, उसीके अन्तर्गत यह वायु विराजता था । आवश्यकताके अनुसार वह क्षेत्रदेवता बनकर बाहर निकला । उसकी उत्पत्तिकी कथा मैं तुम्हें संक्षेपमें बता चुका हूँ । महाभाग ! तुम बड़े पवित्रात्मा पुरुष हो, अतः वही प्रसङ्ग पुनः कुछ विस्तारसे कहता हूँ, सुनो ।

एक समयकी बात है—ब्रह्माजीके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई । तब उनके मुखसे वायु निकला । वह बड़े वेगसे स्थूल बनकर बह चला और उससे धूलकी प्रचण्ड वर्षा होने लगी । फिर ब्रह्माजीने उसे रोका और साथ ही कहा—'वायो ! तुम शरीर धारण करो और शान्त हो जाओ ।' उनके ऐसा कहनेपर वायु मूर्तिमान् बनकर कुबेरके रूपमें उनके सामने उपस्थित हुए । तब ब्रह्माजीने कहा—'सम्पूर्ण देवताओंके पास जो धन है, यह केवल फलमात्र है । उन सबकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर है । इस रक्षा-कार्यके कारण जगत्में 'धनपति'

नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी।' फिर अत्यन्त संतुष्ट होकर ब्रह्माजीने उन्हें एकादशीका अधिष्ठाता बना दिया। राजन्! उस तिथिके अवसरपर जो व्यक्ति बिना अग्निमें पकाये स्वयं पके हुए फल आदिके आहारपर रहकर नियमके साथ व्रत रहता है, उसपर कुबेर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं।

धनाध्यक्ष कुबेरके मूर्तिमान् बननेकी यह कथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इसका श्रवण अथवा पठन करता है, उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। अन्तमें वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ३०)

द्वादशी तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उसके अधिष्ठाता श्रीभगवान् विष्णुकी उत्पत्ति-कथा

मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्! यह जो मनुका नाम और मनुत्व (मन्त्र) पढ़ा जाता है तथा उसमें जो मन्त्र-शक्ति है (वह चाहे वैदिक या तान्त्रिक कुछ भी हो) प्रयोजनवश स्वरूपतः मूर्तिमान् विष्णु ही है। राजन्! भगवान् नारायण सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष हैं। उन परम प्रभुके मनमें सृष्टि-विषयक संकल्प उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा—'मैंने जगत्‌की रचना तो कर दी, फिर पालन भी तो मुझे ही करना है। यह सारा कर्म-प्रपञ्च है। सम्यक्‌रूपसे स्वरूप धारण किये बिना यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। अतः एक ऐसी सगुण मूर्तिका निर्माण करूँ, जिससे इस जगत्‌की रक्षा हो सके।'

राजन्! परब्रह्म परमात्माका संकल्प सत्य होकर रहता है। वे प्रभु इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, इतनेमें एक प्राक्तनी [illegible] सृष्टि उनके सामने प्रकट हो गयी। इसमें स्वयं पुराणपुरुष भगवान् नारायण ही प्रकट हो गये और उन्होंने [illegible] अपने वैष्णव शरीरमें प्रविष्ट होते देखा। फिर वह प्रभुके शरीरसे बाहर आया। उस अवसरपर उन्हें अपने प्राचीन वरदानकी बात याद आयी, जो भगवान्‌ने संतुष्ट होकर [illegible] दिया था। यह बहुत पुराना प्रसङ्ग है। भगवान् नारायणने वर देते हुए कहा था—'तुम्हें सभी वस्तुएँ विदित होंगी। तुम सबके कर्ता होओगे। सम्पूर्ण प्राणिवर्ग तुम्हें नमस्कार करेगा। तुम्हारे द्वारा तीनों लोकोंकी रक्षा होगी। अतः तुम 'विष्णु' नाम धारण करो। तुम सनातन पुरुष हो। देवताओं और ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे सदा रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। देव! तुम्हें सर्वज्ञता प्राप्त हो जाय—इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है।'

इस प्रकार वर देकर भगवान् नारायण अपने प्राकृत रूपमें स्थित हो गये। फिर अब विष्णुको भी पहलेकी बात ध्यानमें आ गयी। सोचा—'अरे! मैं तो बड़ा शक्तिशाली पुरुष हूँ।' तब उन महान् तपस्वी प्रभुने ऐश्वर्यके प्रभावसे योगनिद्राका स्मरण किया। वे देवी आ गयीं। स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका भार उनपर सौंप दिया। 'मैं उन परम प्रभु भगवान् नारायणका ही तो रूप हूँ'—ऐसा विचारकर वे फिर सो गये। सो जानेपर उनकी नाभिसे एक बड़ा-सा कमल निकला। सात द्वीपोंवाली पृथ्वी, समुद्र और वन—ये सब-के-सब उस कमलपर विराजमान थे। उस कमलके [illegible] विस्तार आकाशसे पातालतक फैला था। उसकी कर्णिकापर सुमेरु पर्वत सुशोभित हो रहा था। उसके बीचमें ब्रह्माजी थे। अपने ऐसे [illegible] [illegible] [illegible] परम पुरुष

रमात्माको बड़ा हर्ष हुआ। फिर उनके भीतर जो गनदेव थे, उन्होंने व्यवहारके लिये वायुका सृजन किया। साथ ही कहा—'तुम अज्ञानपर विजय करनेवाले ज्ञानस्वरूप इस शङ्खका रूप धारण करो।' र श्रीहरिसे कहा—'अज्ञानका नाश करनेके लिये तुम्हारे थमें यह तलवार सदा शोभा पाती रहे। अच्युत! यंकर काल-चक्रको काटनेके लिये यह चक्र धारण र लो। केशव! पापराशि नष्ट हो जाय, एतदर्थ यह दा धारण करना आवश्यक है। समस्त भूतोंको त्पन्न करनेवाली यह वैजयन्ती माला तुम्हारे कण्ठमें सदा सुशोभित होती रहे। चन्द्रमा और सूर्य—ये दोनों वत्स और कौस्तुभके स्थानपर शोभा पावें। पवन चलनेमें बसे पराक्रमी कहा गया है। वह तुम्हारे लिये गरुड न जाय। तीनों लोकोंमें विचरनेवाली देवी लक्ष्मी दा आपकी आश्रिता रहें। आपकी तिथि द्वादशी हो और आप अपने अभीष्टरूपसे विराजें। इस द्वादशी तिथिके दिन स्त्री अथवा पुरुष—जो कोई भी आपके प्रति श्रद्धा रखते हुए घृतके आहारपर रहे, वह स्वर्गमें स्थान पानेका अधिकारी हो जाय।'

(मुनिवर महातपा कहते हैं—राजन्!) वही परम पुरुष भगवान् नारायण 'विष्णु' इस नामसे विख्यात हुए। देवता और दानव—ये सब उन्हींकी मूर्तियाँ हैं। स्वयं वे ही अपने आप विभिन्न रूप धारण करते हैं। उनके द्वारा किसीका संहार होता है तो किसीकी रक्षा होती है। उन्हें 'वेदान्तपुरुष' कहा जाता है। वे ही प्रभु प्रत्येक युगमें सब जगह विचरते हैं। जो उन्हें मनुष्य मानता है, उसे बुद्धिहीन समझना चाहिये। पापोंका नाश करनेवाला यह प्रसङ्ग वैष्णव-सर्ग कहलाता है। जो इसका पठन करता है, वह स्वर्गलोकमें जाकर परम पूज्य बन जाता है।

(अध्याय ११)

त्रयोदशी तिथि एवं धर्मकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपाजी कहते हैं—राजन्! धर्म बड़े आदर- [illegible] हैं। नरेन्द्र! उनकी उत्पत्ति, महिमा और तिथिका कहता हूँ, सुनो। जिन्हें परब्रह्म परमात्मा कहते [illegible] जिन शुद्धस्वरूप प्रभुकी सत्ता सदा बनी रहती है, [illegible] ही थे। [illegible] में प्रजाओंकी रचना [illegible] प्रजाओंकी रक्षाका [illegible] थे कि इतनेमें [illegible] गया। उसके [illegible] र वह राजेन्द्र [illegible]

भगवान् नारायणकी आज्ञासे वह पुरुष वैसा ही हो गया। सत्ययुगमें उसके सत्य, शौच, तप और दान—ये चार पैर थे, त्रेतामें तीन तथा द्वापरमें दो। कलियुगमें वह दानरूपी एक पैरसे ही प्रजाओंका पालन करने लगा। ब्राह्मणोंके लिये उसने अध्ययन-अध्यापन एवं यजन-याजनादि छः रूप बनाये। क्षत्रियोंके लिये दान, यजन एवं अध्ययन—इन तीन रूपोंसे, वैश्योंके लिये दो रूपोंसे तथा शूद्रोंके लिये केवल एक सेवारूपसे ही सम्पन्न होकर वह सर्वत्र विराजने लगा। वह शक्तिशाली पुरुष सम्पूर्ण द्वीपों और तलातलोंमें व्याप्त हो गया। [illegible] द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति—ये चार पैर कहे गये हैं। वेदमें कहा गया है— [illegible]पद और क्रम—ये तीन उसके सींग हैं। [illegible]र अन्तमें स्थान पाये हुए दो सिरोंसे वह

वृषभरूपी प्रभो ! तुम्हें नमस्कार है ।* देव ! तुम्हारी अनुपस्थितिमें हम विपथगामी एवं मूर्ख बन गये हैं । तुम हमारे परम आश्रय हो । अतः हमें सन्मार्ग बतानेकी कृपा करो ।

जब इस प्रकार देवताओंने स्तुति की तो प्रजापालक धर्म, जो वृषभके रूपसे पधारे थे, संतुष्ट हो गये । उनका मन प्रसन्न हो गया । फिर तो उनके शान्तस्वरूप नेत्रने ही उन्हें सन्मार्ग बता दिया । उनकी केवल दृष्टि पड़नेसे ही वे देवता धार्मिक नेत्रसे देखने लगे । एक क्षणमें ही उनका अज्ञान नष्ट हो गया । वे सम्यक् प्रकारसे सद्धर्म-सम्पन्न हो गये । असुरोंकी स्थिति भी वैसी ही हो गयी । तब ब्रह्माजीने धर्मसे कहा—'धर्म ! आजसे तुम्हारे लिये त्रयोदशी तिथि निश्चित कर देता हूँ । जो पुरुष इस तिथिके दिन उपवास करके तुम्हारी पूजा करेगा, वह पापी होनेपर भी पापमुक्त हो जायगा । धर्म ! तुममें प्रभूत सामर्थ्य है । तुम इस अरण्यमें बहुत समयतक निवास कर चुके हो, इसलिये यह वन 'धर्मारण्य'-नामसे विख्यात होगा । प्रभो ! चार, तीन, दो और एक चरणसे युक्त होकर तुम कृत, त्रेता आदि युगमें जिस प्रकार लक्षित होते हो, उसी प्रकार पृथ्वी और आकाशमें रहकर विश्वको अपना घर मानते हुए उसकी रक्षा करो ।'

राजन् ! इतनी बातें कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओं और दानवोंके देखने-देखते अन्तर्धान हो गये । देवताओंका शोक दूर हो गया । वे वृषभका वेष धारण करनेवाले धर्मके साथ अपने लोकको चले गये । जो पुरुष त्रयोदशीके दिन श्राद्ध करते समय धर्मकी उत्पत्तिका यह प्रसङ्ग पितरोंको सुनायेगा एवं भक्तिके साथ दूधसे तर्पण करेगा, वह स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक निवास करनेका अधिकारी होगा ।

(अध्याय ३२)

चतुर्दशी तिथिके माहात्म्यके प्रसङ्गमें रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपा मुनि कहते हैं—राजन् ! इसके अतिरिक्त सृष्टिके आरम्भमें रुद्रके उत्पन्न होनेकी एक कथा और है । अब वह प्रसङ्ग कहता हूँ, यत्नपूर्वक सुनो—

जब तपोरूप धर्ममय वृक्ष नष्टप्राय हो गया था, उस समय प्रचण्ड तेजस्वी ब्रह्माजी क्षमारूपी अस्त्र धारण किये प्रकट हुए । उन परम प्रतापी प्रभुके आनेका प्रयोजन था परम ज्ञान और तत्त्वको जानकर प्रजाओंकी रक्षा करना । सृष्टि करनेकी इच्छावाले उन महाप्रभुने चाहा—'प्रजाएँ उत्पन्न हों और इच्छानुसार जगत्‌की वृद्धि हो ।' किंतु इसमें प्रतिबन्ध पड़ गया । अतः क्रोधसे उनका मन क्षुब्ध हो उठा । फिर वे समाधिस्थ हो गये । अब उनके सामने एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष प्रकट हुआ, जिसका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र था । उसके रजोगुण और तमोगुण सर्वथा नष्ट हो चुके थे । उसकी कीर्ति अचल थी । उस पुरुषमें वर देनेकी पूर्ण शक्ति थी एवं अपार बल था । उसके शरीरकी कान्ति काले और लाल रंगसे सम्पन्न थी तथा नेत्र पीले रंगके थे । वह उत्पन्न होते ही रोने लगा । तब ब्रह्माजीने कहा—'त्वं मा रुद,—तुम रोओ मत ।' इस कारण उस पुराण पुरुषका नाम रुद्र हो गया । पुनः ब्रह्माजी बोले—'तुम एक महान् पुरुष हो ! तुममें सब कुछ करनेकी शक्ति है । तुम मेरी ऐसी सृष्टिका विस्तार करो, जिसका रूप तुम्हारे ही अनुरूप हो ।'

---

* 'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ॥' (ऋग्वेद ४ । ५८ । ३) इस वेदमन्त्रमें भी यही भाव व्यक्त हुआ है ।

[illegible] तप करनेके विचारसे जलके भीतर चले गये । फिर उन देवेश्वर रुद्रके जलमें चले जानेपर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिकी सृष्टि की । ब्रह्माजीके अन्य मानस पुत्रोंने भी प्रजाओंका सृजन किया । सृष्टि पर्याप्त रूपसे फैल गयी । फिर देवेश्वरकी अध्यक्षतामें दक्षप्रजापतिका महायज्ञ आरम्भ हो गया ।

राजन् ! इतनेमें रुद्रदेव, जो तप करनेके लिये जलके भीतर गये थे, संसार और सुरगणकी सृष्टि करनेके विचारसे जलसे बाहर निकले । उन्होंने सुना—'यज्ञ हो रहा है और उसमें देवता, सिद्ध एवं यक्ष आये हुए हैं ।' फिर तो उन्हें क्रोध हो आया । अतः सोचा और कहा—'अरे, तेजस्विनी अपनी कन्या तथा मेरा तिरस्कार करके मूर्खतावश इसने किस प्रकार जगत्की सृष्टि कर ली । हा, हा,—इसे ऐसा नहीं करना चाहिये' यों कहते-कहते रोषसे उनका शरीर चतुर्दिक् उद्दीप्त हो उठा । साथ ही उनके मुँहसे ज्वालाएँ निकलने लगीं । वे ही अनेक भूत, पिशाच, प्रेत एवं योगिनियोंके झुंड बनकर विचरने लगीं । जब समस्त आकाश, पृथ्वी, सारी दिशाएँ तथा लोक आदि उन भूतोंसे भर गये तो उन रुद्रने सर्वज्ञताके प्रभावसे [illegible] लम्बा एक धनुष बनाया । [illegible] उसकी प्रत्यञ्चा बनायी और क्रोधके कारण दो [illegible] बाणोंको ले लिया और उससे उन्होंने [illegible] मुनियों और

था और जो भक्तिके साथ उनकी शरणमें प[illegible] बातें विदित हो जानेपर देवाधिदेव ब्रह्माजी रुद्र[illegible] देखते हुए बोले—'तात ! अब क्रोध कर[illegible] नहीं है; क्योंकि क्रतु—यज्ञदेवता तो यहाँसे भ[illegible] हैं ।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर रुद्र क्रोध[illegible] गये और कहने लगे—'देवेश्वर ! आपने [illegible] मुझे बनाया है; किंतु ये लोग इस यज्ञमें मु[illegible] नहीं दे रहे हैं; इसीलिये मैंने इन्हें विकृत कर[illegible] तथा इनका ज्ञान हर लिया है ।'

ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ ! तुमलोग समस्त असुर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उद्यमसे [illegible] को पढ़कर इन महाभाग शम्भुकी ऐसी आराधना [illegible] जिसके फलस्वरूप भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जायँ । [illegible] प्रसन्नतामात्रसे सर्वज्ञता सुलभ हो जाती है ।' ब्रह्माजी[illegible] ऐसा कहनेपर वे देवता भगवान् रुद्रकी स्तुति करने लगे

देवगण बोले—महात्मन् ! आप देवताओंके [illegible] तीन नेत्रवाले, जटा-मुकुटसे सुशोभित तथा महान् सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं । आपके नेत्रोंका रंग कुछ पीला और लाल है । भूत और वेताल सदा आपकी सेवामें संलग्न रहते हैं । ऐसे आप प्रभुको हमारा नमस्कार है । भगके नेत्रको फोड़नेवाले भगवान् ! आपके मुखसे भयंकर अट्टहास होता है । कपर्दी और स्थाणु आपके नाम हैं । पूषाके दाँत तोड़नेवाले भगवन् ! आपको हमारा नमस्कार है । महाभूतोंके

नाम है। प्रभो! आपको हमारा बारंबार नमस्कार है। देवेश्वर! आपके तीसरे नेत्रसे आगकी भयंकर ज्वाला निकलती रहती है। आपने चन्द्रमाको मुकुट बना रखा है। आगे आप कपाल धारण करनेका नियम पालन करेंगे। ऐसे आप सर्वसमर्थ प्रभुको हमारा नमस्कार है। प्रभो! आपके द्वारा 'दारुवन'का विध्वंस होगा। नीले कण्ठ एवं तीखे त्रिशूलसे शोभा पानेवाले भगवन्! आपने महान् सर्पको कङ्कण बना रखा है, ऐसे तिग्म त्रिशूली (तेज त्रिशूलवाले) आप देवेश्वरको नमस्कार है। यज्ञमूर्ते! आप हाथमें प्रचण्ड दण्ड धारण करते हैं। आपके मुखमें बडवानलका निवास है। वेदान्तके द्वारा आपका रहस्य जाना जा सकता है। ऐसे आप प्रभुको बारंबार नमस्कार है। शम्भो! आपने दक्षके यज्ञका विध्वंस किया है। शिव! जगत् आपसे भय मानता है। भगवन्! आप विश्वके शासक हैं। विश्वके उत्पादक तथा कपर्दी नामकी जटा-जूटको धारण करनेवाले महादेव! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति किये जानेपर प्रचण्ड धनुषधारी सनातन शम्भु बोले—'सुरगणो! मैं देवताओंका अधिष्ठाता हूँ। मेरे लिये जो भी काम हो, वह बताओ।'

देवताओंने कहा—प्रभो! आप यदि प्रसन्न हैं तो हमें वेदों एवं शास्त्रोंका सम्यक् प्रकारसे ज्ञान यथाशीघ्र प्रदान करनेकी कृपा करें। साथ ही रहस्य-सहित यज्ञोंकी विधि भी हमें ज्ञात हो जाय।

महादेवजी बोले—देवताओ! आप सब-के-सब एक ही साथ पशुका रूप धारण कर लें और मैं सबका स्वामी बन जाता हूँ, तब आप सभी अज्ञानसे मुक्ति पा जायँगे। फिर देवताओंने भगवान् शम्भुसे कहा—'बहुत ठीक, ऐसा ही होगा। अब आप सर्वथा पशुपति हो गये।' उस समय ब्रह्माजीका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर गया। अतः उन्होंने उन पशुपतिसे कहा—'देवेश! आपके लिये चतुर्दशी तिथि निश्चित है—इसमें कोई संशय नहीं। जो द्विज उस चतुर्दशी तिथिके दिन श्रद्धापूर्वक आपकी उपासना करें, गेहूँसे तैयार किये पकान्नद्वारा अन्य ब्राह्मणोंको भोजन करायें, उनपर आप परम संतुष्ट हों और उन्हें उत्तम स्थानका अधिकारी बना दें।'

इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् रुद्रने पूषाके दाँत तथा भगके नेत्र पूर्ववत् कर दिये। फिर सभीको यज्ञकी समाप्तिका फल भी प्रदान किया तथा देवताओंके अन्तःकरणमें परम विशुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान भर दिया। इस प्रकार परब्रह्म परमात्माने पूर्वकालमें रुद्रको प्रकट किया था। इसी कार्यका सम्पादन करनेसे वे देवताओंके अधिष्ठाता कहलाते हैं।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इस कथाका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् रुद्रके लोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ३३)

अमावास्या तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें पितरोंकी उत्पत्तिका कथन

महातपाजी कहते हैं—राजन्! अब मैं पितरोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो। पूर्व समयकी बात है—प्रजापति ब्रह्माजी अनेक प्रकारकी प्रजाओंका सृजन करनेके विचारसे मनको एकाग्र करके बैठ गये। फिर उनके मनसे तन्मात्राएँ* बाहर निकलीं। उन्होंने उन सबको प्रधानता दी और 'इनको किन रूपोंसे सुशोभित करें'—यों विचारने लगे। कारण, वे सभी ब्रह्माजीके शरीरमें पहलेसे ही थीं और वहाँसे पुनः ये धूम्रवर्णवाली तन्मात्राएँ प्रकट हुई थीं। फिर वे चमक कर देवताओंसे कहने लगीं—'हम सोमरस पीना

* पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंके विषय शब्द स्पर्शादि ही तन्मात्राएँ हैं। (इनका प्रयोग संस्कृतमें क्लीब एवं पुलिङ्गमें हुए है।)

चाहती हैं।' साथ ही उनके मनमें ऊपरके लोकमें जानेकी इच्छा हुई। उन सबोंने सोचा—हम 'आकाशमें आसन जमाकर वहीं तपस्या करें।' ऊपर जानेके लिये वे मुख उठाकर तिरछे मार्गका अवलम्बन करना ही चाहती थीं, इतनेमें उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'समस्त गृहाश्रमियोंका कल्याण करनेके लिये आप लोग पितर होकर रहें।' ये जो ऊपर मुख करके जाना चाहते हैं, इनका नाम 'नान्दीमुख' होगा। इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने उनके मार्गका भी निरूपण कर दिया। राजन्! उस समय ब्रह्माजीने उन पितरोंके लिये मार्ग सूर्यका दक्षिणायनकाल बता दिया। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि कर वे जब मौन हो गये, तब पितरोंने उनसे कहा—'भगवन्! हमें जीविका देनेकी कृपा कीजिये, जिससे सुख प्राप्त कर सकें।'

ब्रह्माजी बोले—तुम्हारे लिये अमावास्याके ही दिन हो। उस तिथिमें मनुष्य जल, ति कुशसे तुम्हारा तर्पण करेंगे। इससे तुम परम त जाओगे। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। उस अमा तिथिमें तिल देनेका विधान है। पितरोंके प्रति रखनेवाला जो पुरुष तुम्हारी उपासना करेगा, अत्यन्त संतुष्ट होकर यथाशीघ्र वर देना तुम्हारा कर्तव्य है।

(अध्याय

पूर्णिमा तिथिकी महिमाके प्रसङ्गमें उसके स्वामी चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णन

महातपाजी कहते हैं—राजन्! यशस्वी अत्रि मुनि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उन्हींके यहाँ पुत्ररूपसे चन्द्रमाका प्राकट्य हुआ था। दक्षप्रजापतिने उन्हें अपना जामाता बना लिया। दक्षकी जो सत्ताईस दाक्षायणी कन्याएँ कही गयी हैं, वे सभी परम माननीया कन्याएँ चन्द्रमाकी पत्नी हुईं। उन कन्याओंमें रोहिणी सबसे श्रेष्ठ थी। सुनते हैं, चन्द्रमा [illegible] उस रोहिणीसे ही अधिक प्रेम करते थे, दूसरी अन्य कन्याओंसे नहीं। तब अन्य सभी कन्याएँ पिता दक्षके पास आयीं और उन्होंने चन्द्रमाके विषम व्यवहारका वृत्तान्त सुनाया। दक्षने चन्द्रमाके समीप आकर ऐसा न करनेके लिये बार-बार समझाया; किंतु चन्द्रमाने उनकी [illegible] [illegible] नहीं दिया। तब दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया—'तुम ([illegible] [illegible] [illegible]) क्षय हो जाओ।'

इस प्रकार दक्षके कहनेपर उनके शापसे चन्द्र क्षय (रोग) हो गया और अन्तमें वे अमावास्याको स अस्त हो गये। उनके अभावमें देवता, मनुष्य, वृक्ष और विशेषतः ओषधियाँ—प्रायः सब-के-सब न हो गये। जब ओषधियोंका अत्यन्त अभाव हो ग तो मुख्य देवताओंकी आतुरता बढ़ गयी। वे क लगे—'चन्द्रमा पुरुषोंकि [illegible] क्षीण हो गया।'* वे त्रिलोकपूज्य देवता भगवान् विष्णुकी शर गये। श्रीहरिने उनसे पूछा—'आप बतलायें, [illegible] क्या करूँ?' तब देवताओंने उनसे कहा—'भगवन् दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया है, जिससे वे निरोहि हो गये हैं।'

उस समय उन प्रभुने देवताओंसे कहा—'[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करो और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

* [illegible]

कर दो।' देवताओंसे ऐसा कहकर स्वयं भगवान् श्रीहरिने फिर महाभाग शंकर एवं ब्रह्माजीको स्मरण किया, साथ ही रस्सीकी जगह प्रयुक्त होनेके लिये वासुकिनागको आज्ञा दी। फिर तो वे सभी एकत्र होकर समुद्रका मन्थन करने लगे। राजन्! जब समुद्र भलीभाँति मथा गया तो चन्द्रमा पुनः प्रकट हो गये। जिन परमपुरुष परमात्माका क्षेत्रज्ञ नाम है, उन्हें ही प्राणियोंका जीवात्मा चन्द्रमा समझना चाहिये। अब परोक्ष मूर्तिके अतिरिक्त वे सुन्दर सोमका स्वरूप धारण करके पृथक् रूपसे भी प्रकाशित होने लगे। सभी देवता, मानव, वृक्ष और ओषधियाँ इन्हीं सोलह कलावाले परम प्रभुका आश्रय पाकर जीवन धारण करनेमें समर्थ हैं। उस समय सोमको उन्हीं प्रभुका स्वरूप समझकर रुद्रने उनकी द्वितीया तिथिकी (अमृता) कलाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। जल उन्हीं (शिव—परमात्मा) का स्वरूप है। इसीसे उन्हें विश्वमूर्ति कहा गया है। चन्द्रमापर प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इन्हें पूर्णमासी तिथि प्रदान की। राजन्! इस तिथिमें उपवास रहकर चन्द्रमाकी उपासना एवं ध्यान करना चाहिये। व्रतीको अन्नका आहार करना चाहिये। इस व्रतके फलस्वरूप चन्द्रमा उसे ज्ञान, कान्ति, पुष्टि, धन, धान्य और मोक्ष सुलभ कर देते हैं। [विशेष द्रष्टव्य—अग्नि-नारदादि पुराणों, 'नारदसंहिता,' 'रत्नमाला' एवं मुहूर्तचिन्तामणि आदि ज्योतिषग्रन्थोंमें—

तिथीशा वह्निको गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी॥

(मुहू० चि० १। ३) आदिसे क्रमशः कहीं अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, नाग, गुह, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वदेवता, विष्णु, काम, शिव और चन्द्रमाको प्रतिपदादि तिथियोंका स्वामी बतलाया गया है और कहीं ठीक यह वराहपुराणवाला ही क्रम है। पर इसमें सुन्दर कथाओं-द्वारा ज्योतिषके रहस्यको स्पष्टकर विशेष सिद्धि-प्राप्तिके सरल साधन निर्दिष्ट हुए हैं। इससे पाठक-पाठिकाओंको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।]

(अध्याय ३५)

प्राचीन इतिहासका वर्णन

महातपा कहते हैं—राजन्! त्रेतायुगके आदिमें जो वीर मणिसे उत्पन्न हुए थे तथा जिनमें-से एक तुम भी हो, अब उनका वृत्तान्त बताता हूँ, सुनो। नरेन्द्र! सत्ययुगमें जिसका नाम सुप्रभ था, वह तुम ही हो। यहाँ प्रजापाल'के नामसे भी तुम्हारी प्रसिद्धि हुई है। राजन्! शेष महाबली नरेश त्रेतायुगमें होंगे। जो दीप्ततेजा था, उसका नाम शान्त कहा गया है। सुरश्मि महाबली राजा शशकर्णके नामसे ख्याति प्राप्त करेगा। शुभदर्शन पाञ्चाल राजा होगा—इसमें संदेह नहीं है। सुकान्ति ...कुलवंशमें जन्म लेकर सुन्दर नामसे विख्यात होगा। ...न्द ही (सत्ययुगके अन्तमें) मुचुकुन्द हुआ। इसी ...कार सुद्युम्न तुरु नामसे, सुमना सोमदत्त नामसे तथा शुभ संवरण नामसे विख्यात हुए। सुशील वसुदान हुआ और सुखद असुपति नामक राजा हुआ। शम्भु सेनापतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। कान्त दशरथके नामसे विख्यात राजा हुए और सोमकी राजा जनक नामसे प्रसिद्धि हुई। राजन्! ये सभी नरेश त्रेतायुगमें हुए थे। वे इस भूमण्डलके राज्य-सुखको भोगकर अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करके निःसंदेह स्वर्गको प्राप्त करेंगे।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! यह उत्तम 'महत्तपाख्यान' नामक आख्यान है। इसे सुनकर राजर्षि प्रजापालको अत्यन्त आनन्द हुआ और वे अन्तमें तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। इस प्रकार तप

कर दो।' देवताओंसे ऐसा कहकर स्वयं भगवान् श्रीहरिने फिर महाभाग शंकर एवं ब्रह्माजीको स्मरण किया, साथ ही रस्सीकी जगह प्रयुक्त होनेके लिये वासुकिनागको आज्ञा दी। फिर तो वे सभी एकत्र होकर समुद्रका मन्थन करने लगे। राजन्! जब समुद्र भलीभाँति मथा गया तो चन्द्रमा पुनः प्रकट हो गये। जिन परमपुरुष परमात्माका क्षेत्रज्ञ नाम है, उन्हें ही प्राणियोंका जीवात्मा चन्द्रमा समझना चाहिये। अब परोक्ष मूर्तिके अतिरिक्त वे सुन्दर सोमका स्वरूप धारण करके पृथक् रूपसे भी प्रकाशित होने लगे। सभी देवता, मानव, वृक्ष और ओषधियाँ इन्हीं सोलह कलावाले परम प्रभुका आश्रय पाकर जीवन धारण करनेमें समर्थ हैं। उस समय सोमको उन्हीं प्रभुका स्वरूप समझकर रुद्रने उनकी द्वितीया तिथिकी (अमृता) कलाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। जल उन्हीं (शिव—परमात्मा) का स्वरूप है। इसीसे उन्हें विश्वमूर्ति कहा गया है। चन्द्रमापर प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इन्हें पूर्णमासी तिथि प्रदान की। राजन्! इस तिथिमें उपवास रहकर चन्द्रमाकी उपासना एवं ध्यान करना चाहिये। व्रतीको अन्नका आहार करना चाहिये। इस व्रतके फलस्वरूप चन्द्रमा उसे ज्ञान, कान्ति, पुष्टि, धन, धान्य और मोक्ष सुलभ कर देते हैं।

[विशेष द्रष्टव्य—अग्नि-नारदादि पुराणों, 'नारदसंहिता,' 'रत्नमाला' एवं मुहूर्तचिन्तामणि आदि ज्योतिषग्रन्थोंमें—

तिथीशा वह्निको गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी॥

(मुहू० चि० १। ३) आदिसे क्रमशः कहीं अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, नाग, गुह, सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वेदेवा, विष्णु, काम, शिव और चन्द्रमाको प्रतिपदादि तिथियोंका स्वामी बतलाया गया है और कहीं ठीक यह वराहपुराणवाला ही क्रम है। पर इसमें सुन्दर कथाओं-द्वारा ज्योतिषके रहस्यको स्पष्टकर विशेष सिद्धि-प्राप्तिके सरल साधन निर्दिष्ट हुए हैं। इससे पाठक-पाठिकाओंको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।]

(अध्याय ३५)

प्राचीन इतिहासका वर्णन

महातपा कहते हैं—राजन्! त्रेतायुगके आदिमें जो वीर मणिसे उत्पन्न हुए थे तथा जिनमेंसे एक तुम भी हो, अब उनका वृत्तान्त बताता हूँ, सुनो। नरेन्द्र! सत्ययुगमें जिसका नाम सुप्रभ था, वह तुम ही हो। यहाँ प्रजापालके नामसे भी तुम्हारी प्रसिद्धि हुई है। राजन्! और महाबली नरेश त्रेतायुगमें होंगे। जो दीप्ततेजा था, उसका नाम शान्त कहा गया है। [illegible] महाबली राजा [illegible] शुभ संवरण नामसे विख्यात हुए। सुशील वसुदान हुआ और सुखद असुपन्ति नामक राजा हुआ। शम्भु सेनापतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। कान्त दशरथके नामसे विख्यात राजा हुए और सोमकी राजा जनक नामसे प्रसिद्धि हुई। राजन्! ये सभी नरेश त्रेतायुगमें हुए थे। वे इस भूमण्डलके राज्य-सुखको भोगकर अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करके निःसंदेह स्वर्गको प्राप्त करेंगे।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! यह उत्तम [illegible] नामक आख्यान है। इसे सुनकर राजर्षि [illegible] अत्यन्त आनन्द हुआ और वे अन्तमें [illegible] करनेके लिये वनमें चले गये। इस प्रकार तप

आरुणि और व्याधका प्रसङ्ग, नारायण-मन्त्र-श्रवणसे व्याधका शापसे उद्धार

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंका सृजन करते हैं । प्रभो ! मैं आपकी उपासनाकी विधि जानना चाहती हूँ—अर्थात् श्रद्धालु स्त्रियाँ अथवा पुरुष आपकी उपासना किस प्रकार करते हैं ? विभो ! आप मुझे यह सब बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मैं भावसे ही वशीभूत होता हूँ । मैं न तो प्रचुर धनोंसे सुलभ हूँ और न जपादि अन्य उपासनासे ही । साथ ही भक्त लोग मुझे तपद्वारा भी प्राप्त करते हैं—एतदर्थ मैं तुमसे कुछ साधनोंका निर्देश करता हूँ । जो मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे मुझमें अपना चित्त लगाये रहता है, उसके लिये अनेक प्रकारके (तपोरूप) व्रत हैं । उन्हें मैं बताता हूँ, सुनो । अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना और ब्रह्मचर्यका पालन करना—ये मानसिक व्रत कहे जाते हैं* । दिनमें एक समय भोजन करना अथवा केवल एक बार रातमें भोजन करना पुरुषोंके लिये शारीरिक व्रत (या तप) हैं । इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये । वेद पढ़ना, भगवान् विष्णुके नाम-यशका कीर्तन करना, सत्य बोलना, किसीकी चुगली न करना, हितकारी मधुर बात कहना, सबका हित सोचना, धर्मपर आस्था रखना और धर्मयुक्त बातें बोलना—ये वाणीके उत्तम व्रत हैं ।

वसुंधरे ! इस विषयमें एक प्रसङ्ग सुना जाता है—पूर्वकल्पमें आरुणि नामसे विख्यात एक महान् तपस्वी ब्राह्मण-पुत्र थे । वे ब्राह्मणश्रेष्ठ किसी उद्देश्यसे तप करनेके लिये वनमें गये और वहाँ वे उपवासपूर्वक तपस्या करने लगे । उन ब्राह्मणने [illegible] नदी† के सुन्दर तटपर अपने रहनेका आश्रम बनाया था । एक बार किसी दिन वे ब्राह्मण देवता स्नान-पूजा करनेके विचारसे उस नदीके तटपर गये । स्नान करके वे जब जप कर रहे थे तो उन्होंने सामनेसे आते हुए एक भयंकर व्याधको देखा, जो हाथमें बड़ा-सा धनुष लिये हुए था । उसकी आँखें बड़ी क्रूर थीं । वह उन ब्राह्मणके वल्कल वस्त्र छीनने और उन्हें मारनेके विचारसे आया था । उस ब्रह्मघातीको देखकर आरुणिके मनमें घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी और वे भयसे थरथर काँपने लगे । किंतु ब्राह्मणके अन्तःशरीरमें भगवान् नारायणको देखकर वह व्याध डर-सा गया । उसने उसी क्षण धनुष और बाण हाथसे गिरा दिये और कहा ।

व्याधने कहा—ब्रह्मन् ! मैं आपको मारनेके विचारसे ही यहाँ आया था; किंतु आपको देखते ही पता नहीं मेरी वह क्रूर-बुद्धि अब कहाँ चली गयी । विप्रवर ! मेरा जीवन सदा पाप करनेमें ही बीता है । अबतक मेरे द्वारा हजारों ब्राह्मण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट हो गये । प्रायः दस हजार साध्वी स्त्रियोंका भी मैंने अन्त कर डाला है । अहो, ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला मैं पापी पता नहीं, किस गतिको प्राप्त करूँगा ? महाभाग ! अब आपके पास रहकर मैं भी तप करना चाहता हूँ । आप कृपया उपदेश देकर मेरा उद्धार करें ।

व्याधके इस प्रकार कहनेपर उसे ब्रह्मघाती एवं महान् पापी समझकर द्विजश्रेष्ठ आरुणिने उसे कोई उत्तर नहीं दिया; परंतु हृदयमें धर्मकी अभिलाषा जग जानेके कारण ब्राह्मणके कुछ न कहनेपर भी वह व्याध वहीं ठहर गया । ब्राह्मण भी नदीमें स्नानकर वृक्षके नीचे

* [illegible] । १७ । १४

† [illegible] कहे [illegible] पर यहाँ यह पंजाबकी देग नदी है; 'महाभारत' तथा 'स्कन्दपुराण'में इसका

आरुणिने कहा—व्याध ! तुम्हारी तपस्या करनेकी इच्छा थी, अतएव तुमने मुझसे प्रार्थना की थी । किंतु अनघ ! उस समय तुममें अनेक प्रकारके पाप थे । तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर था । परंतु अब तुम्हारा अन्तःकरण परम पवित्र हो गया है; क्योंकि देविका नदीमें स्नान करने, मेरे दर्शन करने तथा चिरकालतक भगवान् विष्णुके नाम सुननेसे तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं,—इसमें कोई संशय नहीं । साधो ! अब मेरा एक वर स्वीकार कर लो, वह यह कि तुम अब यहीं रहकर तपस्या करो। तुम इसके लिये बहुत पहलेसे इच्छुक भी थे ।

व्याध बोला—ऋषे ! आपने जिन परम प्रभु भगवान् नारायण और विष्णुकी चर्चा की है, उन्हें मानव कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? यह बतानेकी कृपा करें—यही मेरा अभीष्ट वर है ।

ऋषिने कहा—व्याध ! कोई भी पुरुष सनातन श्रीहरिके उद्देश्यसे जिस किसी व्रतको भक्तिपूर्वक करनेमें संलग्न हो जाय तो वह उन्हें प्राप्त कर लेता है । पुत्र ! तुम ऐसा जानकर भगवान् नारायणका यह व्रत करो । (व्रतका रूप यह है —) कभी भी गणान्न—ब्राह्मणसंघके लिये निर्मित* अन्न नहीं खाना चाहिये और झूठ भी नहीं बोलना चाहिये । व्याध ! मैंने तुमसे जो इस उत्तम व्रतकी बात बतायी है, वह बिल्कुल सत्य है । अब तुम तपस्वी बनकर जबतक इच्छा हो, यहाँ रहो ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! आरुणिको यह निश्चय हो गया कि यह व्याध मोक्ष पानेके लिये अत्यन्त चिन्तित है । अतः उन वरदाता ब्राह्मणने उसे इच्छित वर दे दिया । फिर एक दिन वे वहाँसे उठकर सहसा कहीं चले गये ।

(अध्याय ३७)

सत्यतपाका प्राचीन प्रसङ्ग

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि ! अब वह व्याध साधुओंके मार्गका अवलम्बनकर मन-ही-मन गुरुका ध्यान करते हुए निराहार रहकर तपस्या करने लगा । भिक्षा लेनेका समय आनेपर वह वृक्षसे गिरे सूखे पत्ते खा लिया करता था । एक दिनकी बात है, उसे भूख लगी तो किसी वृक्षके नीचे गया । भूखके कारण पेड़के पाससे उसे सूखे पत्ते उठाकर खानेकी इच्छा हुई । पर वैसा करते ही आकाशवाणी हुई—'अरे, ये शाखोटके निकृष्ट पत्ते हैं, इन्हें मत खाओ !' यह शब्द पर्याप्त उच्चस्वरसे हुआ था । अतः वह व्याध उसे छोड़कर हट गया । अब वह किसी दूसरे वृक्षका पत्ता उठाकर लेने लगा । अब पुनः वहाँ भी वैसी ही ध्वनि हुई । इस प्रकारकी आपत्ति मानकर व्याधने उस दिन कुछ भी न खाया और निराहार रहकर बड़ी सावधानीके साथ गुरुदेव आरुणिको स्मरण करते हुए वह तप करनेमें तत्पर रहा ।

इस प्रकार वह तप कर ही रहा था कि इतनेमें महर्षि दुर्वासा उस व्याधके पास पधारे । उन ऋषिने देखा—व्याधके प्राणमात्र शरीरमें हैं, पर तपस्याके तेजसे वह ऐसा चमक रहा है, मानो घी डालनेसे अग्नि प्रदीप्त हो रही हो । उस व्याधने उन मुनिवर दुर्वासाजी-को शिर झुकाकर प्रणाम किया और बोला—'भगवन् !

* यहाँ मूलमें—'गणान्न' शब्द है । मनु ४ । २०९तथा २१९में भी यह शब्द आया है । वहाँ सभी व्याख्याता इसका प्रायः 'शतब्राह्मणसंघान्नम्'—यही अर्थ करते हैं । मोनियर विलियमके संस्कृत-अंग्रेजी-कोशमें यही भाव और अधिक स्पष्ट है ।

आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया। आज श्राद्धका दिन है। आप अतिथि देवता मेरे पास पधारे हैं। मूखे पत्ते आदिसे श्राद्ध करके आप द्विजवरको मैं तृप्त करना चाहता हूँ।' इधर इसमें कितनी पवित्र भावनाएँ हैं, इन्द्रियाँ कितनी वशमें हो गयी हैं तथा इसने तपसे कितना बल प्राप्त कर लिया है—यह जाननेके लिये वे मुनि भी उद्यत थे ही। अतः उन्होंने उच्चस्वरमें व्याधसे कहा—'ठीक है, तुम अपने पास आये मुझ अतिथिको यव, गेहूँ एवं धान्यसे भलीभाँति सिद्ध किया हुआ अन्न दो। मैं भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ।' दुर्वासाजीके ऐसा कहनेपर व्याध बड़ी चिन्तामें पड़ गया। वह सोचने लगा—'यह सब सामग्री कहाँसे मिलेगी।' वह इस प्रकार सोच ही रहा था इतनेमें एक सोनेका पवित्र पात्र आकाशसे गिरा। वह पात्र सिद्ध अन्नोंसे पूर्ण था। व्याधने उसे हाथमें उठा लिया और उसे लेकर वह डरता हुआ दुर्वासा मुनिसे कहने लगा—'भगवन्! आप परम समर्थ पुरुष हैं। जबतक मैं भिक्षा लाने जाता हूँ, तबतक आप यहीं रहनेकी कृपा करें। मुझपर किसी प्रकार आपकी इतनी कृपा अवश्य होनी चाहिये।'

इस प्रकार कहकर वह साधु व्याध भिक्षा माँगनेके लिये जैसे ही आगे बढ़ा, इतनेमें उसे बहुत-से उत्तम [illegible]

दया है तो कृपा करें, यह आसन लें और धोकर पवित्र आसनपर बैठ जायँ।' व्याधके ऐसा कहनेपर उसके पवित्र तपोबलकी परीक्षा करनेके विचारसे महर्षिने कहा—'व्याध! मैं नदी जानेमें असमर्थ हूँ। मेरे पास जलपात्र भी नहीं है; फिर मेरे पैर कैसे धुल सकता है?' मुनिके ऐसा कहनेपर व्याध सोचने लगा—'क्या अब करूँ? मुनिजीका मैं यहाँ भोजन कैसे हो सकेगा?' फिर उस चतुर व्याधने मन-ही-मन अपने गुरु आरुणिको स्मरण किया। साथ ही उस सुन्दर बुद्धिवाले व्याधने उस देविका नदीकी भी स्तुतिपूर्वक शरण ली।

व्याध बोला—नदियोंमें श्रेष्ठ देविके! मैं व्याध हूँ। मैंने सदा पाप-ही-पाप किये हैं। ब्राह्मण-हत्या-जैसा महापाप भी कर चुका हूँ। देवि! फिर भी मैं आपको स्मरण कर आपकी शरण आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें। देवता, मन्त्र और पूजनका विधान—यह सब मैं कुछ भी नहीं जानता। देवि! आप नदियोंमें प्रधान हैं। केवल गुरुके उत्तम चरणोंका ध्यान करनेसे मेरा सदा कल्याण होता आया है। अब आप मुझ पापीपर कृपा करें। आपगे! दुर्वासा ऋषि अपना पैर धो सकें, इस निमित्तसे आप उनके सन्निकट पधारनेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासा ऋषिने उससे कहा—'अङ्गोंसहित वेद तथा रहस्यके साथ पद एवं क्रम, कल्प-विधा और पुराण—सभी तुम्हें प्रत्यक्ष हो जायँ।' इस प्रकारका वर देकर दुर्वासाजीने उसका नवीन नामकरण किया। उन्होंने कहा—'तुम अब ऋषियोंमें अग्रगण्य सत्यतपा नामक ऋषि होओगे*।'

मुनिवर दुर्वासाने जब इस प्रकार व्याधको वर दिया तो उसने मुनिसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं व्याध होकर वेदोंका अध्ययन कैसे कर सकूँगा।'

ऋषि बोले—साधु व्याध! निराहार रहकर तपस्या करनेसे अब तुम्हारे पहलेके शरीरके संस्कार समाप्त हो गये हैं। तुम्हारा यह तपोमय शरीर उससे सर्वथा भिन्न है—इसमें कोई संशय नहीं। पूर्वकालीन अज्ञान भी शेष नहीं रह गया है। इस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें शुद्धरूप अविनाशी परमात्मा निवास कर रहे हैं। अतः तुम परम पवित्र शरीरवाले बन गये हो—यह मैं तुमसे बिल्कुल सच्ची बात बता रहा हूँ। मुने! इस कारण तुम्हें वेद और शास्त्र भलीभाँति प्रतिभासित—ज्ञात होंगे।　　(अध्याय १८)

मत्स्यद्वादशीव्रतका विधान तथा फल-कथन

सत्यतपाने कहा—भगवन्! आप ब्रह्मज्ञानियोंके शिरोमणि हैं। आपने जो दो शरीरोंकी बात कही है, यह शरीरभेद कैसे है? आप यह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासाजी बोले—दो ही नहीं, किंतु शरीरके तीन भेद हैं—ऐसा कहना चाहिये। प्राणियोंको ये शरीर इसलिये मिलते हैं कि उनको पाकर वह पूर्वकृत भोग भोगे। तुम्हारी पूर्वकी अवस्था भले ही पापपूर्ण थी, क्योंकि उस समय तुममें ज्ञानका नितान्त अभाव था। पर वही तुम अब उत्तम व्रतका पालन करनेके कारण दूसरी अवस्थामें आ गये हो—ऐसा समझना चाहिये। ब्रह्मवेत्ता विद्वानोंने बताया है कि एक तीसरा भी शरीर है, जिसे इन्द्रियाँ अपना विषय नहीं बना सकतीं तथा जो धर्म और अधर्मको भोगनेके लिये मिलता है। इस प्रकार इसके तीन भेद हैं। धर्म एवं अधर्मके भोग तथा सांसारिक पदार्थोंके भोगका साधन होनेसे भी शरीरके तीन भेद सिद्ध होते हैं। पूर्व समयमें तुम्हारे द्वारा जो प्राणियोंका वध हुआ करता था, उससे वैसे तुम्हारे संस्कार भी बन गये थे। इसीलिये तुम्हें पापमय शरीरवाला कहा जाता था। लोग तुमको पापी कहते थे। किंतु अब निरन्तर तप और दया करनेके कारण तुम्हारी प्रवृत्ति परम पवित्र बन गयी है। इस समय तुम्हें यह धर्ममय दूसरा शरीर सुलभ हो गया है। इस शरीरसे वेदों और पुराणोंकी जानकारी प्राप्त करनेके तुम पूर्ण अधिकारी हो—इसमें कोई संशय नहीं। जैसे जबतक बालककी अवस्था आठ वर्षतककी रहती है, तबतक उसकी मानसिक वृत्तिमें कुछ और ही भाव

* इसी पुराणमें आगे चलकर १८वें अध्यायमें भगवान्ने बतलाया है कि वस्तुतः ये सत्यतपा इस जन्ममें भी वाल्मीकिके समान ब्राह्मण ही थे। केवल व्याधोंके संसर्गमें रहकर वे व्याध-से बन गये थे। फिर ऋषियोंके सत्सङ्गसे विशेषकर दुर्वासाके उपदेशसे वे ब्राह्मण हो गये—

स हि सत्यतपाः पूर्वं भृगुवंशोद्भवो द्विजः। दस्युसंसर्गसम्भूतो दस्युवत् समजायत॥
ततः कालेन महता ऋषिसङ्गात्पुनर्द्विजः। बभौ दुर्वाससा सम्यग्बोधितश्च विशेषतः॥

दातुनका काष्ठ किसी दूधवाले वृक्षका होना आवश्यक है। इसके बाद विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। शरीरके नौ द्वार हैं, उन सभी द्वारोंका स्पर्श कर फिर भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। ध्यानका प्रकार यह है—'भगवान् श्रीहरि सर्वत्र विराजमान हैं। उनकी भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित हो रहे हैं। वे पीताम्बर धारण किये हैं तथा उनके मुँहपर मंद मुसकान विराजित है। वे सभी शुभ लक्षणोंसे सुशोभित हैं।' इस प्रकार उनका ध्यान कर पुनः भगवान् जनार्दनको स्मरण करते हुए हाथमें जल ले और उन प्रभुके लिये एक अञ्जलि अर्घ्य दे। महामुने! अर्घ्य देते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये*—'कमलके समान नेत्रसे शोभा पानेवाले भगवान् अच्युत! आज एकादशी तिथि है। अतः मैं निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मेरे रक्षक बनें।'

इस प्रकार कहकर दिनमें नियमपूर्वक उपवास करे। रात्रिके समय देवाधिदेव भगवान् नारायणके समीप बैठकर 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका जप करे। प्रायः एक सहस्र जप कर रात्रिको सो जाना चाहिये। फिर प्रातःकाल होनेपर वही पुरुष समुद्रतक जानेवाली नदी अथवा दूसरी भी किसी नदी या तालाबपर जाकर अथवा घरपर संयमपूर्वक रहकर हाथमें पवित्र मिट्टी लेकर यह मन्त्र पढ़े—'देवि! समस्त प्राणियोंका धारण और पोषण सदा तुमपर ही अवलम्बित है। सुव्रते! यदि यह सत्य है तो इसके फलस्वरूप मेरे सम्पूर्ण पापोंको तुम दूर करनेकी कृपा करो। कश्यपतनये! पूरे ब्रह्माण्डके भीतर रहनेवाले जितने तीर्थ हैं, वे सभी तुमसे स्पृष्ट हैं। उन सबको तुमने ही अपनी पीठपर स्थान दिया है। भगवती पृथ्वि! इसी भावसे भरकर मैं तुमसे यह मृत्तिका ले आज अपने ऊपर धारण करता हूँ।'†

फिर जलके देवता वरुणसे प्रार्थना करे—'महाभाग वरुण! आपमें सभी रस सदा स्थान पाये हुए हैं। उनसे इस मृत्तिकाको गीला करके मुझे यथाशीघ्र पवित्र करनेकी कृपा करें।'‡ बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकारका विधान सम्पन्न कर मिट्टी और जल हाथमें ले अपने सिरपर आलेपन करे। साथ ही शेष बची हुई मृत्तिकाको तीन बार समस्त अङ्गोंमें लगाये। फिर उपर्युक्त वारुणमन्त्र पढ़कर विधिपूर्वक स्नान करे। स्नान करनेके पश्चात् संध्या-तर्पण आदि नित्य-नियम सम्पन्नकर देवालयमें जाय। वहाँ लक्ष्मीसहित भगवान् नारायणकी षोडशोपचारकी विधिसे सर्वाङ्ग-पूजा करे।

पूजाका प्रकार यह है—'भगवान् केशवको नमस्कार' ऐसा कहकर भगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा करे और 'दामोदरको नमस्कार' यह कहकर उनके कटिभागकी पूजा करे। 'भगवान् नृसिंहको नमस्कार' ऐसा कहकर उनके दोनों ऊरुओंकी तथा 'श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले प्रभुको नमस्कार' कहकर उनके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। 'कौस्तुभमणिधारी भगवान्को नमस्कार' कहकर उनके कमरकी पूजा करे तथा 'लक्ष्मीपतिको नमस्कार' कहकर उनके हृदय-देशकी पूजा करे। 'तीनों लोकोंपर विजय पानेवाले प्रभुको नमस्कार' कहकर उनकी दोनों भुजाओंका

---

* एकादश्यां निराहारः स्थित्वा चैवापरेऽहनि। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ (३९।३२)

† धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा। तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते॥
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि त्वया स्पृष्टानि काश्यपि। तेनेमां मृत्तिकां त्वत्तो गृह्य स्नास्येऽद्य मेदिनि॥ (३९।३५, ३७)

‡ त्वयि सर्वे रसा नित्याः स्थिता वरुण सर्वदा। तैरियं मृत्तिका प्लाव्य पूतां कुरु च मां चिरम्॥ (३९।३५, ३८)

तथा 'सर्वात्मा श्रीहरिको नमस्कार' कहकर उनके सिरका पूजन करे। 'रथका चक्र धारण करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार' कहकर चक्रकी पूजा करे तथा 'कल्याणकारी प्रभुको प्रणाम' कहकर शङ्खकी पूजा करे। 'गम्भीरस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार' कहकर उनकी गदा-का तथा 'शान्तिस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है'—यह कहकर पद्मकी पूजा करनी चाहिये।

भगवान् नारायण सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। उक्त प्रकारसे उनकी अर्चना करनेके उपरान्त ज्ञानी पुरुष फिर उनके सामने जलपूर्ण चार कलश स्थापित करे। उन कलशोंको मालाओंसे अलंकृतकर उनपर तिलसे भरे पात्र रखे। इन चार कलशोंको चार समुद्र मानकर उनके मध्यभागमें एक मङ्गलमय पीठ या चौकी स्थापित करनी चाहिये, जिसके मध्यमें वस्त्र बिछा हो। फिर एक सोने, चाँदी, ताँबा अथवा लकड़ीके पात्रमें या कुछ न मिल सके तो पलाशके पत्तेमें ही जल रखकर उसपर सभी अवयवोंसे अङ्कित तथा आभूषणोंसे अलंकृत भगवान् जनार्दनकी मत्स्याकार सुवर्ण-प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। फिर उस भगवत्प्रतिमाकी अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र एवं नैवेद्य आदिके द्वारा विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। पूजाके उपरान्त यों प्रार्थना करनी चाहिये—'भगवन्! जिस प्रकार पातालमें प्रविष्ट हुए वेदोंका आपने उद्धार किया था, केशव! आप वैसे ही मेरा भी उद्धार करनेकी कृपा कीजिये।'

इस प्रकार पूजा सम्पन्न हो जानेके पश्चात् प्रार्थना करके रातमें भगवत्प्रतिमाके सामने जागरण करना चाहिये। पुनः प्रातःकाल होनेपर उपर्युक्त स्थापित किये ब्राह्मणोंको अर्पण कर दे। पूर्वका कलश ऋग्वेदके ब्राह्मणको दे। दक्षिणका कलश सामवेदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यजुर्वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको पश्चिमका कलश देना चाहिये। उत्तरका कलश अपनी इच्छाके अनुसार जिस किसी ब्राह्मणको दे सकते हैं, ऐसी विधि है। कलश वितरण करनेके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'पूर्वकी ओरसे मेरी ऋग्वेद, दक्षिणकी ओरसे सामवेद, पश्चिमकी ओरसे यजुर्वेद तथा उत्तरकी ओरसे अथर्ववेद रक्षा करें।' व्रतके अन्तमें भगवान् मत्स्यकी सुवर्णनिर्मित प्रतिमा आचार्यको समर्पण करनेकी विधि है। जो पुरुष इस विधिके अनुसार वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे भगवान्‌की भलीभाँति पूजा करता है, जिसके मुखसे भगवन्नामरूपी मन्त्र उच्चरित होते रहते हैं, जिसे उन मन्त्रोंका गुणानुपूर्वी अभिप्राय भी अवगत होता रहता है तथा जिसने दानका विधान भी सम्पन्न कर दिया है, उसे करोड़गुना अधिक फल मिलता है। ... जिसने गुरुको अर्पण तो कर दिया, परंतु आसक्ति मोहके वश हो जानेसे उसके मनमें अश्रद्धा उ... हो गयी तो ऐसे व्रती पुरुषके फलमें न्यूनता आती है। विद्वान् लोग कहते हैं कि विधि प्रकार बतानेवाला आप्तपुरुष ही गुरुके पद अधिकारी है।

इस प्रकार द्वादशीके दिन विधिसहित दान करे पुनः भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें उत्तम दक्षिणा दे। भोज्य पदार्थ उत्तम अन्नसे निर्मित होना चाहिये। इसके बाद मनुष्य स्वयं भोजन करे—ऐसा विधान है। फिर संयतेन्द्रिय एवं मौन हो बच्चोंको साथ लेकर भोजन करे। इस व्रतको सर्वप्रथम पृथ्वीने किया था। जो म... विधानसे

यह व्रत करता है, परम बुद्धिमान् सत्यतपा ! उसका पवित्र फल बताता हूँ, सुनो । उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग ! यदि मुझे अनेक हजार मुख मिल जायँ तथा ब्रह्माकी आयु-जैसी लंबी आयु सुलभ हो जाय तो सम्भव है कि इस धर्मका फल किसी प्रकार बतला सकूँ । ब्रह्मन् ! फिर भी कुछ परिचय प्राप्त हो जाय—इस उद्देश्यसे कहता हूँ, सुनो—मुने ! तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है । ऐसे एकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है । चौदह मन्वन्तरोंका ब्रह्माका एक दिन और इतनी ही संख्याकी रात होती है । इस प्रकार तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका उनका एक वर्ष कहा गया है । ऐसे सौ वर्षोंकी ब्रह्माकी आयु मानी गयी है—इसमें कोई संशयकी बात नहीं । जो पुरुष उक्त विधानके अनुसार इस द्वादशी-व्रतको करता है, वह ब्रह्माजीके लोकमें पहुँच जाता है और वह वहाँ तबतक रहता है, जबतक ब्रह्माकी आयु समाप्त नहीं हो जाती । जब ब्रह्मा अपने शरीरका संवरण करने लगते हैं तो उसी क्षण उनके विग्रहमें वह भी समा जाता है । पुनः ब्राह्मी-सृष्टि आरम्भ होनेपर वह एक महान् दिव्य पुरुष होता है । तपस्वी अथवा राजाका पद उसे प्राप्त होता है । सकाम अथवा निष्काम किसी भी भावसे जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके इस लोकमें किये गये कठिन-से-कठिन जितने पाप हैं, वे सभी उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । इस लोकमें जो दरिद्र है अथवा अपने राज्यसे च्युत हो गया है, वह विधानके साथ इस व्रतके करनेसे अवश्य ही राजा बन सकता है । यदि कोई सौभाग्यवती स्त्री है और उसे संतान नहीं होती हो तो वह इस कथित विधानसे यह व्रत करे । फलस्वरूप वह स्त्री परम धार्मिक पुत्र प्राप्त कर सकती है । यदि दूसरेका सम्मान करनेवाले किसी व्यक्तिका अगम्या स्त्रीके साथ सम्बन्ध हो गया हो तो वह उक्त विधिके अनुसार प्रायश्चित्त-रूपमें यह व्रत करे तो वह भी उस पापसे मुक्त हो सकता है । जिसने बहुत वर्षोंसे ब्रह्म-सम्बन्धी क्रियाका त्याग कर दिया है, वह यदि एक बार भी भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करे तो वह वैदिकसंस्कारसे सम्पन्न हो सकता है । महामुने ! इसके विषयमें अब अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ! इसकी तुलना करनेवाला अन्य कोई भी व्रत नहीं है । ब्रह्मन् ! अप्राप्य वस्तुको प्राप्य बनानेकी जिसमें सामर्थ्य है, वैसी इस मत्स्य-द्वादशी-व्रतको निरन्तर करे । जिस समय पृथ्वी पातालमें जलमग्न थी, उस समय उक्त विधानके अनुसार स्वयं उसने इस व्रतका अनुष्ठान किया था । तात ! इस विषयमें और कुछ विचार करना अनावश्यक है । जिसने दीक्षा नहीं ली है और जो नास्तिक है, उसे यह विधान बताना अवाञ्छनीय है । जो देवता अथवा ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसको इसे कभी नहीं सुनाना चाहिये । पापोंको तुरंत प्रशमन करनेवाला यह व्रत गुरुमें श्रद्धा रखनेवाले व्यक्तिको बताना चाहिये । जो मनुष्य यह व्रत करता है, वह इस जन्ममें धन, धान्य और सौभाग्य प्राप्त करता है । उसे अनेक प्रकारकी श्रेष्ठ स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं । यह उत्तम प्रसङ्ग द्वादशीकल्प कहलाता है । जो इसे भक्तिपूर्वक सुनाता है अथवा स्वयं पढ़ता-सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ।

(अध्याय ३९)

कूर्म-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं— मुने ! [जिस प्रकार मार्गशीर्षका यह मत्स्य-द्वादशीव्रत है,] प्रायः ऐसा ही पौषमासका कूर्म-द्वादशीव्रत है। इसी मासमें देवताओंने समुद्रका मन्थनकर अमृत प्राप्त किया था। उस समय भक्तोंको अभिलषित पदार्थ देनेमें कुशल स्वयं भगवान् नारायण कच्छप-रूपसे अवतरित हुए थे। उस दिन यही महान् पवित्र तिथि थी। अतः पौष मासके शुक्लपक्षकी यह दशमी— इन कूर्मरूप धारण करनेवाले परम प्रभु परमात्माकी तिथि है। व्रतीको चाहिये कि पूर्वकथनानुसार दशमी तिथिके दिन स्नान आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न कर एकादशी तिथिमें भक्तिके साथ भगवान् श्रीजनार्दनकी आराधना करे। मुनिवर ! पूजाके मन्त्र अलग-अलग हैं। उन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन होना आवश्यक है। 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः', 'ॐ विशोकाय नमः', 'ॐ भवाय नमः', 'ॐ सुबाहवे नमः', तथा 'ॐ विशालाय नमः।' इन वाक्योंको उच्चारण कर क्रमशः भगवान् श्रीहरिके चरण, कटिभाग, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, भुजाएँ एवं सिरकी भलीभाँति (पूर्वोक्त प्रकारसे भी) पूजा करनी चाहिये। फिर 'भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है'—ऐसा पढ़ना चाहिये। पुनः नाम-मन्त्रका उच्चारण कर सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप, फल और नैवेद्य आदि अद्भुत उपचारोंसे परम प्रभु श्रीहरिकी पूजा करे। फिर सामने एक कलश अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् कूर्मकी प्रतिमा स्थापित करे। साथमें मन्दराचलकी भी रखे। कलश माला और स्वच्छ वस्त्रसे सुसज्जित अलंकृत हो। कलशके [illegible] हुआ ताँबेका एक पात्र रखकर उसीमें [illegible] अभिधारण करे। फिर ब्राह्मणकी पूजाकर उसे दान [illegible] उस समय मनमें संकल्प करे—'मैं [illegible] शक्तिके अनुरूप दक्षिणा आदिसे [illegible] इससे कूर्म-रूपमें प्रकट होनेवाले देवाधिदेव नारायणको मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ।' इसके [illegible] अपने सेवकवर्गके साथ बैठकर भोजन करे।

विप्र ! इस प्रकार कार्यसम्पन्न करनेपर मनुष्यके [illegible] नष्ट हो जाते हैं। इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं [illegible] चाहिये। वह पुरुष संसार-चक्रका त्यागकर भगवान् [illegible] के सनातन-लोकको चला जाता है। उसके पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं और वह शोभा तथा लक्ष्मीसम्पन्न होकर सत्यधर्मका भाजन बन जाता है। भक्तिके साथ [illegible] करनेवाले उस पुरुषके अनेक जन्मोंके—सञ्चित पाप दूर भाग जाते हैं। पहले जो मत्स्य-द्वादशीका फल बताया गया है, इसके उपासकको भी वही फल प्राप्त होता है तथा भगवान् श्रीनारायण उसपर शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।

(अध्याय ४०)

वराह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—[illegible] ! तुम [illegible] महान् [illegible] पुरुष हो ! जिस प्रकार मार्गशीर्षमें भगवान् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फिर वे प्रभु वराहके रूपमें प्रकट हुए हैं। अतः इस तिथिके [illegible] भी पहले कही हुई विधिके अनुसार संकल्प एवं स्नान आदि करके विद्वान् पुरुष उनकी पूजा करे। [illegible] चन्दन, पुष्प एवं नैवेद्य [illegible]

रान्त उनके सामने जलसे भरा एक कलश ।। फिर 'ॐ वराहाय नमः'से दोनों पैरोंकी, 'ॐ भवाय नमः'से कटिकी, 'ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः'से उदर-, 'ॐ विश्वरूपाय नमः'से हृदयकी, 'ॐ सर्वज्ञाय नमः'से कण्ठकी, 'ॐ प्रजानां पतये नमः'से सिरकी, 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः'से दोनों भुजाओंकी, 'ॐ दिव्यास्त्राय नमः'से चक्रकी तथा 'ॐ अमृतोद्भवाय नमः'से शङ्खकी अर्चना करनी चाहिये । इस प्रकार पूजाकर विवेकी पुरुष वराह भगवान्‌की प्रतिमाको कलशपर स्थापित करे । अपने वैभवके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेका पात्र निर्माण कराकर उसपर प्रतिमा स्थापित करे । यदि शक्ति हो तो चतुर पुरुष भगवान् वराहकी स्वर्णमयी ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसमें उन प्रभुके दाढ़पर पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी विराज रही हो । फिर इस प्रकार भावना करनी चाहिये—'जो भगवती लक्ष्मीके प्राणपति हैं, जिन्होंने हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मारा है, अखिल बीज जिनमें सुरक्षित रहते हैं तथा जो रत्नोंके भाजन हैं, वही परम प्रभु साकार होनेके विचारसे वराहरूप धारणकर यहाँ स्थित हैं ।' फिर उन्हें कलशपर विराजमान कर दे ।

मुने ! वह कलश दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित होना चाहिये । उसपर ताँबेका एक पात्र रहना आवश्यक है । मूर्ति स्थापित कर चन्दन, फूल और नैवेद्य प्रभृति अनेक पवित्र उपचारोंसे अर्चना करे और फूलोंके द्वारा मण्डल बना ले । रातमें स्वयं जगे और दूसरोंको जगनेकी प्रेरणा करे । पण्डित पुरुषका कर्तव्य है—'इस शुभ समयमें भगवान् श्रीहरि वराह-रूपसे अवतरित हुए हैं'—इस विचारसे दूसरेके द्वारा भी पूजा एवं पद्य-गान कराये । इस प्रकार पूजा समाप्त-कर प्रातःकाल सूर्यके उदय हो जानेपर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे । तत्पश्चात् भगवान्‌की पुनः पूजा करके वह प्रतिमा ब्राह्मणको अर्पण कर दे । ग्रहीता ब्राह्मण वेद एवं वेदाङ्गका विद्वान्, साधु-स्वभाववाला, बुद्धिमान्, भगवान् विष्णुका भक्त, शान्त चित्तवाला, श्रोत्रिय तथा परिवारवाला होना चाहिये ।

इस प्रकार वराहरूपी भगवान्‌की प्रतिमा कलशके सहित दान करनेका जो फल प्राप्त होता है, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो—इस जन्ममें तो उसे सुंदर भाग्य, लक्ष्मी, कान्ति और सन्तोषकी प्राप्ति होती है और यदि दरिद्र हो तो वह शीघ्र ही धनवान् हो जाता है । सन्तानहीनको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है । दरिद्रता तुरंत भाग जाती है । बिना बुलाये स्वयं लक्ष्मी घरमें आ जाती हैं । वह पुरुष इस लोकमें सौभाग्यसम्पन्न तो रहता ही है, अब उसके परलोककी बात भी कहता हूँ, सुनो । इस सम्बन्धमें यहाँ एक पुरानी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है ।

पहले प्रतिष्ठानपुर(पैठण)में वीरधन्वा नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं । एक समयकी बात है—शत्रुओंको तपानेवाला, वह राजा शिकार खेलनेके अभिप्रायसे वनमें गया । उसी वनमें संवर्त ऋषिका भी आश्रम था । राजाने मृगोंको मारनेके साथ ही अनजाने मृगका रूप बनाये हुए पचास ब्राह्मणपुत्रोंका भी वध कर दिया । वे सभी परस्पर-भाई थे तथा वेदके अध्ययनमें उन ब्राह्मणोंकी बड़ी तत्परता थी । किंतु उस समय वे मृगका स्वाँग बनाये हुए थे ।

सत्यतपाने पूछा—ब्रह्मन् ! वे ब्राह्मण मृगका रूप धारण करके वनमें क्यों रहते थे ? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है । मैं आपके शरणागत हूँ । मुझपर प्रसन्न होकर इसका कारण बतानेकी कृपा करें ।

दुर्वासाजी कहते हैं—महाराज ! किसी समयकी बात है—वे सभी ब्राह्मण वनमें गये । वहाँ उन्होंने

कूर्म-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं— मुने ! [जिस प्रकार मार्गशीर्षका यह मत्स्य-द्वादशीव्रत है,] प्रायः ऐसा ही पौषमासका कूर्म-द्वादशीव्रत है। इसी मासमें देवताओंने समुद्रका मन्थनकर अमृत प्राप्त किया था। उस समय भक्तोंको अभिलषित पदार्थ देनेमें कुशल स्वयं भगवान् नारायण कच्छप-रूपसे अवतरित हुए थे। उस दिन यही महान् पवित्र तिथि थी। अतः पौष मासके शुक्लपक्षकी यह दशमी— इन कूर्मरूप धारण करनेवाले परम प्रभु परमात्माकी तिथि है। व्रतीको चाहिये कि पूर्वकथनानुसार दशमी तिथिके दिन स्नान आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न कर एकादशी तिथिमें भक्तिके साथ भगवान् श्रीजनार्दनकी आराधना करे। मुनिवर ! पूजाके मन्त्र अलग-अलग हैं। उन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन होना आवश्यक है। 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः', 'ॐ विशोकाय नमः', 'ॐ भवाय नमः', 'ॐ सुबाहवे नमः', तथा 'ॐ विशालाय नमः।' इन वाक्योंको उच्चारण कर क्रमशः भगवान् श्रीहरिके चरण, कटिभाग, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, भुजाएँ एवं शिरकी भलीभाँति (पूर्वोक्त प्रकारसे भी) पूजा करनी चाहिये। फिर 'भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है'—ऐसा कहना चाहिये। पुनः नाम-मन्त्रका उच्चारण कर सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप, फल और नैवेद्य आदि अद्भुत उपचारोंसे परम प्रभु श्रीहरिकी पूजा करे। फिर सामने एक कलश ... अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् कूर्मकी ... प्रतिमा स्थापित करे। साथमें मन्दराचलकी भी ... रखे। कलश माला और स्वच्छ वस्त्रसे ... अलंकृत हो। कलशके भीतर ... हुआ ताँबेका एक पात्र रखकर उसमें ... अभिधारण करे। फिर ब्राह्मणकी पूजाकर उसे दान क... उस समय मनमें संकल्प करे—'मैं कल ... शक्तिके अनुरूप दक्षिणा आदिसे ब्राह्मणोंको ... इससे कूर्म-रूपमें प्रकट होनेवाले देवाधिदेव नारायणको मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ।' इसके प... अपने सेवकवर्गके साथ बैठकर भोजन करे।

विप्र ! इस प्रकार कार्यसम्पन्न करनेपर मनुष्यके ... नष्ट हो जाते हैं। इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं ... चाहिये। वह पुरुष संसार-चक्रका त्यागकर भगवान् ... के सनातन-लोकको चला जाता है। उसके पाप त... विलीन हो जाते हैं और वह शोभा तथा लक्ष्मीसम्पन्न हो... सत्यधर्मका भाजन बन जाता है। भक्तिके साथ ... करनेवाले उस पुरुषके अनेक जन्मोंसे—सञ्चित पाप ... दूर भाग जाते हैं। पहले जो मत्स्य-द्वादशीका ... बताया गया है, इसके उपासकको भी वही फल प्र... होता है तथा भगवान् श्रीनारायण उसपर शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

(अध्याय ४०)

वराह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—व्याध ! तुम एक महान् भक्तशील धार्मिक पुरुष हो ! जिस प्रकार मार्गशीर्षमें भगवान् नारायणने मत्स्यका रूप तथा पौषमासमें कच्छपका रूप धारण किया था, वैसे ही माघ मासके शुक्लपक्षमें द्वादशीके दिन पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वे प्रभु वराहके रूपसे प्रकट हुए हैं। अतः इस तिथिके अवसरपर भी पहले कही हुई विधिके अनुसार संकल्प एवं स्नान आदि करके विद्वान् पुरुष उनकी पूजा करें। उन अविनाशी प्रभुकी चन्दन, धूप एवं नैवेद्य आदिसे अर्चना होनी चाहिये। पूजनके

रान्त उनके सामने जलसे भरा एक कलश ...। फिर 'ॐ वराहाय नमः'से दोनों पैरोंकी, 'ॐ ...धवाय नमः'से कटिकी, 'ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः'से उदर-..., 'ॐ विश्वरूपाय नमः'से हृदयकी, 'ॐ सर्वज्ञाय ...नमः'से कण्ठकी, 'ॐ प्रजानां पतये नमः'से सिरकी, ...प्रद्युम्नाय नमः'से दोनों भुजाओंकी, 'ॐ दिव्यास्त्राय ...नमः'से चक्रकी तथा 'ॐ अमृतोद्भवाय नमः'से ...ङ्खकी अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकार पूजाकर ...वेकी पुरुष वराह भगवान्‌की प्रतिमाको कलशपर ...थापित करे। अपने वैभवके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेका पात्र निर्माण कराकर उसपर प्रतिमा स्थापित करे। यदि शक्ति हो तो चतुर पुरुष भगवान् वराहकी स्वर्णमयी ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसमें उन प्रभुके दाढ़पर पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी विराज रही हो। फिर इस प्रकार भावना करनी चाहिये—'जो भगवती लक्ष्मीके प्राणपति हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यको मारा है, अखिल बीज जिनमें सुरक्षित रहते हैं तथा जो रत्नोंके भाजन हैं, वे ही परम प्रभु साकार होनेके विचारसे वराहरूप धारणकर यहाँ स्थित हैं।' फिर उन्हें कलशपर विराजमान कर दे।

मुने! वह कलश दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित होना चाहिये। उसपर ताँबेका एक पात्र रहना आवश्यक है। मूर्ति स्थापित कर चन्दन, फूल और नैवेद्य प्रभृति अनेक पवित्र उपचारोंसे अर्चना करे और फूलोंके द्वारा मण्डल बना ले। रातमें स्वयं जगे और दूसरोंको जगनेकी प्रेरणा करे। पण्डित पुरुषका कर्तव्य है—'इस शुभ समयमें भगवान् श्रीहरि वराह-रूपसे अवतरित हुए हैं'—इस विचारसे दूसरेके द्वारा भी पूजा एवं पद्य-गान कराये। इस प्रकार पूजा समाप्त-कर प्रातःकाल सूर्यके उदय हो जानेपर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की पुनः पूजा करके वह प्रतिमा ब्राह्मणको अर्पण कर दे। ग्रहीता ब्राह्मण वेद एवं वेदाङ्गका विद्वान्, साधु-स्वभाववाला, बुद्धिमान्, भगवान् विष्णुका भक्त, शान्त चित्तवाला, *श्रोत्रिय तथा परिवारवाला होना चाहिये।*

इस प्रकार वराहरूपी भगवान्‌की प्रतिमा कलशके सहित दान करनेका जो फल प्राप्त होता है, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो—इस जन्ममें तो उसे सुन्दर भाग्य, लक्ष्मी, कान्ति और सन्तोषकी प्राप्ति होती है और यदि दरिद्र हो तो वह शीघ्र ही धनवान् हो जाता है। सन्तानहीनको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है। दरिद्रता तुरंत भाग जाती है। बिना बुलाये स्वयं लक्ष्मी घरमें आ जाती हैं। वह पुरुष इस लोकमें सौभाग्यसम्पन्न तो रहता ही है, अब उसके परलोककी बात भी कहता हूँ, सुनो। इस सम्बन्धमें यहाँ एक पुरानी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है।

पहले प्रतिष्ठानपुर (पैठण) में वीरधन्वा नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। एक समयकी बात है—शत्रुओंको तपानेवाला, वह राजा शिकार खेलनेके अभिप्रायसे वनमें गया। उसी वनमें संवर्त ऋषिका भी आश्रम था। राजाने मृगोंको मारनेके साथ ही अनजाने मृगका रूप बनाये हुए पचास ब्राह्मणपुत्रोंका भी वध कर दिया। वे सभी परस्पर-भाई थे तथा वेदके अध्ययनमें उन ब्राह्मणोंकी बड़ी तत्परता थी। किंतु उस समय वे मृगका स्वाँग बनाये हुए थे।

सत्यतपाने पूछा—ब्रह्मन्! वे ब्राह्मण मृगका रूप धारण करके वनमें क्यों रहते थे? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मैं आपके शरणागत हूँ। मुझपर प्रसन्न होकर इसका कारण बतानेकी कृपा करें।

दुर्वासाजी कहते हैं—महाराज! किसी समयकी बात है—वे सभी ब्राह्मण वनमें गये। वहाँ उन्होंने

कूर्म-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं— मुने! [जिस प्रकार मार्गशीर्षका यह मत्स्य-द्वादशीव्रत है,] प्रायः ऐसा ही पौषमासका 'कूर्म-द्वादशीव्रत' है। इसी मासमें देवताओंने समुद्रका मन्थनकर अमृत प्राप्त किया था। उस समय भक्तोंको अभिलषित पदार्थ देनेमें कुशल स्वयं भगवान् नारायण कच्छप-रूपसे अवतरित हुए थे। उस दिन यही महान् पवित्र तिथि थी। अतः पौष मासके शुक्लपक्षकी यह दशमी — इन कूर्मरूप धारण करनेवाले परम प्रभु परमात्माकी तिथि है। व्रतीको चाहिये कि पूर्वकथनानुसार दशमी तिथिके दिन स्नान आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ सम्पन्न कर एकादशी तिथिमें भक्तिके साथ भगवान् श्रीजनार्दनकी आराधना करे। मुनिवर! पूजाके मन्त्र अलग-अलग हैं। उन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन होना आवश्यक है। 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ नारायणाय नमः', 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः', 'ॐ विशोकाय नमः', 'ॐ भवाय नमः', 'ॐ सुयाहवे नमः', तथा 'ॐ विशालाय नमः।' इन वाक्योंको उच्चारण कर क्रमशः भगवान् श्रीहरिके चरण, कटिभाग, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, भुजाएँ एवं शिरकी भलीभाँति (पूर्वोक्त प्रकारसे भी) पूजा करनी चाहिये। फिर 'भगवन्! आपके लिये नमस्कार है'—ऐसा कहना चाहिये। पुनः नाम-मन्त्रका उच्चारण कर सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप, फल और नैवेद्य आदि अनुपम उपचारोंसे उन प्रभु-श्रीहरिकी पूजा करे। फिर सामने एक कलश . . अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् कूर्मकी प्रतिमा स्थापित करे। सामने मन्दराचलकी भी रखे। कलश माला और वस्त्र आदिसे सुसज्जित अलंकृत हो। कलशके भीतर रत्न डाले तथा उसपर . . . हुआ घी . . एक पात्र रखकर उसमें . . अभिवादन करे। फिर ब्राह्मणकी पूजाकर उसे दान करे। उस समय मनमें संकल्प करे—'मैं कल . . शक्तिके अनुरूप दक्षिणा आदिसे . . . इससे कूर्म-रूपमें प्रकट होनेवाले देवाधिदेव . . नारायणको मैं प्रसन्न करना चाहता हूँ।' इसके . . अपने सेवकवर्गके साथ बैठकर भोजन करे।

विप्र! इस प्रकार कार्यसम्पन्न करनेपर मनुष्यके . . नष्ट हो जाते हैं। इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं . . चाहिये। वह पुरुष संसार-चक्रका त्यागकर भगवा . . के सनातन-लोकको चला जाता है। उसके पाप विलीन हो जाते हैं और वह शोभा तथा लक्ष्मीसम्पन्न सत्यधर्मका भाजन बन जाता है। भक्तिके सा . . करनेवाले उस पुरुषके अनेक जन्मोंसे—सञ्चित . . दूर भाग जाते हैं। पहले जो मत्स्य-द्वादशीका . . बताया गया है, इसके उपासकको भी वही फल . . होता है, तथा भगवान् श्रीनारायण उसपर शी . . प्रसन्न होते हैं।

(अध्याय ५ . .)

वराह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—व्याध! तुम एक महान् भक्तशील धार्मिक पुरुष हो! जिस प्रकार मार्गशीर्षमें भगवान् नारायणने मत्स्यका रूप तथा पौषमासमें कच्छपका रूप धारण किया था, वैसे ही माघ मासके शुक्लपक्षमें द्वादशीके दिन पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वे प्रभु वराहके रूपसे प्रकट हुए हैं। अ . . इस तिथिके अवसरपर भी पहले कही हुई विधि . . अनुसार संकल्प एवं स्थापन आदि करके विद्वान् पुरु . . उनकी पूजा करें। उन अविनाशी प्रभुकी चन्दन, धूप एवं नैवेद्य आदिसे अर्चना होनी चाहिये। पूजनके . .

अनन्तर उनके सामने जलसे भरा एक कलश रखे। फिर 'ॐ वराहाय नमः'से दोनों पैरोंकी, 'ॐ माधवाय नमः'से कटिकी, 'ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः'से उदरकी, 'ॐ विश्वरूपाय नमः'से हृदयकी, 'ॐ सर्वज्ञाय नमः'से कण्ठकी, 'ॐ प्रजानां पतये नमः'से सिरकी, 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः'से दोनों भुजाओंकी, 'ॐ दिव्यास्त्राय नमः'से चक्रकी तथा 'ॐ अमृतोद्भवाय नमः'से शङ्खकी अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकार पूजाकर विवेकी पुरुष वराह भगवान्‌की प्रतिमाको कलशपर स्थापित करे। अपने वैभवके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेका पात्र निर्माण कराकर उसपर प्रतिमा स्थापित करे। यदि शक्ति हो तो चतुर पुरुष भगवान् वराहकी स्वर्णमयी ऐसी प्रतिमा बनवाये, जिसमें उन प्रभुके दाढ़पर पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी विराज रही हो। फिर इस प्रकार भावना करनी चाहिये—'जो भगवती लक्ष्मीके प्राणपति हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यको मारा है, *अखिल बीज जिनमें* सुरक्षित रहते हैं तथा जो रत्नोंके भाजन हैं, वे ही परम प्रभु साकार होनेके विचारसे वराहरूप धारणकर यहाँ स्थित हैं।' फिर उन्हें कलशपर विराजमान कर दे।

मुने! वह कलश दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित होना चाहिये। उसपर ताँबेका एक पात्र रहना आवश्यक है। मूर्ति स्थापित कर चन्दन, फूल और नैवेद्य प्रभृति अनेक पवित्र उपचारोंसे अर्चना करे और फूलोंके द्वारा मण्डल बना ले। रातमें स्वयं जगे और दूसरोंको जगनेकी प्रेरणा करे। पण्डित पुरुषका कर्तव्य है—'इस शुभ समयमें भगवान् श्रीहरि वराह-रूपसे अवतरित हुए हैं'—इस विचारसे दूसरेके द्वारा भी पूजा एवं पद्य-गान कराये। इस प्रकार पूजा समाप्त कर प्रातःकाल सूर्यके उदय हो जानेपर शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की पुनः पूजा करके वह प्रतिमा ब्राह्मणको अर्पण कर दे। ग्रहीता ब्राह्मण वेद एवं वेदाङ्गका विद्वान्, साधु-स्वभाववाला, बुद्धिमान्, भगवान् विष्णुका भक्त, शान्त चित्तवाला, श्रोत्रिय तथा परिवारवाला होना चाहिये।

इस प्रकार वराहरूपी भगवान्‌की प्रतिमा कलशके सहित दान करनेका जो फल प्राप्त होता है, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो—इस जन्ममें तो उसे सुन्दर भाग्य, लक्ष्मी, कान्ति और सन्तोषकी प्राप्ति होती है और यदि दरिद्र हो तो वह शीघ्र ही धनवान् हो जाता है। सन्तानहीनको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है। दरिद्रता तुरंत भाग जाती है। बिना बुलाये स्वयं लक्ष्मी घरमें आ जाती हैं। वह पुरुष इस लोकमें सौभाग्यसम्पन्न तो रहता ही है, अब उसके परलोककी बात भी कहता हूँ, सुनो। इस सम्बन्धमें यहाँ एक पुरानी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है।

पहले प्रतिष्ठानपुर (पैठण) में वीरधन्वा नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। एक समयकी बात है—शत्रुओंको तपानेवाला, वह राजा शिकार खेलनेके अभिप्रायसे वनमें गया। उसी वनमें संवर्त ऋषिका भी आश्रम था। राजाने मृगोंको मारनेके साथ ही अनजाने मृगका रूप बनाये हुए पचास ब्राह्मणपुत्रोंका भी वध कर दिया। वे सभी परस्पर-भाई थे तथा वेदके अध्ययनमें उन ब्राह्मणोंकी बड़ी तत्परता थी। किंतु उस समय वे मृगका स्वाँग बनाये हुए थे।

सत्यतपाने पूछा—ब्रह्मन्! वे ब्राह्मण मृगका रूप धारण करके वनमें क्यों रहते थे? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। मैं आपके शरणागत हूँ। मुझपर प्रसन्न होकर इसका कारण बतानेकी कृपा करें।

दुर्वासाजी कहते हैं—महाराज! किसी समयकी बात है—वे सभी ब्राह्मण वनमें गये। वहाँ उन्होंने

हिरनके पाँच बच्चोंको देखा । वे अभी-अभी पैदा हुए थे । उन बच्चोंकी माता नहीं रही थी । उन ब्राह्मणोंने एक-एक बच्चेको हाथोंमें ले लिया और [illegible] । परंतु उन बच्चोंकी चेतना समाप्त हो गयी । तब उन सभी ब्राह्मणोंके मनमें महान् दुःख हुआ । अतः वे अपने पिता संवर्तके पास चले गये । वहाँ जाकर उन लोगोंने मृगहिंसासम्बन्धी वह सारी घटना कहना आरम्भ कर दी ।

ऋषिकुमार बोले—मुने ! तुरंत उत्पन्न हुए पाँच मृग हमारे द्वारा मर गये हैं । हमलोग यह पाप नहीं चाहते थे । फिर भी घटना घट गयी, अतः हमें प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा कीजिये ।

संवर्त ऋषिने कहा—प्रिय पुत्रो ! मेरे पिताकी हिंसाकी वृत्ति थी और उनसे बढ़कर मैं हिंसासे प्रेम रखता था । फिर तुम लोग मेरे पुत्र होकर पाप कर्मसे अछूते रह जाओ—यह असम्भव है । किंतु इससे छूटनेका उपाय यह है कि अब तुम लोग संयमशील बनकर मृगोंका चर्म अपने ऊपर डाल लो और पाँच वर्षोंतक वनमें विचरो । ऐसा करनेसे तुम्हारी शुद्धि हो जायगी ।

इस प्रकार संवर्त मुनिके कहनेपर उनके पुत्रोंने अपने पूरे शरीरपर मृगचर्म डाल लिया और शान्तभावसे वनमें जाकर परब्रह्म परमात्माके नामका जप करने लगे । उन्हें ऐसा करते हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गये । उसी समय राजा वीरधन्वा वहाँ आया, जहाँ मृगचर्म लपेटे हुए वे ब्राह्मण वृक्षके नीचे सावधानीके साथ बैठे थे । जपमें उनकी वृत्ति एकाग्र थी । उन्हें देखकर राजा वीरधन्वाने समझा कि ये मृग हैं । अतः उन सभी ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंपर बाण चला दिया और वे सब-के-सब एक साथ ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे । जब [illegible]

अब वे देवरात-नामक मुनिके आश्रममें [illegible] पूछा—'मुनिवरजी ! मुझे [illegible] निरपराध मृगोंका वध [illegible] वीरधन्वाने ऋषिसे [illegible] दी और वे फिर [illegible] व्याकुल होकर रोने लगे । तो उन्हें रोते देखकर [illegible] कहा—'राजन् ! डरो मत, मैं तुम्हारा पाप दूर [illegible] जिस प्रकार पूर्वकालमें [illegible] थी, तो देवाधिदेव भगवान् विष्णुने [illegible] उसका उद्धार किया था । [illegible] ब्रह्महत्याके पापमें डूबे हुए तुम्हारा भी उद्धार कर दें ।' इस प्रकार देवरात ऋषिके [illegible] राजा वीरधन्वा शान्त एवं प्रसन्न हो गये और [illegible] मुनिसे पूछा—'महानुभाव ! किस प्रकार [illegible] श्रीहरि [illegible] प्रसन्न हो सकते हैं, जिससे मेरे पातक नष्ट होंगे ?'

दुर्वासाजी बोले—मुनिवर ! जब इस प्रकार [illegible] धन्वाने देवरात ऋषिसे पूछा तो उन्होंने उस [illegible] यह व्रत बतला दिया और नरेशने इस [illegible] अनुष्ठान किया । इसके प्रभावसे राजा वीरधन्वा [illegible] हत्याके पापसे मुक्त होकर अपार भोगोंको भोगनेके पश्चात् सुवर्णके सुन्दर विमानपर चढ़कर स्वर्ग चला गया । [illegible] इन्द्र उठकर उसके स्वागतके लिये अर्घ्य लिये हुए आगे बढ़े । इन्द्रको आते देखकर भगवान् श्रीहरिके पार्षदोंने उनसे कहा—'देवराज ! आप इधर न देखें । कारण आपकी तपस्या इनसे न्यून है ।' इसी प्रकार एक-एक करके सभी लोकपाल आये और तपहीन होनेके कारण भगवान् विष्णुके सेवकोंने उनमेंसे किसीको भी स्वागतका अवसर नहीं दिया; क्योंकि राजा वीरधन्वाके तेज प्रतापके सामने वे फीके पड़ गये [illegible]

कि न तो अग्निसे भस्म होता है और न जलमें लीन ही ता है। आज भी महाराज वीरधन्वा देवताओंद्वारा प्रशंसित ते हुए वहाँ विराजमान हैं। यज्ञस्वरूप धारण करने- ले भगवान् श्रीहरिके प्रसन्न हो जानेपर कौन-सा ऐसा श्चर्यकारी कर्म है, जो सम्पन्न न हो सके। उनके प्रसन्न नेपर इस जन्ममें भी आयु, आरोग्य और सौभाग्य भ हो सकते हैं। इस एक-एक द्वादशीव्रतमें ऐसी शक्ति कि विधिके साथ उनका आचरण करनेसे मानव उत्तम ाग्य पानेका अधिकारी हो जाता है। फिर जो सभी तोंको सम्पन्न करे, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तो भगवान् नारायण स्वयं अपना स्थान देनेको तत्पर हो जाते हैं। भगवान् नारायणकी एक-से-एक श्रेष्ठ चार मूर्तियाँ हैं, इसमें कोई संशयकी बात नहीं है। जैसे उनका जलशायी नारायणरूप है, वैसे ही उन प्रभुने मत्स्यका रूप धारण कर वेदोंका उद्धार किया। फिर उसी प्रकार कूर्मरूपसे क्षीरसागरको मन्दराचलके सहारे मथनेकी योजना बनायी। मन्दराचलको पीठपर धारण किया था। यह उनकी दूसरी मूर्ति है। पुनः पृथ्वी रसातलमें चली गयी थी। वैसे ही उसे ऊपर लानेके लिये उन परम प्रभुने वराहका रूप धारण किया था। यह उन भगवान् नारायणकी तीसरी मूर्ति है। (चौथी सम्मूर्ति भगवान् नृसिंहकी है, जो आगे कही जायगी)।

(अध्याय ४१)

नृसिंह-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुनिवर! पहले कहे हुए ी भाँति फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें नृसिंह-द्वादशी होता है। विद्वान् पुरुष उस दिन उपवास करके के साथ भगवान् श्रीहरिकी आराधना करे। **नरसिंहाय नमः'** कहकर भगवान् नृसिंहके चरणों- **'ॐ गोविन्दाय नमः'**से ऊरुओंकी, **'ॐ मुने नमः'**से कटिप्रदेशकी, **'ॐ अनिरुद्धाय** से वक्षःस्थलकी, **'ॐ शितिकण्ठाय नमः'**से ठी, **'ॐ पिङ्गकेशाय नमः'** कहकर शिरो- , **'ॐ असुरध्वंसनाय नमः'**से चक्रकी **ॐ तोयात्मने नमः'** कहकर शङ्खकी चन्दन, फूल ल आदिके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी । तत्पश्चात् भगवान्के सामने दो सफेद वस्त्रोंसे एक कलश रखनेका विधान है। उस कलशपर ताँबेका पात्र अथवा अपने वित्तके अनुसार ा बाँसका पात्र रखकर उसके ऊपर भगवान् नृसिंहकी । मूर्ति पधरानी चाहिये। घड़ेमें रत्न डालकर द्वादशीके दिन पूजा करनेके उपरान्त भगवान्की वह प्रतिमा वेदके विशेषज्ञ ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

महामुने! इस प्रकारका व्रत करनेपर एक राजाको जो फल मिला था, उसे मैं कहता हूँ, सुनो— किम्पुरुष वर्षमें भारत नामसे विख्यात एक धार्मिक राजा रहते थे। उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वत्स था। किसी युद्धमें शत्रुओंसे हारकर वह केवल अपनी स्त्रीके साथ पैदल ही वसिष्ठजीके आश्रमपर गया और वहीं रहने लगा। इस प्रकार वहाँ उनके आश्रमपर रहते कुछ दिन बीत गये। एक दिन मुनिने उससे पूछा—'राजन्! तुम किस प्रयोजनसे इस महान् आश्रममें निवास कर रहे हो?'

राजा वत्सने कहा—भगवन्! शत्रुओंने मुझे परास्त कर मेरा राज्य तथा खजाना छीन लिया है। अतः असहाय होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप अपने उपदेश-प्रदानद्वारा मेरे चित्तको शान्त करनेकी कृपा कीजिये।

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! राजा [illegible] इस प्रकार कहनेपर वसिष्ठजीने उसे विधिपूर्वक इस द्वादशीको ही करनेका उपदेश दिया तथा उस राजाने भी सब कुछ वैसा ही किया । व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् नृसिंह उस राजापर प्रसन्न हुए और उन परम प्रभुने उस राजाको एक ऐसा चक्र दिया, जो समराङ्गणमें शत्रुओंका संहार कर सके । उस चक्रके प्रभावसे संग्राममें राजाने शत्रुओंको परास्त कर भगा दिया और [illegible] । तत्पश्चात् उसने [illegible] एक हजार अश्वमेध यज्ञ किये और अन्तमें वह राजा भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त हुआ । [illegible] पापोंका नाश करनेवाली यह नृसिंह-द्वादशी [illegible] तुम्हारे पूछनेपर मैंने इसका वर्णन कर दिया । [illegible] इसे सुनकर अपनी इच्छाके अनुसार चेष्टा करे [illegible]

(अध्याय ४१ [illegible])

वामन-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने ! इसी प्रकार चैत्र मासके शुक्लपक्षमें वामन-द्वादशीव्रत होता है । इसमें भी संकल्पकर रातमें उपवास करके भक्तिके साथ देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये । पूजाकी विधि यह है कि 'ॐ वामनाय नमः' इस मन्त्रसे भगवान्के दोनों चरणोंकी, 'ॐ विष्णवे नमः' कहकर उनके कटिभागकी, 'ॐ वासुदेवाय नमः'से उदरकी, 'ॐ संकर्षणाय नमः' कहकर हृदयकी, 'ॐ विश्वभृते नमः'से कण्ठकी, 'ॐ व्योमरूपिणे नमः'से शिरोदेशकी, 'ॐ विश्वजिते नमः' तथा 'ॐवामनाय नमः' कहकर दोनों भुजाओंकी और 'पाञ्चजन्याय नमः' कहकर शङ्खकी एवं 'सुदर्शनाय नमः' कहकर चक्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर पूर्वोक्त नरसिंह-व्रतके विधानके अनुसार अर्चना कर उन सनातन वामन भगवान्की प्रतिमाको रत्नगर्भित कलशपर स्थापित करे । चतुर साधक पहले बताये हुए पात्रपर भगवान् वामनकी शक्तिके अनुसार सुवर्णमयी मूर्ति स्थापित करे और सब कृत्य करे, भगवान्को यज्ञोपवीत पहनाये । उन भगवान् वामनके पास कमण्डलु, छाता, खड़ाऊँ, कमलकी माला तथा आसन या चटाई भी रखनी चाहिये । द्वादशीके दिन प्रातःकाल इन उपकरणोंके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको [illegible] प्रार्थना करनी चाहिये—'वामनरूप धारण [illegible] भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।' फिर [illegible] कहे—'भगवन् ! आप चैत्र मासके शुक्ल पक्ष[illegible] द्वादशीके दिन प्रकट हुए हैं । मैं आपकी प्र[illegible] चाहता हूँ ।' सब अन्य व्रतोंकी तरह इसकी विधि है ।

सुनते हैं पहले हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध एक राज[illegible] जिन्हें कोई पुत्र न था, अतः वे संतान-प्राप्तिके [illegible] यज्ञ एवं तपस्या कर रहे थे, इसी बीच भ[illegible] श्रीहरि ब्राह्मणका वेष धारणकर वहाँ आये [illegible] बोले—'राजन् ! आपका यह सब उपक्रम [illegible] लक्ष्यको लेकर है ?' राजा बोले—'मैं यह [illegible] पुत्र-प्राप्तिके लिये ही कर रहा हूँ ।' तब ब्राह्म[illegible] राजासे कहा—'राजन् ! तुम वामन-द्वादशीव्रत [illegible] अनुष्ठान करो ।' फिर वे अन्तर्धान हो गये । राज[illegible] यथाशीघ्र व्रतका अनुष्ठान किया और तेजस्[illegible] बुद्धिमान् एवं ब्राह्मणको रत्नगर्भित प्रतिमा दा[illegible] कर दी । और भगवान् वामनसे प्रार्थना की—[illegible] 'भगवन् ! 'अपुत्रा अदितिकी प्रार्थनापर आप स्व[illegible] पुत्ररूपसे उनके यहाँ प्रकट [illegible]

मुने ! इस विधानसे व्रत एवं प्रार्थना करनेपर उस जाको उग्राश्व नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई थी, जो आगे कर महाबली चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। इस व्रतमें ऐसी क्ति है कि जिसे पुत्र न हो, वह पुत्रवान् तथा निर्धन कि धनवान् बन जाता है। जिसका राज्य छिन गया हो, वह पुनः अपना राज्य वापस पा जाता है। व्रत करनेवाला मनुष्य मरनेपर भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त होता है। फिर स्वर्गमें बहुत समय प्रमोद कर वह मर्त्यलोकमें बुद्धिमान् नहुषकुमार ययातिके समान चक्रवर्ती राजा होता है।

(अध्याय ४३)

जामदग्न्य-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—इसी प्रकार मनुष्य शुराम-द्वादशीका व्रती साधक) वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें क्तनियमानुसार संकल्प कर विधिके साथ मृत्तिका कर स्नान करे और फिर देवालयमें जाय। पुरुषको भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके अवतार रामकी—'ॐ जामदग्न्याय नमः'से चरण, 'ॐ धारिणे नमः', से उदर, 'ॐ मधुसूदनाय नमः'से कटिप्रदेश, श्रीवत्सधारिणे नमः'से जङ्घा 'ॐ क्षत्रान्तकाय नमः'से ओं, 'ॐ शितिकण्ठाय नमः'से केहुनी, 'ॐ जन्याय नमः'से शङ्ख, 'ॐ सुदर्शनाय नमः'से तथा 'ॐ ब्रह्माण्डधारिणे नमः'से शिरोदेशकी करे। इसके बाद पहलेकी ही तरह सामने कलश स्थापित करे। उसके ऊपर भगवान् रामकी मूर्ति स्थापित कर पूर्वोक्त नियमानुसार दो उसे आच्छादित करे। कलशपर बाँसके बने परशुरामजीकी आकृतिवाली सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित प्रतिमाके दाहिने हाथमें फरसा धारण कराये, फिर पुष्प, चन्दन एवं अर्घ्य आदि उपचारोंसे करे। भगवान्‌के सामने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूरी रात ण करे। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर स्वच्छ वेलामें तिमा ब्राह्मणको दे दे। इस प्रकार नियमपूर्वक रनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो।

चीन समयकी बात है—वीरसेन नामके एक तथा भाग्यशाली राजा थे, जो पुत्र-प्राप्तिके लिये तीव्र तपस्या कर रहे थे। महर्षि याज्ञवल्क्यका आश्रम वहाँसे निकट ही था, अतः एक दिन वे उन्हें देखने आये। उन तेजस्वी ऋषिको पास आते देखकर राजा वीरसेन हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनका विधिवत् स्वागत किया। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्यमुनिने पूछा—'धर्मज्ञ राजन्! तुम्हारे तप करनेका क्या प्रयोजन है? तुम कौन-सा कार्य करना चाहते हो?'

राजा वीरसेनने कहा—महर्षे! मैं पुत्रहीन हूँ। मुझे कोई संतान नहीं है। द्विजवर! इस कारण तपस्या-द्वारा अपने शरीरको मैं सुखाना चाहता हूँ।

याज्ञवल्क्यजी बोले—राजन्! तपस्यामें बड़ा क्लेश उठाना पड़ता है, अतः तुम यह विचार छोड़ दो। मैं तुम्हें अत्यन्त सरल उपाय बताता हूँ। उसे करनेसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त हो जायगा।

फिर उन्होंने उस यशस्वी राजाको इस वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें होनेवाला यही परशुराम-द्वादशीव्रत बतलाया। पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले राजा वीरसेनने भी पूर्ण विधिके साथ यह व्रत सम्पन्न किया। फलस्वरूप उन्हें राजा नल-जैसा परम धार्मिक पुत्र प्राप्त हुआ, जिन 'पुण्य-श्लोक' राजाकी कीर्ति अबतक संसारमें गायी जाती है। यह तो इस व्रतके फलका प्रासङ्गिक उल्लेखमात्र हुआ, वस्तुतः जो यह व्रत करता है, उसे सुपुत्र तथा

मुनिवर ! इस प्रकार यह व्रत करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो—बहुत पहले काशीपुरीमें विशाल नामक एक पराक्रमी राजा थे । बादमें उनके गोत्रके व्यक्तियोंने ही उनके राज्यको छीन लिया । अब वे गन्धमादन पर्वतके पवित्र बदरीवनके क्षेत्रमें चले गये और तप करने लगे । इसी समय किसी दिन श्रीनर-नारायणनामक पुराण एवं परम प्रसिद्ध ऋषि वहाँ पधारे । उन दोनों देवताओंने, जिन्हें सम्पूर्ण देवगण नमस्कार करते हैं और जिनके आगे किसीकी शक्ति काम नहीं देती, उस समय राजा विशालको देखा और मनमें विचार किया कि यह राजा बहुत पहलेसे यहाँ आया है और परब्रह्म परमात्मा विष्णुका निरन्तर ध्यान कर रहा है । अतः नर-नारायणने प्रसन्न होकर उन निष्पाप नरेशसे कहा—'राजेन्द्र ! हम लोग तुम्हारी कल्याणकामनासे वर देने आये हैं । तुम हमसे कोई वर माँग लो ।'

राजा विशालने कहा—आप दोनों कौन हैं, यह मैं नहीं जानता । फिर किसके सामने वर पानेकी प्रार्थना करूँ । मैं जिनकी आराधना करता हूँ, मेरी उन्हींसे वर-प्राप्तिकी हार्दिक इच्छा है ।

राजाके इस प्रकार कहनेपर नर-नारायणने उनसे पूछा—'राजन् ! तुम किसकी आराधना करते हो ? अथवा कौन-सा वर पानेकी तुम्हें इच्छा है ? हम लोग चाहते हैं, तुम इसे बताओ ।' ऐसा पूछनेपर विशाल बोले—'मैं भगवान् विष्णुकी आराधना [illegible] हूँ', और फिर वे चुपचाप बैठ गये । तब [illegible] पुनः उनसे कहा—'राजन् ! उन्हीं [illegible] कृपासे हम तुम्हें वर देनेके लिये आये हैं । तुम [illegible]—तुम्हारे मनमें क्या अभिलाषा है ?'

विशालने कहा—अनेक प्रकारकी दक्षिणासे [illegible] यज्ञ करके मैं भगवान् यज्ञेश्वरकी [illegible] करना चाहता हूँ । आप वर देकर इसी [illegible] करें ।

उस समय राजाके पास नर और नारायण—दोनों महाभाग विराजमान थे । उनमेंसे नरने कहा—ये भगवान् नारायण हैं । अखिल जगत्को मार्ग दिखाना इनका प्रधान काम है । संसारकी सृष्टि करनेमें निपुण ये प्रभु मेरे साथ तपस्या करनेके विचारसे इस बदरीवनमें आ गये हैं । मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन और परशुराम—इन सब रूपोंसे पूर्व-समयमें इनका अवतार हो चुका है । इनकी शक्ति अपरिमेय है । फिर ये ही महाराज दशरथजीके घर राजा राम हुए । उस समय इनका रूप महान् आकर्षक था । उस समय म्लेच्छ राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार दूर कर सुखी किया था । कभी पापियोंसे भयभीत होकर नरसमुदायने इनकी स्तुति की थी । उस अवसरपर इन्होंने नरसिंहरूपसे अवतार लिया था । बलिको मोहनेके निमित्त वामन तथा क्षत्रियोंके हाथसे राज्य वापस करनेके लिये परशुराम ये बन चुके हैं । दुष्ट शत्रुओंको दमन करनेके लिये इन्होंने कृष्णका अवतार धारण किया है । अतः पण्डितजन इनकी उपासना करते हैं । यदि पुत्र-प्राप्तिकी कामना हो तो बुद्धिमान् पुरुष इनके बालकृष्ण-रूपकी उपासना करे । रूपकी इच्छा करनेवाला इनके बुद्धावतारकी तथा शत्रुका संहार चाहनेवाला कल्कि-अवतारकी उपासना करे—यह संशय-शून्य सिद्धान्त है ।

इस प्रकारकी बातें स्पष्ट करके मुनिवर नरने राजा विशालको भगवान् हरिकी यह द्वादशी बतला दी । वे राजा इस व्रतको सम्पन्न करनेमें संलग्न भी हो गये । फलस्वरूप वे चक्रवर्ती राजा हुए । मुने ! उन्हीं राजा विशालसे सम्बन्ध रखनेके कारण यह बदरीवन 'विशाल' नामसे प्रसिद्ध हुआ । वे नरेश इस जन्ममें सुखपूर्वक राज्यकर अन्तमें बदरीवनमें गये, जहाँ अनेक प्रकारके यज्ञ करके भगवान् नारायणके परम पदको प्राप्त किया ।

(अध्याय ४८)

आखेटका (शिकार) बड़ा शौक था। अतः प्रायः वे जङ्गल वनोंमें घूमते रहते थे। एक समयकी बात है, वे घोड़ेपर चढ़कर किसी वनमें बहुत दूर चले गये, जहाँ सिंह, बाघ, हाथी, सर्प और डाकुओंका निवास था। राजा नृगके पास इस समय अन्य कोई सहायक भी न था। वे घोड़ेको खोलकर एक वृक्षके नीचे श्रमसे थककर सो गये। इतनेमें ही रात हो गयी और चौदह हजार व्याधोंका एक दल मृगोंको मारनेके विचारसे वहाँ आ गया। व्याधोंने देखा राजा सोये हैं। उनका शरीर सोने और रत्नोंसे सुशोभित है। लक्ष्मी उनके अङ्ग-अङ्गकी शोभा बढ़ा रही हैं। अतः वे सभी वधिक तुरंत अपने सरदारके पास गये और उसे इसकी सूचना दी। सुवर्ण और रत्नके लोभमें पड़कर वह सरदार भी राजा नृगको मारनेके लिये उद्यत हो गया और वे व्याध हाथमें तलवार लेकर उन सोये हुए राजाके पास पहुँच गये। वे उन्हें पकड़ना ही चाहते थे कि राजाके शरीरसे सहसा चन्दन-माल्यादिसे विभूषित एक स्त्री प्रकट हो गयी। उसने चक्र उठाकर सभी व्याधों तथा म्लेच्छोंको मार डाला। उनका वधकर वह देवी उसी क्षण पुनः राजा नृगके शरीरमें समा गयी। इतनेमें राजा भी जग गये और देखा कि म्लेच्छ नष्ट हो गये हैं और देवी शरीरमें प्रविष्ट हो रही है। अब राजा घोड़ेपर सवार होकर वामदेवजीके आश्रमपर गये और उन्होंने भक्तिपूर्वक उनसे पूछा—'भगवन्! यह स्त्री कौन थी तथा ये मरे हुए व्याध कौन थे? आप मुझपर प्रसन्न होकर इस आश्चर्यजनक घटनाका रहस्य बतानेकी कृपा कीजिये।'

वामदेवजी बोले—राजन्! इसके पूर्वजन्ममें शूद्र जातिमें तुम्हारा जन्म हुआ था। उस समय ब्राह्मणोंके मुखसे तुमने श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीव्रतके अनुष्ठानकी बात सुनी। और राजन्! बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक तुमने उस दिन उपवास भी किया। अनघ! उसीका परिणाम है कि इस समय तुम्हें राज्य उपलब्ध हुआ है। यही द्वादशीदेवी सम्पूर्ण आपत्तियोंमें साकार होकर तुम्हारी रक्षा करती हैं। उसीके प्रयाससे ये घोर पापी एवं निर्दयी म्लेच्छ जीवनसे हाथ धो बैठे हैं। राजन्! श्रावण मासकी यह द्वादशी ही तुम्हारी रक्षिका है। इसमें इतनी अपार शक्ति है कि सहसा प्राप्त विपत्ति-कालमें भी तुम्हारी रक्षा हो जाती है और इसकी कृपासे तुम्हें राज्य भी सुलभ हो गया है। अब जो बारह मासोंकी द्वादशी करते हैं, उनके पुण्यका तो कहना ही क्या है। उनके प्रभावसे तो मानव इन्द्रलोकतक पहुँच जाता है।

(अध्याय ४७)

कल्कि-द्वादशीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—मुने! पूर्वकथित व्रतोंकी भाँति ही भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षमें जो एकादशी होती है, उस तिथिमें कल्कि-व्रत करना चाहिये। इसमें विधिपूर्वक संकल्प कर देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार अर्चना करनी चाहिये। 'ॐ कल्कये नमः', 'ॐ हृषीकेशाय नमः', 'ॐ म्लेच्छविध्वंसनाय नमः', 'ॐ शितिकण्ठाय नमः', 'ॐ खड्गपाणये नमः' 'ॐ, चतुर्भुजाय नमः' तथा 'ॐ विश्वमूर्तये नमः' कहकर क्रमशः भगवान् कल्किके चरण, कमर, उदर, कण्ठ, भुजा, हाथ एवं सिरकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पहलेके समान सामने कलश स्थापित कर उसपर भगवान्‌की सुवर्णनिर्मित प्रतिमा स्थापित कर उसके ऊपर वस्त्र लपेटकर चन्दन और पुष्पसे अलङ्कृत करे। पुनः प्रातःकाल उसे किसी ज्ञाता ब्राह्मणको दान कर दे।

हेलीको हम नहीं समझ पा रहे हैं। अतः महाभाग ! दि आप अनुग्रह करना चाहते हों तो मुझे बतानेकी पा करें।'

अगस्त्यजी बोले—राजन् ! पूर्वजन्ममें यह रानी सी नगरमें हरिदत्त नामक एक वैश्यके घरमें दासीका म करती थी। उस समय भी तुम्हीं इसके पति थे। रिदत्तके ही यहाँ तुम भी सेवावृत्तिसे एक कर्मचारीका म करते थे। एक समयकी बात है, आश्विन मासके पक्षकी द्वादशीका व्रत नियमपूर्वक करनेके लिये वह य तत्पर हुआ। स्वयं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें कर पुष्प एवं धूप आदिसे उन प्रभुकी पूजा की। दोनों—स्त्री एवं पुरुष उस वैश्यकी सुरक्षाके लिये थे। पूजनोपरान्त वह वैश्य तो अपने लौट आया। महामते ! दीपक बुझ न जायँ, इस- तुम दोनोंको वहीं रहनेकी आज्ञा दे दी। उस के चले जानेपर तुमलोग दीपकोंको भलीभाँति कर वहीं बैठे रहे। राजन् ! तुमलोग पूरी एक —जबतक सवेरा न हुआ, तबतक वहाँसे नहीं । कुछ दिनोंके बाद आयु समाप्त हो जानेके कारण दोनों स्त्री-पुरुषोंकी मृत्यु हो गयी। उस पुण्यके से राजा प्रियव्रतके घर तुम्हारा जन्म हुआ और री यह पत्नी, जो उस जन्ममें वैश्यके यहाँ दासीका करती थी, अब रानी हुई है। वह दीपक का था। भगवान् विष्णुके मन्दिरमें केवल उसे त रखनेका काम तुम्हारा था। यह उसीका फल है। फिर जो अपने द्रव्यसे श्रीहरिके दीपक प्रज्वलित करे, उसका जो पुण्य है, संख्या तो की ही नहीं जा सकती। इसीसे कहा—'राजन् ! आप धन्य हैं ! आप धन्य सत्ययुगमें पूरे वर्षतक, त्रेतायुगमें आधे वर्ष- या द्वापरयुगमें तीन महीनोंतक भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करनेसे विद्वान् पुरुष जो फल प्राप्त करते हैं, कलियुगमें उतना फल केवल 'नमो नारायणाय' कहकर प्राप्त किया जा सकता है। इसमें कोई संशय नहीं। इसीलिये मेरे मुखसे निकल गया, 'यह सारा जगत् वञ्चित हो गया है।' मैंने केवल भक्तिकी बात कही है। भगवान् विष्णुके सम्मुख दूसरेके जलाये दीपकको प्रज्वलित कर देनेमात्रसे ऐसा फल प्राप्त हुआ है। अब जो मैंने मूर्ख होनेकी बात कही, इसका अभिप्राय इतना ही है कि भगवान्के मन्दिरमें दीप-दान करनेके महत्त्वको ये लोग नहीं जानते। मैंने ब्राह्मणों और राजाओंको 'धन्यवाद' इसलिये दिया है कि जो अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भक्तिके साथ उक्त विधिसे श्रीहरिकी उपासना करते हैं, वे धन्यवादके पात्र होते हैं। मुझे उन प्रभुके अतिरिक्त इस जगत्में अन्य कुछ भी नहीं दीखता; अतः मैंने अपनेको भी धन्य कहा। इस स्त्रीको तथा तुम्हें धन्य बतानेका कारण यह है कि यह एक वैश्यके घर सेविका थी और तुम भी सेवाका ही कार्य करते थे। स्वामीके चले जानेपर तुम लोगोंने भगवान्के मन्दिरमें दीपकको प्रज्वलित रखा। अतः यह स्त्री और इससे बढ़कर तुम धन्यवादके पात्र हो। प्रह्लादके शरीरमें आसुर भावनाके बीज थे, फिर भी परमपुरुष परमात्माको छोड़कर उनकी दृष्टिमें अन्य कोई सत्ता न थी, अतः मैंने उन्हें धन्य कहा है। ध्रुवका जन्म राजाके घरमें हुआ था। बचपनमें ही वे वनमें चले गये और वहाँ भगवान् विष्णुकी आराधना कर सर्वोत्कृष्ट सुन्दर स्थान प्राप्त किया। महाराज ! इसलिये मैंने ध्रुवको भी साधु कहा है।

अगस्त्यजीसे राजा भद्राश्वने संक्षेपमें उपदेश देनेकी प्रार्थना की थी, अतः मुनिने कहा—'राजन् अब कार्तिककी पूर्णिमाका पर्व आ गया है। मैं पुष्कर- क्षेत्र जा रहा हूँ'—यों कहकर वे चल पड़े। पुष्कर जाते

…पहेलीको हम नहीं समझ पा रहे हैं । अतः महाभाग ! …दि आप अनुग्रह करना चाहते हों तो मुझे बतानेकी …पा करें ।'

अगस्त्यजी बोले—राजन् ! पूर्वजन्ममें यह रानी …किसी नगरमें हरिदत्त नामक एक वैश्यके घरमें दासीका …काम करती थी । उस समय भी तुम्हीं इसके पति थे । …हरिदत्तके ही यहाँ तुम भी सेवावृत्तिसे एक कर्मचारीका …काम करते थे । एक समयकी बात है, आश्विन मासके …कृष्णपक्षकी द्वादशीका व्रत नियमपूर्वक करनेके लिये वह …य तत्पर हुआ । स्वयं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें …कर पुष्प एवं धूप आदिसे उन प्रभुकी पूजा की । …दोनों—स्त्री एवं पुरुष उस वैश्यकी सुरक्षाके लिये …थे । पूजनोपरान्त वह वैश्य तो अपने …लौट आया । महामते ! दीपक बुझ न जायँ, इस- …तुम दोनोंको वहीं रहनेकी आज्ञा दे दी । उस …के चले जानेपर तुमलोग दीपकोंको भलीभाँति …कर वहीं बैठे रहे । राजन् ! तुमलोग पूरी एक …—जबतक सवेरा न हुआ, तबतक वहाँसे नहीं … । कुछ दिनोंके बाद आयु समाप्त हो जानेके कारण …दोनों स्त्री-पुरुषोंकी मृत्यु हो गयी । उस पुण्यके …वसे राजा प्रियव्रतके घर तुम्हारा जन्म हुआ और …री यह पत्नी, जो उस जन्ममें वैश्यके यहाँ दासीका …करती थी, अब रानी हुई है । यह दीपक …का था । भगवान् विष्णुके मन्दिरमें केवल उसे …त रखनेका काम तुम्हारा था । यह उसीका …फल है । फिर जो अपने द्रव्यसे श्रीहरिके …दीपक प्रज्वलित करे, उसका जो पुण्य है, …संख्या तो की ही नहीं जा सकती । इसीसे …कहा—'राजन् ! आप धन्य हैं ! आप धन्य …सत्ययुगमें पूरे वर्षतक, त्रेतायुगमें आधे वर्ष- …या द्वापरयुगमें तीन महीनोंतक भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करनेसे विद्वान् पुरुष जो फल प्राप्त करते हैं, कलियुगमें उतना फल केवल 'नमो नारायणाय' कहकर प्राप्त किया जा सकता है । इसमें कोई संशय नहीं । इसीलिये मेरे मुखसे निकल गया, 'यह सारा जगत् वञ्चित हो गया है ।' मैंने केवल भक्तिकी बात कही है । भगवान् विष्णुके सम्मुख दूसरेके जलाये दीपकको प्रज्वलित कर देनेमात्रसे ऐसा फल प्राप्त हुआ है । अब जो मैंने मूर्ख होनेकी बात कही, इसका अभिप्राय इतना ही है कि भगवान्के मन्दिरमें दीप-दान करनेके महत्त्वको ये लोग नहीं जानते ।' मैंने ब्राह्मणों और राजाओंको 'धन्यवाद' इसलिये दिया है कि जो अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा भक्तिके साथ उक्त विधिसे श्रीहरिकी उपासना करते हैं, वे धन्यवादके पात्र होते हैं । मुझे उन प्रभुके अतिरिक्त इस जगत्‌में अन्य कुछ भी … दीखता, अतः मैंने अपनेको भी धन्य कहा । …स्त्रीको तथा तुम्हें धन्य बतानेका कारण यह है कि यह … वैश्यके घर सेविका थी और तुम भी सेवाका ही कार्य क… थे । स्वामीके चले जानेपर तुम लोगोंने भगवान्के मन्दि… दीपकको प्रज्वलित रखा । अतः यह स्त्री और इस… प्रकार तुम धन्यवादके पात्र हो । प्रह्लादके शरीर… आसुर भावनाके बीज थे, फिर भी परमपुरुष परमात्मा… छोड़कर उनकी दृष्टिमें अन्य कोई सत्ता न थी, अत… मैंने उन्हें धन्य कहा है । सुव्रत जन्म राजाके घर… हुआ था, वे वर्तमानमें ही वे वनमें चले गये और मह… भगवान् विष्णुकी आराधना कर सर्वोत्कृष्ट सुन्दर… स्थान प्राप्त किया । महाराज ! इसलिये मैंने मुनको… भी साधु कहा है ।

…महर्षि अगस्त्यजीसे राजा भद्राश्वने संक्षेपमें उपदेश …देनेकी प्रार्थना की थी; अतः मुनिने कहा—'राजन् …अब कार्तिककी पूर्णिमाका पर्व आ गया है । मैं पुष्कर- …क्षेत्र जा रहा हूँ ।' यों कहकर वे चल पड़े । पुष्कर जाते

समय ही वे राजा भद्राश्वके महलपर रुके थे और उन मुनिवरने राजाको यहीं द्वादशीव्रत करनेका उपदेश दिया था। चलते समय मुनि राजाको पुत्र-प्राप्तिका आशीर्वाद दे गये।

राजा भद्राश्वने भी भगवान् पद्मनाभकी द्वादशी किया। फलतः वे पुत्र-पौत्र और उत्तम-से-उत्तम सम्पन्न होकर अन्तमें भगवान् पद्मनाभको प्राप्त हुए। (अध्याय

धरणीव्रत

दुर्वासाजी कहते हैं—अगस्त्यजी पुष्कर तीर्थमें जाकर पुनः राजा भद्राश्वके भवनपर ही वापस आ गये। मुनिको अपने यहाँ आये देखकर उन राजाके मनमें महान् हर्ष हुआ। उन धार्मिक नरेशने उन्हें आसनपर बैठाया और पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे पूजा कर कहने लगे—'भगवन्! आपके आदेशानुसार आश्विन मासकी द्वादशीकी व्रतविधिका मैंने अनुष्ठान किया। अब कार्तिक मासमें यह व्रत करनेसे जो पुण्य होता है, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

अगस्त्यजी बोले—राजन्! कार्तिक मासकी विधिपूर्वक द्वादशी-व्रतके और फलकी बात मैं तुमसे कहता हूँ, तुम उसे सावधान होकर सुनो। व्रतीको मेरे द्वारा पहले बताये विधानके अनुसार संकल्प करके स्नान करना चाहिये। फिर भगवान् नारायणकी 'ॐ सहस्रशिरसे नमः,' 'ॐ पुरुषाय नमः,' 'ॐ विश्वरूपिणे नमः,' 'ॐ ज्ञानास्त्राय नमः,' 'ॐ श्रीवत्साय नमः,' 'ॐ जगद्ग्रसिष्णवे नमः,' 'ॐ दिव्य-मूर्तये नमः' तथा 'ॐ सहस्रपादाय नमः,'—इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः शिर, भुजा, कण्ठ, अस्त्रों, हृदयदेश, उदर, कटिभाग तथा चरणदेशकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष अनुलोम-क्रमसे भी पूजन करें। फिर 'ॐ दामोदराय नमः' कहकर सभी अङ्गोंकी एक साथ पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार पूजाकर प्रतिमाके सामने चार कलश रखकर उनमें रत्न डालकर उन्हें ... कर पुष्पमालासे अलङ्कृत तथा श्वेत वस्त्रसे आवे और उनपर तिलपूर्ण ताँबेका पात्र रखे। महाराज उनमें चारों समुद्रकी कल्पना करे। फिर मध्यभागमें भगवान् श्रीहरिकी प्रतिमा स्थापित कर वि पूजा करनी चाहिये। उस दिन रातमें जागरण भगवान्‌की मानसिक पूजा कर वैष्णव-यज्ञका अ करे। बहुत-से योगी पुरुष सोलह दलवाले योगीश्वर प्रभुकी अर्चना करते हैं। इस प्रकार पूजा कार्य समाप्त हो जानेपर प्रातः चार समुद्रोंकी भा कलशोंको चार ब्राह्मणोंको दान कर दे। प्र पाँचवें वेदज्ञ ब्राह्मणको देनी चाहिये। अथवा चार प्रतिमाएँ भी देनेकी विधि है। यदि ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण पञ्चरात्र-आगमके आचार्य तो सर्वोत्तम है; उन्हें देनेपर हजार व्रतोंका फल प्राप्त हो है। जो इस व्रतके रहस्यको स्पष्ट बतानेमें कुशल तथा मन्त्रोच्चारणपूर्वक विधि सम्पन्न कराते हैं, ऐ व्यक्तिको दान करनेसे वह करोड़ गुणा फल दे है। अपने गुरुके रहते, दूसरेका आश्रय लेनेवाले और उसकी पूजा करनेवालेकी दुर्गति होती है। उसके किये हुए किसी दानका कोई फल नहीं, अतः प्रयत्न करके सर्वप्रथम गुरुका सम्मान करना चाहिये। इसके बाद दूसरेको दे। गुरु पढ़ा-लिखा हो अथवा कुछ भी न जानता हो, फिर भी उसे भगवान् श्रीहरिका स्वरूप जानना चाहिये। गुरु चाहे उत्तम मार्गका अनुसरण करता हो अथवा अधम

…मार्गका; किंतु शिष्यके लिये एकमात्र यही गति है। …जो व्यक्ति पहले गुरुका सम्मान कर फिर मूर्खताके … कारण पीछे उसके प्रतिकूल व्यवहार करता है, वह …पतित होता है और करोड़ युगोंतक उसे नरककी यातना भोगनी पड़ती है।

इस प्रकार दानकर द्वादशीके दिन भगवान् विष्णुकी पुनः विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। इसका नाम 'धरणीव्रत' है। पूर्वकालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका आचरण किया था। फलस्वरूप वे प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित हुए और अन्तमें मुक्त होकर सनातन श्रीहरिमें लीन हो गये। हैहयवंशी कृतवीर्य नामक नरेशने भी यह व्रत किया था, जिसके प्रभावसे उसे कार्तवीर्य नामक पुत्र प्राप्त हुआ। अन्तमें वह भी सनातन श्रीहरिके लोकमें चला गया। शकुन्तलाने भी इसी प्रकार यह व्रत किया था, जिससे वह चक्रवर्ती राजा भरतकी माता बनी। यों ही प्राचीन समयमें अनेक चक्रवर्ती राजाओंने उक्त विधिसे यह व्रत किया है और इसके प्रतापसे वे प्रमुख चक्रवर्ती हो गये हैं— यह बात वेदोंमें बतायी गयी है। प्राचीन समयमें पातालमें डूबकर कालक्षेप करती हुई पृथ्वीने भी इस उत्तम व्रतको किया था। तभीसे यह व्रत धरणीव्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पृथ्वीद्वारा यह व्रत सम्पन्न होते ही भगवान् श्रीहरिने परम संतुष्ट होकर उसी समय वराहका रूप धारण किया और इस प्रकार उसे ऊपर उठा लाये, जैसे नौका जलमें डूबते हुए प्राणीको बचा लेती है। मुने! इस धरणीव्रतका स्वरूप मैंने तुम्हें बता दिया। जो श्रेष्ठ पुरुष इस प्रसङ्गको सुनेगा अथवा भक्तिके साथ इस व्रतको करेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो अन्तमें भगवान् विष्णुके परम धामको ही प्राप्त होगा।

(अध्याय ५०)

अगस्त्य-गीता

[नासदीय सूक्त—व्याख्या]

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! दुर्वासा मुनिके कहे हुए इस उत्तम धरणीव्रतको सुनकर सत्यतपा उसी क्षण हिमालयके संनिकट एक ऐसे पवित्र स्थानपर चले गये, जहाँ पुष्पभद्रा नामकी … …शिला नामक …सिद्ध पहाड़ … । उन … किया। … गयी। परम प्रभो! जातिस्मरता प्राप्त होने—पूर्वजन्मोंकी बात स्मरण आ जानेके कारण मेरे मनको बड़ी शान्ति मिल रही है। भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि अगस्त्य मुनि राजा भद्राश्वके भवनपर पुनः कब आये और उनकी आज्ञासे राजाने फिर क्या किया? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

वराह बोले—राजा भद्राश्व सदा श्वेत (उजले घोड़े …) ही चढ़ते थे। जब अगस्त्य …हाँ आये तो उन्होंने उन्हें उत्तम … पहलेसे भी बढ़कर उनकी पूजा की

और पूछा—'भगवन् ! वह कौन-सा ऐसा कर्म है, जिसे करनेसे संसारसे मुक्ति मिल सकती है। अथवा देहधारी एवं बिना देहवाले—सभी प्राणियोंके लिये कौन-सा कर्म वैध है, जिसका सम्पादन कर लेनेपर उनके सामने शोक नहीं आ सकता।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! सावधानीसे सुनो। यह कथा दृष्ट एवं अदृष्ट—दोनों लोकोंसे सम्बद्ध है। यह बात उस समयकी है, जब कि दिन, रात, नक्षत्र, दिशाएँ, आकाश, देवता एवं सूर्य—इन सबका नितान्त अभाव था। उस क्षण पशुपाल नामक एक पुरुष शासन कर रहे थे। एक समयकी बात है—पशुओंकी रक्षा करते समय उनके मनमें पूर्वी समुद्र देखनेकी उत्कण्ठा जगी और वे तुरंत चल पड़े। उस महासागरके तटपर एक वन था और वहाँ बहुत-से सर्प निवास करते थे। वहाँ आठ वृक्ष थे और एक स्वच्छन्दगामिनी नदी थी। तिरछे एवं ऊपरकी ओर गमन करनेवाले अन्य प्रधान पाँच पुरुष भी थे। एक विशिष्ट पुरुष था, जिसके प्रसादसे तेजके कारण चमकनेवाली एक स्त्री शोभा पा रही थी। उस समय हजार सूर्यों-जैसी आकृतिवाले उस महान् पुरुषको उस स्त्रीने अपने वक्षःस्थलपर स्थान दे रखा था। उस पुरुषके अधरपर तीन रंगवाले तीन विकार विराजमान थे। वही पुरुष उसका संचालक था। उसकी गति कहीं रुकती न थी। उसे देखकर वह स्त्री मौन हो गयी। तब वह प्रबन्धक पुरुष भी उस वनमें चला गया। उसके वनमें प्रविष्ट होते ही क्रूर स्वभाववाले आठ सर्प राजाके पास पहुँचे और उन प्रभुके चारों ओर लिपट गये। सर्पोंके आक्रमणसे राजा चिन्तित होकर सोचने लगे कि इनका संहार कैसे हो ! जानना चाहा और कहा—'मेरे लिये दुष्ट क[...] चाहिये।' तब प्रधान पुरुषने पूछा—'कहाँ [...] विचार करते हो ?' साथ ही उस पुरुषका नाम 'सत्य'[...] दिया। अब उस पुरुषने उन जगन्नियन्ता [...] साथ रहनेकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। [...] कहा—'तुम्हें जगत्की जानकारी रखना [...] है।' इसपर उस स्त्रीने कहा—'इस जगत्में ओतप्रोत हूँ।' तब जो दूसरा पुरुष प्रकट [...] उसने कहा 'तुम डरो मत।' इसके बाद [...] पुरुष राजाके पास जाकर स्वयं स्थित हो ग[ये]।

तदनन्तर दूसरे पाँच पुरुष आये और राजाके चारों ओर खड़े हो गये। [...] उन डाकुओंने शस्त्र उठाकर प्रधान राजाको म[ारने] की तैयारी कर ली। फिर डर जानेके कारण दूसरेमें वे लीन हो गये। उनके लीन होने[पर] राजाका भवन विशेषरूपसे सुशोभित होने लगा। [...] फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँ[च] महाभूतोंने अपना एक समूह बनाया। उस सम[य] वायुका रूप शीतल एवं सुखदायी था। अन्य भी [...] उत्तम गुण एवं प्रकाशसे संपन्न थे। ये भी राजभवन[में] आये। तब उन प्रधान पुरुष पशुपालके सूक्ष्म रूपको देखकर तीन वर्णवाले पुरुषने उनसे कहा—'महाराज ! मे[रा] कोई पुत्र नहीं है।' उस समय पशुपालने पूछा—'भ[ला] इसके आपके लिये मैं क्या करूँ ?' फिर तीन वर्णवाले पुरुषने उत्तर दिया—'हम लोग आपको बन्धनमें डालना चाहते थे यद्यपि हमने प्रयत्न भी किया, किंतु असफल रहे। राजन् ! ऐसी स्थितिमें अब हम आपके शरीरमें आश्रय पाना चाहते हैं। मुझपर आपकी पुत्र-भावना होनी चाहिये।'

राजन् ! इस प्रकार तीन वर्णवाले पुरुषके [...] राजा पशुपालने उनसे [...]

अगस्त्य-गीतामें पशुपालका चरित्र

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पशुपालसंज्ञक परम प्रभुने एक पुरुषका सृजन किया और उसे शासनकी आज्ञा दे दी। स्वतन्त्र होनेके कारण वह पुरुष राजा बन गया। उस पुत्रमें तीन रंग थे। उसने अहंकार नामक पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्रसे अवबोधस्वरूपिणी एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याने ज्ञान प्रदान करनेकी योग्यतावाले एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभी रूपोंका समावेश था और वे विषयोंको भोगनेकी रुचि रखते थे, जो इन्द्रिय कहलाये। अब सबने रहनेका एक सुन्दर भवन बना लिया। उनका वह मन्दिर ऐसा था, जिसमें नौ दरवाजे हुए और चारों ओर जानेवाला एक स्तम्भ हुआ। जलसे सम्पन्न हजारों नदियाँ उसे सुशोभित कर रही थीं। राजा पशुपाल साकार रूप धारणकर अब पुरुषके रूपमें विराजने लगे। वेद और छन्द उन्हें स्मरण हो आये। फिर उन वेदोंमें प्रतिपादित नियम एवं यज्ञ—इन सबकी उन्होंने व्यवस्था की।

राजन्! किसी समयकी बात है—राजा पशुपालके मनमें आनन्दके अभावका अनुभव हुआ। अब उन्होंने संसारकी सृष्टि करनेकी इच्छा की और योगमायाका आश्रय लेकर एक ऐसा पुत्र प्रकट किया, जिसके चार मुख, चार भुजाएँ, चार वेद और चार पथ हुए। महामते! समुद्र, वन और तृणसे लेकर हाथीप्रभृति पशुतकमें उनका प्रवेश है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! प्रस्तुत कथा प्रायः मेरे, तुम्हारे तथा अखिल जन्तुओंके शरीरमें समान रूपसे चरितार्थ होती है। पशुपालमें जिसकी उत्पत्ति हुई, उसके चार चरण और चार मुख थे। उन्हींको इस कथाका उपदेष्टा एवं प्रवर्तक कहा गया है। सत्यस्वरूप स्वर ही उसका पुत्र है। उसने जो कुछ कहा है, वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारोंका साधन है। पुरुषोंका इन चारोंसे सम्बन्ध है। भक्तिपूर्वक उपासना करनेवालेको ये सुलभ हो जाते हैं। इनमें जो प्रथम धर्म है, उसका दूसरा रूप वृषभका है। उसके चार सींग हैं। उसीका अर्थ और काम भी अनुसरण करते हैं। चौथी मुक्ति है। जो भक्तिके साथ उसका आदर करता है, उसे वह परब्रह्म परमात्मा सुलभ हो जाता है। इस ब्रह्मका ही सनातन अंश मनुष्योंमें व्यक्त रूपसे विराजमान है। अतः मनुष्य प्रथम अवस्थामें ब्रह्मचारीके रूपमें रहे। दूसरी अवस्थामें धर्मका आश्रय लेकर सेवक-वर्गका भरण-पोषण करना चाहिये। तीसरी अवस्था वानप्रस्थ बतायी गयी है। इस अवस्थामें भी उसका अन्तःकरण धर्मयुक्त होना आवश्यक है।

इसके पश्चात् उस परब्रह्मने—'अहमस्मि' केवल मैं ही हूँ—यों कहा। फिर वह एक दूसरे ही प्रकार, एक एवं दो प्रकारके रूपसे विराजने लगा। भिन्न प्रकारके उत्पन्न होनेके कारण उसकी भुजाएँ भी उसीका अनुसरण करने लगीं। सर्वप्रथम चार मुखवाले ब्रह्माने देखा कि कुछ प्रजाएँ नित्य और कुछ अनित्य हैं। राजन्! तब ब्रह्माके मनमें विचार उठा कि मैं कैसे पिताजीसे मिलूँ। क्योंकि मेरे पिताजी एक महान् पुरुष हैं। उनमें जो गुण हैं, वे उनकी इन संतानोंमें किसीमें भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। स्वरकी दृष्टिके प्रकरणमें एक ऐसी श्रुति है कि जो पिताके पुत्रका पुत्र है, उसे अपने पितामहके नामका संरक्षक होना चाहिये। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं है। यहाँ भी ऐसा अवसर मिलना आवश्यक है, जहाँ पिताका भाव दीख पड़े।

१. यहाँ पशुपाल परब्रह्म परमात्मा तथा चार मुखवाले ब्रह्मा हैं।

अब मुझे क्या करना चाहिये—ब्रह्माजी यह सोच ही रहे थे कि परमपिता परमात्माके मनमें रोष आ गया। अब ब्रह्माने स्वर मथना आरम्भ किया, जिससे स्वरका सिर प्रकट हो गया। उसकी आकृति नारियलके फलके समान थी। ब्रह्माजीके प्रयाससे यह स्वर फिर विभक्त हो गया। अब वे प्राण, अपान, उदान, समान एवं व्यान रूपसे सामने आ गये। अब ब्रह्माने उन्हें ठहरनेका स्थान बता दिया।

इस प्रकार अथक परिश्रम करनेके पश्चात् जब समर्थ ब्रह्माने पुनः प्राणि-शरीरपर दृष्टि डाली तो उन्हें शरीरके भीतर अपने पिता परमात्माकी झाँकी दृष्टिगोचर हुई। सम्पूर्ण प्रा प्रसरेणुके समान सूक्ष्म रूप धारण कर वे विराजमान थे। वे ही सर्वोपरि विराजमान सर्वव्यापक हैं। सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टिमें हम करनेवाला यह इतिहास अपना प्रथम स्थान ल है। जो इसे तत्त्वसे जानता है, उसे उत्तम क करनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है।

(अध्याय ५२ ११)

—————

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत

राजा भद्राश्वने पूछा—विप्रवर ! विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्तिके लिये पुरुषको किस देवताकी आराधना करनी चाहिये और उनके आराधनकी कौन-सी विधि है ! मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिये।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् विष्णु ही सदा सभीके द्वारा—भिन्न-भिन्न देवताओंद्वारा भी आराध्य हैं। अब इनके पूजनका प्रकार बताता हूँ, जिससे वर-प्राप्ति हो सकती है। देवताओं, मुनियों एवं मानवों—प्रायः सभीके लिये यह रहस्यकी बात है—भगवान् नारायण ही सर्वोपरि देवता हैं। उन्हें प्रणाम करनेपर प्राणी क्लेश नहीं पाता। राजन् ! सुना जाता है—महात्मा नारदजीने पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके इस व्रतको अप्सराओंको बतलाया था।

अप्सराओंने पूछा—नारदजी ! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।

नारदजी कहते हैं—प्रायः सबके लिये कल्याण- दायक नियम यह है कि प्रस्त ... पूर्वक प्रणाम करे। पर तुम लोगोंने इस नियमका प नहीं किया; क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फि तुम लोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका की करो। उनसे वर माँगो—'प्रभो ! आप हमारे स्वा होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोर सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीह स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र औ वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान् श्रीहरिकी पूजा करें। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि भगवान्‌की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक मण्डल बनवाये। नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें जागरण करे।

'ॐ भवाय नमः', 'ॐ अनङ्गाय नमः', 'ॐ कामाय नमः', 'ॐ सुशास्त्राय नमः', 'ॐ मन्मथाय नमः' तथा 'ॐ हरये नमः' कहकर क्रमशः भगवान्‌के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवानको

... रात्रि-जागरणकी विधि ...

भगवान्‌की वह प्रतिमा वेद-वेदाङ्गके जानकार ब्राह्मणको दान कर दे ।

अप्सराओ ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे। इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरका पूजा करना । सुन्दरियो ! तुमने मुझे प्रणाम किये बिना जो प्रश्न किया है, उससे अष्टावक्रद्वारा तुम्हारे उपहास-पर शाप भी मिलेगा । फलस्वरूप गोपलोग तुम्हें हर लेंगे ।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे चले गये। उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की । फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट होकर उनके पति हुए ।

(अध्याय ५४)

शुभ-व्रत

[कुब्जाम्रेश्वर हृषीकेश-माहात्म्य]

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं व्रतोंमें उत्तम शुभसंज्ञक व्रतका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो । महाभाग ! इसके प्रभावसे भगवान् विष्णुका दर्शन सुलभ हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं । मार्गशीर्ष मासके प्रथम दिन इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये । इसमें दशमीको एक समय भोजन करनेका नियम है । उस दिन स्नान करके दोपहरमें भगवान् विष्णुकी पूजा करे । एकादशीके दिन उपवासकर ब्राह्मणोंको विधिके साथ यव देना चाहिये । उस समय दान, होम एवं अर्चन—इन सभी क्रियाओंमें सदा भगवान् श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करना चाहिये । राजेन्द्र ! अगहन, पूस, माघ एवं फाल्गुन—इन चार महीनोंमें ऐसे ही नियमोंका पालन करना समुचित है । उपवास करके पूजा सम्पन्न करे । फिर विद्वान् पुरुष चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़—इन चार महीनोंमें उसी तरह संयमपूर्वक व्रत करे । इस चौमासेमें ब्राह्मणोंके लिये प्रीतिपूर्वक पात्रसहित सत्तू दान करना चाहिये । श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन तीन महीनोंमें अगहन मासमें तैयार होनेवाले धानको बाँटनेका विधान है । इन तीन मासोंकी अवधि कार्तिक आरम्भ होनेके पूर्वतक मानी जाती है । इन महीनोंमें भी पूर्व-जैसे ही उपवास करके पूजा करनेका नियम है । दशमीके दिन संयमशील एवं पवित्र रहे । एकादशीके दिन बुद्धिमान् व्यक्ति मासके नामका उच्चारण करके भक्तिके साथ भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे । द्वादशीके दिन व्रतको समाप्त करे ।

राजन् ! एकादशीके दिन पर्वत एवं पातालके रूपसे अङ्कित पृथ्वीकी सुवर्णमयी प्रतिमाके पूजन एवं दानका विशेष महत्त्व है । भगवान् श्रीहरिके सामने उस प्रतिमाको स्थापितकर उसे दो सफेद वस्त्रोंसे ढक दे, पासमें बीज बिखेर दे और रातमें जागरण करे । फिर प्रातःकाल चौबीस ब्राह्मणोंको आमन्त्रित कर प्रत्येक ब्राह्मणको गाय, दो वस्त्र, सुवर्णमयी अँगूठी तथा कुण्डल आदि आभूषण दे । राजन् ! यदि व्रती पुरुष राजा है तो वह प्रत्येक ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दे और दक्षिणामें सुवर्णसे बनी हुई पृथ्वीकी प्रतिमा, दो गौ और दो वस्त्र दे । अथवा अपनी सम्पत्तिके अनुसार चाँदीकी पृथ्वी बनवाये और भगवान् श्रीहरिको स्मरण करते हुए उसे ब्राह्मणोंको अर्पण कर दे । निमन्त्रित ब्राह्मणोंको भोजन,

छाता और खड़ाऊँ भी दे। तत्पश्चात् प्रार्थना करे— 'भगवान् कृष्ण, दामोदर, श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' राजन्! इस व्रतके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी एक प्रसङ्ग सुनाता हूँ।

सत्ययुगमें एक महाधार्मिक राजा थे। उन्होंने ब्रह्माजीसे पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा। तब ब्रह्माजीने उन्हें यह व्रत बता दिया और राजा इस व्रतको करनेमें संलग्न हो गये। राजन्! व्रत समाप्त हो जानेपर विश्वात्मा श्रीहरि राजाके सामने पधारे और कहा— 'राजन्! तुम मुझसे वर माँगो।'

राजाने कहा—'देवेश! मुझे ऐसा पुत्र देनेकी कृपा कीजिये, जो वैदिक मन्त्रोंका पूर्ण जानकार, दूसरोंका यज्ञ करानेवाला, स्वयं यज्ञ करनेमें तत्पर, कीर्तिसम्पन्न, दीर्घायु, असंख्य सद्गुणोंसे युक्त, ब्राह्मणोंमें निष्ठा रखनेवाला तथा शुद्ध अन्तःकरण-सम्पन्न हो तथा जहाँ पहुँच जानेपर फिर सोच करनेका अवसर सामने नहीं आता, वह मोक्ष प्रदान कर दे।' इसपर श्रीहरि 'एवमस्तु'—कहकर अन्तर्धान हो गये। अब राजाके घर समयानुसार पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'वत्सश्री' रखा गया। वह वेद-वेदाङ्गका पूर्ण जानकार था। भगवान् विष्णुके प्रसादस्वरूप उस प्रतापी पुत्रको पाकर राजा तपस्या करनेके विचारसे निकल पड़े। वे हिमालय पर्वतपर इन्द्रियोंको वशमें करके तथा निराहार रहकर भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए इस प्रकार स्तुति करने लगे।

राजाने कहा—क्षर एवं अक्षर—अखिल जगत् जिनका रूप है, जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं, देहधारियोंके लिये परम पद, इन्द्रियोंके अविषय, विश्वको रक्षा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा अजन्मा आदि ... हुए हैं, उन भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले प्र... मैं स्तुति करता हूँ। देवताओं एवं दा... निरन्तर प्रार्थना करनेपर सृष्टि करनेके लि... आपने इस जगत्की रचना की है। भगवन्! ... सदा एक कूटस्थ रूपसे आसीन रहकर ... संसारकी सृष्टि करते हैं। प्रभो! आप वराह ... नृसिंह आदि अनेक अवतार धारण कर चुके हैं। पर आपके अवतार लेनेकी यह बात भी मायिक ही है, तथ्य नहीं।* नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृ... बुद्ध, कल्कि, वरेश, शम्भु एवं त्रिभुवननिधान नामोंसे सम्बोधित होनेवाले भगवन्! आ... मेरा निरन्तर प्रणाम है। विष्णो! आ... आदि यज्ञपुरुष हैं। यज्ञकी सामग्री हवि अ... आपका ही रूप है। यज्ञ, ऋत्विक् और घृत— सब आप ही हैं। कमलनेत्र! मैं आपकी शर... आया हूँ, इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।

स्तुतिके अन्तमें परम प्रभु प्रसन्न हुए। वे ए... कुबड़े ब्राह्मणका वेष धारणकर वहाँ आये। उनके वहाँ पधारते ही आमका वृक्ष भी वैसा ही कुबड़ा बन गया। उन राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे विशाल वृक्षका यह छोटा रूप कैसे हो गया—फिर सोचा कि परम प्रभुकी संनिधिका यह परिणाम है। फिर उन्होंने ब्राह्मण-वेषधारी प्रभुको प्रणाम किया। साथ ही कहा—'भगवन्! आप परम पुरुष परमात्मा हैं। अवश्य ही मुझपर कृपा करनेके लिये आपका यहाँ पधारना हुआ है। हरे! अब आप अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन करानेकी कृपा कीजिये।'

जब राजाने इस प्रकार भगवान् श्रीहरिसे प्रार्थना की, तो वे शङ्ख, चक्र एवं गदा हाथमें लिये हुए

* द्रष्टव्य—'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा ... सम्भवाम्यात्ममायया॥ (गीता ४।६)

सौम्य रूप धारण कर उनके सामने विराजमान हो गये और यह वचन कहा—'राजेन्द्र ! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, वह मुझसे माँग लो।' भगवान् श्रीहरिके यों कहनेपर राजाकी आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। साथ ही कहा—'देवेश ! आप मुझे मोक्ष देनेकी कृपा करें।' राजाकी ऐसी बात सुनकर पुनः श्रीभगवान् बोले—'राजन् ! मेरे यहाँ आनेपर इस विशाल आम्रके वृक्षमें जो कुब्जत्व आ गया है, इसके परिणामस्वरूप यह स्थान कुब्जाम्रक (ऋषिकेशका नामान्तर) तीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगा। इस उत्तम तीर्थमें मानव अथवा पशु-पक्षी आदि योनिवाले भी यदि अपने शरीरका त्याग करेंगे तो उनको ले जानेके लिये पाँच सौ दिव्य विमान उपस्थित होंगे और वहाँके उन योगियोंकी मुक्ति हो जायगी।'

महाराज ! इस प्रकार कहकर भगवान् जनार्दनने शङ्खके अग्रभागसे राजाका स्पर्श किया। केवल स्पर्श होते ही उन नरेशको परम निर्वाण-पद प्राप्त हो गया। अतएव तुम भी उन परम प्रभुकी शरण ग्रहण करो, जिससे शोक करनेके योग्य पद तुम्हें पुनः प्राप्त न हो सके। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर यह चरित्र पढ़ेगा, उसे भगवान् श्रीहरि धर्म एवं मोक्ष प्रदान करेंगे। राजन् ! जो इस परम पवित्र शुभव्रतको करेगा, उसे इस संसारमें सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति और भोग सुलभ होंगे एवं आयु समाप्त होनेपर वह भगवान्में लीन हो जायगा।

(अध्याय ५९)

धन्यव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद अब उत्तम धन्यव्रत बताता हूँ, जिसके प्रभावसे निर्धन व्यक्ति भी यथाशीघ्र धन्यवादका पात्र हो सकता है। यह नक्तव्रत* है। अगहन मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतमें अग्नि-स्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजाका विधान है। ॐ वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ हविर्भुजाय नमः, ॐ द्रविणोदाय नमः, ॐ संवर्ताय नमः तथा—ॐ ज्वलनाय नमः—इन मन्त्र-वाक्योंका उच्चारण करके अग्निमय भगवान् श्रीहरिके चरण, उदर, वक्षःस्थल, भुजाएँ, सिर तथा सर्वाङ्गकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। इस विधानसे देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी अर्चना करनेके पश्चात् उनके सामने एक हवनकुण्ड बनवानेकी विधि है। विद्वान् पुरुष इन्हीं उक्त मन्त्रोंद्वारा उस कुण्डमें हवन करे। इस व्रतमें यवान्न और घृतसे युक्त भोजन करनेकी बात कही गयी है। यह व्रत ऐसा ही कृष्णपक्षमें भी होता है। चार महीनेतक इसे करना चाहिये। चैत्रसे आषाढ़तक चार महीनोंमें घृतयुक्त खीर तथा श्रावणसे कार्तिकतक सत्तूका भोजन करनेका नियम है। इस प्रकार एक वर्षमें यह व्रत समाप्त होता है। व्रत पूरा हो जानेपर विद्वान् पुरुष अग्निदेवकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाये और दो लाल वस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर लाल फूलसे पूजा करे और लाल चन्दन एवं कुङ्कुमका अनुलेपन करे। फिर ब्राह्मणकी पूजा करे। उसे दो वस्त्र अर्पण करे और वह प्रतिमा उस ब्राह्मणको दे दे। तदनन्तर यह मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे—'भगवन् ! इस 'धन्य' नामक व्रतको सम्पन्न करनेसे मैं धन्य हो गया, मेरा कर्म धन्य हो गया तथा मेरी चेष्टा धन्य हो गयी। अब मुझे सदा सुख-शान्ति सुलभ

* जिस व्रतमें दिनभर व्रत करके रातमें चार घड़ीके बाद भोजन किया जाता है, उसे 'नक्तव्रत' कहते हैं।

हो जानेपर स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट हुए और उनका यक्ष्मा रोग दूरकर उन्हें अमृता कला प्रदान की। महाभाग चन्द्रमाने उस को द्वितीयाके बाद सदा अपनेमें स्थान दिया। यह कला उनके प्रभावसे ही उपलब्ध हुई है। ही नहीं, वे सोम और द्विजराज भी कहलाने लगे। पक्षकी द्वितीया तिथिके दिन सोमरस पीनेवाले दोनों अश्विनीकुमारोंका कीर्तन करना चाहिये। ये दोनों शुक्लपक्षकी द्वितीयाके चन्द्रमामें शेष और विष्णु नामसे विख्यात होकर सुशोभित होते हैं—इसमें कोई संशय नहीं। राजेन्द्र! भगवान् विष्णु परम पुरुष परमात्मा हैं। उनसे भिन्न कोई देवता नहीं है। वे ही अनेक नाम धारण कर सर्वत्र (सभी देवताओंके रूपमें) विराजित हैं। (अध्याय ५७)

—०—

सौभाग्य-व्रत

भगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब उस सौभाग्य- सुनो, जिसके आचरणसे स्त्री एवं पुरुषोंको शीघ्र यकी प्राप्ति होती है—भाग्यका उदय हो जाता फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको के रूपमें व्रतीको पवित्र एवं सत्यवादी उपवास करना चाहिये। इस व्रतमें हित भगवान् श्रीहरिकी अथवा उमासहित शंकरकी पूजाका विधान है। जो लक्ष्मी हैं, गिरिजा हैं और जो श्रीहरि हैं, वे ही तीन हर भी हैं—सम्पूर्ण वेदशास्त्रों एवं यही बात सुस्पष्ट निर्दिष्ट है। किंतु इसके विपरीत यह कहता है कि रुद्र भिन्न हैं, वह किसी अच्छे रचना है, पर उसे शास्त्र कदापि जा सकता। अतः विष्णु रुद्रके ही स्वरूप हैं गौरीकी ही अन्यतम प्रतिकृति हैं—यही समुचित है। जो इन दोनोंमें भेद बतलाता निकृष्ट है।

राजेन्द्र! फिर व्रती पुरुष यत्नपूर्वक लक्ष्मीसहित श्रीहरिकी भलीभाँति पूजा करे। उन परम प्रभुके पूजनके मन्त्र यों हैं—ॐ गम्भीराय नमः, ॐ सुभगाय नमः, ॐ देवदेवाय नमः, ॐ त्रिनेत्राय नमः, ॐ वाचस्पतये नमः, ॐ रुद्राय नमः—इन मन्त्रोंके द्वारा क्रमशः उनके दोनों चरण, कटिभाग, उदर, मुख, सिर एवं सभी अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। इस विधिके अनुसार पूजा कर मेधावी मनुष्य लक्ष्मीसहित विष्णुकी और गौरीसहित शंकरकी पुष्प-चन्दन आदि उपचारोंद्वारा पूजा करे। तदनन्तर मूर्तिके सामने मधु एवं घृतसे हवन करना चाहिये। महाराज! यदि सर्वोत्तम सौभाग्य पानेकी कामना हो तो तिल और घृतसे हवन कराये। इस दिन बिना नमक तथा घृतके शुद्ध गेहूँसे तैयार किया हुआ भोजन पृथ्वीपर ही बैठकर करना चाहिये। कृष्ण-पक्षके लिये भी यही विधि बतायी जाती है। आषाढ़से लेकर आश्विनतकके चार महीनोंमें यह व्रत प्रतिपदा तिथिके दिन होता है और द्वितीयाको

. अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टीरतिर्धृतिः। शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा॥
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः॥ (शारदातिलक २। ११-१३)
इस तन्त्रवचनानुसार 'अमृता' शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी चन्द्रकला है।

पूर्ण हो जानेपर स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट हो गये और उनका यक्ष्मा रोग दूरकर उन्हें अमृता[1] नामकी कला प्रदान की । महाभाग चन्द्रमाने उस कलाको द्वितीयाके बाद सदा अपनेमें स्थान दिया । उन्हें यह कला तपके प्रभावसे ही उपलब्ध हुई है । इतना ही नहीं, वे सोम और द्विजराज भी कहलाने लगे । शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिके दिन सोमरस पीनेवाले दोनों अश्विनीकुमारोंका कीर्तन करना चाहिये । ये दोनों शुक्लपक्षकी द्वितीयाके चन्द्रमामें शेष और विष्णु नामसे विख्यात होकर सुशोभित होते हैं—इसमें कोई संशय नहीं । राजेन्द्र ! भगवान् विष्णु परम पुरुष परमात्मा हैं । उनसे रिक्त कोई देवता नहीं है । वे ही अनेक नाम धारण कर सर्वत्र (सभी देवताओंके रूपमें) विराजित हैं । (अध्याय ५७)

सौभाग्य-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब उस सौभाग्य-व्रतको सुनो, जिसके आचरणसे स्त्री एवं पुरुषोंको शीघ्र सौभाग्यकी प्राप्ति होती है—भाग्यका उदय हो जाता है । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको नक्तव्रतके रूपमें कर्ताको पवित्र एवं सत्यवादी होकर उपवास करना चाहिये । इस व्रतमें लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीहरिकी अथवा उमासहित महाभाग शंकरकी पूजाका विधान है । जो लक्ष्मी हैं, वही गिरिजा हैं और जो श्रीहरि हैं, वे ही तीन नेत्रवाले हर भी हैं—सम्पूर्ण वेदशास्त्रों एवं पुराणोंमें यही बात सुस्पष्ट निर्दिष्ट है । किंतु जो शास्त्र इसके विपरीत यह कहता है कि 'विष्णुसे रुद्र भिन्न हैं, वह किसी अच्छे कविकी रचना है, पर उसे शास्त्र कदापि नहीं कहा जा सकता । अतः विष्णु रुद्रके ही स्वरूप हैं, और लक्ष्मी गौरीकी ही अन्यतम प्रतिकृति हैं—यही कहना समुचित है । जो इन दोनोंमें भेद बतलाता है, वह निकृष्ट है ।

राजेन्द्र ! फिर व्रती पुरुष यत्नपूर्वक लक्ष्मीसहित श्रीहरिकी भलीभाँति पूजा करे । उन परम प्रभुके पूजनके मन्त्र यों हैं—**ॐ गम्भीराय नमः, ॐ सुभगाय नमः, ॐ देवदेवाय नमः, ॐ त्रिनेत्राय नमः, ॐ वाचस्पतये नमः, ॐ रुद्राय नमः**—इन मन्त्रोंके द्वारा क्रमशः उनके दोनों चरण, कटिभाग, उदर, मुख, सिर एवं सभी अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये । इस विधिके अनुसार पूजा कर मेधावी मनुष्य लक्ष्मीसहित विष्णुकी और गौरीसहित शंकरकी पुष्प-चन्दन आदि उपचारोंद्वारा पूजा करे । तदनन्तर मूर्तिके सामने मधु एवं घृतसे हवन करना चाहिये । महाराज ! यदि सर्वोत्तम सौभाग्य पानेकी कामना हो तो तिल और घृतसे हवन कराये । इस दिन बिना नमक तथा घृतके शुद्ध गेहूँसे तैयार किया हुआ भोजन पृथ्वीपर ही बैठकर करना चाहिये । कृष्ण-पक्षके लिये भी यही विधि बतायी जाती है । आषाढ़से लेकर आश्विनतकके चार महीनोंमें यह व्रत प्रतिपदा तिथिके दिन होता है और द्वितीयाको

१. अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टीरतिर्धृतिः । शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः ॥ (शारदातिलक २ । १२-१३)
इस तन्त्रवचनानुसार 'अमृता' शुक्लपक्षकी द्वितीयाकी चन्द्रकला है ।

पारण करनेकी विधि है। इन महीनोंमें यह व्रत सावधानीसे करना चाहिये। राजन्! इसके पश्चात् कार्तिकसे फाल्गुन—तीन महीनोंमें व्रती पुरुष पवित्रतापूर्वक संयमसे रहकर श्यामाक (साँवा)का भोजनमें उपयोग करे। नरेश! फिर माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके दिन बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार पार्वती-शंकर तथा लक्ष्मी-नारायणकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाकर किसी सत्पात्र एवं विद्वान् ब्राह्मणको अर्पण कर दे। जिसके पास अन्नका अभाव हो, वेदका जो पारगामी विद्वान् हो, जो सदा दूसरोंका उपकार करता हो, जिसका आचरण पवित्र हो तथा जिसके ... रखता हो, ऐसे ब्राह्मणको यह प्रतिमा देनी चाहिये। साथ ही दानमें छः पात्र भी देनेकी विधि है। ... लिये छः तरहके ये पात्र क्रमशः मधु, घृत, तिल, तैल, गुड़, लवण एवं गायके दूधसे पूर्ण। पात्रोंके दान करनेके प्रभावसे व्रत करनेवा... स्त्री अथवा पुरुष—कोई भी हो, वह अ... जन्मोंमें सुन्दर सद्भाग्यशाली और परम दर्श... जाता है। (अध्याय

अविघ्नव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! सुनो। अब मैं 'विघ्नहर'-नामक व्रतको बतलाता हूँ। इसके विधिपूर्वक आचरण करनेसे पुरुष विघ्नोंद्वारा पराभूत—बाधित या तिरस्कृत नहीं होता। इसके प्रारम्भिक ग्रहणकी विधि इस प्रकार है। फाल्गुन मासकी चतुर्थीको दिनमें उपवास रहकर चार घड़ी रात बीतनेपर भोजन करे। प्रातःपारणामें तिल लेने चाहिये। उस दिन तिलसे ही हवन करे तथा तिल ही ब्राह्मणको दान भी दे। इसी प्रकार चार मासतक इसका अनुष्ठान कर पाँचवें महीनेमें (आषाढ़की) चतुर्थीको सुवर्णमयी गणेशकी प्रतिमाकी भलीभाँति पूजा कर खीर एवं तिलसे भरे हुए पाँच पात्रोंके साथ उसे ब्राह्मणको दे देनी चाहिये। इस प्रकार इस व्रतका अनुष्ठान कर मनुष्य सम्पूर्ण विघ्नोंसे छुटकारा पा जाता है। अपने अश्वमेध यज्ञमें विघ्न पड़नेपर राजा सगरने इसी व्रतका अनुष्ठान कर, अश्वको प्राप्तकर यज्ञ ... किया था। त्रिपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् ... भी इसी व्रतके प्रभावसे त्रिपुरासुरका वध किया ... मैंने भी समुद्रपानके समय यही व्रत किया ... परंतप! पूर्वसमयमें तप एवं ज्ञानकी इच्छावाले ... अनेक राजाओंने विघ्न दूर करनेके लिये इस व्र... आचरण किया था। इस व्रतके दिन पुण्यात्मा पुरुष ... समाप्त होनेके निमित्त ॐ शूराय नमः, ॐ धीरा... नमः, ॐ गजाननाय नमः, ॐ लम्बोदराय नम... ॐ एकदंष्ट्राय नमः—इन मन्त्रोंका उच्चारण क... गणेशजीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करे और इन्हीं मन्त्रोंद्वारा हवन भी करे। केवल इसी व्रतके करनेसे मानव सभी विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। गणेशजीकी प्रतिमा दान करनेसे तो उसके जीवनकी सारी अभिलाषाएँ ही पूरी हो जाती हैं।

(अध्याय ५९)

शान्ति-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब तुम्हें शान्ति-व्रतका उपदेश करता हूँ। इसके आचरणसे गृहस्थोंके घरमें सदा शान्ति-सन्मति बनी रहती है। सुव्रत! कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिनसे आरम्भ कर एक वर्षपर्यन्त व्रतीको अत्यन्त उष्ण भोजनका त्याग करना चाहिये तथा प्रदोष-कालमें शेषशायी श्रीहरिकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ वासुकये नमः', 'ॐ तक्षकाय नमः', 'ॐ कर्कोटकाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ महापद्माय नमः', 'ॐ शङ्खपालाय नमः', 'ॐ कुटिलाय नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा भगवान् विष्णुके शय्यास्वरूप शेषनागके क्रमशः दोनों चरण, कटिभाग, उदर, छाती, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, मुख एवं सिरकी विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये। फिर भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर सभी अङ्गोंको दूधसे भी स्नान कराये। तत्पश्चात् श्रद्धालु साधकको भगवान्‌के सामने तिलमिश्रित दूधसे हवन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्ष पूराकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और सुवर्णमयी शेषनागकी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान दे। राजन्! जो पुरुष इस प्रकार यह व्रत भक्तिपूर्वक करता है, उसे निश्चय ही शान्ति सुलभ हो जाती है, साथ ही उसे सर्पोंसे भी भय नहीं होता।

(अध्याय ६०)

काम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब मैं काम-व्रत कहता हूँ, सुनो। इस व्रतके प्रभावसे मनमें उठी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। यह व्रत पौष मासके शुक्लपक्षमें होता है तथा यह व्रत एक वर्षपर्यन्त चलता है। इसमें पञ्चमी तिथिके दिन भोजन कर षष्ठीके दिन फलाहारपर रह जाय। अथवा यह भी नियम है कि बुद्धिमान् पुरुष षष्ठीके दिन दोपहरमें फलाहार करे और रातमें मौन होकर ब्राह्मणोंके साथ शुद्ध भात खाय, या केवल फलाहारपर ही व्रत करे। षष्ठीको पूरा दिनभर उपवास रहकर सप्तमी तिथिमें पारणा करनी चाहिये। इसमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा-कर हवन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करे। षडानन, कार्तिकेय, सेनानी, कृत्तिकासुत, कुमार और स्कन्द—इन नामोंसे विष्णु ही प्रतिष्ठित हैं। अतः उनके इन नामोंसे ही उनकी पूजा करनी चाहिये। व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको भोजन कराये और षण्मुखकी सुवर्णमयी प्रतिमा ब्राह्मणको दे। वस्त्रसहित प्रतिमा ब्राह्मणको देते समय व्रती इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवान् कार्तिकेय! आपकी कृपासे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जायँ।' फिर ब्राह्मणको लक्ष्य कर कहे—'ब्राह्मण देवता! मैं भक्तिपूर्वक यह प्रतिमा देता हूँ, आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।' इस प्रकारके दानमात्रसे व्रतीके इस जन्मकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। संतानहीनको पुत्र, धनकी इच्छावालेको धन तथा राज्य छिन जानेवालेको राज्य सुलभ हो सकता है—इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। महाराज! इस व्रतका पूर्व समयमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए राजा नलने अनुष्ठान किया था। उस समय वे ऋतुपर्णके राज्यमें निवास करते थे। नृपवर! प्राचीन कालके बहुतसे अन्य प्रधान नरेशोंने भी इसको राज्य छिन जानेपर कामनासिद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया था।

(अध्याय ६१)

शान्ति-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम्हें 'शान्ति-व्रत'का उपदेश करता हूँ । इसके आचरणसे गृहस्थोंके घरमें सदा शान्ति-सम्पत्ति बनी रहती है। सुव्रत ! कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिनसे आरम्भ कर एक वर्षपर्यन्त व्रतीको अत्यन्त उष्ण भोजनका त्याग करना चाहिये तथा प्रदोष-कालमें शेषशायी श्रीहरिकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये । 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ वासुकये नमः', 'ॐ तक्षकाय नमः', 'ॐ कर्कोटकाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ महापद्माय नमः', 'ॐ शङ्खपालाय नमः', 'ॐ कुटिलाय नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा भगवान् विष्णुके शय्यास्वरूप शेषनागके क्रमशः दोनों चरण, कटिभाग, उदर, छाती, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, मुख एवं सिरकी विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये । फिर भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर सभी अङ्गोंको दूधसे भी स्नान कराये । तत्पश्चात् श्रद्धालु साधकको भगवान्के सामने तिलमिश्रित दूधसे हवन करना चाहिये ।

इस प्रकार एक वर्ष पूराकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और सुवर्णमयी शेषनागकी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान दे । राजन् ! जो पुरुष इस प्रकार यह व्रत भक्तिपूर्वक करता है, उसे निश्चय ही शान्ति सुलभ हो जाती है, साथ ही उसे सर्पोंसे भी भय नहीं होता ।

(अध्याय ६०)

शान्ति-व्रत

भगवान् अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम्हें 'शान्ति-व्रत'का उपदेश करता हूँ। इससे आचरणसे गृहस्थोंके घरमें सदा शान्ति-सम्पत्ति बनी रहती है। सुव्रत ! कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिनसे आरम्भ कर एक वर्षपर्यन्त व्रतीको अत्यन्त उष्ण भोजनका त्याग करना चाहिये तथा प्रदोष-कालमें शेषशायी श्रीहरिकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ वासुकये नमः', 'ॐ तक्षकाय नमः', 'ॐ कर्कोटकाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ महापद्माय नमः', 'ॐ शङ्खपालाय नमः', 'ॐ कुटिलाय नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा भगवान् विष्णुके शय्यास्वरूप शेषनागके क्रमशः दोनों चरण, कटिभाग, उदर, छाती, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, मुख एवं सिरकी विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये। फिर भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर सभी अङ्गोंको दूधसे भी स्नान कराये। तत्पश्चात् श्रद्धालु साधकको भगवान्के सामने तिलमिश्रित दूधसे हवन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्ष पूराकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और सुवर्णमयी शेषनागकी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान दे। राजन् ! जो पुरुष इस प्रकार यह व्रत भक्तिपूर्वक करता है, उसे निश्चय ही शान्ति सुलभ हो जाती है, साथ ही उसे सर्पोंसे भी भय नहीं होता। (अध्याय ६०)

काम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र ! अब मैं काम-व्रत कहता हूँ, सुनो। इस व्रतके प्रभावसे मनमें उठी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। यह व्रत पौष मासके शुक्लपक्षमें होता है तथा यह व्रत एक वर्षपर्यन्त चलता है। इसमें पञ्चमी तिथिके दिन भोजन कर षष्ठीके दिन फलाहारपर रह जाय। अथवा यह भी नियम है कि बुद्धिमान् पुरुष षष्ठीके दिन दोपहरमें फलाहार करे और रातमें मौन होकर ब्राह्मणोंके साथ शुद्ध भात खाय, या केवल फलाहारपर ही व्रत करे। षष्ठीको पूरा दिनभर उपवास रहकर सप्तमी तिथिमें पारणा करनी चाहिये। इसमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा-कर हवन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करे। षडानन, कार्तिकेय, सेनानी, कृत्तिकासुत, कुमार और स्कन्द—इन नामोंसे विष्णु ही प्रतिष्ठित हैं। अतः उनके इन नामोंसे ही उनकी पूजा करनी चाहिये। व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको भोजन कराये और षण्मुखकी सुवर्णमयी प्रतिमा ब्राह्मणको दे। वस्त्रसहित प्रतिमा ब्राह्मणको देते समय व्रती इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवान् कार्तिकेय ! आपकी कृपासे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जायँ।' फिर ब्राह्मणको लक्ष्य कर कहे—'ब्राह्मण देवता ! मैं भक्तिपूर्वक यह प्रतिमा देता हूँ, आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।' इस प्रकारके दानमात्रसे व्रतीके इस जन्मकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। संतानहीनको पुत्र, धनकी इच्छावालेको धन तथा राज्य छिन जानेवालेको राज्य सुलभ हो सकता है—इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। महाराज ! इस व्रतका पूर्व समयमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए राजा नलने अनुष्ठान किया था। उस समय वे ऋतुपर्णके राज्यमें निवास करते थे। नृपवर ! प्राचीन कालके बहुतसे अन्य प्रधान नरेशोंने भी हाथसे राज्य निकल जानेपर कामनासिद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया था। (अध्याय ६१)

पारण करनेकी विधि है। इन महीनोंमें यह व्रत यावकसे करना चाहिये। राजन्! इसके पश्चात् कार्तिकसे पूसतक—तीन मासोंमें व्रती पुरुष पवित्रता-पूर्वक संयमसे रहकर श्यामाक (साँवा)का भोजनमें उपयोग करे। नरेश! फिर माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिके दिन बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार पार्वती-शंकर तथा लक्ष्मी-नारायणकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाकर किसी सत्पात्र एवं विद्वान् ब्राह्मणको अर्पण कर दे। जिसके पास धनका अभाव हो, वेदका जो पारगामी विद्वान् हो, जो सदा दूसरोंका उपकार करता हो, जिसके आचरण पवित्र हों तथा विशेष रूपसे विष्णुमें भक्ति रखता हो, ऐसे ब्राह्मणको यह प्रतिमा देनी चाहिये। साथ ही दानमें छः पात्र भी देनेकी विधि है। एकसे लेकर छः तक वे पात्र क्रमशः मधु, घृत, तिलका तैल, गुड़, लवण एवं गायके दूधसे पूर्ण हों। इन पात्रोंके दान करनेके प्रभावसे व्रत करनेवाला व्यक्ति स्त्री अथवा पुरुष—कोई भी हो, वह अन्य सात जन्मोंमें सुन्दर सद्भाग्यशाली और परम दर्शनीय हो जाता है। (अध्याय ५८)

अविघ्नव्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! सुनो। अब मैं 'विघ्नहर'-नामक व्रतको बतलाता हूँ। इसके विधि-पूर्वक आचरण करनेसे पुरुष विघ्नोंद्वारा पराभूत—बाधित या तिरस्कृत नहीं होता। इसके प्रारम्भिक ग्रहणकी विधि इस प्रकार है। फाल्गुन मासकी चतुर्थीको दिनमें उपवास रहकर चार घड़ी रात बीतनेपर भोजन करे। प्रातःपारणामें तिल लेने चाहिये। उस दिन तिलसे ही हवन करे तथा तिल ही ब्राह्मणको दान भी दे। इसी प्रकार चार मासतक इसका अनुष्ठान कर पाँचवें महीनेमें (आषाढ़की) चतुर्थीको सुवर्णमयी गणेशकी प्रतिमाकी भलीभाँति पूजा कर खीर एवं तिलसे भरे हुए पाँच पात्रोंके साथ उसे ब्राह्मणको दे देनी चाहिये। इस प्रकार इस व्रतका अनुष्ठान कर मनुष्य सम्पूर्ण विघ्नोंसे छुटकारा पा जाता है। अपने अश्वमेध यज्ञमें विघ्न पड़नेपर राजा सगरने इसी व्रतका अनुष्ठान कर, अश्वको प्राप्तकर यज्ञ सम्पन्न किया था। त्रिपुरासुरसे युद्धके समय भगवान् रुद्रने भी इसी व्रतके प्रभावसे त्रिपुरासुरका वध किया था। मैंने भी समुद्रपानके समय यही व्रत किया था। परंतप! पूर्वसमयमें तप एवं ज्ञानकी इच्छावाले अन्य अनेक राजाओंने विघ्न दूर करनेके लिये इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके दिन पुण्यात्मा पुरुष विघ्न समान होनेके निमित्त ॐ शूराय नमः, ॐ धीराय नमः, ॐ गजाननाय नमः, ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः—इन मन्त्रोंका उच्चारण कर गणेशजीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करे और इन्हीं मन्त्रोंद्वारा हवन भी करे। केवल इसी व्रतके करनेसे मानव सभी विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। गणेशजीकी प्रतिमा दान करनेसे तो उसके जीवनकी सारी अभिलाषाएँ ही पूरी हो जाती हैं। (अध्याय ५९)

शान्ति-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम्हें 'शान्ति-व्रत'का उपदेश करता हूँ। इसके आचरणसे गृहस्थोंके घरमें सदा शान्ति-सम्पत्ति बनी रहती है। शुक्र ! कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिनसे आरम्भ कर एक वर्षपर्यन्त व्रतीको अत्यन्त उष्ण भोजनका त्याग करना चाहिये तथा प्रदोष-कालमें शेषशायी श्रीहरिकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ वासुकये नमः', 'ॐ तक्षकाय नमः', 'ॐ कर्कोटकाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ महापद्माय नमः', 'ॐ शङ्खपालाय नमः', 'ॐ कुटिलाय नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा भगवान् विष्णुके शय्यास्वरूप शेषनागके क्रमशः दोनों चरण, कटिभाग, उदर, छाती, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, मुख एवं सिरकी विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये। फिर भगवान् विष्णुको लक्ष्यकर सभी अङ्गोंको दूधसे भी स्नान कराये। तत्पश्चात् श्रद्धालु साधकको भगवान्के सामने तिलमिश्रित दूधसे हवन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्ष पूराकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और सुवर्णमयी शेषनागकी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान दे। राजन् ! जो पुरुष इस प्रकार यह व्रत भक्तिपूर्वक करता है, उसे निश्चय ही शान्ति सुलभ हो जाती है, साथ ही उसे सर्पोंसे भी भय नहीं होता।

(अध्याय ६०)

काम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र ! अब मैं काम-व्रत कहता हूँ, सुनो। इस व्रतके प्रभावसे मनमें उठी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। यह व्रत पौष मासके शुक्लपक्षमें होता है तथा यह व्रत एक वर्षपर्यन्त चलता है। इसमें पञ्चमी तिथिके दिन भोजन कर षष्ठीके दिन फलाहारपर रह जाय। अथवा यह भी नियम है कि बुद्धिमान् पुरुष षष्ठीके दिन दोपहरमें फलाहार करे और रातमें मौन होकर ब्राह्मणोंके साथ शुद्ध भात खाय, या केवल फलाहारपर ही व्रत करे। षष्ठीको पूरा दिनभर उपवास रहकर सप्तमी तिथिमें पारणा करनी चाहिये। इसमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा-कर हवन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करे। षडानन, कार्तिकेय, सेनानी, कृत्तिकासुत, कुमार और स्कन्द—इन नामोंसे विष्णु ही प्रतिष्ठित हैं। अतः उनके इन नामोंसे ही उनकी पूजा करनी चाहिये। व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको भोजन कराये और षण्मुखकी सुवर्णमयी प्रतिमा ब्राह्मणको दे। वस्त्रसहित प्रतिमा ब्राह्मणको देते समय व्रती इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवान् कार्तिकेय ! आपकी कृपासे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जायँ।' फिर ब्राह्मणको लक्ष्य कर कहे—'ब्राह्मण देवता ! मैं भक्तिपूर्वक यह प्रतिमा देता हूँ, आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।' इस प्रकारके दानमात्रसे व्रतीके इस जन्मकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। संतानहीनको पुत्र, धनकी इच्छावालेको धन तथा राज्य छिन जानेवालेको राज्य सुलभ हो सकता है—इसमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। महाराज ! इस व्रतका पूर्व समयमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए राजा नलने अनुष्ठान किया था। उस समय वे ऋतुपर्णके राज्यमें निवास करते थे। नृपवर ! प्राचीन कालके बहुतसे अन्य प्रधान नरेशोंने भी हाथसे राज्य निकल जानेपर कामनासिद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया था।

(अध्याय ६१)

वसिष्ठजी बोले—राजन् ! इस 'ब्रह्मोद्भव' कमलकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है। इसके दर्शनकी बड़ी भारी महिमा है। इससे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो सकते हैं। राजन् ! छः महीनेके भीतर कभी भी जनता इस सरोवरमें यह कमल देख लिया करती है। जो मनुष्य केवल इसका दर्शन करके जलमें पैर रख देता है, उसके सम्पूर्ण पाप भाग जाते हैं तथा वह पुरुष निर्वाण-पदका अधिकारी हो जाता है; क्योंकि जलमें दीखनेवाली यह ब्रह्माजीकी प्रारम्भिक मूर्ति है। इस मूर्तिका दर्शन कर जो जलमें प्रवेश करता है, उसकी संसारसे मुक्ति हो जाती है। राजन् ! तुम्हारा सारथि इस विग्रहको देखकर जलमें चला गया और जानेपर उसने इसे लेनेकी भी चेष्टा की। नरेश ! इसका कारण यह था कि तुम्हारे मनमें लोभ उत्पन्न हो गया था एवं तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो चुकी थी। इसीका परिणाम है कि तुम कोढ़ी बन गये हो। तुमने इसका दर्शन कर लिया है, जिसके कारण साधुकी श्रेणीमें आ गये। नरेश ! साथ ही इस कमलको पानेके लिये तुम्हारे मनमें जो मोह उत्पन्न हो गया, इस कारण मैंने तुम्हें असाधु कहा।

देवताओंका भी कथन है कि 'मानसरोवरके ब्रह्मपद नामक कमलपर (ब्रह्मरूपमें) भगवान् श्रीहरि आकर विराजते हैं। उनका दर्शनकर हम उस ब्रह्मपदको पा जायँगे, जहाँसे पुनः संसारमें आना नहीं पड़ता है। राजन् ! यही कारण है कि तुम्हारे अङ्गमें कुष्ठ हो गया। इस कमलपर स्वयं भगवान् श्रीहरि सूर्यका रूप धारण करके विराजते हैं। वस्तुतः विचार किया जाय तो यह सनातन परब्रह्म परमात्माका ही रूप है। 'मैं इसको अपने सिरपर धारण करूँ, जिससे मेरी प्रसिद्धि हो जाय' तुमने ऐसी भावना लेकर इसे प्राप्त करनेके लिये सारथिको भेजा। वह बेचारा सारथि तो उसी क्षण अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा और तुम्हारी देह कुष्ठरोगसे व्याप्त हो गयी। अतएव महाराज ! तुम भी यह आरोग्य नामक व्रत करो। इस व्रतके करनेसे तुम कुष्ठरोगसे छुटकारा पा जाओगे।

ऐसा कहकर वसिष्ठजी राजाके पाससे चले गये। राजाने भी उनकी बात सुनकर प्रतिदिन उस सरोवरपर जाने और वहाँ ब्रह्माजीके दर्शन करनेका नियम बना लिया और फिर वे शीघ्र ही कुष्ठमुक्त होकर स्वस्थ एवं कृतार्थ हो गये। (अध्याय ६२)

पुत्रप्राप्ति-व्रत

भगवान् वराह कहते हैं—महाराज ! अब संक्षेपमें एक कल्याणप्रद व्रत बतलाता हूँ, उसे सुनो ! इसका नाम पुत्रप्राप्ति-व्रत है। राजन् ! भाद्रपद मासके कृष्णपक्षमें जो अष्टमी तिथि होती है, उस दिन उपवासपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। सप्तमी तिथिके दिन संकल्प करके अष्टमी तिथिमें भगवान् श्रीहरिकी पूजाका विधान है। मनमें ऐसी भावना करे कि भगवान् नारायण कृष्णरूप धारण करके माताकी गोदमें बैठे हैं। माताओंका समुदाय उनकी स्तुति और सेवा कर रहा है। अष्टमीको क्रमशः कर्दम मन्त्र वेदमें पहले कहे हुए विधानके अनुसार बड़े यत्नसे भगवान्‌का अर्चन करना चाहिये। इस विधिके साथ भगवान् गोविन्दका पूजन करनेके पश्चात् घर, तिल एवं घृतमिश्रित हव्य पदार्थोंसे हवन करना चाहिये। फिर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें दक्षिणा दे। तत्पश्चात् स्वयं भोजन करे। ... उत्तम [illegible] चाहिये। फिर अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा [illegible] है। [illegible]

एवं सारा पशुओंसे युक्त हो। साधक प्रतिमास इसी विधिके अनुसार व्रत करे। इसे कृष्णाष्टमीव्रत भी कहते हैं। इसके प्रभावसे जिसे पुत्र न हो, वह पुत्रवान् बन जाता है।

सुना जाता है—प्राचीन समयमें शूरसेन नामके एक प्रतापी राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने हिमालय पर्वतपर जाकर तपस्या आरम्भ कर दी। परिणामस्वरूप उनके घर एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई जिसका नाम वसुदेव हुआ। महाभाग वसुदेवने अनेक व्रत और यज्ञ किये। ऐसे पुत्रके प्राप्त हो जानेसे राजर्षि शूरसेनको उत्तम निर्वाणपद सुलभ हो गया।

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने कृष्णाष्टमी-व्रतका संक्षिप्त वर्णन किया। यह व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। वर्ष पूरा हो जानेपर ब्राह्मणको दो वस्त्र देनेका विधान है। राजन्! इसका नाम पुत्रव्रत है। इसे कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे निश्चय ही छूट जाता है। (अध्याय ६२)

शौर्य एवं सार्वभौम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एक दूसरे शौर्यव्रतका वर्णन करता हूँ; जिसे करनेसे अत्यन्त भीरु व्यक्तिमें भी तत्क्षण महान् शौर्यका प्राकट्य होता है। इस व्रतको आश्विन मासके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिके दिन करना चाहिये। सप्तमी तिथिके दिन संकल्प करके अष्टमी तिथिके दिन भातका परित्याग करना चाहिये और नवमी तिथिके दिन पकान्न खानेका विधान है। राजन्! सर्वप्रथम भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इस व्रतमें महातेजस्वी, महाभागा, भगवती महामाया दुर्गाकी भक्तिके साथ आराधना करनी चाहिये। इस प्रकार जबतक एक वर्ष पूरा न हो जाय, तबतक विधिपूर्वक यह व्रत करना उचित है। व्रत समाप्त हो जानेपर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार कुमारी कन्याओंको भोजन कराये। यदि अपने पास शक्ति हो तो सुवर्ण और वस्त्र आदिसे उन कन्याओंको अलंकृत कर भोजन कराना चाहिये। इसके पश्चात् उन भगवती दुर्गासे क्षमा माँगे और प्रार्थना करे—'देवि! आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।'

इस प्रकार व्रत करनेपर राजा, जिसका राज्य हाथसे निकल गया है, अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मूर्खको विद्या और भीरु व्यक्तिको शौर्यकी प्राप्ति होती है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं संक्षेपमें सार्वभौम नामक व्रत बतलाता हूँ, जिसका सम्यक् प्रकार आचरण करनेसे व्यक्ति सार्वभौम राजा हो जाता है। इसके लिये कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको उपवास रहकर रातमें भोजन करना चाहिये। तदनन्तर दसों दिशाओंमें शुद्ध बलि दे, फिर चित्र-विचित्र फूलोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ पूजा कर दिशाओंकी ओर लक्ष्य करते हुए इस उत्तम व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवियो! आप मेरे जन्म-जन्ममें सर्वार्थ सिद्धि प्रदान करें।' ऐसा कहकर शुद्ध चित्तसे उन देवियोंके निमित्त बलि दे।

तदनन्तर रातमें पहले भलीभाँति सिद्ध किया हुआ दधिमिश्रित अन्न भोजन करे। फिर बादमें इच्छानुसार गेहूँ या चावलसे बना हुआ भोजन करना चाहिये। राजन्! इस प्रकार जो पुरुष प्रतिवर्ष व्रत करता है, वह दिग्विजयी होता है। फिर जो मनुष्य मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर विधिके अनुसार व्रत करता है, उसे वह धन प्राप्त होता है, जिसके लिये कुबेर भी लालायित रहते हैं।

एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर द्वादशी तिथिके दिन भोजन करना—यह महान् वैष्णव-व्रत है। चाहे शुक्लपक्ष हो या कृष्णपक्ष—दोनोंका फल बराबर है। राजन्! इस प्रकार किया हुआ व्रत कठिन-से-कठिन पापोंको भी नष्ट कर देता है। त्रयोदशी तिथिको व्रत रहकर रातमें चार घड़ीके बाद भोजन करनेसे 'धर्मव्रत' होता है। चतुर पुरुषको फाल्गुन शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिसे प्रारम्भ कर चैत्र कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथितक रौद्रव्रत करना चाहिये। राजन्! माघ माससे आरम्भ कर वर्ष समाप्त होनेतक जो नक्त-व्रत किया जाता है, उसका नाम पितृव्रत है। इस व्रतमें शुद्ध पञ्चमी तिथिके दिन तथा अमावास्याको रात्रिमें भोजन करनेका विधान है। नरेन्द्र! इस तिथि-व्रतको जो पुरुष पंद्रह वर्षोंतक करता है, उसका फल उस फलकी बराबरी कर सकता है, जो एक हजार अश्वमेध-यज्ञ और सौ राजसूय-यज्ञ करनेसे मिलता है। राजेन्द्र! मानो उस पुरुषने एक कल्पमें बताये हुए सभी व्रतोंको कर लिया। इनमेंसे एक-एक व्रतमें वह शक्ति है कि व्रतीके पापोंको सदा नष्ट करता रहता है। फिर यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष इन सभी व्रतोंका आचरण कर सके तो राजन्! वह पवित्रात्मा पुरुष सम्पूर्ण शुद्ध लोकोंको प्राप्त कर ले, इसमें क्या आश्चर्य है!

(अध्याय ६४-६५)

राजा भद्राश्वका प्रश्न और नारदजीके द्वारा विष्णुके आश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन

राजा भद्राश्वने कहा—मुने! यदि आपको भी कोई विशेष आश्चर्यजनक बात दीखी या विदित हुई हो तो वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! भगवान् जनार्दन ही आश्चर्यरूप (समस्त आश्चर्योंके भण्डार या मूर्तिमा[illegible]) । मैंने इनके अनेक आश्चर्योंको देखा है [illegible] समयकी बात है। एक बार [illegible] हैं ऐसे परम तेजस्वी [illegible] चक्र [illegible] आया कि मैं प्रभुकी आराधना किस प्रकार करूँ? ऐसा विचार कर नारदजीने परम प्रभु भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। सहस्र दिव्य वर्षोंसे भी अधिक समयतक उनके ध्यान करनेपर भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'महामुने! तुम वर माँगो; कहो, तुम्हें मैं क्या दूँ?'

नारदजी बोले—जगत्प्रभो! मैंने एक हजार दिव्य वर्षोंतक आपका ध्यान किया है। अच्युत! इतनेपर यदि आप मुझपर प्रसन्न हों गये हों तो मुझे कृपया अपनी प्राप्तिका उपाय बतलाइये।

देवाधिदेव विष्णुने कहा—द्विजवर! जो मनुष्य 'पुरुषसूक्त' तथा वैदिक संहिताका पाठ करते हुए मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे शीघ्र ही प्राप्त करते हैं। पञ्चरात्र-

एवं सारे वस्तुओंसे युक्त हो। साधक प्रतिमास इसी विधिके अनुसार व्रत करे। इसे कृष्णाष्टमीव्रत भी कहते हैं। इसके प्रभावसे जिसे पुत्र न हो, वह पुत्रवान् बन जाता है।

सुना जाता है—प्राचीन समयमें शूरसेन नामके एक प्रतापी राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने हिमालय पर्वतपर जाकर तपस्या आरम्भ कर दी। परिणामस्वरूप उनके घर एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई जिसका नाम वसुदेव हुआ। महाभाग वसुदेवने अनेक व्रत और यज्ञ किये। ऐसे पुत्रके प्राप्त हो जानेसे राजर्षि शूरसेनको उत्तम निर्वाणपद सुलभ हो गया।

राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने कृष्णाष्टमी-व्रतका संक्षिप्त वर्णन किया। यह व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। वर्ष पूरा हो जानेपर ब्राह्मणको दो वस्त्र देनेका विधान है। राजन्! इसका नाम पुत्रव्रत है। इसे कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे निश्चय ही छूट जाता है। (अध्याय ६३)

—

शौर्य एवं सार्वभौम-व्रत

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एक दूसरे शौर्यव्रतका वर्णन करता हूँ; जिसे करनेसे अत्यन्त भीरु व्यक्तिमें भी तत्क्षण महान् शौर्यका प्राकट्य होता है। इस व्रतको आश्विन मासके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिके दिन करना चाहिये। सप्तमी तिथिके दिन संकल्प करके अष्टमी तिथिके दिन भातका परित्याग करना चाहिये और नवमी तिथिके दिन पकान्न खानेका विधान है। राजन्! सर्वप्रथम भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इस व्रतमें महातेजस्वी, महाभागा, भगवती महामाया दुर्गाकी भक्तिसे क्षमा माँगे और प्रार्थना करे—'देवि! आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।'

इस प्रकार व्रत करनेपर राजा, जिसका राज्य हाथसे निकल गया है, अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मूर्खको विद्या और भीरु व्यक्तिको शौर्यकी प्राप्ति होती है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं संक्षेपमें सार्वभौम नामक व्रत बतलाता हूँ, जिसका सम्यक् प्रकार आचरण करनेसे व्यक्ति सार्वभौम राजा हो जाता है। इसके लिये कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी दशमी

तदनन्तर रातमें पहले भलीभाँति सिद्ध किया हुआ दधिमिश्रित अन्न भोजन करे। फिर बादमें इच्छानुसार गेहूँ या चावलसे बना हुआ भोजन करना चाहिये। राजन्! इस प्रकार जो पुरुष प्रतिवर्ष व्रत करता है, वह दिग्विजयी होता है। फिर जो मनुष्य मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर विधिके अनुसार व्रत करता है, उसे वह धन प्राप्त होता है, जिसके लिये कुबेर भी लालायित रहते हैं।

एकादशी तिथिके दिन निराहार रहकर द्वादशी तिथिके दिन भोजन करना—यह महान् वैष्णव-व्रत है। चाहे शुक्लपक्ष हो या कृष्णपक्ष—दोनोंका फल बराबर है। राजन्! इस प्रकार किया हुआ व्रत कठिन-से-कठिन पापोंको भी नष्ट कर देता है। त्रयोदशी तिथिको व्रत रहकर रातमें चार घड़ीके बाद भोजन करनेसे 'धर्मव्रत' होता है। चतुर पुरुषको फाल्गुन शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिसे प्रारम्भ कर चैत्र कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथितक रौद्रव्रत करना चाहिये। राजन्! माघ माससे आरम्भ कर वर्ष समाप्त होनेतक जो नक्त-व्रत किया जाता है, उसका नाम पितृव्रत है। इस व्रतमें शुद्ध पञ्चमी तिथिके दिन तथा अमावास्याको रात्रिमें भोजन करनेका विधान है। नरेन्द्र! इस तिथि-व्रतको जो पुरुष पंद्रह वर्षोंतक करता है, उसका फल उस फलकी बराबरी कर सकता है, जो एक हजार अश्वमेध-यज्ञ और सौ राजसूय-यज्ञ करनेसे मिलता है। राजेन्द्र! मानो उस पुरुषने एक कल्पमें बताये हुए सभी व्रतोंको कर लिया। इनमेंसे एक-एक व्रतमें वह शक्ति है कि व्रतीके पापोंको सदा नष्ट करता रहता है। फिर यदि कोई श्रेष्ठ पुरुष इन सभी व्रतोंका आचरण कर सके तो राजन्! वह पवित्रात्मा पुरुष सम्पूर्ण शुद्ध लोकोंको प्राप्त कर ले, इसमें क्या आश्चर्य है!

(अध्याय ६४-६५)

राजा भद्राश्वका प्रश्न और नारदजीके द्वारा विष्णुके आश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन

राजा भद्राश्वने कहा—मुने! यदि आपको भी कोई विशेष आश्चर्यजनक बात दीखी या विदित हुई हो तो वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता है।

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! भगवान् जनार्दन ही आश्चर्यरूप (समस्त आश्चर्योंके भण्डार या मूर्तिमान्) हैं। मैंने इनके अनेक आश्चर्योंको देखा है। राजन्! पूर्व समयकी बात है। एक बार नारदजी श्वेतद्वीपमें गये। वहाँ उन्हें ऐसे परम तेजस्वी पुरुषोंके दर्शन हुए, जिनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। तो नारदजीके मुँहसे सहसा 'यही सनातन विष्णु हैं, यही विष्णु हैं, ये विष्णु निकले। फिर नारदजीके मनमें यह विचार आया कि मैं प्रभुकी आराधना किस प्रकार करूँ? ऐसा विचार कर नारदजीने परम प्रभु भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। सहस्र दिव्य वर्षोंसे भी अधिक समयतक उनके ध्यान करनेपर भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'महामुने! तुम वर माँगो; कहो, तुम्हें मैं क्या दूँ?'

नारदजी बोले—जगत्प्रभो! मैंने एक हजार दिव्य वर्षतक आपका ध्यान किया है। अच्युत! इतनेपर यदि आप मुझपर प्रसन्न हो गये हों तो मुझे कृपया अपनी प्राप्तिका उपाय बतलाइये।

देवाधिदेव विष्णुने कहा—द्विजवर! जो मनुष्य 'पुरुषसूक्त' तथा वैदिक संहिताका पाठ करते हुए मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे शीघ्र ही प्राप्त करते हैं। पञ्चरात्र-

द्वारा निर्दिष्ट मार्गसे जो मानव मेरा यजन करते हैं, उन्हें भी मैं प्राप्त हो जाता हूँ। द्विजके लिये तो पञ्चरात्रका नियम बताया गया है, दूसरोंको मेरे नाम-लीला, धाम, क्षेत्र, तीर्थ, मन्दिरोंकी यात्रा एवं दर्शन करना चाहिये।

नारद ! सत्त्वगुणवाले पुरुष मुझे पानेके अधिकारी हैं। कलियुगमें रजोगुण-तमोगुणकी ही विशेषता रहेगी। नारद ! यह दुर्लभ पञ्चरात्र-शास्त्रका मेरी कृपासे ही ज्ञान होगा। द्विजवर! वेदका अध्ययन, पञ्चरात्र-पाठ तथा यज्ञ एवं भक्ति—ये मुझे प्राप्त करानेके साधन हैं। मैं इनके द्वारा सुलभ होता हूँ, अन्यथा करोड़ वर्षोंतक यत्न करनेपर भी मनुष्य मुझे नहीं प्राप्त कर सकता।

इस प्रकार परम प्रभु भगवान् नारायणने नारदजीसे कहा और वे उसी क्षण अन्तर्धान हो गये।

राजा भद्राश्वने पूछा—भगवन् ! पहले जिन गौरी एवं काली स्त्रियोंकी बात आयी है, वे कौन थीं ? उनका सीता और कृष्णा कैसे नाम पड़ गया ? भगवन् ! सात प्रकारके पवित्र पुरुष कौन हुए ? उस पुरुषने अपना बारह प्रकारका रूप कैसे बना लिया ? दो देह और छः सिरका क्या तात्पर्य है ?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! जो गौरी और काली—ये दो देवियाँ थीं, इनका परस्पर बहनका नाता है। दोनोंके दो वर्ण हैं—एकका शुभ्र और दूसरीका कृष्ण। कृष्णाको कालिंदी कहा जाता है। राजन्! पुरुष एक होते हुए भी सात प्रकारके रूपोंसे सुशोभित हैं। जो बारह प्रकारके दो शरीर तथा छः सिरकी बात कही गयी है उसका तात्पर्य संवत्सरसे जानना चाहिये। उत्तरायण और दक्षिणायन—ये दो शरीर उनके शरीर तथा वसन्त आदि छः ऋतुएँ सिर हैं। [illegible] दिनके और [illegible] [illegible] है [illegible] ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

परमदेवता' जानना चाहिये। वैदिक क्रियासे हीन ब्रा उन परम प्रभु परमात्माको देखनेमें सर्वथा असमर्थ है।

राजा भद्राश्वने पूछा—मुने ! परमात्माका चा युगोंमें कैसा स्वरूप जानना चाहिये ? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र—इन चारों वर्णोंका प्रत्येक युगमें कैस आचार होता है ?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! सत्ययुगमें वैदि कर्म करके यज्ञोंद्वारा देवताओंकी पूजा करनेवाले द्वि पुरुषोंसे पृथ्वी सुशोभित रहेगी। ऐसा ही समय त्रेतायुग में भी रहेगा। महाराज ! द्वापरयुगमें सत्त्वगुण औ रजोगुणकी बहुलता होगी। फिर महाराज युधिष्ठि राजा होंगे। इसके पश्चात् कलिस्वरूप तमोगुणका विस्तार होगा। राजन् ! कलियुगके आ जानेपर ब्राह्मण अपने मार्गसे च्युत हो जायँगे। राजेन्द्र ! क्षत्रिय, वैश्य औ शूद्र—इन सबकी जाति प्रायः नष्ट-सी हो जायगी। इनमें सत्य और शौचका नितान्त अभाव हो जायगा। फिर तो संसार नष्टप्राय हो जायगा। वर्ण एवं धर्म सर्वदाके लिये दूर चले जायँगे।

नरेन्द्र ! बहुत समयसे चिरकालार्जित पाप तथा वर्णसंकर जातिके पुरुषके साथ रहनेसे ब्राह्मणद्वारा जो पाप बनता है, इससे दस बार प्रणवसहित गायत्रीके जप करने तथा तीन सौ बार प्राणायाम करनेसे वह उस पापसे छुटकारा पा जाता है। प्रायश्चित्तोंसे ब्रह्महत्या-जैसे पाप भी छूट जाते हैं, शेष पापोंसे छूटनेकी तो बात ही क्या है ! अथवा जो श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वोत्तम रूपधारी भगवान् श्रीहरिको जानकर ध्यान आदिसे उनकी पूजा करता है, वह उन पापोंसे लिप्त नहीं हो सकता। वेदका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण सौ बार किये हुए पापोंसे भी लिप्त नहीं होता। जिसके द्वारा भगवान् विष्णुका स्मरण, वेदका अध्ययन, इच्छानुसार दानकर्ममें नियम तथा

भगवान् श्रीहरिका यजन होता रहता है, वह ब्राह्मण तो सदा शुद्ध ही है। वह तो विरुद्ध धर्मवालेका भी उद्धार कर सकता है। राजन्! तुमने जो पूछा था, वह सब मैंने बतला दिया। महाराज! मनु आदि महानुभावोंने जिसे बड़े विस्तारसे कहा है, उसीका मैंने यहाँ संक्षेप रूपसे वर्णन किया है। (अध्याय ६६-६८)

भगवान् नारायणसम्बन्धी आश्चर्यका वर्णन

राजा भद्राश्वने कहा—भगवन्! आप सभी ब्राह्मणोंमें प्रधान एवं दीर्घजीवी हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके शरीरकी यह विशेषता क्यों और कैसी है? महानुभाव! आप मुझे यह बतलानेकी कृपा करें।

अगस्त्यजी बोले—राजन्! मेरा यह शरीर अनेक अद्भुत कुतूहलोंका भण्डार है। बहुत कल्प बीत चुके, किंतु अभी यह यों ही पड़ा है। वेद और विद्यासे इसका भलीभाँति संस्कार हुआ है। राजन्! एक समयकी बात है—मैं सम्पूर्ण भूमण्डलपर घूम रहा था। घूमते-घूमते मैं उस महान् 'इलावृत'नामक वर्षमें पहुँचा, जो सुमेरु-पर्वतके पार्श्वभागमें है। वहाँ मुझे एक सुन्दर सरोवर दिखायी दिया। उसके तटपर एक विशाल आश्रम था। उस आश्रममें मुझे एक तपस्वी दीख पड़े, जिनका शरीर उपवासके कारण शिथिल पड़ गया था तथा शरीरमें केवल हड्डियाँ ही शेष रह गयी थीं। वे वृक्षकी छाल लपेटे हुए थे। महाराज! उन तपस्वी-को देखकर मैं सोचने लगा—ये कौन हैं? फिर मैंने उनसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आपके पास आया हूँ। मुझे कुछ देनेकी कृपा करें।' तब उन मुनिने मुझसे कहा—'द्विजवर! आपका स्वागत है। ब्रह्मन्! आप यहाँ ठहरिये, मैं आपका आतिथ्य करनेके लिये उद्यत हूँ।'

राजन्! उन तपस्वीकी यह बात सुनकर मैं आश्रममें चला गया। इतनेमें देखता हूँ कि वे ब्राह्मण-देवता तेजसे मानो संदीप्त हो रहे हैं। मैं भूमिपर बैठ गया, अब उनके मुखसे हुंकारकी ध्वनि निकली, जिससे पातालका भेदन कर पाँच कन्याएँ निकल आयीं। उनमेंसे एकके हाथमें सुवर्णका पृष्ठासन (पीढ़ा) था। उसने बैठनेके लिये वह आसन मुझे दे दिया। दूसरेके हाथमें जल था। वह उससे मेरे दोनों पैरोंको धोने लगी। अन्य दो कन्याएँ हाथमें पंखे लेकर मेरी दोनों ओर खड़ी होकर हवा करने लगीं। इसके पश्चात् उन महान् तपस्वीने फिर हुंकार किया। इस शब्दके होते ही तुरंत एक नौका सामने आ गयी, जिसका विस्तार एक योजन था। राजन्! सरोवरमें उस नावको एक कन्या चला रही थी। वह उसे लेकर आ गयी। उस नावमें सैकड़ों सुन्दरी कन्याएँ थीं। सबके हाथमें सोनेके कलश थे। राजन्! वे कन्याएँ आ गयीं—यह देखकर उन तपस्वीने मुझसे कहा—'ब्रह्मन्! यह सारी व्यवस्था आपके स्नानके लिये की गयी है। महाशय! आप इस नावपर विराजकर स्नान करें।'

नरेन्द्र! फिर उन तपस्वीके कथनानुसार ज्यों ही मैंने नावमें प्रवेश किया कि इतनेमें ही वह नौका सरोवरमें डूब गयी। उस नावके साथ मैं भी जलमें डूब गया। तबतक सुमेरुगिरिके शिखरपर वे तपस्वी और उनका दिव्य पुर मुझे अपने-आप दिखायी पड़े। सात समुद्र, पर्वत-समूह तथा सात द्वीपोंसे युक्त यह पृथ्वी भी वहाँ दृष्टिगोचर हुई। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन्! आज भी जब मैं यहाँ बैठा हूँ तो

वह उत्तम लोक मुझे स्मरण हो रहा है। मेरे मनमें इस प्रकारकी चिन्ता हो रही है कि कब मैं उस उत्तम लोकमें पहुँचूँगा । राजन् ! ऐसा परमब्रह्म परमात्माका कौतुक है, जो मैंने तुम्हें सुना दिया। यही मेरे शरीरकी घटना है। अब तुम दूसरा सुनना चाहते हो ! (अध्याय

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर आदिके युगधर्म

राजा भद्राश्वने पूछा—मुने ! उस दिव्य लोकको देख लेनेके बाद पुनः उसे पानेके लिये आपने कौन-सा व्रत, तप अथवा धर्म किया ?

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह भगवान् श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना छोड़कर अन्य किन्हीं लोकोंकी कामना न करे; क्योंकि परम प्रभुकी आराधनासे सभी लोक अपने आप ही सुलभ हो जाते हैं। ऐसा सोचकर मैंने उन सनातन श्रीहरिकी आराधना आरम्भ कर दी और प्रचुर दक्षिणा देकर अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करता हुआ सौ वर्षोंतक मैं उनकी आराधनामें संलग्न रहा। नृपनन्दन ! एक समयकी बात है—देवाधिदेव यज्ञमूर्ति भगवान् जनार्दनकी इस प्रकार उपासना करते हुए बहुत दिन बीत चुके थे, तब मैंने एक यज्ञमें सभी देवताओंकी आराधना की और इन्द्रसहित सभी देवता एक साथ ही उस यज्ञमें पधारे तथा उन्होंने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया। भगवान् शंकर भी पधारे और अपने निश्चित स्थानपर विराजमान हो गये। सम्पूर्ण देवता, ऋषि तथा नागगण भी आ गये। उन्हें आते देखकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर भगवान् सनत्कुमार भी वहाँ पधारे और सिर झुकाकर भगवान् रुद्रको प्रणाम किया। राजेन्द्र ! उस समय समस्त देवता, ऋषि, नारद, सनत्कुमार एवं भगवान् रुद्र जब अपने-अपने स्थानपर स्थित होकर बैठ गये, तब उनकी ओर दृष्टि डालकर मैंने यह बात पूछी—'आप सभी महानुभावोंमें कौन श्रेष्ठ हैं तथा किनकी (अग्र) पूजा होनी चाहिये ?' मेरे यह पूछ देवसमुदायके सामने ही भगवान् रुद्र मुझसे कहने ल

भगवान् रुद्र बोले—समस्त देवताओ, पवित्र देवर्षियो, प्रसिद्ध ब्रह्मर्षियो तथा महान् मे अगस्त्यजी ! आप सभी लोग मेरी बात सुन लें 'जिनकी यज्ञोंद्वारा पूजा होती है, देवता सम्पूर्ण संसार जिनसे उत्पन्न हुआ है तथा जि लीन भी हो जाता है, वे भगवान् जनार्दन ही सर्वश्रे और सभी यज्ञोंद्वारा वे ही आराधित होते हैं। उन प्रभुमें सभी ऐश्वर्य विद्यमान हैं। उन्होंने ही अपने प्रकारके रूप धारण कर लिये हैं। जब उन सर्वाधिक रजोगुण तथा स्वल्प सत्त्वगुण एवं तमोगुण समावेश हुआ, तब वे ब्रह्मा नामसे प्रसि हुए। भगवान् नारायणने अपने नाभिकमलसे ब्रह्माकी सृष्टि की है। मुझे भी बनानेवाले वे प प्रभु नारायण ही हैं। अतः भगवान् श्रीहरि सर्व-प्रधान हैं।

जिनमें सत्त्वगुण और रजोगुणका आधिक्य हुआ और जिन्हें कमलका आसन मिल गया, वे ब्रह्मा कहलाये। जो ब्रह्मा एवं चतुर्मुख कहलाते हैं, वे भी भगवान् नाराय ही हैं। जो स्वल्प सत्त्व एवं रजोगुण और किंचित् अधिक तमोगुणसे युक्त हैं, वह मैं रुद्र हूँ—इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकारके गुण कहे जाते हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे प्राणीको मुक्ति सुलभ हो जाती है; क्योंकि सत्त्वगुण भगवान् नारायणका स्वरूप है।

सम्मिश्रण होता है और रजोगुणकी कुछ अधिकता होती है, तब सृष्टिका कार्य आरम्भ होता है। यह ब्रह्माजीका स्वाभाविक गुण है। यह बात सम्पूर्ण शास्त्रोंमें कही जाती है। जिसका वेदोंमें उल्लेख नहीं है, वह रौद्रकर्म मनुष्योंके लिये कदापि हितकर नहीं है। उससे लोक तथा परलोकमें भी मनुष्योंकी दुर्गति ही होती है।

सत्त्वका पालन करनेसे प्राणी जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। कारण, सत्त्व भगवान् नारायणका स्वरूप है। वे ही प्रभु यज्ञका स्वरूप धारण कर लेते हैं। सत्ययुगमें भगवान् नारायण शुद्ध (ध्यानादिद्वारा) सूक्ष्मरूपसे सुपूजित होते हैं। त्रेतायुगमें वे यज्ञरूपसे तथा द्वापरयुगमें 'पञ्चरात्र'विधिसे की गयी पूजा स्वीकार करते हैं और कलियुगमें तमोगुणी जन मेरे बनाये हुए अनेक रूपवाले मार्गोंसे मनमें दर्पसहित उन परमात्मा श्रीहरिकी उपासना करते हैं।

मुनिवर! उन भगवान् नारायणसे बढ़कर अन्य कोई देवता इस समय न है, न अन्य किसी कालमें होगा। जो विष्णु हैं, वही स्वयं ब्रह्मा हैं और जो ब्रह्मा हैं, वही मैं महेश्वर हूँ। तीनों वेदों, यज्ञों और पण्डितसमाजमें यही बात निर्णीत है। द्विजवर! हम तीनोंमें जो भेदकी कल्पना करता है, वह पापी एवं दुरात्मा है; उसकी अधोगति होती है। अगस्त्य! इस विषयमें एक प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ, तुम उसे सुनो। कल्पके आरम्भमें लोग भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख रहे। फिर उन लोगोंका भूलोकमें वास हुआ। वहाँ उन्होंने भगवान् विष्णुकी आराधना की। फलस्वरूप उन्हें भुवर्लोकका वास सुलभ हो गया। फिर उस लोकमें रहकर वे भगवान् केशवकी उपासनामें तत्पर हो गये। इससे उन्हें स्वर्गमें स्थान मिल गया। यों क्रमशः संसारसे मुक्त होकर वे परमधाममें पहुँच गये।

द्विजवर! इस प्रकार जब सभी विरक्त एवं मुक्त होने लगे तो देवताओंने भगवान्का ध्यान किया। सर्वव्यापी होनेके कारण वे प्रभु वहाँ तुरंत ही प्रकट हो गये और बोले—'देवताओ! आप सभी श्रेष्ठ योगी हैं। कहें, मेरे योग्य आपलोगोंका कौन-सा कार्य सामने आ गया?' तब उन देवताओंने परम प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आप हमलोगोंके आराध्यदेव हैं। इस समय सभी मानव मुक्तिपदपर आरूढ़ हो गये हैं। अतः अब सृष्टिका क्रम सुचारुरूपसे कैसे चलेगा? नरकोंमें किसका वास हो?'

देवताओंके ऐसा पूछनेपर भगवान्ने उनसे कहा—'देवताओ! सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें तो बहुत मनुष्य मुझे प्राप्त कर लेंगे। पर कलियुगमें विरले लोग ही मुझे प्राप्त कर सकेंगे; कारण, वेदोंको छोड़कर या वेदविरोधी अन्य शास्त्रोंद्वारा मेरा ज्ञान सम्भव नहीं। मैं वेदोंसे विशेषकर—ब्राह्मणसमुदायद्वारा ही ज्ञेय हूँ। विप्र! मैं, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन प्रधान देवता ही तीनों युग हैं। हम तीनों ही सत्त्व आदि तीनों गुण, तीनों वेद, तीनों अग्नियाँ, तीनों लोक, तीनों सन्ध्याएँ, तीनों वर्ण और तीनों सवन (स्नान) हैं। इस प्रकार तीन प्रकारके बन्धनसे यह जगत् बँधा है। द्विजवर! जो मुझे दूसरा नारायण या दूसरा ब्रह्म जानता है, और ब्रह्माको अपर रुद्र मानता है, उसकी समझ ठीक है, क्योंकि गुण एवं बलसे हम तीनों एक हैं। हममें भेद-बुद्धि ही मोह है। (अध्याय ७०)

कलियुगका वर्णन

अगस्त्यजी कहते हैं—राजन्! भगवान् रुद्रके ऐसा कहनेपर मैं, सभी देवता लोग तथा ऋषिगण उन प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। राजन्! फिर इतनेमें ही देखता क्या हूँ कि उनके श्रीविग्रहमें मैं, भगवान् नारायण और कमलासन ब्रह्मा भी स्थित हैं। ये सभी (त्रसरेणुके) समान सूक्ष्मरूपसे रुद्रके शरीरमें विराजमान थे। उनके शरीरकी दीप्ति प्रज्वलित भास्करके समान थी। ऐसी स्थितिमें उन भगवान् रुद्रको देखकर यज्ञके सदस्य एवं ऋषिगण—सभी महान् आश्चर्यमें पड़ गये। सबके मुखसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। वे लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदका उच्चारण करने लगे। तब उन सभीने परस्पर कहा—'क्या ये रुद्र स्वयं परब्रह्म भगवान् नारायण हैं; क्योंकि एक ही मूर्तिमें ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—ये तीनों महापुरुष मूर्तिमान् बनकर दर्शन दे रहे हैं।'

भगवान् रुद्रने कहा—क्रान्तदर्शी ऋषियो! इस यज्ञमें तुम्हारे द्वारा मेरे उद्देश्यसे जिस हव्य पदार्थका हवन हुआ है, उस भागको हम तीनों व्यक्तियोंने ग्रहण किया है। मुनिवरो! हम तीनोंमें अनेक प्रकारके भाव नहीं हैं। सम्यग्दर्शन दृष्टिवाले हमें एक ही देखते हैं। विपरीत बुद्धिवाले अनेक समझते हैं।

राजन्! इस प्रकार रुद्रके कहनेपर वे सभी मुनि देहधारियोंको व्यवस्था करनेवाले उन महाभाग (रुद्र-)से पूछनेके लिये उद्यत हो गये।

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! प्राणियोंको देहमें रहनेके लिये आपके द्वारा जो भिन्न-भिन्न देहधारक रूप रचे गये हैं—उनका प्रयोजन ही क्या है? आपने इन्हें क्यों ही बनाया?—यह हमें बतानेकी कृपा करें।

भगवान् रुद्र कहते हैं—ऋषियो! भारत 'दण्डकारण्य' नामका एक वन है। वहाँ गौतम नामक ब्रा महान् कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस् प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनके पास पधारे और उन कहा—'तपोधन! वर माँगो।' जब संसारके सृजन करने वाले ब्रह्माने ऐसा कहा, तब मुनिने प्रार्थना की— 'भगवन्! मुझे धान्योंकी ऐसी पङ्क्ति चाहिये, जो स फल एवं फलोंसे सम्पन्न हो।'

इस प्रकार मुनिवर गौतमके माँगनेपर पितामह ब्रह्माने उन्हें इच्छित वर दे दिया। वर पाकर महर्षि शतशृङ्ग पर्वतपर एक श्रेष्ठ आश्रम बनाया। उन्होंने महान् श्रम किया, खेती तैयार हो गयी क्यारियाँ ऐसी बनी थीं कि प्रतिदिन प्रातःकाल नयी शालियाँ तैयार होतीं। ब्राह्मणवर्ग धा लाता। गौतमजी उसीसे मध्याह्नके समय भोजन कर लेते और उससे अतिथिसत्कार एवं ब्राह्मणों भोजन कराते थे। एक समयकी है—पूरे देशमें घोर अकाल पड़ गया। द्विज बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई, जिसके स्मरण रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसी अनावृष्टि देखकर निवास करनेवाले सभी मुनि भूखसे पीड़ित हो जीके पास गये। उस समय अपने यहाँ आये उन मुनियोंको देखकर ऋषिने सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—'महानुभावो! आप सुप्रसिद्ध मुनियोंके पुत्र हैं। आप सभी मेरे स्थानपर पधारें और आज्ञा दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ।' इस प्र देवपर्षिके कहनेपर उन मुनियोंने वहाँ अपना स्थान किया। जबतक वर्षा नहीं हुई, तबतक अ प्रकारका भोजन करते हुए ठहरे रहे। कुछ समयके अनावृष्टि समाप्त हो गयी। इस प्रकार अकाल स

हो जानेपर उन ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राके निमित्त जानेका विचार किया । उनके समाजमें शाण्डिल्य नामके एक तपस्वी मुनि थे ।

मारीचने पूछा—शाण्डिल्य ! मैं तुमसे बहुत अच्छी बात कहता हूँ । देखो, गौतम मुनि तुम सभीके लिये पिताके स्थानपर हैं । उनसे आज्ञा लिये बिना तपस्या करनेके लिये हमलोगोंका तपोवनमें चलना उचित नहीं है ।

मारीच मुनिके इस प्रकार कहनेपर वे सभी हँस पड़े । फिर वे कहने लगे, 'क्या गौतम मुनिका अन्न खाकर हमलोगोंने अपने शरीरको बेच दिया है ?' ऐसी बात कहकर उन लोगोंने जानेके लिये फिर छल करनेकी बात सोच ली । उन लोगोंने मायाके द्वारा एक गाय तैयार की । उसको उन्होंने गौतमजी-की यज्ञ-शालामें छोड़ दिया और वह गाय वहाँ चरने लगी । उसपर गौतम मुनिकी दृष्टि पड़ी । उन्होंने हाथमें जल ले लिया और कहा—'आप भगवान् रुद्रको प्राणोंके समान प्यारी हैं ।' गौतम मुनिके मुँहसे यह बात निकलते तथा पानीके बूँदके टपकते ही वह गाय पृथ्वीपर गिरी और मर गयी । उधर मुनि लोग जानेके लिये तैयार हो गये । यह देखकर बुद्धिमान् गौतमजीने नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन मुनियोंसे कहा —'विप्रो ! आप यथाशीघ्र जानेका ठीक-ठीक कारण बतानेकी कृपा करें । मैं तो विशेषरूपसे आपमें सदा श्रद्धा रखता हूँ । ऐसे मुझ विनीत व्यक्तिको छोड़कर जानेका क्या कारण है ?'

ऋषियोंने कहा—'ब्रह्मन् ! इस समय आपके शरीरमें यह गोहत्या निवास कर रही है । मुनिवर ! जबतक यह रहेगी, तबतक हमलोग आपका अन्न नहीं खा सकते ।' उनके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ गौतमजीने उन मुनियोंसे कहा—'तपोधनो ! आपलोग मुझे गो-वधका प्रायश्चित बतानेकी कृपा करें ।'

ऋषिगण बोले—'ब्रह्मन् ! यह गौ अभी मरी नहीं, बेहोश है । यदि इसपर गङ्गा-जल डाल दिया जाय तो अवश्य उठ जायगी । इसके लिये कर्तव्य है कि आप व्रत करें अथवा क्रोधका त्याग करें ।' ऐसा कहकर वे ऋषिलोग यहाँसे चलने लगे । उनके ऐसा कहनेसे बुद्धिमान् गौतमजी आराधना करनेके विचारसे महान् पर्वत हिमालयपर चले गये । उन महान् तपस्वीने तुरंत ही तप आरम्भ कर दिया और सौ वर्षोंतक वे मेरी आराधना करते रहे । तब प्रसन्न होकर मैंने गौतमसे कहा—'सुव्रत ! वर माँगो ।' अतः उन्होंने मुझसे कहा—'आपकी जटामें तपस्विनी गङ्गा निवास करती हैं । उन्हें देनेकी कृपा कीजिये । इन पुण्यमयी नदीका नाम गोदावरी है । मेरे साथ चलनेकी ये कृपा करें ।'

(अब मुनिवर अगस्त्यजी राजा भद्राश्वसे कहते हैं—राजन् !) इस प्रकार गौतम मुनिके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकरने अपनी जटाका एक भाग उन्हें दे दिया । उसे लेकर मुनि भी उस स्थानके लिये प्रस्थित हो गये, जहाँ वह मृत गाय पड़ी थी । (उसके ऊपर गौतम मुनिने शंकरके दिये हुए जटा-जाह्नवीके जलके छींटे दिये । फिर क्या था—) उस जलसे भींग जानेपर वह सुन्दरी गौ उठकर चली गयी । साथ ही वहाँ उस गङ्गाजलके प्रभावसे पवित्र जलवाली एक विशाल नदीका प्रादुर्भाव हो गया । कुछ लोग उसे पुनीत तालाब कहने लगे । इस महान् आश्चर्यको देखकर परम पवित्र सप्तर्षि वहाँ आ गये । वे सभी विमानपर बैठे थे और उनके मुखसे 'साधु-साधु' की ध्वनि निकल रही थी । साथ ही वे कहने लगे—'गौतम ! तुम धन्य हो । अथवा धन्यवादके पात्रोंमें भी तुम्हारे समान अन्य कौन है, जिसके प्रयाससे भगवती गङ्गा इस दण्डकारण्यमें आ सकी हैं ।'

(भगवान् रुद्र ऋषियोंसे कहते हैं—) इस प्रकार जब सप्तर्षियोंने कहा, तब गौतमजी बोल पड़े—'अरे, यह क्या ! अकारण मुझपर गोवधका कलङ्क कहाँसे आ गया था !' फिर ध्यानपूर्वक देखनेसे उन्हें ज्ञात हो गया कि मेरे यहाँ ठहरे हुए उन ऋषियोंकी मायाका ही यह प्रभाव था, जिससे ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था। अब वे भलीभाँति विचार करके उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। मिथ्या मतका स्वाँग बनाये हुए वे ऋषिलोग ऐसे थे कि सिरपर जटा थी और ललाटपर भस्म ! मुनिने उन्हें यों शाप दिया—'तुम लोग तीनों वेदोंसे बहिष्कृत हो जाओगे। तुम्हें वेद-विहित कर्म करनेका अधिकार न होगा।' मुनिवर गौतमजीके कठोर शापको सुनकर सप्तर्षियोंने कहा—'द्विजवर ! ऐसा शाप उचित नहीं। वैसे तो आपकी बात व्यर्थ नहीं हो सकती, यह बिल्कुल निश्चय है। किंतु इसमें थोड़ा सुधार कर दीजिये। उपकारके बदले अपकार करनेके दोषसे दूषित होनेपर भी आपकी ऐसी कृपा हो कि ये श्रद्धाके पात्र बन सकें। आपके मुँहकी वाणीरूपी अग्निसे दग्ध हुए ये ब्राह्मण कलियुगमें प्रायः क्रिया-हीन एवं वैदिक कर्मसे बहिष्कृत होंगे। यह जो गङ्गा यहाँ आयी हैं, इनका गौण नाम गोदावरी नदी होगा। ब्रह्मन् ! जो मनुष्य कलियुगमें इस गोदावरीपर आकर गोदान करेंगे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देंगे, उन्हें देवताओंके साथ स्वर्गमें आनन्द मिलेगा। जिस समय सिंहराशिपर बृहस्पति जायँगे, उस अवसरपर जो समाहितचित्त होकर गोदावरीमें पहुँचेगा और वहाँ स्नान करके विधिपूर्वक पितरोंका तर्पण करेगा, उसके पितर यदि नरक भोगते होंगे, तब भी स्वर्ग सिधार जायँगे। यदि पहलेसे ही वे पितर स्वर्गमें पहुँचे होंगे तो उनकी मुक्ति हो जायगी, यह बिल्कुल निश्चित है। ... ! ... में आपकी बड़ी ख्याति होगी और अन्तमें आपको मुक्ति सुलभ हो जायगी।'

इस प्रकार गौतमजीसे कहकर सप्तर्षि कैलासपर्वतपर चले गये, जहाँ उमाके साथ मैं रहता हूँ। उसी समय उन श्रेष्ठ मुनियोंने कलि होनेवाले ब्राह्मणोंका वृत्तान्त मुझे बताया। उन्होंने यह भी कहा कि 'प्रभो ! वे सभी ब्राह्मण कलि आपके रूपका अनुकरण करेंगे। उनका सिर जटा मुकुटसे सम्पन्न होगा। वे अपनी इच्छासे प्रेतरू बना लेंगे। मिथ्या चिह्न धारण कर लेना उन स्वभाव होगा। आपसे मेरी प्रार्थना है, उनपर अनु कर उन्हें कोई शास्त्र देनेकी कृपा करें। कलि व्यवहारसे इन्हें पीड़ा होगी, उस समय भी नि निर्वाह करना आवश्यक है।'

द्विजवर अगस्त्यजी ! यह बहुत पहलेकी बा है—सप्तर्षियोंके इस प्रकार प्रार्थना करने वैदिक क्रियासे मिलती-जुलती संहिता मैंने बना दी मेरे श्वाससे निकलनेके कारण वह शिवसंहिताके नाम विख्यात होगी। मेरे और शाण्डिल्यशास्त्रके अनुयायी उसमें अवगाहन करेंगे। बहुत थोड़े अपराधसे ही वे दाम्भिक स्थितिमें पहुँच गये हैं, मैं भविष्यकी बात जानता हूँ। अतएव मेरे ही प्रयाससे मोहित होकर वे ब्राह्मण महान् लालची हो जायँगे। कलिमें उन मनुष्योंके द्वारा अनेक नये शास्त्रोंकी रचना होगी। प्रमाणसे तो वे हमारी संहिताकी अपेक्षा भी अधिक बढ़ जायँगे। यह 'पाशुपत'दीक्षा कई प्रकारकी होगी। क्योंकि मैं पशुपति कहलाता हूँ और मुझसे उसका सम्बन्ध है। इस समय प्रचलित जो वेदका मार्ग है, इससे उसका सिद्धान्त अलग है। पवित्रतासे रहित उस रौद्र कर्मको क्षुद्र कर्म जानना चाहिये। ...

और वेदान्तके सिद्धान्तका मिथ्या प्रचार करेंगे, उनके मनमें स्वार्थ भरा रहेगा। वे मनःकल्पित शास्त्रोंके सम्पादक होंगे। उनके उपास्य रुद्र बड़े ही उग्ररूपधारी —ऐसा जानना चाहिये। मैं उन रुद्रोंमें नहीं हूँ। प्राचीन समयमें जब देवताओंके लिये कार्य उपस्थित हुआ था, तो भैरवका रूप धारण करके ऐसा नाच करनेमें मेरी तत्परता हुई थी। उन क्रूर कर्म करनेवाले रुद्रोंसे मेरा यही सम्बन्ध है। दैत्योंका विनाश करनेकी इच्छासे मेरे द्वारा यह हँसने योग्य घटना घट गयी। उस समय आँखोंसे जो बिन्दुएँ पृथ्वीपर पड़ीं, वे भविष्यकालके लिये असंख्य रुद्रके चिह्न (लिङ्ग) बन गयीं। उग्ररूपी रुद्रके उपासकोंमें रुद्रका स्वाभाविक गुण आ जानेसे मांस और मदिरापर उनकी सदा रुचि होगी। वे स्त्रियोंमें आसक्त होंगे, सदा पापकर्मोंमें उनकी प्रवृत्ति होगी। भूतलपर ऐसे ब्राह्मणोंके होनेका कारण एकमात्र उनपर गौतममुनिका शाप ही है। उनमें भी जो मेरी आज्ञाका अनुसरण तथा सदाचारका पालन करेंगे, वे स्वर्गके अधिकारी होंगे। साथ ही यह भी कहा गया है कि जो संशयवश मुझसे विमुख हो वेदान्तका समर्थक बनेंगे, वे मेरे वंशज दोषके भागी होंगे। उन्हें नीचेके लोक अथवा नरकमें जाना होगा। पहले गौतमजीके वचनरूपी आगसे वे दग्ध तो हुए ही हैं, फिर मेरी आज्ञाका भी उन्होंने अनादर किया है, अतः उन ब्राह्मणोंको नरकमें जाना होगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है।

भगवान् रुद्र कहते हैं—इस प्रकार मेरे कहनेपर वे ब्राह्मणकुमार जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। परम तपस्वी गौतमने भी अपने आश्रमका मार्ग पकड़ा। विप्रो! मैंने यह कलि-धर्मका लक्षण तुम्हें बता दिया। जो इससे विपरीत मार्गका अनुसरण करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये। (अध्याय ७१)

प्रकृति और पुरुषका निर्णय

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! महाभाग रुद्र सर्वज्ञानी, सबकी सृष्टिके प्रवर्तक, परम प्रभु एवं सनातन पुरुष हैं। उन्हें प्रणाम करके प्रयत्नशील हो अगस्त्यजीने उनसे यह प्रश्न किया।

अगस्त्यजीने पूछा—महाभाग रुद्र! ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन देवताओंके समुदायको सम्पूर्ण शास्त्रोंमें त्रयी कहा गया है। आप सभी महानुभाव सर्वव्यापी हैं। आपका तो ऐसा सम्बन्ध है, जैसे दीपक, अग्नि और दीपकको प्रज्वलित करनेवाला व्यक्ति। तीन नेत्रोंसे शोभा पानेवाले भगवन्! मेरी यह जिज्ञासा है कि किस समय आपकी प्रधानता रहती है? कब विष्णु प्रधान माने जाते हैं? अथवा किस समय ब्रह्माकी प्रधानता होती है? आप यह बात मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् रुद्रने कहा—द्विजवर! वैदिक सिद्धान्तके अनुसार परब्रह्म परमात्मा विष्णु ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन तीन भेदोंसे पठित एवं निर्दिष्ट हैं; पर माया-मोहित बुद्धिवाले इसे समझ नहीं पाते हैं। 'विश प्रवेशने' यह धातु है। इसमें 'स्नु' प्रत्यय लगा देनेसे 'विष्णु' शब्द निष्पन्न हो जाता है। इन विष्णुको ही सम्पूर्ण देवसमाजमें सनातन परमात्मा कहते हैं। महाभाग! जो ये विष्णु हैं, वे ही आदित्य हैं। सत्ययुगमें सुप्रतिष्ठित देवशरीरमें उन दोनों महानुभावोंकी मैं निरन्तर स्तुति करता हूँ। सृष्टिके समय मेरे द्वारा ब्रह्माजीका स्तवन होता है

और मैं कालरूपसे सुशोभित होता हूँ। ब्रह्मादिक सभी देवता और दानव सदा सद्गुणोंसे मेरे स्तवनके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। भोगकी इच्छा करनेवाला देवसमुदाय मेरी त्रिमूर्तिका यजन करता है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले मानव सहस्र ब्रह्मकायके जिन प्रभुका मनसे यजन करते हैं, वे ही शिवके आत्मा स्वयं भगवान् नारायण हैं। द्विजवर! जो पुरुष ब्रह्मयज्ञके द्वारा निरन्तर यजन करते हैं, उनका प्रयास ब्रह्मको प्रसन्न करनेके लिये होता है। वेदको भी 'ब्रह्म' कहा जाता है। नारायण, शिव, विष्णु, शंकर और पुरुषोत्तम—इनमें केवल नामोंका ही भेद है। वस्तुतः इन सबको सनातन परब्रह्म परमात्मा कहते हैं।

विप्र! वैदिक कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले ... ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर—इन नामोंका ... उच्चारण होता है। इन तीनों मन्त्रोंके आदि देव ... इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ... कर्मके अनुसार ही मेरा, विष्णुका तथा ... पर्याय है। वस्तुतः हम तीनों एक ही हैं। ... पुरुषको चाहिये कि इसमें भेद-भावकी कल्पना न ... उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले द्विजवर! जो ... कारण इसके विपरीत कल्पना करता है, वह पापी ... जाता है। उसकी समझमें मैं रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु ... ऋग्, यजुः और साम—इनमें ऐसी भेद- ... होती है। (अध्याय ...)

धर्मराज-वृत्तान्त

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवर! अब एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ! इसमें बड़े कौतूहलकी बात है। जिस समय मैं जलमें था, तब यह घटना घटी थी। विप्रवर! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने मेरी सृष्टि करके कहा—'तुम प्रजाओंकी रचना करो', किंतु इस कार्यकी जानकारी मुझे प्राप्त न थी। अतः मैं जलमें (तपस्या करनेके लिये) चला गया। जलमें गये अभी एक क्षण ही हुआ था—ज्यों ही मैं पैठता हूँ, त्यों ही परम प्रभु परमात्माकी मुझे झाँकी मिली। उन पुरुषकी आकृति केवल अँगूठेके बराबर थी। मैं मनको सावधान करके उनका ध्यान करने लगा। इतनेमें ही जलसे ग्यारह पुरुष निकल आये। उनकी ऐसी प्रतिभा थी, मानो प्रलयकालकी अग्नि हो। वे अपनी किरणोंसे जलको संतप्त कर रहे थे। मैंने उनसे पूछा—'आप लोग कौन हैं, जो जलसे निकलकर अपने तेजसे इस पानीको अत्यन्त तप्त कर रहे हैं? साथ ही यह भी बतायें कि आप कहाँ जायँगे?'

इस प्रकार मेरे पूछनेपर उन आदरणीय पुरुषोंने कुछ भी न कहा। वे सभी परम प्रशंसनीय ... थे। बिना कुछ कहे ही वे चल पड़े। तदनन्तर उनके जानेके कुछ ही क्षण बाद एक अत्यन्त महान् पुरुष आये, जिनकी आकृति बहुत सुन्दर थी। उनके शरीरका वर्ण मेघके समान श्यामल था और आँखें कमलके तुल्य थीं। मैंने उनसे पूछा—'पुरुषप्रवर! आप कौन हैं? तथा जो अभी गये हैं, वे पुरुष कौन हैं? आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? बतानेकी कृपा करें।'

पुरुषने कहा—ये पुरुष, जो पहले आकर चले गये हैं, इनका नाम आदित्य है। ये बड़े तेजस्वी हैं। ब्रह्माजीने इनका ध्यान किया है, अतः ये यहाँसे चले गये। कारण, इस समय ब्रह्माजी संसारकी रचना कर रहे हैं। इस अवसरपर उन्हें इनकी आवश्यकता है। देव! ब्रह्माके सृजन किये हुए जगत्‌की रक्षाका भार इनपर अवलम्बित होगा—इसमें कोई संशय नहीं है।

श्रीरुद्र बोले—भगवन्! आप महान् पुरुषोंके भी सिरमौर हैं। मैं आपको कैसे जानूँ! आप अपने

तथा स्वरूपका परिचय बताते हुए सभी प्रसङ्ग नेकी कृपा कीजिये; क्योंकि मुझे आपके सम्बन्धमें कोई ज्ञान नहीं है।

इस प्रकार भगवान् रुद्रके पूछनेपर उस पुरुषने र दिया—'मैं भगवान् नारायण हूँ। मेरी सत्ता सर्वत्र रहती है। मैं जलमें शयन करता हूँ। आपको दिव्य आँखें दे रहा हूँ, आप मुझे अब सकते हैं। जब उन्होंने मुझसे ऐसी बात कही तब उनपर पुनः दृष्टि डाली। इतनेमें जिनकी आकृति अँगूठेके बराबर थी, वे अब विराट्‌रूपमें दीखने । उनका वह तेजस्वी विग्रह प्रदीप्त था। उनकी भिमें मैंने कमलका दर्शन किया। सूर्यके समान ीं ब्रह्माजी भी दिखायी पड़े तथा उनके समीप ही ने स्वयं अपनेको भी देखा। उन परमात्माको वकर मेरा मन आनन्दसे भर गया। विप्रवर! तब रे मनमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि इनकी स्तुति करूँ। न! फिर तो निश्चित विचार हो जानेपर मैं इस तोत्रसे उन विश्वात्मा परम प्रभुकी आराधना करने गा—मुझमें तपस्याका बल था, इसीसे इस शुभ र्मकी ओर मेरी बुद्धि प्रवृत्त हुई।

मैं (रुद्र) ने कहा—जिनका अन्त नहीं है, जो विशुद्ध चित्तवाले, सुन्दर रूपधारी, सहस्र भुजाओंसे सुशोभित एवं अनन्त किरणोंके आकर हैं तथा जिनका कर्म महान् शुद्ध और देह परम विशाल है, उन परब्रह्म परमात्माके लिये मेरा नमस्कार है। अखिल विश्वका दुःख दूर करना जिसका सहजस्वभाव है, जो सहस्र सूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी हैं, सम्पूर्ण विद्याएँ जिनमें आश्रय पाती हैं तथा समस्त देवता जिन्हें निरन्तर नमस्कार करते हैं, उन चक्र धारण करनेवाले कल्याणके स्रोत प्रभुके लिये मेरा नमस्कार है। प्रभो! अनादिदेव, अच्युत, शेषशायी, विभु, भूतपति, महेश्वर, मरुत्पति, सर्वपति, जगत्पति, भुवःपति और भुवनपति आदि नामोंसे भक्तजन आपको सम्बोधित करते हैं। ऐसे आप भगवान्‌के लिये मेरा नमस्कार है। नारायण! आप जलके स्वामी, विश्वके लिये कल्याणदाता, पृथ्वीके स्वामी, संसारके संचालक जगत्‌के लोचनस्वरूप, चन्द्रमा एवं सूर्यका रूप धारण करनेवाले, विश्वमें व्याप्त, अच्युत एवं परम पराक्रमी पुरुष हैं। आपकी मूर्ति तर्कका विषय नहीं है और आप अमृत-स्वरूप तथा अविनाशी हैं। नारायण! प्रचण्ड अग्निकी लपटें आपके श्रीविग्रहकी समता करनेमें असफल हैं। आपके मुख चारों ओर हैं। आपकी कृपासे देवताओंका महान् दुःख दूर हुआ है। सनातन प्रभो! आपके लिये नमस्कार है, मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। विभो! आपके अनेक स्वरूपोंका मुझे दर्शन हो रहा है। आपके भीतर जगत्‌का निर्माण करनेवाले सनातन ब्रह्मा तथा ईश दिखायी पड़ रहे हैं, उन आप परम पितामहके लिये मेरा नमस्कार है। संसाररूपी चक्रमें भटकनेवाले परम पवित्र अनेक साधक उत्तम मार्गपर चलते हुए भी आपकी आराधनामें जब कथंचित् (किसी प्रकार) सफल होते हैं; तब आदिदेव! ऐसे आप प्रभुकी आराधना करनेकी मुझमें शक्ति ही कहाँ है, अतः देवेश्वर! मैं आपको केवल प्रणाम करता हूँ। आदिदेव! आप प्रकृतिसे परे एकमात्र पुरुष हैं। जो सौभाग्यशाली पुरुष आपके इस रूपको जानता है, उसे सब कुछ जाननेकी क्षमता प्राप्त हो जाती है। आपकी मूर्ति बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी है। आपके स्वरूपोंमें जो गुण हैं, वे हठपूर्वक विभाजित नहीं किये जा सकते। भगवन्! आप वागिन्द्रियके मूलकारण, अखिल कर्मसे परे और विधाता आप ही हैं। यह श्रेष्ठ शरीर विशुद्ध भावोंसे ओत-

ग्रहण कर वे सभी आपकी आराधना करेंगे।' …कर वे भगवान् नारायण स्वयं अपने ही अंशसे …र बादलकी रचना कर आकाशसे अद्भुत शब्दकी …ा नहीं, कहाँ अन्तर्धान हो गये।

…वान् रुद्र कहते हैं—ऐसी शक्तिसे सम्पन्न, …चरनेवाले तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेमें …ल श्रीहरिने उस समय मुझे इस प्रकारका वर दिया था। अतएव मैं देवताओंसे श्रेष्ठ हुआ। वस्तुतः भगवान् नारायणसे श्रेष्ठ कोई देवता न हुआ है और न होगा। सज्जनश्रेष्ठ! पुराणों और वेदोंका यही रहस… है। मैंने आपलोगोंके सामने यह सब प्रसङ्ग बता दिय… जिससे सुस्पष्ट हो जाता है कि इस जगत्‌में एकमा… भगवान् श्रीहरिकी ही उपासना की जानी चाहिये।

(अध्याय ७३)

भुवन-कोशका वर्णन

…गवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! भगवान् …णपुरुष, शाश्वत देवता, यज्ञस्वरूप, अविनाशी, … अज, शम्भु, त्रिनेत्र एवं शूलपाणि हैं। …ातन प्रभुसे सम्पूर्ण ऋषियोंने पुनः प्रश्न किया।

…षिगण बोले—देवेश्वर! आप हम सम्पूर्ण …में श्रेष्ठ हैं। अतः हम आपसे एक …ूछ रहे हैं, इसे आप बतानेकी कृपा करें। …। पृथ्वीका प्रमाण, पर्वतोंकी स्थिति और … विस्तार क्या है। देवेश्वर! कृपया इसका … करें।

…गवान् रुद्र कहते हैं—धर्मका पूर्ण ज्ञान रखने- …महाभाग ऋषियो! समस्त पुराणोंमें भूलोककी …र्चा की जाती है। यह लोक पृथ्वीतलपर …ैं तुम्हारे सामने संक्षेपसे इसका वर्णन करता … प्रसङ्गको सुनो।

…जन परब्रह्म परमेश्वरका प्रसङ्ग चला है, उनका ज्ञान … विद्याओंकी जानकारीसे ही सम्भव है। उन्हींका …रमात्मा है। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। …ाणु-जैसा सूक्ष्म रूप अचिन्त्यरूप भी धारण …ते हैं। उन्हीं सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त रहने- …पीताम्बरधारीका नाम नारायण है। पृथ्वी उन्हींके वक्षःस्थलपर टिकी है। वे दीर्घ, ह्रस्व, कृश… लोहित आदि गुणोंसे रहित तथा समस्त प्रपञ्च… परे हैं। बहुत पहलेसे ही उनका यह रूप है… उनका स्वरूप केवल ज्ञानका विषय है। सृष्टि… आदिमें उन प्रभुमें सत्त्व, रज और तमके निर्मा… करनेकी इच्छा हुई, अतः उन्होंने जलकी सृ… करके योगनिद्राको सहायतासे उसमें शयन किया… फिर उनकी नाभिपर एक कमल उग आया… तब उस कमलपर जो सम्पूर्ण वेदों एवं ज्ञानके… भंडार, अचिन्त्य स्वरूप, अत्यन्त शक्तिशाली त… प्रजाओंके रक्षक कहे जाते हैं, वे ब्रह्मा प्रक… हुए। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन औ… सनत्कुमार-प्रभृति धर्मज्ञानी पुत्रोंको सर्वप्रथम उत्पन्न… किया और फिर स्वायम्भुव मनु, मरीचि आदि मुनियों… तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी सृष्टि की। भगवन्… दक्षद्वारा सृष्ट स्वायम्भुव मनुसे इस भूमण्डलका विशे… विस्तार हुआ। उन महाभाग मनुमहाराजके … दो पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः प्रियव्रत औ… उत्तानपाद थे। प्रियव्रतसे दस पुत्रोंकी उत्पत्ति… हुई। वे थे—आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेध, मेधातिथि… ध्रुव, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, वपुष्मान् औ…

जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित सुमेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रवर ! अब मैं जम्बूद्वीपका यथार्थ वर्णन करूँगा । साथ ही समुद्रों और द्वीपोंकी संख्या एवं विस्तारका भी वर्णन करूँगा । इन सब द्वीपोंमें जितने वर्ष और नदियाँ हैं, उनका तथा पृथ्वी आदिके विस्तारका प्रमाण, सूर्य एवं चन्द्रमाकी पृथक् गतियाँ, सातों द्वीपोंके भीतर वर्तमान हजारों छोटे द्वीपोंके नाम-रूपका वर्णन, जिनसे यह जगत् व्याप्त है, उनकी पूरी संख्या बतानेके लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है। फिर भी मैं सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा, जिनके प्रमाणोंको मनुष्य तर्कद्वारा प्रतिपादन करते हैं । वस्तुतः जो भाव सर्वथा अचिन्त्य हैं, उनको तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये । जो वस्तु प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है—उसे अचिन्त्य-स्वरूप समझना चाहिये । अब मैं जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंका तथा अनेक योजनोंमें फैले हुए उसके मण्डलोंका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो । चारों तरफ फैला हुआ यह जम्बूद्वीप लाख योजनोंका है । अनेक योजनवाले पवित्र बहुत-से जनपद इसकी शोभा बढ़ाते हैं । यह सिद्ध और चारणोंसे व्याप्त है तथा पर्वतोंसे इसकी शोभा अत्यन्त मनोहर जान पड़ती है । अनेक प्रकारकी सुन्दर धातुएँ इसका गौरव बढ़ा रही हैं । शिलाजित आदिके उत्पन्न होनेसे इसकी महिमा चरम सीमापर पहुँच गयी है । पर्वतीय नदियोंसे चारों तरफ यह चमचमा रहा है । ऐसे विस्तृत एवं श्रीसम्पन्न भूमण्डलवाले जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष चारों ओर व्याप्त हैं । यह ऐसा सुन्दर द्वीप है, जहाँ सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीनारायण विराजते हैं । इसके विस्तारके अनुसार चारों ओर समुद्र हैं तथा पूर्वमें उतने ही लम्बे चौड़े ये छः वर्षपर्वत हैं । इसके पूर्व और पश्चिम—दो तरफ लवणसमुद्र हैं । वहाँ वर्फसे व्याप्त हुआ हिमालय, सुवर्णसे भरा हेमकूट तथा अत्यन्त सुख देनेवाला महान् निषध नामक पर्वत है । चार वर्णवाले सुवर्णयुक्त सुमेरुपर्वतका वर्णन तो मैं पहले ही कर चुका हूँ, जो कमलके समान वर्तुलाकार है । उसके चारों भाग बराबर हैं और वह बहुत ऊँचा है । उसके पार्श्व भागोंमें परमब्रह्म परमात्माकी नाभिसे प्रकट हुए तथा प्रजापति नामसे प्रसिद्ध एवं गुणवान् ब्रह्माजी विराजते हैं । इस जम्बूद्वीपके पूर्व भागमें श्वेतवर्णवाले प्राणी हैं, जो ब्राह्मण हैं । जो दक्षिणकी ओर पीतवर्ण हैं, उन्हें वैश्य माना जाता है । जो पश्चिमकी ओर भृङ्गराजके पत्रकी आभावाले हैं, उनको शूद्र कहा गया है । इस सुमेरुपर्वतके उत्तर भागमें संचय करनेके इच्छुक जो प्राणी हैं तथा जिनका वर्ण लाल है, उन्हें क्षत्रियकी संज्ञा प्राप्त हुई है । इस प्रकार वर्णोंकी बात कही जाती है । स्वभाव, वर्ण और परिमाणसे इसकी गोलाईका वर्णन हुआ है । इसका शिखर नीलम एवं वैदूर्य मणिके समान है । वह कहीं श्वेत, कहीं शुक्र और कहीं पीले रंगका है । कहीं वह धतूरेके रंगके समान हरा है और कहीं मोरके पंखकी भाँति चितकबरा । इन सभी पर्वतोंपर सिद्ध और चारणगण निवास करते हैं । इन पर्वतोंके बीचमें नौ हजार लम्बा-चौड़ा 'निष्कम्भ' नामका पर्वत कहा जाता है । इस महान् सुमेरुपर्वतके मध्य भागमें इलावृत वर्ष है । इसीसे उसका विस्तार चारों ओर फैला हुआ हजार योजन माना जाता है । उसके मध्यमें धूमरहित आगकी भाँति प्रकाशमान महामेरु है । सुमेरुकी वेदीके दक्षिणका आधा भाग और उत्तरका आधा भाग उसका (महामेरुका) स्थान माना जाता है। वहाँ जो ये छः वर्ष हैं, उनकी वर्ष-पर्वतकी संज्ञा है । इन सभी वर्षोंके आगे एक योजनका अवकाश है । वर्षोंकी लम्बाई-चौड़ाई—दो-दो हजार योजनकी है । उन्हींके परिमाणसे जम्बूद्वीपका विस्तार कहा जाता है । एक-एक लाख

सवन । उन प्रियव्रतने अपने सात पुत्रोंके लिये पृथ्वीके सात द्वीपोंके सात भाग बनाकर उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी । उस समय महाभाग प्रियव्रतकी आज्ञासे आग्नीध्र जम्बूद्वीपके, मेधातिथि शाकद्वीपके, ज्योतिष्मान् क्रौञ्चद्वीपके, द्युतिमान् शाल्मलिद्वीपके, हव्य गोमेदद्वीपके, वपुष्मान् प्लक्षद्वीपके तथा सवन पुष्करद्वीपके शासक हुए । पुष्करद्वीपके शासक सवनसे दो पुत्रोंका जन्म हुआ । वे पुत्र महावीति (कुमुद) और धातक नामसे प्रसिद्ध रहे हैं । उनके लिये सवनने उन्हींके नामसे पुकारे जानेवाले दो देशोंका निर्माण किया । धातकका राज्यखण्ड 'धातकीखण्ड'के नामसे तथा कुमुदका राज्यखण्ड 'कौमुदखण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ । शाल्मलिद्वीपके स्वामी द्युतिमान्के तीन पुत्र हुए । उनके नाम कुश, वैद्युत और जीमूतवाहन थे । शाल्मलिद्वीपके देश भी उन्हींके नामोंसे विख्यात हुए । ज्योतिष्मान्के सात पुत्र हुए । उनके नाम कुशल, मनुगव्य, पीवर, अन्ध, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि थे । उनके नामपर क्रौञ्चद्वीपमें सात महादेश हुए । कुशद्वीपके स्वामी कुश बड़े प्रतापी थे । उनके सात पुत्र हुए । वे उद्भिद्, वेणुमान्, रथपाल, मनु, धृति, प्रभाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध हुए । उस द्वीपमें उनके नामपर भी सात वर्ष (देश) हैं । शाकद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए । उनके नाम इस प्रकार हैं—नाभि, शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, नन्दशिव, क्षेमक और ध्रुव ।

इस द्वीपमें उन्हींके नामसे प्रसिद्ध उनके ये वर्ष भी हैं— हेमवान्, हेमकूट, किम्पुरुष, नैषध, हरिवर्ष, मेरुमध्य, इलावृत, नील, रम्यक, श्वेत, हिरण्मय और शृङ्गवान् । पर्वतके उत्तरी भागमें उत्तरकुरु, माल्यवान् हैं । भद्राश्व और गन्धमादनपर महाराज नाभिका शासन ...

केतुमालवर्षपर भी उन्हींका शासन ... प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भूमण्डलकी व्यव... प्रत्येक कल्पके आरम्भमें प्रधान मनुओंद्वारा ... विभाजन एवं पालनका ऐसा ही प्रबन्ध है । कल्पकी यह स्वाभाविक व्यवस्था है औ... भी सदा ऐसा ही होगा ।

अब महाभाग ! मैं नाभिकी संतानका व... हूँ—नाभिकी धर्मपत्नीका नाम मेरुदेवी था । ... ऋषभ नामक पुत्रको जन्म दिया । ऋषभ... नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई । भरत सबसे ब... हुए । अतएव उनके पिता ऋषभने हिमाद्रि... दक्षिण भागमें भारत नामके इस महान् वर्ष... शासक बना दिया । भरतसे सुमतिका जन्म हु... सुमतिको अपना राज्य देकर भरत जंगलमें ... गये । सुमतिके तेज, तेजके सत्सुत, सत्... इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नके परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रति... प्रतिहर्ताके निखात, निखातके उन्नेता, ... अभाव, अभावके उद्गाता, उद्गाताके प्रस्तोता, ... के विभु, विभुके पृथु, पृथुके अनन्त, ... गय, गयके नय, नयके विराट्, विराट्के महावी... महावीर्यके सुधीमान् पुत्र हुए । सुधीमान्से सौ ... उत्पत्ति हुई । इस प्रकार इन प्रजाओंकी निरन्... होती गयी । उनसे सात द्वीपोंवाली यह पृथ्वी ... भारतवर्ष सर्वथा व्याप्त हो गया । उनके वंशमें ... हुए राजाओंसे यह भूमण्डल पालित होता आया है । ... युग, त्रेता आदि युगों एवं महायुगोंसे परिपूर्ण एक... चतुर्युगका एक मन्वन्तर कहा जाता है । ... प्रसङ्गमें मैंने यह स्वायम्भुवमन्वन्तर... कही

जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित सुमेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रवर ! अब मैं जम्बूद्वीपका यथार्थ वर्णन करूँगा । साथ ही समुद्रों और द्वीपोंकी संख्या एवं विस्तारका भी वर्णन करूँगा । इन सब द्वीपोंमें जितने वर्ष और नदियाँ हैं, उनका तथा पृथ्वी आदिके विस्तारका प्रमाण, सूर्य एवं चन्द्रमाकी पृथक् गतियाँ, सातों द्वीपोंके भीतर वर्तमान हजारों छोटे द्वीपोंके नाम-रूपका वर्णन, जिनसे यह जगत् व्याप्त है, उनको पूरी संख्या बतानेके लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है। फिर भी मैं सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंके साथ इन सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा, जिनके प्रमाणोंको मनुष्य तर्कद्वारा प्रतिपादन करते हैं । वस्तुतः जो भाव सर्वथा अचिन्त्य हैं, उनको तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये । जो वस्तु प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है—उसे अचिन्त्य-स्वरूप समझना चाहिये । अब मैं जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंका तथा अनेक योजनोंमें फैले हुए उसके मण्डलोंका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो । चारों तरफ फैला हुआ यह जम्बूद्वीप लाख योजनोंका है । अनेक योजनवाले पवित्र बहुत-से जनपद इसकी शोभा बढ़ाते हैं । यह सिद्ध और चारणोंसे व्याप्त है तथा पर्वतोंसे इसकी शोभा अत्यन्त मनोहर जान पड़ती है । अनेक प्रकारकी सुन्दर धातुएँ इसका गौरव बढ़ा रही हैं । शिलाजित आदिके उत्पन्न होनेसे इसकी महिमा चरम सीमापर पहुँच गयी है । पर्वतीय नदियोंसे चारों तरफ यह चमचमा रहा है । ऐसे विस्तृत एवं श्रीसम्पन्न भूमण्डलवाले जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष चारों ओर व्याप्त हैं । यह ऐसा सुन्दर द्वीप है, जहाँ सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीनारायण विराजते हैं । इसके विस्तारके अनुसार चारों ओर समुद्र हैं तथा पूर्वमें उतने ही लम्बे चौड़े ये छः वर्षपर्वत हैं । इसके पूर्व और पश्चिम—दो तरफ लवणसमुद्र हैं । वहाँ बर्फसे व्याप्त हुआ हिमालय, सुवर्णसे भरा हेमकूट तथा अत्यन्त सुख देनेवाला महान् निषध नामक पर्वत है । चार वर्णवाले सुवर्णयुक्त सुमेरुपर्वतका वर्णन तो मैं पहले ही कर चुका हूँ, जो कमलके समान वर्तुलाकार है । उसके चारों भाग बराबर हैं और वह बहुत ऊँचा है । उसके पार्श्व भागोंमें परमब्रह्म परमात्माकी नाभिसे प्रकट हुए तथा प्रजापति नामसे प्रसिद्ध एवं गुणवान् ब्रह्माजी विराजते हैं । इस जम्बूद्वीपके पूर्व भागमें श्वेतवर्णवाले प्राणी हैं, जो ब्राह्मण हैं । जो दक्षिणकी ओर पीतवर्ण हैं, उन्हें वैश्य माना जाता है । जो पश्चिमकी ओर भृङ्गराजके पत्रकी आभावाले हैं, उनको शूद्र कहा गया है । इस सुमेरुपर्वतके उत्तर भागमें संचय करनेके इच्छुक जो प्राणी हैं तथा जिनका वर्ण लाल है, उन्हें क्षत्रियकी संज्ञा प्राप्त हुई है । इस प्रकार वर्णोंकी बात कही जाती है । स्वभाव, वर्ण और परिमाणसे इसकी गोलाईका वर्णन हुआ है । इसका शिखर नीलम एवं वैदूर्य मणिके समान है । वह कहीं श्वेत, कहीं शुक और कहीं पीले रंगका है । कहीं वह धतूरेके रंगके समान हरा है और कहीं मोरके पंखकी भाँति चितकबरा । इन सभी पर्वतोंपर सिद्ध और चारणगण निवास करते हैं । इन पर्वतोंके बीचमें नौ हजार लम्बा-चौड़ा 'विष्कम्भ' नामका पर्वत कहा जाता है । इस महान् सुमेरुपर्वतके मध्य भागमें इलावृत वर्ष है । इसीसे उसका विस्तार चारों ओर फैला हुआ हजार योजन माना जाता है । उसके मध्यमें धूमरहित आगकी भाँति प्रकाशवान महामेरु है । सुमेरुकी वेदीके दक्षिणका आधा भाग और उत्तरका आधा भाग उसका (महामेरुका) स्थान माना जाता है । वहाँ जो ये छः वर्ष हैं, उनकी वर्ष-पर्वतकी संज्ञा है । इन सभी वर्षोंके आगे एक योजनका अवकाश है । वर्षोंकी लम्बाई-चौड़ाई—दो-दो हजार योजनकी है । उन्हींके परिमाणसे जम्बूद्वीपका विस्तार कहा जाता है । एक-एक लाख

सवन । उन प्रियव्रतने अपने सात पुत्रोंके लिये पृथ्वीके सात द्वीपोंके सात भाग बनाकर उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी। उस समय महाभाग प्रियव्रतकी आज्ञासे आग्नीध्र जम्बूद्वीपके, मेधातिथि शाकद्वीपके, ज्योतिष्मान् क्रौञ्चद्वीपके, द्युतिमान् शाल्मलिद्वीपके, हव्य गोमेदद्वीपके, वपुष्मान् प्लक्षद्वीपके तथा सवन पुष्करद्वीपके शासक हुए। पुष्करद्वीपके शासक सवनसे दो पुत्रोंका जन्म हुआ। वे पुत्र महावीति (कुमुद) और धातक नामसे प्रसिद्ध रहे हैं। उनके लिये सवनने उन्हींके नामसे पुकारे जानेवाले दो देशोंका निर्माण किया। धातकका राज्यखण्ड 'धातकीखण्ड'के नामसे तथा कुमुदका राज्यखण्ड 'कौमुदखण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। शाल्मलिद्वीपके स्वामी द्युतिमान्के तीन पुत्र हुए। उनके नाम कुश, वैद्युत और जीमूतवाहन थे। शाल्मलिद्वीपके देश भी उन्हींके नामोंसे विख्यात हुए। ज्योतिष्मान्के सात पुत्र हुए। उनके नाम कुशल, मनुगव्य, पीवर, अन्ध, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि थे। उनके नामपर क्रौञ्चद्वीपमें सात महादेश हुए। कुशद्वीपके स्वामी कुश बड़े प्रतापी थे। उनके सात पुत्र हुए। वे उद्भिद्, वेणुमान्, रथपाल, मनु, धृति, प्रभाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध हुए। उस द्वीपमें उनके नामपर भी सात वर्ष (देश) हैं। शाकद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—नाभि, शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, नन्दशिव, [illegible]

[illegible] भी उन्हींका शासन हुआ। इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भूमण्डलकी व्यवस्था हुई है। प्रत्येक कल्पके आरम्भमें प्रधान मनुओंद्वारा भूमण्डलके विभाजन एवं पालनका ऐसा ही प्रबन्ध होता आया है। कल्पकी यह स्वाभाविक व्यवस्था है और भविष्यमें भी सदा ऐसा ही होगा।

अब महाभाग! मैं नाभिकी संतानका वर्णन करता हूँ—नाभिकी धर्मपत्नीका नाम मेरुदेवी था। उन्होंने ऋषभ नामक पुत्रको जन्म दिया। ऋषभसे भरत नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भरत सबमे बड़े पु[illegible] हुए। अतएव उनके पिता ऋषभने हिमाद्रि पर्वत[illegible] दक्षिण भागमें भारत नामके इस महान् वर्षका उ[illegible] शासक बना दिया। भरतसे सुमतिका जन्म हुआ [illegible] सुमतिको अपना राज्य देकर भरत जंगलमें च[illegible] गये। सुमतिके तेज, तेजके सत्सुत, सत्सुत[illegible] इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नके परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रतिहर्ता, प्रतिहर्ताके निखात, निखातके उन्नेता, उन्नेता[illegible] अभाव, अभावके उद्गाता, उद्गाताके प्रस्तोता, प्रस्तोताके विभु, विभुके पृथु, पृथुके अनन्त, अनन्त[illegible] गय, गयके नय, नयके विराट्, विराट्के महावीर्य औ[illegible] महावीर्यके सुधीमान् पुत्र हुए। सुधीमान्से सौ पुत्रों[illegible] उत्पत्ति हुई। इस प्रकार इन प्रजाओंकी निरन्तर वृ[illegible] होती गयी। उनसे सात द्वीपोंवाली यह पृथ्वी त[illegible] भारतवर्ष सर्वथा व्याप्त हो गया। उनके वंशमें उत्प[illegible]

जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित सुमेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रवर ! अब मैं जम्बूद्वीपका यथार्थ वर्णन करूँगा। साथ ही समुद्रों और द्वीपोंकी संख्या एवं विस्तारका भी वर्णन करूँगा। उन सब द्वीपोंमें जितने वर्ष और नदियाँ हैं, उनका तथा पृथ्वी आदिके विस्तारका प्रमाण, सूर्य एवं चन्द्रमाकी पृथक् गतियाँ, सातों द्वीपोंके भीतर वर्तमान हजारों छोटे द्वीपोंके नाम-रूपका वर्णन, जिनसे यह जगत् व्याप्त है, उनको पूरी संख्या बतानेके लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है। फिर भी मैं सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा, जिनके प्रमाणोंको मनुष्य तर्कद्वारा प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः जो भाव सर्वथा अचिन्त्य हैं, उनको तर्कसे सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। जो वस्तु प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है—उसे अचिन्त्य-स्वरूप समझना चाहिये। अब मैं जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंका तथा अनेक योजनोंमें फैले हुए उसके मण्डलोंका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो। चारों तरफ फैला हुआ यह जम्बूद्वीप लाख योजनोंका है। अनेक योजनवाले पवित्र बहुत-से जनपद इसकी शोभा बढ़ाते हैं। यह सिद्ध और चारणोंसे व्याप्त है तथा पर्वतोंसे इसकी शोभा अत्यन्त मनोहर जान पड़ती है। अनेक प्रकारकी सुन्दर धातुएँ इसका गौरव बढ़ा रही हैं। शिलाजित आदिके उत्पन्न होनेसे इसकी महिमा चरम सीमापर पहुँच गयी है। पर्वतीय नदियोंसे चारों तरफ यह चमचमा रहा है। ऐसे विस्तृत एवं श्रीसम्पन्न भूमण्डलवाले जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष चारों ओर व्याप्त हैं। यह ऐसा सुन्दर द्वीप है, जहाँ सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीनारायण विराजते हैं। इसके विस्तारके अनुसार चारों ओर समुद्र हैं तथा पूर्वमें उतने ही लम्बे चौड़े ये छः वर्षपर्वत हैं। इसके पूर्व और पश्चिम—दो तरफ लवणसमुद्र हैं। वहाँ बर्फसे व्याप्त हुआ हिमालय, सुवर्णसे भरा हेमकूट तथा अत्यन्त सुख देनेवाला महान् निषध नामक पर्वत है। चार वर्णवाले सुवर्णयुक्त सुमेरुपर्वतका वर्णन तो मैं पहले ही कर चुका हूँ, जो कमलके समान वर्तुलाकार है। उसके चारों भाग बराबर हैं और वह बहुत ऊँचा है। उसके पार्श्व भागोंमें परमब्रह्म परमात्माको नाभिसे प्रकट हुए तथा प्रजापति नामसे प्रसिद्ध एवं गुणवान् ब्रह्माजी विराजते हैं। इस जम्बूद्वीपके पूर्व भागमें श्वेतवर्णवाले प्राणी हैं, जो ब्राह्मण हैं। जो दक्षिणकी ओर पीतवर्ण हैं, उन्हें वैश्य माना जाता है। जो पश्चिमकी ओर भृङ्गराजके पत्रकी आभावाले हैं, उनको शूद्र कहा गया है। इस सुमेरुपर्वतके उत्तर भागमें संचय करनेके इच्छुक जो प्राणी हैं तथा जिनका वर्ण लाल है, उन्हें क्षत्रियकी संज्ञा प्राप्त हुई है। इस प्रकार वर्णोंकी बात कही जाती है। स्वभाव, वर्ण और परिमाणसे इसकी गोलाईका वर्णन हुआ है। इसका शिखर नीलम एवं वैदूर्य मणिके समान है। वह कहीं श्वेत, कहीं शुक और कहीं पीले रंगका है। कहीं वह धतूरेके रंगके समान हरा है और कहीं मोरके पंखकी भाँति चितकबरा। इन सभी पर्वतोंपर सिद्ध और चारणगण निवास करते हैं। इन पर्वतोंके बीचमें नौ हजार लम्बा-चौड़ा 'विष्कम्भ' नामका पर्वत कहा जाता है। इस महान् सुमेरुपर्वतके मध्य भागमें इलावृत वर्ष है। इसीसे उसका विस्तार चारों ओर फैला हुआ हजार योजन माना जाता है। उसके मध्यमें धूमरहित आगकी भाँति प्रकाशवान महामेरु है। सुमेरुकी वेदीके दक्षिणका आधा भाग और उत्तरका आधा भाग उसका (महामेरुका) स्थान माना जाता है। वहाँ जो ये छः वर्ष हैं, उनकी वर्ष-पर्वतकी संज्ञा है। इन सभी वर्षोंके आगे एक योजनका अवकाश है। वर्षोंकी लम्बाई-चौड़ाई—दो-दो हजार योजनकी है। उन्हींके परिमाणसे जम्बूद्वीपका विस्तार कहा जाता है। एक-एक लाख

योजन विस्तारवाले नील और निषध नामके दो पर्वत हैं। उनके अतिरिक्त श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान् नामक पर्वत हैं। जम्बूद्वीपके प्रमाणसे निषधपर्वतका वर्णन किया गया है। हेमकूट निषधसे हीन है, वह उसके बारहवें भागके ही तुल्य है। वह हिमवान् पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक फैला हुआ है। द्वीपके मण्डलाकार होनेसे कहीं कम और कहीं अधिक हो जानेकी बात कही जाती है। वर्षों और पर्वतोंके प्रमाण जैसे दक्षिणके कहे जाते हैं, वैसे ही उत्तरमें भी हैं। उनके मध्यमें जो मनुष्योंकी बस्तियाँ हैं, उनके नाम अनुवर्ष हैं। वे वर्ष विषम स्थानवाले पर्वतोंसे घिरे हुए हैं। उन अगम्य वर्षोंको अनेक प्रकारकी नदियोंने घेर रखा है। उन वर्षोंमें विभिन्न जातिवाले प्राणी निवास करते हैं। ये हिमालयसम्बन्धी वर्ष हैं, जहाँ भरतकी संतान सुशोभित होती है।

हेमकूटपर जो उत्तम वर्ष है, उसे किम्पुरुष कहते हैं। हेमकूटसे आगेके वर्षका नाम निषध और हरिवर्ष है। हरिवर्षसे आगे और हेमकूटके पासके भू-भागको इलावृतवर्ष कहा जाता है। इलावृतके आगेके वर्षोंका नाम नील और रम्यक सुना गया है। रम्यकसे आगे श्वेत वर्ष और हिरण्मय वर्षोंकी प्रसिद्धि है। हिरण्मय वर्षसे आगे शृङ्गवान् और कुरुवर्षोंका अवस्थान है। ये दोनों वर्ष धनुषाकार दक्षिण और उत्तरतक झुके हैं—ऐसा जानना चाहिये। इलावृतके चारों कोने बराबर हैं। वह प्रायः द्वीपके चतुर्थांश भागमें है। निषधकी वेदीके आधे भागको उत्तर कहा गया है। उसके दक्षिण और उत्तर विस्तारोंमें तीन-तीन वर्ष हैं। उन दोनों भागोंके मध्यमें मेरुपर्वत है। उसीको इलावृतवर्ष जानना चाहिये। प्रमाणमें वह चौरासी [illegible] बताया गया है। उसके पश्चिम [illegible] पर्वत है। ऊँचाई और लम्बाई [illegible]

पर्वतसे उसकी तुलना होती है। उक्त निषध और गन्धमादन-इन दोनों पर्वतोंके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वत है। सुमेरुके चारों भागोंमें समुद्रकी खानें हैं। इसके चारों कोण समान स्थितिमें हैं। वहाँ सभी धातुओंकी मेद एवं हड्डियाँ उनके अवतार लेनेमें सहयोगी नहीं हैं। छः प्रकारके योगैश्वर्योंके कारण वे विभु कहलाते हैं। सनातन कमलकी उत्पत्तिका निमित्तकारण वे हैं हैं। उस कमलपर स्थित चतुर्मुख ब्रह्मा भी उन परब्रह्म परमात्माके ही रूप हैं, कोई अन्य शक्ति नहीं। कमलकी आकृति धारण करनेवाली तथा वनों एवं ह्रदोंसे सम्पन्न पृथ्वी इन्हीं परब्रह्म परमात्मासे उत्पन्न हुई है।

जिसपर संसार स्थान पाता है, उस कमलके विस्तारका स्पष्ट रूपसे मैंने वर्णन किया। द्विजवरो! अब क्रमशः विभाग करके उनके विशेष गुणोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। सुमेरुपर्वतके पार्श्वभागोंमें पूर्वमें श्वेतपर्वत, दक्षिणमें पीत, पश्चिममें कृष्णवर्ण और उत्तरमें रक्तवर्णका पर्वत है। पर्वतोंका राजा मेरुपर्वत सुवर्ण वाला है, उसकी कान्ति प्रचण्ड सूर्यके समान है तथा वह धूमरहित अग्निकी भाँति प्रदीप्त होता रहता है एवं चौरासी हजार योजन ऊँचा है। वह सोलह हजार योजनतक नीचे गया है और सोलह हजार योजन ही उसका पूर्वापर विस्तार है। उसकी आकृति शराव (उभरे हुए दकने) की भाँति गोल है। इसके शिखरका ऊपरी भाग बत्तीस योजनके विस्तारमें है और छानबे योजनकी दूरीमें चारों तरफ वह फैला है। यह उस मण्डलका प्रमाण है। वह पर्वत महान् दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न तथा [illegible] सुशोभित भवनोंसे आवृत [illegible] गन्धर्वों, नागों, राक्षसों [illegible]

भी इसीपर शोभा पाता है। इसके पश्चिममें भद्राश्व, भारत और केतुमाल हैं। उत्तरमें पुण्यवान् कुरुओंसे सुशोभित कुरुवर्ष है। पद्मरूप उस मेरुपर्वतकी कर्णिकाएँ चारों ओर मण्डलाकार फैली हैं। योजनोंके प्रमाणसे मैं उसके दैर्घ्यका विस्तार बताता हूँ, उसके मण्डलकी लम्बाई-चौड़ाई हजारों योजनकी है। कमलकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतके केसरजालोंकी संख्याएँ उनहत्तर कही गयी हैं। वह चौरासी हजार योजन ऊँचा है। वह लम्बाईमें एक लाख योजन और चौड़ाईमें अस्सी हजार योजन है। वहाँ चौदह योजनके विस्तारमें चार पर्वत हैं। कमल-पुष्पकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतके भी नीचे चार पंखुड़ियाँ हैं। उनका प्रमाण चौदह हजार योजन है। उस कमलकी सुप्रसिद्ध कर्णिकाओंका तुम्हारे सामने जो मैंने परिचय दिया है, अब संक्षेपसे मैं उसका वर्णन करता हूँ। तुम चित्तको एकाग्र करके सुनो।

द्विजवरो! कमलकी आकृतिवाले उस मेरुपर्वतकी कर्णिकाएँ सैकड़ों मणिमय पत्रोंसे विचित्र रूपसे सुशोभित हो रही हैं। उनकी संख्या एक हजार है। मेरुगिरिमें एक हजार कन्दराएँ हैं। इस पर्वतराजमें वृत्ताकार एवं कमलकर्णिकाओंकी तरह विस्तृत एक लाख पत्ते हैं। उसपर मनोवती नामकी श्रीब्रह्माजीकी रमणीय सभा है और अनेक ब्रह्मर्षि उसके सदस्य हैं। महात्मा, ब्रह्मचारी, विनयी, सुन्दर व्रतोंके पालक, सदाचारी, अतिथिसेवी गृहस्थ, विरक्त और पुण्यवान् योगिपुरुष उस सभाके सभासद हैं। इसमें ही मेरा निवास है। इस सभा-मण्डलका परिमाण चौदह हजार योजन है। वह रत्न और धातुओंसे सम्पन्न होनेके कारण बड़ा सुन्दर और अद्भुत प्रतीत होता है। उसपर अनगिनत रत्न-मणिमय तोरणयुक्त मन्दिर हैं। ऐसे दिव्य मन्दिरोंसे वह पर्वत चारों तरफसे घिरा है। वहाँ तीस हजार योजन विस्तृत चक्रपाद नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ पर्वत है। उस चक्र-पाद नामक पर्वतसे दस योजन विस्तारवाली एक नदी, जिसे ऊर्ध्ववाहिनी कहते हैं, अमरावतीपुरीसे आकर उसकी उपत्यकाओंमें प्रवाहित होती है। विप्रवरो! उस नदीकी प्रतिमाके सामने सूर्य एवं चन्द्रमाके ज्योतिपुञ्ज भी फीके पड़ जाते हैं। सायं और प्रातःकालकी संध्याके समय जो उसका सेवन करते हैं, उन्हें ब्रह्माजीकी प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(अध्याय ७५)

आठ दिक्पालोंकी पुरियोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो! उस मेरुपर्वतका पूर्वी देश परम प्रकाशमय है। उसमें चक्रपाद नामका एक पर्वत है जिसकी अनेक धातुओंसे विद्योतित होनेसे अद्भुत शोभा होती है। इस परम रमणीय चक्रपाद पर्वतको सम्पूर्ण देवताओंकी पुरी कहते हैं। वहाँ किसीसे पराजित न होनेवाले बलाभिमानी देवताओं, दानवों और राक्षसोंका निवास है। उस पुरीमें सोनेकी बनी हुई चहारदीवारियाँ तथा मनोहर तोरण शोभा बढ़ाते रहते हैं। उस पुरीके ईशानकोणमें एक तेजःपूर्ण स्थानपर इन्द्रकी अमरावती-पुरी है। उस परम रमणीय पुरीमें सभी दिव्य पुरुष निवास करते हैं। सैकड़ों विमानोंकी वहाँ पङ्क्तियाँ लगी रहती हैं। बहुत-सी वापियाँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। वहाँ हर्षका कभी भी ह्रास नहीं होता। बहुत-से रंग-बिरंगे फूल उसकी मनोहरता बढ़ाते रहते हैं। पताकाएँ एवं ध्वजाएँ माला-सी बनकर उसे अत्यन्त

मनोमोहक बनाती हैं। ऋद्धि-सिद्धियोंसे परिपूर्ण उस पुरीमें देवता, यक्षगण, अप्सराएँ और ऋषिसमुदाय निवास करते हैं। उस पुरीके मध्य भागमें हीरे एवं वैदूर्यमणिकी वेदीसे मण्डित 'सुधर्मा' नामकी सभा है, जो अपने गुणोंके कारण तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। यहाँ समस्त सुरगण एवं सिद्ध-समुदायोंसे घिरे शचीपति सहस्राक्ष इन्द्र विराजते हैं।

इस अमरावतीपुरीसे कुछ दूर दक्षिणमें महाभाग अग्निदेवकी पुरी है, जो 'तेजोवती' नामसे प्रसिद्ध है। तथा जिसमें अग्निके समान गुण पाये जाते हैं। उसके दक्षिणमें यमराजकी 'संयमनीपुरी' है। अमरावतीके नैर्ऋत्य-कोणमें विरूपाक्षकी 'कृष्णवतीपुरी' है। उसके पीछे पश्चिम दिशामें जलके स्वामी महात्मा वरुणकी 'शुद्धवतीपुरी' है। इसी प्रकार उसके वायव्य कोणमें वायु देवताकी 'गन्धवतीपुरी' है। इस 'गन्धवती'के पीछे अर्थात् उत्तर दिशामें गुह्यकोंके स्वामी कुबेरकी मनोहर 'महोदयपुरी' है। इस पुरीमें वैदूर्यमणिसे बनी हुई वेदियाँ हैं। इसी प्रकार महालोककी आठवीं कर्णिका या अन्तर्पट ईशानकोणमें महान् पुरुष भगवान् रुद्रकी पुरी शोभा पा[ती] है, जो 'मनोहरा' नामसे प्रसिद्ध है। इसमें अनेक प्रका[र] के भूतसमुदाय, विविध भाँतिके पुष्प, ऊँचे भवन, [...] और आश्रम हैं, जिनसे उसकी अद्भुत शोभा होती है। भगवान् रुद्रका यह लोक सबके लिये प्रार्थनाका विषय—अभिलषणीय वस्तु है। (अध्याय ७६)

मेरुपर्वतका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो ! मेरुपर्वतके मध्यभागमें कर्णिकाका मूल है। उसका परिमाण एक सहस्र योजन है। अड़तालीस हजार योजनकी गोलाईसे शोभा पानेवाले पर्वतराज मेरुका यह मूल भाग है। उसकी मर्यादाके व्यवस्थापक आठों दिशाओंमें आठ सुन्दर पर्वत हैं। जठर और देवकूट नामसे प्रसिद्ध पूर्व दिशामें सीमा निश्चित करनेवाले भी दो पर्वत हैं। मेरुके अग्रभागमें मर्यादाकी रक्षा करनेवाले चार पर्वतोंके आगे चौदह दूसरे पर्वत हैं जो सात द्वीपवाली पृथ्वीको अचल रखनेमें सहायक हैं। अनुमानतः उन पर्वतोंकी तिरछी होती हुई ऊपरतककी चौड़ाई दस हजार योजन होगी। इसपर जगह-जगह हरिताल, मैनशिला आदि धातुएँ तथा सुवर्ण एवं मणिमण्डित गुफाएँ हैं; जो इसकी शोभा बढ़ाती हैं। सिद्धोंके अनेक भवन तथा क्रीडास्थानसे सम्पन्न होनेके कारण [...] प्रभा सदा दीप्त होती रहती है।

मेरुगिरिके पूर्व भागमें मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और पार्श्वभागमें सुपार्श्वपर्वत हैं। उन पर्वतोंके शिखरोंपर चार महान् वृक्ष हैं। अत्यन्त समृद्धिशाली देवता, दैत्य और अप्सराएँ उनकी सुरक्षामें संनद्ध रहते हैं। मन्दर-गिरिके शिखरपर कदम्ब नामसे प्रसिद्ध एक वृक्ष है। उस कदम्बकी शाखाएँ शिखर-जैसी ऊँची हैं और उसके फूल घड़े-जैसे विशाल हैं, जिनकी गन्ध बड़ी ही हृदयहारी है। वह कदम्ब सभी कालमें विराजमान रहकर शोभा पाता है। यह वृक्ष अपनी गन्धसे दिशाओंको सदा सुगन्धित करता रहता है। इसका नाम 'भद्राश्व' है। वर्षोंकी गणनामें केतुमालवर्षमें इसका प्रादुर्भाव हुआ था। यह विशाल वृक्ष कीर्ति, रूप और शोभासे सम्पन्न है। यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण भी सिद्धों एवं देवताओंसे सेवित होकर विराजते हैं। पहले भगवान् श्रीहरिने इस लोकके [...]में पूजा था और देवताओंने उसके दिव्यरसको बार-बार

प्रशंसा की । इससे सम्पूर्ण मनुष्योंके स्वामी भगवान्ने उस वर्षका अवलोकन किया ।

इस मेरुपर्वतके दक्षिण ओर दो बड़े शिखर और हैं । वहाँ फलों, फूलों और महान् शाखाओंसे सुशोभित जम्बू-वृक्षोंका एक वन है । उस वृक्षसमूहसे पुराण-प्रसिद्ध, स्वादिष्ट, गन्धयुक्त एवं अमृतकी तुलना करनेवाले बहुत-से फल उस पर्वतकी चोटीपर प्रायः गिरते रहते हैं । इन फलोंके रससे उत्पन्न उस महान् श्रेष्ठ पर्वतसे एक विस्तृत नदी बहती है, जिससे अग्निके समान चमकीला जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाता है । वह अत्यन्त सुन्दर सुवर्ण देवताओंके अनुपम आभूषणोंका काम करता है । देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष-राक्षस और गुह्यकगण अमृतकी तुलना करनेवाले इन जम्बू-फलोंसे निकले हुए आसवको प्रसन्नतापूर्वक पीते हैं । इसीलिये दक्षिणके वर्षोंमें उस वर्षकी 'जम्बूलोक' संज्ञासे प्रसिद्धि है । मानव-समाज इसे ही जम्बूद्वीप भी कहता है ।

इस मेरुपर्वतके दक्षिणमें बहुत दूरतक फैला हुआ एक विशाल पीपलका वृक्ष है । उस वृक्षकी ऊँचाई अत्यन्त ऊपरतक फैली हुई है तथा उसकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हैं । वह अनेक प्राणियों तथा श्रेष्ठ गुणोंका आश्रय है, जिसका नाम 'केतुमाल' है । अब इस वृक्षकी विशेषताका वर्णन करता हूँ, सुनो । क्षीरसमुद्रके मन्थनके समय इन्द्रने इस वृक्षको चैत्य मानकर इसकी शाखाको मालाके रूपमें अपने गलेमें धारण कर लिया, तभीसे यह वृक्ष 'केतुमाल' नामसे विख्यात हो गया और इस वर्षकी भी 'केतुमाल' नामसे प्रसिद्धि हुई ।

सुपार्श्वनामक पर्वतके उत्तरशृङ्गपर एक महान् वट-वृक्ष है । इस वृक्षकी शाखाएँ बड़ी विशाल हैं, जिनका विस्तार तीन योजनतक है । यह वृक्ष केतुमाल और इलावृत वर्षोंकी सीमापर है । इसके चारों ओर भाँति-भाँतिकी लम्बी शाखाएँ अलंकारके रूपमें विराजमान हैं तथा वह सिद्धगणोंसे सदा सुसेवित रहता है । ब्रह्माजीके मानस-पुत्र वहाँ प्रायः आते तथा उसकी प्रशंसा करते हैं । वहाँ सात कुरुमहात्मा निवास करते हैं, जिनके नामसे यह 'कुरुवर्ष' प्रसिद्ध है । कुरुवर्षके स्वामी वे सातों महात्मा पुरुष भी स्वर्ग एवं वरुणादि देवलोकोंमें प्रसिद्ध हैं । (अध्याय ७७)

मन्दर आदि पर्वतोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो ! अब उन पर्वतोंके पृष्ठभागमें स्थित अत्यन्त रम्य चार पर्वतोंका वर्णन करता हूँ । पक्षी अपने कलरवसे उनके शृङ्गोंकी शोभा बढ़ाते रहते हैं । ये पर्वत देवताओं एवं देवाङ्गनाओंके साथ-साथ विहार करनेके लिये मानो क्रीडास्थल हैं । शीतल तथा मन्दगतिसे प्रवाहित तथा सुगन्धपूर्ण पवनसे युक्त उन शिखरोंकी किंनरगण सदा सेवा करते हैं, इससे उनकी रमणीयता और बढ़ जाती है । इन चारों पर्वतोंके पूर्वमें चैत्ररथ वन और दक्षिणमें गन्धमादन पर्वत स्थित है ।

उन पर्वतोंपर स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण कई सरोवर भी हैं, जिनका पर्वतके सभी भागोंसे सम्बन्ध है । यह वह रमणीय स्थान है, जहाँ देवसमुदाय अपनी रमणियोंके सहित अनेक दुर्गम वन-प्रान्तोंको लाँघकर आता और बड़े हर्षका अनुभव करता है । परम पवित्र जल तथा रत्नोंसे पूर्ण बहुत-से सरोवर, क्रीड एवं जलाशय वहाँकी शोभा बढ़ाते हैं । खिले हुए नील, स्वच्छ एवं लाल कमलोंसे उन जलाशयोंकी सुन्दरता सीमा पार कर जाती है । ये सभी पर्वत विविध प्रकारके दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं ।

इनके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानसोद, पश्चिममें असितोद और उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर हैं। श्वेत, कृष्ण एवं पीले रंगके कमलोंसे इन सरोवरोंकी अनुपम शोभा होती है। अरुणोद-सरोवरके पूर्वी भागमें जो पर्वत प्रसिद्ध हैं, उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो। वे हैं—विकङ्क, मणिशृङ्ग, सुपात्र, महोपल, महानील, कुम्भ, सुबिन्दु, मदन, वेणुनद्ध, सुमेदा, निषध और देवपर्वत। वे सभी पर्वत अपने समुदायमें सर्वोत्कृष्ट एवं पवित्र भी हैं।

अब मानससरोवरके दक्षिण भागमें जो महान् पर्वत बताये गये हैं, उनके नाम बतलाता हूँ, सुनो —तीन चोटियोंवाला त्रिशिखर, गिरिश्रेष्ठ शिशिर, कपि, शताक्ष, तुरग, सानुमान्, ताम्राह, वि श्वेतोदन, समूल, सरल, रत्नकेतु, एकमूल, महा गजमूल, शावक, पञ्चशैल और कैलास—ये प्र रमणीय पर्वत मानससरोवरके पश्चिमी भा विप्रो! महाभद्र-सरोवरके उत्तरमें जो पर्वत हैं, अब उनके नाम कहता हूँ, सुनो। महान् पर्वत वृषहंस, कपिञ्जल, गिरिराज। सानुमान्, नील, कनकशृङ्ग, शतशृङ्ग, पुष्कर, एवं सर्वोत्कृष्ट विराज तथा पर्वतराज भारुचि। पर्वत उत्तर-गिरि कहे गये हैं। उनके भागमें कुछ ग्राम, नगर तथा जलाशय हैं।

(अध्याय

मेरुपर्वतके जलाशय

भगवान् रुद्र कहते हैं—द्विजवरो! सीमान्त और कुमुदपर्वतोंके बीचकी अधित्यकामें अनेक पक्षी निवास करते हैं तथा वह विविध भाँतिके प्राणियोंद्वारा सेवित है। उसकी लम्बाई तीन सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। उसमें एक स्वादिष्ट तथा स्वच्छ जलवाला श्रेष्ठ जलाशय है, जिसकी विशाल सुगन्धित कमल-पुष्प निरन्तर शोभा बढ़ाते रहते हैं। इन विशाल आकृतिवाले कमलोंमें एक-एक लाख पत्ते हैं। यह जलाशय देवताओं, दानवों, गन्धर्वों और महान् सर्पोंसे कभी रिक्त नहीं रहता। इस दिव्य एवं पवित्र जलाशयका नाम 'श्रीसरोवर' है। सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेमें कुशल उस सरोवरमें सदा मधुर जल भरा रहता है। उसके अन्तर्गत कमलवनके बीच एक बहुत बड़ा कमल है, जिसमें एक करोड़ पत्ते हैं। वह कमल मध्याह्नकालीन सूर्यकी भाँति सदा प्रफुल्लित एवं प्रकाशमान रहता है। उसके सदा खिले रहनेसे स्वाभाविक मनोहरता और अधिक बढ़ जाती है। सुन्दर केसरके भारसे झुका कमलपर मतवाले भ्रमर निरन्तर गूँजते रहते हैं। कमलके मध्यभागमें साक्षात् भगवती लक्ष्मीका निवास इन देवीने अपने आवासके लिये ही उस कम अपना मन्दिर बना रखा है। इस सरोवरके त सिद्धपुरुषोंके भी आश्रम हैं।

द्विजवरो! उसके पावन तटपर एक बहुत ब मनोहर बिल्वका भी वृक्ष है। उसपर फूल और फल स लदे रहते हैं। वह सौ योजन चौड़ा और दो सौ योज लम्बा है। उसके चारों ओर अन्य अनेक वृक्ष भी हैं जिनकी ऊँचाई आधा कोस है। हजार शाखाओं और लताओंसे युक्त वह वृक्ष फलोंसे सदा परिपूर्ण रहता है। वे फल [illegible], हरे और पीले रंगके हैं और उनका आकार भेरीके समान है। उनसे उत्कट गन्ध निकलती रहती है। वे विशाल आकारके फल जब पककर गिरते हैं तो भूमिपर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। उस स्थानका नाम [illegible] जो लक्ष्मी

थ्रेकोंमें विख्यात है। उसके आठों दिशाओंमें देवता निवास करते हैं। ऐसे उस कल्याण-प्रद विल्व-वृक्षके* पास उसके फलोंको खानेवाले पुण्यकर्मा मुनि सुरक्षा करनेमें सदा उद्यत रहते हैं। उसके नीचे लक्ष्मीजी सदा विराजती हैं और सिद्ध-समुदाय उसकी सेवामें सदा संलग्न रहता है।

विप्रवरो! वहाँ मणिशैल नामका एक महान् पर्वत है। उसके भीतर भी एक स्वच्छ कमलका वन है। उस वनकी लम्बाई दो सौ योजन और चौड़ाई सौ योजनकी है। सिद्ध और चारण वहाँ रहकर उसकी सेवा करते हैं। इन फूलोंको भगवती लक्ष्मी धारण करती हैं, अतः ये सदा प्रफुल्लित एवं प्रकाशमान प्रतीत होते हैं। उसके चारों ओर आधे कोसतक अनेक पर्वत-शिखर फैले हुए हैं। वह कमलका वन फूले हुए पुष्पोंसे सम्पन्न होनेके कारण जान पड़ता है, मानो पक्षियोंके रहनेका पिंजरा हो। उस वनमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। उन फूलोंका परिमाण दो हाथ चौड़ा और तीन हाथ लम्बा है। कुछ खिले हुए पुष्प मैनसिलकी भाँति लाल और बहुत-से केसरके रंगके पीले हैं। वे तीव्र सुगन्धोंद्वारा देवताओंके मनको मुग्ध कर देते हैं। मतवाले भौंरोंकी गुनगुनाहटसे सम्पूर्ण वनकी शोभा विचित्र होती है। देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, किंनरों, अप्सराओं और महोरगोंसे सेवित उस वनमें प्रजापति भगवान् कश्यपजीका एक अत्यन्त दिव्य आश्रम है।

द्विजवरो! महानील और ककुभ नामक पर्वतके मध्यभागमें भी एक बहुत बड़ा वन है। उसमें सिद्धों और साधुओंका समुदाय सदा निवास करता है। अनेक सिद्धोंके आश्रम वहाँ सुशोभित हैं। महानील और ककुभ नामक पर्वतोंके मध्यमें 'सुखा' नामकी एक नदी है और उसीके तटपर यह महान् वन है, जो पचास योजन लम्बा तथा तीस योजन चौड़ा है। इस वनका नाम 'ताल-वन' है। वनकी छवि बढ़ानेवाले वृक्ष दृढ़, बड़े-बड़े फलोंसे युक्त तथा मीठी गन्धोंसे व्याप्त हैं, जिनसे वह पर्वत परिपूर्ण है। सिद्धलोग उसकी सेवा करते हैं। वहीं ऐरावत हाथीकी आकृतिवाली एक पर्वतीय भूमि है, जो ऐरावान, रुद्रपर्वत एवं देवशैल पर्वतोंके मध्य-भागमें स्थित है, हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है। यहाँ बस केवल एक ही विशाल शिला है, जिसपर एक भी वृक्ष अथवा लता नहीं है। विप्रवरो! इस शिलाका चतुर्थांश भाग जलमें डूबा रहता है। इस प्रकार उपत्यकाओं तथा पर्वतोंका वर्णन किया गया है, जो मेरुपर्वतके आस-पासमें यथास्थान शोभा पाते हैं। (अध्याय ७९)

मेरुपर्वतकी नदियाँ

भगवान् रुद्र कहते हैं—मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें बहुत-से पहाड़ एवं नदियाँ हैं। यह सिद्धोंकी आवासभूमि है। शिशिर और पतङ्ग नामक पर्वतके मध्य-भागमें एक स्वच्छ भूमि है। वहाँ दिव्य एवं मुक्त स्त्रियाँ रहती हैं और ... हैं। उस शिखरपर बहुत सुन्दर गूलरके वृक्षोंका एक वन है, जिसकी पक्षी समुदाय सदा सेवा करता है। उस वनके वृक्षपर जब फल लगते हैं तो वे ऐसे सुशोभित होते हैं, मानो महान् कछुवे हों। सिद्धादि आठ प्रकारकी देवयोनियाँ उस वनमें सदा निवास करती और उस वनकी रक्षा करती हैं। उस स्थानपर स्वच्छ

* आवास है।

एवं स्वादिष्ट जलवाली अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ कर्दम-प्रजापतिका आश्रम है। यह सौ योजन परिमाणके एक वृत्ताकार वनसे घिरा है। वहीं ताम्राभ और पतङ्ग-पर्वतके मध्यभागमें एक महान् सरोवर है, जो दो सौ योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा है। उसके चारों ओर प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य हजारों पत्तोंसे परिपूर्ण कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ अनेक सिद्ध और गन्धर्वोंका निवास है। उसके बीचमें एक महान् शिखर है, जिसकी लम्बाई तीन-सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। अनेक धातु और रत्न उसको सुशोभित करते रहते हैं। उसके ऊपर एक बहुत लम्बी-चौड़ी सड़क है, जिसके अगल-बगलमें रत्नोंसे बनी हुई चहारदीवारियाँ हैं। उस सड़कके पास ही पुलोम विद्याधरका पुर है, जिसके परिवारके व्यक्तियोंकी संख्या एक लाख है। इसी प्रकार विशाख और श्वेतनामक पर्वतोंके मध्यभागमें भी एक नदी है, जिसके पूर्वीतटपर एक बड़ा विशाल आम्रका वृक्ष है। उस वृक्षको सोनेके समान चमकनेवाले, उत्तम गन्धोंसे युक्त तथा महान् घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल सब ओरसे मनोहर बना रहे हैं। वहाँ देवताओं और गन्धर्वोंका निवास है।

वहाँ सुमूल और वसुधार—ये दो प्रसिद्ध पर्वत हैं। इनके बीचमें तीन सौ योजन चौड़ी और पाँच सौ योजन लम्बी रिक्त भूमि है, जहाँ एक बिल्वका वृक्ष है। इससे भी बड़े घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल गिरते रहते हैं। उन फलोंके रससे उस भूमिकी मिट्टी गीली हो जाती है और बिल्वफल खानेवाले गुह्यकलोग उस स्थलकी रक्षा करते हैं।

इसी प्रकार वसुधार और रत्नधार पर्वतोंके मध्यभागमें किंशुक अर्थात् पलाशका दिव्य वन है। वह वन [illegible] तीन सौ योजन लम्बा है। [illegible] योजन [illegible] जब यह गन्धयुक्त वन फलता है तब उसके पुष्पोंकी सुगन्धसे सौ योजनकी भूमि सुवासित हो जाती है। यहाँ जलकी कभी कमी नहीं होती और सिद्ध लोग वहाँ सदा निवास करते हैं। यहाँ भगवान् सूर्यका एक विशाल मन्दिर है। प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले तथा जगत्-जनक भगवान् सूर्य यहाँ प्रतिमास अवतरित होते हैं। अतः देवतालोग वहाँ पहुँचकर उनकी स्तुति-नमस्कार आदिद्वारा आराधना करते हैं।

इसी प्रकार पञ्चकूट और कैलासपर्वतोंके बीचमें 'हंसपाण्डुर' नामसे प्रसिद्ध एक भूमिखण्ड है, जिसकी लम्बाई हजार योजन और चौड़ाई सौ योजन है। क्षुद्र प्राणी उसे लाँघनेमें असमर्थ हैं। यह भूभाग मानो स्वर्गकी सीढ़ी है। अब हम मेरुकी पश्चिम दिशाके पर्वतों एवं नदियोंका वर्णन करते हैं। सुपार्श्व और शिखिशैल-संज्ञक पर्वतोंके मध्यमें 'भौमशिलातल' नामक एक मण्डल है। वह चारों तरफ सौ योजनतक फैला है। वहाँकी भूमि सदा तपती रहती है, जिससे कोई इसे छू नहीं सकता। उसके बीचमें तीस योजनतक फैला हुआ अग्निदेवका स्थान है। वहाँ भगवान् नारायण लोकका संहार करनेके विचारसे 'संवर्तक' नामक अग्निका रूप धारण कर बिना लकड़ीके ही सर्वदा प्रज्वलित रहते हैं। यहीं कुमुद और अञ्जन ये दोनों श्रेष्ठ शैल हैं। उनके बीचमें 'मातुलुङ्गस्थली' सुशोभित होती है। इसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ जानेमें सभी प्राणी असमर्थ हैं। पीले रंगवाले फलोंसे उसकी बड़ी शोभा होती है। यहाँ सिद्ध पुरुषोंसे सम्पन्न एक पवित्र तालाब है। यहीं बृहस्पतिका भी एक वन है। ऐसे ही पिञ्जर और गौर नामवाले दो पर्वतोंके बीचमें छोटी-छोटी अनेक नदियाँ हैं। भौंरोंसे व्याप्त बड़े-बड़े कमल उन द्रोणियोंकी शोभा बढ़ाते हैं। यहाँ [illegible] देवमन्दिर है। [illegible] नामसे

विख्यात महान् पर्वतोंके बीचमें तीस योजन चौड़ा तथा नब्बे योजन लम्बा एक पर्वतीय भाग है, जिसमें एक ही शिला है और वृक्ष एक भी नहीं है। वहाँ एक ऐसी बावली है, जिसका जल कभी तनिक भी नहीं हिलता। उसमें एक वृक्ष तथा एक 'सत्यादिनी' है, जो अनेक प्रकारके कमलोंसे आवृत है। यह वृक्ष उस बावलीके मध्य भागमें है और वहीं पाँच योजन प्रमाणवाला एक बरगदका भी वृक्ष है। वहाँ भगवान् शंकर नीले वस्त्र धारण करके पार्वतीके साथ निवास करते हैं, जिनकी यक्ष, भूत आदि सदा आराधना करते हैं। 'सहस्रशिखर' और 'कुमुद'—इन दोनों पर्वतोंके बीचमें 'इक्षुक्षेप' नामक शिखर है, जो बीस योजन चौड़ा और पचास योजन लम्बा है। उस ऊँचे शिखरपर बहुत-से पक्षी निवास करते हैं। अनेक वृक्षोंके मधुर रसवाले फलोंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। वहाँ चन्द्रमाका महान् आश्रम है, जिसका निर्माण दिव्य वस्तुओंसे हुआ है। ऐसे ही शङ्खकूट और ऋषभके मध्य भागमें 'पुरुषस्थली' है। इसी प्रकार कपिञ्जल और नागशैल नामसे प्रसिद्ध पर्वतोंके मध्य भागमें सौ योजन चौड़ी और दो सौ योजन लम्बी एक अधित्यका है, जहाँ बहुत-से यक्ष निवास करते हैं। वह स्थली दाख और खजूरके वृक्षोंसे व्याप्त है। इसी प्रकार पुष्कर और महादेव-संज्ञक पर्वतोंके बीचमें साठ योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा एक बड़ा उपवन है, जिसका नाम 'पाणितल' है। वृक्षों और लताओंका यहाँ एक प्रकार सर्वथा अभाव-सा है। (अध्याय ८०)

देव-पर्वतोंपरके देव-स्थानोंका परिचय

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब पर्वतोंके अन्तर्गत देवस्थलोंका वर्णन करता हूँ। जिस सीतानामक पर्वतका वर्णन पहले आया है, उसके ऊपर देवराज इन्द्रकी क्रीडा-स्थली है। वहाँ उनका पारिजात नामके वृक्षोंका वन है। उसके पास ही पूर्व दिशामें 'कुञ्जर' नामक प्रसिद्ध पर्वत है, जिसके ऊपर दानवोंके आठ नगर हैं। इसी प्रकार 'वज्रावर्त'पर राक्षसोंकी पुरियाँ हैं। उनके निवासी असुर 'नालका' नामसे प्रसिद्ध हैं और वे सभी कामरूपी भी हैं। 'महानील'पर्वतपर पंद्रह सहस्र किंनरोंके नगर हैं। वहाँ देवदत्त, चन्द्रदत्त आदि पंद्रह गर्वपूर्ण राजा शासन करते हैं। ये पुरियाँ सुवर्णमयी हैं। 'चन्द्रोदय'पर्वतपर बहुत-सी बिलें और नगर हैं और वहाँ सर्पोंका निवास है। गरुडके राज्यशासनसे वे सर्प बिलोंमें छिपे रहते हैं। 'अनुराग'नामक पर्वतपर दानवेश्वरोंके रहनेकी व्यवस्था है। 'वेणुमान्'पर्वतपर विद्याधरोंके तीन नगर हैं। उनमें प्रत्येक नगरकी लम्बाई तीन सौ योजन और चौड़ाई सौ योजनकी है। उनमें विद्याधरोंके शासक उलूक, गरुड, रोमश और महावेत्र नियुक्त हैं। कुञ्जर तथा वसुधारपर्वतोंपर भगवान् पशुपतिका निवास है। करोड़ों भूतगण वहाँ शंकरकी सेवा करते हैं।

वसुधार और रत्नधार—इन दोनों पर्वतोंके ऊपर वसुओं एवं सप्तर्षियोंकी पुरियाँ हैं, जिनकी संख्या पंद्रह है। पर्वतोत्तम एकशृङ्ग पर्वतपर प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका निवासस्थान है। 'गज'नामक पर्वतपर महान् भूत-समुदायसे घिरी स्वयं भगवती पार्वती विराजती हैं। पर्वतप्रवर वसुधारपर चौरासी योजनके विस्तारसे मुनियों, सिद्धों और विद्याधरोंका एक श्रेष्ठ नगर है। उसके चारों ओर चहारदीवारी तथा बीचमें तोरण है। युद्ध करनेमें निपुण, पर्वतनामवाले अनेक गन्धर्व वहाँ निवास करते हैं। उनके राजाका नाम पिंगल है। वे

एवं स्वादिष्ट जलवाली अनेक नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ कर्दम-प्रजापतिका आश्रम है। वह सौ योजन परिमाण-के एक वृत्ताकार वनसे घिरा है। वहीं ताम्राभ और पतङ्ग-पर्वतके मध्यभागमें एक महान् सरोवर है, जो दो सौ योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा है। उसके चारों ओर प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य हजारों पत्तोंसे परिपूर्ण कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ाते हैं। यहाँ अनेक सिद्ध और गन्धर्वोंका निवास है। उसके बीचमें एक महान् शिखर है, जिसकी लम्बाई तीन-सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन है। अनेक धातु और रत्न उसको सुशोभित करते रहते हैं। उसके ऊपर एक बहुत लम्बी-चौड़ी सड़क है, जिसके अगल-बगलमें रत्नोंसे बनी हुई चहारदीवारियाँ हैं। उस सड़कके पास ही पुलोम विद्याधरका पुर है, जिसके परिवारके व्यक्तियोंकी संख्या एक लाख है। इसी प्रकार विशाख और श्वेतनामक पर्वतोंके मध्यभागमें भी एक नदी है, जिसके पूर्वीतटपर एक बड़ा विशाल आम्रका वृक्ष है। उस वृक्षको सोनेके समान चमकनेवाले, उत्तम गन्धोंसे युक्त तथा महान् घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल सब ओरसे मनोहर बना रहे हैं। यहाँ देवताओं और गन्धर्वोंका निवास है।

यहाँ सुमूल और वसुधार—ये दो प्रसिद्ध पर्वत हैं। इनके बीचमें तीन सौ योजन चौड़ी और पाँच सौ योजन लम्बी रिक्त भूमि है, जहाँ एक बिल्वका वृक्ष है। इससे भी बड़े घड़ेकी आकृतिवाले असंख्य फल गिरते रहते हैं। उन फलोंके रससे उस भूमिकी मिट्टी गीली हो जाती है और बिल्वफल खानेवाले गुह्यकलोग उस स्थलकी रक्षा करते हैं।

इसी प्रकार वसुधार और रत्नधार पर्वतोंके मध्यभागमें एक किंशुक अर्थात् पलाशका दिव्य वन है। वह वन सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा है। जब वह गन्धयुक्त वन फूलता है तब उसके पुष्पोंकी सुगन्धसे सौ योजनकी भूमि सुवासित हो जाती है। वहाँ जलकी कभी कमी नहीं होती और सिद्ध लोग वहाँ निवास करते हैं। वहाँ भगवान् सूर्यका एक दि मन्दिर है। प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले तथा जग जनक भगवान् सूर्य वहाँ प्रतिमास अवतरित होते अतः देवतालोग वहाँ पहुँचकर उनकी स्तुति-नम आदिद्वारा आराधना करते हैं।

इसी प्रकार पञ्चकूट और कैलासपर्वतोंके बी 'हंसपाण्डुर' नामसे प्रसिद्ध एक भूमिखण्ड है, जिस लम्बाई हजार योजन और चौड़ाई सौ योजन है। क्षुद्र प्र उसे लाँघनेमें असमर्थ हैं। वह भूभाग मानो स्वर्ग सीढ़ी है। अब हम मेरुकी पश्चिम दिशाके पर्वतों नदियोंका वर्णन करते हैं। सुपार्श्व और शिखि संज्ञक पर्वतोंके मध्यमें 'भौमशिलातल' नामक ए मण्डल है। वह चारों तरफ सौ योजनतक है। वहाँकी भूमि सदा तपती रहती है, जिससे इसे छू नहीं सकता। उसके बीचमें तीस योजनतक हुआ अग्निदेवका स्थान है। वहाँ भगवान् लोकका संहार करनेके विचारसे 'संवर्तक' न. रूप धारण कर बिना लकड़ीके ही सर्वदा रहते हैं। यहीं कुमुद और अञ्जन—ये दोनों श्रेष्ठ हैं। उनके बीचमें 'मातुलुङ्गस्थली' सुशोभित होती है इसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ जानेमें स प्राणी असमर्थ हैं। पीले रंगवाले फलोंसे उसकी बड़ी होती है। वहाँ सिद्ध पुरुषोंसे सम्पन्न एक पवित्र है। यहीं बृहस्पतिका भी एक वन है। ऐसे ही गौर नामवाले दो पर्वतोंके बीचमें ...

नदियाँ हैं। भँवरोंसे व्याप्त बड़े-बड़े योगियोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ देवमन्दिर है। इसी प्रकार शुक्ल ...

पर्दोके नाम भी प्रायः वैसे ही हैं । वहाँके देश-वासी उन्हीं नदियोंके जल पीते हैं । उन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—सीता, सुवाहिनी, हंसवती, कासा, महावक्रा, चन्द्रवती, कावेरी, सुरसा, आख्यावती, इन्द्रवती, अङ्गारवाहिनी, हरित्तोया, सोमावर्ता, शतहृदा, वनमाला, वसुमती, हंसा, सुपर्णा, पञ्चगङ्गा, धनुष्मती, मणिवप्रा, सुब्रह्मभोगा, विलासिनी, कृष्णतोया, पुण्योदा, नागवती, शिवा, शैवालिनी, मणितटा, क्षीरोदा, वरुण-ताली और विष्णुपदी । जो इन पुण्यमयी नदियोंका जल पीते हैं, उनकी आयु दस हजार वर्षकी हो जाती है । वहाँके निवासी सभी स्त्री-पुरुष भगवान् रुद्र और उमाके भक्त हैं । (अध्याय ८२)

नैषध एवं रम्यकवर्षोंके कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ

भगवान् रुद्र कहते हैं—मैंने आपलोगोंसे भद्राश्ववर्षका संक्षेपमें और केतुमालवर्षका कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन किया । अब (निषधवर्षके) पर्वतराज नैषधके पश्चिममें रहनेवाले कुलपर्वतों, जनपदों और नदियोंके वर्णन करता हूँ । विशाख, कम्बल, जयन्त, कृष्ण, हरित अशोक और वर्धमान ये तो वहाँके सात कुल-पर्वत हैं । इन पर्वतोंके बीच छोटे-छोटे पर्वतों एवं शिखरोंकी संख्या अनन्त है । वहाँके नगर-जनपद आदि भी इन पर्वतोंके नामोंसे ही प्रसिद्ध हैं । ये पर्वत हैं—सौर, प्रामान्तसातप, कृतसुराश्रवण, कम्बल, माहेय, कूटवास, मूलतप, क्रौञ्च, कृष्णाङ्ग, मणिपङ्कज, चूडमल, सोमीय, समुद्रान्तक, कुरकुञ्ज, सुवर्णतट, कुह, श्वेताङ्ग, कृष्णपाद, विद, कपिल, कर्णिक, महिष, कुब्ज, करनाट, महोत्कट, शुकनाक, सगज, भूम, ककुरञ्जन, महानाह, किंकिसपर्ण, भौमक, चोरक, धूमजन्मा, अङ्गारज, जीवलौकिक, वाचांसहांग, मधुरेय, शुकेय, चकेय, श्रवण, मत्तकाशिक, गोदावाय, कुलपंजाव, वर्जह और मोदशालक । इन पर्वतीय जनपदोंमें निवास करनेवाली प्रजा जिन पर्वतीय नदियोंका ही जल पीती है, वे नदियाँ हैं—रत्नाक्षा, महाकदम्बा, मानसी, श्यामा, सुमेधा, बहुला, विवर्णा, पुङ्खा, माला, दर्भवती, भद्रनदी, शुकनदी, पल्लवा, भीमा, प्रभञ्जना, काम्बा, कुशावती, दक्षा, काशवती, तुङ्गा, पुण्योदा, चन्द्रावती, सुमूलावती, ककुपद्मिनी, विशाला, करंटका, पीवरी, महामाया, महिषी, मानुषी, और चण्डा । ये तो प्रधान नदियाँ हैं, छोटी-छोटी दूसरी नदियाँ भी हजारोंकी संख्यामें हैं ।

भगवान् रुद्र कहते हैं—विप्रो ! अब उत्तर और दक्षिणके वर्षोंमें जो-जो पर्वतवासी कहे जाते हैं, उनका मैं क्रमसे वर्णन करता हूँ, आपलोग सावधान होकर सुनें । मेरुके दक्षिण और श्वेतगिरिसे उत्तर सोमरसकी लताओंसे परिपूर्ण 'रम्यकवर्ष' है । (इस सोमके प्रभावसे) वहाँके उत्पन्न हुए मनुष्य प्रधान बुद्धिवाले, निर्मल और बुढ़ापा एवं दुर्गतिके वशीभूत नहीं होते । वहाँ एक बहुत बड़ा वटका भी वृक्ष है, जिसका रंग प्रायः लाल कहा गया है । इसके फलका रस पीनेवाले मनुष्योंकी आयु प्रायः दस हजार वर्षोंकी होती है और वे देवताओंके समान सुन्दर होते हैं । श्वेतगिरिके उत्तर और त्रिशृङ्गपर्वतके दक्षिणमें हिरण्मयनामक वर्ष है । वहाँ एक नदी है, जिसे हैरण्यवती कहते हैं । वहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कामरूपी पराक्रमी यक्षोंका निवास है । वहाँके लोगोंकी आयु प्रायः ग्यारह हजार वर्षोंकी होती है, पर कुछ लोग पन्द्रह सौ वर्षोंतक ही जीवित रहते हैं । उस देशमें बड़हर और कटहलके वृक्षोंकी बहुतायत है । उनके फलोंका भक्षण करनेसे ही वहाँके

राजाओंके भी राजा हैं। देवता और राक्षस पद्मकूटपर तथा दानव 'शतशृङ्ग'-पर्वतपर रहते हैं। दानवों और यक्षोंकी पुरियाँ सौकी संख्यामें हैं। 'प्रभेदक'-पर्वतके पश्चिम भागमें देवताओं, दानवों और सिद्धोंकी पुरियाँ हैं। उस प्रभेदक गिरिके शिखरपर एक बहुत बड़ी शिला है। वहाँ प्रत्येक पर्वपर चन्द्रमा स्वयं ही आते हैं। उसके पास ही उत्तर दिशामें 'त्रिकूट' नामका एक पर्वत है। कभी-कभी ब्रह्माजीका वहाँ निवास होता है। ऐसे ही अग्निदेवका भी वहाँ निवास-स्थान है। वहाँ अग्निदेवता मूर्तिमान् होकर रहते हैं और अन्य देवता उनकी उपासना करते हैं। उसके उत्तर 'शृङ्ग'-पर्वतपर देवताओंके भवन हैं। इसके पूर्वमें भगवान् नारायणका, बीचमें ब्रह्माका तथा पश्चिममें भगवान् शंकरका निवास-स्थान है। यहीं यक्ष आदिकोंके बहुत-से नगर हैं। यहीं तीस योजन विस्तारवाली एक नदी है जिसका नाम 'नन्दजल' है। उसके उत्तरतटपर 'कद्रुम' नामक एक ऊँचा पर्वत है। वहाँ सर्पोंका राजा, मन्द नामसे प्रसिद्ध है, निवास करता है। इसके ... भयंकर फन हैं। इस प्रकार इन आठ दिव्य पर्वतोंको जानना चाहिये। सोना-चाँदी, रत्न, वैदूर्य और ... आदि इनमें क्रमशः वे पर्वत वर्ण धारण करते हैं। ... पृथ्वी लाख कोटि अर्थात् अगणित पर्वतोंसे पूर्ण है। उनपर सिद्ध और विद्याधरोंके अनेक आलय हैं। ... प्रकार मेरु पर्वतके पार्श्वभागमें केसर, वलय, ... और सिद्धलोक आदि हैं। यह पृथ्वी कमलकी आकृति सुव्यवस्थित हुई है। सामान्यरूपसे सभी पुराणोंमें ... क्रमका प्रतिपादन होता है।

(अध्याय ८१)

नदियोंका अवतरण

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आपलोग नदियोंका अवतरण सुनें—जिसे आकाश-समुद्र कहते हैं, उसीसे आकाशगङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। यह आकाशसमुद्र प्रायः निरन्तर इन्द्रके ऐरावत हाथीद्वारा (स्नानादि करनेसे) क्षुभित एवं बाधित होता रहता है। फिर वह आकाशगङ्गा चौरासी हजार योजन ऊपरसे मेरुपर्वतपर गिरती है। वहाँसे मेरुकूटकी उपत्यकाओंसे नीचे बहती हुई वह चार भागोंमें विभक्त हो जाती है। आश्रयहीन होनेके कारण चौंसठ हजार योजन दूरसे गिरती हुई वह नीचे उतरती है। यही नदी भूभागपर पहुँचकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु एवं भद्रा आदि नामोंसे विख्यात होती है। इन नदियोंके बीचमें इक्यासी हजार पर्वतोंको लाँघती हुई 'गो' अर्थात् पृथ्वीपर गमन करनेके कारण इसे ही जनता 'गां गता'—'गङ्गा' कहती है।

अब 'गन्धमादन'के पार्श्वभागमें स्थित अमरगण्डिकाका वर्णन करता हूँ। वह चार सौ योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी है। उसके तटपर केतुमाल नामसे प्रसिद्ध अनेक जनपद हैं। वहाँके निवासी पुरुष काले वर्णवाले एवं अत्यन्त पराक्रमी हैं। वहाँकी स्त्रियाँ कमलके समान नेत्रोंवाली परम सुन्दर होती हैं। वहाँ कटहलके वृक्ष विशेषतया बड़े-बड़े होते हैं। ब्रह्माजीके पुत्र ईशान—शिव ही वहाँके शासक हैं। उसका जल पीनेसे प्राणियोंके पास बुढ़ापा और रोग नहीं आ सकते तथा वे मनुष्य हजार वर्षकी आयुसे सम्पन्न और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। माल्यवान्पर्वतके पूर्वी शिखरसे 'पूर्वगण्डिका'का प्रादुर्भाव हुआ है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई हजार योजन है। वहाँपर भद्राश्व नामसे प्रसिद्ध अनेक जनपद हैं। वहीं भद्रसाल नामका एक वन है। कालाम्र नामक वृक्षोंकी संख्या तो अनगिनत है। वहाँके पुरुष श्वेतवर्णके और स्त्रियाँ कमल अथवा कुन्द-वर्णकी होती हैं। उन सबकी आयु दस हजार वर्षकी है। वहाँ पाँच 'कुल'-पर्वत हैं। वे पर्वत शैलवर्ण, मालाख्य, 'कोरजस्क' त्रिपर्ण और नील नामसे विख्यात हैं। वहाँसे झील-झरनों एवं सरोवरोंके तटवर्ती जन-

शिप्रा, अवन्ती, और कुन्ती। शोण, ज्योतीरथा, नर्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, करतोया, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विमला, विशाला, वञ्जुका, बालुवाहिनी, शुक्तिमती, विरजा, पङ्क्तिनी और रात्री—ये नदियाँ ऋक्षमान्* नामक पर्वतसे प्रकट हुई हैं। विन्ध्यपर्वतकी उपत्यकासे निकली हुई नदियोंके नाम ये हैं—मणिजाला, शुभा, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, वेणा, ऋषा, वैतरणी, वैदिपाला, कुमुद्वती, तोया, दुर्गा और अन्तःशिला। सह्यपर्वतसे प्रकट हुई नदियाँ इन नामोंसे विख्यात हैं—गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा और बाह्यकावेरी। मलयगिरिसे निकली हुई नदियाँ कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पावती और उत्पलावती नामोंसे विख्यात हैं। महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई नदियाँ हैं—त्रिसामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लाङ्गूलिनी और वंशधरा। ऋषिका, सुकुमारी, मन्दगामिनी, कृपा और पलाशिनी—ये चार नदियाँ शुक्तिमान्†—पर्वतसे प्रवाहित हुई हैं। ये ही सब भारतके 'कुल'पर्वत और प्रधान नदियाँ मानी गयी हैं। इनके अतिरिक्त छोटी-छोटी बहुत-सी नदियाँ हैं। एकलाख योजनवाला यह समग्र भाग 'जम्बूद्वीप' कहलाता है। (अध्याय ८५)

शाक एवं कुश-द्वीपोंका वर्णन

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आप लोग शाकद्वीपका वर्णन सुनें। जम्बूद्वीप अपने दूने परिमाणके लवण-समुद्रसे आवृत है। गोलाईमें भी यही जम्बूद्वीपके दूने परिमाणमें है। यहाँके निवासी बड़े पवित्र और दीर्घजीवी होते हैं। दरिद्रता, बुढ़ापा और व्याधिका उन्हें पता नहीं लगता। इस शाकद्वीपमें भी सात ही 'कुल'पर्वत हैं। इस द्वीपके दोनों ओर समुद्र हैं—एक ओर लवणसमुद्र और दूसरी ओर क्षीरसमुद्र। यहाँ पूर्वमें फैला हुआ महान् पर्वत उदयाचलके नामसे प्रसिद्ध है। उसके ऊपर (पश्चिम) भागमें जो पर्वत है, उसका नाम 'जलधार' है। उसीको लोग 'चन्द्रगिरि' भी कहते हैं। इन्द्र वहींसे जल लेकर (संसारमें) वर्षा करते हैं। उसके बाद 'श्वेतक'-नामक पर्वत है। उसके अन्तर्गत छः छोटे-छोटे दूसरे पर्वत हैं। वहाँकी प्रजा इन पर्वतोंपर अनेक प्रकारसे मनोरञ्जन करती है। उसके बाद रजतगिरि है। उसीको जनता शाकगिरि भी कहती है। उसके बाद 'आम्बिकेय'पर्वत है, जिसे लोग 'विभ्राजक' तथा केसरी भी कहते हैं। वहींसे वायुका आरम्भ होता है। जो कुलपर्वतोंके नाम हैं, उन्हीं नामोंसे वहाँके वर्षों या खण्डोंकी भी प्रसिद्धि है। वे कुलपर्वत इस प्रकार हैं—उदय, सुकुमार, जलधार, क्षेमक और महाद्रुम। पर्वतोंके दूसरे-दूसरे नाम भी हैं। उसके मध्यमें शाक नामका एक वृक्ष है। वहाँ सात बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। एक-एक नदीके दो-दो नाम हैं। ये हैं—सुकुमारी, कुमारी, नन्दा, वेणिका, धेनु, इक्षुमती और गभस्ति।

भगवान् रुद्र कहते हैं—अब आप लोग कुश नामक तीसरे द्वीपका वर्णन सुनें। यह द्वीप विस्तारमें शाकद्वीपसे दूने परिमाणवाला है। क्षीरसमुद्रके चारों ओर कुशद्वीप है। यहाँ भी सात 'कुल'पर्वत हैं। उन सभी पर्वतोंके एक-एकके दो-दो नाम हैं। जैसे—कुमुद पर्वत, इसीका दूसरा नाम 'विद्रुम' भी है। इसी प्रकार दूसरा पर्वत उन्नत भी हेमनामसे विख्यात है, तीसरा पर्वत द्रोण या पुष्पवान् नामसे विख्यात है, चौथा कङ्क या कुश है, पाँचवाँ पर्वत ईश या अग्निमान् है, छठा पर्वत महिष या हरि है। इसपर अग्निका निवास है और सातवाँ ककुद्म या मन्दर है। ये पर्वत कुशद्वीपमें व्यवस्थित हैं।

* यह गोण्डवानासे उड़ीसातक फैला हुआ, विन्ध्यपर्वतमालाको पूर्वी भाग है।

† यह विन्ध्यपर्वतमालाका मध्यवर्ती भाग है। (पार्जीटर, नन्दलाल दे आदि)। शुक्तिमती नदी भी इसीसे निकलती है।

हैं। सभी पर्वत पीले सुवर्णमय हैं तथा उनके नाम हैं—सर्वगुण, सौवर्ण, रोहित, सुमनस, कुशल, जाम्बूनद और वैद्युत। ये 'कुल'पर्वत कहलाते हैं। इन्हींके नामसे यहाँके सात वर्ष या खण्ड प्रसिद्ध हैं। अब छठे गोमेदद्वीपका वर्णन किया जाता है। जिस प्रकार शाल्मलिद्वीप 'सुरोद'से घिरा हुआ है, वैसे ही 'सुरोद' भी अपने दुगुने परिमाणवाले 'गोमेद'से घिरा है। यहाँ दो ही प्रधान पर्वत हैं, जिनमें एकका नाम अवसर और दूसरेका नाम कुमुद है। यहाँ ईखके रसका समुद्र है। उस समुद्रसे दूने विस्तारमें पुष्करद्वीप है, जिससे वह घिर-सा गया है। वहाँ उस पुष्करपर ही मानस नामका एक पर्वत है। उसके भी दो भाग हो गये हैं। वे दोनों भाग बराबर-बराबर प्रमाणमें एक-एक वर्ष बन गये हैं। उसके सभी भागोंमें मीठा जल मिलता है। इसके बाद अब कटाहका वर्णन किया जाता है। यह पूर्वोक्त प्रमाण हुआ। ब्रह्माण्डकी लम्बाई-चौड़ाई कटाह (कड़ाहे)की भाँति है। इस प्रकारके विधान किये हुए ब्रह्माण्ड-मण्डलोंकी संख्या सम्भव नहीं है। यह पृथ्वी महाप्रलयमें रसातलमें चली जाती है। प्रत्येक कल्पमें भगवान् नारायण वराहका रूप धारण कर इसे अपने दाढ़की सहायतासे वहाँसे ऊपर ले आते हैं और उन्हींकी कृपासे यह पृथ्वी समुचित स्थानपर स्थित हो पाती है। द्विजवरो! पृथ्वीकी लम्बाई-चौड़ाईका मान मैंने तुमलोगोंके सामने वर्णन कर दिया। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं अपने निवासस्थान कैलासको जा रहा हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! इस प्रकार कहकर महात्मा रुद्र उसी क्षण कैलासके लिये चल पड़े और सम्पूर्ण देवता और ऋषि भी जहाँसे आये थे, वहाँ जानेके लिये प्रस्थित हो गये।

(अध्याय ८८-८९)

त्रिशक्ति-माहात्म्य *और सृष्टिदेवीका आख्यान

भगवती पृथ्वीने पूछा—भगवन्! कुछ लोग रुद्रको परमात्मा एवं पुण्यमय शिव कहते हैं, इधर दूसरे लोग विष्णुको ही परमात्मा कहते हैं। कुछ अन्य लोग ब्रह्माको सर्वेश्वर बताते हैं। वस्तुतः इनमेंसे कौन-से देवता श्रेष्ठ तथा कौन कनिष्ठ हैं? देव! मेरे मनमें इसे जाननेका कौतूहल हो रहा है। अतः आप इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वरानने! भगवान् नारायण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। उनके बाद ब्रह्माका स्थान है। देवि! ब्रह्मासे ही रुद्रकी उत्पत्ति है और वे रुद्र (तपःसाधनाके प्रभावसे) सर्वज्ञ बन गये। उन भगवान् रुद्रके अनेक प्रकारके आश्चर्यमय कर्म हैं। सुन्दरि! मैं उनके चरित्रोंका वर्णन करता हूँ, तुम उन्हें सुनो—

महान् रमणीय एवं नाना प्रकारके विचित्र धातुओंसे सुशोभित कैलास नामका एक पर्वत है, जो भगवान् शूलपाणि त्रिलोचन शिवका नित्य-निवास-स्थल है। एक दिनकी बात है—सम्पूर्ण प्राणिवर्गद्वारा नमस्कृत भगवान् पिनाकपाणि अपने सभी गणोंसे घिरे हुए उस कैलास-पर्वतपर विराजमान थे और उनके पासमें ही भगवती पार्वती भी बैठी थीं। इनमेंसे किन्हीं गणोंका मुँह सिंहके समान था और वे सिंहकी ही भाँति गर्जना कर रहे थे। कुछ गण हाथीके समान मुखवाले थे तो कुछ गण घोड़ेकी मुखाकृतिके और कुछके मुख सूँस-जैसे भी थे। उनमेंसे कितने तो गाते, नाचते, दौड़ते और ताली ठोंकते-हँसते-किलकिलाते, गरजते और मिट्टीके ढेलोंको उठाकर परस्पर लड़ रहे थे। कुछ बलके अभिमान

* 'वराहपुराण'का यह आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। भास्कररायने 'ललितासहस्रनाम'—सौभाग्य भास्करभाष्यके पृ० ११७, १३३, १३६-३०, १४५-५०, १५४ (३ बार), १६१ आदिपर तथा 'सेतुबन्ध'में भी पग-पगपर इस ('त्रिशक्तिमाहात्म्य')के श्लोकोंको उद्धृत किया है।

इन पर्वतोंसे विभाजित भूभाग ही विभिन्न वर्ष या खण्ड हैं । उनमें एक-एक वर्षके दो-दो नाम हैं । जैसे—कुमुदपर्वतसे सम्बन्धित वर्ष श्वेत या उद्भिद् कहा जाता है । उन्नतगिरिका वर्ष लोहित या वेणुमण्डल नामसे विख्यात है । वलाहकपर्वतका वर्ष जीमूत या रथाकार नामसे भी प्रसिद्ध है । द्रोणगिरिके पासके वर्षको कुछ लोग हरिवर्ष कहते हैं और दूसरे बलाधन । यहाँ भी सात नदियाँ हैं । उनमें प्रत्येक नदीके भी दो-दो नाम हैं । जैसे—पहली नदी 'प्रतोया' है । उसीका दूसरा नाम 'प्रवेशा' है । दूसरी नदी 'शिवा' नामसे विख्यात है, जिसका एक नाम 'यशोदा' भी है । तीसरी नदीको 'चित्रा' कहते हैं । उसीकी एक संज्ञा 'कृष्णा' है । चौथी 'ह्रादिनी'को लोग 'चन्द्रा' भी कहते हैं । पाँचवीं नदी 'विद्युल्लता' नामसे प्रसिद्ध है । इसका दूसरा नाम 'शुक्ला' है । छठी नदी 'वर्णा' कहलाती है । उसका एक नाम 'विभावरी' भी है । सातवीं नदीकी संज्ञा 'महती' है । इसीको लोग 'धृति' भी कहते हैं । ये सभी नदियाँ अपना प्रधान स्थान रखती हैं । यहाँ अन्य छोटी-छोटी बहुत नदियाँ हैं । यह कुशद्वीपके अवान्तर भागका वर्णन है । शाकद्वीप शास्त्रोंमें इसके दूने उपकरणोंसे युक्त प्रायः ऐसी बात कही जाती है । कुशद्वीपके मध्यमें बहुत बड़ी कुशकी झाड़ी है । इसलिये इसका 'कुशद्वीप' पड़ा । अमृतकी तुलना करने दधिमण्डोद-समुद्रसे, जो मानमें 'क्षीरसमुद्र'-का दुगुना घिरा हुआ है । (अध्याय ८६-८७)

क्रौञ्च और शाल्मलिद्वीपका वर्णन

भगवान् रुद्र बोले—अब आपलोग क्रौञ्चद्वीपका वर्णन सुनें । द्वीपोंके क्रममें यह चौथा द्वीप है । इसका परिमाण कुशद्वीपसे दुगुना है । यहाँ एक समुद्र है, जिसे दुगुने परिमाणवाले इस क्रौञ्चद्वीपने घेर रखा है । उस द्वीपमें सात प्रधान पर्वत हैं । प्रथम जो क्रौञ्च है, उसे लोग 'विद्युल्लता,' 'रैवत' और 'मानस' भी कहते हैं । अन्य पर्वतोंके दो-दो नाम हैं । जैसे पावन-अन्धकार अच्छोदक-देवावृत, सुन्दर-दीप्त, काञ्चनशृङ्ग-देवनन्द, गोविन्द-द्विविद और पुण्डरीक-तोयद । ये सातों रत्नमय पर्वत क्रौञ्चद्वीपमें स्थित हैं, जो एक-से-एक अधिक ऊँचे हैं ।

अब यहाँके वर्षोंका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो । इस क्रौञ्चद्वीपके वर्ष भी दो-दो नामोंसे पुकारे जाते हैं । जैसे—कुशल-[illegible], [illegible], उष्णवान्-[illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] आदि । यहाँ नदियाँ भी सात ही हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं । गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका । ये सातों नदियाँ विभिन्न स्थानोंपर भिन्न नामोंसे पुकारी जाती हैं । गौरीको कहीं पुष्पवहा, कुमुद्वतीको आर्द्रवती, रौद्राको संध्या, सुखावहाको भोगजवा, क्षिप्रोदाको ख्याति और बहुलाको पुण्डरीका कहते हैं । देश-वर्ष-वैचित्र्यसे प्रभावित अनेकों छोटी-छोटी नदियाँ हैं । इस क्रौञ्चद्वीपके चारों तरफ घृत-समुद्र है, जो शाल्मलिद्वीपसे घिरा है ।

भगवान् रुद्र कहते हैं—इस प्रकार चार द्वीपोंका वर्णन हो चुका, अब आपलोग पाँचवें द्वीप तथा वर्षोंके विभागोंका वर्णन सुनें । यह पाँचवाँ 'शाल्मलिद्वीप' परिमाणमें 'क्रौञ्चद्वीपसे दुगुना बड़ा' है । यह द्वीप घृतसमुद्रके चारों ओर फैला हुआ है । घृतसमुद्रसे [illegible] यह दूना है । यहाँ [illegible] [illegible] और उतनी ही नदि[illegible]

हैं। सभी पर्वत पीले सुवर्णमय हैं तथा उनके नाम हैं—सर्वगुण, सौवर्णरोहित, सुमनस, कुशल, जाम्बूनद और वैद्युत। ये 'कुल'पर्वत कहलाते हैं। इन्हींके नामसे यहाँके सात वर्ष या खण्ड प्रसिद्ध हैं। अब छठे गोमेदद्वीपका वर्णन किया जाता है। जिस प्रकार शाल्मलिद्वीप 'सुरोद'से घिरा हुआ है, वैसे ही 'सुरोद' भी अपने दुगुने परिमाणवाले 'गोमेद'से घिरा है। वहाँ दो ही प्रधान पर्वत हैं, जिनमें एकका नाम अवसर और दूसरेका नाम कुमुद है। यहाँ ईखके रसका समुद्र है। उस समुद्रसे दूने विस्तारमें पुष्करद्वीप है, जिससे वह घिर-सा गया है। वहाँ उस पुष्करपर ही मानस नामका एक पर्वत है। उसके भी दो भाग हो गये हैं। वे दोनों भाग बराबर-बराबर प्रमाणमें एक-एक वर्ष बन गये हैं। उसके सभी भागोंमें मीठा जल मिलता है। इसके बाद अब कटाहका वर्णन किया जाता है। यह पृथ्वीका प्रमाण हुआ। ब्रह्माण्डकी लम्बाई-चौड़ाई कटाह (कड़ाहे)की भाँति है। इस प्रकारके विधान किये हुए ब्रह्माण्ड-मण्डलोंकी संख्या सम्भव नहीं है। यह पृथ्वी महाप्रलयमें रसातलमें चली जाती है। प्रत्येक कल्पमें भगवान् नारायण वराहका रूप धारण कर इसे अपने दाढ़की सहायतासे वहाँसे ऊपर ले आते हैं और उन्हींकी कृपासे यह पृथ्वी समुचित स्थानपर स्थित हो पाती है। द्विजवरो! पृथ्वीकी लम्बाई-चौड़ाईका मान मैंने तुमलोगोंके सामने वर्णन कर दिया। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं अपने निवासस्थान कैलासको जा रहा हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! इस प्रकार कहकर महात्मा रुद्र उसी क्षण कैलासके लिये चल पड़े और सम्पूर्ण देवता और ऋषि भी जहाँसे आये थे, वहाँ जानेके लिये प्रस्थित हो गये।

(अध्याय ८८-८९)

त्रिशक्ति-माहात्म्य *और सृष्टिदेवीका आख्यान

भगवती पृथ्वीने पूछा—भगवन्! कुछ लोग रुद्रको परमात्मा एवं पुण्यमय शिव कहते हैं, इधर दूसरे लोग विष्णुको ही परमात्मा कहते हैं। कुछ अन्य लोग ब्रह्माको सर्वेश्वर बताते हैं। वस्तुतः इनमेंसे कौन-से देवता श्रेष्ठ तथा कौन कनिष्ठ हैं? देव! मेरे मनमें इसे जाननेका कौतूहल हो रहा है। अतः आप इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वरानने! भगवान् नारायण ही सबसे श्रेष्ठ हैं। उनके बाद ब्रह्माका स्थान है। देवि! ब्रह्मासे ही रुद्रकी उत्पत्ति है और वे रुद्र (तपःसाधनाके प्रभावसे) सर्वज्ञ बन गये। उन भगवान् रुद्रके अनेक प्रकारके आश्चर्यमय कर्म हैं। सुन्दरि! मैं उनके चरित्रोंका वर्णन करता हूँ, तुम उन्हें सुनो—

महान् रमणीय एवं नाना प्रकारके विचित्र धातुओंसे सुशोभित कैलास नामका एक पर्वत है, जो भगवान् शूलपाणि त्रिलोचन शिवका नित्य-निवास-स्थल है। एक दिनकी बात है—सम्पूर्ण प्राणिवर्गद्वारा नमस्कृत भगवान् पिनाकपाणि अपने सभी गणोंसे घिरे हुए उस कैलास-पर्वतपर विराजमान थे और उनके पासमें ही भगवती पार्वती भी बैठी थीं। इनमेंसे किन्हीं गणोंका मुँह सिंहके समान था और वे सिंहकी ही भाँति गर्जना कर रहे थे। कुछ गण हाथीके समान मुखवाले थे तो कुछ गण घोड़ेकी मुखाकृतिके और कुछके मुख सूँस-जैसे भी थे। उनमेंसे कितने तो गाते, नाचते, दौड़ते और ताली ठोंकते-हँसते-किलकिलाते, गरजते और मिट्टीके ढेलोंको उठाकर परस्पर लड़ रहे थे। कुछ दर्पके अभिमान

* 'वराहपुराण'का यह आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। भास्कररायने 'ललितासहस्रनाम'—सौभाग्य भास्करभाष्यके पृ० ११७, १३३, १३६-३०, १४५-५०, १५४ (३ बार), १६१ आदिपर तथा 'सेतुबन्ध'में भी पग-पगपर इस ('त्रिशक्तिमाहात्म्य')के श्लोकोंको उद्धृत किया है।

स्या करनेका संकल्प लेकर मन्दराचल पर्वतपर ली गयी। तीसरी जो श्यामवर्णकी कन्या थी तथा सके नेत्र बड़े विशाल और दाढ़ भयंकर थे तथा । रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुई थी, वह कल्याणमयी मारी तपस्या करनेके उद्देश्यसे 'नीलगिरि' पर चली गयी।

कुछ समयके पश्चात् प्रजापति ब्रह्माजी प्रजाओंकी ृष्टिमें तत्पर हुए, पर बहुत समयतक प्रयास करनेपर भी जाकी वृद्धि नहीं हुई। अब वे मन-ही-मन सोचने लगे के क्या कारण है कि मेरी प्रजा बढ़ नहीं ही है। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं) सुन्दरे! ब ब्रह्माजीने योगाभ्यासके सहारे अपने हृदयमें ध्यान लगाया तो श्वेतपर्वतपर स्थित 'सृष्टि' कुमारीकी तपस्याकी बात उनकी समझमें आ गयी। उस समय तपस्याके प्रभावसे उस कन्याके सम्पूर्ण पाप दग्ध हो चुके थे। फिर तो ब्रह्माजी कमलके समान नेत्रवाली वह दिव्य कुमारी जहाँ विराजमान थी, वहाँ पहुँचकर उस तपस्विनी दिव्य कुमारीको देखा और साथ ही वे ये वचन बोले— 'कमनीय कान्तिवाली कल्याणि! तुम प्रधान कार्यकी अवहेलना करके अब तपस्या क्यों कर रही हो! विशाल नेत्रोंवाली कन्यके! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम वर माँग लो।'

'सृष्टि' देवीने कहा—'भगवन्! मैं एक स्थानपर नहीं रहना चाहती, इसलिये मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि मैं सर्वत्रगामिनी बन जाऊँ।' जब सृष्टिदेवीने प्रजापति ब्रह्मासे ऐसी बात कही, तब उन्होंने उससे कहा— 'देवि! तुम सभी जगह जा सकोगी और सर्वव्यापिनी होगी। ब्रह्माजीके ऐसा कहते ही कमलके समान नेत्रोंवाली वह 'सृष्टि' देवी उन्हींके अङ्कमें लीन हो गयी। अब ब्रह्माजीकी सृष्टि बड़ी तेजीसे बढ़ने लगी और फिर शीघ्र ही उनके सात मानसपुत्र हुए। उन पुत्रोंसे भी अन्य संतानोंकी उत्पत्ति हुई। फिर उनसे बहुत-सी प्रजाएँ उत्पन्न हुईं। इसके बाद स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज और अण्डज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई। फिर तो चर-अचर प्राणियोंकी सृष्टिसे यह सारा विश्व ही भर गया। यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् तथा सारा वाङ्मय विश्व—इन सबकी रचनामें उस 'सृष्टि'देवीका ही हाथ है। उसीने भूत, भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालोंकी भी व्यवस्था की। (अध्याय ९०)

त्रिशक्ति-माहात्म्यमें 'सृष्टि', 'सरस्वती' तथा 'वैष्णवी' देवियोंका वर्णन

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दर अङ्गोंसे शोभा पानेवाली वसुंधरे! उस 'सृष्टिदेवी'का दूसरा विधान भी बहुत विस्तृत है, उसे बताता हूँ, सुनो—परमेष्ठी रुद्रके द्वारा जो यह तीन शक्तिवाली देवी बतायी गयी है, उसके प्रकरणमें सर्वप्रथम श्वेत वर्णवाली सृष्टिदेवीका प्रसङ्ग आया है। यह सम्पूर्ण अक्षरोंसे युक्त होनेपर भी 'एकाक्षरा' कहलाती है। यह देवी कहीं तो 'वागीशा' और कहीं 'सरस्वती' कही जाती है और कहीं यह 'विद्येश्वरी' और 'अमिताक्षरा' नामसे भी प्रसिद्ध है। कुछ स्थलोंमें उसीको 'ज्ञाननिधि' अथवा 'विभावरी' देवी भी कहते हैं। अयि वरानने! जितने भी वाचक नाम हैं, वे सभी उसके नाम हैं, ऐसा समझना चाहिये।

विष्णुके अंशवाली 'वैष्णवी'देवीका वर्ण लाल है। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं तथा उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। ये दोनों शक्तियाँ तथा तीसरी जो रुद्रके अंशसे अभिव्यक्त रौद्रीशक्ति है, भगवान् रुद्रको जाननेवालेके लिये एक साथ सिद्ध हो जाती है। देवी

महिषासुरका वध

भगवान् वराह बोले—वसुधे! अब इधर विद्युत्प्रभ नामक दैत्य भी महिषासुरको प्रणामकर चला और उसके दूतके रूपमें भगवती वैष्णवीके पास पहुँचा, जहाँ वे सैकड़ों अन्य कुमारियोंके साथ बैठी थीं। फिर बिना किसी शिष्टाचारके ही उसने उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

विद्युत्प्रभ बोला—"देवि! पूर्व समयकी बात है—सृष्टिके प्रारम्भमें सुपार्श्व नामक एक अत्यन्त ज्ञानी ऋषि थे। उनका जन्म सरस्वती-नदीके तटवर्ती देशमें हुआ था। सिन्धुद्वीप नामसे प्रसिद्ध उनके मित्र भी उन्हींके समान तेजस्वी एवं प्रतापी थे। माहिष्मती नामकी उत्तम पुरीमें उन्होंने निराहारका नियम लेकर कठिन तपस्या प्रारम्भ कर दी। विप्रचित्ति नामक दैत्यकी माहिष्मती ही नामकी कन्या बड़ी सुन्दरी थी। एक बार वह सखियोंके साथ घूमती हुई पर्वतकी उपत्यकामें गयी; जहाँ उसे एक तपोवन दिखायी पड़ा। उस तपोवनके स्वामी एक ऋषि थे। जो मौनव्रत धारण कर तपस्या कर रहे थे। उन महात्माका वह पवित्र आश्रम रम्य वनखण्डोंके कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था। जब विप्रचित्तिकुमारी माहिष्मतीने उसे देखा तो वह सोचने लगी—'मैं इस तपस्वीको भयभीत कर क्यों न स्वयं इस आश्रममें रहूँ और सखियोंके साथ आनन्दसे विहार करूँ।'

"ऐसा सोचकर उस दानवकन्या माहिष्मतीने अपना रूप एक भैंसका बनाया। उसके सिरपर अत्यन्त तीक्ष्ण सींग सुशोभित हो रहे थे। विदवेदवरि! वह राक्षसी अपनी सखियोंको साथ लेकर सुपार्श्व ऋषिके पास पहुँची। फिर तो सुन्दर मुखवाली उस दैत्यकन्याने सखियोंसहित वहाँ पहुँचकर ऋषिको डराना आरम्भ कर दिया। एक बार तो वे ऋषि अवश्य डर गये, पर पीछे उन्होंने ज्ञाननेत्रसे देखा तो बात उनकी समझमें आ गयी कि यह सुन्दर नेत्रवाली (भैंस नहीं) कोई राक्षसी है। अतः मुनिने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया—'दुष्टे! तू भैंसका वेष बनाकर जो मुझे डरानेका प्रयास कर रही है, इसके फलस्वरूप तुझे सौ वर्षोंतक भैंसके रूपमें ही रहना पड़ेगा।'

"ऋषिके इस प्रकार कहनेपर दानवकन्या माहिष्मती काँप उठी और उनके पैरोंपर गिरकर रोती हुई कहने लगी—'मुने! आप कृपया अपने इस शापको समाप्त कर दें। माहिष्मतीकी प्रार्थनापर दयालु मुनिने उसके शापके अन्तका समय बता दिया और उससे कहा—'भद्रे! इस भैंसके रूपसे ही तुम एक पुत्र उत्पन्नकर शापसे मुक्त हो जाओगी, मेरी बात सर्वथा असत्य नहीं हो सकती।'

"ऋषिके यों कहनेपर माहिष्मती नर्मदानदीके तटपर गयी, जहाँ तपस्वी सिन्धुद्वीप तपस्या कर रहे थे। वहीं कुछ समय पूर्व एक दैत्यकन्या इन्दुमती जलमें नंगे स्नान कर रही थी। उसका रूप अत्यन्त मनोहर था। उसपर दृष्टि पड़ते ही मुनिका रेत शिलाखण्डपर स्खलित हो गया, जो एक सोतेसे होकर नर्मदामें आया। अब माहिष्मतीकी दृष्टि उसपर पड़ी। उसने अपनी सखियोंसे कहा—'मैं यह स्वादिष्ट जल पीना चाहती हूँ।' और ऐसा कहकर वह उस रेतको पी गयी, जिससे उसे गर्भ रह गया। समयानुसार उससे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई, जो बड़ा पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान् हुआ और वही 'महिषासुर'नामसे प्रसिद्ध हुआ है। देवि! देवताओंके सैनिकोंको रौंदनेवाला वही महिष आपका वरण कर रहा है। अनघे! वह महान् असुर युद्धभूमिमें देवसमुदायको भी परास्त कर चुका है। अब वह सारी त्रिलोकीको जीतकर आपको सौंप देगा। अतः आप भी उसका वरण करें।"

दूतके ऐसा कहनेपर भगवती वैष्णवीदेवी बड़े जोरोंसे हँस पड़ीं। उनके हँसते समय उस दूतको देवीके उदरमें चर और अचरसहित तीनों लोक दीखने लगे। वह उसी क्षण आश्चर्यसे घबराकर मानो चक्कर खाने लगा। अब उस दूतके उत्तरमें देवीकी प्रतिहारिणी (द्वारपालिका) ने, जिसका नाम जया था, भगवती वैष्णवीके हृदयकी बात कहना प्रारम्भ किया।

जया बोली—'कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले महिषने तुझसे जैसा कहा है, तुमने वैसी ही बात यहाँ आकर कही है। किंतु समस्या यह है कि इस वैष्णवीदेवीने सदाके लिये 'कौमार-व्रत' धारण कर रखा है। यहाँ इस देवीकी अनुगामिनी अन्य भी बहुत-सी वैसी ही कुमारियाँ हैं। उनमेंसे एक भी कुमारी तुम्हें लभ्य नहीं है। फिर स्वयं भगवती वैष्णवीके पानेकी तो कल्पना ही व्यर्थ है। दूत! तुम बहुत शीघ्र यहाँसे चले जाओ। तुम्हारी दूसरी कोई बात यहाँ नहीं हो सकेगी।'

इस प्रकार प्रतिहारिणीके कहनेपर विद्युत्प्रभ वहाँसे चला गया। इतनेमें ही परम तपस्वी मुनिवर नारदजी उच्च स्वरसे वीणाकी तान छेड़ते हुए आकाशमार्गसे वहाँ पहुँचे। उन मुनिने 'अहोभाग्य! अहोभाग्य!' कहते हुए उन कुमारीको प्रणाम किया और देवीद्वारा पूजित होकर वे सुन्दर आसनपर बैठ गये। फिर सम्पूर्ण देवियोंको प्रणामकर वे कहने लगे—'देवि! देवसमुदायने बड़े आदरसे मुझे आपके पास भेजा है; क्योंकि महिषासुरने संग्राममें उन्हें परास्त कर दिया है। देवि! यही नहीं, वह दैत्यराज आपको पानेके लिये भी प्रयत्नशील है। वरानने! देवताओंकी यह बात आपको बताने आया हूँ। देवेश्वरि! आप डटकर उस दैत्यसे युद्ध करें तथा उसे मार डालें।'

भगवती वैष्णवीसे यों कहकर ... तुरंत अन्तर्धान हो गये ...

... अन्यत्र भाग गये। अब देवीने ... कहा—'तुम सभी अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो ...' तब वे समस्त परम पराक्रमी कन्याएँ देवीकी भयंकर आकार धारणकर ढाल, तलवार और ... आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो ... करने तथा युद्ध करनेके विचारसे डट गयीं। इतनेमें महिषासुरकी सेना भी देवसेनाको छोड़कर वहाँ आ ... फिर क्या था, उन स्वाभिमानिनी कन्याओं तथा दानवोंमें युद्ध छिड़ गया। उन कन्याओंके प्रभावसे ... चतुरङ्गिणी सेना क्षणभरमें समाप्त हो गयी। कितने ... सिर कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अन्य बहुतने ... छाती चीरकर कन्यागण रक्त पीने लगीं। ... प्रधान दानवोंके मस्तक कट गये और वे कबन्ध नृत्य करने लग गये। इस प्रकार एक ही क्षण पापबुद्धिवाले वे असुर युद्धभूमिसे भाग चले। ... दूसरे दैत्य भागते हुए महिषासुरके पास पहुँचे। निशाचरोंकी उस विशाल सेनामें हाहाकार मच गया। उनकी ऐसी व्याकुलता देखकर महिषासुरने से... कहा—'सेनापते! यह क्या? मेरे सामने ही सेनाका ऐसा संहार?' तब हाथीके समान आकृतिवाले यज्ञहनु (विरूपाक्ष)ने महिषासुरसे कहा—'स्वामिन्! इन कुमारियोंने ही चारों ओरसे हमारे सैनिकोंको भगा दिया है।'

अब क्या था? महिषासुर हाथमें गदा लेकर उधर दौड़ पड़ा, जहाँ देवताओं एवं गन्धर्वोंसे सुपूजित भगवती वैष्णवी विराजमान थीं। उसे आते देखकर भगवती वैष्णवीने अपनी बीस भुजाएँ बना लीं और उनके बीसों हाथोंमें क्रमशः धनुष, ढाल, तलवार, शक्ति, बाण, फरसा, वज्र, शङ्ख, त्रिशूल, गदा, मुसल, चक्र, बर्छी, दण्ड, पाश, ध्वज, घण्टा, पानपात्र, अक्षमाला एवं कमण्डलु—ये आयुध विराजमान हो गये। उन देवीने कवच भी धारण कर लिया और सिंहपर सवार हो ... । फिर उन्होंने देवाधिदेव, प्रलयंकर भगवान

भगवती वैष्णवी देवी

उन्हें स्मरण किया । स्मरण करते ही साक्षात् वृषध्वज ही तत्क्षण पहुँच गये । उन्हें प्रणामकर देवीने सूचित किया—'देवेश्वर ! मैं सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय प्राप्त करना चाहती हूँ । सनातन प्रभो ! बस, आप केवल यहीं उपस्थित रहकर (रण-क्रीडा) देखते रहें ।'

यों कहकर भगवती परमेश्वरी सारी आसुरी सेनाका संहार कर महिषपर और दौड़ीं । महिष भी भय उनपर ... वेगसे टूट पड़ा । वह दानवराज कभी लड़ता, कभी भागता और कभी पुनः मोर्चेपर डट जाता । ... ! उस दानवका देवीके साथ देवताओंके वर्षके ... हजार वर्षोंतक यह संग्राम चलता रहा । अन्तमें ... डरकर सारे ब्रह्माण्डमें भागने लगा । फिर देवीने शतशृङ्ग पर्वतपर* उसे पैरोंसे दबाकर शूलद्वारा मार ... और तलवारद्वारा उसका सिर काटकर धड़से अलग कर दिया । महिषासुरका जीव शरीरसे निकलकर ... के शस्त्र-निपातके प्रभावसे स्वर्गमें चला गया । उस ... असुरको पराजित देखकर ब्रह्मादिसहित सम्पूर्ण देवता देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

देवताओंने स्तुति की—महान् ऐश्वर्यसे सुसम्पन्न ... ! गम्भीरा, भीमदर्शना, जयस्था, स्थितिसिद्धान्ता, ... त्रिनेत्रा, स्थितोपुर्गा, जया, जाप्या, महिषा-सुरमर्दिनी, सर्वगा, सर्वा, देवेशी, विश्वरूपिणी, ... गामी, शीतशीता, ध्रुवा, पद्मपत्रशुभेक्षणा, शुद्ध-सत्त्व-... स्था, चन्द्ररूपा, दिवाकरी, ऋद्धि-सिद्धिप्रदा, सिद्धा, ... विद्या, अमृता, शिवा, शाङ्करी, वैष्णवी, ब्राह्मी, सर्वदेवनमस्कृता, घण्टाहस्ता, त्रिशूलास्त्रा, उग्ररूपा, विरूपाक्षी, महामाया और अमृतस्रवा—इन विशिष्ट नामोंसे युक्त हम आपकी उपासना करते हैं । आप ... पुण्यमयी देवीके लिये हमारा निरन्तर नमस्कार है । ...स्वरूपा देवि ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी हितचिन्तिका ... । अखिल प्राणी आपके ही रूप हैं । विद्याओं, ... और दिव्यशास्त्रोंकी आप ही जननी हैं । समस्त संसार आपपर ही अवलम्बित है । अम्बिके ! सम्पूर्ण वेदोंके रहस्यों और सभी देहधारियोंके केवल आप ही शरण हैं । शुभे ! आपको सामान्य जनता विद्या एवं अविद्या नामसे पुकारती है । आपके लिये हमारा निरन्तर शतशः नमस्कार है । परमेश्वरि ! आप विरूपाक्षी, क्षान्ति, क्षोभितान्तर्जगत् और अमला नामसे भी विख्यात हैं । महादेवि ! हम आपको बारबार नमस्कार करते हैं । भगवती परमेश्वरि ! रणसंकटके उपस्थित होनेपर जो आपकी शरण लेते हैं, उन भक्तोंके सामने किसी प्रकारका अशुभ नहीं आता । देवि ! सिंह-व्याघ्रके भय, चोर-भय, राज-भय, या अन्य घोर भयके उपस्थित होनेपर जो पुरुष मनसे सावधान कर इस स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह इन सभी संकटोंसे छूट जायगा । देवि ! कारागारमें पड़ा हुआ मानव भी यदि आपका स्मरण करेगा तो बन्धनोंसे उसकी मुक्ति हो जायगी और वह आनन्दपूर्वक सुखसे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करेगा ।

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरी पृथ्वि ! इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति-नमस्कार किये जानेपर भगवती वैष्णवीने उनसे कहा—'देवगण ! आपलोग कोई उत्तम वर माँग लें ।'

देवता बोले—पुण्यस्वरूपिणी देवि ! आपके इस स्तोत्रका जो पुरुष पाठ करेंगे, उनकी आप सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेकी कृपा करें । यही हमारा अभिलषित वर है । इसपर सर्वेश्वरी देवीने उन देवताओंसे 'एवमस्तु' कहकर वहाँसे उनको विदा कर दिया और स्वयं वहीं विराजमान रहीं । धराधरे ! यह देवीके दूसरे स्वरूपका वर्णन हुआ । जो इसे जान लेता है, वह शोक-दुःख एवं दोषोंसे मुक्त होकर भगवतीके अनामयपदको प्राप्त करता है ।

(अध्याय ९५)

* यह हिमालयका एक शृङ्ग कहा जाता है । पाण्डवोंका जन्म यहीं हुआ था । (महाभा० १ । १२२ । २३) यहाँ (वैष्णो... ...से ४५ मील) पर सिद्धि शीघ्र मिलती है । 'हरिविजय' तथा '...' के रचयिता ... ...राज इन्हीं देवीके उपासक थे ।

भगवती वैष्णवी देवी

ाथ युद्ध करने लगीं और तत्काल असुरोंके सभी सैनिकोंका क्षणभरमें सफाया कर दिया। देवता अब नः लड़ने लग गये थे। कालरात्रिकी सेना तथा देवताओंकी सेना अब नयी शक्तिसे सम्पन्न होकर दैत्योंसे लड़ने लगीं और उन सभीने समस्त दानवोंके सैनिकोंको यमलोक भेज दिया। बस, अब उस महान् युद्धभूमिमें केवल महादैत्य 'रुरु' ही बच रहा था। वह बड़ा मायावी था। अब उसने 'रौरवी' नामक भयंकर मायाकी रचना की, जिससे सम्पूर्ण देवता मोहित होकर नींदमें सो गये। अन्तमें देवीने उस युद्ध-स्थलपर त्रिशूलसे दानवको मार डाला। शुभलोचने! देवीके द्वारा आहत हो जानेपर 'रुरु'-दैत्यके चर्म (धड़) और मुण्ड — अलग-अलग हो गये। दानवराज 'रुरु'के चर्म और मुण्ड जिस समय पृथक् हुए, उसी क्षण देवीने उन्हें उठा लिया, अतः वे 'चामुण्डा' कहलाने लगीं। वे ही भगवती महारौद्री, परमेश्वरी, संहारिणी और 'कालरात्रि' कही जाती हैं। उनकी अनुचरी देवियाँ करोड़ोंकी संख्यामें बहुत-सी हैं। युद्धके अन्तमें उन अनुगामिनी देवियोंने इन महान् ऐश्वर्यशालिनी देवीको — सब ओरसे घेर लिया और वे भगवती रौद्रीसे कहने लगीं — 'हम भूखसे घबड़ा गयी हैं। कल्याणस्वरूपिणि देवि! आप हमें भोजन देनेकी कृपा कीजिये।'

इस प्रकार उन देवियोंके प्रार्थना करनेपर जब रौद्री देवीके ध्यानमें कोई बात न आयी, तब उन्होंने देवाधिदेव पशुपति भगवान् रुद्रका स्मरण किया। उनके ध्यान करते ही पिनाकपाणि परमात्मा रुद्र वहाँ प्रकट हो गये। वे बोले — 'देवि! कहो! तुम्हारा क्या कार्य है?'

देवीने कहा — देवेश! आप इन उपस्थित देवियोंके लिये भोजनकी कुछ सामग्री देनेकी कृपा करें; अन्यथा ये बलपूर्वक मुझे ही खा जायँगी।

रुद्रने कहा — देवेश्वरि! महाप्रभे! इनके खानेयोग्य वस्तु वह है — जो गर्भवती स्त्री दूसरी स्त्रीके पहने हुए वस्त्रको पहनकर अथवा विशेष करके दूसरे पुरुषका स्पर्शकर पाकका निर्माण करती है, वह इन देवियोंके लिये भोजनकी सामग्री है। अज्ञानी व्यक्तियोंद्वारा दिया हुआ बलिभाग भी ये देवियाँ ग्रहण करें और उसे पाकर सौ वर्षोंके लिये सर्वथा तृप्त हो जायँ। अन्य कुछ देवियाँ प्रसव-गृहमें छिद्रका अन्वेषण करें। वहाँ लोग उनकी पूजा करेंगे। देवेशि! उस स्थानपर उनका निवास होगा। गृह, क्षेत्र, तड़ागों, वापियों और उद्यानोंमें जाकर निरन्तर रोती हुई जो स्त्रियाँ मनमारे बैठी रहेंगी, उनके शरीरमें प्रवेश कर कुछ देवियाँ तृप्ति लाभ कर सकेंगी।

फिर भगवान् शंकरने इधर जब रुरुको मरा हुआ देखा, तब वे देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे।

भगवान् रुद्र बोले — देवि! आपकी जय हो। चामुण्डे! भगवती भूतापहारिणि एवं सर्वगते परमेश्वरि! आपकी जय हो। देवि आप त्रिलोचना, भीमरूपा, वेद्या, महामाया, महोदया, मनोजवा, जया, जृम्भा, भीमाक्षी, क्षुभिताशया, महामारी, विचित्राङ्गा, नृत्यप्रिया, विकराला, महाकाली, कालिका, पापहारिणी, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, भयानका, चामुण्डा, ज्वलमानास्या, तीक्ष्णदंष्ट्रा, महाबला, शवयानस्थिता, प्रेतासनगता, भीषणा, सर्वभूतभयंकरी, कराला, विकराला, महाकाला, करालिनी, काली, करालो, विक्रान्ता और कालरात्रि — इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। परमेष्ठी रुद्रने जब इस प्रकार देवीकी स्तुति की तब वे भगवती परम संतुष्ट हो गयीं। साथ ही उन्होंने कहा — 'देवेश! जो आपके मनमें हो, वह वर माँग लें।'

रुद्र बोले — "वरानने! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस स्तुतिके द्वारा जो व्यक्ति आपका स्तवन करे, देवि! आप उन्हें वर देनेकी कृपा करें। इस स्तुतिका नाम

त्रिशक्तिमाहात्म्यमें रौद्रीव्रत

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो रौद्रीशक्ति तें तपस्याका निश्चय कर 'नीलगिरि'पर गयी थीं और नका प्राकट्य रुद्रकी तमःशक्तिसे हुआ था, अब के व्रतकी बात सुनो। अखिल जगत्‌की रक्षाके क्षयसे वे दीर्घकालतक तपस्याके साधनमें लगी र्ीं और पञ्चाग्नि-सेवनका नियम बना लिया। इस कार उन देवीके तपस्या करते हुए कुछ समय बीत ानेपर 'रुरु'-नामक एक असुर उत्पन्न हुआ। जो

शोभने ! रुरुकी सेनाके रथ सूर्यके रथके समान थे और उनपर यन्त्रयुक्त शस्त्र सुसज्ज थे। ऐसे असंख्य रथोंपर उसके अनुगामी दैत्य हस्तत्राणसे सुरक्षित होकर चल पड़े इन असुर सैनिकोंने देवताओंके सैनिकोंकी शक्ति कुण्ठित कर दी और वह अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर इन्द्रकी नगरी अमरावतीपुरीके लिये चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर दानवराजने देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया और वह उनपर मुद्गरों,

साथ युद्ध करने लगीं और तत्काल असुरोंके सभी सैनिकोंका क्षणभरमें सफाया कर दिया । देवता अब पुनः लड़ने लग गये थे । कालरात्रिकी सेना तथा देवताओंकी सेना अब नयी शक्तिसे सम्पन्न होकर दैत्योंसे लड़ने लगीं और उन सभीने समस्त दानवोंके सैनिकोंको यमलोक भेज दिया । बस, अब उस महान् युद्धभूमिमें केवल महादैत्य 'रुरु' ही बच रहा था । वह बड़ा मायावी था । अब उसने 'रौरवी' नामक भयंकर मायाकी रचना की, जिससे सम्पूर्ण देवता मोहित होकर नींदमें सो गये । अन्तमें देवीने उस युद्ध-स्थलपर त्रिशूलसे दानवको मार डाला । शुभलोचने ! देवीके द्वारा आहत हो जानेपर 'रुरु'-दैत्यके चर्म (धड़) और मुण्ड—अलग-अलग हो गये । दानवराज 'रुरु'के चर्म और मुण्ड जिस समय पृथक् हुए, उसी क्षण देवीने उन्हें उठा लिया, अतः वे 'चामुण्डा' कहलाने लगीं । वे ही भगवती महारौद्री, परमेश्वरी, संहारिणी और 'कालरात्रि' कही जाती हैं । उनकी अनुचरी देवियाँ करोड़ोंकी संख्यामें बहुत सी हैं । युद्धके अन्तमें उन अनुगामिनी देवियोंने इन महान् ऐश्वर्यशालिनी देवीको—सब ओरसे घेर लिया और वे भगवती रौद्रीसे कहने लगीं—'हम भूखसे घबड़ा गयी हैं । कल्याणस्वरूपिणि देवि ! आप हमें भोजन देनेकी कृपा कीजिये ।'

इस प्रकार उन देवियोंके प्रार्थना करनेपर जब रौद्री देवीके ध्यानमें कोई बात न आयी, तब उन्होंने देवाधिदेव पशुपति भगवान् रुद्रका स्मरण किया । उनके ध्यान करते ही पिनाकपाणि परमात्मा रुद्र वहाँ प्रकट हो गये । वे बोले—'देवि ! कहो ! तुम्हारा क्या कार्य है ?'

देवीने कहा—देवेश ! आप इन उपस्थित देवियोंके लिये भोजनकी कुछ सामग्री देनेकी कृपा करें; अन्यथा ये बलपूर्वक मुझे ही खा जायँगी ।

रुद्रने कहा—देवेश्वरि ! महाप्रभे ! इनके खानेयोग्य वस्तु वह है—जो गर्भवती स्त्री दूसरी स्त्रीके पहने हुए वस्त्रको पहनकर अथवा विशेष करके दूसरे पुरुषका स्पर्शकर पाकका निर्माण करती है, वह इन देवियोंके लिये भोजनकी सामग्री है । अज्ञानी व्यक्तियोंद्वारा दिया हुआ बलिभाग भी ये देवियाँ ग्रहण करें और उसे पाकर सौ वर्षोंके लिये सर्वथा तृप्त हो जायँ । अन्य कुछ देवियाँ प्रसव-गृहमें छिद्रका अन्वेषण करें । वहाँ लोग उनकी पूजा करेंगे । देवेशि ! उस स्थानपर उनका निवास होगा । गृह, क्षेत्र, तड़ागों, वापियों और उद्यानोंमें जाकर निरन्तर रोती हुई जो स्त्रियाँ मनमारे बैठी रहेंगी, उनके शरीरमें प्रवेश कर कुछ देवियाँ तृप्ति लाभ कर सकेंगी ।

फिर भगवान् शंकरने इधर जब रुरुको मरा हुआ देखा, तब वे देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

भगवान् रुद्र बोले—देवि ! आपकी जय हो । चामुण्डे ! भगवती भूतापहारिणि एवं सर्वगते परमेश्वरि ! आपकी जय हो । देवि आप त्रिलोचना, भीमरूपा, वेद्या, महामाया, महोदया, मनोजवा, जया, जृम्भा, भीमाक्षी, क्षुभिताशया, महामारी, विचित्राङ्गा, नृत्यप्रिया, विकराला, महाकाली, कालिका, पापहारिणी, पाशहस्ता, दण्डहस्ता, भयानका, चामुण्डा, ज्वलमानास्या, तीक्ष्णदंष्ट्रा, महाबला, शवयानस्थिता, प्रेतासनगता, भीमगा, सर्वभूतभयंकरी, कराला, विकराला, महाकाला, करालिनी, काली, कराली, विक्रान्ता और कालरात्रि—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं; आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है । परमेष्ठी रुद्रने जब इस प्रकार देवीकी स्तुति की तब वे भगवती परम संतुष्ट हो गयीं । साथ ही उन्होंने कहा—'देवेश! जो आपके मनमें हो, वह वर माँग लें ।'

रुद्र बोले—'वरानने ! यदि आप प्रसन्न हैं तो इस स्तुतिके द्वारा जो व्यक्ति आपका स्तवन करें, देवि ! आप उन्हें वर देनेकी कृपा करें । इस स्तुतिका नाम

त्रिशक्तिमाहात्म्यमें रौद्रीव्रत

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो रौद्रीशक्ति मनमें तपस्याका निश्चय कर 'नीलगिरि'पर गयी थीं और जिनका प्राकट्य रुद्रकी तमःशक्तिसे हुआ था, अब उनके व्रतकी बात सुनो। अखिल जगत्‌की रक्षाके निश्चयसे वे दीर्घकालतक तपस्याके साधनमें लगी रहीं और पञ्चाग्नि-सेवनका नियम बना लिया। इस प्रकार उन देवीके तपस्या करते हुए कुछ समय बीत जानेपर 'रुरु'-नामक एक असुर उत्पन्न हुआ। जो महान् तेजस्वी था। उसे ब्रह्माजीका वर भी प्राप्त था। समुद्रके मध्यमें वनोंसे घिरी 'रत्नपुरी' उसकी राजधानी थी। सम्पूर्ण देवताओंको आतङ्कित कर वह दानवराज वहीं रहकर राज्य करता था। करोड़ों असुर उसके सहचर थे, जो एक-से-एक बढ़-चढ़कर थे। उस समय ऐश्वर्यसे युक्त वह 'रुरु' ऐसा जान पड़ता था, मानो दूसरा इन्द्र ही हो। बहुत समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् उसके मनमें लोकपालोंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। देवताओंके साथ युद्ध करनेमें उसकी स्वाभाविक रुचि थी, अतः एक विशाल सेनाका संग्रह कर जब वह महान् असुर रुरु युद्ध करनेके विचारसे समुद्रसे बाहर निकला, तब उसका जल बहुत जोरोंसे ऊपर उछलने लगा और उसमें रहनेवाले नक्र, घड़ियाल तथा मत्स्य घबड़ा गये। वेलाचलके पार्श्ववर्ती सभी देश उस जलसे आप्लावित हो उठे। समुद्रका अगाध जल चारों ओर फैल गया और सहसा उसके भीतरसे अनेक असुर विचित्र कवच तथा आयुधोंसे सुसज्जित होकर बाहर निकल पड़े एवं युद्धके लिये आगे बढ़े। ऊँचे हाथियों तथा अश्वोंपर आरूढ़ होकर वे असुर-सैनिक युद्धके लिये आगे बढ़े। उनके सात करोड़ एवं करोड़ोंकी संख्यामें पदाति [illegible] निकल पड़े।

शोभने ! रुरुकी सेनाके रथ सूर्यके रथके समान और उनपर यन्त्रयुक्त शस्त्र सुसज्ज थे। ऐसे असं[illegible] रथोंपर उसके अनुगामी दैत्य हस्तत्राणसे सुस[illegible] होकर चल पड़े इन असुर सैनिकोंने देवताओं[illegible] सैनिकोंकी शक्ति कुण्ठित कर दी और वह अ[illegible] चतुरङ्गिणी सेना लेकर इन्द्रकी नगरी अमरावतीपुर[illegible] लिये चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर दानवराजने देवताओं[illegible] साथ युद्ध आरम्भ कर दिया और वह उनपर मुद्[illegible] मुसलों, भयंकर बाणों और दण्ड आदि आयुधोंसे प्रह[illegible] करने लगा। इस युद्धमें इन्द्रसहित सभी देवता उ[illegible] समय अधिक देरतक टिक न सके और वे आहत [illegible] मुँह पीछे कर भाग चले। उनका सारा उत्सा[illegible] समाप्त हो गया तथा हृदय आतङ्कसे [illegible] गया। अब वे भागते हुए उसी नीलगिरि पर्वत[illegible] पहुँचे, जहाँ भगवती रौद्री तपस्यामें संलग्न होक[illegible] स्थित थीं। देवीने देवताओंको देखकर उच्चस्[illegible] कहा—'भय मत करो'।

देवी बोलीं—देवगण ! आपलोग इस प्रका[illegible] भीत एवं व्याकुल क्यों हैं ? यह मुझे तुरंत बतलाएँ।

देवताओंने कहा—'परमेश्वरि ! इधर देखिये ! यह 'रुरु' नामक महान् पराक्रमी दैत्यराज चला आ रहा है। इससे हम सभी देवता त्रस्त हो गये हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये।' यह देखकर देवी अट्टहासके साथ हँस पड़ीं। देवीके हँसने ही उनके मुखसे बहुत सी अन्य देवियाँ प्रकट हो गयीं, जिनसे मानो सारा विश्व भर गया। वे विरूप रूप एवं अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित थीं और अपने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, त्रिशूल तथा धनुष धारण किये हुए थीं। वे सभी करोड़ोंकी संख्यामें थीं तथा भगवती तामसीको [illegible]। वे सब दानवोंके

…नुसार ये रुद्रके भविष्यके कर्मसूचक नाम थे। …र 'कपाली' शब्द सुनकर रुद्रको क्रोध आ गया, …तः ब्रह्माजीके उस पाँचवें सिरको उन्होंने अपने …में हाथके अँगूठेके नखसे काट डाला, पर कटा …आ वह सिर उनके हाथमें ही चिपक गया। रुद्रने …ह्माजीकी शरण ली और बोले।

रुद्रने कहा—उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले …वन्! कृपया यह बताइये कि यह कपाल मेरे हाथसे …स प्रकार अलग हो सकेगा तथा इस पापसे मैं कैसे …क होऊँगा?

ब्रह्माजी बोले—रुद्रदेव! तुम नियमपूर्वक कापालिक …का अनुष्ठान करो। इसके आचरण करते रहनेपर … अनुकूल समय आयेगा, तब स्वयं अपने ही तेजसे … इस कपालसे मुक्त हो जाओगे।

अव्यक्त-मूर्ति ब्रह्माजीने जब रुद्रसे इस प्रकार कहा … महादेव पापनाशक महेन्द्रपर्वतपर चले गये। वहाँ …कर उन्होंने उस सिरको तीन भागोंमें विभाजित कर …ा। तीन खण्ड हो जानेपर भगवान् रुद्रने उसके …ड़ोंको भी अलग-अलग कर हाथमें लिया और उसका …पवीत बना लिया। इस प्रकार सात द्वीपोंवाली इस …वीपर विचरते हुए वे प्रतिदिन तीर्थोंमें स्नान करते …र फिर आगे बढ़ जाते थे। सर्वप्रथम उन्होंने समुद्रमें …न किया। इसके बाद गङ्गामें गोता लगाया। फिर … सरस्वती, गङ्गा-यमुनाका सङ्गम, शतद्रु, (सतलज) …नदी, देविका, वितस्ता, चन्द्रभागा, गोमती, सिन्धु, …भद्रा, गोदावरी, उत्तरगण्डकी, नैपाल, रुद्रमहालय, …वन, केदारवन, भद्रेश्वर होते हुए पवित्र क्षेत्र गयामें …वे। वहाँ फल्गु नदीमें स्नान कर उन्होंने पितरोंका …ण किया। इस प्रकार भगवान् रुद्र सारे विश्व-ब्रह्माण्ड- …चक्कर लगाते रहे। इस प्रकार उन्हें भ्रमण करते छः वर्ष बीत गये इसी बीच उनके परिधान, कौपीन और मेखला अलग हो गये। देवि! अब रुद्र नग्न और कापालिक-रूपमें हाथमें कपाल लिये प्रत्येक तीर्थमें घूमते रहे, किंतु वह अलग न हुआ। इसके बाद वे दो वर्षोंतक भूमण्डलके सभी पवित्र तीर्थोंमें पुनः भ्रमण करते रहे। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। फिर हरिहरक्षेत्रमें जाकर उन्होंने दिव्य नदी गङ्गा एवं देवाङ्गदकुण्डमें स्नानकर भगवान् सोमेश्वरकी विधिवत् पूजा की। फिर वे 'चक्र-तीर्थ'में गये और वहाँ स्नानकर 'त्रिजलेश्वर' महादेवकी आराधना की। तत्पश्चात् अयोध्या जाकर वे फिर वाराणसी पहुँचे और गङ्गामें स्नान करने लगे। सुन्दरि! जब वे गङ्गामें स्नान कर रहे थे, उसी क्षण उनके हाथसे कपाल गिर गया। वसुंधरे! तभीसे भूमण्डलपर वाराणसीपुरीमें यह उत्तम तीर्थ 'कपालमोचन' नामसे विख्यात हुआ। वहाँ मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक स्नान करता है तो उसकी शुद्धि हो जाती है। अब ब्रह्माजी देवताओंके साथ वहाँ आये और इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—विशाल नेत्रोंवाले रुद्र! अब तुम लोकमार्गमें सुव्यवस्थित होओ। हाथमें कपाल होनेसे व्यग्र-चित्त होकर तुम जो भ्रमण करते रहे, इससे तुम्हारा यह व्रत भूमण्डलपर जन-समाजमें 'नग्न-कापालिक-व्रत' नामसे विख्यात होगा। तुम जो पर्वतराज हिमालयपर भ्रमण करनेमें व्यस्त रहे, इसलिये देव! यह व्रत 'बाभ्रव्य' नामसे भी प्रसिद्ध होगा। अब इस तीर्थमें जो तुम्हारी शुद्धि हुई है, इसके कारण यह व्रत शुद्ध-शैव होगा और इसमें पापप्रशमन करनेकी शक्ति भरी रहेगी। देवसमुदायने आगे करके तुम्हें जो विधानके साथ पूज्य बनाया है, उस शास्त्रविधानकी सबके लिये व्याख्या करूँगा। इसमें कुछ अन्यथा विचार नहीं है। तुम्हारे द्वारा आचरित यह 'बाभ्रव्यव्रत', एवं

'त्रिप्रकार' होगा । जो भक्तिके साथ इसका पाठ करेगा, वह पुत्र, पौत्र, पशु और समृद्धिसे सम्पन्न हो जायगा । तीन शक्तियोंसे सम्बद्ध इस स्तुतिको जो श्रद्धा-भक्तिके साथ सुने, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जायँ और वह व्यक्ति अविनाशी पदका अधिकारी हो जाय ।"

ऐसा कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये । देवता भी स्वर्गको पधारे । वसुंधरे ! देवीकी तीन प्रकारकी उत्पत्ति युक्त 'त्रिशक्ति-माहात्म्य'का यह प्रसङ्ग बहुत श्रेष्ठ है । अपने राज्यसे च्युत राजा यदि पवित्रतापूर्वक इन्द्रियोंको वशमें करके अष्टमी, नवमी और चतुर्दशीके दिन उपवास कर इसका श्रवण करेगा तो उसे एक वर्षमें अपना निष्कण्टक राज्य पुनः प्राप्त हो जायगा । न्यायसिद्धान्तके द्वारा ज्ञात होनेवाली पृथ्वी देवि ! यह मैंने तुमसे 'त्रिशक्ति-सिद्धान्त'की बात बतलायी । इनमें सात्त्विकी एवं श्वेत वर्णवाली 'सृष्टि'देवीका सम्बन्ध ब्रह्मासे है । ऐसे ही वैष्णवी शक्तिका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे है । रौद्रीदेवी कृष्ण-वर्णसे युक्त एवं तमःसम्पन्न शिवकी शक्ति हैं । जो पुरुष स्वस्थचित्त होकर नवमी तिथिके दिन इसका श्रवण करेगा, उसे अतुल राज्यकी प्राप्ति होगी तथा वह सभी भयोंसे छूट जायगा । जिसके घरपर लिखा हुआ यह प्रसङ्ग रहता है, उसके घरमें भयंकर अग्निभय, सर्पभय, चोरभय, और राज आदिसे उत्पन्न भय नहीं होते । जो विद्वान् पुरुष पुस्तकरूपमें इस प्रसङ्गको लिखकर भक्तिके साथ इसकी पूजा करेगा, उसके द्वारा चर और अचर तीनों लोक सुपूजित हो जायँगे । उसके यहाँ बहुत-से पशु, पुत्र, धन-धान्य एवं उत्तम स्त्रियाँ प्राप्त हो जायँगी । यह स्तुति जिसके घरपर रहती है, उसके यहाँ प्रचुर रत्न, घोड़े, गौएँ, दास और दासियाँ—आदि सम्पत्तियाँ अवश्य प्राप्त हो जाती हैं ।

भगवान् वराह कहते हैं—भूतधारिणि ! यह रुद्रका माहात्म्य कहा गया है । मैंने पूर्णरूपसे तुम्हारे सामने इसका वर्णन कर दिया । चामुण्डाकी समग्र शक्तियोंकी संख्या नौ करोड़ है । वे पृथक्-पृथक् रूपसे स्थित हैं । इस प्रकार जो रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाली यह 'तामसी शक्ति चामुण्डा' कही गयी उसकी तथा वैष्णवी शक्तिके सम्मिलित भेद अठारह करोड़ हैं । इन सभी शक्तियोंके अध्यक्ष सर्वत्र विचरण करनेवाले भगवान् परमात्मा रुद्र ही हैं । जितनी ये शक्तियाँ हैं, रुद्र भी उतने ही हैं । महाभाग ! जो इन शक्तियोंकी आराधना करता है, उसपर भगवान् रुद्र संतुष्ट होते हैं और वे साधककी मनःकल्पित सारी कामनाएँ सिद्ध कर देते हैं । (अध्याय ९६)

रुद्रके माहात्म्यका वर्णन

भगवान् वराह कहते हैं—सुमुखि पृथ्वि ! अब तुम रुद्रके व्रतकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनो, जिसे जानकर प्राणी पापोंसे मुक्त हो जाता है । जिस समय ब्रह्माजीने पूर्वकालमें रुद्रका सृजन किया, उस समय उन रुद्रकी विभु, विरूपाक्ष और फिर तीसरी बार नीललोहित संज्ञा हुई । अव्यक्तजन्मा परमशक्तिशाली ब्रह्माने कौतूहलवश प्रकट होते ही रुद्रको कन्धेपर उठा लिया । उस अवसरपर पाँचवाँ सिर था, उससे आथर्वणमन्त्रका उच्चारण हो रहा था, जो इस प्रकार था –

कपालिन् रुद्र बभ्रोऽथ भव ! कैरात सुव्रत !
पाहि विश्वं विशालाक्ष कुमार वरविक्रम !!
(९७ । ५)

अर्थात् 'हे सुव्रत कपाली, बभ्रु, भव, कैरात, विशालाक्ष, कुमार और वरविक्रम-नामधारी रुद्र, आप विश्वकी रक्षा कीजिये ।' पृथ्वि ! इस मन्त्रके

इस प्रकार बातचीत होनेके पश्चात् भगवान् विष्णुने वराहका रूप धारण किया और इन्द्रने अपना वेष एक व्याधका बनाया और दोनों सत्यतपा ऋषिके पास पहुँचे । वराहवेषधारी विष्णु उन ऋषिके आश्रमके सामने आकर घूमने लगे । वे कभी दीखते और कभी अदृश्य हो जाते । इतनेमें धनुष-बाण हाथमें लिये हुए वधिक-वेषधारी इन्द्रने ऋषिके सामने आकर कहा—'भगवन् ! आपने यहाँ एक बहुत विशाल शूकर अवश्य देखा होगा । आप कृपापूर्वक मुझे बतलायें तो मैं उसका वध कर डालूँ, जिससे अपने आश्रित जीवोंका भरण-पोषण कर सकूँ ।'

वधिकके ऐसा कहनेपर सत्यतपा मुनि चिन्तामें पड़ गये और विचार करने लगे—'यदि मैं इस वधिकको सूअर दिखला दूँ तो यह उसे तुरंत मार डालेगा । यदि नहीं दिखाता तो इस वधिकका परिवार भूखसे महान् कष्ट पायगा, इसमें कोई संशय नहीं; क्योंकि यह वधिक अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भूखसे कष्ट पा रहा है । इधर इस सूअरको बाण लग चुका है और वह मेरे आश्रममें आ गया है,—ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये ?' इस प्रकार सोचते हुए, जब वे कोई निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि सहसा उनकी बुद्धिमें एक बात आ गयी—'गतिशील प्राणी आँखोंसे ही देखते हैं—देखना नेत्रेन्द्रियका ही कार्य है । बात बतानेवाली जीभ कुछ नहीं देखती । इस प्रकार देखनेवाली इन्द्रिय आँख है, जिह्वा नहीं, और जो जिह्वाका विषय है, उसे नेत्र तत्त्वतः प्रकाशित करनेमें असमर्थ है ।' अतः इस विषयमें अब मैं निरुत्तर होकर चुप रहूँगा । सत्यतपाके मनके इस प्रकारके निश्चयको जानकर वधिकरूपी इन्द्र और सूअररूप बने हुए विष्णु—इन दोनोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई । अतः वे दोनों महापुरुष अपने वास्तविक रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये । साथ ही सत्यतपा ऋषिसे यह वचन कहा—'ऋषिवर ! हम दोनों तुमपर बहुत प्रसन्न हैं । तुम परम श्रेष्ठ वर माँग लो ।' यह सुनकर उस ऋषिने कहा—'देवेश्वरो ! इस समय मेरे सामने आप लोगोंने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर साक्षात् दर्शन दिया, इससे बढ़कर पृथ्वीपर मुझे दूसरा कोई श्रेष्ठ वर नहीं दीखता हाँ, यदि आप बलपूर्वक वर देकर मुझे कृतार्थ करना चाहते हैं तो मैं यही वर माँगता हूँ—'इस पर्वकालमें जो व्यक्ति यहाँ सदा ब्राह्मणोंकी भक्तिपूर्वक एक मासतक लगातार अर्चना करे उसके सभी पाप नष्ट हो जायँ । यही नहीं, उसका संचित पाप भी भस्म हो जाय । साथ ही मुझे भी मोक्ष प्राप्त हो जाय ।'

वसुंधरे ! विष्णु और इन्द्र—दोनों देवता 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान हो गये । वे ऋषि वर पाकर सर्वत्र परमात्माको देखते हुए वहीं स्थिर रहे । इसी समय उनके गुरु आरुणि आते दिखायी पड़े, जो तीर्थोंमें घूमते हुए भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करके लौटे थे । मुनिवर आरुणिकी सत्यतपाने महान् भक्तिके साथ पूजा की, उनका चरण धोया और आचमन कराया तथा उन्हें गौएँ प्रदान कीं । जब आरुणिजी आसनपर बैठ गये और भलीभाँति जान गये कि मेरा यह शिष्य सिद्ध हो गया है तथा तपस्यासे इसके पाप भस्म हो गये हैं तो उन्होंने सत्यतपासे कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुत्र ! तपके प्रभावसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है । तुममें ब्रह्मभावकी स्थिति हो गयी है । वत्स ! अब उठो और मेरे साथ उस परम पदकी यात्रा करो, जहाँ जाकर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ।' तदनन्तर मुनिवर आरुणि और सत्यतपा—वे दोनों सिद्ध पुरुष भगवान् नारायणका ध्यान करके उनके श्रीविग्रहमें लीन हो गये । जो भी व्यक्ति इस विस्तृत पर्वाध्यायके एक पादका भी श्रवण करता है या किसी अन्यको सुनाता है, उसे भी अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है । (अध्याय ९८)

अनुक्रमसे शिष्योंको मण्डपमें प्रवेश करनेके लिये गुरु आज्ञा दें। शिष्यको हाथमें फल लेकर प्रवेश करना चाहिये। नौ भागोंवाले मण्डलमें क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान आदि दिशाओंमें लोकपालसहित इन्द्र, अग्निदेव, यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और रुद्रकी स्थापना तथा पूजा करे। मध्यभागमें परम प्रभु श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये।

पुनः कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर पत्रोंपर बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा समस्त पातकोंकी शान्ति करनेवाले वासुदेवकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ईशानकोणमें शङ्खकी, अग्निकोणमें चक्रकी, दक्षिणमें गदाकी और वायव्यकोणमें पद्मकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ईशानकोणमें मुसलकी एवं दक्षिणमें गरुड़की तथा देवेश विष्णुके वामभागमें बुद्धिमान् पुरुष लक्ष्मीकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रधान देवताके सामने धनुष और खड्गकी स्थापना करे। नवमदलमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर आठ दिशाओंमें विधानके अनुसार आठ कलश स्थापित कर बीचमें नवें प्रधान विष्णु-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। फिर उन कलशोंपर आठ लोकपालों तथा भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। साधकको यदि मुक्तिकी इच्छा हो तो विष्णुकलशसे, लक्ष्मीकी इच्छा हो तो इन्द्रकलशसे, प्रभूत संतानकी इच्छा हो तो अग्निकोणके कलशसे, मृत्युपर विजय पानेकी इच्छा हो तो दक्षिणके कलशसे, दुष्टोंका दमन करनेकी इच्छा हो तो निर्ऋतिकोणके कलशसे, शान्ति पानेकी इच्छा हो तो वरुणकलशसे, पाप-नाशकी इच्छा हो तो वायव्यकोणके कलशसे, धन-प्राप्तिकी इच्छा हो तो उत्तरके कलशसे तथा ज्ञानकी इच्छा एवं लोकपाल-पद पानेकी कामना हो तो वह रुद्रकलश-से स्नान करे। किसी एक कलशके जलसे स्नान करनेपर भी मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि साधक ब्राह्मण है तो उसे अव्याहत ज्ञान होता है। नवों कलशोंसे स्नान करनेसे तो मनुष्य पापमुक्त होकर साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य सर्वतः परिपूर्ण हो जाता है।

पूजाके अन्तमें गुरुकी आज्ञासे सबकी प्रदक्षिणा करे। फिर गुरुदेव प्राणायामसहित आग्नेयी एवं वारुणी-धारणाद्वारा विधिपूर्वक शिष्यका अन्तःकरण शुद्ध कर उसे सोमरससे आप्यायित कर दीक्षाके प्रतिज्ञा-वचन सुनायें। इस प्रकार ब्राह्मणों, वेदों, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपाल, ग्रहों, वैष्णव-पुरुषों और गुरुके सम्मान करनेवाले पुरुषको दीक्षाद्वारा शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

दीक्षाके अन्तमें प्रज्वलित अग्निमें—**'ॐ नमो भगवते सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा'**—इस सोलह अक्षरवाले मन्त्र-द्वारा हवनकी विधि है। गर्भाधान आदि संस्कारोंमें जैसी हवनकी क्रियाएँ होती हैं, वैसी ही यहाँ भी कर्तव्य हैं। हवनके बाद यदि दीक्षा-प्राप्त शिष्य किसी देशका राजा हो तो वह गुरुके लिये हाथी-घोड़ा, सुवर्ण, अन्न और गाँव आदि अर्पण करे। यदि दीक्षित साधक मध्यम श्रेणीका व्यक्ति है तो वह साधारण दक्षिणा दे।

दीक्षाके अन्तमें साधक पुरुष यदि वराहपुराण सुनता है तो उससे सभी वेद, पुराण और सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल प्राप्त होता है। पुष्कर-तीर्थ, प्रयाग, गङ्गा-सागर-सङ्गम, देवालय, कुरुक्षेत्र, वाराणसी, ग्रहण तथा विषुव योगमें उत्तम जप करनेवालेको जो फल होता है, उससे दूना फल जो दीक्षित पुरुष इस वराहपुराणको सुनता है, उसे प्राप्त होता है। प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी देवि! देवता लोग भी ऐसी कामना करते हैं कि कब ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा, जब भारतवर्षमें हमारा जन्म होगा और हम दीक्षा प्राप्त कर किसी

तिलधेनुका माहात्म्य

पृथ्वी बोलीं—भगवन् ! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शरीरसे जो आठ भुजाओंवाली गायत्री नामकी माया प्रकट हुई और जिसने वेत्रासुरके साथ युद्धकर उसका वध किया, उन्हीं देवीने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके विचारसे 'नन्दा' नाम धारण किया तथा उन्हीं देवीने महिषासुरका भी वध किया । वही देवी 'वैष्णवी' नामसे विख्यात हुईं । भगवन् ! यह सब कैसे क्या हुआ ? आप मुझे बतानेकी कृपा करें ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें इन्हीं देवीने मन्दरगिरिपर महिषासुर नामक दैत्यका वध किया । फिर उनके द्वारा विन्ध्यपर्वतपर नन्दारूपसे वेत्रासुर मारा गया । अथवा ऐसा समझना चाहिये कि वे देवी ज्ञानशक्ति हैं और महिषासुर मूर्तिमान् अज्ञान है ।

देवि ! अब मैं पाँच प्रकारके पातकोंका ध्वंस करनेवाला उपाय कहता हूँ, सुनो । भगवान् विष्णु देवताओंके भी देवता हैं । उनका यजन करनेसे पुत्र और धन प्राप्त होते हैं । इस जन्ममें जो पुरुष दरिद्रता, व्याधि और कुष्ठ-रोगसे दुःखी है, जिनके पास लक्ष्मी नहीं है, पुत्रका अभाव है, वह इस यज्ञके प्रभावसे तुरंत ही धनवान्, दीर्घायु, पुत्रवान् एवं सुखी हो जाता है । इसमें प्रधान कारण मण्डलमें विराजमान लक्ष्मी देवीके साथ भगवान् नारायणका दर्शन ही है । भगवान् नारायण परमदेवता हैं । देवि ! विधानपूर्वक जो उनका दर्शन करता है और कार्तिक महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन आचार्य-प्रदत्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन देवताका यजन करता है, अथवा सम्पूर्ण द्वादशी तिथियोंके दिन या संक्रान्ति एवं सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके अवसरपर गुरुके आदेशानुसार जो उनकी पूजा एवं दर्शन करता है, उसपर श्रीहरि तुरंत ही प्रसन्न हो जाते हैं । उसके पाप दूर भाग जाते हैं । साथ ही उसपर अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्ण भक्तिके अधिकारी हैं । गुरुको चाहिये जाति, शौच और क्रिया आदिके द्वारा एक वर्षतक उनकी परीक्षा करे । एक वर्षतक शिष्य गुरुमें श्रद्धा रखते हुए उनमें भगवान् विष्णुकी भावना करके अचल भक्ति करे । वर्ष पूरा हो जानेपर वह गुरुसे प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप तपस्याके महान् धनी पुरुष विराजमान हैं और मेरे सामने प्रत्यक्ष हैं । हम चाहते हैं कि आपकी कृपासे संसाररूपी समुद्रको पार करानेवाला ज्ञान प्राप्त हो जाय । साथ ही संसारमें सुख देनेवाली लक्ष्मी भी हमें अभीष्ट है ।'

विद्वान् पुरुष गुरुकी पूजा भी विष्णुके समान करे । श्रद्धालु पुरुष कार्तिकमासकी शुक्ला दशमी तिथिको दूधवाले वृक्षका मन्त्रसहित दन्तकाष्ठ ले और उससे मुँह धोये । फिर रात्रिभोजनके बाद साधक देवेश्वर भगवान् श्रीहरिके सामने सो जाय । रातमें जो स्वप्न दिखायी पड़े, उसे गुरुके सामने व्यक्त करना चाहिये और गुरुको भी इन स्वप्नोंमें कौन-सा शुभ है और कौन-सा अशुभ—इसपर विचार करना चाहिये । फिर एकादशीके दिन उपवास रहकर स्नान करके व्रती पुरुष देवालयमें जाय । वहाँ गुरुको चाहिये कि निश्चित की हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर सोलह पँखुड़ियोंवाला एक कमल तथा सर्वतोभद्र चक्र लिखे अथवा सफेद वस्त्रसे आठ पत्रवाला कमल बनाकर उसपर देवताओंको अङ्कित करे । उस चक्रको फिर यत्नसे उजले वस्त्रसे ऐसा आवेष्टित करे कि वह वस्त्र नेत्रबन्ध अर्थात् उस मण्डल-देवताकी प्रसन्नताका भी साधन बन जाय । क्योंके

अनुक्रमसे शिष्योंको मण्डपमें प्रवेश करनेके लिये गुरु आज्ञा दें। शिष्यको हाथमें फल लेकर प्रवेश करना चाहिये। नौ भागोंवाले मण्डलमें क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान आदि दिशाओंमें लोकपालसहित इन्द्र, अग्निदेव, यमराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और रुद्रकी स्थापना तथा पूजा करे। मध्यभागमें परम प्रभु श्रीविष्णुकी अर्चना करनी चाहिये।

पुनः कमलके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर पत्रोंपर बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा समस्त पातकोंकी शान्ति करनेवाले वासुदेवकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ईशानकोणमें शङ्खकी, अग्निकोणमें चक्रकी, दक्षिणमें गदाकी और वायव्यकोणमें पद्मकी स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। ईशानकोणमें मुसलकी एवं दक्षिणमें गरुड़की तथा देवेश विष्णुके वामभागमें बुद्धिमान् पुरुष लक्ष्मीकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रधान देवताके सामने धनुष और खड्गकी स्थापना करे। नवमदलमें श्रीवत्स और कौस्तुभमणिकी कल्पना करनी चाहिये। फिर आठ दिशाओंमें विधानके अनुसार आठ कलश स्थापित कर बीचमें नवें प्रधान विष्णु-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। फिर उन कलशोंपर आठ लोकपालों तथा भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। साधकको यदि मुक्तिकी इच्छा हो तो विष्णुकलशसे, लक्ष्मीकी इच्छा हो तो इन्द्रकलशसे, प्रभूत संतानकी इच्छा हो तो अग्निकोणके कलशसे, मृत्युपर विजय पानेकी इच्छा हो तो दक्षिणके कलशसे, दुष्टोंका दमन करनेकी इच्छा हो तो निर्ऋतिकोणके कलशसे, शान्ति पानेकी इच्छा हो तो वरुणकलशसे, पाप-नाशकी इच्छा [illegible] वायव्यकोणके कलशसे, धन-प्राप्तिकी [illegible] उत्तरके कलशसे तथा ज्ञानकी इच्छा एवं पानेकी कामना हो तो वह रुद्रकलश-से स्नान करे। किसी एक कलशके जलसे स्नान करनेपर भी मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि साधक ब्राह्मण है तो उसे अव्याहत ज्ञान होता है। नवों कलशोंसे स्नान करनेसे तो मनुष्य पापमुक्त होकर साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य सर्वतः परिपूर्ण हो जाता है।

पूजाके अन्तमें गुरुकी आज्ञासे सबकी प्रदक्षिणा करे। फिर गुरुदेव प्राणायामसहित आग्नेयी एवं वारुणी-धारणाद्वारा विधिपूर्वक शिष्यका अन्तःकरण शुद्ध कर उसे सोमरससे आप्यायित कर दीक्षाके प्रतिज्ञा-वचन सुनायें। इस प्रकार ब्राह्मणों, वेदों, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपाल, ग्रहों, वैष्णव-पुरुषों और गुरुके सम्मान करनेवाले पुरुषको दीक्षाद्वारा शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

दीक्षाके अन्तमें प्रज्वलित अग्निमें—'**ॐ नमो भगवते सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा**'—इस सोलह अक्षरवाले मन्त्र-द्वारा हवनकी विधि है। गर्भाधान आदि संस्कारोंमें जैसी हवनकी क्रियाएँ होती हैं, वैसी ही यहाँ भी कर्तव्य हैं। हवनके बाद यदि दीक्षा-प्राप्त शिष्य किसी देशका राजा हो तो वह गुरुके लिये हाथी-घोड़ा, सुवर्ण, अन्न और गाँव आदि अर्पण करे। यदि दीक्षित साधक मध्यम श्रेणीका व्यक्ति है तो वह साधारण दक्षिणा दे।

दीक्षाके अन्तमें साधक पुरुष यदि वराहपुराण सुनता है तो उसमें सभी वेद, पुराण और सम्पूर्ण मन्त्रोंके जपका फल प्राप्त होता है। पुष्कर-तीर्थ, प्रयाग, गङ्गा-सागर-सङ्गम, देवालय, कुरुक्षेत्र, वाराणसी, ग्रहण तथा विषुव योगमें उत्तम जप करनेवालेको जो फल होता है, उससे दूना फल जो दीक्षित पुरुष इस वराहपुराणको सुनता है, उसे प्राप्त होता है। प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी देवि! देवता लोग भी ऐसी कामना करते हैं कि कब ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा, जब भारतवर्षमें हमारा जन्म होगा और हम दीक्षा प्राप्त कर किसी

प्रकारसे षोडशकल्पात्मक वराहपुराण सुन सकेंगे तथा इस देहका त्यागकर उस परम स्थानको जायँगे, जहाँसे पुनः वापस नहीं होना पड़ता ।

अन्न-दानके विषयमें महात्मा वसिष्ठ एवं श्वेतका संवादात्मक एक बहुत पुराना इतिहास—सच्ची कथा कही जाती है । वसुंधरे ! इलावृतवर्षमें श्वेत नामके एक महान् तपस्वी राजा थे । उन नरेशने हरे-भरे वृक्षोंवाले वनसहित यह पृथ्वी दान करनेके विचारसे तपोनिधि वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन् ! मैं ब्राह्मणोंको यह समूची पृथ्वी दान करना चाहता हूँ । आप मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें ।' इसपर वसिष्ठजीने कहा—'राजन् ! अन्न सभी समयमें (पुण्यकालके सम्पर्क) सुख देनेवाला है । अतः तुम सदा अन्नदान करो । जिसने अन्नदान कर दिया, उसके लिये भूतलपर दूसरा दान कोई शेष न रहा । सम्पूर्ण दानोंमें अन्न-दान ही श्रेष्ठ है । अन्नसे ही प्राणी जीवन धारण करते और बढ़ते हैं, अतः राजन् ! तुम प्रयत्नपूर्वक अन्नदान करो ।' किंतु राजा श्वेतने वैसा न कर बहुत-से हाथी-घोड़े, रत्न, वस्त्र, आभूषण, धन-धान्यसे पूर्ण अनेक नगर एवं खजानेमें जो धन था, उसे ही ब्राह्मणोंको बुलाकर दान किया ।

एक दूसरी बात है—उत्तम धर्मके ज्ञाता राजा श्वेतने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे, जो तपस्वियोंमें सर्वोत्तम माने गये हैं, कहा—'भगवन् ! मैं एक हजार अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ ।' फिर राजा श्वेतने उनकी अनुमतिसे यज्ञ कर ब्राह्मणोंको बहुत-से रत्न, [illegible] और [illegible] दानमें दिये, किंतु उस समय [illegible] अन्न और [illegible] [illegible], क्योंकि वे अन्न और जलको तुच्छ वस्तु [illegible] [illegible] जब [illegible] [illegible]

परलोक पहुँचे तो वहाँ उन्हें भूख और विशेषकर सताने लगी । अतः वे अप्सराओंसहित [illegible] छोड़कर श्वेत पर्वतपर पहुँचे । उनके पूर्वजन्मका उस समय भस्म हो गया था । अतः भूखे राजा अपनी हड्डियोंको एकत्रकर चाटना प्रारम्भ किया । विमानपर चढ़कर वे स्वर्गमें गये । इसी प्रकार समय व्यतीत हो जानेके बाद उत्तम व्रती उन श्वेतको महात्मा वसिष्ठने अपनी हड्डियाँ चाटते देखा । उन्होंने कहा—'राजन् ! तुम अपनी हड्डि चाट रहे हो ?' महात्मा वसिष्ठके ऐसी बात कहनेपर श्वेतने उन मुनिवरसे ये वचन कहे—'भगवन् ! क्षुधा सता रही है । मुनिवर ! पूर्वजन्ममें मैंने अन्न जलका दान नहीं किया, अतः इस समय मुझे भूख दे रही है ।' राजा श्वेतके ऐसा कहनेपर मुनिवर वसिष्ठ पुनः उनसे कहा—'राजेन्द्र ! मैं तुम्हारे लिये क्या क अन्नदानका फल किसी प्राणीको नहीं मिलता । रत्न सुवर्णका दान करनेसे मनुष्य सम्पत्तिशाली तो बन स है, पर अन्न और जल देनेसे उसकी सभी काम सिद्ध हो जाती हैं; वह सर्वथा तृप्त हो जाता है । राज तुम्हारी समझमें अन्न अत्यन्त तुच्छ वस्तु थी । तुमने उसका दान नहीं किया ।

राजा श्वेत बोले—ब्रह्मन्, जिसने अन्नदान [illegible] किया, तृप्ति कैसे होगी ? यह मैं सिर झुकाकर आ पूछता हूँ, महामुने ! बतानेकी कृपा कीजिये ।

वसिष्ठजीने कहा—अनघ ! उसका एक उपाय उसे सुनो । पूर्वजन्ममें विनाश्व नामके एक बड़े प्र राजा हो चुके हैं, उन नरेशने कई अश्वमेध-यज्ञ किये यज्ञमें ब्राह्मणोंको बहुत-सी गौएँ, हाथी और धन दि [illegible] अन्नका दान नहीं किया । इसके बाद [illegible] [illegible] और वहाँ [illegible] [illegible]

लगे। फिर सूर्यके समान प्रकाशमान विमानपर चढ़कर वे स्वर्गसे मर्त्यलोकमें नीलपर्वतपर गङ्गा नदीके तटपर, जहाँ उनका निधन हुआ था, पहुँचे और अपने शरीरको चाटने लगे। उन्होंने वहाँ अपने 'होता' पुरोहितको देखकर पूछा—'भगवन्! मेरी क्षुधा मिटनेका उपाय क्या है?' होताने उत्तर दिया—'राजन्! आप 'तिलधेनु', 'जलधेनु', 'घृतधेनु' तथा 'रसधेनु'का दान करें—इससे क्षुधाका क्लेश तुरंत शान्त हो जायगा। जबतक सूर्य तपते हैं, चन्द्रमा प्रकाश पहुँचाते हैं, तबतकके लिये इससे आपकी क्षुधा शान्त हो जायगी।' ऐसी बात कहनेपर राजाने मुनिसे फिर इस प्रकार पूछा।

विनीताश्व बोले—ब्रह्मन्! 'तिलधेनु'-दानका विधान क्या है? विप्रवर! मैं यह भी पूछता हूँ कि उसका पुण्य स्वर्गमें किस प्रकार भोगा जाता है, आप कृपया यह सब हमें बतलायें।

होता बोले—राजन्! 'तिलधेनु'का विधान सुनो। (मानशास्त्रके अनुसार) चार कुडवका एक 'प्रस्थ' कहा गया है, ऐसे सोलह प्रस्थ तिलसे धेनुका स्वरूप बनाना चाहिये। इसी प्रकार चार 'प्रस्थ'का एक बछड़ा भी बनाना चाहिये। चन्दनसे उस गायकी नासिकाका निर्माण करे और गुड़से उसकी जीभ बनायी जाय। इसी प्रकार उसकी पूँछ भी फूलकी बनाकर फिर घण्टा और आभूषणसे अलंकृत करना चाहिये। ऐसी रचना करके सोनेके सींग बनवाये। उसकी दोहनी काँसेकी और खुर सोनेके हों, जो अन्य धेनुओंकी विधिमें निर्दिष्ट है। तिलधेनुके साथ मृगचर्म वस्त्र-रूपमें सर्वौषधिसहित मन्त्रद्वारा पवित्रकर उसका दान करना सर्वोत्तम है। दानके समय प्रार्थना करे—'तिलधेनो! तुम्हारी कृपासे मेरे लिये अन्न-जल एवं सब प्रकारके रस तथा दूसरी वस्तुएँ भी सुलभ हों। देवि! ब्राह्मणको अर्पित होकर तुम हमारे लिये सभी वस्तुओंका सम्पादन करो।' प्रतिग्रहीता ब्राह्मण कहे कि 'देवि! मैं तुम्हें श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर रहा हूँ, तुम मेरे परिवारका भरण-पोषण करो। देवि! तुम मेरी कामनाओंको पूरी करो। तुम्हें मेरा नमस्कार है।' राजन्! इस प्रकार प्रार्थना कर तिलधेनुका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो व्यक्ति श्रद्धाके साथ इस प्रसङ्गको सुनता या तिलधेनुका दान करता है अथवा दूसरेको दान करनेकी प्रेरणा करता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है। गोमयसे मण्डल बनाकर गोचर्म*-जितनी भूमिमें धेनुके आकारकी तिलधेनु होनी चाहिये।

(अध्याय ११)

जलधेनु एवं रसधेनु-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब 'जलधेनु'-दानका विधान बताता हूँ। किसी पवित्र दिनमें सबसे पहले 'गोचर्म'के बराबर भूमिको गायके गोबरसे लीपकर उसके मध्यभागमें जल, कपूर, अगरु और चन्दनयुक्त एक कलश स्थापित करे। फिर उस कलशमें जलधेनुकी भावना कर इसी प्रकारसे एक दूसरे कलशमें बछड़ेकी कल्पना करे। फिर वहाँ एक मन्त्रपुष्पोंसे युक्त वर्द्धनीपात्र रखे। पूर्वोक्तकलशमें दूर्वाङ्कुर, जटामासी, उशीर (खस)की जड़, कुष्ठसंज्ञक ओषधि, शिलाजीत, नेत्रवाला, पवित्र पर्वतकी रेणु, आँवले के फल, सरसों तथा सप्तधान्य आदि वस्तुओंको डालकर उसे पुष्पमालाओंसे सजाना चाहिये। राजन्!

* दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥
इस (पद्म० उत्त० ३३। ८-९, मार्क० पुरा० ४९। ३९, शातातप १। १५)के वचनानुसार—सात हाथका दण्ड, ३० दण्डका निवर्तन और दस निवर्तनका गोचर्ममान होता है।

राजन् ! यह 'रसधेनु'का दान सबसे उत्तम माना जाता है । इसका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया । महाराज ! तुम यह दान करो । इससे तुम्हें परम उत्तम स्थान प्राप्त होना अनिवार्य है । जो पुरुष भक्तिके साथ इस प्रसङ्गको सदा पढ़ता और सुनता है, उसके समस्त पाप दूर भाग जाते हैं और वह पुरुष विष्णुलोकको प्राप्त होता है ।

(अध्याय १०० १०१)

गुड़धेनु-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब गुड़-धेनुका प्रसङ्ग बताता हूँ, उसे सुनो । इसके दान करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं । लिपी हुई भूमिपर काला मृगचर्म और कुश बिछाकर उसपर वस्त्र फैला दे । फिर पर्याप्त गुड़ लेकर उससे धेनुकी आकृति तथा उसमें बछड़ेकी आकृति बनाये । फिर काँसेकी दोहनी रखकर उसका मुख सोनेका और उसकी सींग सोने तथा अगरुकी लकड़ीसे एवं मणि तथा मोतियोंसे दाँत बनाये । गर्दनकी जगह रत्न स्थापित करना चाहिये । उस धेनुकी नासिका चन्दनसे निर्माण करे और अगुरु काष्ठसे उसकी दोनों सींगें बनाये । उसकी पीठ ताँबेकी होनी चाहिये । उस धेनुकी पूँछ रेशमी वस्त्रसे कल्पित करे और फिर सभी आभूषणोंसे उसे अलंकृत करे । उसके पैरोंकी जगह चार ईख हों और खुर चाँदीके, फिर कम्बल और पट्टसूत्रसे उस धेनुको ढककर घण्टा और चँवरसे अलंकृत तथा सुशोभित करना चाहिये । श्रेष्ठ पत्तोंसे उसके कान तथा मक्खनसे उस धेनुके थनकी रचना करे । अनेक प्रकारके फलोंसे उस धेनुको भलीभाँति सुशोभित करना चाहिये । उत्तम गुड़धेनुका निर्माण चार भार गुड़के वजनसे बनाना चाहिये । अथवा इसके आधे भागसे भी उसका निर्माण सम्भव है । मध्य श्रेणीकी धेनु इसके आधे परिमाणकी मानी जाती है और एक भारमें अधम श्रेणीकी धेनुका निर्माण होता है । यदि पुरुष धनहीन हो तो वह अपनी शक्तिके अनुसार एक सौ आठ गुड़की डलियोंसे ही धेनु बना सकता है । घरमें सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार इससे अधिक मात्रामें भी बनानेका विधान है । फिर चन्दन और फूल आदिसे उसकी पूजा कर उसे ब्राह्मणको दान कर दे । चन्दन, पुष्प आदिसे पूजा करनेके पश्चात् घृतसे बना हुआ नैवेद्य एवं दीपक दिखाना अति आवश्यक है । अग्निहोत्री और श्रोत्रिय ब्राह्मणको गुड़धेनु देना उत्तम है । महाराज ! एक हजार सोनेके सिक्कोंसहित अथवा इसके आधे या आधेके आधेके साथ गुड़धेनुका दान किया जाय अथवा अपनी शक्तिके अनुसार सौ या पचास सिक्कोंके साथ भी दान किया जा सकता है । चन्दन और फूलसे पूजा करके ब्राह्मणको अँगूठी और कानके आभूषण भी देना चाहिये । साथमें छाता और जूता दान देना चाहिये । दानके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! तुममें अपार शक्ति है । शुभे ! तुम्हारी कृपासे सम्पत्ति सुलभ हो जाती है । देवि ! मैं जो दान कर रहा हूँ, इससे प्रसन्न होकर तुम मुझे भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देनेकी कृपा करो और लक्ष्मी आदि सभी पदार्थ मुझे सुलभ हो जायँ ।' ऐसी प्रार्थना करनेके उपरान्त पहले कहे हुए मन्त्रोंको स्मरण करे । दाताको पूर्व मुख बैठकर ब्राह्मणको गुड़धेनुका दान करना चाहिये । पुनः प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! मेरे द्वारा मन, वाणी और कर्मद्वारा अर्जित पाप तुम्हारी कृपासे नष्ट हो जायँ । जिस समय गुड़धेनुका दान होता है, उस अवसरपर जो इस दृश्यको देखते हैं, उन्हें वह उत्तम स्थान प्राप्त होता है, जहाँ दूध तथा घृत एवं दही बहानेवाली नदियाँ हैं । जिस दिव्यलोकमें ऋषि, मुनि और सिद्धोंका समुदाय शोभा पाता है, वहाँ इस धेनुके दाता पुरुष पहुँच जाते हैं । गुड़धेनु-सम्बन्धी

राजन् ! यह 'रसधेनु'का दान सबसे उत्तम माना जाता है । इसका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया । महाराज ! तुम यह दान करो । इससे तुम्हें परम उत्तम स्थान प्राप्त होना अनिवार्य है । जो पुरुष भक्तिके साथ इस प्रसङ्गको सदा पढ़ता और सुनता है, उसके समस्त पाप दूर भाग जाते हैं और वह पुरुष विष्णुलोकको प्राप्त होता है ।

(अध्याय १००-१०१)

गुड़धेनु-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अब गुड़-धेनुका प्रसङ्ग बताता हूँ, उसे सुनो । इसके दान करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं । लिपी हुई भूमिपर काला मृगचर्म और कुश बिछाकर उसपर वस्त्र फैला दे । फिर पर्याप्त गुड़ लेकर उससे धेनुकी आकृति तथा पासमें बछड़ेकी आकृति बनाये । फिर काँसेकी दोहनी रखकर उसका मुख सोनेका और उसकी सींग सोने अथवा अगरकी लकड़ीसे एवं मणि तथा मोतियोंसे दाँत बनाये । गर्दनकी जगह रत्न स्थापित करना चाहिये । उस धेनुकी नासिका चन्दनसे निर्माण करे और अगुरु काष्ठसे उसकी दोनों सींगें बनाये । उसकी पीठ ताँबेकी होनी चाहिये । उस धेनुकी पूँछ रेशमी वस्त्रसे कल्पित करे और फिर सभी आभूषणोंसे उसे अलंकृत करे । उसके पैरोंकी जगह चार ईख हों और खुर चाँदीके, फिर कम्बल और पट्ट-सूत्रसे उस धेनुको ढककर घण्टा और चँवरसे अलंकृत तथा सुशोभित करना चाहिये । श्रेष्ठ पत्तोंसे उसके कान तथा मक्खनसे उस धेनुके थनकी रचना करे । अनेक प्रकारके फलोंसे उस धेनुको भलीभाँति सुशोभित करना चाहिये । उत्तम गुड़धेनुका निर्माण चार गड़के बनाना चाहिये । निर्माण ९

कर उसे ब्राह्मणको दान कर दे । चन्दन, पुष्प आदिसे पूजा करनेके पश्चात् घृतसे बना हुआ नैवेद्य एवं दीपक दिखाना अति आवश्यक है । अग्निहोत्री और श्रोत्रिय ब्राह्मणको गुड़धेनु देना उत्तम है । महाराज ! एक हजार सोनेके सिक्कोंसहित अथवा इसके आधे या आधे-के आधेके साथ गुड़धेनुका दान किया जाय अथवा अपनी शक्तिके अनुसार सौ या पचास सिक्कोंके साथ भी दान किया जा सकता है । चन्दन और फूलसे पूजा करके ब्राह्मणको अँगूठी और कानके आभूषण भी देना चाहिये । साथमें छाता और जूता दान देना चाहिये । दानके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! तुममें अपार शक्ति है । शुभे ! तुम्हारी कृपासे सम्पत्ति सुलभ हो जाती है । देवि ! मैं जो दान कर रहा हूँ, इससे प्रसन्न होकर तुम मुझे भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देनेकी कृपा करो और लक्ष्मी आदि सभी पदार्थ मुझे सुलभ हो जायँ ।' ऐसी प्रार्थना करनेके उपरान्त पहले कहे हुए मन्त्रोंको स्मरण करे । दाताको मुख बैठकर ब्राह्मणको गुड़धेनुका दान करना । पुनः प्रार्थना करे—'गुड़धेनो ! मेरे द्वारा कर्मद्वारा अर्जित पाप तुम्हारी कृपासे : गुड़धेनुका दान होता है, दृश्यको देखते हैं, उन्हें वह है, जहाँ दूध तथा घृत एवं हैं । जिस दिव्यलोकमें ऋषि, शोभा पाता है, वहाँ इस जाते हैं । गुड़धेनु-सम्बन्धी

दानके प्रभावसे दस पूर्वके, दस पीछे होनेवाले पुरुष तथा एक वह इस प्रकार इक्कीस पुरुष विष्णुलोकको यथाशीघ्र पहुँच जाते हैं। अयन, विषुवयोग, व्यतीपात और दिन-क्षय--ये इस दानमें साधन कहे गये हैं। इन्हीं अवसरोंपर गुडधेनुके दानका विधान उत्तम है। महामते! सुपात्र ब्राह्मणको देखकर ही इस धेनुका श्रद्धाके साथ दान करना चाहिये। इससे भोग एवं मोक्ष सब सुलभ हो जाता है और समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा दाता सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। गुडधेनुकी कृपासे अविरत सौभाग्य इस लोकमें अतुल आयु एवं आरोग्य तथा ऐश्वर्य सुलभ हो जाते हैं। जो इस प्रसङ्गको पढ़ता है तथा कई योजन दूर रहकर भी इस गुणधेनु-दानकी सम्मति देता है, वह इस संसारमें दीर्घकालतक वैभवसे सम्पन्न रहकर अन्तमें स्वर्गमें निवास करता है। (अध्याय १०२)

शर्करा तथा मधु-धेनुके दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब शर्करा-धेनुका वर्णन सुनो। लिपी हुई भूमिपर काला मृगचर्म और कुश बिछाना चाहिये। राजन्! चार भार शर्करासे बनी हुई धेनु उत्तम कही जाती है। उसके चौथाई भागसे उसका बछड़ा बनाये। यदि दानकर्ता राजा हो तो वह आठ सौ भारसे ऊपरतककी धेनु बना सकता है। दाता अपनी शक्तिके ही अनुसार धेनुका निर्माण कराये, जिससे स्वयं अपनी आत्माको न कष्ट पहुँचे, न धनका ही समूल संहार हो जाय। धेनुकी चारों दिशाओंमें बीज स्थापित कर उसके मुखाग्र और सींग सोनेके तथा आँखें मोतीकी बनाये। गुड़से उसका मुखान्तर भाग तथा गिष्टसे उसकी जीभका निर्माण करे। गोकम्बलका निर्माण रेशमी सूत्रसे करे। कण्ठके भूषणोंसे उस धेनुको भूषित करे। ईखसे चरण, चाँदीसे खुर तथा मक्खनसे थनकी रचना करे। श्रेष्ठ पत्रोंसे उसके कान बनाकर उसे श्वेत चँवरसे अलंकृत करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके पासमें पञ्चरत्न रखकर उसे वस्त्रसे ढक देना चाहिये। फिर चन्दन और फूलोंसे अलंकृत करके वह गाय ब्राह्मणको दे दे। ... साधु स्वभाववाला हो। अयन, विषुव, व्यतीपात और दिनक्षय—इन पुण्य अवसरोंपर अपनी शक्तिके अनुसार इस प्रकारकी गौ बनाकर दान करना चाहिये। यदि सत्पात्र एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण घरपर आया हुआ दीख जाय तो आये हुए उस ब्राह्मणको धेनुके पुच्छभागका स्पर्श करते हुए दान करनेकी विधि है। पूर्व अथवा उत्तरकी तरफ मुख करके दाता बैठे। गौका मुख पूर्व और बछड़ेका मुख उत्तर हो। दान करते समय गोदानके मन्त्रोंको पढ़कर ही गौका दान करना चाहिये। दाता एक दिनतक शर्कराके आहारपर रहे और लेनेवाला ब्राह्मण भी इसी प्रकार तीन दिनतक रहे। यह शर्कराधेनु सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा अखिल कामनाओंको देनेमें पूर्ण समर्थ है। इस प्रकार दान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। शर्कराधेनुका दान करते समय जो लोग उसका दर्शन करते हैं, उन्हें परम गति मिलती है। जो मानव भक्तिपूर्वक इसे सुनता अथवा पढ़ता भी है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब सम्पूर्ण रोगोंके नाशक 'मधुधेनु'के दानकी विधि सुनो। लिपी हुई पवित्र भूमिपर काला मृगचर्म और कुशा बिछाकर सोलह घड़े मधुसे एक धेनु तथा उसके चौथाई भागसे बछड़ेकी आकृति बनाकर स्थापित करे। उस धेनुका मुख सोनेका, उसके शृङ्ग (सींग) अगुरु एवं चन्दनके, पीठ ताँबेकी और सास्ना (गलकम्बल) रेशमी सूतके बनाये। उसके चरण ईखके हों। फिर उजले कम्बलसे उस धेनुको ढककर गुड़से उसके मुखकी तथा शर्करासे जिह्वाकी आकृति बनानी चाहिये। उसके ओंठ पुष्पके और दाँत फलोंके बने हों। वह कुशाके रोयें तथा चाँदीके खुरोंसे सुशोभित हो और उसके कान श्रेष्ठ पत्तोंसे बनाने चाहिये। फिर उसके चारों दिशाओंमें सप्तधान्यके साथ तिलसे भरे हुए चार पात्र रखने चाहिये। फिर दो वस्त्रोंसे उसको ढककर कण्ठके आभूषणसे उसे अलंकृत कर दे। काँसेकी दोहनी बनाकर चन्दन और फूलोंसे उस धेनुकी पूजा करनी चाहिये। अयन, विषुव, व्यतीपात, दिनक्षय, संक्रान्ति और ग्रहणके अवसरपर इस धेनुके दानका विशेष महत्त्व है, अथवा अपनी इच्छासे इसे सभी कालमें सम्पादित किया जा सकता है। द्रव्य, ब्राह्मण और सम्पत्तिको देखकर दानका प्रतिपादन करना चाहिये। दान लेनेवाला ब्राह्मण दरिद्र, विद्याभ्यासी, अग्निहोत्री, वेद-वेदान्तका पारगामी तथा आर्यावर्तदेशमें उत्पन्न हुआ होना चाहिये। धेनुकी पूँछभागका स्पर्श करके हाथमें जल और दक्षिणा लेकर चन्दन और धूपसे पूजा कर फिर दो वस्त्रोंसे ढककर अपनी शक्तिके अनुसार अन्नसहित उसका दान कर दे, कंजूसी न करे। सभी विधि जलपूर्वक होनी चाहिये। ब्राह्मणको दान करनेके पूर्व दाता इस प्रकार प्रार्थना करे—'मधुधेनो! तुम्हें मेरा नमस्कार है। तुम्हारी कृपासे मेरे पितर और देवतागण प्रसन्न हो जायँ।' गृहीता कहे—'देवि! मैं विशेष रूपसे कुटुम्बकी रक्षाके लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ। मधुधेनो! तुम कामदुहा हो। मेरी कामनाओंको पूर्ण करो। तुम्हें मेरा नमस्कार।' 'मधुवाता०*' (ऋक्संहि० १।९०।६-८) इस मन्त्रको पढ़कर इस धेनुका दान करना चाहिये। महाराज! दानके पश्चात् छाता और जूता भी देना चाहिये। राजन्! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो 'मधुधेनु'का दान करता है, वह एक दिन खीर और मधुके आहारपर रहे। दान लेनेवाले ब्राह्मणको मधु और खीरके आहारपर तीन रातें व्यतीत करनी चाहिये। इसका दाता दस पूर्वजों और आगे होनेवाली दस पीढ़ियों एवं स्वयं आप—इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियोंको तारकर भगवान् विष्णुके स्थानमें पहुँचता है। जो मानव इस प्रसङ्गको श्रद्धाके साथ सुनता अथवा सुनाता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है। (अध्याय १०३-१०४)

'क्षीरधेनु' तथा 'दधिधेनु'-दानकी विधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब क्षीर-धेनु-दानकी विधि सुनो—राजेन्द्र! गायके गोबरसे लिपी गयी पवित्र भूमिपर 'गोचर्म'मात्र प्रमाणमें सब ओर कुशाएँ बिछा दे। उसके ऊपर चित्रकी पुरुष, कृष्णमृगका चर्म रखे। उसपर गायके गोबरसे एक विस्तृत कुण्डिकाका निर्माण करे और वहाँ दूधसे भरा हुआ एक घड़ा रखे। उसके चौथाई भागवाला कलश बछड़ेके स्थानमें रखे, जिसका मुख सोनेका एवं सींग चन्दन तथा अगुरुकाष्ठके बने हों। कानोंके स्थानमें वृक्षके उत्तम पत्ते रखे। इस कुम्भके ऊपर तिलका पात्र रखनेका विधान है। गुड़से उसके मुखकी, शर्करासे जिह्वाकी, उत्तम फलोंसे दाँतोंकी और मोतियोंसे आँखोंकी

* यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। (ऋक्० १।९०।६-८, यजु. १३।२७-२९)।

रचना करनी चाहिये । उसके ईखके चरण, कुशके रोयें और ताँबेकी पीठ बनायी जाय । सफेद कम्बलसे उसका गलकम्बल बनाये और काँसेकी दोहनी उसके पासमें रख दे । रेशमके सूतोंसे उसकी पूँछ तथा मक्खनसे उसका थन बनाये और उसके सींग सोनेके एवं खुर चाँदीके हों । फिर पासमें पञ्चरत्न रखे । चारों दिशाओंमें तिलसे भरे हुए चार पात्र तथा सभी दिशाओंमें सप्तधान्य रखनेका नियम है । इस प्रकारके लक्षणोंसे सम्पन्न क्षीर-धेनुकी कल्पना करनी चाहिये । फिर दो वस्त्रोंसे ढककर चन्दन और फूलोंसे उसकी पूजा करनी चाहिये । उसे वस्त्र आदिसे अलङ्कृत करके मुद्रिका और कानके कुण्डलसे भी सजाये । तत्पश्चात् धूप-दीप देकर वह क्षीरधेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे । दानके समय खड़ाऊँ, जूते और छाता भी दे । 'आप्यायस्व'० (सं० आर० ३ । १७) इस वेदोक्त मन्त्रसे प्रार्थना करनेका नियम है । राजन् ! पूर्वोक्त **'आश्रयः सर्वभूतानाम्०'** तथा **'आप्यायस्व समाङ्गानि०** इन मन्त्रोंको क्षीरधेनुका दान लेनेवाला ब्राह्मण भी पढ़े । यह इस दानकी विधि कही गयी है । इस प्रकार दी जानेवाली धेनुका जो दर्शन करते हैं, उन्हें भी परमगति प्राप्त होती है । इस दानके साथ अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार अथवा सौ सोनेके सिक्के देने चाहिये । महाराज ! 'क्षीर-धेनु' देनेसे जो फल होता है, अब उसे सुनो—इसका दाता साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें स्थान पाता है । फिर वह उत्तम माला और चन्दनसे सुशोभित होकर अपने पिता-पितामह आदिके साथ दिव्य विमानमें सवार होकर ब्रह्मलोकको जाता है । वहाँ वह बहुत दिनोंतक आनन्दका अनुभव करके फिर सूर्यके समान प्रकाशमान उत्तम विमानपर सवार होकर वह विष्णुलोकमें जाता है । जाते समय मार्गमें अप्सराएँ उसकी संगीत और वाद्योंसे सेवा करती हैं । वह विष्णुभगवान्‌में बहुत दिनोंतक श्रीविष्णुमें ही लीन हो जाता है । राजन् ! इस 'क्षीरधेनु'के माहात्म्यको सुनता है अथवा पढ़ता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णु जाता है ।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन् ! अ 'दधि-धेनु'का विधान बताता हूँ, सुनो । पहले 'गोचर्म'क प्रमाणयुक्त पृथ्वीको लीपकर उसे सुशोभित कर ले और उसपर कुश बिछा देना फिर उसपर काला मृगचर्म और कम्बल पृथ्वीपर सप्तधान्य बिखेर दे और उसके ऊपर भरा हुआ एक घड़ा रखे । उसके चौथाई बछड़ेके लिये छोटा कलश रखनेका विधान है । उसके मुखकी शोभा बनाये और दो वस्त्रोंसे आ करके फूल और चन्दनसे उसकी पूजा करे । त जो कुलीन एवं साधु स्वभावका हो तथा क्षमा गुणोंसे युक्त हो—ऐसे बुद्धिमान् ब्राह्मणको वह द दान कर दे । धेनुके पुच्छभागमें बैठकर यह सम्पन्न करनी चाहिये । अँगूठी और कानके भू अलंकृतकर खड़ाऊँ, जूता और छाता **'दधिक्राव्णोरकारिषं०'** (ऋक्० ४ । ३९ । ६) यह मन्त्र पढ़कर भलीभाँति सुपूजित 'दधिधेनु'का करे । राजेन्द्र ! जिस दिन यह दधिमयी धेनु दे, दिन दही खाकर ही रह जाय । राजन् ! यजमान दिन दहीके आहारपर रहे और ब्राह्मणको तीन रात्रियों दहीके आहारपर रहना चाहिये । जो दधिधेनुके द करते समय इस दृश्यको देखते हैं, उनको परम पद प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इस प्रसङ्ग सुनता अथवा किसी दूसरेको सुनाता है, वह भी अश्वमे यज्ञके फलको प्राप्तकर विष्णुलोकमें चला जाता है ।

(अध्याय १०५-१०६

'नवनीतधेनु' तथा 'लवणधेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी बोले—राजन् ! अब 'नवनीत-धेनु'के दानकी विधि सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट सकता है। 'गोचर्मप्रमाण'की भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर काला मृगचर्म बिछाकर दाईं ओर वजनका मक्खनसे भरा हुआ एक बड़ा घड़ा स्थापित करे। उसके उत्तर दिशामें चतुर्थांश भागवाला एक कलश बछड़ेके प्रतिनिधिस्वरूप रखे। राजन् ! उस पर ही सोनेकी सींग और सुन्दर मुखकी रचना करनी चाहिये। मोतियोंसे उसके नेत्र तथा गुड़से भी बनाये। फलोंद्वारा उसके होंठ, फलोंद्वारा दाँत तथा स्वच्छ सूत्रोंद्वारा उसका गलकम्बल बनाये, अथवा शर्करासे उसकी जीभ एवं रेशमी सूत्रोंसे उसके गलकम्बलका निर्माण करे। राजन् ! मक्खनसे उसका थन बनाये, ईखसे चरण, उसकी ताम्रमय पीठ, रौप्यमय खुरकी बनाकर दर्भमय रोमोंसे उस धेनुको अलंकृत करे। पासमें पञ्चरत्न रखकर उसके चारों ओर तिलसे भरे हुए चार पात्र रख दिये जायँ। उस कलश (रूपी गौ)-को दो वस्त्रोंसे ढककर चन्दन और फूलसे सुशोभित करे। फिर चारों दिशाओंमें दीपक प्रज्वलित कर वह गौ ब्राह्मणको अर्पण कर दे। पूर्वोक्त धेनुओंके विषयमें जो मन्त्र कहे गये हैं, उन्हीं मन्त्रोंका यहाँ भी जप करना चाहिये। साथमें इतना अधिक कहे—देवि ! पूर्व समयमें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने मिलकर समुद्रका मन्थन किया था। उस अवसरपर यह दिव्य अमृतमय पवित्र नवनीत निकला, जिससे सम्पूर्ण प्राणियोंकी तृप्ति होती है। ऐसे नवनीतको मेरा नमस्कार ! ऐसा कहकर परिवारवाले ब्राह्मण-को वह गौ देना चाहिये। धेनु देनेके पश्चात् दोहनी-पात्र और उसके उपकरण दे तथा उस गौको ब्राह्मणके घरतक पहुँचा दे। राजन् ! इस धेनुका दान लेनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि उस दिन वह हविष्य तथा रसपर ही रह जाय और देनेवाला भी इसी प्रकार तीन दिनोंतक रहे। राजन् ! धेनुदान करते समय इस दृश्यको देखनेवाला भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है। वह मानव अपने पहले हुए पितरों तथा आगे होनेवाले संततियोंके साथ प्रलयपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है। जो भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनता तथा सुनाता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकमें सम्मानित होता है।

पुरोहित होताजी बोले—राजेन्द्र ! अब 'लवणधेनु' दानका प्रसङ्ग सुनो। मनुष्यको चाहिये कि वह एक मन वजनके नमकसे एक धेनु बनाकर लिपी हुई पवित्र भूमिपर मृगचर्मके ऊपर कुशा बिछाकर उसपर इस लवणमयी धेनुकी स्थापना करे। साथमें चार सेर नमकका एक बछड़ा भी बनाना चाहिये, जिसके चरण ईखसे बने हों। उसके मुँह और सींग सोनेके तथा खुर चाँदीके होने चाहिये। राजन् ! उसके मुखका अन्तर्भाग गुड़का, दाँत फलके, जीभ शर्कराकी, नासिका चन्दनकी, आँखें रत्नकी, कान पत्तोंके, कोख श्रीखण्डकी, थन नवनीतके, पुच्छ सूत्रमय, पृष्ठ ताम्रमय और उसके रोयें कुशके हों। राजेन्द्र ! पासमें काँसेकी दोहिनीपात्र भी रखना चाहिये। फिर घण्टा और आभूषणोंसे उस धेनुको भूषित करे। चन्दन, फूल और धूप आदिसे विधिपूर्वक उसकी पूजा कर दो वस्त्रोंसे ढककर फिर उसे ब्राह्मणको अर्पण कर दे। नक्षत्र और ग्रहोंद्वारा कष्ट होनेपर मनुष्य किसी समय भी लवणधेनुका दान कर सकता है। वैसे ग्रहण, संक्रान्तिकाल, व्यतीपात योग और अयन बदलते समय इसके दानकी विशेष विधि है। दान ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण साधु-स्वभावका,

रचना करनी चाहिये। उसके ईखके चरण, कुशाके रोयें और ताँबेकी पीठ बनायी जाय। सफेद कम्बलसे उसका गलकम्बल बनाये और काँसेकी दोहनी उसके पासमें रख दे। रेशमके सूतोंसे उसकी पूँछ तथा मक्खनसे उसका थन बनाये और उसके सींग सोनेके एवं खुर चाँदीके हों। फिर पासमें पञ्चरत्न रखे। चारों दिशाओंमें तिलसे भरे हुए चार पात्र तथा सभी दिशाओंमें सप्तधान्य रखनेका नियम है। इस प्रकारके लक्षणोंसे सम्पन्न क्षीर-धेनुकी कल्पना करनी चाहिये। फिर दो वस्त्रोंसे ढककर चन्दन और फूलोंसे उसकी पूजा करनी चाहिये। उसे वस्त्र आदिसे अलंकृत करके मुद्रिका और कानके कुण्डलसे भी सजाये। तत्पश्चात् धूप-दीप देकर यह क्षीरधेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे। दानके समय खड़ाऊँ, जूते और छाता भी दे। 'आप्यायस्व'० (तै० आर० ३।१७) इस वेदोक्त मन्त्रसे प्रार्थना करनेका नियम है। राजन्! पूर्वोक्त 'आश्रयः सर्वभूतानाम्०' तथा 'आप्यायस्व ममाङ्गानि०' इन मन्त्रोंको क्षीरधेनुका दान लेनेवाला ब्राह्मण भी पढ़े। यह इस दानकी विधि कही गयी है। इस प्रकार दी जानेवाली धेनुका जो दर्शन करते हैं, उन्हें भी परमगति प्राप्त होती है। इस दानके साथ अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार अथवा सौ सोनेके सिक्के देने चाहिये। भगवान्! 'क्षीर-धेनु' देनेसे जो फल होता है, अब उसे सुनें — इसका दाता साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें [illegible] है। फिर वह उत्तम [illegible] और [illegible] सुशोभित होकर अपने पिता-पितामह आदिके साथ दिव्य [illegible] होकर ब्रह्मलोकको जाता है। वहाँ वह बहुत दिनोंतक आनन्दका अनुभव करके फिर [illegible] [illegible] [illegible] होकर [illegible] विष्णुलोकमें जाता है। [illegible] [illegible] स्त्रीके [illegible] और [illegible] [illegible] करती हैं। वह विष्णुभवनमें बहुत दिनोंतक रहकर श्रीविष्णुमें ही लीन हो जाता है। राजन्! जो इस 'क्षीरधेनुके' प्रसङ्गको सुनता है अथवा भक्ति[illegible] पढ़ता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है।

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब मैं 'दधि-धेनु'का विधान बताता हूँ, सुनो। पहले [illegible] 'गोचर्म'के प्रमाणयुक्त पृथ्वीको लीपकर उसे [illegible] सुशोभित कर ले और उसपर कुशा बिछा देना चाहिये। फिर उसपर काला मृगचर्म और कम्बल बि[illegible] पृथ्वीपर सप्तधान्य बिखेर दे और उसके ऊपर [illegible] भरा हुआ एक घड़ा रखे। उसके चौथाई भा[illegible] बछड़ेके लिये छोटा कलश रखनेका विधान है। [illegible] उसके मुखकी शोभा बनाये और दो वस्त्रोंसे आच्छा[illegible] करके फूल और चन्दनसे उसकी पूजा करे। तत्प[illegible] जो कुलीन एवं साधु स्वभावका हो तथा क्षमा आ[illegible] गुणोंसे युक्त हो ऐसे बुद्धिमान् ब्राह्मणको वह दधि[illegible] दान कर दे। धेनुके पुच्छभागमें बैठकर यह वि[illegible] सम्पन्न करनी चाहिये। अँगूठी और कानके भूषण अलङ्कारसे सजाकर, जूता और छाता दे[illegible] 'दधिक्राव्णोऽकारिषं०' (ऋ० ४।३९।६) यह मन्त्र पढ़कर भलीभाँति सुपूजित 'दधिधेनु'का दा[illegible] करे। राजेन्द्र! जिस दिन यह दधिमयी धेनु दे, उस दिन दही खाकर ही रह जाय। राजन्! यजमान एक दिन दहीके आहारपर रहे और ब्राह्मणको तीन रात्रियोंतक दहीके आहारपर रहना चाहिये। जो दधिधेनुका दान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, उसको परम पद प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिसे इस प्रसङ्गको सुनता अथवा किसी दूसरेको सुनाता है, वह भी अश्वमेध [illegible] [illegible] विष्णुलोकमें चला जाता है।

(अध्याय १०५-१०६)

शुद्ध कुलमें उत्पन्न, बुद्धिमान्, वेद और वेदान्तका पूर्ण विद्वान्, श्रोत्रिय और अग्निहोत्री होना चाहिये तथा राजन्! ऐसे ब्राह्मणको, जो अमत्सरी—(किसीसे द्वेष न करता) हो, उसे यह गौ देनी चाहिये। इस प्रकार पूजा करके मन्त्र पढ़कर गौके पूँछकी ओर बैठकर गौका दान करना चाहिये। साथ ही छाता-जूता भी दान करना चाहिये। फिर उसे दो वस्त्रोंसे ढककर अँगूठी, कानके कुण्डलोंसे पूजा करके दक्षिणा और कम्बल प्रदान करे। पहले कही हुई विधिका पालन करनेके साथ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे ब्राह्मणकी विधिवत् पूजाकर ब्राह्मणके हाथमें दक्षिणासहित गौकी पूँछ पकड़ा दे। साथ ही दान करते समय कहना चाहिये—'ब्राह्मणदेव! आप इस रुद्ररूपी धेनुको स्वीकार करें। आपको मेरा नमस्कार है।' फिर गौसे प्रार्थना करे—'परमनन्दनीये! रुद्ररूपिणी गौ! तुम्हें नमस्कार। तुम मेरा मनोरथ पूर्ण करो। लवणधेनु दान कर दाता एक दिन लवणके आहारपर रहे और लेनेवाले ब्राह्मणको तीन रातोंतक लवणके आहारपर रहना चाहिये। दाता इस दानके फलस्वरूप, जहाँ भगवान् शंकरका निवास है, उसे प्राप्त कर लेता है। जो भक्तिसे इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् रुद्रके लोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १०७-१०८)

'कार्पास' एवं 'धान्य-धेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब कार्पासमयी धेनुके दानकी विधि बताता हूँ, जिसके प्रभावसे मनुष्य उत्तम इन्द्रलोकको प्राप्त करता है। विषुवयोग, अयनके परिवर्तनका समय, युगादितिथि, ग्रहणके अवसर, ग्रहोंकी पीड़ा दुःस्वप्न-दर्शन तथा अरिष्टकी सम्भावना होनेपर मनुष्योंके लिये यह कार्पासधेनुका दान श्रेयस्कर होता है। राजन्! दानके लिये गायके गोबरसे लिपी भूमिपर कुश बिछाकर उसपर तिल बिखेरकर बीचमें वस्त्र और मालासे सुशोभित (कपासकी बनी) धेनुकी स्थापना करनी चाहिये। धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे श्रद्धापूर्वक (भक्तिभावित होकर) उसकी पूजा करनी चाहिये। [illegible] कपाससे [illegible] रचना करे। दो भारसे [illegible] उत्तम [illegible] हुई धेनु उत्तम [illegible] है। [illegible] है। [illegible] सोनेकी सींग, चाँदीका खुर, अनेक फलोंके दाँत और रत्न गर्भसे युक्त धेनु होनी चाहिये। श्रद्धाके साथ ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण कार्पासमयी धेनु बनाकर उसका मन्त्रोंके द्वारा आह्वान एवं प्रतिष्ठाकर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक गौको हाथसे स्पर्श करके दान करना चाहिये। पूर्वोक्त विधिका पालन करते हुए मन्त्र पढ़कर दान करे। मन्त्रका भाव इस प्रकार है—'देवि! तुम्हारे अभावमें किसी भी देवताका कार्य नहीं चलता, यदि यह बात सत्य है तो देवि! तुम इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो! मेरा उद्धार करो!'

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब धान्यमयी धेनुका प्रसङ्ग सुनो, जिससे सभी पापोंसे [illegible] संयुक्त हो जाता है। विषुवयोग, अयनके परिवर्तनके समय अथवा कार्तिककी पूर्णिमाके शुभ समयमें इस दानका विशेष महत्त्व है। इसके दान करनेसे जैसे [illegible] उबार होता है, वैसे ही मनुष्य पापोंसे

जाता है। अब उसी धेनुदानकी उत्तम विधि मैं कहता हूँ। राजेन्द्र! दस धेनु-दान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एक धान्यमयी धेनुके दानसे सुलभ हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पहलेकी भाँति गोबरसे लिपी हुई पवित्र भूमिपर काले मृगका चर्म बिछाकर उसपर इस धान्य-धेनुकी स्थापना कर उसकी पूजा करे। चार दोन, छः मन वजनके अन्नसे बनी हुई धेनु उत्तम और दो दोन, तीन मन अन्नसे बनी धेनु मध्यम मानी गयी है। सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, रत्न-गोमेद तथा अगरु एवं चन्दनसे उस गायकी नासिका, मोतीसे दाँत तथा घी और मधुसे उस गायके मुखकी रचना करे। श्रेष्ठ वृक्षके पत्तोंसे कानकी रचनाकर काँसेका दोहनीपात्र उसके साथमें रखना चाहिये। उसके चरण ईखके और पूँछ रेशमी वस्त्रके बनाये। फिर रत्नोंसे भरे अनेक प्रकारके फलोंको उसके पास रखे। खड़ाऊँ, जूता, छाता, पात्र तथा दर्पण भी वहाँ रखने चाहिये। पहलेके समान सभी अङ्गोंकी कल्पना करे और मधुसे उस गायका सुन्दर मुख बनाये। पुण्यकाल उपस्थित होनेपर पहले-जैसे ही दीपक आदिसे पूजा करनेके पश्चात् सर्वप्रथम स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर तीन बार उस गायकी प्रदक्षिणा करे और दण्डकी भाँति उसके सामने लेटकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'ब्राह्मणदेवता! आप महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, वेद और वेदान्तके पारगामी विद्वान् हैं। द्विजश्रेष्ठ! मेरी दी हुई यह गाय प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। इस दानके प्रभावसे देवाधिदेव भगवान् मधुसूदन मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् गोविन्दके पास जो लक्ष्मी विराजती हैं, अग्निकी पत्नी स्वाहा, इन्द्रकी शची, शिवकी गौरी, ब्रह्माजीकी पत्नी गायत्री, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना, सूर्यकी प्रभा, बृहस्पतिकी बुद्धि तथा मुनियोंकी जो मेधा है, वे सभी यहाँ धान्यमयी अन्नपूर्णादेवी धेनुरूपमें मेरे पास विराजमान हैं।' इस प्रकार कहकर वह धेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

इस प्रकार गोदान करनेके बाद दाता व्यक्ति ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा कर क्षमा माँगे। राजन्! धन और रत्नोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीके दानसे अधिक पुण्यफल इस धान्यधेनुके दानसे मिलता है। राजेन्द्र! इससे मुक्ति और भुक्तिरूप फल सुलभ हो जाते हैं। अतः इसका दान अवश्य करना चाहिये। इस दानके प्रभावसे संसारमें दाताके सौभाग्य, आयु और आरोग्य बढ़ते हैं और मरनेपर सूर्यके समान प्रकाशमान किङ्किणीकी जालियोंसे सुशोभित विमानद्वारा, अप्सराओंसे स्तुति किया जाता हुआ, वह भगवान् शिवके निवासस्थान कैलासको जाता है। जबतक उसे यह दान स्मरण रहता है, तबतक स्वर्गलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। फिर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका राजा होता है। 'धान्यधेनु'का यह माहात्म्य स्वयं भगवान्‌द्वारा कथित है। इसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त एवं परम शुद्ध-विग्रह होकर रुद्रलोकमें पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करता है।

(अध्याय १०९-११०)

कपिलादानकी विधि एवं माहात्म्य

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब परमोत्तम कपिला गौका वर्णन करता हूँ, जिसके दान करनेसे मनुष्य उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है। पूर्वनिर्दिष्ट विधिके अनुसार बछड़ेसहित समस्त अलंकारोंसे अलंकृत तथा रत्नोंसे विभूषितकर कपिला-धेनुका दान करना चाहिये। (*भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं*—) भामिनि! कपिला गायके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर कपिला

शुद्ध कुलमें उत्पन्न, बुद्धिमान्, वेद और वेदान्तका पूर्ण विद्वान्, श्रोत्रिय और अग्निहोत्री होना चाहिये तथा राजन्! ऐसे ब्राह्मणको, जो अमत्सरी (किसीसे द्वेष न करता) हो, उसे यह गौ देनी चाहिये। इस प्रकार पूजा करके मन्त्र पढ़कर गौके पूँछको ओर बैठकर गौका दान करना चाहिये। साथ ही छाता-जूता भी दान करना चाहिये। फिर उसे दो वस्त्रोंसे ढककर अँगूठी, कानके कुण्डलोंसे पूजा करके दक्षिणा और कम्बल प्रदान करे। पहले कही हुई विधिका पालन करनेके साथ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे ब्राह्मणकी विधिवत् पूजाकर ब्राह्मणके हाथमें दक्षिणासहित गौकी पूँछ पकड़ा दे। साथ ही दान करते समय कहना चाहिये—'ब्राह्मणदेव! आप इस रुद्ररूपी धेनुको स्वीकार करें। आ... मेरा नमस्कार है।' फिर गौसे प्रार्थना करे— 'परमवन्दनीये! रुद्ररूपिणी गौ! तुम्हें नमस्कार। मेरा मनोरथ पूर्ण करो।' लवणधेनु दान कर दाता ... दिन लवणके आहारपर रहे और लेनेवाले ब्राह्मणको ... रात्रितक लवणके आहारपर रहना चाहिये। दाता ... दानके फलस्वरूप, जहाँ भगवान् शंकरका निवास ... उसे प्राप्त कर लेता है। जो भक्तिके स... इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, ... मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् रुद्रके लोक... प्राप्त करता है।

(अध्याय१०७-१०८)

'कार्पास' एवं 'धान्य-धेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब कर्पासमयी धेनुके दानकी विधि बताता हूँ, जिसके प्रभावसे मनुष्य उत्तम इन्द्रलोकको प्राप्त करता है। विषुवयोग, अयनके परिवर्तनका समय, युगादितिथि, ग्रहणके अवसर, ग्रहोंकी पीड़ा दुःस्वप्न-दर्शन तथा अरिष्टकी सम्भावना होनेपर मनुष्योंके लिये यह कार्पासधेनुका दान श्रेयोवह होता है। राजन्! दानके लिये गायके गोबरसे लिपी भूमिपर कुश बिछाकर उसपर तिल बिखेरकर बीचमें वस्त्र और मालासे सुशोभित (कपाससे बनी) धेनुकी स्थापना करनी चाहिये। धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे श्रद्धापूर्वक (मात्सर्य-रहित होकर) उसकी पूजा करनी चाहिये। कृपणताका त्यागकर चार भार कपाससे सर्वोत्तम गौकी रचना करे। दो भारसे गौकी रचना करना मध्यम तथा एक भारसे बनी हुई धेनु अधम श्रेणीकी कही गयी है। धनकी कंजूसीका सर्वथा त्याग करना अनिवार्य है। ... भारकी बछड़ेकी कल्पना करके उसका दान करना चाहिये। सोनेके सींग, चाँदीका खुर, अनेक फलोंके दाँत और र... गर्भसे युक्त धेनु होनी चाहिये। श्रद्धाके साथ ऐ... सर्वाङ्गपूर्ण कार्पासमयी धेनु बनाकर उसका मन्त्रों द्वारा आह्वान एवं प्रतिष्ठाकर उसे ब्राह्मणको निवेदित करे। श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक गौको हाथसे स्पर्श कर दान करना चाहिये। पूर्वोक्त विधिका पालन कर... हुए मन्त्र पढ़कर दान करे। मन्त्रका भाव इस प्रकार है— 'देवि! तुम्हारे अभावमें किसी भी देवताका कार्य नहीं चलता, यदि यह बात सत्य है तो देवि! तुम इ... संसारसागरसे मेरी रक्षा करो! मेरा उद्धार करो!'

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अ... धान्यमयी धेनुका प्रसङ्ग सुनो, जिससे स्वयं पार्वतीजी ... संतुष्ट हो जाती हैं। विषुवयोग, अयनके परिवर्तन... समय अथवा कार्तिककी पूर्णिमाके शुभ समयमें इस दान का विशेष महत्त्व है। इसके दान करनेसे जैसे राहु... चन्द्रमाका उद्धार होता है, वैसे ही मनुष्य पापसे छू...

जाता है। अब उसी धेनुदानकी उत्तम विधि मैं कहता हूँ। राजेन्द्र! दस धेनु-दान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एक धान्यमयी धेनुके दानसे सुलभ हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पहलेकी भाँति गोबरसे लिपी हुई पवित्र भूमिपर काले मृगका चर्म बिछाकर उसपर इस धान्य-धेनुकी स्थापना कर उसकी पूजा करे। चार दोन, छः मन वजनके अन्नसे बनी हुई धेनु उत्तम और दो दोन, तीन मन अन्नसे बनी धेनु मध्यम मानी गयी है। सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, रत्न-गोमेद तथा अगरु एवं चन्दनसे उस गायकी नासिका, मोतीसे दाँत तथा घी और मधुसे उस गायके मुखकी रचना करे। श्रेष्ठ वृक्षके पत्तोंसे कानकी रचनाकर काँसेका दोहनीपात्र उसके साथमें रखना चाहिये। उसके चरण ईखके और पूँछ रेशमी वस्त्रके बनाये। फिर रत्नोंसे भरे अनेक प्रकारके फलोंको उसके पास रखे। खड़ाऊँ, जूता, छाता, पात्र तथा दर्पण भी वहाँ रखने चाहिये। पहलेके समान सभी अङ्गोंकी कल्पना करे और मधुसे उस गायका सुन्दर मुख बनाये। पुण्यकाल उपस्थित होनेपर पहले-जैसे ही दीपक आदिसे पूजा करनेके पश्चात् सर्वप्रथम स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर तीन बार उस गायकी प्रदक्षिणा करे और दण्डकी भाँति उसके सामने लेटकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'ब्राह्मणदेवता! आप महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, वेद और वेदान्तके पारगामी विद्वान् हैं। द्विजश्रेष्ठ! मेरी दी हुई यह गाय प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। इस दानके प्रभावसे देवाधिदेव भगवान् मधुसूदन मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् गोविन्दके पास जो लक्ष्मी विराजती हैं, अग्निकी पत्नी स्वाहा, इन्द्रकी शची, शिवकी गौरी, ब्रह्माजीकी पत्नी गायत्री, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना, सूर्यकी प्रभा, बृहस्पतिकी बुद्धि तथा मुनियोंकी जो मेधा है, वे सभी यहाँ धान्यमयी अन्नपूर्णादेवी धेनुरूपमें मेरे पास विराजमान हैं। इस प्रकार कहकर यह धेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

इस प्रकार गोदान करनेके बाद दाता व्यक्ति ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा कर क्षमा माँगे। राजन्! धन और रत्नोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीके दानसे अधिक पुण्यफल इस धान्यधेनुके दानसे मिलता है। राजेन्द्र! इससे मुक्ति और भुक्तिरूप फल सुलभ हो जाते हैं। अतः इसका दान अवश्य करना चाहिये। इस दानके प्रभावसे संसारमें दाताके सौभाग्य, आयु और आरोग्य बढ़ते हैं और मरनेपर सूर्यके समान प्रकाशमान किङ्किणीकी जालियोंसे सुशोभित विमानद्वारा, अप्सराओंसे स्तुति किया जाता हुआ, वह भगवान् शिवके निवासस्थान कैलासको जाता है। जबतक उसे यह दान स्मरण रहता है, तबतक स्वर्गलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। फिर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका राजा होता है। 'धान्यधेनु'का यह माहात्म्य स्वयं भगवान्द्वारा कथित है। इसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त एवं परम शुद्ध-विग्रह होकर रुद्रलोकमें पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करता है।

(अध्याय १०९-११०)

कपिलादानकी विधि एवं माहात्म्य

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब परमोत्तम कपिला गौका वर्णन करता हूँ, जिसके दान करनेसे मनुष्य उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है। पूर्वनिर्दिष्ट विधिके अनुसार बछड़ेसहित समस्त अलंकारोंसे अलंकृत तथा रत्नोंसे विभूषितकर कपिला-धेनुका दान करना चाहिये। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—) भामिनि! कपिला गायके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर कपिला

युक्त कुलमें उत्पन्न, बुद्धिमान्, वेद और वेदाङ्गका पूर्ण विद्वान्, शीलवान् और अक्रोधी होना चाहिये तथा राजन्! ऐसे ब्राह्मण हो, जो अन्य सभी [illegible] (ब्राह्मणोंसे द्वेष न करता) हो, उसीको ही देनी चाहिये। इस प्रकार [illegible] मन्त्र पढ़कर गौके पूँछको और [illegible] गौका दान करना चाहिये। साथ ही छाता-जूता भी दान करना चाहिये। फिर उसे दो वस्त्रोंसे ढककर अंगूठी, कानके कुण्डलोंसे पूजा करके दक्षिणा और फल प्रदान करे। पहले कही हुई विधिका पालन करनेके साथ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे ब्राह्मणकी विधिवत् पूजाकर ब्राह्मणके हाथमें दक्षिणासहित गौकी पूँछ पकड़ा दे। साथ ही दान करते समय कहना चाहिये [illegible]!

और इस [illegible] स्वीकार करें। [illegible] है। फिर ऐसी प्रार्थना करे— [illegible]! [illegible]! मुझे [illegible] मेरा मनोरथ पूर्ण करो। [illegible] दान कर [illegible] दिन [illegible] आहार [illegible] और [illegible] आहार करना चाहिये। [illegible] दानके फलस्वरूप, स्वयं भगवान् शंकरका निवा[illegible] उसे प्राप्त कर [illegible] है। जो भक्तिके [illegible] इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, [illegible] मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर भगवान् शंकरके लोक[illegible] प्राप्त करता है।

(अध्याय [illegible])

'कार्पास' एवं 'धान्य-धेनु'की दानविधि

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब कर्पासमयी धेनुके दानकी विधि बताता हूँ, जिसके प्रभावसे मनुष्य उत्तम इन्द्रलोकको प्राप्त करता है। विषुवयोग, अयनके परिवर्तनका समय, युगादितिथि, ग्रहणके अवसर, ग्रहोंकी पीड़ा दुःस्वप्न-दर्शन तथा अरिष्टकी सम्भावना होनेपर मनुष्योंके लिये यह कार्पासधेनुका दान श्रेयोवह होता है। राजन्! दानके लिये गायके गोबरसे लिपी भूमिपर कुश बिछाकर उसपर तिल बिखेरकर बीचमें वस्त्र और मालासे सुशोभित (कपाससे बनी) धेनुकी स्थापना करनी चाहिये। धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे श्रद्धापूर्वक (मात्सर्य-रहित होकर) उसकी पूजा करनी चाहिये। कृपणताका त्यागकर चार भार कपाससे सर्वोत्तम गौकी रचना करे। दो भारसे गौकी रचना करना मध्यम तथा एक भारसे बनी [illegible] श्रेणीकी कही गयी है। [illegible] है। कल्पना करके उसका दान करना चाहिये। [illegible] सींग, चाँदीका खुर, अनेक फलोंके दाँत और [illegible] गन्धसे युक्त धेनु होनी चाहिये। श्रद्धाके साथ [illegible] सर्वाङ्गपूर्ण कार्पासमयी धेनु बनाकर उसका मन्त्रों द्वारा आह्वान एवं प्रतिष्ठाकर उसे ब्राह्मणको निवेदित करे। श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक गौको हाथसे स्पर्श करके दान करना चाहिये। पूर्वोक्त विधिका पालन करते हुए मन्त्र पढ़कर दान करे। मन्त्रका भाव इस प्रकार है—'देवि! तुम्हारे अभावमें किसी भी देवताका कार्य नहीं चलता, यदि यह बात सत्य है तो देवि! तुम इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो! मेरा उद्धार करो!'

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब [illegible] धान्यमयी धेनुका प्रसङ्ग सुनो, जिससे स्वयं पार्वतीजी भी संतुष्ट हो जाती हैं। विषुवयोग, अयनके परिवर्तनके [illegible] अथवा कार्तिककी पूर्णिमाके शुभ समयमें इस दान[illegible] महत्त्व है। इसके दान करनेसे जैसे शङ्कर[illegible] होता है, वैसे ही मनुष्य पापसे [illegible]

जाता है। अब उसी धेनुदानकी उत्तम विधि मैं कहता हूँ। राजेन्द्र! दस धेनु-दान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल एक धान्यमयी धेनुके दानसे सुलभ हो जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पहलेकी भाँति गोबरसे लिपी हुई पवित्र भूमिपर काले मृगका चर्म बिछाकर उसपर इस धान्य-धेनुकी स्थापना कर उसकी पूजा करे। चार दोन, छः मन वजनके अन्नसे बनी हुई धेनु उत्तम और दो दोन, तीन मन अन्नसे बनी धेनु मध्यम मानी गयी है। सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, रत्न-गोमेद तथा अगरु एवं चन्दनसे उस गायकी नासिका, मोतीसे दाँत तथा घी और मधुसे उस गायके मुखकी रचना करे। श्रेष्ठ वृक्षके पत्तोंसे कानकी रचनाकर काँसेका दोहनीपात्र उसके साथमें रखना चाहिये। उसके चरण ईखके और पूँछ रेशमी वस्त्रके बनाये। फिर रत्नोंसे भरे अनेक प्रकारके फलोंको उसके पास रखे। खड़ाऊँ, जूता, छाता, पात्र तथा दर्पण भी वहाँ रखने चाहिये। पहलेके समान सभी अङ्गोंकी कल्पना करे और मधुसे उस गायका सुन्दर मुख बनाये। पुण्यकाल उपस्थित होनेपर पहले-जैसे ही दीपक आदिसे पूजा करनेके पश्चात् सर्वप्रथम स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर तीन बार उस गायकी प्रदक्षिणा करे और दण्डकी भाँति उसके सामने लेटकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'ब्राह्मणदेवता! आप महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, वेद और वेदान्तके पारगामी विद्वान् हैं। द्विजश्रेष्ठ! मेरी दी हुई यह गाय प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। इस दानके प्रभावसे देवाधिदेव भगवान् मधुसूदन मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् गोविन्दके पास जो लक्ष्मी विराजती हैं, अग्निकी पत्नी स्वाहा, इन्द्रकी शची, शिवकी गौरी, ब्रह्माजीकी पत्नी गायत्री, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना, सूर्यकी प्रभा, बृहस्पतिकी बुद्धि तथा मुनियोंकी जो मेधा है, वे सभी यहाँ धान्यमयी अन्नपूर्णा देवी धेनुरूपमें मेरे पास विराजमान हैं। इस प्रकार कहकर वह धेनु ब्राह्मणको अर्पण कर दे।

इस प्रकार गोदान करनेके बाद दाता व्यक्ति ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा कर क्षमा माँगे। राजन्! धन और रत्नोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीके दानसे अधिक पुण्यफल इस धान्यधेनुके दानसे मिलता है। राजेन्द्र! इससे मुक्ति और भुक्तिरूप फल सुलभ हो जाते हैं। अतः इसका दान अवश्य करना चाहिये। इस दानके प्रभावसे संसारमें दाताके सौभाग्य, आयु और आरोग्य बढ़ते हैं और मरनेपर सूर्यके समान प्रकाशमान किङ्किणीकी जालियोंसे सुशोभित विमानद्वारा, अप्सराओंसे स्तुति किया जाता हुआ, वह भगवान् शिवके निवासस्थान कैलासको जाता है। जबतक उसे यह दान स्मरण रहता है, तबतक स्वर्गलोकमें उसकी प्रतिष्ठा होती है। फिर स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका राजा होता है। 'धान्यधेनु'का यह माहात्म्य स्वयं भगवान्‌द्वारा कथित है। इसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त एवं परम शुद्ध-विग्रह होकर रुद्रलोकमें पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करता है।

(अध्याय १०९-११०)

कपिलादानकी विधि एवं माहात्म्य

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजन्! अब परमोत्तम कपिला गौका वर्णन करता हूँ, जिसके दान करनेसे मनुष्य उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है। पूर्वनिर्दिष्ट विधिके अनुसार बछड़ेसहित समस्त अलंकारोंसे अलंकृत तथा रत्नोंसे विभूषितकर कपिला-धेनुका दान करना चाहिये। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—) भामिनि! कपिला गायके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर कपिला

कपिला-माहात्म्य, 'उभयतोमुखी' गोदान, हेम-कुम्भदान और पुष्करकी प्रशंसा

पुरोहित होताजी कहते हैं—महाराज ! अब मैं कपिलाके भेद तथा उभयमुखी गोदानका वर्णन करता हूँ, जिसे पूर्वकालमें पृथ्वीके पूछनेपर भगवान् वराहने कहा था।

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! आपने जिस कपिला गौकी बात कही है तथा आपके द्वारा जिसका उत्पादन हुआ है, वह हेमधेनु सदा पुण्यमयी है। प्रभो ! उसके कितने और क्या लक्षण हैं तथा स्वयम्भू ब्रह्माजीने स्वयं कितने प्रकारकी कपिलाएँ बतलायी हैं। माधव ! दान करनेपर यह कपिला गौ किस प्रकारका पुण्य प्रदान कर सकती है। जगद्गुरो ! विस्तारपूर्वक यह प्रसङ्ग मैं आपसे सुनना चाहती हूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! यह प्रसङ्ग पवित्र एवं पापोंका नाश करनेवाला है। इसे भलीभाँति बतलाता हूँ, सुनो। इसके सुननेमात्रसे ही पुरुष अखिल पापोंसे मुक्त हो जाता है। वरानने ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकत्र कर यज्ञोंमें अग्निहोत्रकी सम्पन्नताके लिये कपिला गौका निर्माण किया था। वसुंधरे ! कपिला गौ पवित्रोंको पवित्र करनेवाली, मङ्गलोंका मङ्गल तथा पुण्योंमें परम पुण्यमयी है। तप इसीका रूप है, व्रतोंमें यह उत्तम व्रत, दानोंमें यह उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पृथ्वीमें गुप्तरूपसे या प्रकटरूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं

सम्पूर्ण लोकोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य प्रभृति द्विजातियोंद्वारा सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि हवनकी जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी कपिला गायके घृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारणकर इनमें व्याप्त घृतसे जो हवन करता या अतिथिकी पूजा करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानोंपर चढ़कर सूर्यमण्डलके मध्यभागसे होते हुए विष्णुलोकमें जाता है। अनन्तवर्णवाली कपिला धेनुमें सिद्धि और बुद्धि देनेकी पूर्ण योग्यता है। सम्पूर्ण लक्षणोंसे लक्षित जिन कपिला धेनुओंका पहले वर्णन किया है, वे सभी महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। उनकी कृपासे निश्चय ही मानवोंका उद्धार हो जाता है। जिनमें कपिलाके एक भी लक्षण घटित हों, ऐसी स्थितिमें सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली कपिलाधेनुको सर्वोत्तम कहा गया है। ऐसी कपिलाके पुच्छ, खुर और रोम सब अग्निके समान माने जाते हैं। वह अग्निमयी कपिलादेवी 'सुवर्णाख्या' बतायी जाती है। जो ब्राह्मण प्रबल इच्छाके कारण हीनव्यक्तिसे ऐसी कपिलाधेनु दानमें लेकर उसका दूध पीता है तो इस निन्दित कर्मके कारण उस अधम ब्राह्मणको पतितके समान समझना चाहिये। जो ब्राह्मण हीन व्यक्तियोंसे कपिलाका दान लेता है उसके पितर उसी समयसे अपवित्र स्थानमें पड़ जाते हैं। ऐसे ब्राह्मणसे बात भी नहीं करनी चाहिये और एक आसनपर भी नहीं बैठना चाहिये। वसुंधरे! ब्राह्मण समाज दूरसे ही ऐसे प्रतिग्राही ब्राह्मणका त्याग कर दे। यदि ऐसे प्रतिग्राही ब्राह्मणसे वार्तालाप हो गया या एक आसनपर बैठ गया तो उस बैठनेवाले ब्राह्मणको प्राजापत्य एवं कृच्छ्र-व्रत करना चाहिये, तब उसकी शुद्धि होती है। अन्य करोड़ों विस्तृत दानोंकी क्या आवश्यकता? एक कपिला गौका दान ही साधारण हजार गौओंके दानके समान है। श्रोत्रिय, दरिद्र, शुद्ध आचारवाले तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको एक भी कपिला गौ देना सर्वोत्तम है।

गृहाश्रमी पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुख योनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहे, अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुंधरे! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूजित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्या होती है। सोनेकी सींग, चाँदीके खुरसे सम्पन्न करके कपिला गौ ब्राह्मणके हाथमें दे। दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर जल लेकर शुद्ध वाणीमें ब्राह्मणसे सङ्कल्प पढ़वावे। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रसे घिरी हुई पर्वतों और वनोंसे तथा रत्नोंसे परिपूर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वी-दानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ आनन्दित होकर भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोघाती अथवा गर्भका घात करनेवाला पापी, दूसरोंको ठगनेवाला, वेदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका निन्दक और सत्कर्ममें दोषदृष्टि रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किंतु ऐसा घोर पापी भी बहुतसे सुवर्णोंसे युक्त उभयमुखी गौके दानसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रेष्ठभावोंवाली पृथ्वी देवि! दाताको चाहिये कि उस दिन खीरका भोजन करे अथवा दूधके ही सहारे रहे। गोदानके समय ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'मैं यह उभयमुखी गाय देता

हूँ, आप इसे स्वीकार करें। इसके प्रभावसे मेरा इस लोक तथा परलोकमें निश्चय ही कल्याण हो।' फिर गायसे प्रार्थना करे—'अपने वंशकी वृद्धिके लिये मैंने तुम्हें दानमें दिया। तुम सदा मेरा कल्याण करो।' दान लेते समय ब्राह्मण उभयमुखी धेनुसे प्रार्थना करे—'धेनो! अपने कुटुम्बकी रक्षाके लिये मैं दानरूपमें तुम्हें स्वीकार कर रहा हूँ। देवताओंकी धात्रि! तुम्हें नमस्कार। रुद्राणि! तुम्हें बार-बार नमस्कार। तुम्हारी कृपासे मेरा निरन्तर कल्याण हो। आकाश तुम्हारा दाता और पृथ्वी गृहीत्री है। आजतक कौन इसे किसके लिये देनेमें समर्थ हो सका है।' वसुंधरे! ऐसा कह लेनेपर दाता ब्राह्मणको विदा करे और ब्राह्मण उस धेनुको अपने घर ले जाय।

वसुंधरे! इस प्रकार प्रसवके समय गायका जो दान करता है, उसने मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका दान कर दिया, इसमें कोई संशय नहीं। चन्द्रमाके समान मुखवाली, सूक्ष्म मध्य भागवाली, तपाये हुए सुवर्णवर्णकी कान्तिवाली गौकी प्रसव करते समय सम्पूर्ण देवसमुदाय निरन्तर स्तुति करता है। जो व्यक्ति प्रातः-काल उठकर समाहितचित्तसे तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—'गोदानविधान'को पढ़ता है, उसके वर्षभरके किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके झोंकेसे धूलके समूह। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्नमें दिव्य संस्कार आ जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं। अन्तकाल [illegible] जो इसका पाठ करता है, उसके [illegible] शुभ हो जाते हैं। जो पुरुष मन लगाकर [illegible]

पुरोहित होताजी कहते हैं—राजेन्द्र! इस प्र प्राचीन गोदान-महिमाके रहस्यको भगवान् वराहने पृथ्वीको सुनाया था। सम्पूर्ण पापोंको शान्त करनेवा यह पूरा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। माघ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन तिलधेनुका दान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप दाता सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके पदको करता है। महाराज! श्रावण मासके शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन सुवर्णके साथ प्रत्यक्ष धेनुका करना चाहिये। राजेन्द्र! ऐसे तो सभी समयमें प्रकारकी धेनुओंका दान करना उत्तम है, पर इस दा सब प्रकारके पाप शान्त हो जाते हैं और दाताको मु मुक्ति सुलभ हो जाती है। यह प्रसङ्ग बड़ा विस्तृत जिसे मैंने तुमसे संक्षेपमें ही बतलाया है। धेनुओंका द मनुष्योंके लिये सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवा है। राजेन्द्र! जो ऐसा कुछ भी नहीं करता, व भूखसे अत्यन्त पीड़ित होता रहता है।

राजन्! इस समय कार्तिकका महीना चल रह है। इसमें भौतिक रत्नों और ओषधियोंसे यु 'ब्रह्माण्ड'का दान करना चाहिये। देवता, दाना और यक्ष सब ब्रह्माण्डके ही अन्तर्गत हैं। यह सम्पूर्ण बीजों और रसोंसे समन्वित है। इसे हेममय बताया गया है। कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन अथवा विशेष करके पूर्णमासीके अवसरपर इस रत्नसहित ब्रह्माण्डाकृतिको श्रेष्ठ पुरोहितको भक्तिके साथ दान करे। राजन्! ब्रह्माण्डभरमें जितने तीर्थ हैं तथा जितने दान हैं, वे सभी इस ब्रह्माण्डदाता पुरुषके द्वारा सम्पन्न हो गये—ऐसा समझना चाहिये। मैंने यह प्रसङ्ग तुम्हें बता दिया। राजन्! जो पुरुष हजारों [illegible]

सारे ब्रह्माण्डकी अर्चना कर, सामग्री दान करता है, उसके द्वारा मानो सभी हवन, पाठ और कीर्तन विधिपूर्वक सम्पन्न हो गये।'

इस प्रकारकी बात सुनकर राजाने उसी समय एक सुवर्ण-कुम्भमें ब्रह्माण्डकी कल्पना कर विधिपूर्वक उन ऋषिको ब्रह्माण्डका दान किया और उसके फलस्वरूप वह राजा सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो स्वर्गको चला गया। अतएव राजेन्द्र ! तुम भी यह दान करके सुखी हो जाओ। वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर उस राजाने भी ऐसा ही किया। फिर उन्हें वह परम सिद्धि प्राप्त हुई, जिसे पाकर मनुष्य कभी सोच नहीं करता।*

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! यह संहिता सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली है। इसका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। वरारोहे ! 'वराह'नामसे प्रसिद्ध इस संहितामें अखिल पातकोंको नष्ट करनेकी शक्ति है। सर्वज्ञ परमप्रभुसे ही इसका उद्भव हुआ था। तत्पश्चात् ब्रह्माजी इसके विशेषज्ञ हुए। ब्रह्माजीने इसे अपने पुत्र पुलस्त्यजीको बताया। पुलस्त्यजीने परशुरामजीको, परशुरामजीने अपने शिष्य उग्रको और उग्रने मनुको इसकी शिक्षा दी। यह तो पूर्वकल्पकी बात हुई। अब भविष्यकी बात सुनो। धराधरे ! तुम्हारी कृपासे कपिल आदि सिद्ध पुरुष तपस्या करके इसे जाननेमें समर्थ होंगे। इसी क्रमसे फिर इसका ज्ञान वेदव्यासको होगा। व्यासदेवके शिष्य रोमहर्षणि नामसे विख्यात होंगे। वे शुनकके पुत्र शौनकसे इसका कथन करेंगे, इसमें कुछ संदेह नहीं। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी सबके गुरु होंगे। वे अठारह पुराणोंके ज्ञाता हैं, जो इस प्रकार कहे गये हैं— पहला ब्रह्मपुराण, दूसरा पद्मपुराण, तीसरा वायुपुराण, चौथा शिवपुराण, पाँचवाँ भागवतपुराण, छठा नारदपुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्यपुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण, बारहवाँ वराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामनपुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, सत्रहवाँ गरुडपुराण और अठारहवाँ ब्रह्माण्डपुराण। वसुंधरे ! जो पुरुष कार्तिक मासकी द्वादशी तिथिके दिन भक्तिपूर्वक इसका पठन एवं व्याख्यान करता है, वह यदि संतानहीन हो तो उसे अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति होती है। प्राणियोंको आश्रय देनेवाली देवि ! जिसके घरमें यह लिखा हुआ प्रसङ्ग सदा पूजित होता है, उसके यहाँ स्वयं भगवान् नारायण विराजते हैं। जो भक्तिके साथ निरन्तर इसका श्रवण करता है तथा सुनकर भगवान् आदिवराहसे सम्बन्ध रखनेवाले इस 'वराहपुराण'की पूजा करता है, उसने मानो सनातन भगवान् विष्णुकी पूजा कर ली। वसुंधरे ! इसे सुनकर इस ग्रन्थ तथा भगवान्‌की गन्ध-पुष्पमाला और वस्त्रोंसे पूजन तथा भोजन-वस्त्रद्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान करना चाहिये। यदि राजा हो तो अपनी शक्तिके अनुसार बहुतसे ग्राम देकर इस पुस्तक—वराहपुराणकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ११२)

---

*[विशेष द्रष्टव्य—वराहपुराणके ये 'तिलधेनु' आदि दानके ९९ से ११२ तकके अध्याय 'कृत्यकल्पतरु', 'अपरार्क', 'हेमाद्रि दानखण्ड', नीलकण्ठ भट्टके 'दानमयूख', रघुनन्दनके 'दानतत्त्व' तथा अन्योंकी 'दानचन्द्रिका'-'दानकौमुदी', बल्लालसेनके 'दानसागर' आदिमें प्रायः सर्वथा इसी क्रमसे इन्हीं श्लोकोंमें प्राप्त होते हैं। इनमें 'अपरार्क'का तथा 'कृत्यकल्पतरु'के रचयिता पं० लक्ष्मीधरका समय १०वीं एवं ११वीं शती है। उस समय इस पुराणकी कितनी प्रतिष्ठा थी, यह इससे सूर्यालोककी तरह सुस्पष्ट हो जाता है।]

पृथ्वीद्वारा भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन

नैमिषारण्यके ऋषियोंसे सूतजीने कहा कि एक बार श्रीसनत्कुमारजी भ्रमण करते हुए पृथ्वीसे आकर मिले और पूछा—देवि! जिनके आधारपर तुम अवलम्बित हो तथा जिन वराहभगवान्‌ने तुमने पुनरुद्धार किया है, उसे सत्पूर्वक कहनेकी कृपा करो। महापुत्र सनत्कुमारकी बात सुनकर पृथ्वीने उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

पृथ्वी बोली—विप्रेन्द्र! भगवद्विभूतिका यह विषय अत्यन्त गोपनीय है। जिस समय संसारमें चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य और नक्षत्र—इन सभीका अभाव था, सभी दिशाएँ स्तम्भित थीं, किसीको कुछ भी ज्ञान नहीं था, न पवनकी गति थी, न अग्नि और विद्युत् ही अपना प्रकाश फैला सकते थे, उस समय परम प्रभु परमात्माने मत्स्यका अवतार धारण कर रसातलसे वेदोंका उद्धार किया। फिर उन्होंने कूर्मका अवतार धारणकर अमृत प्रकट किया। हिरण्यकशिपु वर पाकर दृप्त (गर्वीला) हो गया था, उस समय भगवान्‌ने नरसिंहका अवतार धारण कर उसका संहार करके प्रह्लाद तथा विश्वकी रक्षा की। इसीप्रकार उन्होंने परशुराम तथा रामका अवतार धारण कर रावणादि दुष्टोंका संहार किया और भगवान् वामनद्वारा बलि बाँधे गये।

फिर सृष्टिके आरम्भमें जब मैं समुद्रमें डूबी जा रही थी, तब मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'जगत्प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं। देवेश! आप मुझपर प्रसन्न होइये। माधव! भक्तिपूर्वक मैं आपकी शरणमें पहुँची हूँ। सम्पूर्ण नक्षत्र तथा ग्रह, यज्ञ और मूर्त आप ही परिणाम हैं। तारावृन्द, सूर्य-चन्द्र और ज्योतिषक और ध्रुव—इन सबमें आप ही प्रकट होते हैं। मास-पक्ष, दिन-रात, ऋतु और संवत्सर भी आप ही हैं। नदियाँ, समुद्र, पर्वत तथा सभी जीवोंके रूपमें परम प्रसिद्ध आप ही सनातन हैं। मेरु-मन्दराचल, विन्ध्य, मलय-दर्दुर, हिमालय, कैलास आदि पर्वत और प्रधान आयुध सुदर्शन चक्र—ये सब आपके ही रूप हैं। आप धनुषोंमें शिवजीके धनुष 'पिनाक' हैं, योगोंमें उत्तम 'सांख्य'योग हैं। ज्ञानियोंके लिये आप परमपरायण भगवान् श्रीनारायण हैं। यज्ञोंमें आप 'महायज्ञ' हैं और यूपों (यज्ञस्तम्भों)में आप धारण करनेकी शक्ति हैं। वेदोंमें आपको 'सामवेद' कहा जाता है। आप महाव्रतधारी पुरुषके अक्षय वेद और वेदाङ्ग हैं। गरजना, बरसना आपके द्वारा ही होता है। आप ब्रह्मा हैं। विष्णो! आपके द्वारा अमृतका सृजन होता है, जिसके प्रभावसे जनता जीवन धारण कर रही है। श्रद्धा-भक्ति, प्रीति, पुराण और पुरुष भी आप ही हैं। धेय और आधेय—सारा जगत्, जो कुछ इस समय वर्तमान है, वह आप ही हैं। सातों लोकोंके स्वामी भी आपको ही कहा जाता है। काल, मृत्यु, भूत, भविष्य, आदि-मध्य-अन्त, मेधा-बुद्धि और स्मृति आप ही हैं। सभी आदित्य आपके ही रूप हैं। यज्ञोंका परिवर्तन

एवं महाद्युति—ये आपके ही अङ्ग हैं। वृक्षोंमें आप वनस्पति तथा आप सत्क्रियाओंमें श्रद्धा हैं। आप ही गरुड़ बनकर अपने आत्मरूप (श्रीहरि)को वहन करते हैं और उनकी सेवामें परायण रहते हैं। दुन्दुभि और नेमिघोषसे जो शब्द होते हैं, वे आपके ही रूप हैं। निर्मल आकाश आपका ही रूप है। आप ही जय और विजय हैं। सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी, चेतन और मन भी आप ही हैं। ऐश्वर्य आपका स्वरूप है। आप पर एवं परात्मक हैं। विष एवं अमृत भी आपके ही रूप हैं। जगद्वन्द्य प्रभो! आपको मेरा बारंबार प्रणाम है। लोकेश्वर! मैं डूबी जा रही हूँ, आप मेरी रक्षा करें।'

यह भगवान् केशवकी स्तुति है। व्रतमें दृढ़ स्थिति रखनेवाला जो पुरुष इसका पाठ करता है, वह यदि रोगोंसे पीड़ा पा रहा हो तो उसका दुःख दूर हो जाता है। यदि बन्धनमें पड़ा हो तो उससे उसकी मुक्ति हो जाती है। अपुत्री पुत्रवान् बन जाता है। दरिद्रको सम्पत्ति सुलभ हो जाती है। विवाहकी कामनावाले अविवाहित व्यक्तिका विवाह हो जाता है। कन्याको सुन्दर पति प्राप्त होता है। महान् प्रभु भगवान् माधवकी इस स्तुतिका जो पुरुष सायं और प्रातः पाठ करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। इस विषयमें कुछ भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। भगवान्‌की कही हुई ऐसी वाणीकी जबतक परिचर्चा होती रहती है, तबतक वह पुरुष स्वर्गलोकमें सुख पाता है।

(अध्याय ११३)

श्रीवराहावतारका वर्णन

सूतजी कहते हैं—पृथ्वीने जब भगवान् नारायणकी इस प्रकार स्तुति की तो परम समर्थ भगवान् केशव उसपर प्रसन्न हो गये। फिर कुछ समयतक वे योगजनित ध्यान-समाधिमें स्थित रहे। तदनन्तर वे मधुर स्वरमें पृथ्वीसे कहने लगे—'देवि! मैं पर्वतों और वनोंसहित तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार करूँगा, साथ ही पर्वतसहित सभी समुद्रों, सरिताओं और द्वीपोंको भी धारण करूँगा।'

इस प्रकार भगवान् माधवने पृथ्वीको आश्वासन देकर एक महान् तेजस्वी वराहका रूप धारण किया और छः हजार योजनकी ऊँचाई तथा तीन हजार योजनकी चौड़ाईमें—यों नौ हजार योजनके परिमाणमें अपना विग्रह बनाया। फिर अपने बायीं दाढ़की सहायतासे पर्वत, वन, द्वीप और नगरोंसहित पृथ्वीको समुद्रसे ऊपर उठा लिया। कई विज्ञानसंज्ञक पर्वत जो पृथ्वीमें लगे हुए थे, वे समुद्रमें गिर पड़े। उनमें कुछ तो संध्याकालीन मेघोंकी तरह विचित्र शोभा प्राप्त कर रहे थे और कुछ निर्मल चन्द्रमाकी तरह भगवान् वराहके मुखके ऊपर लगे सुशोभित हो रहे थे। इनमें कुछ पर्वत भगवान् चक्रपाणिके हाथमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो कमल खिले हों। इस प्रकार भगवान् वराह अपनी दाढ़पर एक हजार वर्षोंतक समुद्र-सहित पृथ्वीको धारण किये रह गये। उस दाढ़पर ही कई युगोंके कालका परिमाण व्यतीत हो गया। फिर इक्कीसवें कल्पमें कर्दमप्रजापतिका प्राकट्य हुआ। तबसे अविनाशी भगवान् विष्णु पृथ्वीके आराध्यदेव माने जाते हैं। परम्पराके अनुसार यही उत्तम 'वराह-कल्प' कहलाया।

तदनन्तर पृथ्वीने भगवान्‌से प्रश्न किया—'भगवन्! आपकी प्रसन्नताका आधार क्या और कैसा है? प्रातः एवं सायंकालकी संध्याका स्वरूप क्या है? भगवन्! पूजामें आवाहन, स्थापन और विसर्जन कैसे किये जाते हैं तथा अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क-स्नानकी सामग्री, अगुरु, चन्दन और धूप कितने प्रमाणमें ग्राह्य हैं? शरद्,

पृथ्वीद्वारा भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन

नैमिषारण्यके ऋषियोंसे सूतजीने कहा कि एक बार सनत्कुमारजी भ्रमण करते हुए पृथ्वीसे आकर मिले और पूछा— देवि! तुमने, भगवान् तुम आराधिका हो तथा जिन वाराहभगवान्‌ने तुम्हें पुराकाल धारण किया है, उन्हें तत्पूर्वक वचनोंसे स्तुत करो। महामुनि सनत्कुमारकी बात सुनकर पृथ्वीने उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

पृथ्वी बोली - विप्रेन्द्र ! भगवद्विभूतियाँ पद किंचित् अत्यन्त गोपनीय है। जिस समय संसारमें चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य और नक्षत्र—इन सभीका अभाव था, सभी दिशाएँ शान्त थीं, जिनसे कुछ भी ज्ञान नहीं था, न पवनकी गति थी, न अग्नि और विद्युत् ही अपना प्रकाश फैला सकते थे, उस समय परम प्रभु परमात्माने मत्स्यका अवतार धारण कर रसातलसे वेदोंका उद्धार किया। फिर उन्होंने कूर्मका अवतार धारणकर अमृत प्रकट किया। हिरण्यकशिपु वर पाकर दृप्त (गर्वीला) हो गया था, उस समय भगवान्‌ने नरसिंहका अवतार धारण कर उसका संहार करके प्रह्लाद तथा ऋषियोंकी रक्षा की। इसी प्रकार उन्होंने परशुराम तथा रामका अवतार धारण कर रावणादि दुष्टोंका संहार किया और भगवान् वामनद्वारा बलि बाँधे गये।

फिर सृष्टिके आरम्भमें जब मैं समुद्रमें डूबी जा रही थी, तब मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'जगत्प्रभो ! आप सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं। देवेश ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। माधव ! भक्तिपूर्वक मैं आपकी शरणमें पहुँची हूँ, आप कृपा करें। सूर्य, चन्द्रमा, यमराज और कुबेर— इन रूपोंमें आप ही विराजमान हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, पवन, क्षर-अक्षर, दिशा और विदिशा आप ही हैं। हजारों युग-युगान्तरोंके समाप्त हो जानेपर भी आप सदा एकरस स्थित रहते हैं। पृथ्वी-जल-तेज-वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत तथा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध—ये पाँच विषय आपके ही रूप हैं। ग्रहोंसहित सम्पूर्ण ब्रह्म तथा काल, काष्ठा और मुहूर्त आप ही के परिणाम हैं। नक्षत्रवृन्द, ग्रहसमूह और ध्रुव—इन सबमें आप ही शक्ति देते हैं। मास, पक्ष, दिन-रात, ऋतु और संवत्सर भी आप ही हैं। नदियाँ, समुद्र, पर्वत तथा नागोंके, सभी परम प्रसिद्ध आप ही सुन्दर मेरु-मन्दराचल, विन्ध्य, मलयपर्वत, हिमालय आदि पर्वत और प्रकाशमान आयुध सुदर्शन चक्र—ये आपके ही रूप हैं। आप धनुषोंमें शिवजीके धनुष 'पिनाक' हैं, योगोंमें उत्तम 'सांख्ययोग' हैं। लोकोंके लिये आप परमपरायण भगवान् श्रीनारायण हैं। यज्ञोंमें आप 'महायज्ञ' हैं और मुझमें (वराहरूपमें) भी आप ही रहनेकी शक्ति हैं। वेदोंमें आपको 'सामवेद' कहा जाता है। आप महातपस्वी पुरुषके आत्मा वेद और वेदांग हैं। गरजना, बरसना आपके द्वारा ही होता है आप ब्रह्मा हैं। विष्णो ! आपके द्वारा अमृतका सृजन होता है, जिसके प्रभावसे जनता जीवन धारण कर रही है। श्रद्धा-भक्ति, प्रीति, पुराण और पुरुष भी आप ही हैं। धेय और आधेय—सारा जगत्, जो कुछ इस समय वर्तमान है, वह आप ही हैं। सातों लोकोंके स्वामी भी आपको ही कहा जाता है। काल, मृत्यु, भूत, भविष्य, आदि-मध्य-अन्त, मेधा-बुद्धि और स्मृति आप ही हैं। सभी आदित्य आपके ही रूप हैं। युगोंका परिवर्तन करना आपका ही कार्य है। आपकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती, अतः आप अप्रमेय हैं। आप नागोंमें 'शेष' तथा सर्पोंमें 'तक्षक' हैं। उद्वह-प्रवह, वरुण और वारुणरूपसे भी आप ही विराजते हैं। आप ही इस विश्वलीलाके मुख्य सूत्रधार हैं। सभी गृहोंमें गृह-देवता आप ही हैं। सबके भीतर विराजमान, सबके अन्तरात्मा और मन आप ही हैं। विद्युत् और वैद्युत

करते हैं। जो कृष्ण-नामका कीर्तन अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर आपकी उपासना करते हैं, उन्हें कौन-सी गति मिलती है? आप कृपापूर्वक यह भी बतायें। भगवन्! मैं आपकी शिष्या और दासी हूँ। भक्ति-भावसे आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। जगद्गुरो! मुझपर आपकी कृपा है, लोकमें धर्मके प्रचार-हेतु आप इस धर्मरहस्यको मुझसे कहनेकी कृपा करें—यह मेरी आकाङ्क्षा है। (अध्याय ११४)

विविध धर्मोंकी उत्पत्ति

सूतजी कहते हैं—उस समय पृथ्वीकी बात सुनकर भगवान् नारायणने कहा—'जगत्को आश्रय देनेवाली देवि! मैं अब स्वर्गमें सुख देनेवाले साधनोंको तुम्हें बतलाऊँगा। मैं श्रद्धारहित प्राणीके सैकड़ों यज्ञों और हजारों प्रकारके दान आदि धर्मोंसे संतुष्ट नहीं होता और न मैं धनसे ही प्रसन्न होता हूँ। किंतु माधवि! यदि कोई व्यक्ति चित्तको एकाग्र करके श्रद्धापूर्वक मेरा ध्यान-स्मरण करता है, वह चाहे बहुत दोषोंसे युक्त भी क्यों न हो, मैं उसके व्यवहारसे सदा संतुष्ट रहता हूँ। पृथ्वीदेवि! जो अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष मुझे आधी रात, अन्धकारपूर्ण समय, मध्याह्न अथवा अपराह्णके समय निरन्तर नमस्कार करते हैं, मैं उनपर सदा संतुष्ट रहता हूँ। मेरी भक्तिमें व्यवस्थित चित्तवाला भक्त कभी भक्तिसे विचलित नहीं होता। द्वादशी तिथिके दिन मेरी भक्तिमें तत्पर रहकर जो लोग उपवास करते हैं—मेरी भक्तिके परायण वे पुरुष मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। सुन्दरि! जो ज्ञानवान् एवं गुणज्ञ हैं तथा जिनका हृदय भक्तिसे ओतप्रोत है, ऐसे मनुष्य इच्छानुसार स्वर्गमें वास करते हैं। सुमुखि! मुझे पाना बड़ा कठिन है। थोड़े प्रयाससे मुझे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। माधवि! भक्त जिन कर्मोंके फलस्वरूप मेरा दर्शन पाते हैं, अब उन कर्मोंका तुमसे वर्णन करता हूँ। जो श्रद्धालु व्यक्ति द्वादशी तिथिके दिन उपवास करते हैं, वे मेरा दर्शन प्राप्त कर लेते हैं। जो उपवास करके हाथमें एक अञ्जलि जल लेकर 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर सूर्यकी ओर देखते हुए जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करते हैं, उनकी अञ्जलिसे जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

देवि! जो धर्मात्मा पुरुष द्वादशी तिथिमें विधिके साथ यत्नपूर्वक मेरी उपासना करते हैं तथा श्वेत पुष्पों एवं सुगन्धित धूपसे मेरी अर्चना करते हैं और मन्दिरमें मेरी स्थापना कर पूजा करते हैं, उन्हें जो गति मिलती है, वह सुनो। वसुंधरे! उज्ज्वल वस्त्र धारणकर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक मेरे सिरपर पुष्प-अर्पण करना चाहिये। मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं—'भगवान् श्रीहरि परम पूज्य एवं मान्य पुरुष हैं, वे पुष्पोंको स्वीकार करें एवं मुझपर प्रसन्न हो जायँ। भगवान् विष्णु व्यक्त और अव्यक्त गन्धको स्वीकार करनेवाले हैं। ऐसे भगवान् विष्णुके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। वे सुगन्धोंको पुनः-पुनः स्वीकार करें। भगवान् अच्युत अपनी शरणमें आये हुए भक्तकी बातको सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे जगद्-व्याप्त सूक्ष्म गन्ध तथा मेरे द्वारा अर्पित किये हुए धूपको ग्रहण करें।' जो मेरा उपासक शास्त्रोंका श्रवण करके मेरे लिये ही कार्य सम्पादन करता है, वह मेरे लोकमें जानेका अधिकारी है। वहाँ वह चार भुजावाला होकर शोभा पाता है। देवि! जो मन्त्रोंद्वारा मेरी पूजा करता है, वह मुझे बड़ा प्रिय लगता है। तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यह सब उत्तम प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। सावाँ, सत्तू, गेहूँ,

हेमन्त, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओंमें आपकी आराधनाका क्या विधान है ? उस समय उपयोग करने योग्य जो पुष्प और फल हैं तथा करने योग्य और न करने योग्य तथा शास्त्रसे निषिद्ध जो कर्म हैं, उन्हें भी बतानेकी कृपा करें। ऐश्वर्यवान् पुरुष कर्मोंका भोग करते हुए आपको कैसे प्राप्त करते हैं ? कर्मों तथा इनके फलोंका दूसरेमें कैसे संक्रमण होता है, आप यह भी कृपाकर बतायें। पूजाका क्या प्रमाण है, प्रतिमाकी स्थापना किस प्रकार और किस प्रमाणमें होनी चाहिये। भगवन्! उपवासकी क्या विधि है और उसे कब किया जाय ? शुक्ल, पीत और रक्त वस्त्रोंको किस प्रकार धारण करना चाहिये ? उन वस्त्रोंमें कौन वस्त्र किनके लिये हितकारक होता है। प्रभो! आपके लिये फल-शाक आदि कैसे अर्पण किये जायँ ? धर्मवत्सल! मन्त्रके द्वारा आमन्त्रित करनेपर आये हुए देवताओंके लिये शास्त्रानुकूल कर्मका अनुष्ठान कैसे हो ? प्रभो! भोजन कर लेनेके बाद कौन-सा धर्म-कर्म अनुष्ठेय है तथा जो लोग एक समय भोजनकर आपकी उपासना करते हैं, आपके मार्गका अनुसरण करनेवाले उन व्यक्तियोंको कौन-सी गति प्राप्त होती है। माधव! कृच्छ्र और सांतपनव्रतके द्वारा जो आपकी उपासना करते हैं तथा जो वायुका आहार करके भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाले हैं, उन्हें कौन-सी गति मिलती है ? प्रभो! आपकी भक्तिमें व्यवस्थित रहकर बिना लवणका भोजन करके जो आपकी आराधना करते हैं तथा जो आपकी भक्ति करते हुए पयोव्रत रखते हैं और माधव! जो प्रतिदिन गौको ग्रास देकर आपकी शरणमें जाते हैं, प्रभो! उन्हें कौन-सी गति मिलती है ?

भिक्षापर जीविका चलाकर गृहस्थधर्मका पालन करते हुए जो आपकी ओर अग्रसर होते हैं तथा जो आपके कर्मोंमें परायण रहकर आपके क्षेत्रोंमें प्राण त्यागते हैं, वे महाभाग किन लोकोंमें जाते हैं ? जो पञ्चाग्नि-साधन कर उसका फल भगवान् माधवको समर्पण करते हैं तथा जो पञ्चाग्नितप्त अथवा काष्ठतल्प शय्यापर रहकर भगवान् अच्युतका दर्शन करते हैं वे किस उत्तम गतिको पाते हैं ? श्रीकृष्ण! आपके भक्ति-परायण जो व्यक्ति गोशालामें शयन करके आपके शरणागत बने रहते हैं तथा शाकाहार करके आप भगवान् अच्युतकी ओर अग्रसर होते हैं, उनकी कौन-सी गति निश्चित है ? भगवन्! जो मानव कण-भक्षण करते तथा पञ्चगव्य पानकर आप माधवकी शरण ग्रहण करते हैं, जो यवके आहारपर तथा गोमय पीकर आपकी उपासना करते हैं, नारायण! उनके लिये वेदोंमें कौन-सी गति एवं विधि निर्दिष्ट है ? जो यावक (जौसे बने पदार्थ) खाकर आपकी उपासना करते हैं तथा आपकी सेवामें सदा संलग्न रहकर दीपकको सिर प्रणाम करके आपकी अर्चना करते हैं एवं जो प्रतिदिन आपके चिन्तनमें संलग्न रहकर दुग्धाहारपर रहते हैं, वे कौन गति पाते हैं ? आपके चिन्तनमें जो समय व्यतीत करनेवाले तथा 'अश्माशान'व्रत करके आपकी सदा उपासना करनेवाले हैं, उन्हें कौन गति सुलभ होती है ? भगवन्! भक्ति-परायण जो विद्वान् व्यक्ति दूर्वाका आहार करके आपकी उपासना करते हैं एवं अपने धर्म-गुणका आचरण करते हुए प्रीतिपूर्वक घुटनेके बल बैठकर आपकी अर्चना करते हैं, उन्हें कौन गति मिलती है ? यह सब आप बतानेकी कृपा करें। भगवन्! पृथ्वीपर सोनेवाला तथा पुत्र, स्त्री और घरसे सदा उदासीन होकर जो आपकी शरणमें चला जाता है, देवेश्वर! उसे कौन-सी सिद्धि मिलती है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

माधव! आप सम्पूर्ण रहस्योंके ज्ञाता, विश्व-पिता और सम्पूर्ण धर्मोंके निर्णायक हैं, अतः योग और सांख्यमें निर्णीत ह......

सुलभ हो जाता है। वह लाभ और हानिका त्याग कर मोह और कामसे अलग होकर, शीत और उष्णमें निर्विकार रहकर, लाभ और हानिकी चिन्ता न करे। तिक्त-कटु-मधुर, खट्टा-नमकीन और कषाय स्वादवाले पदार्थोंकी भी उसे स्पृहा नहीं करनी चाहिये। उत्तम सिद्धि प्राप्त हो, इसकी भी उसे अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। भार्या, पुत्र, माता-पिता—ये सब मुझे सेवाके लिये मिले हैं, वह मनमें ऐसा भाव रखे। पर इनमें भी आसक्ति न रखकर सदा मेरी भक्तिमें ही तत्पर रहे। वह धैर्यवान्, कार्यकुशल, श्रद्धालु एवं व्रतका पालन करनेवाला हो। उत्सुकताके साथ सदा कर्तव्य कर्ममें तत्पर रहनेवाला, निन्दित कर्मोंसे अलग रहनेवाला, और जिसका बचपन, यौवन समानरूपसे धर्ममें बीता हो, जो भोजन थोड़ा करे, कुलीनतासे रहे, सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाला हो, प्रातःकाल जगनेवाला, क्षमाशील, पर्वकालमें मौन रहनेवाला और जबतक कर्मकी समाप्ति न हो, तबतक इसे निरन्तर करनेवाला हो, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है। निश्चित धर्मके पथपर रहकर अखाद्य वस्तुका त्याग करे, धर्मके अनुष्ठानमें परायण रहे और अपना मन सदा मुझमें लगाये रखे। वह यथासमय मल-मूत्रका त्यागकर स्नान कर ले। पुष्प-चन्दन और धूपको मेरी पूजाकी सामग्री मानकर उनका संग्रह करनेमें सदा लगा रहे। कभी कन्दमूल और फलसे ही अपने शरीरका निर्वाह करे। कभी दूध, कभी सत्तू और कभी केवल जलके ही आहारपर रहे। कभी छठी साँझ (तीसरे दिन), कभी चौथी साँझ तथा कभी अनुकूल समयमें निर्दोष फल मिल जायँ तो उनका आहार कर ले। वसुंधरे! दस दिन, एक पक्ष अथवा एक मासमें जो कुछ स्वतः मिल जाय, उसी आहारपर रह जाय। इस प्रकार जो सात वर्षोंतक मेरी आराधना करता है तथा पूर्वकथित कर्मोंमें जिसकी स्थिति बनी रहती है, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है तथा योगीलोग भी उसका दर्शन करने आते हैं। (अध्याय ११५)

सुख और दुःखका निरूपण

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! मेरे द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार जो कर्म करता-कराता है, उसे किस प्रकार सफलता प्राप्त होती है, अब मैं यह बतलाता हूँ, सुनो। मेरा भक्त एकाग्रचित्त, सुस्थिर होकर अहंकारका परित्याग कर दे एवं अपने चित्तको सदा मुझमें समाहितकर क्षमाशील, जितेन्द्रिय होकर रहे। वह द्वादशी तिथिको फल-मूल अथवा शाकका आहार करे, अथवा पयोव्रती एवं सर्वथा शाकाहारपर रहनेवाला हो। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, चतुर्दशी—इन तिथियोंमें वह संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करे। इस प्रकार योगविधानपूर्वक मेरी उपासना करनेवाला दृढ़व्रती पवित्रात्मा व्यक्ति धर्मसे सम्पन्न होकर विष्णुलोकको जाता है। वहाँ उसको अठारह भुजाएँ होती हैं और उनमें वह धनुष, तलवार, बाण तथा गदा धारणकर सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है। उसे ग्लानि, बुभुक्षा, मोह और रोग नहीं होते। वे छाछठ हजार वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास करते हैं।

अब दुःखका स्वरूप बताता हूँ, उसे सुनो। उचित उपचार करनेसे दुःखसे मुक्ति अथवा उस क्लेशका विनाश सम्भव है। जो मानव सदा अहंकार एवं मोहसे आच्छादित है और मेरी शरणमें नहीं आता, अन्न सिद्ध हो जानेपर जो स्वयं पहले 'बलिवैश्वदेव' कर्म नहीं करता तथा जो सर्वभक्षी, सब कुछ बेचनेमें तत्पर तथा मुझे नमस्कार करनेसे भी विमुख है और मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करता, भला इससे बढ़कर दूसरा दुःख और क्या

मूँग, धान, यव, तीना और कंगुनी—ये परम पवित्र अन्न हैं। जो मेरे भक्त पुरुष इन्हें खाते हैं, उन्हें शङ्ख, चक्र, हल और मूसल आदि-सहित मेरे चतुर्भुज स्वरूपका सदा दर्शन होता है।

वसुंधरे! अब मोक्षकामी ब्राह्मणका कर्म बतलाता हूँ, उसे सुनो। मेरे उपासक ब्राह्मणको अध्ययनादि छः कर्मोंमें निरत रहकर अहंकारसे सदा दूर रहना चाहिये। उसे लाभ और हानिकी चिन्ता छोड़ इन्द्रियोंको वशमें रखकर भिक्षाके आहारपर जीवन बिताना चाहिये। उसे सदा मुझसे प्रीतिवाले कर्म करने चाहिये तथा पिशुनता (चुगली) आदिसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। शास्त्रानुसरण करे, बालक, युवा और वृद्ध सबके लिये समान धर्म है। वसुंधरे! एकाग्रचित्त होना, इन्द्रियोंको वशमें रखना और इष्टापूर्त* कर्म करना—वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान, बगीचा लगाना, कूप-तालाब आदिका निर्माण करना ब्राह्मणका स्वाभाविक गुण होना चाहिये। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण मुझे प्राप्त कर लेता है।

अब मेरी उपासनामें तत्पर रहनेवाले मध्यम श्रेणीके क्षत्रियके कर्तव्य धर्मोंका वर्णन सुनो। वह दान देनेमें शूर, कर्मकी जानकारी रखनेवाला, यज्ञोंमें परम कुशल, पवित्र, क्षत्रिय मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंमें ज्ञानवान् तथा अहंकारसे शून्य हो। वह थोड़ा बोले, दूसरोंके गुणोंको समझे, भगवान्‌में सदा प्रीति रखे, विद्यागुरुसे किसी प्रकार मनमें द्वेष न करे तथा कभी कोई निन्दित कर्म न करे। उसे स्वागत-सत्कारादि करनेमें कुशल तथा कृपणतासे दूर रहना चाहिये। देवि! इन गुणोंसे सम्पन्न क्षत्रिय भी मुझे निःसंदेह प्राप्त कर लेता है।

वसुंधरे! अब मैं अपनी उपासना या भक्तिमें संलग्न रहनेवाले वैश्योंके कर्म बतलाता हूँ। मेरे भक्तिमार्गका नित्य आवश्यक वैश्यका धर्म है। उसके मनमें क[illegible] लोभ, लाभ और हानिके भाव नहीं उठने [illegible] वह अतिथियोंको ही अपनी श्रीके रूप [illegible] वह अपने अन्तःकरणमें सदा [illegible] बनाये रखे। वह मोहमें न पड़े, पवित्र ए[illegible] रहकर मनोंके आधारपर उपासना करे और मेरी उपासनामें रुचि रखे। वह नित्य गुरु[illegible] करे तथा अपने सेवकोंपर दया रखे। इन लक्षणोंसे सम्पन्न जो वैश्य अपने कर्मोंका सम्पादन क[illegible] उसके लिये न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और कभी मेरे लिये; अर्थात् मेरा और उसका साक्षात् सम्बन्ध बना रहता है।

माधवि! अब मैं शूद्रके उन कर्मोंका वर्णन [illegible] हूँ, जिनका सम्पादन करके वह मुझमें स्थित हो जा[illegible] जो शूद्र-दम्पति—स्त्री और पुरुष दोनों मेरी उपासन[illegible] भक्तिभावसे करनेवाले हों, भागवत-मतानुयायी, देश[illegible] कालकी जानकारी रखते हों, रजोगुण और तमो[illegible] प्रभावसे मुक्त हों, अहंकाररहित, शुद्ध-हृदय, [illegible] सेवी, विनम्र तथा सबके प्रति श्रद्धालु, अति [illegible] लोभ और मोहसे दूर और बड़ोंको सदा [illegible] नमस्कार करनेवाले एवं मेरे स्वरूपका ध्यान करने[illegible] हों तो मैं हजारों ऋषियोंको छोड़कर उन्हींपर [illegible] जाता हूँ। देवि! तुमने जो चारो वर्णोंके कर्म पूछे [illegible] मैंने उनका वर्णन कर दिया।

देवि! इस प्रकार मेरी उपासनासे सम्बन्ध रखने[illegible] गुणोंका, जिसने भक्तिके साथ अनुष्ठान [illegible] लिया, वह मुझे पानेका अधिकारी है। अब क्षत्रियों[illegible] लिये आचरणीय दूसरा कर्म बतलाता हूँ—उसे सुनो वसुंधरे! यह ऐसा कर्म है, जिसके प्रभावसे उसे 'योग[illegible]

* 'अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते॥ वापिकूपतडागानि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्तमित्यभिधीयते॥' (मार्कण्डेयपुराण १८।६-७, अत्रिसंहिता ४३-४४के) इस वचनानुसार अग्निहोत्र तप, वेदपाठ, अतिथिसत्कार, बलिवैश्वदेव—'इष्टकर्म' तथा कूप-बावली, मन्दिर, तालाबका निर्माण, अन्नदान आदि 'पूर्त' कर्म हैं।

-शुभ हो जाता है। वह लाभ और हानिका त्याग कर स्नेह और कामसे अलग होकर, शीत और उष्णमें निर्विकार रहकर, लाभ और हानिकी चिन्ता न करे। तिक्त-कटु-मधुर, खट्टा-नमकीन और कषाय स्वादवाले पदार्थोंकी भी उसे स्पृहा नहीं करनी चाहिये। उत्तम सिद्धि प्राप्त हो, इसकी भी उसे अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। भार्या, पुत्र, माता-पिता—ये सब मुझे सेवाके लिये मिले हैं, वह मनमें ऐसा भाव रखे। पर इनमें भी आसक्ति न रखकर सदा मेरी भक्तिमें ही तत्पर रहे। वह धैर्यवान्, कार्यकुशल, श्रद्धालु एवं व्रतका पालन करनेवाला हो। उत्सुकताके साथ सदा कर्तव्य कर्ममें तत्पर रहनेवाला, निन्दित कर्मोंसे अलग रहनेवाला, और जिसका बचपन, यौवन समानरूपसे धर्ममें बीता हो, जो भोजन थोड़ा करे, कुलीनतासे रहे, सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाला हो, प्रातःकाल जगनेवाला, क्षमाशील, पर्वकालमें मौन रहनेवाला और जबतक कर्मकी समाप्ति न हो, तबतक इसे निरन्तर करनेवाला हो, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है। निश्चित धर्मके पथपर रहकर अन्याय वस्तुका त्याग करे, धर्मके अनुष्ठानमें परायण रहे और अपना मन सदा मुझमें लगाये रखे। वह यथासमय मल-मूत्रका त्यागकर स्नान कर ले। पुष्प-चन्दन और धूपको मेरी पूजाकी सामग्री मानकर उनका संग्रह करनेमें सदा लगा रहे। कभी कन्दमूल और फलसे ही अपने शरीरका निर्वाह करे। कभी दूध, कभी सत्तू और कभी केवल जलके ही आहारपर रहे। कभी छठी साँझ (तीसरे दिन), कभी चौथी साँझ तथा कभी अनुकूल समयमें निर्दोष फल मिल जायँ तो उनका आहार कर ले। वसुंधरे! दस दिन, एक पक्ष अथवा एक मासमें जो कुछ स्वतः मिल जाय, उसी आहारपर रह जाय। इस प्रकार जो सात वर्षोंतक मेरी आराधना करता है तथा पूर्वकथित कर्मोंमें जिसकी स्थिति बनी रहती है, ऐसा क्षत्रिय 'योग'का अधिकारी होता है तथा योगीलोग भी उसका दर्शन करने आते हैं। (अध्याय ११५)

सुख और दुःखका निरूपण

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! मेरे द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार जो कर्म करता-कराता है, उसे किस प्रकार सफलता प्राप्त होती है, अब मैं यह बतलाता हूँ, सुनो। मेरा भक्त एकाग्रचित्त, सुस्थिर होकर अहंकारका परित्याग कर दे एवं अपने चित्तको सदा मुझमें समाहितकर क्षमाशील, जितेन्द्रिय होकर रहे। वह द्वादशी तिथिको फल-मूल अथवा शाकका आहार करे, अथवा पयोव्रती एवं सर्वथा शाकाहारपर रहनेवाला हो। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, चतुर्दशी—इन तिथियोंमें वह संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करे। इस प्रकार योगविधानपूर्वक मेरी उपासना करनेवाला दृढव्रती पवित्रात्मा व्यक्ति धर्मसे सम्पन्न होकर विष्णुलोकको जाता है। वहाँ उसकी अठारह भुजाएँ होती हैं और उनमें वह धनुष, तलवार, बाण तथा गदा धारणकर सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है। उसे ग्लानि, बुढ़ापा, मोह और रोग नहीं होते। वे छाछठ हजार वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास करते हैं।

अब दुःखका स्वरूप बताता हूँ, उसे सुनो। उचित उपचार करनेसे दुःखसे मुक्ति अथवा उस क्लेशका विनाश सम्भव है। जो मानव सदा अहंकार एवं मोहसे आच्छादित है और मेरी शरणमें नहीं आता, अन्न सिद्ध हो जानेपर जो स्वयं पहले 'बलिवैश्वदेव' कर्म नहीं करता तथा जो सर्वभक्षी, सब कुछ बेचनेमें तत्पर तथा मुझे नमस्कार करनेसे भी विमुख है और मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करता, भला इससे बढ़कर दूसरा दुःख और क्या

होगा ! जो बलिवैश्वदेवके समय आये हुए अतिथिको भोजन अर्पण न कर स्वयं खा लेता है, देवता उसके अन्नको ग्रहण नहीं करते। संसारकी विषम परिस्थितिमें यथाप्राप्त वस्तुसे जो असंतुष्ट रहकर दूसरेकी स्त्री आदिपर बुरी दृष्टि डालता है एवं दूसरोंको कष्ट पहुँचाता है, वह महान् मूर्ख है। जो मानव सत्कर्मोंका अनुष्ठान न करके घरमें ही आलस्यसे पड़ा रहता है, वह समयानुसार कालके चंगुलमें फँस जाता है, वह महान् दुःखका विषय है। कुछ पुरुष अपने कर्मोंके प्रभावसे सुन्दर रूप प्राप्त करते हैं और कुछ दूसरे कुरूप होते हैं। कुछ विद्वान् पुण्यात्मा, गुणोंके ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी होते हैं और कितने बोलनेमें भी असमर्थ, सर्वथा गूँगे। कितनोंके पास धन है, परंतु वे किसीको न तो देते हैं और न स्वयं ही उसका उपभोग करते हैं—इस प्रकार वे दरिद्र ही बने रहते हैं, फिर भला उस दारिद्रयकी तुलनामें और कोई दूसरा दुःख क्या हो सकता है।* किसी पुरुषकी दो स्त्रियाँ हैं, उन दोनोंमेंसे पति एकको तो प्रशंसा करता है और दूसरीको हीन मानता है, तो उस भाग्यहीना स्त्रीके लिये इससे बढ़कर अन्य दुःख क्या होगा ! यह सब पूर्वके ही कर्मोंका तो फल है।

सुमध्यमे ! ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इस प्रकार द्विजाति होकर भी जो पापकर्मोंमें ही सदा रचे-पचे रहें और जिन्हें पचासों निर्मित मनुष्यशरीर प्राप्त हो फिर भी वे शुभ कर्मोंमें असफल रहें तो इससे बढ़कर दुःख क्या होगा ! भद्रे ! तुमने जो पापका प्रसङ्ग मुझसे पूछा, वह पाप सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें बाधक है; अतः दुःखप्राप्ति करानेवाले प्राक्तन (पूर्वजन्मके) एवं तत्कालीन कर्मों और दुःखोंका मार्ग मैंने तुम्हें बताया।

शुभ कर्मोंके विषयमें तुमने जो प्रश्न किया है, कल्याणि ! जिनसे निर्णीत तत्त्व मैं तुम्हें बताता हूँ, वह भी सुनो। जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके उसका भक्तोंको निवेदन कर देता है, उसके पास दुःखका सम्भव नहीं है। जो मेरी पूजा करके नैवेद्य अर्पण कर अन्नको बाँटकर फिर बचे हुएको प्रसाद मानकर स्वयं करता है, उससे बढ़कर संसारमें सुखी कौन है !

वसुंधरे ! मेरे कहे हुए नियमके अनुसार कालोंमें संध्या आदि उत्तम कर्म करके जो जीवन करता है, जगत्को आश्रय देनेवाली पृथ्वि ! जो अतिथि और दुःखी मानवोंके लिये अन्न देकर फिर उसे ग्रहण करता है, जिसके यहाँ आया हुआ कभी निराश नहीं लौटता अर्थात् जिस किसी प्रकारसे कुछ-न-कुछ अर्पितकर उसे सत्कृत करता है, जो प्रत्येक मासमें एकादशीव्रत और अमावास्याको श्राद्धकर्म करता है जिससे पितृगण परम तृप्त होते हैं, जो भोजन तैयार हो जानेपर उसमें हव्यान्न डालता है और उसे समानस्वादसे भक्षण करता है—भला उससे बढ़कर संसारमें कोई दूसरा सुख क्या हो सकता है।

देवि ! जिसकी दो भार्याएँ हैं और दोनोंमें जिसकी बुद्धि विकाररहित है, जो दोनोंको समान दृष्टिसे देखता है, जो पवित्रात्मा पुरुष सदा हिंसारहित कर्म करता है अर्थात् हिंसामें जिसकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती, वह परम शुद्ध पुरुष मन्त्र-सुख भोगनेके लिये ही संसारमें आया है। दूसरेकी सुन्दर स्त्रीको देखकर जिसका चित्त चलायमान नहीं होता और जो मोती आदि रत्नों तथा सुवर्णको मिट्टीके ढेलेके समान देखता है, भला उससे बढ़कर सुखी कौन है ! हाथी और घोड़ोंसे परिपूर्ण युद्धस्थलमें जो योद्धा अपने प्राणोंका परित्याग करता है, संयोग-वियोगमें सदा अनासक्त रहकर जो कुत्सित कर्मोंका परित्याग करता है एवं सर्वदा भगवद्भजन करते हुए संतुष्ट रहकर जीवन धारण करता है, उससे बढ़कर भला संसारमें सुखी कौन है !

* तुलसीदासजीने भी कहा है—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।' इत्यादि (रामचरितमानस ७। १२०। ७)

वसुंधरे ! स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही व्रत है, ऐसा समझकर जो स्त्री अपने स्वामीको सदा संतुष्ट रखती है, धनी होकर भी जो पण्डित पुरुष जितेन्द्रिय और पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें रखे हुए है, जो अपमानको सहता है तथा दुःखमें उद्विग्न नहीं होता, इच्छा अथवा अनिच्छासे भी जो मेरे उत्तम क्षेत्रमें प्राणोंको छोड़ता है, जो पुरुष माता और पिताकी सदा पूजा करता है तथा देवताकी भाँति नित्यप्रति उनका दर्शन करता है, तो इस सुखसे बढ़कर संसारमें अन्य कोई सुख नहीं है । सम्पूर्ण देवताओंमें जो मेरी ही भावना करके पूजा करता है, उससे मैं तिरोहित नहीं होता हूँ और न वह मुझसे ही तिरोहित होता है। भद्रे ! तुमने जो सम्पूर्ण लोकोंके हितसाधनके लिये पूछा था, वह पवित्र एवं निर्णीत वस्तुतत्त्व मैंने तुम्हारे सामने व्यक्त कर दिया। (अध्याय ११६)

भगवान्‌की सेवामें परिहार्य बत्तीस अपराध

भगवान् वराह कहते हैं—भद्रे ! आहारकी एक सुनिश्चित शास्त्रीय मर्यादा है। अतः मनुष्यको क्या खाना चाहिये और क्या नहीं खाना चाहिये, अब यह बताता हूँ, सुनो। माधवि ! जो भोजनके लिये उद्यत पुरुष मुझे अर्पित करके भोजन करता है, उसने अशुभ कर्म ही क्यों न किये हों, फिर भी वह धर्मात्मा ही समझा जाने योग्य है। धर्मके जाननेवाले पुरुषको प्रतिदिन धान, यव आदि—सब प्रकारके साधनमें सहायक (जीवनरक्षणीय) अन्नसे निर्मित आहारका ही सेवन करना चाहिये। अब जो साधनमें बाधक हैं, तुम्हें उन्हें बताता हूँ। जो मुझे अपवित्र वस्तुएँ भी निवेदन करके खाता है, वह धर्म एवं मुक्ति-परम्पराके विरुद्ध महान् अपराध करता है, चाहे वह महान् तेजस्वी ही क्यों न हो, यह मेरा पहला भागवत अपराध है। अपराधीका अन्न मुझे बिल्कुल नहीं रुचता है। जो दूसरेका अन्न खाकर मेरी सेवा या उपासना करता है, यह दूसरा अपराध है। जो मनुष्य स्त्री-सङ्ग करके मेरा स्पर्श करता है, उसके द्वारा होनेवाला यह तृतीय कोटिका सेवापराध है। इससे धर्ममें बाधा पड़ती है । वसुंधरे ! जो रजस्वला नारीको देखकर मेरी पूजा करता है, मैं इसे चौथा अपराध मानता हूँ। जो मृतकका स्पर्श करके अपने शरीरको शुद्ध नहीं करता और अपवित्रावस्थामें ही मेरी सपर्यामें लग जाता है, यह पाँचवाँ अपराध है, जिसे मैं क्षमा नहीं करता। वसुंधरे ! मृतकको देखकर बिना आचमन किये मेरा स्पर्श करना छठा अपराध है। पृथ्वि ! यदि उपासक मेरी पूजाके बीचमें ही शौचके लिये चला जाय तो यह मेरी सेवाका सातवाँ अपराध है। वसुंधरे ! जो नीले वस्त्रसे आवृत होकर मेरी सेवामें उपस्थित होता है, यह उसके द्वारा आचरित होनेवाला आठवाँ सेवा-अपराध है। जगत्‌को धारण करनेवाली पृथ्वि ! जो मेरी पूजाके समय अनुचित—अनर्गल बातें कहता है, यह मेरी सेवाका नवाँ अपराध है। वसुंधरे ! जो शास्त्रविरुद्ध वस्तुका स्पर्श करके मुझे पानेके लिये प्रयत्नशील रहता है, उसका यह आचरण दसवाँ अपराध माना जाता है।

जो व्यक्ति क्रोधमें आकर मेरी उपासना करता है, यह मेरी सेवाका ग्यारहवाँ अपराध है, इससे मैं अत्यन्त अप्रसन्न होता हूँ। वसुंधरे ! जो निषिद्ध कर्मोंको पवित्र मानकर मुझे निवेदित करता है, वह बारहवाँ अपराध है। जो लाल वस्त्र या कौसुम्भ रंगके (वनकुसुमसे रँगे) वस्त्र पहनकर मेरी सेवा करता है, वह तेरहवाँ सेवा-अपराध है। धरे ! जो अन्धकारमें मेरा स्पर्श करता है, उसे मैं चौदहवाँ सेवा-अपराध मानता हूँ। वसुंधरे ! जो मनुष्य काले वस्त्र धारणकर मेरे कर्मोंका सम्पादन करता है, वह पंद्रहवाँ अपराध करता है। जगद्धात्रि ! जो बिना धोती पहने हुए

मेरी उपचर्यामें संलग्न होता है, उसके द्वारा आचरित इस अपराधको मैं सोलहवाँ मानता हूँ। माधवि ! अज्ञानवश जो स्वयं पकाकर बिना मुझे अर्पण किये खा लेता है, यह सत्रहवाँ अपराध है।

वसुंधरे ! जो अभक्ष्य (मत्स्य-मांस) भक्षण करके मेरी शरणमें आता है, उसके इस आचरणको मैं अट्ठारहवाँ सेवापराध मानता हूँ। वसुंधरे ! जो जालपाद-(बतख)का मांस भक्षण करके मेरे पास आता है, उसका यह कर्म मेरी दृष्टिमें उन्नीसवाँ अपराध है। जो दीपकका स्पर्श करके बिना हाथ धोये ही मेरी उपासनामें संलग्न हो जाता है, जगद्धात्रि ! उसका वह कर्म मेरी सेवाका बीसवाँ अपराध है। वरानने ! जो श्मशानभूमिमें जाकर बिना शुद्ध हुए मेरी सेवामें उपस्थित हो जाता है, यह मेरी सेवाका इक्कीसवाँ अपराध है। वसुंधरे ! बाईसवाँ अपराध यह है, जो पिण्याक (हींग)-भक्षण कर मेरी उपासनामें उपस्थित होता है।

देवि ! जो सूअर आदिके मांसको प्राप्त करनेका यत्न करता है, उसके इस कार्यको मैं तेईसवाँ अपराध मानता हूँ। जो मनुष्य मदिरा पीकर मेरी सेवामें उपस्थित होता है, वसुंधरे ! मेरी दृष्टिमें यह चौबीसवाँ अपराध है। जो कुसुम्भ (करमी)का शाक खाकर मेरे पास आता है, देवि ! वह मेरी सेवाका पचीसवाँ अपराध है। सुन्दरि ! जो दूसरेके [illegible] मेरी सेवामें उपस्थित होता है, उसके उस कर्मको मैं छब्बीसवाँ अपराध मानता हूँ। वसुंधरे ! सत्ताईसवाँ अपराध यह है, जो नया अन्न उत्पन्न होनेपर उसके द्वारा देवताओं और पितरोंका यजन न कर उसे स्वयं खा लेता है। देवि ! जो [illegible] उसके इस कार्यको मैं अट्ठाईसवाँ अपराध मानता हूँ। सुश्रोणि ! [illegible]

उन्तीसवाँ अपराध है, जो पुरुष अजीर्णसे ग्रस्त होकर मेरे पास आता है, उसका यह कार्य मेरी सेवाका तीसवाँ अपराध है। यशस्विनि ! जो पुरुष मुझे चन्दन और पुष्प अर्पण किये बिना पहले धूप देनेमें ही तत्पर हो जाता है, उसके इस अपराधको मैं इकतीसवाँ मानता हूँ। मनस्विनि ! भेरी आदिद्वारा मङ्गलशब्द किये बिना ही मेरे मन्दिरके फाटकको खोलना बत्तीसवाँ अपराध है। देवि ! इस बत्तीसवें अपराधको महापराध समझना चाहिये।

वसुंधरे ! जो पुरुष सदा संयमशील रहकर शास्त्रकी जानकारी रखता हुआ मेरे कर्ममें सदा संलग्न रहता है, वह आवश्यक कर्म करनेके पश्चात् मेरे लोकको चला जाता है। परमधर्म अहिंसामें परायण रहते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करना चाहिये। स्वयं अपनी, पवित्र और दक्ष रहकर सदा मेरे भजनके मार्गपर ही चलता रहे। साधक पुरुष इन्द्रियोंको जीतकर सेवा एवं नामादि अपराधोंसे निरन्तर बचा रहे। वह उदार हो और धर्मपर आस्था रखे, अपनी स्त्रीसे ही संतुष्ट रहे। शास्त्रज्ञ और सूक्ष्म बुद्धिसम्पन्न होकर मेरे मार्गपर आरूढ़ रहे। भद्रे ! मेरी कल्पनामें चारों वर्णोंके लिये सन्मार्गमें रहनेकी यही व्यवस्था है।

वसुंधरे ! जो स्त्री आचारमें श्रद्धा रखती है, देवताओंकी भक्ति करती है, अपने स्वामीके प्रति निष्ठा एवं प्रीति रखती है और संसारमें भी उत्तम व्यवहार करती है, वह यदि पतिसे पहले मेरे लोकमें पहुँचती है, तो वह अपने स्वामीकी प्रतीक्षा करती है। यदि पुरुष मेरा भक्त है और अपनी पत्नीको छोड़कर मेरे धाममें पहले पहुँचता है, तब भी अपनी उस भार्याकी प्रतीक्षा करता है। देवि ! इन कर्मों तथा दूसरे उत्तम कर्मोंसे [illegible] हूँ।

सुश्रोणि ! [illegible] अनाचार है। [illegible]

रे धर्मपरायण अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? माधवि ! जो अन्य देवताओंमें श्रद्धा रखते हैं, उनकी बुद्धि मारी गयी है। वे मूर्ख मेरी मायाके प्रभावसे मुग्ध हैं, उनके चित्तमें पाप भरा हुआ है। ऐसे व्यक्ति मुझे पानेके अधिकारी नहीं हैं। भगवति ! मोक्षकी इच्छा रखनेवाले जिन पुरुषोंद्वारा मैं प्राप्य हूँ, उन परमशुद्ध भाववाले पुरुषोंका विवरण सुनाता हूँ। देवि ! यह आख्यान धर्मसे ओतप्रोत है। इसे तुम्हें सुना चुका। माधवि ! दुष्ट व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। जो अश्रद्धालु व्यक्ति इसका अधिकारी नहीं है, जिसने दीक्षा नहीं ली है एवं जो कभी मेरे पास आनेका प्रयत्न नहीं करता, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। माधवि ! दुष्ट, मूर्ख और नास्तिक व्यक्ति इस उपदेशको सुननेके अधिकारी नहीं हैं। देवि ! यह मेरा धर्म महान् एवं ओजस्वी है, इसका मैं वर्णन कर चुका। अब सम्पूर्ण प्राणियोंके हितके लिये तुम दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग पूछना चाहती हो, वह बताओ। [यह अध्याय 'कल्याण'—साधनाङ्कके पृष्ठ ५३८ पर 'वराहपुराण'के नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत है।]

(अध्याय ११७)

पूजाके उपचार

भगवान् वराह बोले—भद्रे ! अब मैं प्रायश्चित्तोंका विधिपूर्वक वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो ! भक्तको चाहिये, मन्त्रविद्याकी सहायतासे यथावत् सभी वस्तु मुझे या अन्य देवताओंको अर्पण करे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारणकर दीपटका काष्ठ उठाना चाहिये। दीपकाष्ठका भूमिस्पर्श करना आवश्यक है, अतः जबतक वह पृथ्वीका स्पर्श न करे, तबतक दीपक जलाना निषिद्ध है। दीपक जलानेके पश्चात् हाथ धो लेना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः इष्टदेवके पास उपस्थित होकर सर्वप्रथम उनके चरणोंकी वन्दना करनी चाहिये। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्र-भावसे भगवान्को दन्तधावन देना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! प्रत्येक भुवन आपका सुन्दरि ! इसके बाद जलसे हाथको शुद्ध कर मुख-प्रक्षालन आदि कर्म करना चाहिये। फिर शुद्ध जलसे इष्टदेवताके मुखका प्रक्षालन करे। सुन्दरि ! इसका मन्त्र इस प्रकार है।' इस मन्त्रसे पूजा करनेके फलस्वरूप पूजक संसारसे मुक्त हो जाता है। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! आत्म-(विष्णु) स्वरूप इस जलको ग्रहण करें। इसी जलद्वारा अन्य देवताओंने भी सदा अपना मुख धोया है।' फिर पञ्चरात्र-मन्त्रद्वारा सुन्दर चन्दन, धूप-दीप और नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। इसके बाद हाथमें पुष्पाञ्जलि लेकर यह प्रार्थना करे—'भगवन् ! आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं। आप नारायणको मेरा नमस्कार है।' पुनः प्रार्थना करे—'भगवन् ! आपकी कृपासे मन्त्रके जाननेवाले यज्ञ

प्रसन्न हो जायँ ।' फिर सिरपर अञ्जलि रखकर निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिये । 'भगवन् ! शास्त्रोंके प्रभावसे आपकी जानकारी प्राप्त हो जानेपर साधककी यदि आपको पानेकी इच्छा और चेष्टा होती है तो आप उसे प्राप्त हो जाते हैं । योगियोंको भी आपकी कृपासे ही मुक्ति सुलभ हुई, अतएव मैं भी आपकी उपासना-कार्य करनेमें संलग्न हो गया हूँ । आपकी शास्त्रीय आज्ञाका मैंने सम्पादन किया है, इससे आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ ।' फिर मेरी भक्तिमें संलग्न रहनेवाला साधक पुरुष इस प्रकार शास्त्रकी विधिका पालनकर कुछ देरतक मेरी प्रदक्षिणा करे ।

मेरा भक्त कोई भी क्रिया उतावलेपनसे न करे । इस प्रकार सभी कार्य सम्पन्न कर मेरी भक्तिमें दृढ़ आस्था रखनेवाला पुरुष घृत तथा तेलसे मेरा अभ्यञ्जन करे । कार्य सम्पादन करनेवाला मन्त्रज्ञ व्यक्ति तेल, घृत आदि स्नेह-पदार्थोंकी ओर लक्ष्य कर एकाग्रचित्तसे इस प्रकार उच्चारण करे—'लोकनाथ ! प्रेमके साथ मैं यह स्निग्ध पदार्थ लेकर आपको अपने हाथसे अर्पण कर रहा हूँ । इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण लोकोंमें मुझे आत्मसिद्धि प्राप्त हो । भगवन् ! आपको मेरा बारंबार नमस्कार है । मेरे मुखसे जो अनुचित बात निकल गयी हो, उसे क्षमा कीजिये ।'

इस प्रकार करते हुए सर्वप्रथम मेरे मनोनुकूल स्नेह-पदार्थ (तेल या घी) लगाना चाहिये । पहले उसे मेरे दाहिने अङ्गमें लगाकर फिर बायें अङ्गमें लगाये । इसके [illegible] लगानेकी विधि है । भद्रे ! [illegible] पुरुष [illegible] उपलेपन करे । भद्रे ! [illegible] [illegible] है, [illegible] है, [illegible] ही [illegible] है । [illegible])

इष्टदेवके ऊपर गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह श्रद्धालु पुरुष स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है । इसके पश्चात् उसे पुण्यात्माओंके लोक प्राप्त होते हैं । इतना ही नहीं, इस प्रकार जो भी मेरे गात्रोंमें तेल अथवा घृतसे अभ्यञ्जन करता है, वह एक-एक कणकी जितनी संख्याएँ होती हैं, उतने हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें जाता है और मेरे उस लोकमें उसकी महान् प्रतिष्ठा होती है ।

भद्रे ! अब जो उद्वर्तन (सुगन्धित वस्तुओंसे बना हुआ अनुलेप) मुझे प्रिय है, उसे बताता हूँ, जिससे मेरे अङ्ग तो शुद्ध होते ही हैं, मुझे प्रसन्नता भी प्राप्त होती है । कार्य-सम्पादन करनेवाला शास्त्रज्ञानी पुरुष लोध, पीपर, मधु, मधूक (महुआ), अश्वगर्भ अथवा रोहिण एवं कर्कट आदिके चूर्णको एकत्र करके उपलेपन बनाये तो मुझे अधिक प्रिय है । यह अनुलेपन अथवा अन्य अन्नोंके चूर्णद्वारा भी अनुलेपन बनाया जा सकता है । जिसके हाथोंद्वारा मेरा अनुलेप होता है, उसपर मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ । क्योंकि यह अनुलेपन मेरे शरीरको बहुत सुख देनेवाला है । अतः इसे अवश्य करना चाहिये । यदि मेरी भक्ति करनेवाला परमसिद्धि चाहता है तो इस प्रकार अनुलेपन लगाकर मेरा स्नान कराये । इसके बाद आँवला और सुगन्धित उत्तम पदार्थोंको एकत्र करे और दृढव्रती पुरुष उनसे मेरे सम्पूर्ण गात्रोंको मले । तत्पश्चात् जलका घड़ा लेकर इस आगमज्ञ मन्त्र उच्चारण करे—'भगवन् ! आप देवताओंके भी देवता, अनादि, सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं । आपका स्वरूप अत्यन्त शुद्ध है, [illegible] [illegible] स्नान स्वीकार कीजिये ।' मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाला पुरुष इस प्रकार कहकर मेरा स्नान कराये । घड़ा सोने अथवा चाँदीका हो । यदि ये द्रव्य न उपलब्ध हो सकें तो कर्मज्ञ [illegible] पुरुष मेरे लिये [illegible] स्नान करा सकता है । [illegible] स्नान कराकर

मन्त्रोंको पढ़ते हुए चन्दन अर्पण करना चाहिये। मन्त्रार्थ यह है—'प्रभो! सम्पूर्ण गन्धोंसे आपके मनमें प्रसन्नता प्राप्त होती है। ये चन्दन कई प्रकारके होते हैं, यह शास्त्रकी सम्मति है। ये सभी देवादि लोकोंमें उत्पन्न होते हैं। आपकी कृपासे सत्कार्योंमें इनका प्रयोग होता है। मैंने आपके अङ्गोंमें लगानेके लिये इन पवित्र चन्दनोंको प्रस्तुत किया है। भक्तिसे तुष्ट भगवन्! आप इन्हें कृपाकर स्वीकार करें।'

इस प्रकार चन्दन आदि सुगन्धयुक्त पदार्थ एवं माल्य आदि अर्पण करके पूजन करनेका विधान है। कर्ममें श्रद्धा रखनेवाला कर्मशील पुरुष ऐसी अर्चना करके यह कहते हुए पुष्पाञ्जलि दे—'अच्युत! ये समयानुसार जलमें तथा स्थलमें उत्पन्न होनेवाले पवित्र पुष्प हैं। संसारसे मेरा उद्धार हो जाय, इसलिये यह पुष्प आप स्वीकार कीजिये! स्वीकार कीजिये!'

इस प्रकार मेरे भागवत-सम्प्रदायोक्त विधिका पालन करते हुए मेरी अर्चना करनेके पश्चात् मुझे सुगन्धद्रव्योंसे बना हुआ धूप देना चाहिये। धूपसे मुझे बहुत प्रेम है। इसके प्रदानसे दाताके मातृ-पितृ-कुलोंकी आत्मा पवित्र हो जाती है। विधिके साथ धूप लेकर यह मन्त्र[1] पढ़ना चाहिये—मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! यह दिव्य धूप बहुत-से सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पन्न है। इसमें वनस्पतिका रस भी सम्मिलित है। जन्म-मृत्युसे मुझे मोक्ष मिल जाय, इसलिये मैं आपको यह धूप निवेदित करता हूँ, आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। भगवन्! सम्पूर्ण देवताओं तथा प्राणियोंके लिये शान्ति सुलभ हो। मैं भी सदा शान्तिसे सम्पन्न रहूँ। ज्ञानियोंकी योगभावमयी शान्तिसे आप धूप ग्रहण करें। आपको मेरा नमस्कार है। जगद्गुरो! आपके अतिरिक्त इस संसारसागरसे मेरा उद्धार करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।'

इस प्रकार माला, चन्दन, अनुलेपन आदि सामग्रियोंसे पूजा करके रेशमी स्वच्छ वस्त्र, जिसका कुछ भाग पीले रंगका हो, निवेदित करना चाहिये। ऐसी अभ्यर्चना करनेके उपरान्त सिरपर अञ्जलि बाँधे हुए इस मन्त्रका पाठ करे[2]। मन्त्रका भाव यह है—'सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले भगवन्! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं! लक्ष्मी आपके पास शोभा पाती हैं, आपका विग्रह आनन्दमय है। आप ही सबके रक्षक, रचयिता और अधिष्ठाता हैं। प्रभो! आप आदि पुरुष हैं, आपका रूप सर्वथा दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय है। आपके दिव्य अङ्गको आच्छादित करनेके लिये यह कौशेय (रेशमी) वस्त्र, जो कुछ पीले रंगसे सुशोभित एवं मनोहर है, मैं अर्पण करता हूँ। आप स्वीकार कीजिये।'

'देवि! फिर मुझे वस्त्रोंसे विभूषित कर हाथमें एक पुष्प ले और उससे आसनकी कल्पना कर मुझे अर्पण करे। वस्त्र मेरे विग्रहके अनुसार होना चाहिये। पूजा करते समय प्रणव, धर्म एवं पुण्यमय विचारसे पूजनको सम्पन्न करना चाहिये। आसन अर्पण करनेके मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! यह आसन बैठने योग्य, आपकी प्रीति उत्पन्न करनेवाला, प्राज्ञकी रक्षामें उपयुक्त,

१ वनस्पतिरसो दिव्यो बहुद्रव्यसमन्वितः ॥ मम संसारमोक्षाय धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
शान्तिर्वै सर्वदेवानां शान्तिर्मम परायणम् ॥ सांख्यानां शान्तियोगेन धूपं गृह्ण नमोऽस्तु ते।
त्राता नान्योऽस्ति मे कश्चित्त्वां विहाय जगद्गुरो॥
(११८। ४४—४६)

२ प्रीयतां भगवान्पुरुषोत्तमः श्रीनिवासः श्रीमानानन्दरूपः।
गोप्ता वर्चोधिकर्त्ता मान्यनाथो भूतनाथ आदिरव्यक्तरूपः।
क्षौमं वस्त्रं पीतरूपं मनोज्ञं देवाङ्गे स्वे गात्रप्रच्छादनाय॥ (११८। ४९)

प्राणियोंके लिये श्रेयोमय, आपके योग्य एवं सत्यस्वरूप है। इसे आप ग्रहण कीजिये।'

इस प्रकार श्लाघ्य नैवेद्य आदि पदार्थोंको अर्पण कर मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाला पुरुष यथाशीघ्र कल्पित मुख-प्रक्षालन देनेके लिये उद्यत हो जाय। पुनः पवित्र होकर देवताओंके लिये स्तुति करे—आप सभी लोग भगवत्-परायण हों। फिर उत्तम जल लेकर अपनी शुद्धि करे। यों भगवान्‌को नैवेद्य अर्पण करके शेष प्रसाद हटा दे। इसके उपरान्त हाथमें ताम्बूल लेकर यह मन्त्र पढ़े। मन्त्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! यह ताम्बूल सम्पूर्ण सुगन्धयुक्त पदार्थोंसे संयुक्त है। ... लिये सम्यक् प्रकारसे यह अलंकारका कार्य देता है। आप इसे स्वीकार करें, साथ ही आपकी ... प्रभावसे हमारा भवन विशिष्ट हो जाय। भगवन्! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने श्रीमुखमें यह ... अलंकार अर्पण किया है। इससे मुखकी शोभा बढ़ती है। अतः आप इसे ग्रहण करनेकी कृपा कीजिये।' मेरे भक्त इन उपचारोंसे मेरी आराधना करे। इसके परिणामस्वरूप वह सदा मेरे महान् लोकोंको प्राप्त कर वहाँ नित्य निवास करता है। (अध्याय ११८)

श्रीहरिके भोज्यपदार्थ एवं भजन-ध्यानके नियम

पृथ्वीने कहा—माधव! मैं आपके मुखारविन्दसे पूजनकी विधिका श्रवण कर चुकी। निश्चय ही इस कर्म (पूजा)में संसारसे मुक्ति दिलानेकी सामर्थ्य है। भगवन्! अब मैं आपसे आपकी पूजाविधि एवं द्रव्योंके विषयमें कुछ जानना चाहती हूँ, आप इसे मुझे बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे! जिस विधिसे पूजाकी वस्तु मुझको अर्पित करनी चाहिये, अब वह बताता हूँ, सुनो। सात प्रकारके अन्नोंको लेकर उनमें दूधका सम्मिश्रण करे। साथ ही मुझे मधूक और उदुम्बर आदिके शाक भी प्रिय हैं। माधवि! अब मेरे योग्य जो धान्य हैं, उन्हें कहता हूँ—अच्छे गन्धसे युक्त 'धर्मचिल्लिक' नामक शाक और लाल धानका चावल तथा अन्य उत्तम स्वादिष्ट चावल मुझे प्रिय हैं। उत्तम कुङ्कुम और मधु भी मुझे प्रिय हैं। आमोदा, शिवसुन्दरी, शिरीष और आकुल संज्ञक धानके चावल भी मेरे लिये उपयुक्त हैं। यवसे बने अनेक प्रकारके अन्न तथा शाक भी मेरे पूजनमें उपयुक्त होते हैं। मूँग, माष (उड़द) तिल, फंगुनी, कुल्थी, गेहूँ, सावाँ—ये सभी मुझे प्रिय हैं। जिस्तृतरूपसे यज्ञ चल रहा हो, वेदके पारगामी विद्वान् यज्ञ करा रहे हों, उस समय मेरी प्रसन्नताके लिये ये वस्तुएँ मुझे अर्पण करनी चाहिये। यज्ञमें बकरी, भैंस आदि पशुओंका दूध, दही और घृत सर्वथा निषिद्ध हैं।

वसुंधरे! मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंमें जो वस्तुएँ योग्य हैं, उन्हें मैंने बतला दिया। मेरे भक्तोंको सुख पहुँचानेवाले वे उक्त पदार्थ भोज्य और कल्याणप्रद हैं। वसुंधरे! जिसे उत्तम सिद्धि पानेकी इच्छा हो, उसे इस प्रकार मेरा यजन करना चाहिये। इस विधिसे जो यजन करेंगे, वे कर्ममें कुशल पुरुष मेरी परम सिद्धि पानेके पूर्ण अधिकारी होंगे।

भगवान् वराह कहते हैं—'वसुंधरे! मेरा उपासक इन्द्रियोंको वशमें रखकर जो कुछ अन्न उपलब्ध हो, उसे ग्रहण करे। भामिनि! मैं नीचे-ऊपर, इधर-उधर, दिशाओं और विदिशाओंमें तथा सभी जीवोंमें सर्वत्र विराजमान हूँ। अतएव जिसे परम गति पानेकी इच्छा हो, उसे चाहिये कि सब प्रकारसे सभी प्राणियोंको मेरा ही रूप जानकर उनकी वन्दना करे। प्रातःकाल एक अञ्जलि जल लेकर ...मुख हो मेरी उपासना

करनी चाहिये । 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र जपना चाहिये । उसे यह भावना करनी चाहिये कि जो सम्पूर्ण संसारमें श्रेष्ठ हैं, जिनकी 'ईशान' संज्ञा है, जो आदि पुरुष हैं, जो स्वभावतया ही कृपालु हैं, उन भगवान् नारायणका हम संसारसे अपने उद्धारके लिये यजन करते हैं ।

इसके बाद पश्चिमाभिमुख होकर फिर अञ्जलि भर जल हाथमें ले । साथ ही द्वादशाक्षर वासुदेव-मन्त्र पढ़कर इस मन्त्रका उच्चारण करे ।* 'भगवन् ! आप जिस प्रकार सर्वप्रथम संसारकी सृष्टि करनेवाले हैं, पुराण पुरुष हैं और परम विभूति हैं, वैसे ही आप आदिपुरुषके अनेक रूप भी हैं । आपका संकल्प कभी विफल नहीं होता । इस प्रकार अनन्तरूपसे विराजनेवाले आप (प्रभु) को मैं नमस्कार करता हूँ ।' इसके बाद उसी समयसे पुनः एक अञ्जलि जल हाथमें ले और उत्तरमुख खड़ा होकर ॐ 'नमो नारायणाय' कह कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो परम दिव्य, पुराण पुरुष हैं, आदि, मध्य और अन्तमें जिनकी सत्ता काम करती है, जिनके अनन्त रूप हैं, जो संसारको उत्पन्न करते तथा जो शान्तस्वरूप हैं, संसारसे मुक्त करनेके लिये जो अद्वितीय पुरुष हैं, उन जगत्स्रष्टा प्रभुका हम यजन करते हैं ।'[1]

इसके पश्चात् उसी समयसे दक्षिणाभिमुख होकर 'ॐ नमः पुरुषोत्तमाय' यह मन्त्र पढ़कर ऐसी धारणा करनी चाहिये कि 'जो यज्ञस्वरूप हैं, एवं जिनके अनन्त रूप हैं, सत्य और ऋत जिनकी अनादिकालसे संज्ञाएँ हैं, जो अनादिस्वरूप काल हैं, तथा समयानुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं, उन प्रभुको संसारसे मुक्त होनेके लिये हम भजते हैं ।' तदनन्तर काष्ठकी भाँति अपने शरीरको निश्चल बनाकर, इन्द्रियोंको वशमें करते हुए, मनको भगवान्में लगाकर इस प्रकार धारणा करे—'भगवन् ! सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं, कमलके समान आपकी आँखें हैं, जगत्में आपकी प्रधानता है, आप लोकके स्वामी हैं, तीनों लोकोंसे उद्धार करना आपका स्वभाव है, ऐसे सोमरस पीनेवाले आप (प्रभु)का हम यजन करते हैं ।'

वसुंधरे ! यदि उत्तम गति पानेकी इच्छा हो तो साधकको तीनों संध्याओंमें बुद्धि, युक्ति और मतिकी सहायता लेकर इसी प्रकारसे मेरी उपासना करनी चाहिये । यह प्रसङ्ग गोपनीयोंमें परम गोपनीय, योगियोंकी परम निधि, सांख्योंका परम तत्त्व और कर्मोंमें उत्तम कर्म है । देवि ! मूर्ख, कृपण और दुष्ट व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये । किंतु जो दीक्षित, उत्तम शिष्य एवं दृढ़व्रती है, उसे ही इसे बताना उचित है । मुझ विष्णुके मुखारविन्दसे निकला हुआ यह गुह्य तत्त्व मरणकाल उपस्थित होनेपर भी बुद्धिमें धारण करने योग्य है । इसे कभी विस्मृत नहीं करना चाहिये । जो प्रातःकाल उठकर सदा इसका पाठ करता है, वह दृढ़व्रती पुरुष मेरे लोकमें स्थान पानेका अधिकारी है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये । इस प्रकार जो व्यक्ति तीनों संध्याओंमें कर्मका सम्पादन करता है, वह हीन योनियोंमें कभी नहीं पड़ता । (अध्याय ११९-२०)

---

* यथा तु देवः प्रथमादिकर्त्ता पुराणरूपश्च यथा विभूतिः ।
तथा स्थितं चादिमनन्तरूपममोघसंकल्पमनन्तमीडे ॥ १२० । ११ ॥

१ यजामहे दिव्यपरं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तरूपम् ।
भवोद्भवं विश्वकरं प्रशान्तं संसारमोक्षावहमद्वितीयम् ॥ १२० । १३ ॥

मुक्तिके साधन

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब जिस धर्मके प्रभावसे प्राणीको पुनः गर्भमें नहीं जाना पड़ता, उसे बताता हूँ, तुम सुनो ! यह सम्पूर्ण शास्त्रों एवं धर्मोंका निश्चोत है । जो बड़ा-से-बड़ा कार्य करके भी अपनी प्रशंसा नहीं करता और जो सदा शुद्ध अन्तःकरणसे शास्त्रीय सत्कर्मोंका अनुष्ठान करता रहता है, वह उन सत् कर्मोंके प्रभावसे भी पुनः जन्म नहीं लेता । जो मेरा सामर्थ्यशाली भक्त होकर सबपर कृपा करता है तथा कार्य और अकार्यके विषयमें जिसे पूर्ण ज्ञान है एवं जिसकी सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रद्धा है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता । जो सर्दी-गर्मी, वात-वर्षा और भूख-प्यासको सहता है, जो गरीब होनेपर भी लोभ, मोह एवं आलस्यसे दूर रहता है, कभी झूठ नहीं बोलता, किसीकी निन्दा नहीं करता, जो अपनी ही स्त्रीसे संतुष्ट रहता है, दूसरोंकी स्त्रियोंसे दूर रहता है तथा जो सत्यवादी, धीर आत्मा एवं निरन्तर भगवान्का प्रिय भक्त है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है । जो संविभाग (बाँट) कर खाता है, जो ब्राह्मणोंका भक्त है और जो सबसे मधुर वाणी बोलता है, वह कुत्सितयोनियोंमें न जाकर मेरे लोकका अधिकारी होता है ।

वसुंधरे ! अब मैं तुम्हें एक दूसरा उपाय बतलाता हूँ, सुनो ! जिसके प्रभावसे मेरी निरंतर उपासना करनेवाला पुरुष विकृतयोनियोंमें नहीं जाता । जो कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, जो सम्पूर्ण-प्राणियोंके हितमें लगा रहता है और जो मन, कर्म, वचनसे पवित्र है, वह विकृतयोनियोंमें नहीं पड़ता । जिसके मनमें सर्वत्र समता है, जो मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझता है, जो बाल्यकालमें ही ब्रह्मचर्यसे रहनेवाला, इन्द्रियजिज्ञी, और सदा ... रहता है, उसे नीचयोनि नहीं ... दूसरे द्वारा किये अपकारोंपर कभी किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं देता, सदा कर्तव्य कर्म ही स्मृत रहते हैं । और जो कुछ यथार्थ बोलता है, वह नीचयोनियोंमें पड़ता । जो व्यर्थ बातोंसे सदा दूर रहता है, जि तत्त्वज्ञानमें अटल निष्ठा है, जो सदा अपनी इ तत्पर रहकर परोक्षमें भी कभी किसीकी नि नहीं करता, उसे हीनयोनियोंमें नहीं जाना पड़ भद्रे ! जो ऋतुकालमें ही संतान-प्राप्तिकी इच्छ अपनी स्त्रीसे सहवास करता और सदा मेरी उपासनामें रहता है, वह साधक हीनयोनिमें नहीं जाता ।

वसुंधरे ! अब एक दूसरी बात बताता हूँ, उसे सुनो । जो सदा संयत रहनेवाले पुरुषों धर्म है और जिसका मनु, अङ्गिरा, शुक्राचार्य, गौ मुनि, चन्द्रमा, रुद्र, शङ्ख-लिखित, कश्यप, धर्मदे अग्निदेव, पवनदेव, यमराज, इन्द्र, वरुण, कुबे शाण्डिल्यमुनि, पुलस्त्य, आदित्य, पितृगण और स्वय ब्रह्मा आदि वेद-धर्म-द्रष्टाओंने पृथक्-पृथक् रूपसे दे और वर्णन किया है, उस धर्मके पालनमें जो मनु निश्चितरूपसे तत्पर रहकर अपने-आपमें परमात्म देखता है, वह विकृतयोनिमें न जाकर मेरे लोक जानेका अधिकारी है । जो अपने धर्मका पालन कर है तथा अपनी बुद्धिके अनुसार ठीक बोलता है, दूसरे की निन्दासे दूर रहता है, सम्पूर्ण धर्मोंमें जिसकी निश्चित बुद्धि रहती है, जो दूसरोंके धर्मोंकी निन्दा नहीं करता तथा जो अपने धार्मिक मार्ग अटल रहता है, ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त एवं मे कर्मोंका सम्पादन करनेवाला पुरुष विकृतयोनिमें न जाकर मेरे लोकको ही प्राप्त होता है ।

जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जिन्होंने क्रोधपर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया है, जो लोभ और मोहसे सदा दूर

रहते हैं, जो विश्वके उपकारमें तत्पर हैं, जो देवता, अतिथि तथा गुरुमें श्रद्धा रखते हैं, जो कभी किसीकी हिंसा नहीं करते, मद्य-मांसका कभी सेवन नहीं करते, जो अनुचित भाव-बन्धन करनेकी चेष्टा नहीं करते, जो ब्राह्मणको 'कपिला' धेनुका दान करते हैं—ऐसे धर्मसे युक्त पुरुष गर्भमें नहीं पड़ते; वे मेरे लोकको ही प्राप्त होते हैं। जो अपने सभी पुत्रोंके प्रति समता रखता है, क्रोधमें भरे हुए ब्राह्मणको देखकर भी उसे प्रसन्न करनेकी ही चेष्टा करता है, जो भक्तिपूर्वक कपिला-गौका स्पर्श करता है, जो कुमारी कन्याके प्रति कभी अपवित्र भाव नहीं करता, जो कभी अग्निका लङ्घन नहीं करता, जो जलमें शौच नहीं करता एवं गुरुमें श्रद्धा-बुद्धि रखता है, जो उनकी तथा ईश्वरकी कभी निन्दा नहीं करता, इस प्रकारका धर्ममें तत्पर पुरुष निश्चय ही मुझे प्राप्त कर लेता है और वह पुरुष माताके गर्भमें न जाकर मेरे ही लोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १२१)

कोकामुखतीर्थ (वराहक्षेत्र*)का माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं तुम्हें गोपनीयोंमें भी एक परम गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, जिसके प्रभावसे पशु-योनिमें गये हुए प्राणी भी पापसे मुक्त हो जाते हैं, इसे तुम ध्यानसे सुनो। जो मानव अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें स्त्री-सङ्ग नहीं करता तथा दूसरेके अन्नको खाकर उसकी निन्दा नहीं करता, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। बाल्यकालमें भी जो सदा मेरे व्रतका पालन करता है, जो जिस-किसी प्रकारसे भी सदा संतुष्ट रहता है तथा जो माता-पिताकी पूजा करता है, वह मेरे लोकमें जाता है। जो परिश्रमसे भी प्राप्त सामग्रीको बाँटकर खाता-पीता है, जो गुणी, दाता तथा संयतभोक्ता है तथा जो सभी कर्तव्य-कार्योंमें स्वतः लगा रहता है एवं अपने मनको सदा वशमें किये रहता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। जो कुत्सित कर्म नहीं करता, जो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करता है, समर्थ होकर भी जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर क्षमा-दया करता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। जो निःस्पृह रहकर दूसरोंकी सम्पत्तिके प्रति कभी लोभ नहीं करता, ऐसा पुरुष मेरे लोकमें जाता है। वरारोहे ! एक गोपनीय विषय जो देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य एवं दुर्ज्ञेय है, उसे अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी जो हिंसा नहीं करता, जो पवित्रात्मा एवं दयाशील है और जो 'कोकामुख'नामक तीर्थमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह मुझे परम प्रिय है। मेरी कृपादृष्टिसे वह कभी वियुक्त नहीं होता।'

पृथ्वी बोली—माधव ! मैं आपकी शिष्या, दासी और आपमें अटल श्रद्धा रखनेवाली हूँ, आपमें भक्ति रखनेके बलपर आपसे पूछती हूँ कि वाराणसी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, अट्टहासतीर्थ, भद्रकर्णह्रद, द्विरण्ड, मुकुट, मण्डलेश्वर, केदारक्षेत्र, देवदारुवन, जालेश्वर, दुर्ग, गोकर्ण, कुब्जाम्रेश्वर, एकलिङ्ग—ऐसे प्रसिद्ध एवं पवित्र तीर्थस्थानोंको छोड़कर आप 'कोकामुख'क्षेत्रकी ही इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ?

भगवान् वराह बोले—भीरु ! तुम्हारा कहना ठीक है, बात ऐसी ही है, 'कोकामुख' मुझे अत्यन्त ही प्रिय है। अब 'कोकामुख'क्षेत्र जिन कारणोंसे अधिक प्रसिद्ध है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। तुमसे जिन क्षेत्रोंका वर्णन किया है, वे सभी भगवान् रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाले 'पाशुपततीर्थ' हैं, जिन्हें 'पाशुपत-क्षेत्र' कहते

* इसका उल्लेख आगे १४०वें अध्यायमें भी है। नंदलाल देके अनुसार यह स्थान नाथपुरके पास तम्बर, अरुणा और सुनकोशी नदियोंके त्रिवेणी सङ्गमद्वारा निर्मित है। (Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeve India, Page 101; ('कल्याण' तीर्थाङ्क—पृ० १८५-८६)।

है, किंतु यह 'कोकामुख-क्षेत्र' मुझे अधिक प्रिय है। वसुन्धरे! इसी विषयमें मैं तुम्हें एक परम प्रसिद्ध उपाख्यान बताता हूँ, इसमें 'कोकामुख' क्षेत्रकी प्रसिद्धिका हेतु सन्निहित है।

एक बार इस 'कोकामुख'-क्षेत्रमें मांसके लोभी एक व्याध घूम रहा था। वहीं एक अन्य जलचरके साथमें एक मत्स्य भी रहता था। उसको देखकर व्याधने तुरंत ही बंसी (काँटे) से उसे बाहर खींच लिया, तथापि वह बलवान् मत्स्य उसके हाथसे तुरत निकल गया। इतनेमें एक बाजकी दृष्टि, जो आकाशमें चक्कर लगा रहा था, उस मत्स्यपर पड़ी और वह उसको पकड़नेके लिये नीचे उतरा और फिर उसे पकड़कर तेजीसे उड़ चला। परंतु वह भी उसके बोझको न सँभाल सका और उस मछलीके साथ ही इसी 'कोकामुख'-क्षेत्रमें गिर पड़ा। किंतु आश्चर्य! वह गिरते ही इस तीर्थके प्रभावसे रूप, गुण एवं बलसे युक्त एक कुलीन राजपुत्रके रूपमें परिणत हो गया। कुछ समय बाद उसी व्याधकी स्त्री भी मांस लिये हुए वहाँ जा पहुँची। इतनेमें ही मांसके लिये लालायित रहनेवाली एक मादा चील भी उसके हाथसे मांस छीननेके लिये आयी, जो मांस छीननेके लिये बार-बार झपटा मारने लगी। उसी क्षण बलपूर्वक मांस लेनेकी इच्छा रखनेवाली उस मादा चीलपर व्याधने बाण मारा, जिससे वह मेरे इस 'कोकाक्षेत्र'में गिर पड़ी और उसके प्राण निकल गये।

तदनन्तर उस चीलने चन्द्रपुरनामक नगरमें सुन्दरी राज-पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया। उसका यश बड़ी तेजीसे चारों ओर फैलने लगा। वह कन्या धीरे-धीरे [illegible] और शनैः-शनैः रूप, गुण, अवस्था एवं सभी [illegible] ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी, परंतु वह पुरुषोंसे सदा [illegible] पुरुषोंकी चर्चा भी न करती थी, और वह उनकी भी निन्दा किया करती थी। कुछ दिनोंपर उसका 'अनन्तपुर'के एक राजकुमारके पुत्रके साथ विवाह हुआ। फिर बाद दोनों पति-पत्नी [illegible] साथ रहने लगे। फिर वे परस्परके प्रेमबन्धनमें इस प्रकार बँध गये कि एक मुहूर्त भी कोई किसीको छोड़ न सकता था। अब वही कन्या अत्यन्त मन देकर अपने स्वामीकी सब प्रकार सेवा करने लगी।

एक दिन मध्याह्नके समय राजकुमारके सिरमें वेदना उत्पन्न हुई। अनेक कुशल वैद्य चिकित्सामें लगे, किंतु उसकी सिरोव्यथा दूर न हो सकी। अन्य मन्त्रज्ञ भी विफल हुए। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद एक दिन उस राजकुमारीने अपने स्वामीसे यह जिज्ञासा की—'प्रभो! आपके सिरमें यह वेदना है, यह क्या और कैसे है? यदि मुझपर आपका तनिक भी स्नेह हो तो आप मुझे इसे तत्त्वतः बतानेकी कृपा कीजिये। अनेक कुशल वैद्य आपका उपचार कर रहे हैं, पर उन्हें वेदना दूर करनेमें सफलता नहीं मिलती है।' इसपर राजकुमारने कहा—'भद्रे! क्या तुम यह भूल गयी कि यह मनुष्य-शरीर व्याधियोंका ही मन्दिर है? यह मनुष्य-शरीर रोग और दुःखोंसे भरा है, संसाररूपी सागरमें पड़े हुए मुझसे तुम्हें बार-बार ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है।' राजकुमारके ऐसा कहनेपर उस राजकन्याके मनमें उत्सुकता अब और बढ़ गयी।

कुछ दिन बाद पुनः उस राजपुत्रीने अत्यन्त आग्रहपूर्वक उस प्रश्नको राजकुमारसे पूछा। इसपर [illegible] अपनी भार्यासे कहा—'भद्रे! तुम इस मानुषी [illegible] त्याग करो और अपने पूर्वजन्मकी बातें स्मरण करो। यदि तुम्हें पूर्वजन्मकी बातें जाननी हों तो कल्याणि!

पूजा करो; क्योंकि उन्होंने मुझे अपने उदरमें धारण किया था। उनका सम्मान करके और उनकी आज्ञा लेनेके पश्चात् मैं 'कोकामुख'क्षेत्रमें चलकर तुम्हें निःसंदेह यह प्रसङ्ग सुनाऊँगा। अनिन्दिते! अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सारा वृत्तान्त मैं तुम्हें वहीं बताऊँगा।'

तदनन्तर वह राजकुमारी अपने सास और श्वशुरके सामने गयी और उनके चरणोंको पकड़कर बोली—'मुझे आप दोनोंसे कुछ निवेदन करना है। मैं इस विषयमें आपलोगोंसे अनुमति प्राप्त करना चाहती हूँ।' फिर उसने कहा कि 'हम दोनों स्त्री-पुरुष आपकी आज्ञासे पवित्र 'कोकामुख'-नामक क्षेत्रमें जाना चाहते हैं। आपलोग ही हमारे गुरु हैं। इस कार्यकी गरिमाको देखकर आप हमलोगोंको रोकें नहीं। आजतक मैंने कभी कुछ भी आपलोगोंसे नहीं माँगा है। यह प्रथम अवसर है कि हम आपके सामने याचना करने आये हैं। अतः आपलोग मेरी इस याचनाको पूर्ण करनेकी कृपा करें। समस्या यह है कि आपके ये कुमार निरन्तर सिरकी वेदनासे पीड़ित रहते हैं और दोपहरके समयमें तो ये मृतकके तुल्य हो जाते हैं। कोई भी उपचार सफल नहीं हो रहा है। ये सब सुख-भोगोंको छोड़कर सदा पीड़ासे दुःखी रहते हैं। इनका यह दुःख 'कोकामुख'-क्षेत्रमें गये बिना दूर होनेका नहीं है।'

उस समय शकजातियोंके अध्यक्ष उन नरेशने पुत्रवधूकी बात सुनकर अपने हाथसे पुत्र एवं पुत्रवधूके सिरको सहलाकर कहा—'पुत्र! 'कोकामुख'-क्षेत्रमें जानेकी बात तुमलोगोंके मनमें कैसे आयी! हाथी, घोड़े, सवारियाँ, अप्सराओंकी तुलना करनेवाली स्त्रियाँ, कोष और रत्नभंडार तथा सात अङ्गोंसहित हमारी यह सम्पूर्ण राज्य-सम्पत्ति आदि सभी तुम्हारे अधीन हैं। तुम इन सबको ले लो। सारी सम्पत्तियोंका उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है। मेरे प्राण तुम्हींमें सदा बसे रहते हैं। तुम 'कोकामुख'-क्षेत्र मत जाओ।' पिताके इस प्रकार कहनेपर राजकुमारने उनके चरण पकड़ लिये और नम्रतापूर्वक कहने लगा—'पिताजी! राज, कोष, सवारी अथवा सेनासे मेरा क्या प्रयोजन! मैं तो अभी उस 'कोकामुख'-क्षेत्रमें ही जाना चाहता हूँ। मैं सिरकी वेदनासे नितान्त पीड़ित हूँ। यदि मैं जीवित रहा, तब राज्य, सेना और कोष भी मेरे ही होंगे, इसमें कोई संशय नहीं, पर इस पीड़ासे मुक्ति तो मुझे वहाँ जानेसे ही मिलेगी।

अन्तमें शक-नरेशने पुत्रकी बातपर विचार करके उसे जानेकी आज्ञा दे दी। जब राजकुमारने 'कोकामुख'की यात्रा आरम्भ की तो उसके साथ बहुत-से व्यापारीवर्ग और नागरिक स्त्री-पुरुष भी चल पड़े। बहुत समयके बाद वे सभी इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर राजकुमारीने अपने स्वामीसे ये वचन कहे—'स्वामिन्! आपसे मैंने जो पहले प्रश्न किया था, उस समय आपने मुझे 'कोकामुख-क्षेत्र'में पहुँचकर बतलानेका आश्वासन दिया था, अतः अब बतानेकी कृपा कीजिये।' इसपर राजकुमारने अपनी भार्यासे स्नेहपूर्वक कहा—'प्रिये! अब रात्रि हो गयी है। इस समय तुम सुखपूर्वक सो जाओ। यह सब मैं प्रातःकाल बताऊँगा।' प्रातःकाल वे दोनों स्नान करके रेशमी वस्त्र धारण करके बैठे। राजकुमारने सर्वप्रथम सिर झुकाकर भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह अपनी पत्नीको पकड़कर, पूर्व-उत्तर भागमें (अपने मत्स्य-देहकी पड़ी) अस्थियोंको दिखाकर कहने लगा—'प्रिये! ये मेरे पूर्व शरीरकी हड्डियाँ हैं। पूर्वजन्ममें मैं मत्स्य था। एक बार जब मैं इस 'कोकामुख-'क्षेत्रके जलमें विचर रहा था कि एक व्याधने बंसीसे मुझे पकड़ लिया। उस समय मैं अपनी शक्ति लगाकर उसके हाथसे तो निकल गया। पर एक चील मुझे लेकर फिर उड़ गयी और नखोंसे मेरे शरीरको क्षत-विक्षत कर दिया। इतनेमें उससे छूटकर मैं

प्रभावसे मुक्त हो गयीं। सबपर धर्म तथा मेरी भक्तिभावना-की गहरी छाप पड़ी थी। मेरी कृपासे वे सब श्वेतद्वीप पहुँचीं। यह प्रसङ्ग धर्म, कीर्ति, शक्ति और महान् यशका उन्नायक है। यह सभी तपस्याओंमें महान् तप, आख्यानोंमें उत्तम आख्यान, कृतियोंमें सर्वोत्तम कृति तथा धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट धर्म है, जिसका वर्णन मैंने तुमसे किया। भद्रे! जो क्रोधी, मूर्ख, कृपण, अभक्त, अश्रद्धालु तथा शठ व्यक्ति हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग नहीं सुनाना चाहिये, जो दीक्षित तथा सदसद्विचारशील हैं, यह प्रसङ्ग उन्हें ही सुनाना चाहिये। जो शास्त्र-पारगामी पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मनको सावधान करके इस प्रसङ्गको मनमें धारण करता है, वह जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है। जो इस विधिके अनुसार 'कोकामुख'-क्षेत्रमें जाकर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, वह भी उस परमसिद्धिको पाता है, जिसे पूर्वकालमें चील और मत्स्यने प्राप्त किया था। (अध्याय १२२)

पुष्पादिका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो! कोकामुखतीर्थकी अद्भुत महिमा सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। माधव! अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि किस धर्म, तप अथवा कर्मके अनुष्ठानसे मनुष्य आपका दर्शन पा सकते हैं? प्रभो! कृपया प्रसन्न होकर आप मुझसे यह सारा प्रसङ्ग बतलाइये, यह मेरी प्रार्थना है।

भगवान् वराह बोले—देवि! पावसऋतुके बाद जलाशयोंके जल स्वच्छ हो जाते हैं, जब आकाश और चन्द्र-मण्डल निर्मल दीखने लगते हैं, उस समय न अधिक शीत रहता है और न गर्मी। जब हंसोंका कलरव आरम्भ हो जाता है, कुमुद, रक्त कमल, नीले एवं अन्य कमलोंकी सुरभि सर्वत्र फैलने लगती है, उस समय कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि मुझे अत्यन्त प्रिय है। उस अवसरपर जो मेरी पूजा करता है, मैं उसका फल बताता हूँ, सुनो—वसुंधरे! मेरा वह भक्त कल्पपर्यन्त धनी—लक्ष्मीका पात्र बना रहता है, जो दूसरे देवताके उपासकके लिये असम्भव है। माधवि! उस अवसरपर साधकको चाहिये कि मेरी आराधना कर इस स्तोत्रका पाठ करे। स्तोत्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! ब्रह्मा, रुद्र और ऋषि जिसकी पूजा एवं वन्दना करते हैं, लोकनाथ! उन आपकी आराधना करनेके उपयुक्त यह द्वादशी तिथि प्राप्त हुई *है। आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ, आप उठिये और निद्राका* परित्याग कीजिये। मेघ चले गये, चन्द्रमाकी कलाएँ पूर्ण हो गयी हैं। शरद्ऋतुमें विकसित होनेवाले पुष्पोंको मैं आपको समर्पित करूँगा। अब आप जागनेकी कृपा करें। यशस्विनि! इस प्रकार द्वादशीको पुष्पाञ्जलि अर्पित कर मेरी उपासना करनेवाले भक्तोंको परमगति प्राप्त होती है।

शिशिरऋतुमें वनस्पतियाँ नवीन हो जाती हैं। उस समयके पुष्पोंसे मेरी अर्चना करनेके लिये पृथ्वीपर घुटनोंके बल बैठकर हाथोंमें फूल लेकर मेरा उपासक कहे—'तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले प्रभो! आप संसारके स्रष्टा हैं। यह शिशिरऋतु भी आपका ही स्वरूप है। यह शीत-समय सबके लिये दुस्तर एवं दुःसह है। इस समय मैं आपकी आराधना करता हूँ। आप इस संसारसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये।'

वसुंधरे! जो पुरुष भक्ति—सहित इस भावनाके साथ शिशिरऋतुमें मेरी पूजा करता है, उसे परासिद्धि प्राप्त होती है। अब मैं तुम्हें एक दूसरी बात बताता हूँ, तुम उसे सुनो। मार्गशीर्ष और वैशाख मास भी मुझे बहुत प्रिय हैं। उन मासोंमें मुझे पुष्पादि अर्पण करने-से जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतलाता हूँ। जो भाग्य-शाली व्यक्ति मुझे पवित्र गन्ध-पुष्पादि पदार्थ अर्पित करता

है, वह नौ हजार नौ सौ वर्षोंतक विष्णुलोकमें स्थिरता-पूर्वक सुखसे निवास करता है—इसमें कोई संदेह नहीं। एक-एक गन्धयुक्त पुष्प-पत्र (या तुलसीपत्र*) देनेका यह महान् फल है। सदा श्रद्धासे सम्पन्न होकर चन्दन एवं पुष्पोंसे मेरी पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष नियम-पूर्वक रहकर कार्तिक, अगहन एवं वैशाख—इन तीन महीनोंकी द्वादशी तिथियोंके दिन खिले हुए पुष्पोंकी वनमाला तथा चन्दन आदिको सुन्दर चढ़ाता है, उसने मानो बारह वर्षोंतक मेरी पूजा कर ली। कार्तिक मासकी द्वादशी तिथिमें साम्बू वृक्षके फल तथा चन्दनसे मेरी पूजा करनेका विधान है। भद्रे! इसी प्रकार अगहन मासमें चन्दन एवं कमलके पुष्पको एक साथ मिलाकर जो मुझे अर्पण करता है, उसे महान् फल प्राप्त होता है।

पृथ्वीदेवी भगवान्‌की बातोंको सुनकर हँस पड़ीं। पुनः वे नम्रतापूर्वक बोलीं—'प्रभो! वर्षमें तीन सौ साठ दिन तथा बारह मास होते हैं। उनमें आप केवल दो ही महीनोंकी द्वादशी तिथिकी ही मुझसे क्यों प्रशंसा करते हैं?' जब पृथ्वीदेवीने भगवान् वराहसे यह प्रश्न किया तब वराह भगवान्‌ने मुस्कुराते हुए कहा—देवि! जिस कारण ये दोनों मास मुझे अधिक प्रिय हैं, वह धर्म-युक्त वचन सुनो! तिथियोंमें द्वादशी तिथि सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है, क्योंकि इसकी उपासनासे सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। हजारों ब्राह्मणोंको दान देनेका जो फल होता है, वह इस कार्तिक और वैशाख मासकी द्वादशीमें एकको ही दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। क्योंकि इस कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन मैं जगता हूँ और वैशाख मासकी द्वादशीमें सर्वशक्तिसम्पन्न हो जाता हूँ। वसुन्धरे! इसके देनेसे विपुल चिन्ता समाप्त हो जाती है। इसीसे मैंने इसकी महिमाका वर्णन किया है। इसलिये मेरे भक्त पुरुषको चाहिये कि मनको संयत रखकर वैशाख और कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन हाथमें चन्दन, गन्ध और (तुलसी)पत्र लिये हुए इस मन्त्रका उच्चारण करें। मन्त्रका अर्थ यह है—'भगवन्! ये वैशाख और कार्तिक मास सदा ही मासोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। इस अवसरपर आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं चन्दन और तुलसीपत्रोंको अर्पित करूँ और आप इन्हें स्वीकार करें। साथ ही मुझे धर्मकी वृद्धि कीजिये।' फिर 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर चन्दन एवं तुलसीपत्र अर्पित करना चाहिये। अब गन्धयुक्त पत्र-पुष्पोंके गुण और उन्हें चढ़ानेके फलका वर्णन करता हूँ। मानव पवित्र होकर हाथमें चन्दन, गन्ध (तुलसी) पत्र और फूल लेकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का उच्चारण करते हुए उन्हें अर्पित करे। साथ ही यह मन्त्र कहे—'भगवन्! आप मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें। इन सुन्दर फूलों और मलयचन्दनसे मैं आपकी अर्चना करना चाहता हूँ। प्रभो! आपको मेरा नमस्कार है। इसे स्वीकार करें। मेरा मन परम पवित्र हो जाय—यह आपसे प्रार्थना है।' मेरे कर्ममें संलग्न रहनेवाला पुरुष, इन गन्ध-पुष्पोंको मुझे देता हुआ जो फल प्राप्त करता है, वह यह है कि उसका न पुनर्जन्म होता है और न मरण। उसके पास ग्लानि और क्षुधा भी नहीं फटक पाती। वह देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षोंतक मेरे लोकमें स्थान पाता है। चन्दनयुक्त एक-एक पुष्प अर्पित करनेका ऐसा फल है।

(अध्याय १२१)

---

*. भगवन्नाज्ञापय। इमं वस्तुतरं नित्यं वैशाखं चैव कार्तिकम्॥ प्रदाय गन्धपत्राणि धर्ममेवं प्रवर्धय॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा गन्धपत्रं प्रदापयेत् (१२१ । ३६-३७)। यहाँ यह ध्यान देनेकी बात है कि मूल वराहपुराणमें 'तुलसी' नहीं 'गन्धपत्र' शब्द ही प्रयुक्त है। हाजरा आदि कुछ विद्वानोंकी यह मान्यता है कि जिन पुराणोंमें 'तुलसी' शब्द नहीं है, वे अत्यधिक प्राचीन हैं। वेदोंमें भी 'तुलसी' शब्द नहीं है।
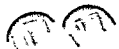
वसन्त आदि ऋतुओंमें भगवान्‌की पूजाकरनेकी विधि और माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन पवित्र होकर शान्त मनसे भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनेका विधान है। इस वसन्त ऋतुमें क्रमशः कुछ श्वेत, कुछ पाण्डुरङ्गके जो अत्यन्त प्रशंसनीय गन्धसे युक्त सुन्दर पुष्प हैं, उनके द्वारा प्रसन्न-अन्तःकरण होकर मन्त्रद्वारा पूजा करनी चाहिये। सभी वस्तुएँ भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली एवं पवित्र हों। पूजाके पहले 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर बादमें यह मन्त्र पढ़े[1]—जिसका भाव है, 'देवेश्वर! आप ॐकारस्वरूप हैं। शङ्ख, चक्र एवं गदासे आपकी भुजाएँ शोभा पाती हैं। जगत्प्रभो! आप महान् पराक्रमी पुरुष हैं। आपके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है। प्रभो! वसन्तऋतुमें वृक्ष फूलोंसे लदे हैं। सर्वत्र गन्धयुक्त रस भरा है। अब आप इस पुष्प युक्त वृक्ष, वन और पर्वतों तथा मुझपर अपनी कृपादृष्टि डालनेकी दया कीजिये।

सुमध्यमे! जो पुरुष फाल्गुन मासमें इस प्रकार मेरी पूजा करता है, उसे दुःखमय संसारमें आनेका संयोग नहीं प्राप्त होता, अपितु वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। अब तुम जो श्रेष्ठ वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके फल-की बात मुझसे पूछ चुकी हो, उसे कहता हूँ, सुनो। शालवृक्ष तथा अन्य भी बहुत-से वृक्ष जब फूलोंसे परिपूर्ण हो जायँ तो साधक उनके फूलोंको हाथमें लेकर मेरी आराधनाके लिये तत्पर हो जाय। उस अवसरपर मेरे प्रह्लाद, नारद आदि भागवतोंको भी पूज्य मानकर पूजा करे। माधवि! ऋषिलोग वेदोंमें कहे हुए मन्त्रोंद्वारा सदा मेरी स्तुति करते हैं। अप्सराओंद्वारा गीतों, वाद्यों एवं नृत्योंसे मैं सुपूजित होता रहता हूँ। अलौकिक दिव्य पुरुष मुझ पुराणपुरुषोत्तमका स्तवन करनेमें संलग्न रहते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका आराध्यदेव एवं सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी हूँ। अतः सिद्ध, विद्याधर, किंनर, यक्ष-पिशाच, उरग, राक्षस, आदित्य, वसु, रुद्रगण, मरुद्गण, विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, सोम, इन्द्र, अग्नि, नारद-पर्वत, असित-देवल, पुलह-पुलस्त्य, भृगु, अङ्गिरा, मित्रावसु और परावसु—ये सब-के-सब मेरी स्तुतिमें सदा तत्पर रहते हैं।

उसी समय महान् ओजस्वी देवताओंके मुखसे निकली हुई प्रतिध्वनिको सुनकर भगवान् नारायणने पृथ्वीसे कहा—'महाभागे! देखो! देव-समुदाय वेदध्वनि कर रहा है। उनके मुखसे निकले हुए इस महान् शब्दको क्या तुम नहीं सुन रही हो?' इसपर पृथ्वीने भगवान् नारायणसे कहा—'भगवन्! आप जगत्‌की सृष्टि करनेमें परम कुशल हैं। देवतालोग वराहके रूपमें विराजमान आप प्रभुके दर्शनकी आकाङ्क्षा करते हैं, क्योंकि वे आपके द्वारा ही बनाये गये हैं।

इसपर भगवान् नारायणने पृथ्वीको उत्तर दिया—'वसुंधरे! मैं अपने मार्गका अनुसरण करने-वाले उन देवताओंसे पूर्ण परिचित हूँ। एक हजार दिव्य वर्षोंतक मैंने केवल लीलामात्रसे तुम्हें अपने एक दाँतके ऊपर धारण कर रखा है। ब्रह्मासहित आदित्य, वसु एवं रुद्रगण तथा स्कन्द और इन्द्र आदि देवता मुझे देखनेके लिये यहाँ आना चाहते हैं।

वसुंधरा अब प्रभुके चरणोंपर गिर गयी। वह कहने लगी—'भगवन्! मैं रसातलमें पहुँच गयी थी। आपने ही मेरा वहाँसे उद्धार किया है। मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। आपमें मेरी अचल श्रद्धा है। आप सर्वसमर्थ एवं मेरे लिये परम आश्रय हैं। भगवन्! मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि धर्मका स्वरूप क्या है? किस कर्मके प्रभावसे आप प्राप्त होते हैं तथा नर-जन्मकी

१-ॐनमोऽस्तु देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर। नमोऽस्तु ते लोकनाथ प्रबोधय नमोऽस्तु ते॥ (१२४।५)

माया-चक्रका वर्णन तथा मायापुरी (हरिद्वार)का माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—पवित्र व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाली भगवती वसुंधराने छः ऋतुओंके वैष्णव-कृत्योंका वर्णन सुनकर भगवान् नारायणसे पुनः पूछा—'भगवन् ! आपने मङ्गल एवं पवित्रमय जिन विषयोंका वर्णन किया है, जिनकी स्वर्गादि लोकों तथा मेरे भूलोकमें प्रसिद्धि हो चुकी है, वे आपके—वैष्णव-धर्मके कृत्य मेरे मनको आनन्दित कर रहे हैं। माधव ! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए इन कर्मोंको सुनकर मेरी बुद्धि निर्मल हो गयी। पर मेरे मनमें एक सूक्ष्म कौतूहल उत्पन्न हो गया है। मेरा हित करनेके विचारसे उसे आप बतलानेकी कृपा कीजिये। भगवन् ! आप अपनी जिस मायाका सर्वदा वर्णन किया करते हैं, उसका स्वरूप क्या है तथा उसे 'माया' क्यों कहा जाता है ? मैं उसे तथा इसके आन्तरिक रहस्योंको जानना चाहती हूँ।'

इसपर मायापति भगवान् नारायण हँसकर बोले—पृथ्वी देवि ! तुम जो मुझसे यह मायाकी बात पूछ रही हो, इसे न पूछनेमें ही तुम्हारी भलाई है। तुम व्यर्थमें यह कष्ट क्यों मोल लेना चाहती हो ? इसे देखनेसे तो तुम्हें कष्ट ही होगा। ब्रह्मासहित रुद्र एवं इन्द्र आदि देवता भी आजतक मुझे तथा मेरी मायाको जाननेमें असफल रहे हैं, फिर तुम्हारी तो बात ही क्या ? विशालाक्षि ! जब देव पानी बरसाते हैं तो जलसे सारा जगत् भर उठता है। पर कभी वही सारा देश फिर शुष्कबंजर बन जाता है। कृष्णपक्षमें चन्द्रदेव क्षीण होते हैं और शुक्लपक्षमें बढ़ते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो प्रभाव है। सुन्दरि ! अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होते, हेमन्त-ऋतुमें कुएँका जल गर्म हो जाता है—विचारकी दृष्टिसे देखें तो यह सब मेरी माया ही है। इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें जल ठंडा हो जाता है। पश्चिम दिशामें जाकर सूर्य अस्त हो जाते हैं। पुनः वे प्रातःकाल पूरबमें उदित होते हैं। प्राणियोंके शरीरमें रक्त और शुक्र इन दोनोंका समावेश रहता है, वस्तुतः यह सब मेरी माया ही तो है। सुन्दरि ! प्राणी गर्भमें आता है, उसे वहाँ सुख और दुःखका अनुभव होता है, पुनः उत्पन्न हो जानेपर उसे वह बात भूल जाती है। अपने कर्ममें रचा-पचा जीव अपने स्वरूपको भूल जाता है, उसकी स्पृहा समाप्त हो जाती है, वस्तुतः यह सब मेरी मायाका ही प्रताप है। कर्मके प्रभावसे जीव दूसरी जगह पहुँच जाता है। शुक्र और रक्तके संयोगसे जीवधारियोंकी उत्पत्ति होती है, दो भुजाएँ, दो पैर, बहुत-सी अँगुलियाँ, मस्तक, कटि, पीठ, पेट, दाँत, ओंठ, नाक, कान, नेत्र, कपोल, ललाट और जीभ इत्यादिसे संगठित प्राणीकी उत्पत्ति मेरी मायाका ही चमत्कार है। वही प्राणी जब खाता-पीता है तो जठराग्निके द्वारा उसका पाचन होता है। तत्पश्चात् जीवके शरीरसे वही अधोमार्गसे बाहर निकल जाता है, यह सब मेरी प्रबल मायाकी ही करामात है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंमें अन्न खानेसे प्रवृत्ति होती है, ये सभी कार्य मेरी मायाकी ही देन है।

देवि ! कुछ जल आकाशस्थ बादलोंमें लटके रहते हैं और कुछ जलराशि भूमिपर नदी, सरोवर, आदिमें रहती हैं। पर जिन नदियों आदिमें इस जलकी प्रतिष्ठा है, वे नदियाँ भी कभी बढ़ती और कभी घटती हैं—यह सब मेरी मायाका ही प्रभाव है। वर्षाऋतुमें सभी नदियोंमें अथाह जल हो जाता है, बावलियाँ और तालाब जलसे भर जाते हैं, पर ग्रीष्मऋतुमें वे ही सब सूख जाते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो बल है। मेघ 'लवण-समुद्रसे' खारा जल लेकर मधुर जलके रूपमें उसे भूलोकमें बरसाते हैं, यह मेरी मायाका ही प्रभाव है। रोगसे दुःखी हुए कितने प्राणी रसायन तथा ओषधियाँ खाते हैं और उस ओषधिके प्रभावसे नीरोग हो जाते

सफलता किसमें है ? भगवन् ! शेष ऋतुओंमें किन पुष्पों-से किस प्रकार आपकी पूजा करनेसे अथवा किस कर्मसे आप प्रसन्न होते हैं, उसे भी बतानेकी कृपा कीजिये ।

श्रीवराह भगवान् बोले—वसुंधरे ! मोक्षमार्गमें अटल रहनेवाले मेरे भक्तोंने जिसका जप किया है, अब मैं उस मन्त्रका वर्णन करता हूँ, सुनो । उसमें ऐसी शक्ति है कि इसके निरन्तर पाठ करनेसे मेरी अवश्य तुष्टि होती है । मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! आप सम्पूर्ण मासोंमें मुख्य माधव (वैशाख) मास हैं, अतः 'माधव' नामसे आपकी भी प्रसिद्धि है । वसन्त ऋतुमें चन्दन, रस और पुष्पादिसे अलंकृत आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाका दर्शन करके पुण्य प्राप्त करना चाहिये । जो सातों लोकोंमें शूरवीर और नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं, ऐसे आप प्रभुका यज्ञोंमें निरन्तर यजन किया जाता है ।'

इस प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें भी मेरे कथनका पालन करते हुए सम्पूर्ण विधियोंका आचरण करना चाहिये । उस समय भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले सम्पूर्ण प्राणियों-को प्रिय आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये । मन्त्रका भाव यह है—'भगवन् ! सम्पूर्ण मासोंमें प्रधानरूपसे आप जेठ मासका रूप धारण करके शोभा पा रहे हैं । इस ग्रीष्म-ऋतुमें विराजमान आप प्रभुका दर्शन करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप सारा दुःख दूर हो जाय ।'

वसुंधरे ! इसी प्रकार तुम भी ग्रीष्म-ऋतुमें मेरी पूजा करो । इससे प्राणी जन्म और मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता तथा उसे मेरा लोक प्राप्त होता है । वसुंधरे ! भूमण्डलपर शाल आदि जितने भी फलवाले वृक्ष हैं तथा उस समय जितने गन्धपूर्ण उत्तम पुष्प हैं, उन सबसे मुझ श्रीहरिकी अर्चना करनेकी विधि है । ऐसे ही वर्षा-ऋतुके श्रावण आदि मासोंमें भी मुझसे सम्बन्ध कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ।

देवि ! अब दूसरा यह कर्म तुम्हें क जिसके प्रभावसे संसारसे मुक्ति मिल सकती है मुकुल, सरल और अर्जुन आदि देव-वृक्ष प्रतिमाकी स्थापना करके विधि-निर्दिष्ट कर्मके इन वृक्षोंके फूलोंसे 'ॐ नमो नारायणाय' मेरा आदरपूर्वक अर्चन करना चाहिये । वि करे—'लोकनाथ ! मेघके समान आपकी क आप अपनी महिमामें स्थित हैं । ध्यानमें परायण आश्रित जन आपके जिस रूपका दर्शन कर इस वर्षा-ऋतुमें योगनिद्रामें अभिरुचि रखनेवाले वर्णसे सुशोभित आप प्रभुके दिव्य स्वरूपका दर्श आषाढ़ मासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इस जो पुरुष शान्ति प्रदान करनेवाले मेरे इस पवित्र अनुष्ठान करता है, वह जन्म और मरणके बन्धन हो जाता है । देवि ! ये ऋतुओंके अनुसार उत्त हैं, जिनका मैंने तुमसे वर्णन किया है । महाभागे वृत्त सर्वथा गोपनीय है । इसके प्रभावसे मेरे कर्म रहनेवाले मनुष्य संसारसागरको तर जाते हैं । देवता नहीं जानते; क्योंकि मैं भगवान् नारायण यहाँ स्वयं के रूपमें विराजमान हूँ । इस प्रकारके ज्ञानका उन अभाव है । यह विषय दीक्षा-हीन, मूर्ख, चुगली करने निन्दित शिष्य एवं शास्त्रके अर्थोंमें दोषारोपण करने नहीं कहना चाहिये । गोघाती एवं धूर्तोंके बीच इसका कथन अनुचित है; क्योंकि उनके मध्य इ कहनेसे लाभके बदले हानि ही होती है । भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले हैं तथा जिन्होंने धा दीक्षा ली है, उनके सामने ही इसकी व्याख्या कर चाहिये ।

(अध्याय १२१

माया-चक्रका वर्णन तथा मायापुरी (हरिद्वार)का माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—पवित्र व्रतोंका अनुष्ठान करनेवाली भगवती वसुंधराने छः ऋतुओंके वैष्णव-कृत्योंका वर्णन सुनकर भगवान् नारायणसे पुनः पूछा—'भगवन् ! आपने मङ्गल एवं पवित्रमय जिन क्रियोंका वर्णन किया है, जिनकी स्वर्गादि लोकों तथा मेरे भूलोकमें प्रसिद्धि हो चुकी है, वे आपके—वैष्णव-धर्मके कृत्य मेरे मनको आनन्दित कर रहे हैं। माधव ! आपके मुखारविन्दसे निकले हुए इन कर्मोंको सुनकर मेरी बुद्धि निर्मल हो गयी। पर मेरे मनमें एक सूक्ष्म कौतूहल उत्पन्न हो गया है। मेरा हित करनेके विचारसे उसे आप बतलानेकी कृपा कीजिये। भगवन् ! आप अपनी जिस मायाका सर्वदा वर्णन किया करते हैं, उसका स्वरूप क्या है तथा उसे 'माया' क्यों कहा जाता है ? मैं इसे तथा इसके आन्तरिक रहस्योंको जानना चाहती हूँ।'

इसपर मायापति भगवान् नारायण हँसकर बोले—पृथ्वी देवि ! तुम जो मुझसे यह मायाकी बात पूछ रही हो, इसे न पूछनेमें ही तुम्हारी भलाई है। तुम व्यर्थमें यह कष्ट क्यों मोल लेना चाहती हो ? इसे देखनेसे तो तुम्हें कष्ट ही होगा। ब्रह्मासहित रुद्र एवं इन्द्र आदि देवता भी आजतक मुझे तथा मेरी मायाको जाननेमें असफल रहे हैं, फिर तुम्हारी तो बात ही क्या ? विशालाक्षि ! जब देव पानी बरसाते हैं तो जलसे सारा जगत् भर उठता है। पर कभी वही सारा देश फिर शुष्कबंजर बन जाता है। कृष्णपक्षमें चन्द्रदेव क्षीण होते हैं और शुक्लपक्षमें बढ़ते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो प्रभाव है। सुन्दरि ! अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा दृष्टिगोचर नहीं होते, हेमन्त-ऋतुमें कुएँका जल गर्म हो जाता है—विचारकी दृष्टिसे देखें तो यह सब मेरी माया ही है। इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतुमें जल ठंडा हो जाता है। पश्चिम दिशामें जाकर सूर्य अस्त हो जाते हैं। पुनः वे प्रातःकाल पूरबमें उदित होते हैं। प्राणियोंके शरीरमें रक्त और शुक्र इन दोनोंका समावेश रहता है, वस्तुतः यह सब मेरी माया ही तो है। सुन्दरि ! प्राणी गर्भमें आता है, उसे वहाँ सुख और दुःखका अनुभव होता है, पुनः उत्पन्न हो जानेपर उसे वह बात भूल जाती है। अपने कर्ममें रचा-पचा जीव अपने स्वरूपको भूल जाता है, उसकी स्पृहा समाप्त हो जाती है, वस्तुतः यह सब मेरी मायाका ही प्रताप है। कर्मके प्रभावसे जीव दूसरी जगह पहुँच जाता है। शुक्र और रक्तके संयोगसे जीवधारियोंकी उत्पत्ति होती है, दो भुजाएँ, दो पैर, बहुत-सी अँगुलियाँ, मस्तक, कटि, पीठ, पेट, दाँत, ओंठ, नाक, कान, नेत्र, कपोल, ललाट और जीभ इत्यादिसे संगठित प्राणीकी उत्पत्ति मेरी मायाका ही चमत्कार है। वही प्राणी जब खाता-पीता है तो जठराग्निके द्वारा उसका पाचन होता है। तत्पश्चात् जीवके शरीरसे वही अधोमार्गसे बाहर निकल जाता है, यह सब मेरी प्रबल मायाकी ही करामात है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंमें अन्न खानेसे प्रवृत्ति होती है, ये सभी कार्य मेरी मायाकी ही देन हैं।

देवि ! कुछ जल आकाशस्थ बादलोंमें लटके रहते हैं और कुछ जलराशि भूमिपर नदी, सरोवर, आदिमें रहती हैं। पर जिन नदियों आदिमें इस जलकी प्रतिष्ठा है, वे नदियाँ भी कभी बढ़ती और कभी घटती हैं—यह सब मेरी मायाका ही प्रभाव है। वर्षाऋतुमें सभी नदियोंमें अथाह जल हो जाता है, बावलियाँ और तालाब जलसे भर जाते हैं, पर ग्रीष्मऋतुमें वे ही सब सूख जाते हैं, यह सब मेरी मायाका ही तो बल है। मेघ 'लवण-समुद्रसे' खारा जल लेकर मधुर जलके रूपमें उसे भूलोकमें बरसाते हैं, यह मेरी मायाका ही प्रभाव है। रोगसे दुःखी हुए कितने प्राणी रसायन तथा ओषधियाँ खाते हैं और उस ओषधिके प्रभावसे नीरोग हो जाते

सुश्रोणि ! सत्रह बार तो तुम मेरे दाढ़ोंपर नित्य प्रलयकालमें आश्रय पा चुकी हो। उस समय मेरे द्वारा मायाका सृजन हुआ था और तुम 'एकार्णव'— समुद्रमें डूब रही थी। मैं मायाके ही योगसे जलमें रहता हूँ। ब्रह्मा और रुद्रका सृजन करना और भरण-पोषण करना मेरी ही मायाका कार्य है। फिर भी मेरी मायासे मोहित हो जानेके कारण वे मेरी इस मायाको नहीं जानते हैं। पितरोंका समुदाय जो सूर्यके समान तेजस्वी है, वह भी वस्तुतः मैं ही हूँ तथा पितृमयी मायाका आश्रय लेकर पितरोंका रूप धारण कर मैं ही पितृभाग हव्यको ग्रहण करता हूँ। अधिक क्या, एक दूसरी विचित्र बात सुनो, जो एक बार एक (पुरुष) ऋषि भी मायाद्वारा स्त्रीके स्वरूप (योनि)में परिणत (परिवर्तित) कर दिये गये थे।

पृथ्वी बोली—भगवन् ! उस ऋषिने कौन-सा धर्मकर्म किया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें स्त्रीकी योनि प्राप्त हुई? इस बातसे तो मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप यह सारा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने फिर स्त्रीरूप धारण कर कौन-से पापयुक्त कर्म किये, यह सब भी विस्तारसे बतायें। पृथ्वीकी बात सुनकर श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये और मधुर वचनमें कहने लगे, देवि ! यह विषय अत्यन्त गूढ़ और महत्त्वपूर्ण है। सुन्दरि ! तुम यह धर्मयुक्त कथा सुनो। देवि ! मेरी माया ज्ञान एवं विषयकी सभी वस्तुओंको आच्छादित किये है, उसकी बात सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस मायाके प्रभावसे सोमशर्मा नामक ऋषि भी प्रभावित हुए थे। इससे वे उत्तम, मध्यम और अधम—अनेक प्रकारकी स्थितियोंके चक्करमें घूमने रहे। फिर मेरी मायाकी ही प्रेरणासे उन्हें पुनः ब्राह्मणत्व सुलभ हुआ। सोमशर्मा उत्तम ब्राह्मण होकर भी स्त्रीकी योनिमें परिवर्तित हो गये, यद्यपि उसमें भी उनके द्वारा कोई विकृत कर्म नहीं हुआ और न कोई अपराध ही किया। वसुंधरे ! बात यह है कि वे (सोमशर्मा) सदा मेरी आराधना, उपासनादि कर्मोंमें ही लगे रहते थे। वे निरन्तर मेरी रमणीय आकृति—मेरे सुन्दर स्वरूपका ही चिन्तन करते रहते। भामिनि ! इस प्रकार पर्याप्त समयतक उनकी भक्ति, तपश्चर्या, अनन्यभावसे स्तुति करते रहनेपर मैं उनपर प्रसन्न हुआ। देवि ! मैंने उस समय उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और कहा—'ब्राह्मण-देवता ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम मुझसे जो चाहे वर माँग लो। रत्न, सुवर्ण, गौएँ तथा अकण्टक राज्य—जो कुछ तुम्हारे हृदयमें हो माँगो, मैं सब कुछ तुम्हें दे सकता हूँ। अथवा विप्रवर उस स्वर्गका सुख, जहाँ वराङ्गनाएँ तथा आनन्दका अनुभव करनेकी अनन्त सामग्रियाँ हैं तथा जो सुवर्णके भाण्डोंसे सुशोभित एवं धन और रत्नोंसे परिपूर्ण है, जहाँ अप्सराएँ दिव्यरूप धारण किये रहती हैं, उसे ही माँग लो। अथवा जो भी इष्ट वस्तु तुम्हारे ध्यानमें आती हो, वह सब मेरे वरसे तुम्हें सुलभ हो सकती है।'

वसुंधरे ! उस समय मेरी बात सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने भूमिपर पड़कर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मधुर शब्दोंमें कहने लगे—'देव ! आप मुझपर यदि रुष्ट न हों तो मैं आपसे जो वर माँग रहा हूँ, वही दीजिये। भगवन् ! आपके द्वारा निर्दिष्ट वरदानों—सुवर्ण, गौएँ, स्त्री, राज्य, ऐश्वर्य एवं अप्सराओंसे सुशोभित स्वर्ग आदिसे माधव ! मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपकी मायाका—जिसकी सहायतासे आप सारी क्रीडाएँ करते हैं, रहस्य ही जानना चाहता हूँ।'

वसुंधरे ! ब्राह्मणकी बात सुनकर मैंने कहा—'द्विजवर ! मायासे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? ब्राह्मणदेव !

श्रोणि ! सत्रह बार तो तुम मेरे दाढ़ोंपर नित्य प्रलयकालमें आश्रय पा चुकी हो। उस समय मेरे द्वारा मायाका सृजन हुआ था और तुम 'एकार्णव'—समुद्रमें डूब रही थी। मैं मायाके ही योगसे जलमें रहता हूँ। ब्रह्मा और रुद्रका सृजन करना और भरण-पोषण करना मेरी ही मायाका कार्य है। फिर भी मेरी मायासे मोहित हो जानेके कारण वे मेरी इस मायाको नहीं जानते हैं। पितरोंका समुदाय जो सूर्यके समान तेजस्वी है, वह भी वस्तुतः मैं ही हूँ तथा पितृमयी मायाका आश्रय लेकर पितरोंका रूप धारण कर मैं ही पितृभाग हव्यको ग्रहण करता हूँ। अधिक क्या, एक दूसरी विचित्र बात सुनो, जो एक बार एक (पुरुष) ऋषि भी मायाद्वारा स्त्रीके स्वरूप (योनि)में परिणत (परिवर्तित) कर दिये गये थे।

पृथ्वी बोली—भगवन् ! उस ऋषिने कौन-सा पापकर्म किया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें स्त्रीकी योनि प्राप्त हुई ? इस बातसे तो मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप यह सारा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने फिर स्त्रीरूप धारण कर कौन-से पापयुक्त कर्म किये, यह सब भी विस्तारसे बतायें। पृथ्वीकी बात सुनकर श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये और मधुर वचनमें कहने लगे, देवि ! यह विषय अत्यन्त गूढ़ और महत्त्वपूर्ण है। सुन्दरि ! तुम यह धर्मयुक्त कथा सुनो। देवि ! मेरी माया ज्ञान एवं विश्वकी सभी वस्तुओंको आच्छादित किये है, उसकी बात सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस मायाके प्रभावसे सोमशर्मा नामक ऋषि भी प्रभावित हुए थे। इससे वे उत्तम, मध्यम और अधम—अनेक प्रकारकी स्थितियोंके चक्रमें घूमते रहे। फिर मेरी मायाकी ही प्रेरणासे उन्हें पुनः ब्राह्मणत्व सुलभ हुआ। सोमशर्मा उत्तम ब्राह्मण होकर भी स्त्रीकी योनिमें परिवर्तित हो गये, यद्यपि उसमें भी उनके द्वारा कोई विकृत कर्म नहीं हुआ और न कोई अपराध ही किया। वसुंधरे ! बात यह है कि वे (सोमशर्मा) सदा मेरी आराधना, उपासनादि कर्मोंमें ही लगे रहते थे। वे निरन्तर मेरी रमणीय आकृति—मेरे सुन्दर स्वरूपका ही चिन्तन करते रहते। भामिनि ! इस प्रकार पर्याप्त समयतक उनकी भक्ति, तपश्चर्या, अनन्यभावसे स्तुति करते रहनेपर मैं उन-पर प्रसन्न हुआ। देवि ! मैंने उस समय उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया और कहा—'ब्राह्मण-देवता ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम मुझसे जो चाहे वर माँग लो। रत्न, सुवर्ण, गौएँ तथा अकण्टक राज्य—जो कुछ तुम्हारे हृदयमें हो माँगो, मैं सब कुछ तुम्हें दे सकता हूँ। अथवा विप्रवर उस स्वर्गका सुख, जहाँ वाराङ्गनाएँ तथा आनन्दका अनुभव करनेकी अनन्त सामग्रियाँ हैं तथा जो सुवर्णके भाण्डोंसे सुशोभित एवं धन और रत्नोंसे परिपूर्ण है, जहाँ अप्सराएँ दिव्यरूप धारण किये रहती हैं, उसे ही माँग लो। अथवा जो भी इष्ट वस्तु तुम्हारे ध्यानमें आती हो, वह सब मेरे वरसे तुम्हें सुलभ हो सकती है।'

वसुंधरे ! उस समय मेरी बात सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने भूमिपर पड़कर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मधुर शब्दोंमें कहने लगे—'देव ! आप मुझपर यदि रुष्ट न हों तो मैं आपसे जो वर माँग रहा हूँ, वही दीजिये। भगवन् ! आपके द्वारा निर्दिष्ट वरदानों—सुवर्ण, गौएँ, स्त्री, राज्य, ऐश्वर्य एवं अप्सराओंसे सुशोभित स्वर्ग आदिसे माधव ! मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपकी मायाका—जिसकी सहायतासे आप सारी क्रीडाएँ करते हैं, रहस्य ही जानना चाहता हूँ।'

वसुंधरे ! ब्राह्मणकी बात सुनकर मैंने कहा—'द्विजवर ! मायासे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ! ब्राह्मणदेव !

जलसे बाहर निकलकर अब उसने अपने वस्त्र पहने और लज्जित होकर वह वहीं पुनः बालुकापर बैठकर एवं तपके विषयमें विचार करने लगा और कहने लगा—'अरे ! मुझ पापीद्वारा कितने निन्दनीय अकार्य बन गये ।'

इस प्रकार उसने अपनेको निन्दनीय मानकर बहुत धिक्कारा और कहने लगा—'साधुपुरुषोंद्वारा निन्दित कर्म करनेवाले मुझको धिक्कार है। मैं सदाचारसे सर्वथा भ्रष्ट हो गया था, जिस कारण मुझे निषादकी योनिमें जाना पड़ा। इस कुलमें उत्पन्न होनेपर मैंने कितने ही भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओंका सेवन किया और सभी प्रकारके जीवोंका वध किया, अभक्ष्य-भक्षण तथा अपेय वस्तुओंका पान किया और न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय किया, मुझे वाच्यावाच्यका भी ध्यान न रहा। निषादके सम्पर्कसे मैंने अनेक पुत्रों और पुत्रियोंकी भी उत्पत्ति की। किस दुष्कर्मके फलस्वरूप मुझे निषादकी पत्नी होना पड़ा, यह भी विचार करने योग्य है।'

वसुंधरे ! इधर तो वह ब्राह्मण इस प्रकार वहाँ ऐसा सोच रहा था, उधर निषाद क्रोध एवं दुःखसे पागल हो रहा था। वह उसी समय अपने पुत्रोंसे घिरा अपनी भार्याको खोजता हुआ हरिद्वार पहुँचा और वहाँ प्रत्येक तपस्वीसे अपनी उस स्त्रीके विषयमें पूछने लगा। फिर वह विलाप-सा करता हुआ कहने लगा—'प्रिये ! तुम मुझे तथा अपने सभी पुत्रोंको छोड़कर कहाँ चली गयी ? अभी दूध पीनेवाली तुम्हारी छोटी बालिका भूखसे व्याकुल होकर रो रही है। फिर वह वहाँ उपस्थित तपस्वियोंसे पूछने लगा—'तपस्वियो ! मेरी पत्नी जल लेनेके लिये हाथमें घड़ा लेकर गङ्गाके तटपर आयी थी। क्या आपलोगोंने उसे देखा है ? उस समय सभी मनुष्य जो हरिद्वारमें आये हुए थे, वे उस तपस्वी ब्राह्मण तथा उसके घड़ेको यथापूर्व उपस्थित देख रहे थे। इसके पश्चात् दुःखसे संतप्त उस निषादने जब अपनी प्रिय भार्याको नहीं देखा तो उसकी दृष्टि वस्त्र और घड़ेपर पड़ी। अब वह अत्यन्त करुण विलाप करने लगा—'अहो ! मेरी स्त्रीके ये वस्त्र और घड़ा तो नदीके तटपर ही पड़े हैं, किंतु गङ्गामें स्नान करनेके लिये आयी हुई मेरी पत्नी नहीं दिखायी पड़ रही है। लगता है, जब वह बेचारी दुःखी अबला स्नान कर रही होगी उस समय जिह्वालोलुप किसी ग्राहने उसे पानीमें पकड़ लिया होगा। अथवा वह पिशाचों, भूतों या राक्षसोंका आहार बन गयी। प्रिये ! मैंने कभी जाग्रत् या स्वप्नमें भी तुमसे कोई अप्रिय बात नहीं कही। लगता है किसी रोगसे वह उन्मत्त-सी होकर गङ्गाके तटपर चली आयी थी। पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पापकर्म किया था, जो मेरे इस महान् संकटका कारण बन गया, जिसके फलस्वरूप मेरी पत्नी मेरे देखते-ही-देखते आँखोंसे ओझल हो गयी और अब उसका कहीं कुछ पता नहीं चल रहा है। फिर वह प्रलापमें कहने लगा—'प्रिये ! तुम सदा मेरे चित्तका अनुसरण करती रही हो। सुभगे ! मेरे पास आ जाओ। देखो, ये बालक डर गये हैं, इधर-उधर भटक रहे हैं और इन्हें अनाथ-जैसे क्लेशोंका सामना करना पड़ता है। सुन्दरि ! तुम मुझे तथा इन तीन नन्हे-नन्हे बालकोंको तो देखो ! चारों कन्याएँ और सभी बच्चे बड़ा कष्ट पा रहे हैं, इनपर ध्यान दो। मेरे ये छोटे-छोटे पुत्र तुम्हें पानेके लिये लालायित हो रो रहे हैं। मुझ पापीकी इन संतानोंकी तुम रक्षा करो। मुझे भी क्षुधा सता रही है, मैं प्याससे भी अत्यन्त व्याकुल हूँ। तुम्हें इसका पता होना चाहिये।'

(भगवान् वराह कहते हैं—) कल्याणि ! उस समय जो ब्राह्मण स्त्रीका जन्म पाकर निषादकी पत्नी बना था और जो अब मेरी उस मायासे मुक्त होकर बैठा हुआ था, निषादके इस प्रकार कहनेपर लज्जाके साथ उससे कहने लगा—'अब तुम जाओ। तुम्हारी वह भार्या यहाँ

तुम अनुचित तथा अकार्यकी कामना कर रहे हो।' पर मेरी मायासे प्रेरित होकर उस ब्राह्मणने मुझसे पुनः यही कहा—'भगवन्! आप यदि मेरे किसी कर्म अथवा तपस्यासे तनिक भी संतुष्ट हैं तो मुझे बस यही वर दें (अर्थात् अपनी मायाका ही दर्शन करायें)।'

अब मैंने उस तपस्वी ब्राह्मणसे कहा—'द्विजवर! तुम 'कुब्जाम्रक'* तीर्थमें जाओ और वहाँ गङ्गामें स्नान करो, इससे तुम्हें मायाका दर्शन होगा।' देवि! मेरी इस बातको सुनकर ब्राह्मणने मेरी प्रदक्षिणा की और दर्शनकी अभिलाषासे वह ऋषिकेश चला गया। वहाँ उसने बड़ी सावधानीसे अपनी कुण्डी, दण्ड और भाण्डको गङ्गातटपर एक ओर रखकर विधिपूर्वक तीर्थकी पूजा की और उसके बाद वह गङ्गामें स्नान करनेके लिये उतरा। वह स्नानार्थ अभी डूबा ही था और उसके अङ्ग बस भींग ही रहे थे कि इतनेमें देखता है कि वह किसी निषादके घरमें उसकी स्त्रीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया है। उस समय गर्भके क्लेशसे जब उसे असह्य वेदना होने लगी तो वह अपने मनमें सोचने लगा—'मेरे द्वारा अवश्य ही कोई बुरा कर्म बन गया है, जिससे मैं इस निषादीके गर्भमें आकर नरक-यातना भोग रहा हूँ। अहो! मेरी तपस्या एवं जीवनको धिक्कार है, जो इस हीन स्त्रीके गर्भमें वास कर रहा हूँ और नौ द्वारों तथा तीन सौ हड्डियोंसे पूर्ण विष्ठा और मूत्रसे सने रक्त-मांसके कीचड़में पड़ा हुआ हूँ। यहाँकी दुर्गन्ध असह्य है तथा कफ, पित्त, वायुसे उत्पन्न रोग दुःखोंकी तो कोई गणना ही नहीं। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन? मैं इस गर्भमें महान् दुःख पा रहा हूँ। अरे! देखो तो कहाँ तो वे भगवान् विष्णु, कहाँ मैं और कहाँ यह गङ्गाजीका जल! किसी प्रकार इस गर्भसे मेरा छुटकारा हो जाय तो फिर मैं उसी भक्तिकार्य—पूजा, स्नानादिमें लग जाऊँगा।'

इस प्रकार सोचते-सोचते वह ब्राह्मण शीघ्र ही निषादीके गर्भसे बाहर आया। पर भूमिपर गिरते ही उसने गर्भमें निश्चय किया था, वह सब विस्मृत हो गया। अब वह धन-धान्यसे परिपूर्ण निषादके घरमें कन्याके रूपमें रहने लगा। भगवान् विष्णुकी मायासे मुग्ध होनेके कारण पूर्वकी कुछ भी बातें उसे याद न रहीं। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। उस कन्याका विवाह हुआ। मायाके प्रभावसे उसके बहुत-से पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। कन्यारूपमें वह (ब्राह्मण) सभी भक्ष्य एवं अभक्ष्य वस्तुएँ भी खा लेता तथा पेय एवं अपेय वस्तुएँ भी पी लेता। वह निरन्तर (मत्स्यादि) जीवोंकी हिंसामें लगा रहता तथा कर्तव्याकर्तव्यज्ञानसे भी शून्य हो गया।

वसुंधरे! इस प्रकार जब निषादी स्त्रीरूपमें रहते ब्राह्मणके पचास वर्ष बीत गये, तब मैंने उसे पुनः स्मरण किया। वह (निषादीरूप ब्राह्मण) घड़ा लेकर विशाल वस्त्रोंको धोनेके लिये पुनः गङ्गाके तटपर गया और एक ओर रखकर स्नान करनेके लिये गङ्गाके जलमें प्रविष्ट हुआ। कड़ी धूपसे संतप्त होनेके कारण उसका शरीर पसीनेसे व्यग्र-सा हो रहा था। अतः उसकी इच्छा हुई कि सिर डुबाकर स्नान कर लूँ। पर ऐसा करते ही वह तपस्वी धनी (निषादीरूप) ब्राह्मण उसी क्षण पूर्ववत् तपस्वी बन गया। स्नान करके बाहर निकलते ही उसकी दृष्टि अपने पूर्वके रखे हुए दण्ड, कमण्डलु और वस्त्रोंपर पड़ी, जिन्हें देखते ही उसे पहले-जैसा ज्ञान उत्पन्न हो गया। पूर्व समयमें उस ब्राह्मणने जिस प्रकार विष्णु-माया जाननेकी कामना की थी, वह भी उसे याद हो आयी।

* यह 'ऋषिकेश'का ही अन्यतम (एक दूसरा) नाम है। इसका वर्णन वराहपु० अ० ५५, १२५ ...

गङ्गासे बाहर निकलकर अब उसने अपने वस्त्र पहने और लज्जित होकर वह वहीं पुनः बालुकापर बैठकर योग एवं तपके विषयमें विचार करने लगा और कहने लगा—'अरे! मुझ पापीद्वारा कितने निन्दनीय अकार्य कर्म बन गये।'

इस प्रकार उसने अपनेको निन्दनीय मानकर बहुत धिक्कारा और कहने लगा—'साधुपुरुषोंद्वारा निन्दित कर्म करनेवाले मुझको धिक्कार है। मैं सदाचारसे सर्वथा भ्रष्ट हो गया था, जिस कारण मुझे निषादकी योनिमें जाना पड़ा। इस कुलमें उत्पन्न होनेपर मैंने कितने ही भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओंका सेवन किया और सभी प्रकारके जीवोंका वध किया, अभक्ष्य-भक्षण तथा अपेय वस्तुओंका पान किया और न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय किया, मुझे वाच्यावाच्यका भी ध्यान न रहा। निषादके सम्पर्कसे मैंने अनेक पुत्रों और पुत्रियोंकी भी उत्पत्ति की। किस दुष्कर्मके फलस्वरूप मुझे निषादकी पत्नी होना पड़ा, यह भी विचार करने योग्य है।'

वसुंधरे! इधर तो वह ब्राह्मण इस प्रकार यहाँ ऐसा सोच रहा था, उधर निषाद क्रोध एवं दुःखसे पागल हो रहा था। वह उसी समय अपने पुत्रोंसे घिरा अपनी भार्याको खोजता हुआ हरिद्वार पहुँचा और वहाँ प्रत्येक तपस्वीसे अपनी उस स्त्रीके विषयमें पूछने लगा। फिर वह विलाप-सा करता हुआ कहने लगा—'प्रिये! तुम मुझे तथा अपने सभी पुत्रोंको छोड़कर कहाँ चली गयी! अभी दूध पीनेवाली तुम्हारी छोटी बालिका भूखसे व्याकुल होकर रो रही है। फिर वह वहाँ उपस्थित तपस्वियोंसे पूछने लगा—'तपस्वियो! मेरी पत्नी जल लेनेके लिये हाथमें घड़ा लेकर गङ्गाके तटपर आयी थी। क्या आपलोगोंने उसे देखा है? उस समय सभी मनुष्य जो हरिद्वारमें आये हुए थे, वे उस तपस्वी ब्राह्मण तथा उसके घड़ेको यथापूर्व उपस्थित देख रहे थे। इसके पश्चात् दुःखसे संतप्त उस निषादने जब अपनी प्रिय भार्याको नहीं देखा तो उसकी दृष्टि वस्त्र और घड़ेपर पड़ी। अब वह अत्यन्त करुण विलाप करने लगा—'अहो! मेरी स्त्रीके ये वस्त्र और घड़ा तो नदीके तटपर ही पड़े हैं, किंतु गङ्गामें स्नान करनेके लिये आयी हुई मेरी पत्नी नहीं दिखायी पड़ रही है। लगता है, जब वह बेचारी दुःखी अबला स्नान कर रही होगी उस समय जिह्वालोलुप किसी ग्राहने उसे पानीमें पकड़ लिया होगा। अथवा वह पिशाचों, भूतों या राक्षसोंका आहार बन गयी। प्रिये! मैंने कभी जाग्रत् या स्वप्नमें भी तुमसे कोई अप्रिय बात नहीं कही। लगता है किसी रोगसे वह उन्मत्त-सी होकर गङ्गाके तटपर चली आयी थी। पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पापकर्म किया था, जो मेरे इस महान् संकटका कारण बन गया, जिसके फलस्वरूप मेरी पत्नी मेरे देखते-ही-देखते आँखोंसे ओझल हो गयी और अब उसका कहीं कुछ पता नहीं चल रहा है। फिर वह प्रलापमें कहने लगा—'प्रिये! तुम सदा मेरे चित्तका अनुसरण करती रही हो। सुभगे! मेरे पास आ जाओ। देखो, ये बालक डर गये हैं, इधर-उधर भटक रहे हैं और इन्हें अनाथ-जैसे क्लेशोंका सामना करना पड़ता है। सुन्दरि! तुम मुझे तथा इन तीन नन्हे-नन्हे बालकोंको तो देखो! चारों कन्याएँ और सभी बच्चे बड़ा कष्ट पा रहे हैं, इनपर ध्यान दो। मेरे ये छोटे-छोटे पुत्र तुम्हें पानेके लिये लालायित हो रो रहे हैं। मुझ पापीकी इन संतानोंकी तुम रक्षा करो। मुझे भी क्षुधा सता रही है, मैं प्याससे भी अत्यन्त व्याकुल हूँ। तुम्हें इसका पता होना चाहिये।'

(भगवान् वराह कहते हैं—) कल्याणि! उस समय जो ब्राह्मण स्त्रीका जन्म पाकर निषादकी पत्नी बना था और जो अब मेरी उस मायासे मुक्त होकर बैठा हुआ था, निषादके इस प्रकार कहनेपर लज्जाके साथ उससे कहने लगा—'अब तुम जाओ। तुम्हारी वह भार्या यहाँ

—ये हुए हैं और न वे गङ्गाके प्रवाहोंद्वारा प्रवाहित हुए हैं ।

ब्राह्मणके इस प्रकार कहते ही वह निषाद सहसा [illegible] हो गया । उसके साथ जो बालक थे, वे भी [illegible]हित हो गये । देवि ! यह देखकर वह ब्राह्मण भी [illegible]त होकर पुनः तपमें संलग्न हो गया । उसने अपनी [illegible]ओंको ऊपर उठाकर साँसकी गति भी रोक ली [illegible] केवल वायुके आहारपर रहने लगा । इस तरह [illegible]राढ हो गया । इस प्रकार कुछ समय तपस्या कर [illegible] वह जलसे बाहर आया तो श्रद्धापूर्वक पूजाके लिये [illegible] पुष्पोंको तोड़कर विधिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनेके [illegible] वीरासनसे बैठ गया । अब बहुत-से प्रधान तपस्वी [illegible]गोंने जो वहाँ गङ्गामें स्नान करनेके लिये आये थे, उसे [illegible]लिया और उससे कहने लगे—'द्विजवर ! आपने आज [illegible]में अपने दण्ड, कमण्डलु और अन्य उपकरण यहाँ रख [illegible] थे और स्नान कर मल्लाहोंके पास गये थे, फिर क्या [illegible] यह स्थान भूलकर कहीं अन्यत्र चले गये थे ! [illegible]के आनेमें इतनी देर कैसे हुई ?'

देवि ! जब उस मुनिने ब्राह्मणोंकी बात सुनी तो [illegible] मौन हो गया । साथ ही बैठकर वह मन-ही-मन [illegible]णोंद्वारा निर्दिष्ट बातपर सोचने लगा । "एक [illegible] तो उधर पचास वर्षका समय व्यतीत हो गया [illegible] और इधर अमावस्या भी आज ही है । ये सब [illegible]ण मुझसे कह रहे हैं 'तुमने पूर्वाह्णमें अपने वस्त्रोंको [illegible] स्नानके लिये रखा तो अब अपराह्णमें इन्हें लेने [illegible] आये हो ! तुम्हें इतनी देर कैसे हो गयी,' यह सब [illegible] बात है !" देवि ! ठीक इसी समय मैंने ब्राह्मणको [illegible]: अपना रूप दिखाया और कहा—'ब्राह्मणदेव ! [illegible] कुछ घबराये-से क्यों दीखते हैं ? क्या आपने कुछ [illegible] बात देखी है ? आप कुछ मुझे भ्रम-से दीख रहे [illegible] । अस्तु ! जो कुछ हो, अब आप पूर्ण सावधान हो जाइये !

मेरे इस प्रकार कहनेपर उस ब्राह्मणने अपना मस्तक भूमिपर टेक दिया और दुःखी होकर बार-बार दीर्घ श्वास लेता हुआ कहने लगा—

"जगद्गुरो ! ये ब्राह्मण मुझसे कह रहे हैं कि 'तुमने पूर्वाह्णकी वेलामें वस्त्र, दण्ड और कमण्डलु आदि वस्तुएँ यहाँ रखीं और फिर अपराह्णमें यहाँ आये हो ? क्या तुम इस स्थानको भूल गये थे ?' माधव ! इधर समस्या यह है कि निषादकी योनिमें कन्यारूपसे उत्पन्न होकर मैं एक निषादकी स्त्रीके रूपमें पचास वर्षोंतक रहा । उस शरीरसे उस कुकर्मी निषादद्वारा मेरे तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं । फिर एक दिन जब मैं गङ्गामें स्नान करनेके लिये यहाँ आकर तटपर अपना वस्त्र रखकर निर्मल जलमें स्नान करने लगा और डुबकी लगायी तो पुनः मुझे मुनियोंद्वारा अभिलषित तपस्वीका रूप प्राप्त हो गया । माधव ! मैं तो सदा आपकी सेवामें लगा रहता था, किंतु पता नहीं, मेरे किस विकृत कर्मका ऐसा फल हो गया, जिसके परिणामस्वरूप मुझे निषादके यहाँ नरककी यातना भोगनी पड़ी ! मैंने तो केवल माया-दर्शनका वर माँगा था, परंतु मेरे ध्यानमें और कोई पाप नहीं आता, जिसके फलस्वरूप आपने मुझे नरकमें गिरा दिया ।"

वसुंधरे ! उस समय वह ब्राह्मण बड़ी करुणाके साथ ग्लानि प्रकट कर रहा था । इसपर मैंने उससे कहा—"ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप चिन्ता न करें । मैंने आपसे पहले ही कहा था कि ब्राह्मणदेवता ! आप मुझसे अन्य वर माँग लें; किंतु आपने मुझसे वरके रूपमें माया-दर्शनकी ही याचना की । द्विजवर ! आपने वैष्णवी माया देखनेकी इच्छा की थी, उसे ही तो देखा है । मित्र ! दिन, अपराह्ण, पचास वर्ष और निषादके घर—तत्त्वतः ये सब वहाँ कुछ भी नहीं है । यह सब केवल वैष्णवी मायाका ही प्रभाव है । आपने कोई भी अशुभ

नहीं है। वह तुम्हारा सुख और संयोग लेकर चली गयी, और अब कभी न लौटेगी।' इधर वह निषाद जहाँ-तहाँ भटककर विलाप ही करता रहा। अब उस ब्राह्मणका हृदय करुणासे भर गया और कहने लगा—'जाओ, अब क्यों इतना कष्ट पा रहे हो। अनेक प्रकारके आहार हैं, उनसे बच्चोंकी रक्षा करना। ये बच्चे दयाके पात्र हैं। तुम कभी भी इनका परित्याग मत करना।'

संन्यासीकी बात सुनकर उनके सामने दुःख एवं शोकसे भरे हुए निषादने उनसे मधुर वाणीमें कहा—'निश्चय ही आप प्रधान मुनिवरोंमें भी श्रेष्ठ एवं धर्मात्माओंमें भी परम धर्मात्मा पुरुष हैं। विप्रवर! तभी तो आपके मीठे वचनोंसे मुझे सान्त्वना मिल गयी।' उस समय निषादकी बात सुनकर श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले मुनिके मनमें भी दुःख एवं शोक छा गया। उन्होंने मधुर वचनमें कहा—'निषाद! तुम्हारा कल्याण हो। अब विलाप करना बंद करो। मैं ही तो तुम्हारी प्रिय पत्नी बना था। वही मैं यहाँ गङ्गातटपर आया और स्नान करते हुए मै एक मुनिके रूपमें परिवर्तित हो गया।'

फिर तो संन्यासीकी बात सुनकर निषादकी भी चिन्ताएँ दूर हो गयीं। उसने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर! आप यह क्या कह रहे हैं, आजतक कभी ऐसी घटना नहीं घटी है। अथवा ऐसी घटना तो सर्वथा असम्भव है कि कोई स्त्री होकर पुनः पुरुष हो जाय। अब दुःखके कारण ब्राह्मणके मनमें भी घबराहट उत्पन्न हो गयी। उस गङ्गाके तटपर ही ब्राह्मणने निषादसे मीठी बात कही—'धीवर! अब यथाशीघ्र इन बालकोंको लेकर अपने देशमें चले जाइये और क्रमानुसार सभी बच्चोंपर यथायोग्य स्नेह रखकर [illegible] कीजिये।'

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर भी निषाद [illegible] नहीं गया, उसने मीठे स्वरमें उनसे पूछा—' आपके द्वारा कौन-सा पाप बन गया था, जिससे [illegible] बन गये थे, और अब फिर पुरुष हो गये! [illegible] बतानेकी कृपा करें।

इसपर ऋषिने कहा—'मैं हरिद्वार तीर्थके तटपर [illegible] में भ्रमण करता और एक ही बार भोजन कर [illegible] जनार्दनकी पूजा करता रहता था। उन प्रभुके [illegible] आकाङ्क्षासे मैंने बहुत-से उत्तम धर्म-कर्म किये। समय बीत जानेके पश्चात् मुझे भगवान् श्रीहरिने [illegible] दिया और मुझसे वर माँगनेको कहा। मैंने [illegible] की—'प्रभो! आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले सर्व[illegible] पुरुष हैं। आप मुझे अपनी मायाका दर्शन कराये[illegible]

इसपर भगवान् विष्णुने कहा था—'ब्राह्[illegible] माया देखनेकी इच्छा छोड़ दो।' किंतु मैंने [illegible] उनसे बड़ी आग्रह किया, तब भगवान्‌ने कहा—'[illegible] नहीं मानते हो तो 'कुब्जाम्रक' क्षेत्र (ऋषीके[illegible] जाओ। वहाँ गङ्गामें स्नान करनेपर तुम्हें माया दिख[illegible] पड़ेगी और वे अन्तर्धान हो गये। मैं भी माया-द[illegible] लालसासे गङ्गातटपर गया और वहाँ अपने दण्ड, कम[illegible] एवं वस्त्रको यत्नसे एक ओर रखकर स्नान करनेके [illegible] निर्मल जलमें पैठा। इसके बाद मैं कुछ भी न [illegible] सका कि कहाँ क्या है और क्या हो रहा है! तब [illegible] मैं किसी मल्लाहिनके उदरसे कन्याके रूपमें [illegible] होकर तुम्हारी पत्नी बन गया। वही मैं आज फिर [illegible] कारण जब गङ्गाके जलमें पैठकर स्नान करने [illegible] तो पहले-जैसे ही ऋषिके रूपमें परिणत हो गया [illegible] निषाद! देखो, पहले-जैसे ही यहाँ मेरी कुण्डी और [illegible] वस्त्र भी विराजमान हैं। पचास वर्षोंतक मैं तुम्हारे [illegible] रह चुका हूँ, परंतु मेरे पास जो दण्ड एवं वस्त्र [illegible] जिन्हें गङ्गाके तटपर मैंने रखा था, अभी जीर्ण[illegible]

युगमें जब पृथ्वी जलमग्न थी, तब ब्रह्माजीकी प्रार्थना-
मैंने मधु और कैटभ नामक राक्षसोंका वध किया
ब्रह्मदेवकी रक्षा की। उसी समय मेरी दृष्टि अपने
भिन्न भक्त रैभ्यमुनिपर पड़ी। वे अत्यन्त निष्ठासे सदा
स्तुति-आराधनामें निरत रहते थे। वे बुद्धिमान्,
ी, परमपवित्र, कार्यकुशल और जितेन्द्रिय पुरुष
और ऊपर बाँहें उठाकर दस हजार वर्षोंतक
स्यामें संलग्न रहे। वे एक हजार वर्षोंतक केवल जल
कर तथा पाँच सौ वर्षोंतक शैवाल खाकर तपस्या करते
। देवि! महात्मा रैभ्यकी इस तपस्यासे मेरा हृदय
कृपासे अत्यन्त विह्वल हो उठा। उस समय हरिद्वारके
छ उत्तर पहुँचकर मैंने एक आम्रके वृक्षका आश्रय
या और उन मुनिको तपस्या करते देखा। मेरे आश्रय
लेनेसे वह आम्रवृक्ष थोड़ा कुबड़ा हो गया।
नस्विनि! इस प्रकार वह स्थान 'कुब्जाम्रक' नामसे
सिद्ध हो गया। यहाँपर (स्वतः) मरनेवाला व्यक्ति
मेरे लोकमें ही जाता है।

मैंने रैभ्य मुनिको कुबड़े आम्रवृक्षका रूप धारण कर
दर्शन दिया था, फिर भी वे मुझे पहचान गये और घुटनोंके
ल भूमिपर गिरकर मेरी स्तुति की। वसुंधरे! अपने व्रतमें
ढ़िग रहनेवाले उन मुनिको इस प्रकार अपनी
तुति तथा प्रणाम करते देखकर मैंने प्रसन्न मनसे उन्हें
र माँगनेके लिये कहा। मेरी बात सुनकर उन
पस्वीने मीठी वाणीमें कहा—'भगवन्! आप जगत्के
वामी हैं और याचना करनेवालोंकी आशा पूर्ण
करते हैं। भगवन्! मधुसूदन!! यदि आप मुझपर प्रसन्न
तो मैं यह चाहता हूँ कि जबतक यह संसार रहे
था अन्य लोक रहें, तबतक आपका यहाँ निवास हो।
और जनार्दन! जबतक आप यहाँ स्थित रहें, तबतक
आपमें मेरी निष्ठा बनी रहे। प्रभो! यदि आप मुझपर
संतुष्ट हैं तो मेरा यह मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा
कीजिये।'

वसुंधरे! उस समय ऋषिवर रैभ्यकी बात सुनकर
पुनः मैंने कहा—'ब्रह्मर्षे! बहुत ठीक। ऐसा ही
होगा।' फिर उन ब्राह्मणने बड़े हर्षके साथ मुझसे
कहा—'प्रभो! आप इस प्रधान तीर्थकी महिमा भी
बतलानेकी कृपा करें और मैं उसे सुनूँ। यही नहीं,
इस क्षेत्रमें अन्य भी जितने क्षेत्र हैं, उनका भी
आप माहात्म्य बतलायें।' देवि! तब मैंने कहा—
'ब्रह्मन्! तुम मुझसे जो पूछ रहे हो, वह विषय तत्त्वपूर्वक
सुनो। मेरा 'कुब्जाम्रक'तीर्थ परम पवित्र स्थान है। इसका
सेवन करनेसे सभी सुख सुलभ हो जाते हैं। यह 'कुब्जाम्रक'
तीर्थ कुमुदपुष्पकी आकृतिमें स्थित है। यहाँ केवल स्नान
करनेसे मानव स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। कार्तिक,
अगहन एवं वैशाख मासके शुभ अवसरपर जो पुरुष
यहाँ दुष्कर धर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह स्त्री, पुरुष
अथवा नपुंसक ही क्यों न हो—अपने प्राणोंका त्याग
कर मेरे लोकको प्राप्त होता है।'

वसुंधरे! 'कुब्जाम्रक'तीर्थमें जो दूसरा तीर्थ है, उसे
भी बतलाता हूँ, सुनो। सुन्दरि! यहाँ 'मानस' नामसे मेरा
एक प्रसिद्ध तीर्थ है। सुनयने! वहाँ स्नान कर मनुष्य
इन्द्रके नन्दनवनमें जाता है और अप्सराओंके साथ
देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षोंतक वह आनन्दका
उपभोग करता रहता है।

वसुंधरे! अब यहाँके एक दूसरे तीर्थका वर्णन
करता हूँ सुनो—वह स्थान 'मायातीर्थ'के नामसे
विख्यात है, जिसके प्रभावसे मायाकी जानकारी प्राप्त
हो जाती है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष
दस हजार वर्षोंतक मेरी भक्तिमें रत रहता है।
यशस्विनि! 'मायातीर्थ'में जो प्राण छोड़ता है, महान्
योगियोंके समान वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवी पृथ्वि! अब यहाँका एक दूसरा तीर्थ बतलाता
हूँ—उस तीर्थका नाम 'सर्वकामिक' है। वैशाख मासकी

कर्म नहीं किया है । आश्चर्यमें पड़कर आप जो पश्चात्ताप कर रहे हैं, वह सब भी मायाके अतिरिक्त कुछ नहीं है । न तुम्हारे द्वारा किया हुआ अर्चन भ्रष्ट हुआ है, न तुम्हारी तपस्या ही नष्ट हुई है । द्विजवर ! पूर्वजन्ममें तुमने कुछ ऐसे कर्म अवश्य किये थे, जिसके फलस्वरूप यह परिस्थिति तुम्हें प्राप्त हुई । हाँ ! पूर्वजन्ममें तुमने मेरे एक शुद्ध ब्राह्मण भक्तका अभिवादन नहीं किया था । यह उसीका फल है कि तुम्हें इस दुःखपूर्ण प्रारब्धका भोग भोगना पड़ा । मेरे शुद्ध भक्त मेरे ही स्वरूप हैं । ऐसे ब्राह्मणोंको जो लोग प्रणाम करते हैं, वे वस्तुतः मुझे ही प्रणाम करते हैं और वे तत्त्वतः मुझे जान जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं । जो ब्राह्मण मेरे दर्शनकी अभिलाषा करते हैं, वे ब्राह्मण मेरे भक्त, शुद्धस्वरूप एवं पूज्य हैं । विशेषरूपसे कलियुगमें मैं ब्राह्मणका ही रूप धारण करके रहता हूँ, अतएव जो ब्राह्मणका भक्त है, वह निःसंदेह मेरा ही भक्त है । ब्राह्मण ! अब तुम सिद्ध हो चुके हो, अतः अपने स्थानपर पधारो । जिस समय तुम अपने प्राणोंका त्याग करोगे, उस समय तुम मेरे उत्तम स्थान—श्वेतद्वीपको प्राप्त करोगे, इसमें कोई संदेह नहीं ।"

वरारोहे ! इस प्रकार कहकर मैं वहीं अन्त... गया और उस ब्राह्मणने फिर कठोर तपस्या आर... अन्तमें वह 'मायातीर्थ'* में अपना शरीर त्यागकर ... पहुँचा, जहाँ वह धनुष, बाण, तलवार और ... (तरकस) धारणकर मेरा सारूप्य प्राप्त... मायाके आश्रयदाताका सदा दर्शन करता रहता... अतः वसुंधरे ! तुम्हें भी इस मायासे क्या ... माया देखनेकी इच्छा करना ठीक नहीं । देव... और राक्षस भी मेरी मायाका रहस्य नहीं जानते...

वसुंधरे ! यह 'माया-चक्र' नामक ... कथा मैंने तुम्हें सुनायी । यह आख्यान ... तथा सुखप्रद है । जो पुरुष भक्तोंके सामने ... व्याख्या करता है और भक्तिहीनों तथा शास्त्रों... रखनेवालोंसे नहीं कहता, उसकी जगत्में ... होती है । देवि ! जो व्रती पुरुष इसका ... उठकर पाठ करता है, उसने मानो बारह वर्षों... पूर्वक मेरे सामने इसका पाठ किया । वसुंधरे... महान् आख्यानको जो सदा श्रवण करता है ... बुद्धि कभी मायासे खिन्न नहीं होती और न उसे ... योनियोंमें ही जाना पड़ता है ।

(अध्याय ...)

कुब्जाम्रकतीर्थ (हृषीकेश)का माहात्म्य, रैभ्यमुनिपर भगवत्कृपा

इस प्रकार मायाके [illegible] सुनकर पृथ्वीने भगवान्से फिर पूछा ।

पृथ्वी बोलीं—भगवन् ! आपने जिस 'कुब्जाम्रक-तीर्थ'की चर्चा की, उसमें रहने तथा स्नानादि करनेसे जो पुण्य होता है, अब आप उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह बोले—पृथ्वीदेवि ! ... तीर्थका जो सार-तत्त्व है, अब उसे मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ । सुन्दरि ! 'कुब्जाम्रक'तीर्थकी जैसे उत्पत्ति ... जिस प्रकार यह तीर्थ बना, वहाँ जो अनुष्ठान ... तथा वहाँ प्राणत्याग करनेपर जिस लोककी प्राप्ति होती है, यह सब तुम ध्यान देकर सुनो । वसुंधरे !

* यह [illegible] हरिद्वारका ही [illegible] है ।

…का फल प्राप्त होता है। वह वायव्यतीर्थ … 'सरोवर'के रूपमें है। वहाँ केवल पंद्रह दिनोंतक …कर मेरी उपासना करते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती … उसका इस पृथ्वीपर पुनः जन्म या मरण नहीं होता। … चार भुजाओंसे युक्त होकर मेरा सारूप्य प्राप्तकर … लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उस 'वायव्य'तीर्थकी …चान यह है कि वहाँ वनमें पीपलके वृक्ष हैं, जिनके … चौबीसों द्वादशियोंको निरन्तर हिलते ही रहते हैं।

… पृथ्वि! अब 'कुब्जाम्रक'तीर्थके अन्तर्वर्ती 'शक्रतीर्थ'का …रिचय देता हूँ। वसुंधरे! वहाँ इन्द्र हाथमें वज्र लिये …र सुशोभित रहते हैं। महातपे! उस तीर्थमें दस …त्रि उपवास रहकर जो मनुष्य मर जाता है, … मेरे लोकको प्राप्त कर लेता है। इस शक्रतीर्थके …क्षिण भागमें पाँच वृक्ष खड़े हैं, यही उसकी पहचान है। …वि! वरुणदेवने बारह हजार वर्षोंतक इस 'कुब्जाम्रक'-…तीर्थमें तपस्या की थी। अतः यहाँ स्नान करनेसे व्यक्ति आठ …हजार वर्षोंतक वरुणलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। …वहाँ ऊपरसे पानीकी एक धारा निरन्तर गिरती …रहती है, यही उस तीर्थकी पहचान है।

पृथ्वि! उक्त 'कुब्जाम्रक'-तीर्थ (हृषीकेश)में 'सप्तसामुद्रक' नामका भी एक श्रेष्ठ स्थान है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला धर्मात्मा मनुष्य तीन अश्वमेध-यज्ञोंका फल पा लेता है। यदि आसक्तिरहित होकर कोई प्राणी सात रातोंतक यहाँ निवास कर प्राणत्याग करता है तो वह मेरे लोकमें चला जाता है। सुन्दरि! अब उस 'सप्तसामुद्रक' तीर्थका लक्षण बताता हूँ, सुनो—'वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन यहाँ एक विशेष चमत्कार दीखता है। उस दिन उस तीर्थमें गङ्गाका जल कभी तो दूधके समान उज्ज्वल वर्णका दीखता है और कभी पुनः उसी जलमें पीले रंग-की आभा प्रकट हो जाती है। फिर वही कभी लाल रंगमें परिणत हो जाता है और फिर थोड़ी देर बाद ही उसमें मरकतमणि तथा मोतीके समान झलक आने लगती है। आत्मज्ञानी पुरुष इन्हीं चिह्नोंसे उस तीर्थका ज्ञान प्राप्त करते हैं।'

शुभाङ्गि! कुब्जाम्रक तीर्थके मध्यवर्ती एक अन्य महान् तीर्थका अब तुम्हें परिचय देता हूँ। भगवान्में भक्ति रखनेवाले समस्त पुरुषोंके प्रिय उस तीर्थका नाम 'मानसर' है। उसमें स्नान करनेपर मानवको मानसरोवरमें जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। वहाँ इन्द्र, रुद्र एवं मरुद्गण आदि सम्पूर्ण देवताओंका उसे दर्शन मिलता है। वसुंधरे! इस तीर्थमें यदि कोई मनुष्य तीस रात्रियोंतक निवासकर मृत्युको प्राप्त होता है तो वह सम्पूर्ण सङ्गोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त करता है। अब 'मानसर'-तीर्थका स्वरूप बतलाता हूँ, जिससे मनुष्योंको उसकी पहचान हो जाय—जानकारी प्राप्त हो सके। वह तीर्थ पचास कोसके विस्तारमें है।

अब तुम्हें एक दूसरी बात बताता हूँ, उसे सुनो। इस 'कुब्जाम्रक-तीर्थ'में बहुत पहले एक महान् अद्भुत घटना घट चुकी है। उसका प्रसङ्ग यह है—जहाँ मेरे भोगकी सामग्री रखी पड़ी रहती थी, वहीं एक सर्पिणी निर्भय होकर निवास करती थी। वह अपनी इच्छासे चन्दन, माला आदि पूजनकी वस्तुओंको खाया करती। इतनेमें ही एक दिन वहाँ कोई नेवला आ गया और उसने स्वच्छन्दतासे आनन्द करनेवाली उस सर्पिणीको देख लिया। अब उस नेवले और सर्पिणीमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस दिन माघ मासकी द्वादशी तिथि थी और दोपहरका समय था। यह संघर्ष मेरे उस मन्दिरमें ही पर्याप्त समयतक चलता रहा। अन्तमें सर्पिणीने नेवलेको डस लिया, साथ ही गिरविष नेवलेने भी उस सर्पिणीको तुरंत मार गिराया। इस प्रकार वे दोनों आपसमें लड़कर मर गये। अब वह नागिन प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम)के राजाके यहाँ

द्वादशी तिथिके दिन जो कोई वहाँ स्नान करता है, वह पंद्रह हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि इस 'सर्वकामिक'तीर्थमें वह प्राण त्याग करता है तो सभी आसक्तियोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

सुलोचने! अब एक 'पूर्णमुख' नामक तीर्थकी महिमा बतलाता हूँ, जिसे कोई नहीं जानता। गङ्गाका जल इधर प्रायः सर्वत्र शीतल रहता है, किंतु यहाँ जिस स्थानपर गङ्गामें गर्म जल मिले, उसे ही 'पूर्णतीर्थ' समझना चाहिये। देवि! वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है और पंद्रह हजार वर्षोंतक उसे चन्द्र-दर्शनका आनन्द मिलता है। फिर जब वह स्वर्गसे नीचे गिरता है तो ब्राह्मणके घर उत्पन्न होता है और मेरा पवित्र भक्त, कार्य-कुशल और सम्पूर्ण धर्म एवं गुणोंसे सम्पन्न होता है और अगहन महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन प्राण त्यागकर वह मेरे लोकमें पहुँचता है, जहाँ वह सदा मुझे चतुर्भुजरूपमें प्रकाशित देखता है तथा पुनः कभी जन्म और मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता।

वसुंधरे! मैं अब पुनः एक दूसरे तीर्थका वर्णन करता हूँ। यहाँ वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन तप तथा धर्मके अनुष्ठानके पश्चात् अपने शरीरका त्याग करनेवाला पुरुष मेरे लोकको प्राप्त करता है, जहाँ जन्म-मृत्यु, ग्लानि, आसक्ति, भय तथा अज्ञानजनित अभिनिवेशादिसे उसे किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता। अब मैं (ऋषिकेश)में ही स्थित एक दूसरे तीर्थकी बात बतलाता हूँ। वह 'करवीर' नामसे प्रसिद्ध है एवं सम्पूर्ण लोकोंको सुखी करनेवाला है। शुभे! अब उसका चिह्न भी बतलाता हूँ, जिसकी सहायतासे ज्ञानी पुरुष इसे पहचान सकें। सुन्दरि! माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिके दिन मध्याह्न कालके समय इस 'करवीर'तीर्थमें कनेरके फूल खिल

जाते हैं—यह निश्चय है। उस ... मनुष्य स्नानध्यानपूर्वक यहाँ अवगाहन ... पूर्णगर्भा हो जाता है। यदि माघ मासकी ... तिथिके दिन उस क्षेत्रमें किसीकी मृत्यु हो ... तो उसे मत्त, रुद्र और मेरे दर्शनका सौभाग्य ... होता है। वसुंधरे! अब एक दूसरे तीर्थका ... सुनो। भद्रे! उस 'कुब्जाम्रकक्षेत्र'का वह स्थ... बहुत प्रिय है। उस स्थानका नाम 'पुण्ड... है, जो महान् फल देनेकी शक्तिवाला है। ... उस तीर्थका विशेष चिह्न बतलाता हूँ, सुनो—द्वादशी तिथिके दिन मध्याह्नकालमें वहाँ रथके आकृतिवाला एक कछुआ विचरण करता है।' अब तुमसे इसके विषयमें एक दूसरी बात बताता... सुनो—'सुन्दरि! यहाँ अवगाहन करनेपर 'पु... यज्ञ'के अनुष्ठानका फल मिलता है। यदि वहाँ मृत्यु होती है तो उसे दस 'पुण्डरीक'यज्ञोंके अनु... फल प्राप्त होता है।'

अब मैं 'कुब्जाम्रक' (ऋषिकेश)में स्थित दूसरे—'अग्नितीर्थ'की बात बतलाता हूँ, उसे सु... 'देवि! द्वादशी तिथिके दिन पुण्यात्मा ... ही इस तीर्थकी स्थिति ज्ञात होती है। कार्तिक, अ... आषाढ एवं वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके जो पुरुष उस तीर्थमें यत्नपूर्वक निवास करता है, उस तीर्थका रहस्य जान सकता है।' वसुंधरे! तीर्थका चिह्न यह है कि हेमन्त ऋतुमें तो वहाँका उष्ण रहता है, पर ग्रीष्म ऋतुमें वह शीतल हो ... है। महाभागे! इसी विचित्रताके कारण इस स्थान नाम 'अग्नितीर्थ' पड़ गया है।

देवि! अब एक दूसरे तीर्थका परिचय देता उसका नाम 'वायव्य-तीर्थ' है। उस तीर्थमें जो स्न... करके तर्पण आदि कार्य करता है, उसे वाज...

[क]मनीय एवं सुन्दर रूपवाला था। यह राजाओंके [म]में पालने योग्य तथा शुभदर्शन और पवित्र माना [जा]ता है, फिर भी तुमने इसे मार डाला। तुमने मेरे [बा]र-बार मना करनेपर भी इस नेवलेको मारा है, [अ]तएव अबसे तुम मेरी पत्नी नहीं रही और न अब [मैं] ही तुम्हारा पति रह गया। अधिक क्या! [स्त्रि]याँ सदा अवध्य बतलायी गयी हैं, इसी कारण मैं [तु]म्हें छोड़ देता हूँ और तुम्हारा वध नहीं करता।

[पृ]थ्वि! राजकुमारीसे इस प्रकार कहकर राजकुमार [अ]पने नगर लौट गया। क्रोधके कारण उन दोनोंका [प]रस्परका सारा स्नेह नष्ट हो गया। धीरे-धीरे मन्त्रियों-[द्वा]रा यह बात कोसलनरेशको विदित हुई तो [उ]न्होंने उन मन्त्रियोंके सामने ही द्वारपालोंको आज्ञा [दे]कर राजकुमार और वधूको आदरपूर्वक बुलवाया। [पु]त्र और पुत्रवधूको अपने पास उपस्थित देखकर राजाने [क]हा—"पुत्र! तुम दोनोंमें जो परस्पर अकृत्रिम और अपूर्व [स्ने]ह था, वह सहसा कहाँ चला गया? तुम लोग परस्पर [अ]ब सर्वथा विरुद्ध कैसे हो गये? पुत्र! यह [रा]जकुमारी कार्यकुशल, सुन्दर स्वभाववाली एवं [ध]र्मनिष्ठ है। आजसे पहले इसने हमारे परिवारमें [कि]सी कभी किसीको अप्रिय वचन नहीं कहा है, [अ]तः तुम्हें इसका परित्याग कदापि नहीं करना [चा]हिये। तुम राजा हो, तुम्हारा राजधर्म ही मुख्य [ध]र्म है, और उसका पालन स्त्रीके सहारे ही [हो] सकता है। अहो! लोगोंका यह कथन परम सत्य [ही] है कि 'स्त्रियोंके द्वारा ही पुत्र एवं कुलका [सं]रक्षण होता है।'"

पृथ्वि! उस समय राजपुत्रने पिताकी बात [आ]दरपूर्वक सुन ली, और उनके दोनों चरणोंको [प]कड़कर वह कहने लगा—"पिताजी, आपकी पुत्रवधूमें [क]हीं कोई भी दोष नहीं है, किंतु इसने बार-बार रोकनेपर भी मेरे देखते-ही-देखते एक नेवलेको मार डाला। उसे सामने मरा पड़ा देखकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने कह दिया कि 'अब न तो तुम मेरी पत्नी हो और न मैं तुम्हारा पति।' महाराज! बस इतना ही कारण है, और कुछ नहीं।" पृथ्वि! इस प्रकार अपने पतिकी बात सुनकर प्राग्जोतिषपुर-की उस कन्याने भी अपने श्वशुरको सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहने लगी—"इन्होंने एक सर्पिणीको जिसका कोई भी अपराध न था तथा जो अत्यन्त भयभीत थी, मेरे सैकड़ों बार मना करनेपर भी उसे मार डाला। सर्पिणीकी मृत्यु देखकर मेरे मनमें बड़ा क्षोभ और दुःख हुआ, पर मैंने इनसे कुछ भी नहीं कहा। बस यही इतनी-सी ही बात है।"

वसुंधरे! उन कोसलदेशके राजाने अपने पुत्र और पुत्रवधूकी बात सुनकर सभाके बीचमें ही उन दोनोंसे बड़ी मधुर वाणीमें कहना आरम्भ किया। वे बोले—"पुत्रि! इस राजकुमारने तो सर्पिणीको मारा और तुमने नेवलेको, फिर इस बातको लेकर तुमलोग आपसमें क्यों क्रोध कर रहे हो? यह तो बतलाओ। पुत्र, नेवलेके मर जानेपर तुम्हें क्रोध करनेका क्या कारण है? अथवा राजकुमारी, यदि सर्पिणी मर गयी तो इसमें तुम्हारे क्रोधका क्या कारण है?"

उस समय कोसलनरेशको आनन्द देनेवाले उस यशस्वी राजकुमारने पिताकी बात सुनकर मधुर स्वरमें कहा—"महाराज! इस प्रश्नसे आपका क्या प्रयोजन है? आप इसे न पूछें। आपको जो कुछ पूछना हो, वह इस राजकुमारीसे ही पूछिये।" पुत्रकी बात सुनकर कोसलनरेशने कहा—"पुत्र! बताओ। तुम दोनोंके बीच स्नेहविच्छेदका क्या कारण है? पुत्रोंमें जो योग्य होनेपर भी अपने पिताके पूछनेपर गोपनीय बात छिपा लेते हैं, वे अधम ही हैं, उन्हें तत-

एक राजकुमारीके रूपमें उत्पन्न हुई। इधर उसी समय कोसलदेशमें उस नेवलेका भी एक राजाके यहाँ जन्म हुआ। देवि! वह राजकुमार रूपवान्, गुणवान् और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सभी कलाओंसे युक्त था। दोनों अपने-अपने घर सुखपूर्वक रहते हुए इस प्रकार बढ़ने लगे, जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा अभिवृद्धि करता दीखता है। पर वह कन्या यदि कहीं किसी नेवलेको देख लेती तो तुरंत उसे मारनेके लिये दौड़ पड़ती। इसी प्रकार इधर राजकुमार भी जब किसी नागिन या साँपिनको देखता तो उसे मारनेके लिये तुरंत उद्यत हो जाता। कुछ दिन बाद मेरी कृपासे कोसल देशके राजकुमारने ही उस कन्याका पाणिग्रहण किया और इसके बाद वे दोनों छाया एवं शरीरकी तरह एक साथ रहने लगे। जान पड़ता था, मानो इन्द्र और शची नन्दनवनमें विहार कर रहे हों।

वसुंधरे! इस प्रकार उस राजकुमार एवं राजकुमारीके परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए पर्याप्त समय व्यतीत हो गये। वे दोनों उपवनमें एक साथ आनन्दपूर्वक इस प्रकार विहार करते, मानो समुद्र और उसकी वेला (तटी)। इस प्रकार पूरे सतहत्तर वर्ष व्यतीत हो गये। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे दोनों एक दूसरेको पहचान भी न सके। एक समयकी बात है, वे दोनों ही उपवनमें घूम रहे थे कि राजकुमारकी दृष्टि एक सर्पिणीपर पड़ी और वह उसे मारनेके लिये तैयार हो गया। राजकुमारीके मना करते रहनेपर भी वह अपने विचारोंसे विचलित न हुआ और उसने उस सर्पिणीको मार ही डाला। अब राजकुमारीके मनमें प्रतिक्रियास्वरूप भीषण रोष उत्पन्न हो गया। किंतु वह कुछ बोल न पायी। इधर उसी समय राजपुत्रीके सामने बिलसे एक नेवला निकला और भोजनके लिये किसी सर्पकी खोजमें इधर-उधर घूमने लगा। राजकुमारीने उसे देख लिया। यद्यपि नेवलेका दर्शन शुभसूचक है और वह नेवला [illegible], फिर भी पूर्वजन्मके संस्कारवश होकर राजकुमारी उसे मारने दौड़ी। राजकुमारने उसे बहुत रोका, किंतु प्राक्तन संस्कारवश उस पुत्रीने शुभ दर्शन नेवलेको मार ही डाला।

वसुंधरे! अब राजकुमारको बड़ा क्रोध हुआ, उसने राजकुमारीसे कहा—'देवि! स्त्रियोंके लिये पति ही आदरका पात्र होता है और मैं तुम्हारा पति हूँ, फिर तुमने मेरी बातको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया। यह नेवला मङ्गलमय, शुभदर्शन प्राणी है और विशेषकर राजाओंके यह प्रिय वस्तु है, इसका दर्शन शुभकी सूचना देता है। फिर तुमने इस मङ्गलस्वरूप नेवलेको मेरे मना करनेपर भी क्यों मार डाला?'

वसुंधरे! इसपर प्राग्ज्योतिषनरेशकी यह कन्या कोसलनरेशके पुत्रसे रोष भरकर कहने लगी कि 'मेरे बार-बार रोकनेपर भी आपने उस सर्पिणीको मार डाला, अतएव मैंने भी सर्पके मारनेवाले इस नेवलेको मार डाला।' वसुंधरे! राजकुमारीकी इस बातको सुनकर कठोर शब्दोंमें डाँटते हुए राजकुमारने उससे कहा—'भद्रे! साँपके दाँत बड़े तीक्ष्ण तथा उसका विष बड़ा तीव्र होता है। उसे देखते ही लोग डर जाते हैं। यह दुष्ट प्राणी मनुष्य आदिको डस लेता है और उससे वे मर जाते हैं। अतः सबका अहित करनेवाले एवं विषसे भरे हुए इस जीवको मैंने मारा है। इधर प्रजाकी रक्षा करना राजाओंका धर्म है। जो बुरे मार्गपर चलते हैं, उनको उचित तथा कठोर दण्डोंद्वारा ताड़ना करना हमारा कर्तव्य है। जो निरपराध साधुओं एवं स्त्रियोंको भी क्लेश पहुँचाते हैं, वे भी यथार्थ-राजधर्मके अनुसार दण्डके पात्र हैं और वधके योग्य हैं। मुझे तो राजधर्मोंका पालन करना ही चाहिये, पर मुझे तुम यह तो बताओ कि इस नेवलेका —

[राज]कुमार और कमलके समान नेत्रोंवाली वह राजकुमारी—[दोनों] भी उस निर्माल्यकूटके पास पहुँचे, जहाँ वह पुरानी [घ]टना घटी थी। राजपुत्र उस स्थानपर पहुँचकर अपने [पि]ताके दोनों चरणोंको पकड़कर कहने लगा—'महाराज! [पूर्व] जन्ममें मैं एक नेवला था और यहीँसे थोड़ी ही दूरपर [ए]क केलेके वृक्षके नीचे मेरा निवास था। एक दिन कालके [प्रे]रणावश मैं इस 'निर्माल्य-कूट'पर चला आया, [ज]हाँ सुगन्धित द्रव्यों और विविध पुष्पोंको खाती हुई एक [भ]यंकर विषवाली सर्पिणी विचर रही थी। उसे देखकर [मु]झे क्रोध आया और फिर सहसा मैंने उसपर आक्रमण [क]र दिया। महाराज! इस प्रकार उसके साथ मेरा भयंकर [यु]द्ध आरम्भ हो गया। उस दिन माघमासकी द्वादशी तिथि [थी]। किसीने भी हमलोगोंको नहीं देखा। उस समय [य]द्यपि मैं युद्ध करते हुए अपने शरीरकी रक्षापर भी ध्यान [र]खता था; फिर भी उस सर्पिणीने मेरी नाकके छिद्रमें डँस [लि]या। इस प्रकार विषदिग्ध होनेपर भी मैंने उस सर्पिणीको [मा]र ही डाला। अन्ततः हम दोनोंकी मृत्यु हो गयी। [इ]सके बाद मैं आप (कोसलदेश राजा)के घरमें एक [रा]जपुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। राजन्! यही कारण है [कि] क्रोधवश मैंने उस सर्पिणीको मार डाला था।'

राजकुमारकी बात समाप्त होते ही राजकुमारी भी कहने [ल]गी—'महाराज! मैं ही पूर्वजन्ममें इस 'निर्माल्यकूट'-[क्षे]त्रमें रहनेवाली वह सर्पिणी थी। उस लड़ाईमें [म]रकर मैं प्राग्ज्योतिष्नरेशके यहाँ कन्याके रूपमें उत्पन्न [हो]कर आपकी पुत्रवधू हुई। राजन्! मेरी मृत्युके कारण-[भू]त प्राक्तन तमोमय संस्कारोंकी स्मृति मेरे जीवात्मापर बनी थी, अतः मैंने भी उस नेवलेको मार डाला। प्रभो! यही यह गोपनीय रहस्य है।'

वसुंधरे! इस प्रकार पुत्रवधू और पुत्रकी बात सुनकर राजा सर्वथा निर्विण्ण हो गये और वे वहाँसे पुनः 'माया-तीर्थ'-में चले गये और वहीं उनके जीवनका अन्त हुआ। उस राजकुमारी तथा राजकुमारने भी 'पुण्डरीकस्तीर्थ'में पहुँचकर मनका निग्रहकर प्राणोंका त्याग किया और वे उस श्रेष्ठ स्थानपर पहुँच गये, जहाँ भगवान् जनार्दन सदा विराजमान रहते हैं। इस प्रकार राजा, राजकुमार और यशस्विनी राजकुमारी कठिन तपके द्वारा कर्मबन्धनको विच्छिन्न कर श्वेतद्वीपमें पहुँचे और उनका सारा परिवार भी महान् पुण्यके द्वारा परम सिद्धिको प्राप्तकर श्वेतद्वीप पहुँच गया।

देवि! यह मैंने तुमसे 'कुब्जाम्रक'-तीर्थकी महिमा बतलायी। इसका वर्णन मैंने उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ रैभ्यसे भी किया था। यह बहुत पवित्र प्रसङ्ग है। चारों वर्णोंका कर्तव्य है कि वे इसका पठन एवं चिन्तन करें। इसे मूर्ख, गोहत्या करनेवाले, वेद-वेदाङ्गके निन्दक, गुरुसे द्वेष करनेवाले और शास्त्रोंमें दोष देखनेवाले व्यक्तिके सामने कभी नहीं कहना चाहिये। इसे भगवान्‌के भक्तों तथा वैष्णव-दीक्षा-सम्पन्न पुरुषोंके सामने ही कहना चाहिये। पृथ्वि! जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने कुलके आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंको तार देता है। देवि! अपने भक्तोंको सुख-प्राप्तिके लिये मैंने 'कुब्जाम्रक-तीर्थ'के अन्तर्वर्ती स्थानोंका वर्णन किया, अब तुम दूसरी कौन-सी बात पूछना चाहती हो, वह कहो। (अध्याय १२६)

'दीक्षासूत्र'का* वर्णन

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार अनेक धर्मोंको सुनकर बहुतोंको मुक्ति सुलभ हो जाय, इस उद्देश्यसे पृथ्वीने भगवान् जनार्दनसे पूछा—भगवन्! 'माया तीर्थ'की महिमा बड़ी अद्भुत है। इसके माहात्म्य-श्रवणमें

* दीक्षाका परम श्रेष्ठ वर्णन 'कुलार्णवतन्त्र' उल्लास १४, 'शारदातिलक' पटल ४-५, 'शिवपुराणवायवीयसंहिता, नारदपुराण अ० ९० तथा अग्निपुराण अध्याय ८१ से ९०में भी आया है। 'कल्याण'के अग्निपुराणाङ्क पृष्ठ १४३ से १५६ तककी टिप्पणियाँ पर्याप्त उपयोगी हैं।

बालुकामय घोर रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। किंतु जो शुभ अथवा अशुभ सभी बातोंको पिताके पूछनेपर बता देते हैं—ऐसे पुत्रोंको वह दिव्य गति मिलती है, जिसे सत्यवादी लोग पाते हैं। अतएव पुत्र! तुम्हें मुझसे वह बात अवश्य बतलानी चाहिये, जिसके कारण गुणशालिनी पत्नीके प्रति तुम्हारी प्रीति समाप्त हो गयी है।

पिताकी यह बात सुनकर कोसलवासियोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उस राजकुमारने जनसमाजमें स्नेह-सनी वाणीसे कहा—'पिताजी! यह सारा समाज यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर पधारे, कल प्रातःकाल जो आवश्यक बात होगी, मैं आपसे निवेदन करूँगा।' रात्रिके समाप्त होनेपर प्रातःकाल दुन्दुभियोंके शब्दोंसे तथा सूत, मागध एवं वन्दीजनोंकी वन्दनाओंसे कोसल-नरेश जगाये गये। इतनेमें ही कमलके समान आँखोंवाला वह महान् यशस्वी राजकुमार भी स्नान कर मङ्गलद्रव्योंसहित राजद्वारपर उपस्थित हुआ। द्वारपालने राजाके पास पहुँचकर इसकी सूचना दी और कहा—'महाराज! आपके दर्शनकी लालसासे राजकुमार दरवाजेपर उपस्थित हैं।' उसकी बात सुनकर कोसलनरेश बोले—'कञ्चुकिन्! मेरे साधुवादी पुत्रको यहाँ शीघ्र लाओ।'

नरेशके ऐसा कहनेपर उनकी आज्ञाके अनुसार द्वारपालने राजकुमारका वहाँ प्रवेश करा दिया। विनीत एवं शुद्धहृदय राजकुमारने पिताके महलमें जाकर उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। पिताने भी आनन्द-पूर्वक राजकुमारको 'जयजीव' कहकर दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद दिया और उन्होंने हँसकर ... ने पुत्र

लिये उत्सुक ही हैं तो मेरे साथ 'कुब्जाम्रक' चलनेकी कृपा करें। मैं इसे वहाँ चलकर ब[तलाऊँगा] बतला दूँगा।'

सुनयने! उस समय राजाने पुत्रकी बात ... उससे प्रेमपूर्वक कहा—'बेटा! बहुत ठीक!' जब राजकुमार वहाँसे चला गया तो राजाने उपस्थित मन्त्रिमण्डलसे मीठे स्वरमें कहा—'म[न्त्रि]... आपलोग मेरी निश्चित की हुई एक बात ... इस समय हम 'कुब्जाम्रक'तीर्थमें जाना चाहते ... इसकी आपलोग शीघ्र व्यवस्था कर दें। शीघ्र ... हाथी, घोड़े, रथ आदि जुतवाये जायँ।' उस ... राजाकी बात सुननेके पश्चात् मन्त्रियोंने उत्तर दि[या] 'महाराज! आप इन सबोंको तैयार ही समझें।'

इसके बाद बड़े पुत्रकी अनुमतिसे राजाने अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और राजा चलकर सम्पूर्ण द्रव्यों तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंके ... वे लोग बहुत दिनोंके बाद 'कुब्जाम्रक' नामक तीर्थमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तीर्थके नियम पालन करते हुए अन्न-वस्त्र, सुवर्ण-गौ, हाथी और पृथ्वी आदि बहुत-से दान किये। इस ... बहुत दिन व्यतीत हो जानेपर एक दिन ... राजकुमारसे पूछा—'वत्स! अब वह गोपनीय बात बताओ। तुमने कुल, शील और गुणोंसे सम्पन्न मेरी निर्दोष सुन्दरी पुत्रवधूका क्यों परित्याग कर दिया?' इसपर राजकुमारने कहा—'इस समय आप शयन ... प्रातःकाल यह सब बातें मैं आपको बतला दूँगा।'

रात बीत जानेके बाद प्रातःकाल सूर्योदय ... राजकुमारने गङ्गामें स्नान ...

दीक्षित पुरुषको चाहिये कि वह यदि परमसिद्धि या मोक्ष पानेकी इच्छा रखता हो या सनातन धर्मका संग्रह करना चाहता हो तो बेल, गूलर तथा उपयोगी वृक्षोंको कभी न काटे। क्या खाना चाहिये, क्या नहीं खाना चाहिये, इसे आचार्यको भी अपने शिष्यको बता देना चाहिये। गूलरका ताजा फल भक्ष्य है, पर उसका बासी फल सर्वथा अभक्ष्य है। लहसुन, प्याज आदि वस्तुएँ जिनसे दुर्गन्ध निकलती हैं, वे सभी अभक्ष्य मानी जाती हैं।

दीक्षित व्यक्तिके लिये उचित है कि वह सभी प्रकारके मांस-मछलियोंका निश्चयपूर्वक सर्वथा त्याग कर दे। उसे दूसरोंकी निन्दा और प्राणीकी हिंसा भी कभी नहीं करनी चाहिये। वह किसीकी चुगली न करे और चोरी तो सर्वथा त्याग दे। दूरसे आये हुए अतिथिको आदर-सत्कारपूर्वक भोजनादि कराना चाहिये। वह गुरु, राजा तथा ब्राह्मणको स्त्रीके प्रति मनमें कभी बुरी भावना न करे। सुवर्ण, रत्न और युवती स्त्री—इनकी ओर चित्त न लगाये। दूसरेके उत्तम भाग्य और अपनी विपत्तिको देखकर दुःख न करे, यह सनातन धर्म है।

वसुंधरे! दीक्षाके पहले मन्त्र लेनेवाले शिष्यके प्रति गुरु इन सब बातोंका उपदेश दें। सुन्दरि! साथ ही छुरा तथा जलसे भरा हुआ एक पात्र भी रखना चाहिये, फिर मन्त्रोच्चारणपूर्वक मेरा आवाहन एवं विधिके साथ मेरा पूजन करना चाहिये।

देवि! इस प्रकार अर्घ्य एवं पाद्य देनेके उपरान्त गुरु हाथमें अस्तुरा लेकर शुद्ध भावसे यह मन्त्र पढ़े। मन्त्रका भाव यह है—'शिष्य! विष्णुमय जलकी सहायतासे तुम्हारा क्षौरकर्म किया जा रहा है। इस अवसरपर वरुण देवता तुम्हारे सिरकी रक्षा करें। यह दीक्षा संसारसे उद्धार करनेवाली है।' फिर नाई क्षौरकर्म करे और यजमान उस कलशको उस नाईको ही दे दे। नाई ऐसी सावधानीसे (सिरका) क्षौरकर्म करे कि कहीं त्वचाके कटनेसे एक बिन्दु भी रक्त न निकले। इस प्रकार सविधि कृत्य सम्पन्न कर लेना चाहिये। इसके उपरान्त यजमान भगवान्‌में श्रद्धा रखनेवाले पुरुषोंको प्रणाम करके अग्नि प्रज्वलित करे और फिर वह धानका लावा, काले तिल, घृत और मधु—इन वस्तुओंको मिलाकर उसमें सात आहुतियाँ प्रदान करे। फिर तिल और खीरसे बीस आहुतियाँ देनी चाहिये। हवनके पश्चात् घुटनोंके बल जमीनपर झुककर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'दोनों अश्विनीकुमार, दसों दिशाएँ, सूर्य और चन्द्रमा—ये सभी इस कार्यमें साक्षी हैं। सत्यके बलपर ही पृथ्वी तथा आकाश अवलम्बित है। सत्यके बलसे ही सूर्य गतिशील हैं तथा पवनदेव प्रवाहित होते हैं।' तदनन्तर मन्त्र-पूर्वक विधिके साथ आचार्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। गुरुको भगवान्‌में भक्ति रखनेवाला एवं दिव्य पुरुष होना चाहिये। फिर तीन बार गुरुकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंको श्रद्धापूर्वक पकड़ ले और कहे—'गुरुदेव! मैं आपकी कृपा तथा इच्छाके अनुसार 'दीक्षा-ग्रहण-कर्म'में उद्यत हुआ हूँ। मुझसे कुछ अनुचित हुआ हो तो आप उसे क्षमा करनेकी कृपा करें। फिर स्वयं वह पूरब दिशाकी ओर मुख करके बैठ जाय। इस समय गुरुकी दृष्टि केवल शिष्यपर ही रहनी चाहिये। गुरुका कर्तव्य है कि हाथमें कमण्डलु एवं यज्ञोपवीत लेकर कहे—'शिष्य! भगवान् विष्णुकी कृपासे तुम्हें यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। साथ ही सिद्धदीक्षा और कमण्डलु—ये वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। कर्मके प्रभावसे दीक्षासम्बन्धी इस शुभ अवसरपर तुम अपने हाथोंमें कमण्डलु ले लो। इसके बाद गुरु उसे मन्त्रकी दीक्षा दें। दीक्षाप्राप्त पुरुष गुरुके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करे और उनकी प्रदक्षिणा कर इस प्रकार कहे—'गुरुदेव! मैंने अब आपकी शरण प्राप्त की है। आपके द्वारा मुझे 'वैष्णवीदीक्षा' सुलभ हो गयी, यह आपकी

मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया। अब प्राणियोंके कल्याण तथा विष्णुकी रक्षाके लिये आप कृपाकर मुझे अपनी दीक्षा-विधिका उपदेश करें।

भगवान् वराह बोले—देवि! तुमने जो भागवती-दीक्षाके विषयमें पूछा है, अब उसे बताता हूँ, सुनो। यह दीक्षा धर्ममय संसारसे मुक्त और सर्वगुण प्रदान करनेवाली है। इस दीक्षाका रहस्य योगमार्गमें स्थित रहनेवाले देवतातक भी नहीं जानते। इस महत्त्वमय धर्मका रहस्य केवल मैं ही जानता हूँ। देवि! उत्तम दीक्षा यह है, जिसके प्रभावसे मुझमें मन लगाकर मनुष्य सुख-पूर्वक गर्भवासरूप संसार-समुद्रसे पार पा जाता है। इसके लिये साधकको चाहिये कि वह गुरुके समीप जाकर उनसे प्रार्थना करे कि 'गुरुदेव! मैं आपका शिष्य होना चाहता हूँ, आप मुझे दीक्षा देनेकी कृपा कीजिये।' फिर उनकी आज्ञासे दीक्षाके उपयोगी पदार्थों—धानका लावा, मधु, सुरा, घृत, चन्दन, पुष्प, दीप-धूप-नैवेद्य, काला मृगचर्म, पलाशका दण्ड, कमण्डलु, कलश, वस्त्र, खड़ाऊँ, स्वच्छ यज्ञोपवीत, अर्घ्यपात्र, चरुस्थाली, दर्वी, तिल-यव, अनेक प्रकारके फल, दीक्षित पुरुषोंके खाने-योग्य अन्न, तथा पीनेयोग्य तीर्थोंके जल आदि वस्तुओंको लाकर एकत्र करे। साथ ही आवश्यक (उपयोगी) विविध प्रकारके बीज, रत्न, एवं काच आदि पदार्थोंको भी एकत्र कर ले।

तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्य लगाकर स्नान करे और गुरुके चरणोंको पकड़कर उनसे आज्ञा लेकर एक बड़ी वेदीका निर्माण करे। यदि दीक्षा लेनेवाला व्यक्ति ब्राह्मण हो तो उसे चाहिये कि वह सोलह हाथ लम्बी-चौड़ी चौकोर वेदी बनाकर उसके ऊपर कलशकी स्थापना करे। धान्यके ऊपर नवीन एवं सुदृढ कलशकी विधिपूर्वक स्थापना कर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके उसमें जल भर दे और फिर पुष्पों तथा पल्लवोंसे उसे अलङ्कृत कर दे। तत्पश्चात् उसपर विधिपूर्वक जिससे भरा हुआ एक दश... कर गुरुकी भी भावना करके फलोंसे एवं वि... द्रव्योंके द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। ... निश्चितरूपसे धर्मको जानने तथा पालन करने... शिष्य पुरुष उनकी सन्निधि पूजाकर पूर्वोक्त ... द्रव्योंको उस वेदीपर स्थापित करे। सुन्दरि! ... भागोंमें जलसे भरे हुए चार कलशोंको आनके ... पूर्वपर मातृगणोंके दानार्थ संकल्प कर दे। ... वेदीको श्वेत सूत्रोंद्वारा सब ओरसे घेर दे। ... चारों पार्श्वभागोंमें चार पूर्णपात्र रखे। उस ... दीक्षा देनेवाले गुरुका कर्तव्य है कि उक्त कार्य ... करके शिष्यको ऐसा मन्त्र दे, जो रुचि एवं कर्मोंके ... अनुसार हो अथवा जिससे उसकी हार्दिक तुष्टि हो ... जिसके मनमें गुरुके प्रति पवित्र भक्ति-भावना ... तथा जिस दीक्षाकी विशेष अभिलाषा हो, वह ... विष्णुके मन्दिरमें जाकर नियमका पालन करते हुए ... कार्योंको सम्पन्न करे। फिर आचार्य पूर्वाभिमुख बैठ ... दीक्षाकी इच्छा रखनेवाले सभी शिष्योंको निम्नलि... उपदेश सुनाये।

जो व्यक्ति मेरा भक्त होकर भी किन्हीं ... भगवद्भक्त सत्पुरुषोंको देखकर उनके लिये आदर... उठकर स्वागत-सत्कार आदि कर्म नहीं कर... वह मानो मेरी ही हिंसा करता है। जो क... का दान करके अपने कर्मसे उसका उपकार नहीं क... उसने मानो अपने पूर्वके आठ पितरोंकी हत्या ... दी। जो निष्ठुर व्यक्ति अपनी साध्वी स्त्रीका भी, ... एक प्रिय मित्रका कार्य करती है, वध करता है—... हिंसक व्यक्ति पुनः स्त्री-योनिमें जन्म पाता है और पूर्वो... कर्मके प्रभावसे उसे पुनः दाम्पत्यसुखकी प्राप्ति नहीं होती। ब्राह्मणका वध करनेवाला, कृतघ्न, गोघाती—... पापी समझे जाते हैं तथा जो अन्य पापी कहे गये हैं, यदि शिष्य बनकर दीक्षा लेना चाहें तो उन्हें शिष्य ... बनाकर उनका परित्याग ही कर देना चाहिये।

दीक्षित पुरुषको चाहिये कि वह यदि परमसिद्धि या पानेकी इच्छा रखता हो या सनातन धर्मका संग्रह चाहता हो तो बेल, गूलर तथा उपयोगी को कभी न काटे। क्या खाना चाहिये, क्या नहीं चाहिये, इसे आचार्यको भी अपने शिष्यको बता देना चाहिये। गूलरका ताजा फल भक्ष्य है, पर उसका बासी सर्वथा अभक्ष्य है। लहसुन, प्याज आदि वस्तुएँ से दुर्गन्ध निकलती है,वे सभी अभक्ष्य मानी जाती हैं।

दीक्षित व्यक्तिके लिये उचित है कि वह सभी प्रकारके मछलियोंका निश्चयपूर्वक सर्वथा त्याग कर दे। उसे की निन्दा और प्राणीकी हिंसा भी कभी नहीं करनी चाहिये। वह किसीकी चुगली न करे और चोरी तो सर्वथा दे। दूसरे आये हुए अतिथिको आदर-सत्कारपूर्वक नादि कराना चाहिये। वह गुरु, राजा तथा गकी स्त्रीके प्रति मनमें कभी बुरी भावना न करे। , रत्न और युवती स्त्री—इनकी ओर चित्त जाये। दूसरेके उत्तम भाग्य और अपनी विपत्तिको कर दुःख न करे, यह सनातन धर्म है।

त्वचाके कटनेसे एक बिन्दु भी रक्त न निकले। इस प्रकार सविधि कृत्य सम्पन्न कर लेना चाहिये। इसके उपरान्त यजमान भगवान्में श्रद्धा रखनेवाले पुरुषोंको प्रणाम करके अग्नि प्रज्वलित करे और फिर वह धानका लावा, काले तिल, घृत और मधु—इन वस्तुओंको मिलाकर उसमें सात आहुतियाँ प्रदान करे। फिर तिल और खीरसे बीस आहुतियाँ देनी चाहिये। हवनके पश्चात् घुटनोंके बल जमीनपर झुककर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'दोनों अश्विनीकुमार, दसों दिशाएँ, सूर्य और चन्द्रमा—ये सभी इस कार्यमें साक्षी हैं। सत्यके बलपर ही पृथ्वी तथा आकाश अवलम्बित है। सत्यके बलसे ही सूर्य गतिशील हैं तथा पवनदेव प्रवाहित होते हैं।' तदनन्तर मन्त्रपूर्वक विधिके साथ आचार्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। गुरुको भगवान्में भक्ति रखनेवाला एवं दिव्य पुरुष होना चाहिये। फिर तीन बार गुरुकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंको श्रद्धापूर्वक पकड़ ले और कहे—'गुरुदेव! मैं आपकी कृपा तथा इच्छाके अनु-

…ता हूँ।' इसके बाद भगवद्भक्त पुरुषोंके सामने …नमें देवताकी भावना करके अभिवादन करे। …सके पश्चात् जिसमें किसी प्रकारके अपराधका …गी न होना पड़े, ऐसा भोजन करना उचित है।

पृथ्वि ! अब द्विजेतरोंकी दीक्षाकी विधि बतलाता …। जो यह दीक्षा लेता है, उसके फलस्वरूप सम्पूर्ण …पोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। दीक्षाकी इच्छा …खनेवालेको चाहिये कि सम्पूर्ण संसारके उपयोगी जिन …र्थोंको मैं पहले कह चुका हूँ, वह भी उन्हीं सभीका …म्यक् प्रकारसे संग्रह करे और आठ हाथके प्रमाणकी …ौकोर वेदी बनाकर उसे गोबरसे लीप दे। उसके लिये नीले …करेका चर्म एवं बाँसका दण्ड तथा नीला वस्त्र ही …पयुक्त है। इस प्रकार इन वस्तुओंका संग्रह कर पूर्वोक्त …धिसे दीक्षाका कार्य सम्पन्न कर वह मेरी शरणमें आकर …हे—'भगवन्! मैंने अब अपने अपवित्र कर्म तथा …भक्ष्य भक्षणका परित्याग कर दिया है।' फिर …रुके चरणोंको पकड़कर कहे—'प्रभो! भगवान् …ीहरिकी मुझपर कृपा हो गयी है। उनकी प्रसन्नतासे …हलेकी भाँति गोपनीय मन्त्र मुझे प्राप्त होनेका अवसर …मेला है। आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' पश्चात् चार बार …ुरुकी प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम करे। फिर चन्दन एवं …ष्पसे गुरुकी पूजा कर भक्तोंको नियमके अनुसार …ोजन कराये।'

वसुंधरे ! दीक्षित हो जानेपर सभी वर्णोंको, …स प्रकारके छत्र दिये जायँ, यहाँ उसका स्पष्टीकरण …किया जाता है। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, …श्यके लिये पीला तथा द्विजेतरके लिये नीला छत्र (छाता) देनेकी विधि है।

पृथ्वी बोली—केशव ! सभी वर्णोंकी न्यायानुसार प्राप्त होनेवाली दीक्षा मैं सुन चुकी, अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपके कर्ममें सदा संलग्न रहनेवाले दीक्षित पुरुषके कर्तव्य क्या हैं?

भगवान् वराह बोले—कल्याणि ! तुम जो बात पूछती हो, उसका गूढ़तम सार तथा रहस्ययुक्त उत्तर तो यह है कि वस्तुतः दीक्षित व्यक्तिको निरन्तर एकमात्र मेरा ही चिन्तन करना चाहिये। महाभागे ! 'गणान्तिका-दीक्षा'का रहस्य अत्यन्त गोपनीय वस्तु है और इसे मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये। विशालाक्षि ! मेरी भक्तिमें लगे रहनेवाले दीक्षित पवित्रात्मा व्यक्तिको विधिपूर्वक मन्त्रके द्वारा इसे ग्रहण करना चाहिये। जो भगवद्भक्त होकर इस दृष्टिजनित या स्पर्शजनित* गणान्तिकादीक्षाको ग्रहण करता है, उसके लिये और कोई कर्तव्य कार्य शेष नहीं रह जाता। उसके लिये दीक्षा ही सर्वफलदायिका होती है। किंतु सुन्दरि ! जो व्यक्ति केवल कानसे ही सुनकर मन्त्रोंकी दीक्षा ग्रहण करता है, उसे 'आसुरी-दीक्षा' कहते हैं। अतएव पवित्र मनवाले पुरुषको चाहिये कि मुझसे सम्बन्धित गुह्य दीक्षा ग्रहण करे। जो बुद्धिमान् पुरुष इस दीक्षा-के सहारे मेरा ध्यान-स्मरण करता है, उसने मानो हजारों जन्मोंतक मेरा ध्यान-चिन्तन कर लिया—ऐसा समझना चाहिये।

वसुंधरे ! इस 'गणान्तिकादीक्षा'के लिये कार्तिक, मार्गशीर्ष और वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथियाँ प्रशस्त हैं। दीक्षाकी बात निश्चित हो जानेपर उसे तीन दिनोंतक शुद्ध आहारपर रहना चाहिये। फिर मेरे धर्मपर अटल विश्वास रखकर उचित

* 'कुलार्णव' (१४। ५४,५६) तथा 'श्रीविद्यार्णव' (१३। ७। १-२) में ये दीक्षाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—

हस्ते शिवं पुरं ध्यात्वा जपन् मूलाङ्गमालिनीम्। गुरुः स्पृशेच्छिष्यतनुं स्पर्शदीक्षा भवेदियम्॥…

निमील्य नयने ध्यात्वा परतत्त्वं प्रसन्नधीः। सम्यक् पश्येद् गुरुः शिष्यं दृग्दीक्षा सा भवेत् प्रिये॥

अर्थात् अपने हाथमें परशिव एवं गुरुका ध्यान तथा 'मालिनीविद्या'का जप करते हुए जो आचार्य अपने शिष्यका स्पर्श करते हैं, वह 'स्पर्शदीक्षा' तथा नेत्रोंको बंदकर परतत्त्वका ध्यानकर शिष्यको भली प्रकार देखना 'दृग्दीक्षा' है। 'मालिनीविद्या' का वर्णन 'अग्निपुराण'के १४९वें अध्यायमें है। (द्र० अग्निपुराण पू० पृ० २५९)

समयमें दीक्षा लेनी चाहिये। सुलोचने! साधक पुरुष मेरे सामने अग्नि प्रज्वलित कर कुशका परिस्तरण करे। फिर भावनामयी 'दीक्षा'की स्थापना करे। तत्पश्चात् शिष्य देव-भावनासे परम पवित्र होकर दीक्षाके कार्योंमें संलग्न हो जाय। उस समय गुरु 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर यह मन्त्र पढ़े। मन्त्रका भाव है—'शिष्य! यह दीक्षा भगवान् नारायणके दाहिने अङ्गसे प्रकट हुई है। उनकी कृपासे ही पितामह ब्रह्माने इसे धारण किया है, वही दीक्षा तुम भी ग्रहण करो।' इसके बाद स्नानकर रेशमी वस्त्र धारणकर वह मेरे अङ्गोंका स्पर्श करे। फिर उसी समय कंघी और अञ्जन समर्पण कर मुझ भगवान् नारायणको मन्त्रसे स्नान कराये। मन्त्रका भाव यह है—'देवेश्वर! स्नान करनेके लिये यह जल सुवर्णके कलशमें रखकर आपकी सेवामें समर्पित है। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ, आप इससे स्नान करनेकी कृपा करें। फिर 'ॐ नमो नारायणाय' का उच्चारण कर कहे 'माधव! आपकी कृपाके बलपर गुरुदेवकी दयासे यह मन्त्रमयी दीक्षा मुझे प्राप्त हुई है। यह दीक्षा मुझे इस योग्य बना दे कि कभी भी मेरा मन अधर्मकी ओर न जा सके।'

वसुंधरे! जो व्यक्ति इस विधिके अनुसार मेरे कर्ममें दीक्षित होता है, उसमें गुरुकी कृपासे महान् तेजका आधान हो जाता है। फलस्वरूप वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। सुन्दरि! यह दी[क्षा] चुगलखोर, धूर्त एवं कुत्सित शिष्यको नहीं दे[नी] चाहिये। इसे विधिपूर्वक ग्रहण कराकर दे[…] एवं सज्जन शिष्यके हाथमें एक माला दे[नी] चाहिये। देवि! १०८ दानोंकी उत्तम, […] ५४ दानोंकी मध्यम तथा २७ दानोंकी गयी माला* कनिष्ठ कही गयी है। रुद्राक्षकी म[ाला] परमोत्तम है, पुत्रजीवककी माला मध्यम एवं क[…] रुद्[…]टेकी माला कनिष्ठ समझनी चाहिये। देवि! दीक्षाप्रसङ्गका मैंने तुमसे वर्णन किया। 'गणान्तिका' नामकी प्रसिद्ध दीक्षा शुद्धस्वरूप, [..] प्राणियोंके लिये हितकारी तथा मोक्ष चाहनेवालोंके उत्तम साधन है। साधक जप करनेकी इस म[ाला]को जूठे हाथ न छुए और न इसे स्त्रियोंके हाथमें ही दे, [...] हाथसे भी इसका स्पर्श न करे। इसे अन्तरिक्ष (दीवार) किसी कीलके सहारे लटका देना चाहिये। जपके स[मय] इसे किसीको दिखाना भी ठीक नहीं है। जपके पू[र्व] उपरान्त इसकी भी पूजा-स्तुति करनी चाहिये।

देवि! यह मैंने तुमसे दीक्षाका गूढ रहस्य बतला[या]। जो पुरुष मेरी उपासनामें परायण होकर इस वि[धिके] अनुसार मेरे (भगवत्सम्बन्धी) इन कर्मोंको सम्पन्न क[रता] है, वह अपने सात कुलोंको तार देता है।

(अध्याय १२[…])

—————

पूजाविधि और ताम्रधातुकी महिमा

पृथ्वी बोली—भगवन्! अब आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि आपके उपासक पुरुषको संध्या आदि कर्म तथा आपकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये?

भगवान् वराह कहते हैं—माधवि! संध्यामें संसारसे मुक्त करनेकी शक्ति है। अतः प्रातःकाल शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक संध्याकी उपासना क[रनी] चाहिये। पहले श्रद्धालु पुरुष हाथमें एक अञ्जलि [जल] लेकर शुद्ध भावनासे मेरा ध्यान करे। फिर कहे 'भगवन्! आदिकालमें आप ही अव्यक्तरूपसे विराज[मान] थे। आपसे संसारकी सृष्टि हुई। ब्रह्मा, रुद्र तथा [...]

* शैवतन्त्र [...] -दीक्षा [...]

सभी देवता आपसे ही उत्पन्न होकर आपके ध्यानमें तत्पर हैं। वे संध्याके समयमें ध्यानद्वारा आपकी आराधना करते हैं। आप ही सातोंदिन, पक्ष, मास, ऋतु आदि कालक्रमकी व्यवस्था करनेके लिये सूर्यरूपसे प्रकट हैं। अतः भगवन्! इस संध्याकालमें हम आपकी उपासना करते हैं। आपको मेरा नमस्कार है।' उपासनाका यह विषय अत्यन्त गोपनीय, सुखमय तथा परम श्रेष्ठ है। जो इसका सदा पाठ करता है, वह पापसे लिप्त नहीं हो सकता। जिसने दीक्षा नहीं ली है एवं यज्ञोपवीत धारण नहीं किया है, उसे कभी भी इस मन्त्रको नहीं बताना चाहिये।

देवि! संध्याके बाद मेरी पूजाके लिये पहले 'कर्माङ्ग-दीपक' जलानेकी विधि है। इसके लिये साधक पुरुष यों प्रार्थना करे—'भगवन्! मैं आपके धर्मोंका पालन करता हुआ यह उत्तम दीप अर्पण कर रहा हूँ, आप इसे कृपाकर स्वीकार कीजिये।' फिर घुटनोंके बल बैठकर कहे—'विष्णो! 'ॐ' आपका स्वरूप है। आप ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण, कृपामय एवं तेजस्वरूप हैं। आपको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आपकी आज्ञासे समस्त देवता अग्निमें निवास करते हैं। अग्निमें जो दाहिका शक्ति है, वह आपका ही तेज है। मुझमें और मन्त्रमें भी आपका ही तेज काम कर रहा है। यह दीपक तथा सभी वैदिक-तान्त्रिक मन्त्र भी आपके ही स्वरूप हैं। आप ही समस्त कल्याणोंके स्रोत हैं। आप यह दीपक स्वीकार करें।'

तदनन्तर मेरा उपासक अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, चन्दन, पुष्प आदिसे मेरा अर्चन कर, धूप दिखलाये। धूप उत्तम गन्धसे युक्त और मनको आकृष्ट करनेवाला हो। उसे हाथमें लेकर 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका उच्चारण कर इस प्रकार कहे—'केशव! आपके अङ्ग तो स्वभावतः सुगन्धित हैं ही; फिर भी मैं इन्हें इस सुन्दर गन्धवाले धूपसे सुगन्धित करना चाहता हूँ। फलस्वरूप मेरे भी सभी अङ्गोंको गन्धयुक्त बनानेकी कृपा करें। प्रभो! आपको धूप अर्पण करना साधकके लिये सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेका परम साधन है।'

इस प्रकार उत्तम दीपक हाथमें लेकर घुटनेके बल बैठ जाय और पूजाकर पुनः कहे—'विष्णो! आपके लिये नमस्कार है। आप परम तेजस्वी हैं। सम्पूर्ण देवता अग्निमें निवास करते हैं। और अग्नि आपके ही तेजसे प्रतिष्ठित है। तेज स्वयं आपका आत्मा है। भगवन्! प्रकाशमान यह दीप तेजोमय है। संसारसे मुक्त होनेके लिये मैं इसे आपको अर्पण करता हूँ। आप इसे स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। आप मूर्तिमान् होकर मेरे इस अर्पणको सफल बनाइये। वसुंधरे! जो इस प्रकार मुझे दीपक अर्पण करता है, उसके समस्त पिता-पितामह आदि पितर तर जाते हैं।

भगवान् नारायणकी इस प्रकारकी बात सुनकर पृथ्वीका मन आश्चर्यसे भर गया। अतः उन्होंने पूछा—'भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूँ कि आपके पूजाकी सामग्री कैसे पात्रोंमें रखी जानी चाहिये, जिससे आपको प्रसन्नता प्राप्त हो? भगवन्! इसे आप तत्त्वतः बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—'देवि! मेरी पूजाके पात्र सोने, चाँदी और काँसे आदिके भी हो सकते हैं, किंतु उन सबको छोड़कर मुझे ताँबेका पात्र ही बहुत अच्छा लगता है।' भगवान् नारायणकी यह बात सुनकर धर्मकी इच्छा रखनेवाली पृथ्वी देवीने उन जगत्प्रभुके प्रति यह मधुर वचन कहा—'भगवन्! आपको ताँबेका पात्र ही अधिक रुचता है, इसका रहस्य क्या है, यह मुझे बतलानेकी कृपा करें।'

उस समय पृथ्वीका प्रश्न सुनकर अनादि, परम स्वतन्त्र भगवान् नारायण, जो विश्वमें सबसे बड़े देवता हैं, पृथ्वीसे इस प्रकार बोले—'माधवि! आपसे सात

हजार युग पूर्व ताँबेकी उत्पत्ति हुई थी और वह मुझे देखनेमें अधिक प्रिय प्रतीत हुआ। वसुन्धरे! पूर्व समयमें 'गुडाकेश' नामक एक महान् असुर ताँबेका रूप बनाकर मेरी आराधना करने लगा। विशालाक्षि! उसने धर्मको बढ़ानेवाले चौदह हजार वर्षोंतक कठोर तप करते हुए मेरी आराधना की। उसके हार्दिक भाव एवं तीव्र तपसे मैं संतुष्ट हो गया, अतः ताँबेके समान चमकनेवाले उस दिव्य स्थानपर मैं गया, जहाँ ताँबेकी उत्पत्ति हुई थी। देवेश्वरि! उस आश्रमको देखकर मैंने उससे प्रसन्न होकर कुछ बातें कहीं। इतनेमें वह महान् असुर मुझे देखकर घुटनोंके बल बैठ गया और मेरी स्तुति करने लगा। फिर मेरी उपासनामें तत्पर रहनेवाले उस 'गुडाकेश' नामक असुरने मेरे चतुर्भुज रूपको देखा तो नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ लिया और भूमिपर मस्तक झुकाकर मेरी प्रार्थनाके लिये उद्यत हो गया। उस असुरको देखकर मेरा अन्तःकरण प्रसन्न हो गया और मैंने उससे कहा—'गुडाकेश! तुम बड़े भाग्यशाली हो। कहो, मैं तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य करूँ? सुव्रत! मेरी आराधना बड़ी कठिन वस्तु है, फिर भी तुम्हारी मन-कर्म-वचनोंद्वारा सम्पादित भक्तिसे मैं परम संतुष्ट हूँ। अनघ! अब तुम्हें जो रुचे, तुम वह वर माँग लो।'

वसुंधरे! मेरी इस प्रकारकी बात सुनकर गुडाकेशने हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे कहा—'देव! यदि आप सचमुच मुझपर अन्तर्हृदय एवं मनसे प्रसन्न हैं तो मुझपर ऐसी कृपा करें कि हजारों जन्मोंतक मेरी आपमें दृढ़ भक्ति बनी रहे। केशव! साथ ही मेरी यह इच्छा है कि आपके हाथसे छूटे हुए चक्रके द्वारा मेरी मृत्यु हो और इस प्रकार मेरे शरीरके विनष्ट होनेसे मेरा भी वसा (चर्बी), मांस, मज्जा और रक्त आदि जितने सब ताँबेके* रूपमें परिवर्तित हो जायँ तथा उनसे सदा पवित्र पात्रोंकी सृष्टि निर्मित हो। फिर मनुष्य [illegible] करनेवाले पुरुष उस ताँबेसे आपके पात्र निर्मित करायें। उस ताँबेके पात्रमें आपकी पूजनोपयोगी वस्तु रखकर [illegible] आपको निवेदित करें तब उस [illegible] हुई वस्तुसे आप पूर्ण प्रसन्न हों। भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर देनेकी कृपा करें।'

उस समय भगवान् नारायणने गुडाकेशसे कहा—'असुरराज! तुमने उग्र तपस्या करते समय जो कुछ भी सोचा है, वह सब वैसा ही होगा। जबतक [illegible] बनाया हुआ संसार स्थिर रहेगा, तबतक तुम ताँबा बनकर मुझमें स्थित रहोगे।' सुन्दरि! उसी समयसे गुडाकेशका शरीर ताम्रमय बनकर जगत्‌में प्रतिष्ठित हुआ। इसीलिये ताँबेके पात्रमें रखकर जो वस्तु मुझ भगवान्‌को अर्पित की जाती है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। देवि! यही कारण है कि ताँबा मङ्गलस्वरूप, पवित्र एवं मुझे अत्यन्त प्रिय है। वसुंधरे! फिर मैंने उस असुरसे कहा कि देखो, मध्याह्नकालके सूर्यमें तुम्हें मेरे चक्रका दर्शन होगा। वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन मध्याह्नकालमें मेरा तेजोमय चक्र तुम्हारे शरीरका अन्त करेगा, जिससे तुम मेरे लोकको प्राप्त कर लोगे, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

गुडाकेशसे यह कहकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया। उधर गुडाकेश भी मेरे चक्रद्वारा अपने वधकी प्रतीक्षा करते हुए तपस्यामें संलग्न रहा। उसके इसी प्रकार सोचते-सोचते वैशाखमासके शुक्लपक्षकी वह द्वादशी तिथि आ

---

* ताँबेकी इस उत्पत्ति[illegible] [illegible]की कोई बात नहीं है। भूमिमाता (मेदिनी)की उत्पत्ति भी मधु-कैटभ दैत्यके मेदसे तथा सभी रत्नोंकी [illegible], वसा, (चर्बी) मज्जा इत्यादिसे हुई है, यह कथा प्रायः गरुडादि सभी पुराणोंमें प्रसिद्ध है। [illegible] ; ० २३, उत्तर खं० ७; विष्णुधर्मोत्तरपुराण, २। १५, अग्निपुराण [illegible], 'मानसोल्लास' [illegible] चिन्तामणि) आदि।

पहुँची। उस दिन उसने अपना धर्म निश्चय कर मेरी पूजा की और प्रार्थनामें संलग्न हो गया। फिर कहने लगा—'प्रभो! आप अग्निके समान अपने तेजोमय चक्रको छोड़िये, जिससे मेरे अङ्ग भलीभाँति छिन्न-भिन्न हो जायँ और मेरा आत्मा शीघ्र ही आपको प्राप्त कर ले।'

इस प्रकार वह गुडाकेश मेरे चक्रद्वारा विदीर्ण होकर मुझमें लीन हुआ और उसीके मांससे ताँबा उत्पन्न हुआ। उसका रक्त सुवर्ण हुआ और उसके शरीरकी हड्डियाँ चाँदी बनीं। उसकी अन्य धातु भी तैजस धातुओंके रूपमें परिवर्तित हो गयी और वे ही राँगा, सीसा, टीन, काँसा आदि बने तथा उसके मलसे अन्य प्राकृतिक खनिज—गंधक आदि द्रव्योंका प्रादुर्भाव हुआ। देवि! इसीलिये ताँबेके पात्र-द्वारा मुझे चन्दन, अङ्गराग, जल, अर्घ्य, पाद्यादि अन्य वस्तुएँ अर्पण की जाती हैं। देवि! ताम्रके पात्रमें स्थित एक-एक पके चावलमें अनन्त फल भरा है। इससे श्रद्धालु पुरुषोंकी मेरी उपासनामें रुचि बढ़ती है। इस प्रकारसे उत्पन्न होनेके कारण ताम्र मुझे अधिक प्रिय है। दीक्षित पुरुष इस ताम्रपात्रसे ही पाद्य एवं अर्घ्य देते हैं। देवि! इस प्रकार मैंने दीक्षाकी विधि एवं ताँबेकी उत्पत्तिके प्रसङ्गका तत्त्वतः वर्णन किया। अब तुम दूसरी कौन-सी बात पूछना चाहती हो? वह बतलाओ।

(अध्याय १२९)

राजाके अन्न-भक्षणका प्रायश्चित्त

पृथ्वी बोलीं—प्रभो! आपकी दीक्षाका माहात्म्य अद्भुत है। महाभाग! इसे सुनकर मैं अत्यन्त निर्मल हो गयी। किंतु मेरे मनमें एक शङ्का रह गयी है। आपने इसके पूर्व बत्तीस प्रकारके अपराध कहे हैं। यदि अल्पबुद्धिवाले मनुष्यद्वारा इनमेंसे कोई अपराध बन जाता है तो उसकी शुद्धि किस प्रकार हो? माधव! आप मुझे इसे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—देवि! मेरी उपासनामें संलग्न रहनेवाले शुद्ध भागवत पुरुष यदि लोभ अथवा भयसे राजाका अन्न खाते हैं तो उन्हें दस हजार वर्षोंतक नरककी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

भगवान्‌की यह बात सुनकर पृथ्वीदेवी काँप उठीं। वे अत्यन्त दीन-मन होकर भगवान्‌से मधुर वचनोंमें फिर इस प्रकार कहने लगीं।

पृथ्वी बोलीं—भगवन्! राजाओंमें ऐसा कौन-सा दोष है, जिससे उनके अन्न खानेसे प्राणीको नरकमें जाना पड़ता है।

भगवान् वराह बोले— पृथ्वि! राजाका अन्न कभी खाने योग्य नहीं है। राजा यथासम्भव संसारमें यद्यपि सबसे समान भावसे ही व्यवहार करता है, फिर भी उससे दारुण राजस या तामस कर्म भी घटित हो जाते हैं, इसलिये पृथ्वीदेवि! राजाका अन्न गर्हित—निन्द्य बतलाया गया है। अतएव जगत्‌में सम्यक् प्रकारसे धर्मका आचरण करनेवाले व्यक्तिको राजाका अन्न खाना उचित नहीं है। वसुंधरे! अब भक्तोंको जिस प्रकार राजाका अन्न खाना चाहिये, मैं उन-उन प्रक्रियाओंको बताता हूँ, उसे सुनो। पहले राजाको चाहिये कि वह शास्त्रीय-विधिके अनुसार मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिष्ठा करे और फिर भक्त-भागवतोंको धन-धान्य-समृद्धि आदि प्रदान कर वैष्णवोंद्वारा मेरा नैवेद्य तैयार कराकर मुझे समर्पित करके भोजन करे-कराये। इस प्रकार राजाका अन्न खानेसे भागवतों (मेरे भक्तों)को अन्नका दोष नहीं लगता।

पृथ्वी बोलीं—जनार्दन ! यदि कोई मनुष्य आपका भक्त अनजानमें राजान्न-भक्षण कर लेता है तो वह कौन-सा कर्म करे; जिससे उसकी शुद्धि हो जाय ?

भगवान् वराह बोले—देवि ! एक बार चान्द्रायण या सांतपन-व्रत (छः रात्रियोंका उपवास)के अनुष्ठान अथवा कई बार तप्तकृच्छ्र-व्रत (जल, दूध और घीको एक साथ गर्मकर एक दिन पीने तथा दूसरे दिन उपवास)के आचरणद्वारा मनुष्य राजान्न-भक्षणके दोषसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और उसमें लेशमात्र भी दोष न रह जाता। राजाका अन्न खाना उचित नहीं है विशेषकर उसे जो मेरी पूजा-आराधना करता हुआ जी व्यतीत करना चाहता या उत्तम गति पानेकी चे करता है। (अध्याय १३

दातुन न करने तथा मृतक एवं रजस्वलाके स्पर्शका प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो मानव दातुनका प्रयोग न कर मेरी उपासनामें सम्मिलित होता है, उसके इस एक अपकर्मसे ही पूर्वके किये हुए सारे धर्म नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यका शरीर नाना प्रकारके मल एवं गंदे द्रव्योंसे भरा है। यह देह कफ, पित्त, पीव, रक्त आदिसे युक्त है और मनुष्यका मुख दुर्गन्धपूर्ण रहता है। दातुन करनेसे मुँहकी दुर्गन्ध सर्वथा नष्ट हो जाती है। पवित्रता भगवान् तथा देवताओंको प्रिय है और सदाचारसे वह बढ़ती है।

पृथ्वीने कहा—भगवन् ! दातुनका उपयोग न कर जो आपके कर्मका सम्पादन करता है, उसके लिये क्या प्रायश्चित्त है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे उसका सारा पुण्य नष्ट न हो सके।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे ! इसका उसे गर्हितरूपमें चौदह हजार वर्षोंतक नरक-वास कर पड़ता है और जो व्यक्ति मृतकका स्पर्शकर बिना प्रायश्चि किये हुए मेरे क्षेत्रमें चला जाता है, उसे हजारों वर्षोंत विविध कष्टमय निकृष्ट (नीच) योनियोंमें जा पड़ता है।

यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा क्लेश हुआ। उन्हों सहानुभूतिसे पूछा—भगवन् ! यह तो बड़े ही दुःखद बात है। कृपया इसके लिये भी किसी प्रायश्चित्तका वर्ण करें, जिससे प्राणी उस विकट संकटसे बच सके।

भगवान् वराह बोले—देवि ! शव-स्पर्श करनेवाला मानव तीन दिनोंतक जौ खाकर और पुनः एक दिन उपवास रहकर शुद्ध हो सकता है। उसे इसक इसी रूपमें प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इसी प्रकार जो शास्त्रकी विधिके प्रतिकूल श्मशानमें जाता है, उसके फिर भी श्मशानमें रहकर अभक्ष्य-

रहे और फिर पञ्चगव्यका पान करे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेसे उसका पाप दूर हो जाता है। इसी प्रकार रजस्वला-स्त्रीका संसर्गी मनुष्य यदि भगवान्‌की मूर्तिका स्पर्श कर लेता है तो उसे भी हजार वर्षोंतक नरकमें रहना पड़ता है। नरकसे निकलकर वह पुनः अन्धा, दरिद्र और मूर्ख होता है।

रजस्वला स्त्रीका संस्पर्शदोष तपस्यासे ही दूर होता है। उसे शीतकालमें तीन राततक खुले आकाशमें शयनकर भगवत्परायण होकर तपस्याका अनुष्ठान करना चाहिये। (अध्याय १३१ १३२)

भगवान्‌की पूजा करते समय होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! इसी प्रकार पूजाके समय मुझे स्पर्श किये हुए रहनेपर यदि शरीरके दोष वायु या अजीर्णके कारण अधोवायु निकल गयी तो इस दोषसे वह पाँच वर्षोंतक मक्खी, तीन वर्षोंतक चूहा, तीन वर्षोंतक कुत्ता एवं फिर नौ वर्षोंतक कछुएका शरीर पाता है। देवि! जो मेरे कर्ममें—पूजा-पाठ, जप-तपमें उद्यत रहनेवाला पुरुष शास्त्रका रहस्य जानता है, फिर भी यदि उसके द्वारा अपकर्म बन जाय तो इसमें उसका प्रारब्ध एवं मोह ही कारण हैं।

देवि! अब मैं इसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, सुनो। अनघे! जिस कर्मके प्रभावसे ऐसा अपराध बन जानेपर भी उपासक पुरुषका उद्धार हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको तीन दिन और तीन रातोंतक यवके आहारपर रहना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेके पश्चात् वह मेरी दृष्टिमें निरपराध है और सम्पूर्ण आसक्तियोंका त्यागकर वह मेरे लोकमें पहुँच जाता है। भद्रे! तुमने जो पूछा था कि—'पूजाके समय बने हुए कलुषित (निन्दित) कर्म-अपराधोंसे पुरुषकी क्या गति होती है?' इसके विषयमें मैंने तुम्हें बता दिया। अब मेरे उपासना-कर्मके बीचमें ही जो मलत्याग करने जाता है, अनघे! उसके विषयमें मैं अपना निर्णय कहता हूँ, सुनो। वह व्यक्ति भी बहुत वर्षोंतक नारकीय यातनाओंको भोगता है। उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह व्यक्ति .. रात जलमें पड़ा रहे तथा एक रात खुले आकाशके नीचे शयन करे। इस प्रकार विधान करनेसे वह इस अपराधसे छूट जाता है। पृथ्वि! पूजाके अवसरपर मेरे भक्तोंद्वारा होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त मैंने तुम्हें बतला दिये हैं। अब देवि! मेरी भक्तिमें रहनेवाला जो व्यक्ति मेरे कर्मोंका त्याग करके दूसरे कर्मोंमें लग जाता है, उसका फल बतलाता हूँ। वह व्यक्ति दूसरे जन्ममें मूर्ख होता है। अब उसके लिये प्रायश्चित्तकी विधि बतलाता हूँ। उसे पंद्रह दिनोंतक खुले आकाशमें सोना चाहिये। इससे वह पापसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जो व्यक्ति नीला वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, वह पाँच सौ वर्षोंतक कीड़ा बनकर रहता है। अब उसके अपराधका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। उसे विधिपूर्वक 'चान्द्रायणव्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति अविधिपूर्वक मेरा स्पर्श करता है और मेरी उपासनामें लगता है, उसे भी दोष लगता है और वह मेरा प्रियपात्र नहीं बन सकता। उसके द्वारा दिये गये गन्ध, माल्य, सुगन्धित पदार्थ तथा मोदक आदिको मैं कभी ग्रहण नहीं करता।

पृथ्वी बोली—प्रभो! आप जो मुझे आचारके व्यतिक्रमकी बात सुना रहे हैं तो कृपाकर इनके प्रायश्चित्तोंको तथा सदाचारके नियमोंको भी बतानेकी कृपा

पृथ्वी बोलीं—जनार्दन ! यदि कोई मनुष्य आपका भक्त अनजानमें राजान्न-भक्षण कर लेता है तो वह कौन-सा कर्म करे; जिससे उसकी शुद्धि हो जाय ?

भगवान् वराह बोले—देवि ! एक बार चान्द्रायण या सांतपन-व्रत (छः रात्रियोंका उपवास)के अनुष्ठान अथवा कई बार तप्तकृच्छ्र-व्रत (जल, दूध और घीको एक साथ गर्मकर एक दिन पीने तथा दूसरे दिन उपवास)के आचरणद्वारा मनुष्य राजान्न-भक्षणके दोषसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और उसमें लेशमात्र भी दोष नहीं रह जाता। राजाका अन्न खाना उचित नहीं है। विशेषकर उसे जो मेरी पूजा-आराधना करता हुआ जीवन व्यतीत करना चाहता या उत्तम गति पानेकी चेष्टा करता है। (अध्याय ११०)

दातुन न करने तथा मृतक एवं रजस्वलाके स्पर्शका प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! जो मानव दातुनका प्रयोग न कर मेरी उपासनामें सम्मिलित होता है, उसके इस एक अपकर्मसे ही पूर्वके किये हुए सारे धर्म नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यका शरीर नाना प्रकारके मल एवं गंदे द्रव्योंसे भरा है। यह देह कफ, पित्त, पीव, रक्त आदिसे युक्त है और मनुष्यका मुख दुर्गन्धपूर्ण रहता है। दातुन करनेसे मुँहकी दुर्गन्ध सर्वथा नष्ट हो जाती है। पवित्रता भगवान् तथा देवताओंको प्रिय है और सदाचारसे वह बढ़ती है।

पृथ्वीने कहा—भगवन् ! दातुनका उपयोग न कर जो आपके कर्मका सम्पादन करता है, उसके लिये क्या प्रायश्चित्त है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे उसका सारा पुण्य नष्ट न हो सके।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे ! इसका प्रायश्चित्त यह है कि व्यक्ति सात दिनोंतक आकाश-शयन—खुली हवामें—सर्वथा बाहर सोये, इससे उसके दातुन न करनेके दोष नष्ट हो जाते हैं। भद्रे ! दातुनसम्बन्धी प्रायश्चित्त तुम्हें बतला दिया। जो व्यक्ति इस विधानसे प्रायश्चित्त करता है, उसके अपराध नष्ट हो जाते हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—इसी प्रकार जो मनुष्य अपवित्र अवस्थामें किसी मृतक (शव)का स्पर्श करता है, उसे गर्हितरूपमें चौदह हजार वर्षोंतक नरकवास करना पड़ता है और जो व्यक्ति मृतकका स्पर्शकर बिना प्रायश्चित्त किये हुए मेरे क्षेत्रमें चला जाता है, उसे हजारों वर्षोंतक विविध कष्टमय निकृष्ट (नीच) योनियोंमें जाना पड़ता है।

यह सुनकर पृथ्वीको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने सहानुभूतिसे पूछा—भगवन् ! यह तो बड़े ही दुःखकी बात है। कृपया इसके लिये भी किसी प्रायश्चित्तका वर्णन करें, जिससे प्राणी उस विकट संकटसे बच सके।

भगवान् वराह बोले—देवि ! शव-स्पर्श करनेवाला मानव तीन दिनोंतक जौ खाकर और पुनः एक दिन उपवास रहकर शुद्ध हो सकता है। उसे इसका इसी रूपमें प्रायश्चित्त करना चाहिये।

इसी प्रकार जो शास्त्रकी विधिके प्रतिकूल श्मशानमें जाता है, उसके पितर भी श्मशानमें रहकर अमक्ष्य-भोजी बन जाते हैं। इसलिये उसका भी प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! आपके भजन-पूजनमें लगे रहनेवालोंको भी इस प्रकारका पाप लग जाता है ? यदि कर्मसिद्धान्तसे उनको पाप लगता है तो उसका भी प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराहने कहा—ऐसा व्यक्ति सात दिनोंतक एक समय भोजन करे, [illegible] बिना भोजन किये

रहे और फिर पञ्चगव्यका पान करे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेसे उसका पाप दूर हो जाता है। इसी प्रकार रजस्वला-स्त्रीका संसर्गी मनुष्य यदि भगवान्‌की मूर्तिका स्पर्श कर लेता है तो उसे भी हजार वर्षोंतक नरकमें रहना पड़ता है। नरकसे निकलकर वह पुनः अन्धा, दरिद्र और मूर्ख होता है।

रजस्वला स्त्रीका संसर्गदोष तपस्यासे ही दूर होता है। उसे शीतकालमें तीन राततक खुले आकाशमें शयनकर भगवत्परायण होकर तपस्याका अनुष्ठान करना चाहिये। (अध्याय १३१ १३२)

भगवान्‌की पूजा करते समय होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! इसी प्रकार पूजाके समय मुझे स्पर्श किये हुए रहनेपर यदि शरीरके दोष वायु या अजीर्णके कारण अधोवायु निकल गयी तो इस दोषसे वह पाँच वर्षोंतक मक्खी, तीन वर्षोंतक चूहा, तीन वर्षोंतक कुत्ता एवं फिर नौ वर्षोंतक कछुएका शरीर पाता है। देवि! जो मेरे कर्ममें—पूजा-पाठ, जप-तपमें उद्यत रहनेवाला पुरुष शास्त्रका रहस्य जानता है, फिर भी यदि उसके द्वारा अप-कर्म बन जाय तो इसमें उसका प्रारब्ध एवं मोह ही कारण हैं।

देवि! अब मैं इसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, सुनो। अनघे! जिस कर्मके प्रभावसे ऐसा अपराध बन जानेपर भी उपासक पुरुषका उद्धार हो सकता है। ऐसे व्यक्तिको तीन दिन और तीन रातोंतक यवके आहारपर रहना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेके पश्चात् वह मेरी दृष्टिमें निरपराध है और सम्पूर्ण आसक्तियोंका त्यागकर वह मेरे लोकमें पहुँच जाता है। भद्रे! तुमने जो पूछा था कि—'पूजाके समय बने हुए कलुषित (निन्दित) कर्म-अपराधोंसे पुरुषकी क्या गति होती है?' इसके विषयमें मैंने तुम्हें बता दिया। अब मेरे उपासना-कर्मके बीचमें ... है, अनघे! उसके ... । वह व्यक्ति ... भोगता ... आकाशके नीचे शयन करे। इस प्रकार विधान करनेसे वह इस अपराधसे छूट जाता है। पृथ्वि! पूजाके अवसरपर मेरे भक्तोंद्वारा होनेवाले अपराधोंके प्रायश्चित्त मैंने तुम्हें बतला दिये हैं। अब देवि! मेरी भक्तिमें रहनेवाला जो व्यक्ति मेरे कर्मोंका त्याग करके दूसरे कर्मोंमें लग जाता है, उसका फल बतलाता हूँ। वह व्यक्ति दूसरे जन्ममें मूर्ख होता है। अब उसके लिये प्रायश्चित्तकी विधि बतलाता हूँ। उसे पंद्रह दिनोंतक खुले आकाशमें सोना चाहिये। इससे वह पापसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जो व्यक्ति नीला वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, वह पाँच सौ वर्षोंतक कीड़ा बनकर रहता है। अब उसके अपराधका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ। उसे विधिपूर्वक 'चान्द्रायणव्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति अविधिपूर्वक मेरा स्पर्श करता है और मेरी उपासनामें लगता है, उसे भी दोष लगता है और वह मेरा प्रियपात्र नहीं बन सकता। उसके द्वारा दिये गये गन्ध, माल्य, सुगन्धित पदार्थ तथा मोदक आदिको मैं कभी ग्रहण नहीं करता।

पृथ्वी बोली—प्रभो! आप जो मुझे आचारके ... बात सुना रहे हैं तो कृपाकर इनके प्रायश्चित्तोंको तथा सदाचारके नियमोंको भी ...

कीजिये। भगवन्! किस कर्मके विधानसे सम्पन्न होकर आपके कर्म-परायण रहनेवाले भागवत-पुरुष आपके श्रीविग्रहके पास पहुँचकर स्पर्श तथा उपासना करनेके योग्य होते हैं? यह भी बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—सुश्रोणि! जो सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करके मेरी शरणमें आकर उपासना करता है, उसका कर्तव्य सुनो। मेरे उपासकको चाहिये कि वह पूर्वमुख बैठकर जलसे अपने दोनों पैरोंको धोकर फिर तीन बार हाथसे पवित्र मृत्तिकाका स्पर्शकर जलसे हाथ धो डाले। इसके उपरान्त मुख, नासिकाके दोनों छिद्र, दोनों आँख और दोनों कानोंको भी धोये। दोनों पैरोंको पाँच-पाँच बार धोये। फिर दोनों हाथोंसे मुख पोंछकर सारे संसारको भूलकर एकमात्र मेरा स्मरण करते हुए प्राणायाम करे। उपासकको चाहिये कि वह परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जलसिक्त अंगुलियोंसे तीन बार अपने सिरका, तीन बार दोनों कानोंका और तीन बार नासिकाके छिद्रोंका स्पर्श करे, फिर तीन बार जल ऊपर फेंकना चाहिये।

यदि उसे मुझे प्रसन्न करनेकी इच्छा है तो फिर मेरे श्रीविग्रहके वामभागका स्पर्श करे। मेरे कर्ममें स्थित पुरुष यदि इस प्रकारका कर्म करता है तो उसे कोई दोष स्पर्श नहीं कर सकता।

पृथ्वी बोली—भगवन्! जो दम्भी या व्यभिचारी पुरुष अविधिपूर्वक स्पर्शकर मेरी पूजा करने लगता है, उसके लिये तापन और शोधनकी भी क्रिया होती होगी? अतः उसे आप बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मेरे कर्मका अनादर करनेवाले व्यक्तियोंको जो गति प्राप्त होती है, इस विषयमें मैं विचारपूर्वक कहता हूँ, सुनो। मुझसे ... विधियोंका ठीक रूपसे पालन न कर जो अपवित्र

ग्यारह हजार वर्षोंतक कीड़ा होकर रहना पड़ता है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त यह है—उसे महासांतपन अथवा तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिये। यशस्विनि! ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य—इनमें जो भी मेरे मतके समर्थक हैं, उन्हें इस विधिके अनुसार यह प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। इसके फलस्वरूप पापसे छूटकर वे परम गति प्राप्त कर लेते हैं। मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला जो व्यक्ति क्रोधमें भरकर मेरे गात्रोंका स्पर्श करता है और जिसका चित्त एकाग्र नहीं रहता, उसपर मैं प्रसन्न नहीं होता, बल्कि उसपर मुझे क्रोध ही होता है। जो सदा इन्द्रियोंको वशमें रखता है, जिसके मनमें मेरे प्रति श्रद्धा है, पाँचों इन्द्रियाँ नियमानुसार कार्य करती हैं तथा जो लाभ और हानिसे कोई प्रयोजन नहीं रखता, ऐसा पवित्र व्यक्ति मुझे प्रिय है। जिसमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं रहता तथा मेरी सेवामें जिसकी विशेष रुचि रहती है, वह मुझे प्रिय है। अब इनके अतिरिक्त दूसरे व्यक्तियोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। जो मुझमें श्रद्धा-भक्ति रखता है, जो शुद्ध एवं पवित्र भी है, फिर भी यदि क्रोधके आवेशमें मेरा स्पर्श करता या मेरी परिक्रमा करता है, वह उस क्रोधके फलस्वरूप सौ वर्षोंतक चील पक्षीकी योनिमें जन्म पाता है, फिर सौ वर्षोंतक उसे बाज बनकर रहना पड़ता है और तीन सौ वर्षोंतक वह मेढकका जीवन व्यतीत कर दस वर्षोंतक राक्षसका शरीर पाता है। फिर वह इक्कीस वर्षोंतक अंधा रहकर बत्तीस वर्षोंतक गीध तथा दस वर्षोंतक चक्रवाककी योनिमें रहता है। इसमें वह शैवाल भक्षण करता तथा आकाशमें उड़ता रहता है। इस प्रकार क्रोधी उपासकोंकी दुर्गति होती है और उन्हें संसारचक्रमें भटकना पड़ता है।

पृथ्वीने कहा—[illegible]भो! आपने जो बात बतलायी

देवेश्वर ! मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरी प्रसन्नताके लिये आप अखिल जगत्‌को सुखी बनानेवाला ऐसा कोई प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा करें, जिसका पालन करके कर्मशील विवेकी पुरुष इस पापसे मुक्त होकर शुद्ध हो सके ? भगवन् ! वह प्रायश्चित्त ऐसा होना चाहिये, जिसे थोड़ी शक्तिवाले तथा लोभ एवं मोहसे ग्रस्त व्यक्ति भी निर्भीकतापूर्वक सरलतासे सम्पादन कर सकें और कठिन यातनाओंसे उनका उद्धार हो जाय।

पृथ्वीके इस प्रकार प्रार्थना करनेके समय ही कमल-नयन भगवान् वराहके सम्मुख योगीश्वर सनत्कुमार भी पहुँच गये। वे ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उन मुनिने पृथ्वीकी बात सुनकर भगवान् वराहकी प्रेरणासे पृथ्वीसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सनत्कुमारजी बोले—'देवि ! तुम धन्य हो जो भगवान्‌से इस प्रकारका प्रश्न करती हो। इस समय साक्षात् भगवान् नारायण ही वराहका रूप धारणकर यहाँ विराजमान हैं। सम्पूर्ण मायाकी रचना इन्हींके द्वारा हुई है। इनसे तुम्हारा क्या वार्तालाप हुआ है, उसका सारांश बतलाओ।' उस समय सनत्कुमारकी बात सुनकर पृथ्वीने उनसे कहा—'ब्रह्मन् ! मैंने इनसे क्रियायोग एवं अध्यात्मका रहस्य पूछा था। ब्रह्मन् ! मेरे पूछनेपर इन भगवान् नारायणने मुझे ज्ञानयोगके साथ उपासनाकी बातें बतलायीं। साथ ही क्रोधके आवेशमें आकर उपासना करनेके दोषका भी वर्णन किया। फिर इसके प्रायश्चित्तमें उन्होंने बताया कि गृहस्थके घरसे शुद्ध भिक्षा माँगकर मनुष्य उस पापसे मुक्त हो जाता है। भगवान् जनार्दनका यह मेरे प्रति उपदेश था। फिर उन्होंने ऐसी विधि बतलायी, जिसे करनेसे भक्तको सभी प्रकारके सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति हो।' यह सुनकर सनत्कुमारजी भी पृथ्वीके साथ ही पुनः भगवान्‌के उपदेशोंको सुनने लगे।

भगवान् वराह बोले—जगत्‌में जो प्राणी पूजाके अयोग्य पुष्पसे मेरी अर्चना करता है, उसकी पूजाको न तो मैं स्वीकार करता हूँ और न वैसा व्यक्ति ही मुझे प्रिय है। देवि ! जिनकी मुझमें तो भक्ति है, किंतु जो अज्ञानसे भरे हैं, वे मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते, उन्हें तो रौरव नामक भयंकर नरकमें गिरना पड़ता है। अज्ञानके दोषके कारण वे अनेक दुःखोंका अनुभव करते हैं। ऐसा व्यक्ति दस वर्षोंतक वानर, तेरह वर्षोंतक बिल्ली, पाँच वर्षोंतक बक, बारह वर्षोंतक बैल, आठ वर्षोंतक बकरा, एक महीने ग्राममें रहनेवाला मुर्गा तथा तीन वर्षोंतक भैंसके रूपमें जीवन व्यतीत करता है, इसमें कोई संशय नहीं। भद्रे ! जो पुष्प मुझे अप्रिय है, इसके प्रसङ्गमें मैं इतनी बातें बता चुका। साथ ही जो गन्धहीन, कुरूप पुष्प मुझे अर्पण करते हैं, उनकी दुर्गति भी बतला दी।

पृथ्वीने पूछा—भगवन् ! जिसका अन्तःकरण परम शुद्ध है, उसीके व्यवहारसे यदि आप प्रसन्न होते हैं तो कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसका प्रयोग करके आपके कर्ममें परायण रहनेवाले भक्त अन्तर्हृदयसे शुद्ध हो जायँ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! जिसके विषयमें तुम मुझसे पूछ रही हो, उसका विचारपूर्वक वर्णन करता हूँ, सुनो। प्रायश्चित्तके सहारे मानव शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तिको एक महीनेतक एक समय भोजन करना चाहिये। दिनमें वह सात बार वीरासनका अभ्यास करे, एक महीनेतक दिनके चौथे पहरमें (केवल) घृत अथवा पायस (खीर)का आहार करे। तीन दिनोंतक यवान्न (जौ) खाकर रहे और तीन दिनोंतक वह केवल वायुके आधारपर ही रह जाय। जो व्यक्ति इस विधिका पालन कर मेरे कर्ममें तत्पर रहता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १३१-१३४)

सेवापराध और प्रायश्चित्त-कर्मयोग

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वीदेवि ! जो लाल वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, वह भी दोषी माना जाता है । अब उसके लिये दोषमुक्त करनेवाला प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, सुनो । प्रायश्चित्तका प्रकार यह है—ऐसे पुरुषको चाहिये कि सत्रह दिनोंतक वह एक समय भोजन करे, तीन दिनोंतक वायु पीकर रहे और एक दिन केवल जलके आहारपर बिताये । यह प्रायश्चित्त सम्पूर्ण संसारकी आसक्तियोंसे मुक्त करानेवाला है । जो पुरुष अँधेरी रातमें बिना दीपक जलाये मेरा स्पर्श करता है तथा जल्दीके कारण अथवा मूर्खतावश शास्त्रकी आज्ञाका पालन न कर मेरा स्पर्श करता है, उसका भी पतन होता है । वह अधम मानव उस दोषसे क्लेश भोगता है । वह एक जन्मतक अन्धा होकर अज्ञानमय जीवन बिताता है और अभक्ष्य-अपेय पदार्थोंको खाता-पीता रहता है । अब मैं रात्रिके अन्धकारमें दीपरहित स्थितिमें अपने स्पर्शदोषका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे दोष-मुक्त होकर वह मेरे लोकको प्राप्त होता है । ऐसा व्यक्ति अनन्य भक्तिभावसे पंद्रह दिनोंतक आँखें ढककर रहे और बीस दिनोंतक सावधान होकर एक समय भोजन करे और फिर जिस किसी भी महीनेकी द्वादशी तिथिको एक समय भोजन कर और जल पीकर रह जाय । इसके पश्चात् गोमूत्रमें सिद्ध किया हुआ यवान्न भक्षण करे । इस प्रायश्चित्तके प्रभावसे वह इस दोषसे मुक्त हो जाता है ।

देवि ! जो व्यक्ति काला वस्त्र पहनकर मेरी उपासना करता है, उसका भी पतन होता है । वह अगले जन्ममें पाँच वर्षोंतक लाक्षा (लाह) आदि वस्तुओंमें रहनेवाला घुन होता है, फिर पाँच वर्षोंतक मेरे मन्दिरके पार्श्वभागमें रहता है । अब उस प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । उसे चाहिये कि स दिनोंतक यवके आटेकी लप्सी और तीन दि तक यवके सत्तूकी एक पिण्डी तथा तीन रातोंतक तीन तीन पिण्डियाँ खाय । इससे वह पापसे मुक्त हो जाता है जो बिना धोये वस्त्र पहनकर मेरी उपासनामें लग जात है, वह भी इस अपराधसे संसारमें गिर जाता है । जिसके फलस्वरूप वह एक जन्मतक मतवाला हाथी, एक जन्म तक ऊँट, एक जन्ममें भेड़िया, एक जन्ममें सियार और कि एक जन्ममें घोड़ा होता है । इसके बाद वह एक जन्मम मोर और पुनः एक जन्ममें मृग भी होता है । इस प्रकार सात जन्म व्यतीत होनेपर उसे मनुष्यकी योनि मिलती है । उस जन्ममें वह मेरा भक्त, गुणज्ञ-पुरुष और कार्यकुशल होकर मेरी उपासनामें परायण होता है तथा निरपराधी और अहंकार-शून्य जीवन व्यतीत करता है । अब उसके शुद्ध होनेका उपाय बतलाता हूँ, उसे सुनो, जिससे उसे हीन योनियोंमें नहीं जाना पड़ता ।

वह क्रमशः तीन दिनोंतक यव, तीन दिन तिलकी खली और फिर तीन दिनोंतक वह पत्ते, जल, खीर एवं वायुके आहारपर रह जाय । इस प्रकारके नियमका पालन करनेसे अशुद्ध वस्त्र पहननेवाले उपासकका दोष मिट जाता है और उसे कई जन्मोंतक संसारमें भटकना नहीं पड़ता ।

देवि ! जो मानव बत्तक आदि पक्षियों या किसी भी प्रकारका मांस खाकर मेरी पूजामें लगता है, वह पंद्रह वर्षोंतक बत्तककी योनिमें रहता है । फिर वह दस वर्षोंतक तेन्दुआ नामक हिंसक वन्य जन्तु होता है और पाँच वर्षों-तक उसे सूअर बनना पड़ता है । मेरे प्रति किये गये उस अपराधसे उसे इतने वर्षोंतक संसारमें भटकना पड़ता है ।

प्रायश्चित्त

फल, तिल, बिना नमकके अन्नके आहारपर रहे। इस प्रकारका पंद्रह दिनोंमें प्रायश्चित्त पूरा कर एक बारके मांसभक्षणदोषसे शुद्ध होता है। बार-बारके ऐसे अपराधोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! दीपकका स्पर्श करके हाथ धो लेना चाहिये, अन्यथा इससे भी दोषका भागी बनना पड़ता है। महाभागे! इसके प्रायश्चित्तका यह रूप है कि जिस किसी भी महीनेके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके शुभ अवसरपर दिनके चौथे भागमें भोजन करके, ठंडी ऋतुमें रात्रिके अवसरपर खुले आकाशमें सोये, फिर दीपदानकर इस दोषसे वह मुक्त हो जाता है। भद्रे! न्यायके अनुसार इस कर्मके प्रभावसे पुरुषमें पवित्रता आ जाती है और वह मेरे कर्म-पथपर आरूढ हो जाता है। दीपक स्पर्श करके बिना हाथ धोये हुए मेरे कर्ममें लगनेका यह प्रसङ्ग तुम्हें बतला दिया। यह प्रायश्चित्त संसारमें शुद्ध करनेके लिये परम साधन है, जिसका पालन करके पुरुष कल्याण प्राप्त कर लेता है।

देवि! जो मनुष्य श्मशानभूमिमें जाकर बिना स्नान किये ही मुझे स्पर्श करता है, उसे भी सेवापराधका दोष लगता है, फलस्वरूप वह चौदह वर्षोंतक पृथ्वीपर शृगाल होकर रहता है। फिर सात वर्षोंतक आकाशमें उड़नेवाला गीध होता है। इसके पश्चात् चौदह वर्षोंतक उसे पिशाचयोनिमें जाना पड़ता है।

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो! भक्तोंकी याचना पूर्ण करना आपका स्वभाव है। आपने यह जो परम गोपनीय विषय कहा है, इससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है, अतः प्रभो! आपसे मेरी प्रार्थना है कि वह सम्पूर्ण विषय मुझे स्पष्टरूपसे बतानेकी कृपा करें। कमललोचन भगवान् शंकरने तो श्मशानकी बड़ी प्रशंसा की है और उसे पवित्र बतलाया है, फिर वहाँ दोष क्या है? रुद्र तो परम बुद्धिमान् हैं, उनमें किसी ऐश्वर्यकी भी कमी नहीं है, तब भी वे दीप्तिमान कपालको लिये सदा श्मशानभूमिमें विराजते हैं, फिर आप उसकी निन्दा कैसे करते हैं?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! पवित्र व्रत करनेवाले पुरुष भी आजतक इस रहस्यसे अनभिज्ञ हैं। अखिल भूतोंके अध्यक्ष भगवान् शंकरको कोई नहीं जानता। उन्होंने त्रिपुरवधके समय बहुतेरे बालक-वृद्धों तथा बहुत-सी स्त्रियोंको भी मार डाला था, अतएव उस पापसे वे बड़े दुःखी थे। उस समय मैंने उन नष्टैश्वर्य भगवान् शंकरको स्मरण किया और वे मेरे पास पहुँचे। उस समय ज्यों ही मैंने उनपर अपनी दिव्य दृष्टि डाली कि वे पुनः सम्पूर्ण भूतोंके शासक महान् रुद्र बन गये। उस समय उनकी इच्छा मेरे यजनकी हुई, पर सहसा उनका ज्ञान और योगका बल नष्ट-सा हो गया। तब मैंने उनसे कहा—'प्रभो! आप ऐसे मुग्ध-से क्यों बैठे हैं? (आप मोहसे कैसे घिरे हैं!)' बनाना, बिगाड़ना और बिगड़े हुएको पुनः बनाना—यह सब तो आपके हाथकी बात है। मृत्यु आपके अधीन रहती है, आप सबके मूल कारण और परमाश्रय हैं, आपको देवताओंका भी देवता कहा जाता है, आप साम और ऋक्स्वरूप हैं। देवेश्वर! आपकी इस म्लानताका कारण क्या है? आप कृपया इन्हें स्पष्टरूपसे बतलाइये। आप अपने योग और मायाको भी सँभालें। देखें, यह परब्रह्म परमेश्वरकी लीला है। मेरे मनमें आपको प्रसन्न करनेकी इच्छा हुई है, अतएव मैं यहाँ आया हूँ।'

वसुंधरे! फिर तो मेरी बात सुनकर शंकरजीको पूर्ण ज्ञान हो गया। उन्होंने मधुर वाणीमें मुझसे कहा—'नारायण! आप ध्यान देकर मेरी वाणी सुननेकी कृपा कीजिये। आप सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र शासक हैं। विष्णो! अब आपकी कृपासे मुझमें पुनः देवत्व जाग्रत् हो गया।

पापसे छूटनेके लिये मनुष्यको एक दिन यवकी लप्सी खाकर तथा एक दिन गोमूत्रके आहारपर रहना चाहिये। रातमें वह वीरासनसे बैठकर तथा आकाश-शयनद्वारा कालक्षेप करे। इस विधिका पालन करनेसे वह पुरुष संसारमें न जाकर मेरे लोकमें पहुँच जाता है।

सुशोभने! जो दम्भी मनुष्य मदिरा पानकर मेरी उपासनामें सम्मिलित होता है, उसका दोष बताता हूँ, तुम मनको एकाग्र करके सुनो। इस अपराधके कारण वह व्यक्ति दस हजार वर्षोंतक दरिद्र होता है। जो मेरा भक्त है और जिसने वैष्णव दीक्षा भी ग्रहण कर ली है, वह यदि कोई कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे, मोहित होकर मद्य पी लेता है तो उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। वसुंधरे! अब अदीक्षित उपासकके लिये प्रायश्चित्तके उपाय बतलाता हूँ, वह सुनो। यदि वह अग्निवर्ण-प्रतप्त सुराका पान करे तो उक्त पापसे छूट सकता है। जो पुरुष इस विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करता है, वह न तो पापसे लिप्त होता है और न संसारमें उसकी उत्पत्ति ही होती है।

पृथ्वि! मेरी उपासना करनेवाला जो पुरुष वनकुसुमका, जिसे लोक-व्यवहारमें 'बरे' कहते हैं, शाक खाता है, वह पंद्रह वर्षोंतक घोर नरकमें पड़ता है। इसके बाद उसको भूलोकमें सूअरकी योनि प्राप्त होती है। फिर तीन वर्षोंतक वह कुत्ता और एक वर्षतक शृगाल होकर जीवन व्यतीत करता है।

भगवान् वराहकी बात सुनकर देवी पृथ्वीने श्रीहरिसे पुनः पूछा कि—'कुसुमके शाकका नैवेद्य अर्पण करनेसे जो पाप बन जाता है, प्रभो! उससे कैसे उद्धार हो सकता है—इसके लिये प्रायश्चित्त बतानेकी कृपा कीजिये।'

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! जो मानव 'वन-कुसुम'के शाकको मुझे अर्पितकर स्वयं भी खा लेता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरकमें क्लेश पाता है। उसका प्रायश्चित्त 'चान्द्रायण-व्रत' ही है। परंतु यदि वह केवल उसका प्रसाद भोग बनाकर ही रह जाता है, खाता नहीं है तो वह बारह दिनोंतक पयोव्रत करे। जो इस प्रकार प्रायश्चित्त कर लेता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता और मेरे लोकको ही प्राप्त होता है।

माधवि! मेरे कर्ममें परायण जो मन्दबुद्धिका व्यक्ति दूसरेके वस्त्रको बिना ही धोये पहन लेते हैं तथा मेरी उपासनामें लग जाते हैं तो उन्हें भी प्रायश्चित्ती बनना पड़ता है। देवि! यदि वह मेरा स्पर्श करता है तथा परिचर्या करता है तो वह दस वर्षोंतक हरिण बनकर रहता है, फिर एक जन्ममें वह लँगड़ा होता है और बादमें वह मूर्ख, क्रोधी और अन्तमें पुनः मेरा भक्त होता है। सुश्रोणि! अब मैं उसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे पाप-मुक्त होकर उसकी मेरी भक्तिमें रुचि उत्पन्न होती है। वह मेरी भक्तिमें संलग्न होकर दिनके आठवें भागमें आहार ग्रहण करे। जिस दिन माघमासके शुक्ल-पक्षकी द्वादशी तिथि हो, उस दिन जलाशयपर जाकर शान्त-दान्त और दृढव्रती होकर अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करे। इस प्रकार जब दिन-रात समाप्त हो जायँ तो प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर पञ्चगव्यका प्राशन कर मेरे कार्यमें उद्यत हो जाय। जो इस विधानसे प्रायश्चित्त करता है, वह अखिल पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति नये अन्न उत्पन्न होनेपर नवान्नविधिका पालन न करके उसे अपने उपयोगमें लेता है, उसके पितरोंको पंद्रह वर्षोंतक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। और जो मेरा भक्त होकर भी नये अन्नोंको दूसरोंको न देकर स्वयं अपने ही खा लेता है वह तो निश्चय ही धर्मसे च्युत हो जाता है। महाभागे! इसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जो मेरे भक्तोंके लिये सुखदायी है। वह तीन रात उपवास कर चौथे दिन आकाश-

शयन कर सूर्यके उदय होनेके पश्चात् पञ्चगव्यका प्राशन कर सद्यः पापसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस विधिके अनुसार प्रायश्चित्त कर लेता है, वह अखिल आसक्तियोंका भलीभाँति त्याग कर मेरे लोकमें चला जाता है।

इसी प्रकार भूमे! जो मानव मुझे बिना चन्दन और माला अर्पण किये ही धूप देता है, वह इस दोषके कारण दूसरे जन्ममें राक्षस होता है और उसके शरीरसे मुर्देकी दुर्गन्ध निकलती रहती है और इक्कीस वर्षोंतक वह लौहशय्यामें निवास करता है। अब उसके लिये भी प्रायश्चित्त बताता हूँ, सुनो। उसकी विधि यह है– जिस-किसी मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीतिथिके दिन वह व्रत करके दिनके आठवें भागमें सायंकाल यथालब्ध आहार ग्रहण करे। फिर प्रातःकाल जब सूर्यमण्डल दिखायी पड़ने लगे, उस समय वह पञ्चगव्यका प्राशन करे। इसके प्रभावसे वह पुरुष पापसे सद्यः छूट जाता है। इस विधिके अनुसार जो प्रायश्चित्तका पालन करता है, उसके पिता-पितामह आदि पितर भी तर जाते हैं।

भूमे! जो मनुष्य पहले मेरी आदिद्वारा शब्द किये बिना ही मुझे जगाता है, वह निश्चय ही एक जन्ममें बहरा होता है। अब! मैं उसका प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिससे वह पापसे छूट जाता है। वह किसी शीत ऋतुके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको रातमें आकाश-शयन करे। इस नियमका पालन करनेसे मनुष्य पापसे शीघ्र छूट जाता है।

वसुंधरे! जो मनुष्य बहुत अधिक भोजन करके अजीर्ण-युक्त बिना स्नान किये ही मेरी उपासनामें आता है, वह इस अपराधके कारण क्रमशः कुत्ता, बन्दर, बकरा और शृगालकी योनियोंमें एक-एक बार जन्म लेकर फिर अन्धा और बहरा होता है। व इस क्लेशमय संसारको पारकर वह किसी अच्छे कु उत्पन्न होता है। उस समय अपराधसे छूट जानेके क वह पुरुष परम शुद्ध और श्रेष्ठ भगवद्भक्त होता है। मैं उसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ, जिसके पालन करनेसे पापसे छूट जाय। प्रायश्चित्तका स्वरूप यह है कि क्रमशः तीन-तीन दिनोंतक यावक, मूलक, पायस (खी सत्तू तथा वायुके आहारके आधारपर रहकर फि तीन रात आकाश-शयन करना चाहिये। फि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर दन्तधावन कर शरीरको परम शु करनेके लिये उसे पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये जो मानव इस विधानके अनुसार प्रायश्चित्त करता है उसपर पापका प्रभाव नहीं पड़ सकता और वह मे लोकको प्राप्त होता है।

महेश्वरि! यह प्रसङ्ग आख्यानोंमें महाख्यान और तपस्याओंमें परम तप है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह व्यक्ति मेरे लोकको प्राप्त होता है। साथ ही वह अपने दस पूर्व और दस पीछेकी पीढ़ियोंको तार देता है। यह प्रसङ्ग परम मङ्गलकारी तथा सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है। अपने व्रतमें अटल रहनेवाला जो भागवत पुरुष इसका सदा पाठ करता है, वह सम्पूर्ण अपराधोंका आचरण करके भी उससे लिप्त नहीं होता। यह जप करने योग्य तथा परमप्रमाणभूत शास्त्र है। इसे मूर्खोंके समाजमें अथवा निन्दित व्यक्तियोंके सामने नहीं पढ़ना चाहिये। देवि! तुमने मुझसे जो पूछा था, वह कारणका निर्णय किया मैंने तुम्हें बतला दिया. अब तुम। यह बतला

वराहक्षेत्रकी* महिमाके प्रसङ्गमें गीध और शृगालका वृत्तान्त तथा आदित्यको वरदान

पृथ्वी बोली—भगवन् ! आपने मुझे तथा अपने भक्तों-ो प्रिय लगनेवाली बड़ी सुन्दर बात सुनायी। महाबाहो! ब मैं यह जानना चाहती हूँ कि 'कुब्जाम्रक'क्षेत्रमें सबसे ष्ठ एवं पवित्र आचरणीय व्रत क्या है ? तथा भक्तोंको ख देनेवाला इससे अतिरिक्त अन्य तीर्थ कौन-सा है ?

भगवान् वराह बोले—देवि ! ऐसे तो मेरे सभी त्र परम शुद्ध हैं; फिर भी 'कोकामुख', 'कुब्जाम्रक' या 'सौकरव'-स्थान (वराहक्षेत्र) क्रमशः उत्तरोत्तर त्तम माने जाते हैं; क्योंकि इनमें सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारसे मुक्त करनेके लिये अपार शक्ति है। देवि ! भागीरथी गङ्गाके समीप यह वही स्थान है, जहाँ मैंने तुम्हें समुद्रसे निकालकर स्थापित किया था।

पृथ्वी बोली—प्रभो ! 'सौकरव'में मरनेवाले प्राणी किन लोकोंको प्राप्त होते हैं तथा वहाँ स्नान करने एवं उस तीर्थके जलके पान करनेवालेको कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? कमलनयन ! आपके उस वराहक्षेत्रमें कितने क्षेत्र हैं ? आप यह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे ! वराहक्षेत्रके दर्शन-अभिगमन आदिसे श्रेष्ठ पुण्य तो प्राप्त ही होता है, साथ ही उस तीर्थमें जिनकी मृत्यु होती है, उनके पूर्वके दस तथा आगे आनेवाली पीढ़ीके दस तथा (मातुल आदि कुलके) अन्य बारह पुरुष स्वर्गमें चले जाते हैं। सुश्रोणि ! वहाँ जाने तथा मेरे (श्रीविग्रहके) मुखका दर्शन करनेमात्रसे सात जन्मोंतक वह पुरुष विशाल धन-धान्यसे परिपूर्ण श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होता है, साथ ही वह रूपवान्, गुणवान् तथा मेरा भक्त होता है। जो मनुष्य वराहक्षेत्रमें अपने प्राणोंका त्याग करते हैं वे उस तीर्थके प्रभावसे शरीर त्यागनेके पश्चात् शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुधोंसे विभूषित चतुर्भुजरूप धारण कर श्वेतद्वीपको प्राप्त होते हैं। वसुंधरे ! इसके अन्तर्गत 'चक्रतीर्थ' नामका एक प्रतिष्ठित क्षेत्र है, जिसमें व्यक्ति इन्द्रियोंपर संयम रखते हुए नियमानुकूल भोजन और वैशाखमासकी द्वादशी तिथिको विधिपूर्वक स्नानकर ग्यारह हजार वर्षोंतक विख्यात कुलमें जन्म पाकर प्रभूत धन-धान्यसे सम्पन्न रहकर मेरी परिचर्यामें परायण रहता है।

पृथ्वी बोली—भगवन् ! सुना जाता है कि इस वराह-तीर्थमें चन्द्रमाने भी आपकी उपासना की थी, जो बड़े कौतूहलका विषय है। अतः आप इसे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह बोले—देवि ! चन्द्रमा मुझे स्वभाव-तया ही प्रिय हैं; अतः तप करनेके बाद मैंने उन्हें अपना देवदुर्लभ दर्शन दिया। पर मेरे उस स्वरूपको देखकर वे अपनेको सँभाल न सके और अचेत हो गये। मेरे तेजसे वे ऐसे मोहित हो गये कि मुझे देखनेकी भी उनमें शक्ति न रही। उन्होंने आँखें बंद कर लीं और घबराहटके कारण त्रस्त-नेत्र होकर कुछ भी बोल न पाये। इसपर मैंने उनसे धीरेसे कहा—'परम तपस्वी सोम ! तुम किस उद्देश्यसे तप कर रहे हो ? तुम्हारे मनमें जो बात हो, वह मुझसे बताओ। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें सब कुछ प्राप्त हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं।'

इसपर 'सोमतीर्थ'में स्थित होकर चन्द्रमाने कहा—'भगवन् ! आप योगियोंके स्वामी हैं और संसारमें सबसे श्रेष्ठ हैं। आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो यहीं निवास करनेकी कृपा कीजिये, साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ कि जबतक ये लोक रहें, तबतक आपमें मेरी निश्चलरूपसे अतुल श्रद्धा और भक्ति सदा बनी रहे। मेरा जो रूप है, वह कभी आपसे रिक्त न हो और यह सातों द्वीपोंमें सर्वत्र

* नन्दलाल दे आदिके अनुसार यह एटाके पासका सोरोनामक स्थान है और अन्योंके मतसे पटनाके पासवाला हरिहर क्षेत्र।

किरणें दें। यहाँसे ब्राह्मण-समुदाय मेरे नामसे प्रसिद्ध सोमरसका पान करें। प्रभो! इसके प्रभावसे उन्हें धन एवं दिव्य गति प्राप्त हो जाय। अमावास्याको मुझमें क्षीणता आ जायगी, उसमें पितरोंके लिये पितरोंकी क्रियाएँ सम्पन्न होंगी, पर पूर्णिमाको मैं पुनः नियमानुसार सुन्दर दर्शनीय बन जाऊँ। अन्तमें मेरी बुद्धि कभी न जाय और मैं ओषधियोंका भी स्वामी बन जाऊँ। महादेव! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अभीष्ट करनेके लिये यह वर देनेकी कृपा कीजिये।'

वसुंधरे! चन्द्रमाकी इन बातोंको सुनकर और उन्हें वैसा वरदान देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया। महाभागे! चन्द्रमाने जहाँ एक पैरपर खड़े रहकर पाँच हजार वर्षोंतक महान् तपस्या की थी, वह 'सोमतीर्थ'-नामसे विख्यात हुआ तथा उन्हें दुर्लभ सिद्धि एवं शान्ति प्राप्त हुई। जो मेरा भक्त इस सोमतीर्थमें श्रद्धासे स्नानकर प्रतिदिन दिनके आठवें भागमें भोजन करके मेरी उपासनामें लगा रहता है, अब उसके फलका वर्णन करता हूँ। वह पैंतीस हजार वर्षोंतक ब्राह्मणका शरीर पाता है और वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान्, धनवान्, गुणवान्, दानी एवं मेरा निर्दोष भक्त होता है और संसारसागरको पार कर जाता है। यशस्विनि! यह ऐसा महत्त्वपूर्ण तीर्थ है, जहाँ महात्मा चन्द्रमाने दीर्घकालतक तपस्या की थी।

अब उस 'सोमतीर्थका' लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। वैशाख शुक्ल द्वादशीको चन्द्रमाके अस्त होने एवं अन्धकारके प्रवृत्त होनेपर जहाँ बिना चन्द्रमाके ही पृथ्वीपर चन्द्रमाकी चमकती चाँदनी होती, उसे ही लोगोंमें समझना चाहिये। वस्तुतः यह महान् आश्चर्य है कि चन्द्रमाका प्रकाश (प्रकाश) तो दीखता है, पर स्वयं चन्द्रमा वहाँ नहीं दीखते। महाभागे! ये सब [illegible] तथा सोमतीर्थ— मुक्ति सम्पन्न करते हैं।

वसुंधरे! अब मैं एक दूसरी बात बतलाता हूँ, उसे सुनो, जिससे इस क्षेत्रकी अद्भुत महिमा प्रकाशित होती है। यहाँ एक शृगाली रहती थी, जो बिना श्रमके ही पूर्वकर्मका देखनोंसे मरकर इस क्षेत्रके प्रभावसे अगले जन्ममें गुणवती, रूपवती और चौंसठ कलाओंसे सम्पन्न श्यामा*सर्वाङ्गसुन्दरी राजाकी पुत्री हुई थी। इसी सोम-तीर्थके पूर्वभागमें 'गृध्रवट'नामका भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ एक गीधकी अनायास मृत्यु हुई, जिसकी कोई कामना न थी, पर उसे मनुष्यकी योनि प्राप्त हुई थी।

पृथ्वी बोली—प्रभो! इस तीर्थके प्रभावसे तिर्यक्-योनिमें पड़े हुए गीध और शृगाली मनुष्य-शरीरको कैसे प्राप्त हुए? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! साथ ही उस तीर्थमें स्नान करनेसे अथवा प्राणत्याग करनेसे मनुष्य किस गतिको प्राप्त करते हैं तथा उनके शरीरपर कौनसे चिह्न होते हैं? केशव! आप मुझे यह भी बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—देवि! धर्मप्रधान सत्ययुगके बाद त्रेतायुगका प्रवेश ही हुआ था। उस समय काम्पिल्य† नगरमें ब्रह्मदत्त‡नामक एक धर्मनिष्ठ राजा रहते थे। उनका सभी लक्षणोंसे सम्पन्न एक सोमदत्त-नामक पुत्र था। एक बार वह पितरोंके उद्देश्यसे

---

* शास्त्रोंमें 'श्यामा' स्त्रीके अनेक रूप निर्दिष्ट हैं। (द्रष्टव्य—'वाचस्पत्य' एवं 'शब्दकल्पद्रुम'कोश अथवा 'मोनियर विलियम'का संस्कृत-अंग्रेजी कोश)। यह मुख्यतः सुवर्णके रंगकी अत्यन्त दीप्तिमती गौरवर्णकी स्त्री होती है। यथा—

श्यामा गुणवती गौरी दिव्यालंकारभूषिता। चतुरा शीलसम्पन्ना चित्तेनाकन्धती समा॥

(पुरुषोत्तममासमाहा० ३। ४५)

अथवा—'तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते।'

† काम्पिल्य-फर्रुखाबाद जिलेमें कायमगंजसे ६ मील, फतेहगढ़से २८ मील पूर्वोत्तर गङ्गानदीके तटपर है। यह राजा द्रुपदकी राजधानी थी। द्रौपदीका स्वयंवर यहीं हुआ था। (द्रष्टव्य—तीर्थाङ्क—पृ० ९०, १०७, ५३८ तथा महाभारत नामानुक्रमणिका, गीताप्रेस)

‡ ब्रह्मदत्तका यह चरित्र वाल्मी०रामा०बालकाण्ड, मत्स्यपुराण अध्याय १९–२१, हरिवंश १ [illegible] उमासं[illegible] तथा अन्यान्य पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

मृगोंके अन्वेषणमें आखेटके लिये बाघ और सिंहोंसे भरे वनमें गया; किंतु राजकुमारको शिकारके उपयुक्त कोई वस्तु न दीखी। इस प्रकार वह इधर-उधर घूम ही रहा था कि उसकी दाहिनी ओरसे एक सियारिन निकली, जो (अनायास एक मृगपर छोड़े हुए) उसके बाणोंसे बिंध गयी और व्यथासे तड़पने लगी। फिर वह इस तीर्थमें जल पीकर एक शाखोट-वृक्षके नीचे गिर पड़ी। धूपसे व्याकुल तथा बाणसे बिंधी होनेके कारण न चाहनेपर भी उसके प्राण इस सोमतीर्थमें ही निकल गये। भद्रे! उसी समय सोमदत्त भी भूख-प्याससे पीड़ित होकर इस 'गृध्रवट'नामक तीर्थमें पहुँचा और विश्राम करनेके लिये ठहर गया। इतनेमें ही उस वटकी शाखापर उसे एक गीध बैठा दिखाई दिया। यशस्विनि! उसने उसे भी एक ही बाणसे मार गिराया, जो उसी वृक्षकी जड़पर गिरा। हृदयमें बाण लगनेसे उसे मूर्छा आ गयी और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उस गीधको देखकर राजकुमारके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः उसने बाणोंके पर बनानेके लिये उस गीधके पंख काट लिये और उन्हें लेकर घर आया। इस प्रकार गीधके न चाहनेपर भी उस तीर्थमें मृत्यु होनेपर उसकी सद्गति हो गयी और कालान्तरमें वह कलिङ्गदेशके नरेशके घर रूपवान्, विद्वान् एवं गुणसम्पन्न राजपुत्र हुआ।

वसुधरे! उधर जो शृगाली मरी थी, वह काञ्चीनरेश-के यहाँ राजपुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई जो सर्वाङ्गसुन्दरी श्यामा, अत्यन्त रूप-गुणसे सम्पन्न, कार्य-कुशल और ... ...ओंसे सम्पन्न थी। उसका स्वर कोयलके ...। इधर अनायास ... प्रीति बढ़ गयी और ... के ... हो ... ने ... ,

घोड़े, भैंस और दास-दासियाँ दीं। फिर विवाहोपरान्त कलिङ्गराज वधूसहित अपने पुत्रको लेकर अपनी राजधानीको वापस लौट आये।

देवि! विवाहके बाद दम्पतीके प्रेमपूर्वक रहते कुछ वर्ष व्यतीत हो गये। उनकी प्रीति रोहिणी और चन्द्रमाकी तरह निरन्तर बढ़ती गयी। वे नन्दनवनकी उपमावाले वन-उपवन-उद्यानादि एवं क्रीडाके अन्य दिव्य-स्थलोंमें आनन्दपूर्वक विहार करते। इधर कलिङ्गराज-कुमार अपनी बुद्धि, सुशीलता और श्रेष्ठ कर्मोंसे नगरकी जनताको भी परम संतुष्ट रखता। उधर अन्तःपुर एवं नगरकी स्त्रियोंको राजकुमारीने संतुष्ट कर रखा था। इस प्रकार उन दोनोंके सौम्य गुणों एवं शीलयुक्त व्यवहारसे सभी राज्यवासी संतुष्ट थे।

एक बार उस राजकुमारीने उस राजकुमारसे वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा कि मैं आपसे एक रहस्यकी बात पूछती हूँ। यदि मुझपर आपका स्नेह हो तो आप मुझे उसे बतानेकी कृपा करें। पत्नीकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'भद्रे! मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये अवश्य प्रयत्न करूँगा। देवि! सत्यके आधारपर ही विश्व ठहरा है। सत्य भगवान्‌का ही स्वरूप है। और तपस्याका मूल भी सत्य ही है तथा सत्यके आधारपर ही हमारा राज्य टिका हुआ है। मैं कभी भी मिथ्या नहीं बोलता। इसके पहले भी मेरे मुँहसे कभी झूठी बात नहीं निकली है। अतः तुम कहो, मैं तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य करूँ? हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, सवारी, धन अथवा परमश्रेष्ठ अपना पट्टबन्ध, शिरोमुकुटतक मैं तुम्हें समर्पण करनेको तैयार हूँ।

इसपर काञ्चीनरेशकी उस कन्याने अपने पतिदेवके चरणोंको पकड़कर यह बात कही—'पतिदेव! मैं रत्न, हाथी, घोड़े एवं रथ कुछ भी नहीं चाहती। आपके पट्टबन्ध-

इष्टदेवका चिन्तन कर रही थी, साथ ही सिरके दर्दसे पीड़ित होकर रो रही थी । राजकुमारी कह रही थी—'मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर कर्म किया है, जिससे मैं इस दयनीय दशाको प्राप्त हो गयी हूँ। मैं अनाथकी भाँति क्लेश सहती हूँ, किंतु मेरे पतिदेवको इसका भी पता नहीं है। मेरा मन सब तरहसे खिन्न ही कहा जा सकता है। मेरा बड़ा सौभाग्य होता यदि मैं कभी सौकरवक्षेत्रमें जा सकती और मेरे हृदयमें जो बात बसी है, उसे अपने पतिसे वह कह पाती।'

कलिङ्गनरेश अपनी स्त्रीकी बात सुन रहा था। उसने उठकर दोनों हाथोंसे अपनी पत्नीको पकड़कर कहा—'भद्रे! तुम यह क्या कह रही हो! अपनेको तुम इस प्रकार बार-बार कोसती क्यों हो! तुम प्रारब्धकी बातोंको क्यों सोचती हो और अपनेको क्यों कोसती हो। तुम्हें तो यह एक महान् शिरोरोग है। इसे दूर करनेके लिये अष्टाङ्ग-कुशल वैद्य क्या तुम्हें नहीं मिलते, जो तुम्हारे सिरकी कठिन पीड़ाको दूर कर सकें। वायु, कफ, पित्त आदि रोगोंसे तुम्हें संनिपात हो गया है, अथवा असमयपर तुममें पित्तका प्रकोप हो गया है। तुम व्रतके बहाने व्यर्थमें इतना क्लेश क्यों पाती हो। तुम कहती हो कि 'सौकरवक्षेत्रमें चलनेपर कहूँगी', इस विषयमें ऐसा क्या गोपनीय है, जिसे तुम कहना नहीं चाहती हो?'

अब राजकुमारी बड़े संकोचमें पड़ गयी। वह दुःखसे पीड़ित तो थी ही, उसने स्वामीके चरण पकड़ लिये और कहने लगी—'महाराज! आप मुझपर प्रसन्न हों, यह बात आप इस समय पूछ रहे हैं, यह ठीक नहीं। वीरवर! मेरा यह वृत्त जन्मान्तरीय कर्मोंसे सम्बद्ध है।' पत्नीकी बात सुनकर कलिङ्गदेशके उस नरेशने परम हित करनेके विचारसे उसके प्रति मधुर वचन कहा—'देवि! मेरे सामने यह कौन-सी गोपनीय बात है। तुम ठीक-ठीक बात बतला दो।' पतिकी बात सुनकर राजकुमारीकी आँखें आश्चर्यसे भर गयीं। वह मधुर वाणीमें बोली—'प्राणनाथ! शास्त्रोंके अनुसार स्त्रीके लिये स्वामी ही धर्म, अर्थ और सर्वस्व है। उसका पति ही परमात्मा है। अतएव आप जो मुझसे पूछ रहे हैं, वह मुझे अवश्य कहना चाहिये। फिर भी जो बात मेरे हृदयमें बैठ गयी है उसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। पीड़ा पहुँचानेवाली मेरी यह बात आप मुझसे पूछें, यह उचित नहीं जान पड़ता। महाभाग! इस दुःखका मेरे शरीरसे दूर होना असम्भव-सा दीखता है। आप सुखसे सदा समय बिताते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। स्वामिन्! मेरे समान बहुत-सी स्त्रियाँ आपके अन्तःकरणमें हैं। जिन्हें आप विविध प्रकारके अन्न और उत्तम भूषण दिया करते हैं और वे आपकी सेवा करती हैं, फिर मुझसे आपका क्या तात्पर्य? राजन्! आप हाथी, रथ और घोड़ेपर यात्रा किया करते हैं, यह सब ठीक है। पर राजन्! इस विषयमें मुझसे आपको नहीं पूछना चाहिये। आप मेरे इष्ट देवता, गुरु एवं साक्षात् सनातन सत्पुरुष हैं। मानद! मेरे लिये आप धर्म, अर्थ, काम, यश और स्वर्ग सब कुछ हैं। आपके पूछनेपर मुझको चाहिये कि सदा सभी बातें सत्य एवं प्रिय कहूँ। क्योंकि सम्पूर्ण पतिव्रताओंके लिये यह सनातन धर्म है। तथापि मेरी बातोंपर निश्चित विचार करके मेरी पीड़ाके विषयमें आपको नहीं पूछना चाहिये।'

उस समय कलिङ्ग-नरेशको अपनी पत्नीकी पीड़ासे भीषण मानसिक संताप हो रहा था, अतएव उसने मधुर वाणीमें कहा—'देवि! मैं तुम्हारा पति हूँ, ऐसी स्थितिमें मेरे पूछनेपर तुम्हें शुभ हो या अशुभ उसे अवश्य बताना चाहिये। धर्मके मार्गपर चलनेवाली स्त्रीका कर्तव्य है कि वह गुप्त बात भी पतिके सामने प्रकट कर दे। जो स्त्री किसी राग या लोभसे मोहित होकर अपकर्म

से मेरा क्या प्रयोजन ? मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि मध्याह्नकालमें एकान्तमें निश्चिन्त सो सकूँ। प्राणनाथ ! आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि मैं उस समय जितनी देरतक सोयी रहूँ, उस समय मुझे मेरे श्वशुर, सास अथवा दूसरा कोई भी देख न सके—यही मेरा मत है। यही नहीं अपने सगे-सम्बन्धी अथवा घरके अन्य स्वजन भी सोयी हुई अवस्थामें मुझपर कभी दृष्टि न डालें।'

वसुंधरे ! इसपर कलिङ्गदेशके उस राजकुमारने उसका समर्थन कर दिया और कहा—'तुम विश्वास करो, सोते समय तुम्हें कोई भी न देखेगा।' कुछ समयके बाद कलिङ्गनरेशने उस राजकुमारको राज्यपद-पर अभिषिक्त कर दिया। फिर कुछ दिनोंके पश्चात् उनकी मृत्यु हो गयी। अब राजकुमार राज्यका विधिपूर्वक समुचित ढंगसे संचालन करने लगा। राजकुमारी जिस स्थानपर अकेली सोती, वहाँ उसे कोई देख नहीं पाता था। फिर यथासमय उस राजकुमारके कलिङ्ग-कुलको आनन्दित करनेवाले सूर्यके समान तेजस्वी पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार उस राजकुमारके निष्कण्टक राज्य करते हुए सतहत्तर वर्ष बीत गये। अठहत्तरवें वर्ष एक दिन जब सूर्य मध्य आकाशमें स्थित थे, तब वह एकान्तमें बैठकर इन बातोंको प्रारम्भसे सोचने लगा। उस दिन माघ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी, अतः उसके मनमें आया कि 'मैं अपनी पत्नीको देखूँ कि वह एकान्तमें किसकी अर्चना करती है अथवा उसका व्रत कौन-सा है ? निर्जनस्थानमें सोती रहकर क्या करती है ? कोई स्त्री सोकर व्रत करे, ऐसा तो कोई धर्म-संग्रह नहीं दीखता है। मनुने भी किसी ऐसे धर्मका उल्लेख नहीं किया। बृहस्पति अथवा धर्मराजके बनाये हुए धर्मोंमें भी कहीं इस प्रकारका उल्लेख नहीं पाया जाता है। ऐसा तो कहीं देखा-सुना नहीं गया [illegible] व्रतका आचरण करे। पर तो इच्छानुसार भोगोंका उपभोग करती—बना-बना भोजन पान करती और अत्यन्त महीन रेशमी व[स्त्र] धारण कर श्रेष्ठ गन्धोंसे विभूषित तथा सब प्रकार[के] रत्नोंसे अलंकृत रहती है। पर सम्भव है, इस प्रक[ार] देखनेपर यह प्रवृत्ति हो जाय, पर जो कुछ हो उ[से] एक बार देखना अवश्य चाहिये कि वह किस प्रक[ार] कौन-सा व्रत करती है ? किन्होंने बतलाया है कि वशीकरण मन्त्रको सिद्ध कर लेनेपर स्त्री योगेश्वरी ब[न] कर जहाँ उसकी इच्छा हो, जा सकती है। इस प्रकार इसमें यह शक्ति आ जायगी, जो कामरागसे दूसरेक[ा] भी स्पर्श कर सकती है तथा दूसरोंसे इसका भाव भी हो सकता है।'

पृथ्वि ! इस प्रकार राजकुमारके सोचने-विचारते सूर्य अस्त हो गये और सबको विश्राम देनेवाली भगवती रात्रिका आगमन हुआ। फिर रात्रि बीतनेपर मङ्गलमय प्रभातका भी उदय हुआ। मागध, वन्दीगण, सूत और वैतालिक राजाकी स्तुति करने लगे। शङ्ख और दुन्दुभिकी ध्वनियोंसे उसकी निद्रा भङ्ग हुई। इधर अखिललोकनायक भगवान् भास्कर भी उदित हो गये। उस समय पहलेकी बातोंका स्मरण करते हुए राजकुमारके मनमें अन्य कोई चिन्ता नहीं रह गयी थी, केवल वही चिन्ता उसके हृदयमें व्याप्त थी। उसने विधिपूर्वक स्नान कर दो रेशमी वस्त्र पहन लिये। इस प्रकार भलीभाँति तैयार होकर उसने सबको दूर हटा दिया और कहा कि 'मैं किसी व्रतमें दीक्षित हो गया हूँ, अतः कोई भी स्त्री अथवा पुरुष मेरा स्पर्श न करे; अन्यथा वह दण्ड-विधानके अनु[सार] मेरा वध्य हो सकता है।'

वसुंधरे ! कलिङ्गनरेश इस प्रकारकी आज्ञा दे शीघ्रतापूर्वक चलकर जहाँ राजकुमारी रहती [थी] वहाँ पहुँचा और अपनी स्त्रीको देखा। वह चारपा[ई] पास नीचे आसन लगाकर बैठी थी और अपने म[न]

इष्टदेवका चिन्तन कर रही थी, साथ ही सिरके दर्दसे पीड़ित होकर रो रही थी। राजकुमारी कह रही थी—'मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर कर्म किया है, जिससे मैं इस दयनीय दशाको प्राप्त हो गयी हूँ। मैं अनाथकी भाँति क्लेश सहती हूँ, किंतु मेरे पतिदेवको इसका भी पता नहीं है। मेरा मन सब तरहसे विरक्त ही कहा जा सकता है। मेरा बड़ा सौभाग्य होता यदि मैं कभी सौकरवक्षेत्रमें जा सकती और मेरे हृदयमें जो बात बसी है, उसे अपने पतिसे वह कह पाती।'

कलिङ्गनरेश अपनी स्त्रीकी बात सुन रहा था। उसने उठकर दोनों हाथोंसे अपनी पत्नीको पकड़कर कहा—'भद्रे! तुम यह क्या कह रही हो! अपनेको तुम इस प्रकार बार-बार कोसती क्यों हो? तुम प्रारब्धकी बातोंको क्यों सोचती हो और अपनेको क्यों कोसती हो। तुम्हें तो यह एक महान् शिरोरोग है। इसे दूर करनेके लिये अष्टाङ्ग-कुशल वैद्य क्या तुम्हें नहीं मिलते, जो तुम्हारे सिरकी कठिन पीड़ाको दूर कर सकें। वायु, कफ, पित्त आदि रोगोंसे तुम्हें संनिपात हो गया है, अथवा असमय-पर तुममें पित्तका प्रकोप हो गया है। तुम व्रतके बहाने व्यर्थमें इतना क्लेश क्यों पाती हो। तुम कहती हो कि 'सौकरवक्षेत्रमें चलनेपर कहूँगी', इस विषयमें ऐसा क्या गोपनीय है, जिसे तुम कहना नहीं चाहती हो?'

अब राजकुमारी बड़े संकोचमें पड़ गयी। वह दुःखसे पीड़ित तो थी ही, उसने स्वामीके चरण पकड़ लिये और कहने लगी—'महाराज! आप मुझपर प्रसन्न हों, यह बात आप इस समय पूछ रहे हैं, यह ठीक नहीं। वीरवर! मेरा यह वृत्त जन्मान्तरीय कर्मोंसे सम्बद्ध है।' पत्नीकी बात सुनकर कलिङ्गदेशके उस नरेशने परम हित करनेके विचारसे उसके प्रति मधुर वचन कहा—'देवि! मेरे सामने यह कौन-सी गोपनीय बात है। तुम ठीक-ठीक बात बतला दो।' पतिकी बात सुनकर राजकुमारीकी आँखें आश्चर्यसे भर गयीं। वह मधुर वाणीमें बोली—'प्राणनाथ! शास्त्रोंके अनुसार स्त्रीके लिये स्वामी ही धर्म, अर्थ और सर्वस्व है। उसका पति ही परमात्मा है। अतएव आप जो मुझसे पूछ रहे हैं, वह मुझे अवश्य कहना चाहिये। फिर भी जो बात मेरे हृदयमें बैठ गयी है उसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ। पीड़ा पहुँचानेवाली मेरी यह बात आप मुझसे पूछें, यह उचित नहीं जान पड़ता। महाभाग! इस दुःखका मेरे शरीरसे दूर होना असम्भव-सा दीखता है। आप सुखमें सदा समय बिताते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। स्वामिन्! मेरे समान बहुत-सी स्त्रियाँ आपके अन्तःकरणमें हैं। जिन्हें आप विविध प्रकारके अन्न और उत्तम भूषण दिया करते हैं और वे आपकी सेवा करती हैं, फिर मुझसे आपका क्या तात्पर्य? राजन्! आप हाथी, रथ और घोड़ेपर यात्रा किया करते हैं, यह सब ठीक है। पर राजन्! इस विषयमें मुझसे आपको नहीं पूछना चाहिये। आप मेरे इष्ट देवता, गुरु एवं साक्षात् सनातन परपुरुष हैं। मानद! मेरे लिये आप धर्म, अर्थ, काम, यश और स्वर्ग सब कुछ हैं। आपके पूछनेपर मुझको चाहिये कि सदा सभी बातें सत्य एवं प्रिय कहें। क्योंकि सम्पूर्ण पतिव्रताओंके लिये यह सनातन धर्म है। तथापि मेरी बातोंपर निश्चित विचार करके मेरी पीड़ाके विषयमें आपको नहीं पूछना चाहिये।'

उस समय कलिङ्ग-नरेशको अपनी पत्नीकी पीड़ासे भीषण मानसिक संताप हो रहा था, अतएव उसने मधुर वाणीमें कहा—'देवि! मैं तुम्हारा पति हूँ, ऐसी स्थितिमें मेरे पूछनेपर तुम्हें शुभ हो या अशुभ उसे अवश्य बताना चाहिये। धर्मके मार्गपर चलनेवाली स्त्रीका कर्तव्य है कि वह गुप्त बात भी पतिके सामने प्रकट कर दे। जो स्त्री किसी राग या लोभसे मोहित होकर अपकर्म

कर उसे पतिसे छिपाती है तो विद्वत्समाज उसे सती नहीं कहता। यशस्विनि! ऐसा विचार करके तुम्हें मुझसे अपनी गुप्त बात भी अवश्य कहनी चाहिये। यदि इस गोपनीय बातको तुम मुझे बता देती हो तो तुम्हें अधर्म-का भागी नहीं होना पड़ेगा।'

राजकुमारी बोली—'प्राणनाथ! राजा देवता, गुरु एवं ईश्वरके समान पूज्य हैं—आप मेरे पति भी हैं। महाराज! सुनिये! यद्यपि मेरा कार्य बहुत गुप्त नहीं है, तब भी मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, स्वामिन्! अपने राज्यपर बड़े राजकुमारका अभिषेक कर दीजिये, यह नियम कुलके अनुसार है और आप मेरे साथ 'सौकरव (वराह)-क्षेत्रमें चलनेकी कृपा करें।'

पत्नीकी यह बात सुनकर कलिङ्ग-नरेशने सहर्ष उसका अनुमोदन कर दिया। अपने वाक्योंसे पत्नीको प्रसन्न कर उसने कहा—'सुन्दरि! तुम्हारे कथनानुसार मैं पुत्रको राज्यपर बैठा दूँगा। फिर वे दोनों रनिवाससे बाहर निकले। राजकुमारने कञ्चुकीको देखकर कहा—'द्वारपाल! तुम यहाँके सब लोगोंको सूचित कर दो। वे आकर यहाँ उपस्थित हों।

इसके बाद कलिङ्ग-नरेशने अपनी रुचिके अनुसार उस समय कुछ खाने योग्य अन्न-जल ग्रहण किया और आचमन करके कुछ समयतक विश्राम किया। फिर उन्होंने अपने पुत्रका अभिषेक करनेके लिये मन्त्रिमण्डल-को बुलाया और आज्ञा दी—'सब लोग आचारके अनुसार माङ्गलिक कृत्य करके राजधानीका संस्कार करनेमें जुट जायँ। फिर कलिङ्ग-नरेशने अपने वृद्ध मन्त्रीसे कहा-'तात! कल मैं राज्यपर अपने पुत्रका विधिके अनुसार अभिषेक करना चाहता हूँ। उसकी आप शीघ्र तैयारी करें।' नरेशकी बात सुनकर मन्त्रियोंने कहा—'राजन्! सभी वस्तुएँ तैयार ही हैं।

पढ़ रहे हैं, यह हम सभीको पसंद है।

महाराज! आपके ये राजकुमार सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें सदा संलग्न रहते हैं। प्रजाओंपर प्रेम रखनेवाले, नीतिके पूर्ण जानकार, विचारशील और शूरवीर भी हैं। प्रभो! आपके मनमें जो अभिप्राय है, वह हमलोगोंको सम्यक् प्रकारसे प्रिय लगती है।' ऐसी बात कहकर मन्त्रीलोग अपने स्थानपर चले गये और भगवान् सूर्य अस्त हो गये। राजा और रानीने सुखपूर्वक शयन किया। रात आनन्दपूर्वक बीत गयी।

प्रातःकाल गन्धर्वों, वन्दीजनों, सूतों एवं मागधोंने अपने समुचित स्तुति-पाठसे राजाको जगाया। राजाने शुभ मुहूर्तका अवसर पाकर उस परम योग्य अपने कुमारका अभिषेक कर दिया। कलिङ्गनरेश धर्मका पूर्ण ज्ञाता था। राजगद्दीपर बैठानेके पश्चात् उसने राजकुमारका मस्तक सूँघा। साथ ही उससे यह मधुर वचन कहा—'बेटा! तुम पुत्रोंमें श्रेष्ठ हो। मैं तुम्हें राजधर्म बताता हूँ, वह सुनो—'तात! यदि तुम चाहते हो कि मुझे परम धर्म प्राप्त हो जाय तथा मेरे पितर तर जायँ तो तुम्हें धर्मात्मा पुरुषोंको किसी प्रकार क्लेश नहीं देना चाहिये। जो दूसरोंकी स्त्रियोंपर बुरी दृष्टि डालते हैं, बालकोंका वध करते हैं तथा स्त्रीकी हत्या करनेमें नहीं हिचकते, ऐसे व्यक्ति दण्डके पात्र हैं। कोई भी सुन्दर स्त्री सामने आ जाय तो तुम्हें आँखें मूँद लेनी (कुदृष्टि नहीं डालनी) चाहिये। दूसरोंके अर्जित धनके प्रति तुम्हें लोभ नहीं करना चाहिये और न अन्यायसे ही धन कमाना चाहिये। तुम्हें न्यायपूर्वक पूरी तैयारी तथा दक्षतासे अपने देशकी रक्षा करनी चाहिये। तुम सदा उद्योगशील होकर तत्पर रहना और मन्त्रियोंकी मन्त्रणाका पालन करना, वे जो बात बतायें, उन्हें विचार-पूर्वक करना। अपने शरीरकी रक्षापर
है
f.
सं

लिये सात प्रकारके महान् व्यसन कहे गये हैं—उनसे तुम्हें सदा दूर रहना चाहिये। तुम्हारी सम्पत्तिमें किसी प्रकार दोष आ जाय, ऐसा काम तुम्हें कभी भी नहीं करना चाहिये। राज्यकार्यके सम्बन्धमें अपने मन्त्रीसे तुम्हें किसी प्रकार अप्रिय वचन नहीं कहना चाहिये। मैं इस समय तीर्थमें जानेके लिये प्रस्तुत हूँ, तुमको मुझे रोकना नहीं चाहिये। पुत्र! यदि मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो इतना काम करनेके लिये शीघ्र उद्यत हो जाओ।'

पृथ्वीदेवि! उस समय पिताकी बात सुनकर राजकुमारने उनके पैर पकड़ लिये और उनसे करुणापूर्वक वचन कहना आरम्भ किया। राजकुमारने कहा—'पिताजी! आप यदि यहाँ नहीं रहेंगे तो राज्य-खजाना और सेनासे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। भले ही आपने अभिषेक करके मुझे राजा बना दिया। पर पिताजी! मैं तो केवल बालकोंके खेल ही जानता हूँ। राजालोग जिस प्रकार राज्यकी व्यवस्था करते हैं, उन सभीसे तो मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ।

अपने पुत्रकी बात सुनकर राजाने उससे सामपूर्वक कहा—'पुत्र! तुम जो कहते हो कि 'मैं कुछ नहीं जानता' तो इस विषयमें तुम्हारे मन्त्री एवं नगरके रहनेवाले सत्पुरुष सब कुछ बता देंगे।' देवि! उस समय अपने पुत्रको इस प्रकारका उपदेश देकर कलिङ्ग-नरेश धर्म-शास्त्रकी विधिके अनुसार 'सौकरव (वराह) क्षेत्रमें जानेके लिये तैयार हो गया। उसे वहाँ जाते देखकर वहाँके रहनेवाले लोग भी अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके सहित सब-के-सब पीछे चल पड़े। इतना ही नहीं, अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी बड़ी प्रसन्नतासे हाथी, घोड़े, रथ आदि सवारियोंपर चढ़कर उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं।

इस प्रकार वह कलिङ्गराज बहुत समयके पश्चात् 'सौकरव' तीर्थमें पहुँचे और वहाँ पहुँचकर धन-धान्यका यथोचित दान किया और इस प्रकार धर्म करते हुए धीरे-धीरे समय बीतता गया। इस प्रकार कुछ दिन बीत जानेके पश्चात् राजाने अपनी पत्नीसे यह मधुर वचन कहा—'सुन्दरि! आज मेरे जीवनके हजार वर्ष पूरे हो गये। अब मैंने तुमसे जो पूछा था, उस परम गोपनीय विषयको मुझे बताओ।' इसपर वह राजकुमारी राजाके दोनों चरणोंको पकड़कर बोली—'मानद! महाभाग! आप मुझसे जो बात पूछ रहे हैं, उसे तीन रातोंतक उपवास करनेके बाद आप सुननेकी कृपा करें।' उसने पत्नीकी बातका अनुमोदन किया और कहा—'कमलनयनि! तुम जैसी बात कहती हो, वह मुझे पसंद है।' फिर स्नानकर तीन राततक नियमपूर्वक रहनेके लिये संकल्प किया। तदनन्तर तीन राततक नियमपूर्वक रहकर दम्पतीने स्नान किया और पवित्र रेशमी वस्त्र धारणकर अलंकारोंसे अपने शरीरको आभूषित किया तथा भगवान् विष्णुको प्रणाम किया। फिर राजकुमारीने अपने अलंकारोंको उतारकर मुझे (विष्णु-वराहको) अर्पण कर दिया तथा उस नरेशसे बोली—'नाथ! आइये! हम दोनों एकान्त स्थानपर चलें। आपके मनमें जिस गोपनीय बातको जाननेकी इच्छा है, उसे समझें।

तत्पश्चात् कलिङ्गनरेश और काशीराजकुमारी एकान्त स्थानमें गये। फिर राजकुमारीने कहा—'राजन्! मैं पूर्वजन्ममें एक शृगाली थी, मेरा जन्म निर्जर-सीमामें हुआ था। मृगके भ्रमसे सोमदत्त नामक एक राजकुमारने बाण चलाया और मैं उससे बिंध गयी। मेरे सिरमें अब भी उस तीरके घावके चिह्न (मस्सार) अवशेष हैं, आप इसे देखनेकी कृपा कीजिये। उसीके दोषसे मेरे सिरमें सदा पीड़ा बनी रहती है। काशीनरेशके कुलमें मेरा जन्म हुआ। फिर संयोगवश आपने विवाहकी कृपासे मैं आपकी पत्नी

[illegible] है। [illegible] प्रभावसे मेरा ऐसा जन्म हुआ है और सिद्धि सुलभ हुई है। प्राणनाथ! आपको [illegible] है, पर [illegible] फिर यह शुभ हो गयी।

[illegible] भी अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो [illegible]। वह [illegible]—महाभागे! देखो, [illegible] पूर्वजन्ममें एक [illegible] था। उसी सोमदत्तने एक [illegible] मुझे भी मार डाला था। इस तीर्थके परिणाम [illegible] मैं [illegible] राजा बना हूँ। मुझे बहुत कष्टका [illegible] था। पर वही आज मैं महान् राज्यका [illegible] बन गया था। सुशोभने! आज सिद्धि भी मेरे [illegible] बन गया था। सुशोभने! आज सिद्धि भी मेरे [illegible] आ गयी है। देखो, मेरे मनमें कोई भी संकल्प [illegible] फिर भी सूकरक्षेत्रकी ऐसी महिमा है।

वसुंधरे! इसके बाद वे दोनों दम्पती तथा वहाँ जो भी [illegible] मेरे भक्त एवं प्रेमी उपस्थित थे, वे सभी [illegible] सुनकर हानि-लाभका विचार छोड़कर सर्वथा [illegible] संलग्न हो गये और वहीं प्राण त्यागकर [illegible] शून्य होकर चतुर्भुज-रूप धारणकर शङ्ख, [illegible] आयुधोंसे सज्जित होकर श्वेतद्वीप पहुँचे।

जो व्यक्ति इस प्रकार नियमके अनुसार इस तीर्थमें [illegible] करता है और उसकी वहाँ मृत्यु हो जाती है [illegible] अवश्य प्राप्त कर लेता है। वसुंधरे! [illegible] एक आदित्यक तीर्थ है। उसमें स्नान करनेसे जो [illegible] मिलता है, वह सुनो। यहाँ स्नान करनेवाले प्राणी [illegible] पहुँचकर ग्यारह हजार वर्षोंतक निरन्तर [illegible] उपभोग करते हैं। फिर जब वे स्वर्गसे च्युत [illegible] हैं तो विशाल कुलमें उत्पन्न होकर मेरे भक्त होते हैं—इसमें कोई संशय नहीं। एक बात और, जो कोई [illegible] वहाँके 'गृध्रवटनामक' तीर्थमें स्नान कर और [illegible] तर्पण आदि कर्म करता है, वह जो फल प्राप्त [illegible] वह बतलाता हूँ। वह इस पुण्यके प्रभावसे [illegible] वर्षोंतक इन्द्रलोकमें पहुँचकर देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। फिर जब वह इन्द्रलोकसे च्युत होता है तो मेरे इस तीर्थके प्रभावसे वह मेरा भक्त बन जाता है और उसकी सारी आसक्ति दूर हो जाती है।

भगवान् नारायणसे ऐसा सुनकर उत्तम व्रत आचरण करनेवाली देवी पृथ्वी समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् जनार्दनसे मधुर वचनोंमें बोली—देव! किस कर्मके फलस्वरूप प्राणीको यह तीर्थ प्राप्त होता है अथवा यहाँ स्नान करने और मरनेका कैसे संयोग प्राप्त होता है, इसे यथार्थरूपसे कहनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! तुम महान् भाग्य शालिनी हो। सुनो! जिन मनुष्योंने पूर्वजन्ममें सद्धर्मोंका पालन किया है, पर किसी बुरे कर्मके दोषसे पशुकी योनिमें जन्म पा जाते हैं, वे किन्हीं अन्य जन्मोंके उपार्जित पुण्यों तथा तीर्थ-स्नान, जप एवं महान् दान तथा देवार्चनोंके प्रभावसे ही भले तीर्थमें मरनेका संयोग प्राप्त करते हैं।

तीर्थोंके दर्शन एवं अवगाहन करनेके प्रभावसे पाप नष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः धर्मानुमोदित इस वराहक्षेत्र-कर्मकी गति बड़ी गहन है। उसके प्रभावसे जो बहुत छोटा-सा दीखता है, वह बहुत बड़ा बननेकी शक्ति प्राप्त कर लेता है और उसे अद्भुत पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसीसे उस शृगाली एवं गीधको मनुष्ययोनि एवं साम्राज्यकी प्राप्ति हुई थी और उन्हें जन्मान्तरकी भी स्मृति बनी रही। यह सब इस तीर्थका ही प्रभाव है और अन्तमें वे श्वेतद्वीपको प्राप्त हुए।

देवि! अब अन्य तीर्थकी बात बतलाता हूँ, उसे सुनो। यहाँ एक 'वैवस्वत'नामका तीर्थ है, जहाँ पुत्रकी कामनासे कभी सूर्यदेवने कठोर तपस्या की थी और बादमें उन्होंने यहाँ दस हजार वर्षोंतक निरन्तर चान्द्रायण-व्रत भी किया था, [illegible] सात हजार वर्षोंतक

वे मात्र वायुके आहारपर रहे। भद्रे! तब मैं उनपर संतुष्ट हुआ और उनसे वर माँगनेके लिये कहा। इसपर उन्होंने कहा—'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक पुत्र प्रदान करनेकी कृपा कीजिये।'

फिर मेरे वरदानसे 'यम' और 'यमुना' नामकी उन्हें दो जुड़वाँ संतानें हुईं। तबसे 'सौकरव' क्षेत्रके अन्तर्गतका यह तीर्थ 'वैवस्वततीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वसुंधरे! जो मनुष्य वहाँ आकर दिनके आठवें भागमें अर्थात् सूर्यास्तसे कुछ पूर्व स्नान कर भोजन करता है, वह दस हजार वर्षोंतक सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीकी वहाँ अनायास मृत्यु हो जाती है तो वह इस तीर्थके प्रभावसे यमपुरीमें नहीं जाता। भद्रे! इस 'सौकरव'तीर्थ (वराहक्षेत्र)में स्नान करने और मरनेका फल तथा वहाँकी घटनाएँ मैंने तुम्हें बतला दीं। यह आख्यान भी आख्यानोंमें महान् तथा पवित्रोंमें परम पवित्र 'आख्यान' है तथा यह सौकरव तीर्थोंमें परम श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ संध्योपासन तथा जप-तप अनुष्ठानके फल परम उत्तम हैं। यह परम तेज एवं सभी भागवत पुरुषोंका परमप्रिय रहस्य है। जिसे दूसरोंकी निन्दा करनेका स्वभाव है एवं जो अज्ञानी हैं, उनके सामने इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। जिनकी भगवान्‌में श्रद्धा है, जो वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दीक्षा ले रखी है, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंको जानते हैं, उन्हीं लोगोंके सामने यह दिव्य प्रसङ्ग सुनाना चाहिये। यह सौकरव-क्षेत्रमें प्राप्त होनेवाला महान् पुण्य तुमसे बतला दिया। पृथ्वि! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, उसने मानो बारह वर्षोंतक मेरा ध्यान कर लिया, इसमें कोई संदेह नहीं है और उसे शाश्वत मुक्ति सुलभ हो जाती है। जो इसके केवल एक अध्यायका भी पाठ कर लेता है, वह अपने दस कुलोंको तार देता है। (अध्याय १३७)

वराहक्षेत्रान्तर्वर्ती 'आदित्यतीर्थ'का प्रभाव (खञ्जरीटकी कथा)

सूतजी कहते हैं—भगवान् वराहके मुखारविन्दसे (वराहक्षेत्र)की महिमा, गुणस्तुति और जात्यन्तर-परिवर्तनकी शक्ति सुनकर पृथ्वीदेवीका हृदय आश्चर्यसे भर गया, अतः उन्होंने भगवान् नारायणसे कहा—प्रभो! 'वराहक्षेत्र'में मरा हुआ प्राणी न चाहनेपर भी मनुष्य-जन्म पानेका अधिकारी हो जाता है; अतः निःसंदेह—यह क्षेत्र बहुत पवित्र है। प्रभो! अब आप वहाँका कोई दूसरा प्रसङ्ग बतानेकी कृपा कीजिये। देवेश्वर! मैं यह जानना चाहती हूँ कि शास्त्रोंमें वहाँ गायन-वादन करने, नृत्य एवं जागरण करने, गोदान-अन्नदान और जलदान करने, सम्यक् प्रकारसे स्नान करने अथवा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे आपकी पूजा करनेका क्या फल होता है। जप और यज्ञ आदि अन्य कर्म करनेसे शुद्ध मनवाले प्राणी वहाँ किस गतिको प्राप्त करते हैं। भगवन्! आप अपने भक्तको सुख पहुँचानेके विचारसे यह सब प्रसङ्ग बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह बोले—देवि! यह कथा अत्यन्त पुण्यप्रद एवं सुख देनेवाली है। पहले इसी सौकरव-क्षेत्रमें एक खञ्जरीट* (खञ्जन, खंडरिच, waytail,) पक्षी रहता था। उसने एक बार बहुत-से कीड़ोंको खा लिया, फलतः वह अजीर्णसे अत्यन्त पीड़ित होकर मरणासन्न हो गया और इस 'सूकरक्षेत्र'में ही गिर पड़ा। इतनेमें ही बहुत-से बालक इधर-उधरसे दौड़ते एवं खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उस शिथिलगात्र पक्षीको देखकर कहने लगे—'हमलोग इसे पकड़ेंगे।' फिर उनमें परस्पर विवाद छिड़ गया, कोई कहता 'यह मेरा है' और कोई कहता कि 'उसका।' इस प्रकार खेल-खेलमें ही उनमें झगड़ा छिड़ गया और महान् कलह-कोलाहल मच गया।

* इसे 'ममोला' या 'धोबिन' चिड़िया भी कहते हैं। गोस्वामीजीने 'कृष्णगीतावली' २२। २ में—

'मनहुँ इन्दुपर खंजरीट दोउ कछुक अरुन विधि रचे सँवारी,'—में 'खञ्जरीट'का तथा मानस २। ११६। ७, ३। २९। १० और ४। १५। ६ तथा 'विनयपत्रिका' १५। २ आदिमें 'खंजन' शब्दका प्रयोग किया है।

[illegible] है, इसमें मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।'

सुमुखि! [illegible]

सुमुखि! इस प्रकार उस बालकके माता-पिता [illegible] गये। एक बार जब माता और पिता सुखसे बैठे हुए थे, उस समय उस सुखी बालकने [illegible] चरणोंमें सिर रखकर उन्हें प्रणाम कर कहा—'पिताजी! यदि आपलोग मेरा प्रिय करना चाहते हों, तो मुझे एक वर देनेकी कृपा करें। मेरी प्रार्थना यह है कि आप दोनों मेरे मनोरथमें किसी प्रकारकी बाधा न डालें। पिताजी! मैं सारी बात स्पष्ट कहता हूँ, आप मेरे गुरु हैं, जैसा आप कहेंगे वही होगा।'

देवि! अपने पुत्रकी यह बात सुनकर दम्पती हर्षसे भर गये और उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाले बालकसे यह बात कही—'पुत्र! तुम जो जो कहोगे और जो कुछ तुम्हारे हृदयमें बात हो, हमलोग वह सब कर देंगे। बस, अब तुम विश्वासपूर्वक बोलो। पुत्र! हमारी तीन हजार गायें हैं, जो सभी खूब दूध देती हैं। तुम जिसे चाहो, उसे इन्हें दे सकते हो, इसमें लेशमात्र विचारनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम चाहो तो हमारा—व्यापारका काम बहुत विशाल है, उसका भी सारा अधिकार तुम्हें सौंप दूँ। तुम न्यायपूर्वक उसकी व्यवस्था करो अथवा मित्रोंको धन बाँट दो। पुत्र! तुम धन-[illegible], रत्न आदि जिसे जो भी चाहो, उसे दे सकते हो, [illegible]

सुमुखि! अपने माता-पिताकी बात सुनकर उस बालकने उनके चरण पकड़ लिये और उनसे कहने लगा—'देवताओ! इस समय मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, न मित्रोंके लिये ही मुझे कोई चिन्ता है। मुझे विवाह या धनकी भी अभीष्ट नहीं है। मैं व्यापारका काम करूँ, और लोगोंमें मेरा समय व्यतीत हो अथवा सदा अतिथियोंका सत्कार करूँ—इन बातोंके लिये भी मेरे हृदयमें कोई आसक्ति नहीं। पिताजी! मेरे मनमें तो बस, भगवान् नारायणके क्षेत्र '[illegible]' ([illegible])की ही एक प्रबल चिन्ता है।'

देवि! बालकके माता-पिता दोनों ही मेरे उपासक थे, उन्होंने पुत्रकी यह बात सुनी तो वे दोनों ही दुःखसे भरकर करुण विलाप करने लग गये और कहने लगे, (माता कहती है)—'बेटा! अभी तुम्हें जन्मे केवल बारह वर्ष ही बीते हैं, बस! भगवान् नारायणकी शरणमें जानेकी चिन्ता तुम्हें अभीसे कैसे हो गयी। जिस समय तुम्हें उसके योग्य आयु प्राप्त होगी, तब उस विषयमें विचार करना। अभी तो मैं भोजन लेकर तुम्हारे [illegible]

वराहक्षेत्र)में जानेकी बात अभी क्यों सोचते हो ? तुम तो अभी दुधमुँहे बच्चे हो । मेरे स्तन धन्य हैं, जिससे सदा दूध स्रवित होता है (और तुम उसे पीते हो) । बेटा ! तुमने अपने स्पर्शसुखकी आशा लगानेवाली मुझ माके प्रति यह क्या सोचा ? जब तुम रातमें सोकर *करवटें बदलते हो* तो उस समय अब भी मुझे माँ-माँ कहकर पुकारते हो । फिर (वराहक्षेत्र जाने तथा नारायणके आश्रममें) इस प्रकारकी बातें क्यों सोचते हो ? तुम जब खेलते हो तो अन्य स्त्रियाँ भी बड़े स्नेहसे तुम्हारा स्पर्श करती हैं । बस ! किसीने भी कहीं खेलमें, घरपर अथवा अपने परिजनमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, नौकरोंने तुम्हें कोई कटु वचन नहीं कहे । तुम्हें डरानेके लिये भी मैंने कभी अपने हाथमें छड़ी नहीं ली । फिर पुत्र ! तुम्हारे इस निर्वेद (वैराग्य)का कारण क्या है ?'

वसुधे ! माताकी यह बात सुनकर उस बालकने उससे मधुर वचनोंमें कहा—'माँ ! मैं तुम्हारे गर्भमें रह चुका हूँ, तुम्हारे उदरसे ही मेरा जन्म हुआ है, तुम्हारी गोदमें खेला हूँ, प्रेमसे मैंने तुम्हारे स्तनोंका पान किया है । धूल लगे हुए शरीरसे तुम्हारी गोदमें बैठा हूँ । माताः ! तुम सुनकर जो इतनी करुणा करती हो, यह तुम्हारे लिये उचित ही है, किंतु मेरी पूजनीया माँ ! तुम अब पुत्र-सम्बन्धी मोहका परित्याग करो । यह संसार एक घोर महासागरके समान है । यहाँ प्राणी आते हैं और चले जाते हैं, कुछ लोग तो चले गये और कुछ लोग जा रहे हैं । कोई जीता दीखता है, फिर वह नष्ट हो जाता है और आगे कभी दिखायी नहीं पड़ता । इस प्रकार कौन किससे उत्पन्न, कहाँ उसका सम्बन्ध हुआ, किसकी कौन माता हुई और कौन किसका पिता हुआ, इसका कोई ठिकाना नहीं । हजारों माता-पिता, सैकड़ों पुत्र और स्त्रियाँ प्रत्येक जन्ममें आते-जाते रहते हैं । फिर वे किस-किसके हुए या हम ही किसके रहे ? अतः माँ ! इस प्रकारकी चिन्तामें पड़कर तुम्हें कभी भी सोच नहीं करना चाहिये ।' पुत्रकी इस प्रकारकी बातें सुनकर माता और पिताको बड़ा आश्चर्य हुआ, अतः वे फिर बोले 'बेटा ! अहो ! यह तो बड़ी मार्मिक बात है । पुत्र ! इसका रहस्य बतलाओ ।' उनकी यह बात सुनकर वह वैश्यकुमार मधुर वाणीमें अपने माता-पितासे कहने लगा 'पूज्यवरो ! यदि इस गुप्त बातको सुनकर और विचारकर आप कुछ कहना चाहते हैं तो आपको 'वराहक्षेत्र'का रहस्य पूछना चाहिये और उसे सुननेके लिये 'सौकरवक्षेत्र'में ही पधारनेकी कृपा कीजिये और वहीं यह गुप्त विषय आप लोगोंको पूछना *समुचित होगा । वहीं मैं अपनी भी एक आश्चर्यकारी बात* बतलाऊँगा । पिताजी ! 'सौकरवक्षेत्र'में एक 'सूर्यतीर्थ' है । वहाँ पहुँच जानेपर यह बात बतलाऊँगा ।' इसपर दम्पतीने पुत्रसे कहा —'बहुत अच्छा ।'

फिर उस बालकके माता-पिता दोनोंने सौकरव-तीर्थमें जानेका संकल्प किया । उन्होंने सब प्रकारके द्रव्य साथमें लिये और 'सौकरवतीर्थ'के लिये चल पड़े । पवनवेगके समान बड़े-बड़े नेत्रोंके उस वैश्यके नौकरोंने अपने जानेके पहले बीस हजार गायोंको ही सबसे आगे हँकवाया, फिर उसके सभी परिजन हर्षो-ल्लसित प्रस्थित हुए । उसके घरमें जो कुछ था, सब कुछ उन्होंने भगवान् नारायणको समर्पित कर दिया । फिर चार मासकी प्रबोधिनी तिथिके दिन पूर्वाह्ण कालमें अपने सभी स्वजनों और ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिपूर्वक शुभ मुहूर्तमें उसने [illegible] कर दी । 'भगवान् नारायणका दर्शन होगा' इससे उनके मनमें बड़ा हर्ष था । धीरे-धीरे देशमें प्रसिद्ध वे सभी लोग बहुत समयके पश्चात् वैशाख मासकी द्वादशी तिथिके दिन मेरे क्षेत्रमें आ गये । वहाँ पहुँचकर इन्होंने विधिपूर्वक स्नानादि नित्यकर्म किये ।

उस वैश्यने दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित तीस हजार गौओंको साथ ले लिया था और उन्हें भानुरस नामक व्यक्तिको सौंपकर आगे प्रस्तुत कर रखा था । उनमेंसे बीस गायोंको वहीं दान कर दिया । इसी प्रकार वह प्रतिदिन बहुत-से धन और रत्न दानमें बाँटने लगा ।

इस प्रकार अपने स्त्री-पुत्र और स्वजनोंके साथ उसके वहाँ रहते-रहते सभी (सस्य) धान्य—पौधोंको संवर्धन—पालन करनेवाली 'वर्षाऋतु' आ गयी, जिसमें कदम्ब, कुटज (कोरैया) और अर्जुन नामके वृक्ष पुष्पित हो गये । नदियोंके गर्जन, मोरोंके मधुर स्वर, कोरैया, अर्जुन और कदम्ब आदि वृक्षोंकी सुगन्ध गन्ध और भौंरोंका गुञ्जन, पवनका प्रवाह यह सब उस ऋतुकी विशेषता थी । फिर शरद् ऋतुका प्रवेश हुआ और अगस्त्य-नक्षत्रका उदय हुआ । तड़ागोंके जलमें स्वच्छता आ गयी और उनमें कमल, कुमुद आदि पुष्प खिल गये । अन्य सुरम्य कमल-फूलोंसे भी सर्वत्र शोभाकी वृद्धि होने लगी । अब शीतल, सुगन्ध एवं परम सुखदायी वायु बहने लगी । फिर धीरे-धीरे यह ऋतु भी समाप्त हो चली और कार्तिक महीनेके शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथि आयी । सुभ्रु ! उस समय उस वैश्य दम्पतीने स्नान कर, रेशमी वस्त्र धारण किया और अपने पुत्रसे कहा—'पुत्र ! हमलोग यहाँ छः महीने सुखपूर्वक रह चुके । आज द्वादशी तिथि आ गयी है, अब वह विस्मय बात हमलोगोंको तुम क्यों नहीं बताते, जिसे तुमने यहाँ आकर बतानेको कहा था ?'

देवि ! अपने माता-पिताकी बात सुनकर उस धर्मात्मा पुत्रने उनसे मधुर वचनोंमें कहा—'महाभाग ! आपने जो बात पूछी है, वह प्रसङ्ग बड़ा रहस्यपूर्ण एवं गोपनीय है । उसे मैं अब प्रायः आपलोगोंसे कहूँगा । [illegible] [illegible] [illegible]

वसुंधरे ! इस प्रकार उन लोगोंमें परस्पर बात करते करते मङ्गलमयी रात्रि समाप्त हो गयी और फिर दिन रात्रिकी संधिका समय आ गया एवं सूर्यमण्डल उदित हुआ । तब वह बालक यथाविधि स्नानादिसे शुद्ध होकर रेशमी वस्त्र धारणकर शङ्ख-चक्र, एवं गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरिको प्रणाम कर माता-पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर बोला—'महाभाग ! पिताजी ! जिस प्रयोजनसे हमलोग यहाँ आये हुए हैं तथा वह बात आप मुझसे बार-बार पूछ रहे हैं एवं जिस गोप्य बातको इस 'सौकरक्षेत्र'में कहनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा की थी, उसे सुनें, वह प्रसङ्ग इस प्रकार है—"मैं पूर्व जन्ममें एक खञ्जरीट (खड़रिच) पक्षी था । एक बार मैं बहुत कीड़ोंको खाकर अजीर्ण-ग्रस्त होकर हिलने-डुलनेमें असमर्थ हो गया । उसी समय कुछ बालकोंने मुझे पकड़ लिया और खेल-खेलमें, एकके हाथसे दूसरे लेने लगे । कोई कहता 'इसे मैंने देखा' और कोई कहता 'उसने' । इस प्रकार वे आपसमें झगड़ने लगे । इसी बीच चिढ़कर एक बालकने मुझे घुमाकर गङ्गाके 'आदित्यतीर्थ' नामक स्थानपर जलमें फेंक दिया, जहाँ मेरे प्राण प्रयाण कर गये । यद्यपि मेरे मनमें कोई अभिलाषा न थी, फिर भी उस तीर्थके प्रभावसे मुझे आप लोगोंका पुत्र होनेका सौभाग्य मिला । इस प्रकार मेरह वर्ष पूरे हो चुके । यही वह गोपनीय बात थी, जिसे मैंने आपसे कह दी ।"

इसपर माता-पिता पुनः बोले—'पुत्र ! भगवान् विष्णुके अवतारोंके जितने कर्म हैं, उनमें तुम जिन जिन कर्मोंको करोगे, उन्हें हम भी निश्चय सम्पन्न करेंगे ।' ऐसा कहते हैं कि [illegible] [illegible]

प्रभावसे तथा मेरे क्षेत्रकी महिमासे संसारसे मुक्त होकर श्वेतद्वीपमें पधारे। जो लोग उनके साथ गये थे, वे योगमें निरत हो गये। उनके शरीरसे कमलके समान गन्ध निकलती थी। देवि! मेरे क्षेत्रके प्रसादसे वे भी यथायोग्य आनन्दका उपभोग करने तथा इस क्षेत्रके प्रभावसे बहुत-से प्राणी पशुयोनिसे छूटकर श्वेतद्वीपमें पहुँच गये। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने दस आगे और दस पीछेके पुरुषोंको तार देता है। मूर्ख, पापी, शास्त्रनिन्दक और चुगलखोर व्यक्तियोंके सामने इसकी व्याख्या या पाठ नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणोंके समाजमें अथवा अकेले एकान्त स्थानमें इसका अध्ययन करे; क्योंकि यह सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेके लिये परम साधन है।

(अध्याय १३८)

भगवान्‌के मन्दिरमें लेपन एवं संकीर्तनका माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मेरे मन्दिरका गोमयसे लेपन करनेवालेको जो फल प्राप्त होता है, वह ध्यान देकर मुझसे सुनो। (मन्दिरको) लीपते हुए मनुष्य जितने पग चलता है, उतने हजार वर्षोंतक वह दिव्य लोकोंमें आनन्द करता है। देवि! यदि मेरा कोई भक्त व्यक्ति बारह वर्षोंतक मन्दिरके लीपनेका कार्य करता है, तो वह धन और धान्यसे भरे-पूरे किसी शुद्ध एवं विशाल कुलमें जन्म पाता है और देवताओंद्वारा अभिनन्दित होता हुआ कुशद्वीपको प्राप्त करता है और वहाँ दस हजार वर्षोंतक निवास करता है। शुभे! देवि! जो मेरे अन्तर्गृहका स्वयं लेपन करता है अथवा न्यायपूर्वक दूसरोंसे लेपन कराता है, वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। वसुधरे! अब मैं (गोबर)की महिमा बताता हूँ, तुम उसे सुनो। मन्दिर लीपनेके लिये जो प्राणी किसी समीपके स्थानसे अथवा कहीं दूर जाकर जितने पग चलकर गोमय लाता है, वह (गोबरको लानेवाला व्यक्ति) उतने ही हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। स्वर्गकी अवधि समाप्त हो जानेपर वह शाल्मलि द्वीपमें (जन्म प्राप्तकर) आनन्दका उपभोग करता है और वहाँ बारह हजार एक सौ वर्षोंतक निवास करता है। फिर वह भारतवर्षमें राजा होकर मेरा भक्त होता है तथा सभी धर्मज्ञोंमें वह श्रेष्ठ तथा मेरा उपासक होता है। अगले जन्ममें भी अपने प्राक्तन संस्कार एवं अभ्यासके कारण पुनः गोमय ला करके मेरे मन्दिरका लेपन करता है तथा उसके फलस्वरूप मेरे लोकको प्राप्त होता है। कोई गौको स्नान करा रहा हो या गायके गोबरसे मेरे मन्दिरका उपलेपन करता हो, उस समय जो व्यक्ति उसके पास जल पहुँचाता है, वह उस जलकी बूँदोंके तुल्य सहस्र वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और वहाँसे जब भ्रष्ट होता है तो वह क्रौञ्च द्वीपमें जाता है और क्रौञ्च द्वीपसे भ्रष्ट होकर भूमण्डलपर धार्मिक राजा होता है। पुनः उसी पुण्यके प्रभावसे वह प्राणी मेरे श्वेत द्वीपमें पहुँचता है।

वसुधरे! जो स्त्री-पुरुष मेरे मन्दिरमें मार्जन-कर्म करते (झाड़ू लगाते) हैं, वे सभी अपराधोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक निवास करते हैं तथा मार्जनके समय धूलके जितने कण उड़ते हैं, उतने सौ-वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करते हैं और वहाँसे च्युत होनेपर वे शाकद्वीपको प्राप्त होते हैं। ऐसा व्यक्ति वहाँ बहुत दिनोंतक निवासकर फिर पवित्र भारतभूमिपर धार्मिक राजा होता है और सब प्रकारके भोगोंको प्राप्तकर मेरी उपासनाकर श्वेत द्वीपको प्राप्त होता है।

देवि! अब तुम्हें कुछ अन्य बातें बताता हूँ, वह सुनो। जो प्राणी मेरी आराधनाके समय पद्य-गान करते हैं, उन्हें जो फल प्राप्त होता है, उसे बतलाता हूँ, तुम

स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी सत्यके प्रभावसे ही सुलभ होती है। सूर्य भी सत्यके प्रतापसे ही तपते हैं और चन्द्रमा भी सत्यके ही प्रभावसे जगत्‌को रञ्जित—आनन्दित करते हैं।* मैं सत्यपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि 'यदि मैं लौटकर तुम्हारे पास फिर न आऊँ तो षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या, दोनों पक्षकी चतुर्दशी तिथि—इन तिथियोंमें जो स्नानतक नहीं करता, उसकी जो दुर्गति होती है, वह गति मुझे प्राप्त हो। जो व्यक्ति अज्ञान तथा मोहमें पड़कर गुरु और राजाकी पत्नीके साथ गमन करता है, उसे जो गति मिलती है, वही गति यदि मैं फिर न लौटूँ तो मुझे प्राप्त हो। मिथ्या यज्ञ करनेवाले पुरुषोंको तथा मिथ्याभाषण करनेवाले लोगोंको जो गति प्राप्त होती है, वही गति यदि मैं पुनः न आ सकूँ तो मुझे प्राप्त हो। ब्राह्मणका वध करनेपर, मदिरा-पान, चोरी और व्रतभङ्ग करनेपर मनुष्यको जो गति प्राप्त होती है, यदि मैं पुनः न लौटूँ तो वह मुझे प्राप्त हो।'

देवि! उस समय चण्डालकी बात सुनकर वह ब्रह्मराक्षस प्रसन्न हो गया। अतः वह मधुर वाणीमें कहने लगा—'अच्छा, तुम जाओ, नमस्कार।' इस प्रकार अपने निश्चयमें अडिग चण्डाल ब्रह्मराक्षससे ऐसा कहकर मेरे संगीतमें तल्लीन हो गया। उसके नाचने-गाने सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल होनेपर जब वह ब्रह्मराक्षसके पास वापस चला तो इतनेमें कोई पुरुष उसके सामने आकर खड़ा हो गया और उसने उससे कहा—'साधो! तुम इतनी शीघ्रतासे कहाँ चले जा रहे हो? तुम्हें उस ब्रह्मराक्षसके पास कदापि नहीं जाना चाहिये। वह ब्रह्मराक्षस तो प्राणियोंको खा जाता है; अतः तुम्हें वहाँ प्रत्यक्ष मृत्युमुखमें नहीं जाना चाहिये।'

चण्डालने कहा—'पहले जब मुझे ब्रह्मराक्षस खानेको तैयार था, तब मैंने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं वापस आ जाऊँगा। सत्यका पालन करना परम आवश्यक है।' इसपर उस पुरुषने उसके हितकी इच्छासे कहा—'चण्डाल! वहाँ मत जाओ; क्योंकि जीवनकी रक्षाके लिये सत्यत्यागका दोष नहीं होता।' किंतु चण्डाल अपने व्रतमें अटल था। अतः वह मधुर वाणीमें बोला—'मित्र! तुम जो कह रहे हो, वह मुझे अभीष्ट नहीं है। मुझसे सत्यका त्याग नहीं हो सकता; क्योंकि मेरा व्रत अचल है। जगत्‌की जड़ सत्य है और सत्यपर ही यह सारा संसार टिका है। सत्य ही परम धर्म है। परमात्मा भी सत्यपर ही प्रतिष्ठित हैं; अतः मैं किसी प्रकार भी असत्यका आचरण नहीं करूँगा।' इस प्रकार कहकर वह चण्डाल ब्रह्मराक्षसके पास चला गया और उसका सम्मान करते हुए बोला—'महाभाग! मैं आ गया हूँ। अब मुझे भक्षण करनेमें तुम विलम्ब न करो। तुम्हारी कृपासे अब मैं भगवान् विष्णुके उत्तम स्थानको जाऊँगा। अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार मेरे शरीरके इन अङ्गोंको खा सकते हो।

अब वह ब्रह्मराक्षस मधुर वाणीमें कहने लगा—'साधु वत्स! साधु! मैं तुमसे संतुष्ट हो गया, क्योंकि तुमने सत्य-धर्मका भलीभाँति पालन किया है। चाण्डालोंको प्रायः किसी धर्मका ज्ञान नहीं होता, पर तुम्हारी बुद्धि पवित्र है।'

'भद्र! यदि तुम्हें जीनेकी इच्छा है तो विष्णु-मन्दिरके पास जाकर गत रातमें तुमने जो गान किया है, उसका फल मुझे दे दो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, न तो खाऊँगा और न डराऊँगा।' ब्रह्मराक्षसकी बात सुनकर चण्डाल बोला—'ब्रह्मराक्षस! तुम्हारे इस वाक्यका क्या अभिप्राय है? मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। पहले तो मुझे खाना चाहता है'—यह कहकर अब तुम भगवद्गुणानुवाद-का पुण्य क्यों चाहते हो?' चण्डालकी बात सुनकर ब्रह्मराक्षस बोला—'बस, तुम अपने एक पहरके गीतका

* सत्येन प्राप्यते स्वर्गो मोक्षः सत्येन प्राप्यते। सत्येन तपते सूर्यः सोमः सत्येन रज्यते॥ (वराह० १३९।५१)

सुनो । गाये जानेवाले पद्यकी पङ्क्तियोंके जितने अक्षर होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक गायक पुरुष इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है । गायनमें सदा परायण रहनेवाला मेरा वह भक्त जब इन्द्रलोक तथा रमणीय नन्दनवनमें देवताओंके साथ आनन्द करनेके बाद वहाँसे च्युत होता है तो भूमण्डलमें वैष्णवकुलमें जन्म पाकर वैष्णवोंके साथ ही निवास करता है और वहाँ भी भक्तिके साथ मेरे यशोगानमें संलग्न रहता है । फिर आयु समाप्त होनेपर शुद्ध अन्तःकरणवाला वह पुरुष मेरी कृपासे मेरे ही लोकमें चला जाता है ।

पृथ्वी बोली—अहो, भक्ति-संगीतका कैसा विस्मयकारी प्रभाव है, अतः अब मैं सुनना चाहती हूँ कि इस गायनके प्रभावसे कितने पुरुष सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! वराहक्षेत्रमें मेरे मन्दिरके पास एक चण्डाल रहता था, जो मेरी भक्तिमें तत्पर रहकर सारी रात जगकर मेरा यश गाता रहता था । कभी वह सुदूर अन्य प्रदेशतक भ्रमण करते हुए मेरा भक्ति-संगीत गाता रहता । इस प्रकार उसने बहुत-से सालसाल व्यतीत कर दिये ।

एक समयकी बात है, कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीकी रातमें जब सभी लोग सो गये थे, उसने वीणा उठायी और भक्ति-गीत गाते हुए भ्रमण करना प्रारम्भ किया । इसी बीच उसे एक ब्रह्मराक्षसने पकड़ लिया । चाण्डाल बेचारा निर्बल था और ब्रह्मराक्षस अत्यन्त बली, अतः वह भागनेसे उससे छुड़ा न सका और दुःखसे एवं रोकनेसे व्याकुल होकर वह [illegible] हो गया । फिर उस राक्षसको कहने लगा [illegible] 'अरे, मुझे तुम्हारा [illegible] अभीष्ट सिद्ध होने लगा है, जो तुम इस प्रकार मुझसे पकड़े गये हो ।' उसकी बात [illegible] इस [illegible] मनुष्योंके [illegible] [illegible] [illegible] इस [illegible] दस [illegible] मेरे भोजन [illegible] ब्रह्माने [illegible] नहीं मिला है । ब्रह्माने ही मेरे भोजनके लिये तुम्हें यहाँ भेज दिया है । आज मैं मज्जा, मांस और रक्तसे भरे-पूरे तेरे शरीरका भक्षण करूँगा । इससे मेरी तृप्ति हो जायगी ।'

वसुन्धरे ! चण्डाल मेरे गुणगानके लिये लालायित था । उस व्यक्तिने ब्रह्मराक्षससे प्रार्थना की—'महाभाग ! मैं तुम्हारी बात मानता हूँ । ब्रह्माने तुम्हारे खानेके लिये ही मुझे भेजा है, परंतु परम प्रभुकी भक्तिसे सम्पन्न होकर इस जागरणमें देवाधिदेव जगदीश्वरके यशगानके लिये समुत्सुक हूँ । अतः वनमें उनके आवासस्थलके पास जाकर गान सुनाकर मैं लौट आऊँ, तब तुम मुझे खा लेना, परंतु इस समय मुझे जाने दो, क्योंकि मैंने यह व्रत धारण कर रखा है कि निरंतर(आजीवन)मैं भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिसंगीत सुनाया करूँगा । व्रत पूरा होनेपर तुम मुझे खा लेना । इसपर क्षुधार्त्त ब्रह्मराक्षस कठोर शब्दोंमें बोला—"अरे मूर्ख ! क्यों ऐसी झूठी बात बनाता है । तू कहता है कि 'तुम्हारे पास फिर मैं आऊँगा' । भला कौन-सा ऐसा मनुष्य है, जो मृत्युके मुखमें पहुँचकर फिर जीवित लौट जाय । तुम ब्रह्मराक्षसके मुखमें पड़कर भी फिर जानेकी इच्छा करते हो ।" चण्डाल बोला—'ब्रह्मराक्षस ! मैं यद्यपि पहलेके निन्दित कर्मोंके प्रभावसे इस समय चाण्डाल बना हूँ, किंतु मेरे अन्तःकरणमें धर्म स्थित है । तुम मेरी प्रतिज्ञा सुनो, मैं धर्मानुसार पुनः निश्चित आऊँगा । ब्रह्मराक्षस ! अपने जागरणव्रतकी पूर्णता से लौटकर यहाँ अवश्य आऊँगा । देखो, सम्पूर्ण जगत् सत्यके आधारपर ही टिका है । अन्य [illegible] भी सत्यपर ही आधृत हैं । ब्रह्मवादी ऋषियोंने सत्यके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी । कन्या-दानपर्यन्त [illegible] भी दान [illegible] जाते हैं । [illegible] भी सत्य [illegible] ही [illegible] हैं । [illegible] लोग [illegible] सत्यसे ही [illegible] सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

[illegible] ॥

* [illegible] (वराह० १३९ । ५०-५१)

पाकर, राजाओंका भी राजा होता है और सम्पूर्ण धर्मोंसे सम्पन्न होकर वह सम्पूर्ण पृथ्वीका रक्षक होता है । मेरा भक्त मुझे पुष्प और उपहार अर्पण कर मेरे लोकको प्राप्त होता है । वसुंधरे ! जो सत्कर्मके पथपर पैर रखकर मेरी उपासना करता है तथा जो पुष्पोंको लाकर मेरे ऊपर चढ़ाता है, वह महान् उत्तम कर्मका सम्पादन कर लेता है, अतः वह मेरे लोकमें जानेका अधिकारी हो जाता है । वसुंधरे ! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने पूर्वकी दस तथा आगे होनेवाली दस पीढ़ियोंको तार देता है । मूर्खों एवं निन्दकोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये । यह धर्मोंमें परम धर्म और क्रियाओंमें परम क्रिया है । शास्त्रकी निन्दा करनेवाले व्यक्तिके सामने कभी भी इसका कथन नहीं करना चाहिये । जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं तथा जिनमें मुक्तिकी अभिलाषा है, उनके सामने ही उसका पठन-पाठन करना चाहिये । (अध्याय १३९)

कोकामुख-बदरी-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—भगवन् ! आपने जिन तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, उन्हें मैं सुन चुकी । अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप सगुण साकारविग्रह धारणकर सदा किस क्षेत्रमें सुशोभित होते हैं; जहाँ आपका उत्तम कर्म सम्पादनकर श्रेष्ठ गति प्राप्त की जाय ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! कोकामुख* तीर्थका नाम तो मैं तुम्हें पहले बता ही चुका हूँ, जो गिरिराज हिमालयकी तलहटीमें स्थित है । इसके अतिरिक्त दूसरा लोहार्गल† नामका एक स्थान है, जिसे मैं एक क्षण भी नहीं छोड़ता । ऐसे तो ज्ञानकी दृष्टिसे चर-अचर सारा जगत् मुझसे व्याप्त है और कोई भी स्थान मुझसे रिक्त नहीं, किंतु जो लोग मेरी गूढ़ गतिको जानना चाहते हैं, वे मेरी आराधनामें लगनेकी इच्छासे यथाशीघ्र 'कोकामुख' जानेका प्रयत्न करें ।

धरणीने पूछा—जगत्प्रभो ! जब आप सर्वत्र रहते हैं, तो आप 'कोकामुख'क्षेत्रको ही कैसे श्रेष्ठ बतलाते हैं ?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! 'कोकामुख'-क्षेत्रसे बढ़कर कोई भी स्थान मेरे लिये श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम या प्रिय नहीं है । जो व्यक्ति 'कोकामुख'क्षेत्रमें पहुँच गया, वह पुनः इस संसारमें जन्म नहीं पाता । 'कोकामुख'क्षेत्रके समान दूसरा कोई स्थान न हुआ, न आगे होगा । वहाँ मेरी मूर्तिका गुप्तरूपसे निवास है ।

पृथ्वी बोली—देवेश्वर ! आप सर्वोपरि देवता हैं । भक्तोंको अभय प्रदान करना आपका स्वाभाविक गुण है । अब इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें जितने गोपनीय स्थान हैं, उन्हें मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! जहाँ इसमें मुख्य पर्वतसे सदा जलकी बूँदें भूमिपर गिरती हैं, उस स्थानको 'जलबिन्दु'तीर्थ कहते हैं । वहाँ पृथ्वीपर मूसलकी तुलना करनेवाली पर्वतसे एक धारा गिरती है, जिसका नाम 'विष्णुधारा' है । जो वहाँ मात्र एक दिन-रात उपवासकर यथाविधि स्नान करता है, उसे एक हजार 'अग्निष्टोम-यज्ञों'के अनुष्ठान करनेका फल प्राप्त होता है और उसकी बुद्धिमें कर्तव्यनिर्धारणमें कभी व्यामोह नहीं होता । फिर अन्तमें वह 'विष्णुधारा'के तटपर ही मरनेका सौभाग्य प्राप्तकर नित्य मेरी इस मूर्तिका दर्शन करता रहता है, इसमें

* देखिये पृष्ठ २०१ और उसकी टिप्पणी ।

† द्रष्टव्य अध्याय १५१ तथा पृष्ठ २६५की टिप्पणी ।

पाकर, राजाओंका भी राजा होता है और सम्पूर्ण धर्मोंसे सम्पन्न होकर वह सम्पूर्ण पृथ्वीका रक्षक होता है। मेरा भक्त मुझे पुष्प और उपहार अर्पण कर मेरे लोकको प्राप्त होता है। वसुंधरे ! जो सत्कर्मके पथपर पैर रखकर मेरी उपासना करता है तथा जो पुष्पोंको लाकर मेरे ऊपर चढ़ाता है, वह महान् उत्तम कर्मका सम्पादन कर लेता है, अतः वह मेरे लोकमें जानेका अधिकारी हो जाता है। वसुंधरे ! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह अपने पूर्वकी दस तथा आगे होनेवाली दस पीढ़ियोंको तार देता है। मूर्खों एवं निन्दकोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। यह धर्मोंमें परम धर्म और क्रियाओंमें परम क्रिया है। शास्त्रकी निन्दा करनेवाले व्यक्तिके सामने कभी भी इसका कथन नहीं करना चाहिये। जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं तथा जिनमें मुक्तिकी अभिलाषा है, उनके सामने ही उसका पठन-पाठन करना चाहिये। (अध्याय १३९)

कोकामुख-बदरी-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—भगवन् ! आपने जिन तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, उन्हें मैं सुन चुकी। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप सगुण साकारविग्रह धारणकर सदा किस क्षेत्रमें सुशोभित होते हैं; जहाँ आपका उत्तम कर्म सम्पादनकर श्रेष्ठ गति प्राप्त की जाय।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! कोकामुख* तीर्थका नाम तो मैं तुम्हें पहले बता ही चुका हूँ, जो गिरिराज हिमालयकी तलहटीमें स्थित है। इसके अतिरिक्त दूसरा लोहार्गल† नामका एक स्थान है, जिसे मैं एक क्षण भी नहीं छोड़ता। ऐसे तो ज्ञानकी दृष्टिसे चर-अचर सारा जगत् मुझसे व्याप्त है और कोई भी स्थान मुझसे रिक्त नहीं, किंतु जो लोग मेरी गूढ़ गतिको जानना चाहते हैं, वे मेरी आराधनामें लगनेकी इच्छासे यथाशीघ्र 'कोकामुख' जानेका प्रयत्न करें।

धरणीने पूछा—जगत्प्रभो ! जब आप सर्वत्र रहते हैं, तो आप 'कोकामुख'क्षेत्रको ही कैसे श्रेष्ठ बतलाते हैं ?

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! 'कोकामुख'-क्षेत्रसे बढ़कर कोई भी स्थान मेरे लिये श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम या प्रिय नहीं है। जो व्यक्ति 'कोकामुख'क्षेत्रमें पहुँच गया, वह पुनः इस संसारमें जन्म नहीं पाता। 'कोकामुख'क्षेत्रके समान दूसरा कोई स्थान न हुआ, न आगे होगा। वहाँ मेरी मूर्तिका गुप्तरूपसे निवास है।

पृथ्वी बोली—देवेश्वर ! आप सर्वोपरि देवता हैं। भक्तोंको अभय प्रदान करना आपका स्वाभाविक गुण है। अब इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें जितने गोपनीय स्थान हैं, उन्हें मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! जहाँ इसमें मुख्य पर्वतसे सदा जलकी बूँदें भूमिपर गिरती हैं, उस स्थानको 'जलबिन्दु'तीर्थ कहते हैं। वहाँ पृथ्वीपर मूसलकी तुलना करनेवाली पर्वतसे एक धारा गिरती है, जिसका नाम 'विष्णुधारा' है। जो वहाँ मात्र एक दिन-रात उपवासकर यत्नपूर्वक स्नान करता है, उसे एक हजार 'अग्निष्टोम-यज्ञों'के अनुष्ठान करनेका फल प्राप्त होता है और उसकी बुद्धिमें कर्तव्यनिर्धारणमें कभी व्यामोह नहीं होता। फिर अन्तमें वह 'विष्णुधारा'के तटपर ही मरनेका सौभाग्य प्राप्तकर नित्य मेरी इस मूर्तिका दर्शन करता रहता है, इसमें

* देखिये पृष्ठ २०१ और उसकी टिप्पणी।

† द्रष्टव्य-अध्याय १५१ तथा पृष्ठ २६५की टिप्पणी।

भर

की

य

ह

कोई संशय नहीं। उस 'कोकामुख'क्षेत्रमें एक 'विष्णुपद' नामका स्थान है। वसुंधरे! वहाँ भी मेरी मूर्ति है, किंतु इस रहस्यको कोई नहीं जानता। देवि! जो व्यक्ति वहाँ स्नान कर एक रात निवास करता है, वह मुझमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति 'क्रौञ्च'द्वीपमें जन्म पाता है और अन्तमें जब प्राणोंका त्याग करता है, तब आसक्तियोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

इसी 'कोका'मण्डलमें 'चतुर्धारा' नामक एक स्थान है। वहाँ ऊँचे पर्वतसे धाराएँ गिरती हैं। जो मानव पाँच राततक निवास करते हुए वहाँ स्नान करता है, वह कुशद्वीपमें निवास करनेके पश्चात् मेरे लोकमें स्थान पाता है। कर्म-फलको सुखमें परिवर्तित करनेवाला यहाँ एक 'अनित्य' नामक प्रसिद्ध क्षेत्र है, जिसे देवतालोग भी जाननेमें असमर्थ हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या? श्रेष्ठ गन्धोंवाली पृथ्वि! वहाँ एक दिन-रात निवास करके स्नान करनेवाला पुरुष पुष्करद्वीपमें जन्म पाता है और फिर वह सभी पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको जाता है। वहीं मेरा एक अत्यन्त गोपनीय 'ब्रह्मसर' नामसे प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ शिलातलपर एक पवित्र धारा गिरती है। जो मेरा भक्त पाँच राततक वहाँ निवास कर स्नान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। सूर्यधाराके आश्रयमें रहनेवाला वह व्यक्ति जब प्राणोंका त्याग करता है तो वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवि! यहीं मेरा एक परम गुप्त स्थान है, जिसे 'धेनुवट' कहते हैं। वहाँ ऊँची शिलासे एक मोटी धारा गिरती है। मेरे कर्ममें संलग्न जो पुरुष वहाँ प्रतिदिन स्नान करता और सात राततक रह जाता है तो उसे ऐसा माना जाता है कि उसने सातों समुद्रोंमें स्नान कर लिया है। फलतः वह मेरी उपासनामें लगा हुआ सातों द्वीपोंमें विहार करता चलता है तथा अन्तमें मेरा ध्यान-भजन करते हुए मरकर वह सातों द्वीपोंका अतिक्रमण कर मेरे लोकको प्राप्त कर लेता है। देवि! वहींपर 'धर्मोद्भव' नामका एक पुण्य स्थान है, जहाँ वटवृक्षकी जड़से निकलकर एक धारा गिरती है। वहाँ एक राततक निवास करके स्नान करनेवाला पुरुष मेरे उस पर्वत-शृङ्गपर वटके पत्तोंकी संख्याके इतने वर्षोंतक रूप और सम्पत्तिसे सम्पन्न रहता है। फिर देवि! मृत्यु होनेपर वह अग्निके समान तेजस्वी होकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवि! मेरे इस क्षेत्रमें 'पाप-प्रमोचन'नामका एक गुप्त स्थान है। जो कोई वहाँ एक दिन-रात रहकर स्नान करता है, वह चारों वेदोंमें पारंगत होकर जन्म पाता है। वहीं एक कौशिकी नामकी नदी है। जो मानव वहाँ पाँच रात्रितक निवास करता हुआ स्नान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। कौशिकी नदीसे होकर वहाँ एक धारा बहती है। जो मनुष्य एक रात रहकर उसमें स्नान करता है उसे यमलोकके घोर कष्टोंको नहीं भोगना पड़ता। मेरा वह भक्त प्राणोंका त्याग कर मेरे धाममें चला जाता है।

भद्रे! मेरे बदरीक्षेत्रमें एक और विशिष्ट स्थान है, जिसके प्रभावसे मनुष्य संसार-सागरको लाँघ जाते हैं। उसका नाम 'दंष्ट्राङ्कुर' है और यहीं कोका नदीका उद्गम-स्थान है। इस गुह्य स्थानको जाननेमें सभी असमर्थ हैं, इस कारण लोग वहाँ जा नहीं पाते। भद्रे! वहाँ स्नान करके एक दिन-रात पवित्र-भावसे निवास करनेवाला मानव 'शाल्मलि'द्वीपमें जन्म पाता है। फिर मेरी उपासनामें संलग्न रहता हुआ वह व्यक्ति प्राणत्याग करनेके उपरान्त 'शाल्मलि'द्वीपका भी परित्याग कर मेरे संनिकट पहुँच जाता है।

महाभागे! वहीं एक परमफलदायक दूसरा गुप्त स्थान भी है, जिसे 'विष्णुतीर्थ' कहते हैं। वहाँ पर्वतके बीचसे जलकी धारा निकलकर 'कोका'नदीमें गिरती

। उस जलको 'त्रिस्रोतस्' कहते हैं, यह सम्पूर्ण
ारसे मुक्त करानेवाला है । पृथ्वीदेवि ! वहाँ
न करनेवाला मनुष्य संसारके बन्धनको काटकर
ुदेवताके लोकको प्राप्त होता है और वायुका स्वरूप
रण करके ही वह वहाँ निवास करता है । फिर
ी उपासनामें संलग्न रहता हुआ वह व्यक्ति जब प्राणोंका
ाग करता है, तब उस लोकसे चलकर मेरे लोकमें
ँच जाता है । यहीं 'कौशिकी' और 'कोका'के सङ्गमपर
क श्रेष्ठ स्थान है, जिसके उत्तर भागमें 'सर्वकामिका'
मकी शिला शोभा पाती है । वहाँ स्नानपूर्वक जो
क दिन-रात निवास करता है, उसकी प्रशस्त एवं विशाल
ुलमें उत्पत्ति होती है और उसे जातिस्मरता प्राप्त
ती है—(पूर्वजन्मकी सारी बातें याद रहती हैं)।
। कौशिकी-कोकासङ्गममें (सर्वकामिका शिलाके

स्थानको जब छोड़ता है, तब मेरे लोकमें च
जाता है ।

वसुंधरे ! पाँच योजनके विस्तारमें मेरा 'कोकामुख
नामक क्षेत्र है । उसे जाननेवाला पापकर्ममें लिप्त न
होता । अब एक दूसरे स्थानका परिचय सुनो । प
रमणीय इस 'कोकामुख'क्षेत्रमें जहाँ मैं दक्षिण दिशाकी ओ
मुख करके बैठता हूँ, वहाँ 'शिलाचन्दन' नामका ए
स्थान है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है । पुरुष
आकृतिसे सम्पन्न होनेपर भी मैं वहाँ वराहका रू
धारण करके रहता हूँ । वहाँ सुन्दर ऊँचा मुख औ
ऊपरतक उठे हुए दाढ़सहित मैं अखिल विश्वको देखत
हूँ । देवि ! जो मेरे प्रेमी भक्त मुझे स्मरण करते हैं
तथा मेरे उपास्य कर्मोंमें रत रहते हैं, उनके पापोंक
सर्वथा नाश हो जाता है । अतः वे पवित्रात्मा पुरुष संसार

पश्चात् मेरे लोकमें जाता है । उसके पाँच सौ जन्मोंके सब पाप मिट जाते हैं और वह मेरा प्रिय भक्त हो जाता है । जिसे प्रातःकाल इस उपाख्यानको नित्य पढ़नेको मिलता है, उसे मेरा उत्तम स्थान प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं ।

(अध्याय १४०)

करता है, मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है। यहीं द्वादश दिव्य-'कुण्ड' नामक वह स्थान है, जहाँ मैंने बारह सूर्योको स्थापित किया था। वहाँके पर्वत-शृङ्गकी जड़ विशाल है। इसके नीचे बहुत-सी शिलाएँ हैं। किसी भी द्वादशी तिथिको यदि कोई वहाँ स्नान करता है तो जहाँ द्वादश सूर्य रहते हैं, वह उस लोकमें जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। फिर मेरे कर्ममें स्थित रहनेवाला वह मनुष्य प्राणोंका परित्याग कर आदित्योंके पाससे अलग होकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

यहीं 'सोमाभिषेक' नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ मैंने चन्द्रमाका ब्राह्मणोंके राजाके रूपमें अभिषेक किया था। उन अत्रिनन्दन चन्द्रमाने मुझे यहीं संतुष्ट किया था। वसुंधरे! चौदह करोड़ वर्षोंतक तपोऽनुष्ठान कर मेरी कृपासे चन्द्रमाको परम सिद्धि उपलब्ध हुई थी। यह सारा जगत् एवं इसकी उत्तम ओषधियाँ सब उन चन्द्रमाके ही अधिकारमें हैं। इसी स्थानपर इन्द्र, स्कन्द और मरुद्गण प्रकट और विलीन हुआ करते हैं। देवि! मुझसे सम्बन्ध रखनेवाली वहाँकी सभी वस्तुएँ सोममय होकर अन्तमें मुझमें स्थित हो जायँगी। वहाँ 'सोमगिरि' नामसे प्रसिद्ध एक ऐसा स्थान है, जहाँ भूमिपर, कुण्डमें एवं विशालवनमें भी धाराएँ गिरती हैं। देवि! यह मैं तुमसे बता चुका। जो मानव तीन राततक वहाँ रहकर स्नान करता है, वह सोमलोकको प्राप्तकर आनन्दका उपभोग करता है. इसमें कुछ भी संशय नहीं। देवि! फिर अत्यन्त कठोर तप करनेके बाद जब उसकी मृत्यु होती है तो वह चन्द्रलोकका उल्लङ्घन कर मेरे लोकको प्राप्त करता है।

देवि! मेरे इसी बदरिकाश्रमक्षेत्रमें 'उर्वशी-कुण्ड'-नामक वह गुप्त क्षेत्र भी है, जहाँ उर्वशी नामकी अप्सरा मेरी दाहिनी जाँघको विदीर्ण कर प्रकट हुई थी। देवि! देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये मैं वहाँ (निरन्तर) तप करता रहता हूँ, पर मुझे कोई नहीं जानता, मैं स्वयं ही अपने-आपको जानता हूँ। वहाँ मेरे तपस्या करते हुए बहुत वर्ष बीत गये, किंतु इन्द्र, ब्रह्मा एवं महेश्वर आदि देवता भी यह रहस्य न जान सके।

देवि! 'बदरिकाश्रम'में तपका फल सुनिश्चित है, अतः स्वयं मैंने भी वहाँ रहकर बहुत वर्षोंतक तपस्या की है। पृथ्वीदेवि! वहाँपर मैं दस करोड़, दस अरब तथा कई पद्म वर्षोंतक तप करनेमें तत्पर रहा। उस समय मैं ऐसे गुप्त स्थानमें था कि देवतालोग भी मुझे देख न सके। अतः उन्हें महान् दुःख हुआ और अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये। वसुंधरे! मैं तो तपमें संलग्न था और सभीको देख रहा था, किंतु मेरी योगमायाके प्रभावसे आवृत होनेके कारण उन सभीको मुझे देखनेकी शक्ति न थी। तब उन सब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—'पितामह! भगवान् विष्णुके बिना जगत्में हमें शान्ति नहीं मिल रही है। तब देवताओंकी बात सुनकर लोक-पितामह ब्रह्मा मुझसे कहनेके लिये उद्यत हुए। देवि! उस समय मैं योगमायाके पटके भीतर छिपा था। अतः! उन्हें दर्शन न हो सका। अतएव देवता, गन्धर्व, सिद्ध और ऋषिगण परम प्रसन्न होकर मेरी स्तुति करनेके लिये चल पड़े। इन्द्रादि सभी देवता वहाँ मेरी प्रार्थना करने लगे। उन्होंने स्तुति की—'नाथ! आपके अदर्शनमें हम सब महान् दुःखी एवं उत्साहहीन हैं। हमसे कोई भी प्रयत्न होना शक्य नहीं है। हृषीकेश! आप महान् अनुग्रह करके हमारी रक्षा कीजिये।' बड़ी आँखोंसे शोभा पानेवाली पृथ्वि! देवताओंकी इस प्रार्थनापर मैंने उनपर कृपादृष्टि डाली। मेरे देखते ही वे परम शान्त हो गये। यह इसी उर्वशी-तीर्थकी विशेषता है। इस 'उर्वशी-कुण्ड'में जो मानव एक रात भी रहकर स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे

मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। वह 'उर्वशी'लोकमें जाकर अनन्त समयतक क्रीड़ा करनेका अवसर प्राप्त करता है। देवि! मेरी उपासनामें परायण रहनेवाला जो मानव यहाँ प्राणोंका त्याग करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सीधे मुझमें ही लीन हो जाता है।

वसुंधरे! इस 'बदरिकाश्रम'का पुण्य जहाँ-जहाँ रह कर स्मरण किया जाय, वहीं विष्णुके स्थानकी भावना जाग उठती है। ऐसा करनेवाला मानव फिर संसारमें नहीं आता। जो व्यक्ति इसका पठन एवं श्रवण करता है, वह ब्रह्मचारी, क्रोधविजयी, तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा मुझमें श्रद्धा रखनेवाला, ध्यान एवं योगमें सदा रत होकर मुक्तिके फलका भागी होता है। जो इसे जानता है, वही समस्त ध्यान जानता है। वह अपने आत्मतत्त्वको प्राप्त परम गतिको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय

उपासनाकर्म एवं नारीधर्मका वर्णन

पृथ्वी बोली—माधव! मै आपकी दासी आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि स्त्रियोंमें प्राण और बल बहुत थोड़ा होता है, वे अनशन करने या क्षुधाके वेगको सहन करनेमें (प्रायः) असमर्थ होती हैं।

भगवान् वराह बोले—महाभागे! सर्वप्रथम इन्द्रियोंको वशमें रखकर फिर मुझमें चित्त लगाकर तथा संन्यासयोगका आश्रय लेकर सभी कर्मोंको मेरा समझना हुआ करे। फिर चित्तको एकाग्र करके अपने व्रतमें दृढ़ रहते हुए, सभी कर्म मुझे अर्पण कर दे। ऐसा करनेसे स्त्री, पुरुष अथवा नपुसक कोई भी क्यों न हो, वह जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे छूट जाता है अथवा परम गति पानेकी इच्छा हो तो ज्ञानरूपी संन्यासयोगका आश्रय ग्रहण करे। यदि प्राणीका चित्त समानरूपसे मुझमें स्थिर हो गया तो वह सब प्रकारके भक्ष्याभक्ष्य पदार्थोंको खाता हुआ, पीने योग्य अथवा अपेय पदार्थोंको पीता हुआ भी उस कर्मदोषसे लिप्त नहीं होता। मन, बुद्धि और चित्तको यदि समानरूपसे मुझमें स्थापित कर दिया तो कुछ भी कर्म करता हुआ वह ठीक उसी प्रकार उससे लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्र जलमें रहता हुआ भी [illegible] ही रहता है। समत्वके प्रभावसे कर्मका संयोग होते हुए भी प्राणी उससे लिप्त नहीं होता है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। देवि! रात-दिन, एक मुहूर्त, एक क्षण, एक [illegible] एक निमेष अथवा एक पल भी अवसर मिल जाय, चित्तको समरूपमें मुझमें स्थापित करना चाहिये। चित्त व्यवस्थितरूपसे सम रह सके तो जो लोग [illegible] रात सदा मिश्रित कर्म करते रहते हैं, उन्हें भी [illegible] सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जागते-सोते, सुनते [illegible] देखते हुए भी जो व्यक्ति मुझमें चित्त लगाये रहता है, उस मुझमें चित्त लगाये पुरुषको क्या भय! देवि! कोई दुराचारी चण्डाल हो या सदाचारी ब्राह्मण, इससे मेरा कोई तात्पर्य नहीं। मैं तो उसीकी प्रशंसा करता हूँ, जो सदा अनन्यचित्त है—एकमात्र मेरा [illegible] है। जो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी संस्कार[illegible] पवित्र होकर मेरी उपासना करते हैं। मेरे कर्ममें तत्पर रहनेवाले उन व्यक्तियोंका चित्त सदा मुझमें लगा रहता है। जो लोग अपने हृदयमें पूर्णरूपसे मुझे स्थापित करके कर्मोंका सम्पादन करते हैं, वे संसारके कर्मोंमें लगे रहनेपर भी सुखकी नींद सोते हैं। देवि! जिनका चित्त परम शान्त है, वे मेरे प्रिय पात्र हैं। कारण, वे अपने शुभ अथवा अशुभ जो भी कर्म हैं, उन सबको मुझमें अर्पण करके निश्चिन्त रहते हैं।

देवि ! जिनका चित्त सदा चञ्चल रहता है, वे अधम मानव दुःखी हो जाते हैं, चञ्चल-चित्त ही प्राणीका वास्तविक शत्रु है और शान्तचित्त उसके मोक्षका साधन है । अतएव वसुंधरे ! तुम चित्तको मुझमें लगा दो । ज्ञान और योगका आश्रय लेकर मनको एकाग्र करती हुई तुम मेरी उपासना करो । जो निरन्तर मुझमें चित्त लगाकर अपने व्रतमें निश्चित रहता हुआ मेरी उपासना करता है, वह मेरा सांनिध्य (समीपता) प्राप्तकर अन्तमें मुझमें ही लीन हो जाता है ।

वसुंधरे ! पुनः दूसरी बात बताता हूँ, सुनो । ज्ञानका चित्तसे सम्बन्ध है और क्रियाका योगसे । ज्ञानी पुरुष कर्मके प्रभावसे मेरे स्थानको प्राप्त कर लेते हैं । योगके सिद्ध पारगामी पुरुष भी वहीं जाते हैं । मेरे मार्गका अनुसरण करनेवाले मानव ज्ञान, योग एवं सांख्यका चित्तमें चिन्तन न होनेपर भी परम सिद्धि पानेके अधिकारी हो जाते हैं । देवि ! ऋतुकाल उपस्थित होनेपर मुझमें श्रद्धा रखनेवाली स्त्रीका कर्तव्य है कि वह तीन दिनोंतक निराहार रहे । उसे वायुके आहारपर समय व्यतीत करना चाहिये । चौथे दिन गृह-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करे । उस समय अन्य स्थानोंपर जाना निषिद्ध है । सर्वप्रथम सिर धोकर स्नान करे, फिर निर्मल श्वेतवस्त्र धारणकरे वसुंधरे! चित्त-पर अपना अधिकार रखकर जो स्त्री मन और बुद्धिको सम रखकर कर्म करती है, वह सदा मेरे हृदयमें निवास करती है । भोजनकी सामग्रीको मेरा नैवेद्य मानकर ग्रहण करना चाहिये । भूमे ! इन्द्रियोंको वशमें रखकर चित्तको एकाग्र करे और तब संन्यासयोगकी साधना करनी चाहिये । स्त्री, पुरुष या नपुंसक जो कोई भी हो, उन्हें नित्य ऐसा करना ही चाहिये । ज्ञान रहते हुए भी मेरे कर्मके सम्बन्धमें जो योगकी सहायता नहीं लेते और सांसारिक कार्योंमें जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे मानव आजतक भी मेरे विषयमें अनभिज्ञ हैं । देवि ! वे सांसारिक मोहमें लिप्त मुझे नहीं जानते । उनमें माता, पिता, पुत्र और स्त्री—ये सैकड़ों एवं हजारों मोहकी शृङ्खलाएँ हैं, जिनमें वे चक्कर काटते रहते हैं और मुझे नहीं जान पाते । मोह और अज्ञानसे ढका हुआ यह संसार अनेक प्रकारकी आसक्तियोंमें बँधा है । इससे मनुष्य मुझमें चित्त नहीं लगा पाता । मृत्युके समय ये सभी साथ छोड़कर इस संसारसे पृथक्-पृथक् स्थानपर चले जाते हैं । फिर सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जन्म पाते हैं । पृथ्वीदेवि ! संसारके मोहमें पड़े हुए प्रायः सभी मानव अज्ञानी ही बने रहते हैं । इसीमें उनका पूरा समय बीत जाता है । पुनः उनके पुनर्जन्म होंगे और मृत्यु भी, किंतु मेरे सांनिध्यके लिये कोई यत्न नहीं करता ।

वसुंधरे ! यह सब 'संन्यासयोग'का विषय है । जिसे इसके रहस्यका ज्ञान हो जाता है, वह सदा योगमें लगकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं । जो मानव प्रातःकाल उठकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसे पुष्कल सिद्धि प्राप्त हो जाती है । और अन्तमें वह मेरे लोकको प्राप्त होता है ।

(अध्याय १४२)

मन्दारकी महिमाका निरूपण

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि ! गङ्गाके दक्षिण तटपर तथा विन्ध्यपर्वतके पिछले भागमें मेरा एक परम गुह्य एकान्त स्थान है, जिसे मेरे प्रेमी भक्त मन्दार नामसे पुकारते हैं । देवि ! वहाँ त्रेतायुगमें 'राम' नामसे प्रसिद्ध एक महान् प्रतापी पुरुषका प्राकट्य होगा । वे वहाँ मेरे विग्रहकी स्थापना करेंगे, इसमें संदेह नहीं ।

पृथ्वी बोली—देवेश नारायण ! आपने धर्म एवं अर्थसे संयुक्त मन्दार नामक जिस स्थानका वर्णन किया है ।

उस स्थानपर मनुष्योंके लिये कौन-से कर्तव्य-कर्म हैं, तथा उन मानवोंको किन लोकोंकी प्राप्ति होती है, इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता हो गयी है, अतः आप विस्तारसे इसे बतलानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मन्दारका रहस्य अत्यन्त गोपनीय है। एक बार जब मन्दारपर सर्वत्र पुष्प खिले हुए थे और मैं मनोविनोद कर रहा था तो एक सुन्दर पुष्पको मैंने उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। तबसे विन्ध्यपर्वतपर स्थित उस मन्दारमें मेरा चित्त संलग्न हो गया। वसुंधरे ! ग्यारह कुण्ड उस पर्वतकी शोभा बढ़ाते हैं। सुभगे ! भक्तोंपर कृपा करनेकी इच्छासे मैं उस मन्दार नामक वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। विन्ध्यपर्वतकी तलहटीमें वह परम सुन्दर स्थान अत्यन्त दर्शनीय है। उस महान् वृक्ष मन्दारमें एक बड़े आश्चर्यकी बात है, वह भी सुनो। वह विशाल वृक्ष द्वादशी और चतुर्दशी तिथिके दिन फूलता है। वहाँ दोपहरके समयमें लोग उसे भलीभाँति देख सकते हैं। पर अन्य दिनोंमें वह किसीको दिखलायी नहीं देता। वहाँ मानव एक समय भोजन करके निवास करता है तो स्नान करते ही उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है और वह परमगतिको प्राप्त होता है।

देवि ! उसके उत्तर-भागमें 'प्रागग' नामका एक पर्वत है, जहाँ दक्षिण दिशामें होती हुई तीन धाराएँ गिरती हैं। मेरुके दक्षिण शिखरपर 'मोदन' नामका एक स्थान है। और उसके पूरब और उत्तरके बीचमें 'वैकुण्ठकारण' नामका एक गुप्त स्थान है। वहाँ हल्दीके रंगकी भाँति चमकनेवाली एक धारा गिरती है। जो मानव एक रात रहकर वहाँ स्नान करता है, उसे स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। वहाँ जाकर वह देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है और उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है। विन्ध्यगिरिकी चोटियोंपर मेरुशिखर-से 'पञ्चमोदन' नामकी धारा गिरकर एक गहरे तालाबके रूपमें परिवर्तित हो जाती है। वहाँ मनुष्यको चाहिये कि स्नान करके एक रात निवास करे। ऊँची शिखावाले मेरुपर्वतके पूर्वपार्श्वमें रहकर चित्तको सावधान करके जो अपने प्राणका परित्याग करता है, उसके सम्पूर्ण बन्धन कट जाते हैं और वह मेरे लोकमें चला जाता है। मन्दारके पूर्वमें 'कोटरसंस्थित' नामक स्थानमें मुसलकी आकृति-जैसी एक पवित्र धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर पाँच दिन निवास करनेसे वह मेरुगिरिके पूर्वभागमें स्वर्ग-सुख प्राप्त करता है। पुनः वहाँ भी वह अत्यन्त कठिन कर्मका सम्पादन कर वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। यशस्विनि ! मन्दारके दक्षिण और पश्चिम भागमें सूर्यके समान प्रकाशमान एक धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर मनुष्यको एक दिन-रात निवास करना चाहिये। इससे मेरुके पश्चिम भागमें ध्रुवके स्थानमें रहकर भक्तिपरायण वह मनुष्य जब भौतिक शरीरसे अलग होता है तो मेरे लोकको प्राप्त होता है। वह महान् यशस्वी मानव रहकर तथा चक्रवर्ती नरेशके समान प्राणोंका परित्याग कर मेरुके शृङ्गोंको छोड़कर मेरी संनिधिमें आ जाता है। उससे तीन कोसकी दूरीपर दक्षिण दिशामें 'गभीरक' नामक एक गुप्त स्थान है, जहाँ गहरे जलवाला एक महान् सरोवर है। वहाँ स्नानकर आठ दिनोंतक निवास करनेसे स्वच्छन्द गमन करनेकी शक्ति मिलती है और अन्तमें वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवि ! अब उस क्षेत्रका मण्डल बतलाता हूँ, सुनो। मेरुपर्वतपर स्थित 'मन्दर' नामक एक स्थान है, जो 'स्यमन्तपञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है, वहाँ मैं सदा निवास करता हूँ। विन्ध्यकी ऊँची शिलापर दक्षिणकी ओर चक्र, वामभागमें गदा और आगे हल-मूसल और शङ्ख, विराजमान रहते हैं। यह गुप्त रहस्य है। देवि ! जो मानव मेरी शरणमें आ जाते हैं, वे ही इस परमपवित्र रहस्यको जानते हैं, अन्य मनुष्य नहीं; क्योंकि मेरी मायाने उनकी बुद्धिको मोहित कर रखा है। (अध्याय १४१)

सोमेश्वरलिङ्ग, मुक्तिक्षेत्र (मुक्तिनाथ) और त्रिवेणी आदिका माहात्म्य

पृथ्वी बोलीं—प्रभो ! आपकी कृपासे मैं मन्दार-का वर्णन सुन चुकी । अब इससे जो श्रेष्ठ स्थान हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! 'शालग्राम' (मुक्ति नाथ क्षेत्र) नामसे मेरा एक परम प्रिय एवं प्रसिद्ध स्थान है। पहले द्वापरयुगमें यदुवंशमें शूरसेन नामके एक कुशल कर्मठ व्यक्ति हुए, जिनके पुत्र वसुदेवजी हुए । वसुधे ! उनकी सहधर्मिणीका नाम देवकी है । महाभागे ! उसी देवकीके गर्भसे मैं अवतार धारण करता हूँ और करूँगा । देवताओं-के शत्रुओंका मर्दन करना मेरे अवतारोंका मुख्य उद्देश्य है। उस समय 'वासुदेव'नामसे मेरी प्रसिद्धि होगी । यादवोंके कुलको बढ़ानेवाले शूरसेनके वहाँ रहते समय एक श्रेष्ठ महर्षि, जिनका नाम सालङ्कायन था, मेरी आराधना करनेके लिये दसों दिशाओंमें भ्रमण कर रहे थे। पहले उन्होंने मेरुगिरिकी चोटीपर जाकर पुत्रके लिये तपस्या आरम्भ की । वसुंधरे ! इसके बाद वे 'पिण्डारक'*में और फिर 'लोहार्गल'†क्षेत्रमें भी जाकर एक हजार वर्षतक तप करते रहे । देवि ! महर्षि 'सालङ्कायन' वहाँ इधर-उधर मेरा अन्वेषण कर रहे थे, किंतु मेरे वहाँ रहनेपर भी उन्हें मेरा दर्शन नहीं हुआ ।

भगवान् शंकर भी वहाँ शिलाके रूपमें विराजने लगे, जहाँ मैं शालग्राम-शिलारूपमें विराजता हूँ । वहाँकी चक्राङ्कित शिलाएँ सब मेरा ही स्वरूप हैं । पुनः वहाँकी कुछ शिलाएँ 'शिवनाभा' और कुछ 'चक्रनाभा' नामसे प्रसिद्ध हैं । यह शिवरूप पर्वत सोमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है । चन्द्रदेव अपना शाप मिटानेके लिये यहाँ एक हजार वर्षोंतक तपस्या करते रहे, जिससे वे शापमुक्त होकर परम तेजस्वी बन गये और भगवान् शंकरकी स्तुति की । उनकी दिव्य स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर देनेवाले भगवान् शंकर 'सोमेश्वरलिङ्ग'से प्रकट होकर तीन नेत्रोंसे सम्पन्न होकर सामने स्थित हो गये ।

चन्द्रमाने कहा—'जिनका सौम्य स्वरूप है, उमादेवी जिनकी पत्नी हैं, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये जो सदा आतुर रहते हैं, ऐसे पञ्चमुख भगवान् त्रिलोचन नीलकण्ठ शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जिनके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो हाथमें पिनाक धनुष धारण किये हुए हैं तथा भक्तोंको अभयदान देना जिनका स्वभाव है, ऐसे दिव्य रूपधारी देवेश्वर शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जिनके हाथमें त्रिशूल और डमरू हैं, अनेक प्रकारके मुखवाले गण जिनकी सदा सेवा करते रहते हैं, उन भगवान् वृषध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ । जो त्रिपुर, अन्धक एवं महाकाल नामके भयंकर असुरोंके संहारक हैं, जो हाथीके चर्मको पहनते हैं, उन प्रलयमें भी अचल भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ । जो सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं, रुद्राक्षकी माला जिनकी छवि छिटकाती है, भक्तोंकी

* इसका महाभारत ३ । ३५ । ११, ३ । ८२ । ६५; ८८ । २१, ५ । १०३ । १४ आदिमें तथा भागवत ११ । १ । ११ में भी उल्लेख है । अब इसका नाम 'पिण्डार' है, यह द्वारकासे २० मील दूर जामनगर जिलेमें, कल्याणपुर ताल्लुकेमें स्थित है । (J. B. L XIV)

† एक लोहार्गल (लोहागर) राजस्थानमें नवलगढ़से २० मीलकी दूरीपर है (तीर्थाङ्क पृष्ठ २८२) । पर नन्दलाल देके अनुसार, जिन्होंने 'वराहपुराण' पर विशेष शोध किया था, यह हिमालयमें कूर्माचल (कुमायूँ)के अन्तर्गत चम्पावतसे ३ मील उत्तर 'लोहाघाट' है । This is a sacred place in the Himalaya (Varāha Purāṇa, chapter, 140. 5, 144. 8, 151). Lohāghāt in Kumaon, 3 miles to the north of Champawat, on the river Loha. The place is secred to Viṣṇu. (Brahmāṇḍa Purāṇa ch. 51) (Geographical Dictionary of Ancient and Mediaevel India, page—115) आगे १५१वें अध्यायमें इसका विस्तृत माहात्म्य है ।

इस प्रकार मनुष्योंके लिये जो कर्तव्य-कर्म हैं, तथा उन स्थानोंमें जिन लोगोंकी प्राप्ति होती है, इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्सुकता हो रही है, अतः आप विस्तारसे इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मन्दारका रहस्य अत्यन्त गोपनीय है। एक बार जब मन्दारपर सर्वत्र पुष्प खिले हुए थे और मैं मनोविनोद कर रहा था तो एक सुन्दर पुष्पको मैंने उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया। तबसे विन्ध्यपर्वतपर स्थित उस मन्दारमें मेरा चित्त संलग्न हो गया। वसुंधरे! ग्यारह कुण्ड उस पर्वतकी शोभा बढ़ाते हैं। सुभगे! भक्तोंपर कृपा करनेकी इच्छासे मैं उस मन्दार नामक वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। विन्ध्यपर्वतकी तलहटीमें वह परम सुन्दर स्थान अत्यन्त दर्शनीय है। उस महान् वृक्ष मन्दारमें एक बड़े आश्चर्यकी बात है, वह भी सुनो। वह विशाल वृक्ष द्वादशी और चतुर्दशी तिथिके दिन फूलता है। वहाँ दोपहरके समयमें लोग उसे भलीभाँति देख सकते हैं। पर अन्य दिनोंमें वह किसीको दिखलायी नहीं देता। वहाँ मानव एक समय भोजन करके निवास करता है तो स्नान करते ही उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है और वह परमगतिको प्राप्त होता है।

देवि! उसके उत्तर-भागमें 'प्रागग' नामका एक पर्वत है, जहाँ दक्षिण-दिशासे होती हुई तीन धाराएँ गिरती हैं। मेरुके दक्षिण शिखरपर 'मोदन' नामका एक स्थान है। और उसके पूरब और उत्तरके बीचमें 'वैकुण्ठकारण' नामका एक गुह्य स्थान है। वहाँ हल्दीके रंगकी भाँति चमकनेवाली एक धारा गिरती है। जो मानव एक रात रहकर वहाँ स्नान करता है, उसे स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। वहाँ जाकर वह देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है और उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है। विन्ध्यगिरिकी चोटियोंपर मेरुशिखर-से 'समस्रोत' नामकी धारा गिरकर एक गहरे तालाबकी स्वयं परिवर्तिनी हो जाती है। वहाँ मनुष्यको चाहिये कि स्नान करके एक रात निवास करे। ऊँची शिखरवाले मेरुपर्वतके पूर्वभागमें रहकर जिसको सावधान करके जो अपने प्राणका परित्याग करता है, उसके सम्पूर्ण बन्धन कट जाते हैं और वह मेरे लोकमें चला जाता है। मन्दारके पूर्वमें 'कोटरसंस्थित' नामक स्थानमें इसकी आकृति-जैसी एक पवित्र धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर पाँच दिन निवास करनेसे वह मेरुगिरिके पूर्वभागमें स्वर्ग-सुख प्राप्त करता है। पुनः वहाँ भी वह अत्यन्त कठिन कर्मका सम्पादन कर वह मेरे लोकको प्राप्त होता है। यशस्विनि! मन्दारके दक्षिण और पश्चिम भागमें सूर्यके समान प्रकाशमान एक धारा गिरती है। वहाँ स्नानकर मनुष्यको एक दिन-रात निवास करना चाहिये। इससे मेरुके पश्चिम भागमें ध्रुवके स्थानमें रहकर भक्तिपरायण वह मनुष्य जब भौतिक शरीरसे अलग होता है तो मेरे लोकको प्राप्त होता है। वह महान् यशस्वी मानव रहकर तथा चक्रवर्ती नरेशके समान प्राणोंका परित्याग कर मेरुके शृङ्गोंको छोड़कर मेरी संनिधिमें आ जाता है। उससे तीन कोसकी दूरीपर दक्षिण दिशामें 'गम्भीरक' नामक एक गुह्य स्थान है, जहाँ गहरे जलवाला एक महान् सरोवर है। वहाँ स्नानकर आठ दिनोंतक निवास करनेसे स्वच्छन्द गमन करनेकी शक्ति मिलती है और अन्तमें वह मेरे लोकको प्राप्त होता है।

देवि! अब उस क्षेत्रका मण्डल बतलाता हूँ, सुनो। मेरुपर्वतपर स्थित 'मन्दर' नामक एक स्थान है, जो 'स्यमन्त-पञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है, वहाँ मैं सदा निवास करता हूँ। विन्ध्यकी ऊँची शिलापर दक्षिणकी ओर चक्र, वामभागमें गदा और आगे हल-मूसल और शङ्ख, विराजमान रहते हैं। यह गुह्य रहस्य है। देवि! जो मानव मेरी शरणमें आ जाते हैं, वे ही इस परमपवित्र रहस्यको जानते हैं, अन्य मनुष्य नहीं; क्योंकि मेरी मायाने उनकी बुद्धिको मोहित कर रखा है।

(अध्याय १४३)

सोमेश्वरलिङ्ग, मुक्तिक्षेत्र (मुक्तिनाथ) और त्रिवेणी आदिका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो! आपकी कृपासे मैं मन्दार-वर्णन सुन चुकी। अब इससे जो श्रेष्ठ स्थान उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! 'शालग्राम' (मुक्तिप क्षेत्र) नामसे मेरा एक परम प्रिय एवं प्रसिद्ध स्थान है। ले द्वापरयुगमें यदुवंशमें शूरसेन नामके एक कुशल कर्मठ क्ति हुए, जिनके पुत्र वसुदेवजी हुए। वसुधे! उनकी धर्मिणीका नाम देवकी है। महाभागे! उसी देवकीके ते मैं अवतार धारण करता हूँ और करूँगा। देवताओं-शत्रुओंका मर्दन करना मेरे अवतारोंका मुख्य उद्देश्य है। स समय 'वासुदेव'नामसे मेरी प्रसिद्धि होगी। द्योंकि कुलको बढ़ानेवाले शूरसेनके वहाँ रहते समय क श्रेष्ठ महर्षि, जिनका नाम सालङ्कायन था, मेरी राधना करनेके लिये दसों दिशाओंमें भ्रमण र रहे थे। पहले उन्होंने मेरुगिरिकी चोटीपर जाकर त्रके लिये तपस्या आरम्भ की। वसुंधरे! इसके द वे 'पिण्डारक'*में और फिर 'लोहार्गल'†क्षेत्रमें जाकर एक हजार वर्षतक तप करते रहे। देवि! र्षि 'सालङ्कायन' वहाँ इधर-उधर मेरा अन्वेषण र रहे थे, किंतु मेरे वहाँ रहनेपर भी उन्हें रा दर्शन नहीं हुआ।

भगवान् शंकर भी वहाँ शिलाके रूपमें विराजने गे, जहाँ मैं शालग्राम शिलारूपमें विराजता हूँ। वहाँकी चक्राङ्कित शिलाएँ सब मेरा ही स्वरूप हैं। पुनः वहाँकी कुछ शिलाएँ 'शिवनाभा' और कुछ 'चक्रनाभा' नामसे प्रसिद्ध हैं। यह शिवरूप पर्वत सोमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। चन्द्रदेव अपना शाप मिटानेके लिये यहाँ एक हजार वर्षोंतक तपस्या करते रहे, जिससे वे शापमुक्त होकर परम तेजस्वी बन गये और भगवान् शंकरकी स्तुति की। उनकी दिव्य स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर देनेवाले भगवान् शंकर 'सोमेश्वरलिङ्ग'से प्रकट होकर तीन नेत्रोंसे सम्पन्न होकर सामने स्थित हो गये।

चन्द्रमाने कहा—'जिनका सौम्य स्वरूप है, उमादेवी जिनकी पत्नी हैं, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये जो सदा आतुर रहते हैं, ऐसे पञ्चमुख भगवान् त्रिलोचन नीलकण्ठ शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो हाथमें पिनाक धनुष धारण किये हुए हैं तथा भक्तोंको अभयदान देना जिनका स्वभाव है, ऐसे दिव्य रूपधारी देवेश्वर शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथमें त्रिशूल और डमरू हैं, अनेक प्रकारके मुखवाले गण जिनकी सदा सेवा करते रहते हैं, उन भगवान् वृषध्वजको मैं प्रणाम करता हूँ। जो त्रिपुर, अन्धक एवं महाकाल नामके भयंकर असुरोंके संहारक हैं, जो हाथीके चर्मको पहनते हैं, उन प्रलयमें भी अचल भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्पका यज्ञोपवीत पहनते हैं, रुद्राक्षकी माला जिनकी छवि छिटकाती है, भक्तोंकी

---

* इसका महाभारत १। ३५। ११, ३। ८२। ६५; ८८। २१, ५। १०२। १४ आदिमें तथा भागवत ११। १। ११ में भी उल्लेख है। अब इसका नाम 'पिण्डार' है, यह द्वारकासे २० मील दूर जामनगर जिलेमें, कल्याणपुर तालुकेमें स्थित है। (J. B. L XIV)

† एक लोहार्गल (लोहागर) राजस्थानमें नवलगढ़से २० मीलकी दूरीपर है (तीर्थाङ्क पृष्ठ २८२)। पर नन्दलाल देके अनुसार, जिन्होंने 'वराहपुराण' पर विशेष शोध किया था, यह हिमालयमें कूर्मांचल (कुमायूँ)के अन्तर्गत चम्पावतसे ३ मील उत्तर 'लोहाघाट' है। This is a sacred place in the Himalaya (Varāha Purāṇa, chapter, 140. 5, 144. 8, 151). Lohāghāt in Kumaon, 3 miles to the north of Champawat, on the river Loha. The place is sacred to Viṣṇu. (*Brahmāṇḍa Purāṇa ch. 51*) (*Geographical Dictionary* of Ancient and Mediaeval India, page–115) आगे १५१वें अध्यायमें इसका विस्तृत माहात्म्य है।

इच्छा पूर्ण करना जिनका स्वाभाविक गुण है तथा जो सबके शासक हैं, उन अद्भुतरूपधारी भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, मन एवं वाणीकी जिनके पास पहुँच नहीं है तथा जिन्होंने अपने जटासमूहसे गङ्गाको प्रकट किया एवं हिमालय पर्वतके कैलासशिखरपर अपना आश्रम बना रखा है, उन भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ।'

देवि! चन्द्रमाने जब भगवान् शंकरकी इस प्रकार स्तुति की तो उन्होंने कहा—'गोपते! मुझसे तुम अपना अभिलषित वर माँग लो।'

चन्द्रमाने कहा—'भगवन्! आप यदि वर देना चाहते हैं तो मेरी यह अभिलाषा है कि आप मेरे इस सोमेश्वर'लिङ्गमें सदा निवास करें और इसमें श्रद्धा रखकर उपासना करनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा करें।'

देवेश्वर शंकरने कहा—'शीत किरणोंके स्वामी शशाङ्क! भगवान् विष्णुके साथ मैं यहाँ सदा निवास करता आया हूँ। तुम भी मेरे ही स्वरूप हो, पर अब मैं आजसे यहाँ विशेषरूपसे रहूँगा और इस लिङ्गकी पूजा करनेवाले श्रद्धालु पुरुषोंको सदा मेरी पूजाका फल प्राप्त होता रहेगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें देवदुर्लभ वर दे रहा हूँ। यहाँ पहले शालङ्कायन मुनिने भी महान् तप किया है। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उन्हें उनके साथ रहनेका वर दे रखा है। अतः कलानिधे! हम दोनोंका यहाँ रहना पहलेसे ही निश्चित है। श्रीहरिके द्वारा अधिष्ठित पर्वतका नाम 'शालग्राम'-गिरि है और मनमें इच्छा थी कि मुझे भगवान् शिवके समान पुत्र चाहिये। मैंने सोचा कि मैं तो किसीका भी पुत्र नहीं हूँ, फिर अब क्या करूँ। सोम! उस समय बहुत सोच-विचारकर मैंने उससे कहा था—'देवि! तुमने मेरी अपार भक्ति की है, अतः मैं पुत्र बनकर गणेशके सहित लिङ्गरूपसे तुम्हारे गर्भ (तलहटी the bed) में निवास करूँगा। इस प्रकार रेवाने मेरा सांनिध्य प्राप्त कर लिया और यहाँ आ गयी। तबसे इसकी भी 'रेवाखण्ड' नामसे प्रसिद्धि हुई। साथ ही गण्डकी भी सूखे पत्ते खाकर तथा वायु पीकर देवताओंके वर्षोंसे ही वर्षोंतक तपस्यामें तत्पर रही। उस समय वह सदा भगवान् विष्णुका ही चिन्तन करती थी। अन्तमें जगत्के स्वामी श्रीहरि वहाँ स्वयं पधारे और बोले—'पुण्यमयी गण्डकि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। सुव्रते! तुम मुझसे वर माँगो।'

इसके पूर्व भी गण्डकीको एक बार शङ्ख, चक्र एवं गदाधारी भगवान्का दर्शन प्राप्त हुआ था। फिर उन प्रभुकी बात सुनकर गण्डकीने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की—'भगवन्! मैंने आपके जिस रूपका दर्शन किया है, वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इस स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि आपकी ही कृपाका प्रसाद है। जिस समय आप नेत्र बंद कर लेते हैं, उस समय सारा विश्व संहृत हो जाता है। श्रुतिके निर्देशानुसार अनादि, अनन्त एवं असीमस्वरूप जो ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं। महाविष्णो! जो आपको जानना है, वह वेदका तत्त्व पुरुष है। आपकी ही आदिशक्ति योगमाया तथा प्रधान प्रकृति नामसे प्रसिद्ध है। आप अव्यक्त, विश्वरूप, निर्गुण, निरञ्जन, निर्विकार एवं आनन्दस्वरूप परम शुद्ध

गण्डकीकी प्रार्थनासे प्रभावित होकर भगवान् विष्णुने कहा—'देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, जो अन्य मनुष्योंके लिये सब प्रकारसे दुर्लभ एवं अप्राप्य है, वह वर मुझसे माँग लो। भला मेरा दर्शन हो जानेपर प्राणीका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है !'

हिमांशो ! इसपर जनताको तारनेवाली देवी गण्डकीने श्रीहरिके सामने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक मधुर वचनोंमें कहा—'भगवन् ! आप यदि प्रसन्न हैं तो मुझे अभिलषित वर देनेकी कृपा कीजिये। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे गर्भमें आकर निवास करें।'

इसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर सोचने लगे कि मेरे साथ सदा रहनेका लाभ उठानेवाली इस गण्डकी नदीने कैसा अद्भुत वर माँगा है। इससे सम्पूर्ण प्राणियोंका तो बन्धन कट सकता है। अतः इसे यह वर अवश्य दूँगा। अतः वे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'देवि ! मैं शालग्रामशिलाका रूप धारण कर तुम्हारे गर्भ (bed of river) में निवास करूँगा और मेरी संनिधिके कारण तुम नदियोंमें श्रेष्ठ मानी जाओगी। तुम्हारे दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा अवगाहन करनेसे मनुष्योंके मन, वाणी एवं कर्मसे बने हुए पापोंका नाश होगा। जो पुरुष तुम्हारे जलमें स्नान करके देवताओं, ऋषियों एवं पितरोंका तर्पण करेगा, वह अपने पितरोंको तारकर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा देगा। साथ ही मेरा प्रिय बनकर वह स्वयं भी ब्रह्मलोकमें चला जायगा। तुम्हारे तटपर मृत प्राणियोंको मेरे लोककी प्राप्ति होगी, जहाँ जाकर सोच नहीं होता।'

इस प्रकार देवी गण्डकीको वर देकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। शशाङ्क ! तबसे हम और भगवान् विष्णु इस क्षेत्र* में निवास करते हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर भगवान् शंकरने चन्द्रमाको प्रभा प्रदान कर उनके अङ्गोंपर अपना हाथ भी फेरा। इससे वे तत्क्षण परम स्वच्छ हो गये। फिर भगवान् शंकर वहाँसे प्रस्थान कर गये। इसी 'सोमेश्वर' लिङ्गके दक्षिण भागमें रावणने बाणसे पर्वतका भेदन किया था, जहाँसे जलकी एक पवित्र धारा निकली। यह स्नान करनेवालेके पापोंको हरण करती तथा प्रचुर पुण्य प्रदान करती है। इसका नाम 'बाणगङ्गा' है। सोमेश्वरके पूर्व भागमें रावणका वह तपोवन है, जहाँ तीन राततक रहकर उसने तपस्या और नृत्यकार्य किये थे और उसके नृत्यसे संतुष्ट होकर भगवान् शंकरने उसे वर प्रदान किया था। इस कारण उस स्थानको 'नर्तनाचल' कहते हैं। बाणगङ्गामें स्नान करने तथा 'बाणेश्वर'का दर्शन करनेपर मनुष्यको गङ्गामें स्नान करनेका फल मिलता है और देवताकी भाँति उसे स्वर्गमें आनन्द भोगनेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! उसी समय सालङ्कायन मुनि भी मेरे शालग्राम-क्षेत्रमें आकर महान् तप करने लगे। उनके मनमें इच्छा थी कि 'मुझे शिवजीके ही समान पुत्र चाहिये।' मुनिके इस श्रेष्ठ भावको जानकर भगवान् शंकरने अपना एक दूसरा सुन्दर सुखप्रद रूप निर्माण किया और अपनी योगमायाकी सहायतासे वे सालङ्कायनके पुत्र बनकर उनके दक्षिण भागमें विराज गये; परंतु सालङ्कायन मुनि इसे न जान सके। वे मेरी आराधनामें बैठे ही रहे। तब शंकरकी ही दूसरी मूर्ति नन्दीने हँसकर सालङ्कायन मुनिसे कहा—'मुनिवर ! आप अब उपासनासे विरत हों। आपका मनोरथ सफल हो गया।'

देवि ! नन्दीकी यह बात सुनकर मुनिवर सालङ्कायन-का मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे आश्चर्यसे बोले—'अहो ! यदि मेरे इस तपका फल उदय हो गया तो भगवान् विष्णुको भी अवश्य दर्शन देना चाहिये। मैं जबतक उन्हें न देखूँगा, तबतक मैं तपस्यासे उपरत न होऊँगा।' फिर वे नन्दीसे बोले—'पुत्र ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम योगका आश्रय लेकर मथुरा

* यह शालग्राम-क्षेत्र नेपालका 'मुक्तिनाथ' है।

इसपर भगवान् शंकर कुछ क्षणके लिये ध्यानस्थ हुए। और फिर बोले—'आप लोगोंको इसका उत्पत्तिस्थल दिखाता हूँ।' यों कहकर वे उमादेवी, अपने गणों तथा देवताओंके सहित उस ओर प्रस्थित हो गये, जहाँ भगवान् विष्णु तपस्यामें स्थित थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'भगवन्! आप सर्वसमर्थ हैं। अखिल जगत् आपसे बना है। आपके मनमें क्या अभिलाषा उत्पन्न हो गयी कि आप तप कर रहे हैं! सम्पूर्ण संसार आपका आश्रय पाये हुए हैं। आप सभीके अधिष्ठाता हैं। फिर आपके लिये कौन-सा दुर्लभ पदार्थ है, जिसके लिये आप यह कठोर तप कर रहे हैं?'

इसपर जगत्प्रभु विष्णुने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—'मैं संसारकी हितकामनासे तप करनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। आपके दर्शन करनेके लिये भी मनमें बड़ी उत्सुकता थी। जगत्प्रभो! इस समय आपका दर्शन पा जानेसे मेरा यह मनोरथ सफल हो गया।'

भगवान् शंकर बोले—भगवन्! यह मुक्तिक्षेत्र है। इसके दर्शन करनेसे ही मनुष्य मुक्ति पानेका अधिकारी हो जाता है। क्योंकि यहाँ आपके गण्डस्थल (कपोल)से प्रकट हुई 'गण्डकी' नदी नदियोंमें श्रेष्ठ होगी, जिसके गर्भमें आप सुशोभित होंगे—इसमें कोई संशय नहीं है। आप जगत्के स्वामी हैं। जब आपका यहाँ निवास होगा तो केशव! आपके सम्पर्कसे मैं शिव, ब्रह्मा, समस्त देवता, ऋषि, यज्ञ एवं तीर्थ—प्रायः सभी इस गण्डकी नदीमें सदा निवास करेंगे। प्रभो! जो मनुष्य पूरे कार्तिक मासमें यहाँ स्नान करेगा, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे और वह निश्चय ही मुक्तिका भागी होगा। यह तीर्थोंमें परम तीर्थ तथा मङ्गलोंमें परम मङ्गल है। यहाँ स्नान करनेसे मानव गङ्गा-स्नानके फलके भागी हो जायँगे। इसके स्मरण करने, देखने तथा स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट सकता है। इसकी समता करनेवाली दूसरी कोई नदी नहीं है। केवल गङ्गा इससे श्रेष्ठ है। भुक्ति-मुक्ति देनेवाली परम पुण्यमयी यह गण्डकी जहाँ है, वहीं 'देविका' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी गण्डकीके साथ मिल गयी है। यहींसे थोड़ी दूरपर पुलस्त्य और पुलह मुनि आश्रम बनाकर सृष्टिका विधान सम्पन्न होनेके लिये महान् तपस्या कर रहे थे। तपके फलस्वरूप उन्हें सृष्टि करनेकी शक्ति सुलभ हो गयी। उसी समय ब्रह्माके शरीरसे एक पुण्यमयी नदी गङ्गा जो नदियोंमें प्रधान मानी जाती है। वह तथा एक और नदी देविका गण्डकीमें आकर मिल गयी। अतः उस महान् पवित्र नदीका नाम त्रिवेणी पड़ गया, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यह पवित्र मुक्तप्रद क्षेत्र एक योजनके विस्तारमें है।

देवि! पूर्व समयकी बात है। वेद-विद्याविशारद कर्दममुनिके दो पुत्र थे, जिनका नाम क्रमशः जय और विजय था। वे दोनों यज्ञविद्यामें निपुण तथा वेद एवं वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् थे और भगवान् श्रीहरिमें भी उनकी बड़ी निष्ठा थी। संयोगसे कभी उन दोनों परम कुशल ब्राह्मणोंको राजा मरुत्तने यज्ञके लिये बुलाया। यज्ञ समाप्त होजानेपर राजाने उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और उन्हें प्रचुर दक्षिणा दी। अब वे दोनों ब्राह्मण घर आ गये और दक्षिणामें मिली हुई सम्पत्तिको बाँटने लगे। इसी समय उनमें आपसमें संघर्ष छिड़ गया। बड़े पुत्र जयका कथन था कि धनको बराबर-बराबर बाँटना चाहिये। विजयने कहा—'जिसने जो अर्जन किया है, वह धन उसका है।' तब जयने विजयसे कहा—'क्या तुम्हें तुम शक्तिहीन मानकर ऐसा कहते हो। सब सम्पत्ति लिये तुम जो मुझे देना नहीं चाहते तो ग्राह बन जाओ।' इसपर विजयने भी जयसे कहा—'क्या धनके लोभसे तुम

जाओ। वहाँ मेरा एक पवित्र आश्रम है। उस जगह मेरी प्रचुरमात्रामें गोसम्पत्ति पड़ी है। वहाँ आमुष्यायण नामका मेरा शिष्य भी है। उन्हें लेकर तुम यथाशीघ्र यहाँ आ जाओ।' सालङ्कायन मुनिकी आज्ञासे नन्दी उसी क्षण मथुराको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ऋषिके आश्रमका अन्वेषण किया और आमुष्यायण उन्हें दिखायी पड़ गये। पुनः कुशल-प्रश्नके बाद घरपर स्थित गौ आदि सम्पत्तिके विषयमें भी बातचीत की। उन्होंने उत्तर दिया—'साधो! तपस्याके परमधनी मेरे गुरुदेवकी कृपासे यहाँ सर्वत्र कुशल है। अब आप मेरे गुरुजीकी कुशल बतानेकी कृपा करें। इस समय वे कहाँ विराजमान हैं? आप कहाँसे पधारे हैं और आपके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है? यह बात विस्तारपूर्वक बतायें और अर्घ्य आदि स्वीकार करें।' आमुष्यायणके इस प्रकार कहनेपर नन्दीने उनका दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार किया और सालङ्कायन मुनिका वृत्तान्त बताया तथा अपने आनेकी बात स्पष्ट कर दी। फिर नन्दी आमुष्यायणके साथ गोधन लेकर वहाँसे वापस हुए। बहुत दिनोंतक चलनेके बाद वे गण्डकी नदीके तीरपर त्रिवेणीसङ्गमपर पहुँचे। 'देविका'* नामकी एक नदी भी वहीं आकर तपस्या कर रही थी। पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रमके पास यह तथा गङ्गानदी भी आकर मिली। इन तीन नदियोंके एक साथ मिल जानेके

कहते हैं। इसके दर्शन करनेसे भुक्ति एवं मुक्ति दो[नों] सुलभ हो जाती है और सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

पृथ्वी बोली—प्रभो! मैंने तो सुना है कि त्रिवेणी केव[ल] प्रयागमें ही है, जहाँ भगवान् महेश्वर एक 'शूलटङ्क' नामसे तथा दूसरे 'सोमेश्वर'नामसे प्रसिद्ध हैं। साथ [ही] वहाँ स्वयं श्रीहरि भी 'वेणीमाधव' नामसे विराजते हैं। व[हाँ] गङ्गा, यमुना और सरस्वती—ये तीन नदियाँ हैं, व[हाँ] सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों, नदियों एवं तीर्थोंका समाज [भी] विराजमान रहता है। उस 'तीर्थराज'में स्नान करने[वाले] तथा प्राणत्याग करनेवाले व्यक्ति मोक्षके भागी होते हैं। फिर आप जो गण्डकीको 'त्रिवेणी' बता रहे हैं, यह क[ौन] 'त्रिवेणी' है या कोई दूसरी? महाभाग! आप अखि[ल] जगत्का हित करनेकी इच्छासे इसे बतानेकी कृपा करें। दयानिधे! मेरी कलुषित बुद्धिपर ध्यान न दें[कर] इस प्रसङ्गको स्पष्ट करनेकी अवश्य कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! इस विष[यमें] एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। हिमालय पर्वत[के] रमणीय स्थलमें देवतालोग निवास करते हैं। बहु[त] पहले जगत्के हित-सम्पादनके विचारसे भगवान् विष्[णु] वहीं तपस्या करने लगे। कुछ समय बाद उनके श्री[वि]ग्रहसे एक अत्यन्त दिव्य तेज प्रकट हुआ, जिससे च[र] और अचर—सम्पूर्ण संसार जलने लगा और विष्णु[के] गण्डस्थल (कपोल) पसीनेसे भीग गये और उसी स्वेद[से] दिव्य नदी गङ्गा प्रवाहित हुई। इस अद्भुत घटना[से] जन-महर्लोक प्रभृति सभी आश्चर्यमें भर गये और गङ्गा[...]

उड़ गया और दूसरा उसको छीननेके लिये उसपर झपटा। इस प्रकार वे दोनों परस्पर लड़ते हुए एक कुण्डमें गिर पड़े। वहाँ गिरते ही सहसा उनकी आकृति हंसके समान हो गयी और जब वे बाहर निकले तो उनसे चन्द्रमाके तुल्य प्रकाश फैलने लगा। वहाँकी जनता यह देखकर महान् आश्चर्यमें भर गयी। तबसे लोग उस स्थानको 'हंसतीर्थ' कहने लगे। बहुत पहले वहीं यक्षोंने भगवान् शंकरकी आराधना की थी। उस समयसे वह 'यक्षतीर्थ'के नामसे कहा जाता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर यक्षोंके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

(अध्याय १४४)

शालग्राम-क्षेत्रका माहात्म्य

धरणीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि मुनिवर सालङ्कायनने आपके उस मुक्तिप्रद क्षेत्रमें तपस्या करते हुए अन्य कौन-सा कार्य किया और कौन-सी सिद्धि प्राप्त की?'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! सालङ्कायन मुनि वहाँ दीर्घ कालतक तप करते रहे। उनके सामने शालका एक उत्तम वृक्ष था, जिससे सुगन्ध फैल रही थी। सालङ्कायन ऋषि निरन्तर तप करनेसे थके गये थे। इतनेमें उनकी दृष्टि उस शाल वृक्षपर पड़ी। वे उस विशाल वृक्षके नीचे गये और विश्राम करने लगे। उनके मनमें मेरे दर्शनकी अभिलाषा बनी रही। उस समय शाल वृक्षके पूर्वभागमें पश्चिमकी ओर मुख करके मुनि बैठे थे। मेरी मायाने उन्हें ज्ञानशून्य बना दिया था, अतः वे मुझे देख न सके। सुन्दरि! कुछ दिनोंके बाद जब वैशाख मासकी द्वादशी तिथि आयी तो वहीं पूर्व दिशामें ही उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन तपस्वी मुनिने मुझे वहाँ देखकर बार-बार प्रणाम किया और वेदके मन्त्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। उस अवसरपर मेरे तीक्ष्ण तेजसे मुनिके नेत्र चौंधिया गये, अतः उन्होंने धीरेसे अपने नेत्र बंद कर लिये और स्तुति करने लगे। फिर ज्यों ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो उन्होंने देखा कि मैं उस वृक्षके दक्षिण भागमें खड़ा हूँ। अब वे ऋषि मेरे सामने आकर बैठ गये और ऋग्वेदके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। तबतक मैं शालके पश्चिम ओर चला गया। तब वे मुनि भी वहीं पश्चिमकी ओर जाकर बैठ गये और 'यजुर्वेद'के मन्त्रोंसे मेरी स्तुति की। देवि! इसके बाद मैं उसके उत्तर दिशामें चला गया। वहाँ भी वे सामवेदके मन्त्रोंका गान करके मेरी स्तुति करने लगे। सुन्दरि! फिर तो उन ऋषिप्रवर सालङ्कायनकी स्तुतियोंसे संतुष्ट होकर मैं उनपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अतः उनसे कहा—'मुनिवर सालङ्कायन! तुम्हारे इस तप एवं स्तुतिके प्रभावसे मैं परम संतुष्ट हूँ। तपस्याके फलस्वरूप तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी है।'

इसपर सालङ्कायन मुनिने विनयपूर्वक मुझसे कहा—'हरे! मैं भूमण्डलपर निरन्तर भ्रमण तथा तप करता रहा। किंतु निश्चित रूपसे मुझे आज ही आपका शुभ दर्शन प्राप्त हुआ है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो जगन्नाथ! मुझे भगवान् शिवके समान पुत्र देनेकी कृपा कीजिये। मुनीश्वर! ईश्वरकी ही एक दूसरी मूर्ति नन्दिकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है जो (नन्दिकेश्वर) आपके दाहिने अङ्गसे पुत्रके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। ब्राह्मणदेव! अब आप तपसे उपरत हों। योगमायाकी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे इस समय मेरे साथ व्रजमें विराज रहे हैं। आपके शिष्य आमुष्यायणको मथुरासे बुलाकर उनके

सर्वथा अन्धे ही हो गये हो! तुम मदान्ध होकर जो मुझसे इस प्रकार कह रहे हो तो तुम मदान्ध हाथी ही हो जाओ।'

इस प्रकार एक दूसरेके शापके कारण वे दोनों ब्राह्मण अलग-अलग गज और ग्राह बन गये। इनमें विजय तो गण्डकी नदीमें जातिस्मर ग्राह हुआ और जय त्रिवेणीके वन्य क्षेत्रमें हाथी। वह हाथीके बच्चों और हथिनियोंके साथ क्रीडा करता हुआ वहीं वनमें रहने लगा। इस प्रकार ग्राह और गजराज—दोनोंको वहीं रहते हुए कई हजार वर्ष बीत गये। एक समयकी बात है—वह हाथी कभी हथिनियोंके झुंडको साथ लेकर त्रिवेणीमें पहुँचा और उसके बीचमें जाकर स्नान करने लगा। वह हथिनियोंपर जल छिड़कता और हथिनियाँ उसपर जल छिड़कतीं। वह सूँड़से स्वयं ही जल पीता और उन हथिनियोंको भी पिलाता। इस प्रकार प्रसन्नमन होकर वह उनके साथ क्रीडा करता रहा। उसकी इसी क्रीडाके बीच दैवयोगसे प्रेरित वह ग्राह अपने पूर्व वैरका स्मरण करता हुआ उस हाथीके पास आया और उसके पैरको अत्यन्त दृढ़तासे पकड़ लिया। इसपर हाथीने भी उसपर अपने दाँतोंसे प्रहार किया। इधर अब वह ग्राह उस हाथीको जलमें खींचने लगा। हाथी बाहर निकलना चाहता और ग्राह उसे भीतर खींच ले जाना चाहता था। इस प्रकार उन दोनोंमें कई हजार वर्षोंतक युद्ध चलता रहा।

इस प्रकार मत्सर (द्वेष एवं क्रोध)से परिपूर्ण गज एवं ग्राह—इन दोनोंके परस्पर लड़नेसे वहाँके बहुत-से प्राणियोंको महान् पीड़ा पहुँची। बहुतेरे जीव तो अपने प्राणोंसे भी हाथ धो बैठे। तब उस क्षेत्रके स्वामी 'जलेश्वर'ने भगवान् श्रीहरिको इसकी सूचना दी और इसपर कृपालु भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे ग्राहके मुँहको चीर डाला। वसुंधरे! वे अपने चक्रको बार-बार चला रहे थे। इससे शिलाओंपर भी चोट पहुँची। अतः चक्रके आघातसे शिलाओंमें भी उनके चिह्न पड़ गये जिससे वे शिलाएँ चक्रकीटद्वारा खायी-सी दीखती हैं। सुन्दरि! इस त्रिवेणीक्षेत्रके विषयमें तुम्हें संदेह करना ठीक नहीं है। इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है, जिसका वर्णन मैंने तुमसे किया।*

वसुंधरे! राजा भरत भी पुलह-पुलस्त्यमुनिके आश्रमके निकट जाकर 'त्रिजलेश्वर' भगवान्की पूजामें संलग्न हुए तो उनकी संसारसे सर्वथा विरति हो गयी और मृगके शरीर छूटनेके पश्चात् वे जडभरत हुए†। इस जन्ममें भी पुनः उन्होंने इनकी पूजा की। इसीसे वे जलेश्वर या जडेश्वर भी कहलाने लगे। भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनेसे योगसिद्धि प्राप्त हो जाती है। सुभगे! जब मैं श्रेष्ठ शालग्राम-क्षेत्रमें था तो वहीं मुझे यह बात विदित हुई कि जलेश्वरने (जडभरत) मेरी स्तुति की है। वसुधे! भक्तोंपर कृपा करनेके लिये मैं विवश हो जाता हूँ, अतः मैंने अपना सुदर्शन चक्र चलाया। मेरा प्रथम चक्र जहाँ गिरा, वहाँ 'चक्रतीर्थ' बन गया। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य तेजसे सम्पन्न होकर सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है और मरकर मेरे लोकको प्राप्त होता है। मेरे तथा भगवान् शंकरके वहाँ रहनेके कारण ही यह तीर्थ 'हरिहरक्षेत्र' कहलाने लगा।

यहाँ 'त्रिधारक' नामका तीर्थ है, जिसके पूर्वभागमें 'हसतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। वहाँका एक कौतुकपूर्ण सर्वोत्कृष्ट वृत्तान्त बताता हूँ, सुनो। किसी समयकी शिवरात्रिके दिन जब इस मन्दिरमें उत्सव चल रहा था, अनेक प्रकारके नैवेद्य अर्पण करके शंकरजीकी उपासना चल रही थी, इतनेमें ही कुछ भूखे कौए उस अवसर टूट पड़े और एक कौआ अन्न उठाकर ऊपर

* इसमें तथा श्रीमद्भागवत ८। २-४ एवं वामन-पुराणके भक्तिमो— —

† यह कथा भागवत ५। १० में है।

उड़ गया और दूसरा उसको छीननेके लिये उसपर झपटा। इस प्रकार वे दोनों परस्पर लड़ते हुए एक कुण्डमें गिर पड़े। वहाँ गिरते ही सहसा उनकी आकृति हंसके समान हो गयी और जब वे बाहर निकले तो उनसे चन्द्रमाके तुल्य प्रकाश फैलने लगा। वहाँकी जनता यह देखकर महान् आश्चर्यमें भर गयी। तबसे लोग उस स्थानको 'हंसतीर्थ' कहने लगे। बहुत पहले यहीं यक्षोंने भगवान् शंकरकी आराधना की थी। उस समयसे वह 'यक्षतीर्थ'के नामसे कहा जाता है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र होकर यक्षोंके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

(अध्याय १४४)

शालग्राम-क्षेत्रका माहात्म्य

धरणीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि मुनिवर सालङ्कायनने आपके उस मुक्तिप्रद क्षेत्रमें तपस्या करते हुए अन्य कौन-सा कार्य किया और कौन-सी सिद्धि प्राप्त की?'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! सालङ्कायन मुनि वहाँ दीर्घ कालतक तप करते रहे। उनके सामने शालका एक उत्तम वृक्ष था, जिससे सुगन्ध फैल रही थी। सालङ्कायन ऋषि निरन्तर तप करनेसे थके गये थे। इतनेमें उनकी दृष्टि उस शाल वृक्षपर पड़ी। वे उस विशाल वृक्षके नीचे गये और विश्राम करने लगे। उनके मनमें मेरे दर्शनकी अभिलाषा बनी रही। उस समय शाल वृक्षके पूर्वभागमें पश्चिमकी ओर मुख करके मुनि बैठे थे। मेरी मायाने उन्हें ज्ञानशून्य बना दिया था, अतः वे मुझे देख न सके। सुन्दरि! कुछ दिनोंके बाद जब वैशाख मासकी द्वादशी तिथि आयी तो वहीं पूर्व दिशामें ही उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन तपस्वी मुनिने मुझे वहाँ देखकर बार-बार प्रणाम किया और वेद-के मन्त्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। उस अवसरपर मेरे तीक्ष्ण तेजसे मुनिके नेत्र चौंधिया गये, अतः उन्होंने धीरेसे अपने नेत्र बंद कर लिये और स्तुति करने लगे। फिर ज्यों ही उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो उन्होंने देखा कि मैं उस वृक्षके दक्षिण भागमें खड़ा हूँ। अब वे ऋषि मेरे सामने आकर बैठ गये और ऋग्वेदके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करने लगे। तबतक मैं शालके पश्चिम ओर चला गया। तब वे मुनि भी वहीं पश्चिमकी ओर जाकर बैठ गये और 'यजुर्वेद'के मन्त्रोंसे मेरी स्तुति की। देवि! इसके बाद मैं उसके उत्तर दिशामें चला गया। वहाँ भी वे सामवेदके मन्त्रोंका गान करके मेरी स्तुति करने लगे। सुन्दरि! फिर तो उन ऋषिप्रवर सालङ्कायनकी स्तुतियोंसे संतुष्ट होकर मैं उनपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अतः उनसे कहा—'मुनिवर सालङ्कायन! तुम्हारे इस तप एवं स्तुतिके प्रभावसे मैं परम संतुष्ट हूँ। तपस्याके फलस्वरूप तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी है।'

इसपर सालङ्कायन मुनिने विनयपूर्वक मुझसे कहा—'हरे! मैं भूमण्डलपर निरन्तर भ्रमण तथा तप करता रहा। किंतु निश्चित रूपसे मुझे आज ही आपका शुभ दर्शन प्राप्त हुआ है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो जगन्नाथ! मुझे भगवान् शिवके समान पुत्र देनेकी कृपा कीजिये। मुनीश्वर! ईश्वरकी ही एक दूसरी मूर्ति नन्दिकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है जो (नन्दिकेश्वर) आपके दाहिने अङ्गसे पुत्रके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। ब्राह्मणदेव! अब आप तपसे उपरत हों। योगमायाकी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे इस समय मेरे साथ व्रजमें विराज रहे हैं। आपके शिष्य आमुष्यायणको मथुरासे बुलाकर उनके

साथ वे शूलपाणि-रूपमें वहाँ अवस्थित हैं। अब एक दूसरी गुप्त बात भी बताता हूँ, उसे सुनें। आजसे यह उत्तम क्षेत्र 'शालग्राम'क्षेत्र कहलायगा। साथ ही आपने जो यह वृक्ष देखा है, वह भी निःसंदेह मैं ही हूँ। इसे भगवान् शंकरके अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता। मैं अपनी योगमायासे सदा छिपा रहता हूँ, किंतु आपके तपसे मैं प्रकट हुआ हूँ।'

वसुधे! उस समय सालङ्कायन मुनिको इस प्रकार वर देकर उनके देखते-ही-देखते मैं अन्तर्धान हो गया। उस वृक्षकी प्रदक्षिणा करके सालङ्कायन मुनि भी अपने आश्रमको चल पड़े।

वसुंधरे! अब एक दूसरा महान् आश्चर्यपूर्ण स्थान बतलाता हूँ। यहाँ 'रुरुप्रभ'नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुप्त क्षेत्र है। वहाँ द्वादशीके पर्वपर आधी रातमें शङ्खकी ध्वनि सुनायी देती है। उसी क्षेत्रके दक्षिण दिशामें 'गदाकुण्ड' नामसे विख्यात मेरा एक अन्य स्थान भी है, जहाँसे एक स्रोत प्रवाहित है। वहाँ तीन दिनोंतक रहकर स्नान करनेकी विधि है। इसमें स्नान करनेवाला व्यक्ति वेदाध्ययनकी [illegible] समान फलभागी होता है। यदि [illegible] मनुष्य इस क्षेत्रमें प्राणत्याग करता है तो वह [illegible] हुए [illegible] होकर [illegible] प्राप्त करता है।

वसुंधरे! यहीं 'देवप्रभ' [illegible] मेरा एक दूसरा क्षेत्र है। [illegible] सुन्दर एवं [illegible] है। देवप्रभ [illegible] रहता है, जिसका [illegible] है।

[illegible]

अलौकिक आश्चर्यमय दृश्यको देख सकता है, दूसरे पुरुष उसे देखनेमें असमर्थ हैं। उस परम पवित्र देवह्रदमें सूर्योदयके समय सुनहरे रंगके छत्तीस स्वर्णकमल दिखायी पड़ते हैं, जिन्हें सभी लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। उसमें स्नान करनेपर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक मल धुल जाते हैं और वे शुद्ध होकर स्वर्ग चले जाते हैं। जो व्यक्ति दस दिनोंतक यहाँ निवास कर स्नान करता है, उसे विधिपूर्वक अनुष्ठित दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यदि मेरे चिन्तनमें संलग्न प्राणी यहाँ अपना प्राण त्याग करता है तो वह अश्वमेध-यज्ञके फलको भोगकर मेरा सान्निध्य मोक्ष प्राप्त करता है।

देवि! यहीं श्रीकृष्णके सिरसे 'कृष्णगण्डकी' का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी प्रकार 'त्रिशूलगङ्गा'-नामसे प्रसिद्ध विख्यात नदी जो शिवके शरीरसे निकली है, वह भी यहीं है। इस प्रकार दोनों नदियोंके बीचका यह क्षेत्र तीर्थ बन गया है। इस स्थानको 'सर्वतीर्थकदम्बक' कहते हैं। यहाँका कदली-वन विलक्षण शोभा बढ़ाता है। [illegible] जायफल, नागकेसर, [illegible], अशोक, बकुल, [illegible] प्रियाल, नारियल, [illegible], चम्पा, जामुन, [illegible] नारङ्गी, बेर, जम्बीर, मातुलुङ्ग, केतकी, [illegible] (चमेली), यूथिका (जूही), [illegible], मोरसा, [illegible] और अनार आदि अनेक पत्रों तथा फलोंवाले वृक्षोंसे इसकी अनुपम शोभा होती रहती है। देवता लोग भी [illegible] साथ यहाँ आकर आनन्दका अनुभव करते हैं। इस परम पुण्यमय [illegible] महान् [illegible] है। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य [illegible] फल प्राप्त करता है। यहाँ [illegible] स्नान करनेसे एक हजार [illegible] करनेका, [illegible] स्नान करनेपर [illegible] फल प्राप्त होता है। [illegible] कार्तिक [illegible] प्राप्त करे, [illegible] विधिपूर्वक स्नान करनेका [illegible]

अधिकारी हो जाता है। देवि! इस प्रकार यह हम लोगोंका 'हरिहरात्मक' क्षेत्र है। जो यहाँ शरीरका त्याग करते हैं, उन मेरे कर्मके अनुसरण करनेवाले व्यक्तियोंको उत्तम ति प्राप्त होती है। पहले 'मुक्तिक्षेत्र', तब 'रुरुखण्ड' र उन दोनों दिव्य स्थलोंसे निर्मित बहात्र-प्रदेश और वेणी-सङ्गम—इन तीर्थोंमें उत्तरोत्तर क्रमशः एक-से-एक ष्ठ माने जाते हैं। गण्डकीसे सङ्गम-क्षेत्रको परम प्रमाण ानना चाहिये। देवि! इस प्रकार नदियोंमें वह ण्डकी नदी सर्वश्रेष्ठ है। भागीरथी गङ्गासे वह जहाँ मिलती है, वहाँ स्नान करनेसे बहुत फल होता है। यह वही महान् क्षेत्र है, जिसे 'हरिहर-क्षेत्र' कहते हैं। यहाँ पवित्र गण्डकी नदी भगवती भागीरथीसे मिलती है। इस तीर्थके महत्त्वको तो देवतालोग भी भलीभाँति नहीं जानते।

भद्रे! मैं तुमसे शालग्राम-क्षेत्र* और सब पापोंको नष्ट करनेवाले गण्डकीके माहात्म्यका वर्णन कर चुका।

जो मानव प्रातःकाल उठकर इसका सदा पाठ करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। ऐसा मानव मृत्युके समय कभी मोहमें नहीं पड़ता। वह यदि परम सिद्धि चाहता है तो मेरे धाममें चला जाता है। महादेवि! मैंने तुमसे शालग्राम-क्षेत्रके इस श्रेष्ठ माहात्म्यका वर्णन कर दिया। अब तुम्हें अन्य कौन-सा प्रसङ्ग सुननेकी इच्छा है? कहो! (अध्याय १४५)

रुरुक्षेत्र† एवं हृषीकेशके माहात्म्यका वर्णन

पृथ्वी बोली—प्रभो! आपने जो शालग्राम-क्षेत्रके बहुत अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके श्रवण करनेसे मेरी चिन्ता शान्त हो गयी। अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि 'रुरु'-खण्डकी प्रसिद्धि कैसे हुई और वह उत्तम क्षेत्र आपका शुभ आश्रम कैसे बन गया? जगन्नाथ! आप इसे मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! पहले भृगुवंशमें देवदत्त नामके एक वेद-वेदाङ्गपारगामी विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अपने पवित्र आश्रममें रहकर दस हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या करते रहे। इससे इन्द्रके मनमें महान् चिन्ता उत्पन्न हो गयी। अतः उन्होंने कामदेव, वसन्तऋतु तथा गन्धर्वोंके साथ प्रम्लोचा नामकी अप्सराको बुलाकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये भेजा और वह अप्सरा इनके साथ मुनिवर देवदत्तके आश्रमपर चली गयी। वहाँ अनेक प्रकारके वृक्ष और लताएँ पहलेसे ही उनके आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा कोकिलोंका समूह मधुर कूजन कर रहा था। आम्रकी मञ्जरियाँ, भौंरोंका गुञ्जन, गन्धर्वोंका संगीत, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु—ये एक-से-एक रागोद्दीपक थे। अत्यन्त स्वच्छ सुगन्धित और मधुर जलसे सरोवर भरा था, जिसमें कमलोंका समुदाय खिला हुआ था। इसी समय उस परम सुन्दरी अप्सराने अत्यन्त मधुर संगीतका तान छोड़ा। इधर कामदेवने भी अपना पुष्पमय धनुष खींचा और उसपर बाणोंका संधान कर शान्त चित्तवाले मुनिवर देवदत्तको अपना लक्ष्य बनाया। रम्य आलापसे सम्पन्न उस सुमधुर संगीतको सुनकर उन उत्तम व्रती मुनिवर देवदत्तका चित्त विक्षुब्ध हो उठा। अब वे इधर-उधर देखते हुए आश्रममें घूमने लगे। इसी बीच सुन्दर अङ्गोंसे शोभा पानेवाली वह प्रम्लोचा भी उन्हें दीख गयी। उस समय वह गेंद उछाल रही थी। उसकी दृष्टि पड़ते ही मुनिवर देवदत्त कामदेवके बाणसे बिंध गये। उसी समय प्रम्लोचाके अङ्गोंपर मलयवायुका झोंका लगा, जिससे उसके वस्त्र भी खिसक गये। अब मुनि अपनेको सँभाल न सके। उन्होंने उससे पूछा—'सुभगे! तुम कौन हो तथा इस उपवनमें कैसे आयी हो?' अन्तमें उसकी सम्मतिसे उसके साथ रहते हुए उन्होंने अपने तपके प्रभावसे अनेक मनोहर भोगोंको भोगा। सुख-भोगमें आसक्त

* विलफोर्ड तथा पद्मपुराण, पातालखं० अ० ७८के अनुसार यह शालग्राम पर्वत 'मुक्तिनाथ' ही है। द्रष्टव्य—"कल्याण"का तीर्थाङ्क—पृ० १५४।

† श्रीविष्णुपुराण १।१५।१२ आदिके अनुसार यह भी 'मुक्तिनाथ'के ही आसपासका पर्वत है।

साथ वे शूलपाणि-रूपमें यहाँ अवस्थित हैं। अब एक दूसरी गुप्त बात भी बताता हूँ, उसे सुनें। आजसे यह उत्तम क्षेत्र 'शालग्राम'क्षेत्र कहलायगा। साथ ही आपने जो यह वृक्ष देखा है, वह भी निःसंदेह मैं ही हूँ। इसे भगवान् शंकरके अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता। मैं अपनी योगमायासे सदा छिपा रहता हूँ, किंतु आपके तपसे मैं प्रकट हुआ हूँ।'

वसुधे! उस समय सालङ्कायन मुनिको इस प्रकार वर देकर उनके देखते-ही-देखते मैं अन्तर्धान हो गया। उस वृक्षकी प्रदक्षिणा करके सालङ्कायन मुनि भी अपने आश्रमको चल पड़े।

वसुंधरे! अब एक दूसरा महान् आश्चर्यपूर्ण स्थान बतलाता हूँ। यहाँ 'शङ्खप्रभ'नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँ द्वादशीके पर्वपर आधी रातमें शङ्खकी ध्वनि सुनायी देती है। उसी क्षेत्रके दक्षिण दिशामें 'गदाकुण्ड' नामसे विख्यात मेरा एक अन्य स्थान भी है, जहाँसे एक स्रोत प्रवाहित है। वहाँ तीन दिनोंतक रहकर स्नान करनेकी विधि है। इसमें स्नान करनेवाला व्यक्ति वेदान्तवादी ब्राह्मणोंके समान फलभागी होता है। यदि श्रद्धालु एवं गुणवान् मनुष्य उस क्षेत्रमें प्राणका परित्याग करता है तो वह हाथमें गदा लिये हुए विशालकाय होकर मेरे लोकको प्राप्त करता है।

वसुंधरे! यहीं 'देवहृद' संज्ञावाला मेरा एक दूसरा क्षेत्र भी है। यह अगाध जलवाला श्रेष्ठ देव सरोवर सुन्दर एवं शीतल जलसे सम्पन्न होकर सबको सुख पहुँचाता है। देवता भी उसके लिये तरसते हैं। पृथ्वी देवि! वह हृद सदा जलसे परिपूर्ण रहता है। उसमें अनेक ऐसी मछलियाँ भी विचरण करती रहती हैं, जिनपर चक्रका चिह्न अङ्कित रहता है।

सुनयने! अब वहाँका एक दूसरा प्रसङ्ग बताता हूँ, उसे सुनो। यहाँ एक आश्चर्ययुक्त घटना निरन्तर घटती रहती है। मुझमें श्रद्धा रखनेवाला मानव ही इस अलौकिक आश्चर्यमय दृश्यको देख सकता है, पापी पुरुष उसे देखनेमें असमर्थ हैं। उस परम पवित्र देवहृदमें सूर्योदयके समय सुनहरे रंगके छत्तीस स्वर्णकमल दिखायी पड़ते हैं, जिन्हें सभी लोग मध्याह्न कालतक देखते हैं। उसमें स्नान करनेपर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक मल धुल जाते हैं और वे शुद्ध होकर स्वर्ग चले जाते हैं। जो व्यक्ति दस दिनोंतक वहाँ निवास एवं स्नान करता है, उसे विधिपूर्वक अनुष्ठित दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यदि मेरे चिन्तनमें संलग्न प्राणी वहाँ अपना प्राण त्याग करता है तो वह अश्वमेध-यज्ञके फलको भोगकर मेरा सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है।

देवि! यहीं श्रीकृष्णके विग्रहसे 'कृष्णगण्डकी' का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी प्रकार 'त्रिशूलगङ्गा'-नामकी प्रसिद्ध विशाल नदी जो शिवके शरीरसे निकली है, वह भी यहीं है। इस प्रकार दोनों नदियोंके बीचका यह प्रदेश तीर्थ बन गया है। इस स्थानको 'सर्वतीर्थकदम्बक' कहते हैं। यहाँका कदली-वन शिववनकी सुषमा बढ़ाता है। निचुल, जायफल, नागकेसर, खजूर, अशोक, बकुल, आम्र, प्रियालक, नारियल, सोपारी, चम्पा, जामुन, कटहल, नारङ्गी, बेर, जम्बीर, मातुलङ्ग, केतकी, मल्लिका (चमेली), यूथिका (जूही), कूई, कोरया, कुटज और अनार आदि अनेक फलों तथा फूलोंवाले वृक्षोंसे उसकी अनुपम शोभा होती रहती है। देवता लोग अपनी पत्नियोंके साथ यहाँ आकर आनन्दका अनुभव करते हैं। इस परम पुण्यमय सरोवरमें उन दो महान् नदियोंका सङ्गम है। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। यहाँ वैशाख मासमें स्नान करनेसे एक हजार गाय दान करनेका, माघ महीनेमें स्नान करनेका तथा प्रयागमें मकर स्नानका फल पा लेता है। कार्तिक मासमें सूर्य ... , तब यहाँ विधिपूर्वक स्नान

स्थाणु (ठूँठ)के समान निश्चल रहने लगी। अब उसके शरीरके दिव्य प्रकाशसे सारा संसार व्याप्त हो गया।

अब मैं उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ। नियन्त्रित इन्द्रियोंवाली उस कन्याके सामने स्वयं मैं नियन्त्रित-रूपसे प्रकट हुआ, अतः तबसे मैं 'हृषीकेश' नामसे यहाँ स्थित हुआ*। फिर मैंने उससे कहा—'बाले! तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो कुछ बात हो, वह मुझसे वररूपमें माँग लो। अन्य किन्हीं व्यक्तियोंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा अदेय वर भी मैं तुम्हें इस समय देनेके लिये तत्पर हूँ।'

तब 'रुरु'नामकी उस दिव्य कन्याने मुझ श्रीहरिको बारंबार प्रणाम-स्तुति की और कहा—'जगत्पते! आप यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो देवाधिदेव! आप इसी रूपसे यहाँ विराजनेकी कृपा कीजिये।' तब मैंने उससे कहा—'बाले! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तो यहीं हूँ, अब तुम मुझसे कोई अन्य वर भी माँग लो।' इसपर उसने मुझे प्रणाम कर कहा—'देवेश! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो आप ऐसी कृपा करें कि यह क्षेत्र मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो जाय—इसके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है।' सुभगे! तब मैंने कहा—'देवि! ऐसा ही होगा, तुम्हारा यह शरीर सर्वोत्तम तीर्थ होगा और यह समस्त क्षेत्र भी तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। साथ ही जो मनुष्य इस तीर्थमें तीन रातोंतक निवास एवं स्नान करेगा, वह मेरे दर्शनसे पवित्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं। उसके जाने अनजाने किये गये सभी पाप नष्ट हो जायँगे—इसमें कोई संदेह नहीं।'

देवि! इस प्रकार 'रुरु'को वर देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया और वह भी समयानुसार पवित्र तीर्थ बन गयी। (अध्याय १४६)

'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ और उसका माहात्म्य

धरणीने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने रुरु-क्षेत्र हृषीकेशकी महिमाका वर्णन सुना। देवेश! अब जो अन्य पावन क्षेत्र हैं, उन्हें बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! हिमालय-पर्वतके शिखरपर मेरा एक क्षेत्र है, जिसका नाम है—'गोनिष्क्रमण', जहाँ पहले सुरभी आदि गौएँ समुद्रसे तरकर बाहर निकली थीं। बहुत पहले 'और्व'नामसे प्रसिद्ध एक प्रजापति थे, जिन्होंने यहाँ दीर्घकालतक निष्कामभावसे तपस्या की थी। वसुंधरे! कुछ दिनोंके बाद जिस ऊँचे पर्वतपर वे तपस्या कर रहे थे, फलों एवं फूलोंसे परिपूर्ण लक्ष्मी भी वहाँ प्रकट हो गयी। अतः यहाँ कुछ और तपस्वी ब्राह्मण आ गये। इसी समय कहींसे घूमते हुए वहाँ महान् तेजस्वी भगवान् शंकर भी आ गये। एक बार और्व मुनि जब कुछ कमलपुष्पोंके लिये हरिद्वार गये थे कि महादेवने अपने उग्र तेजसे और्व मुनिके उस प्रिय आश्रम-को भस्म कर दिया और फिर वहाँसे यथाशीघ्र अपने वासस्थान हिमालयपर चले गये। देवि! ठीक उसी समय मुनिवर और्व पत्र-पुष्पकी टोकरी लिये हरिद्वारसे अपने उस आश्रमपर आ गये। यद्यपि मुनि शान्त एवं मृदु स्वभावके क्षमाशील एवं सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले थे, तथापि प्रसून फलों, फलों एवं जलोंसे सम्पन्न उस आश्रमको दग्ध हुआ देखकर वे क्रोधमें भर गये। दुःखके कारण उनकी आँखें डबडबा गयीं और क्रोधसे भरकर उन्होंने यह शाप दिया—'प्रचुर फूलों, फलों और उदकोंसे सम्पन्न मेरे इस आश्रमको जिसने जलाया है, वह भी दुःखमें

* हृषीकाणि नियम्याहं यतः प्रत्यक्षतां गतः। 'हृषीकेश' इति ख्यातो नाम्ना तत्रैव संस्थितः॥

(वराहपु० १४६। ७१)

होकर दिन-रात वे कभी सोते भी न थे। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक दिनकी बात है, उनका विवेक जाग्रत् हुआ और वे अज्ञानरूपी नींदसे सहसा जाग उठे। वे कहने लगे—'अहो! भगवान् श्रीहरिकी माया कैसी प्रबल है, जिसके प्रभावसे मैं भी मोहके गर्तमें डूब गया। यह जानते हुए भी कि इससे मेरी तपस्या नष्ट हो जायगी, प्रबल दैवके अधीन होनेके कारण मैंने यह कुत्सित कार्य कर डाला। 'सुभाषित'के नामसे यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि नारी अग्निके कुण्ड-जैसी है और पुरुष घृतके घड़ेके समान, पर मेरी समझसे तो यह मूर्खोंका प्रवादमात्र है। विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो वस्तुतः इनमें बड़ा अन्तर है। क्योंकि घीका घड़ा तो आगपर रखनेसे पिघलता है, न कि देखनेमात्रसे। किंतु पुरुष तो स्त्रीको देखकर ही पिघल उठता है। तथापि इस स्त्रीका यहाँ कोई अपराध नहीं है; क्योंकि मैं स्वयं अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ था।'

इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए उन्होंने प्रम्लोचाको वहाँसे विदा कर दिया। फिर वे सोचने लगे—'इस स्थानमें यह विघ्न हुआ, अतः मैं अब इस आश्रमका परित्यागकर कहीं अन्यत्र चलूँ और वहाँ तीव्र तपस्याका आश्रय लेकर इस शरीरको सुखा दूँ। इस प्रकार निश्चय कर वे भृगुमुनिके आश्रमपर गये और वहाँ गण्डकी नदीके सङ्गममें स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण किया एवं भगवान् विष्णु और शिवकी भलीभाँति पूजा की। फिर वे भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे गण्डकीके तटपर स्थित भृगुतुङ्ग*पर कठोर तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर भगवान् शंकर उन मुनिपर संतुष्ट हुए। उनके लिङ्गरूपमें सहसा ऊपर एवं नीचेसे जलकी तिरछी धाराएँ निकलने लगीं। फिर वे बोले—'मुने! इधर मुझे देखो, मैं शिव हूँ। तुम्हें जानना चाहिये कि विष्णु भी मैं ही हूँ। हम दोनोंमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। इसके पूर्वके तपमें तुम्हारी मुझमें और विष्णुमें भेद-दृष्टि थी, अतः तुम्हें विघ्नोंका सामना करना पड़ा तथा तुम्हारी महान् तपस्या क्षीण हो गयी। अब तुम हम दोनोंको समानभावसे ही देखो। इससे तुम्हें फिर शीघ्र ही सिद्धि सुलभ हो जायगी। जहाँ तुमने तपस्या की है और अनेकों शिवलिङ्गोंका प्राकट्य हुआ है, वह स्थान 'सङ्गम'-नामसे प्रसिद्ध होगा। इस गण्डकी-तीर्थमें स्नान करके जो यहाँ मेरे इन लिङ्गोंकी पूजा करेगा, उसे सम्यक् प्रकारसे योगका उत्तम फल प्राप्त हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं।' मुनिको वर देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और वे उनके बताये मार्गका अनुसरण करने लगे। अतः वे परम सायुज्य-पदको प्राप्त हुए।

इधर मुनिके सम्पर्कसे प्रम्लोचा भी गर्भवती हो गयी थी। आश्रमके पास ही उससे एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसे वहीं छोड़कर वह स्वर्गलोकमें चली गयी। उससे उत्पन्न हुई कन्या भी 'रुरु'नामक मृगोंद्वारा पालित होकर धीरे-धीरे बड़ी हुई, अतः उसका नाम भी 'रुरु'† हुआ। वह अपने पिता देवदत्तके आश्रमपर ही रहती, अनेक युवक उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते, किंतु उसने किसीकी भी बात न मानी और भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करने लगी। वह कठोर तप करती हुई केवल सूखे पत्ते खाकर रहती और बादमें पत्ते खाना भी छोड़कर केवल वायुके आहारपर रहती हुई वह भगवान् श्रीहरिकी आराधनामें तत्पर हो गयी। इस प्रकार सौ वर्षोंतक द्वन्द्वोंको सहती हुई निश्चल-भावसे भगवद्ध्यानमें समाधिस्थ होकर

---

* श्रीनन्दलाल 'दे' आदिके अनुसार यह गण्डकीके पूर्वोत्तरतटपर नेपालका 'मुक्तिनाथ' पर्वत ही है। 'महाभारत' १। ७५। ५७, २१६। २। ३। ९४। ५०, ८५। ९१-९२; ९०। २३; १३। २५। १८-१९में भी इस (भृगुतुङ्ग)का उल्लेख है। टीकाकार पं० नीलकण्ठके अनुसार यह 'तुङ्गनाथ' है।' According to Nilkantha it is 'Tunganath' (Geog Dic. of Med. India P. 26)

† [illegible] १३ तथा 'विष्णुपुराण'के प्रथम अंशके १५ वें अध्यायमें भी है।

स्थाणु (ठूँठ)के समान निश्चल रहने लगी। अब उसके शरीरके दिव्य प्रकाशसे सारा संसार व्याप्त हो गया।

अब मैं उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ। नियन्त्रित इन्द्रियोंवाली उस कन्याके सामने स्वयं मैं नियन्त्रित-रूपसे प्रकट हुआ, अतः तबसे मैं 'हृषीकेश' नामसे यहाँ स्थित हुआ*। फिर मैंने उससे कहा— 'बाले! तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो कुछ बात हो, वह मुझसे वररूपमें माँग लो। अन्य किन्हीं व्यक्तियोंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा अदेय वर भी मैं तुम्हें इस समय देनेके लिये तत्पर हूँ।'

तब 'रुरु'नामकी उस दिव्य कन्याने मुझ श्रीहरिको बारंबार प्रणाम-स्तुति की और कहा—'जगत्पते! आप यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो देवाधिदेव! आप इसी रूपसे यहाँ विराजनेकी कृपा कीजिये।' तब मैंने उससे कहा—'बाले! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तो यहीं हूँ, अब तुम मुझसे कोई अन्य वर भी माँग लो।' इसपर उसने मुझे प्रणाम कर कहा—'देवेश! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो आप ऐसी कृपा करें कि यह क्षेत्र मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो जाय—इसके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है।' सुभगे! तब मैंने कहा—'देवि! ऐसा ही होगा, तुम्हारा यह शरीर सर्वोत्तम तीर्थ होगा और यह समस्त क्षेत्र भी तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। साथ ही जो मनुष्य इस तीर्थमें तीन रातोंतक निवास एवं स्नान करेगा, वह मेरे दर्शनसे पवित्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं। उसके जाने अनजाने किये गये सभी पाप नष्ट हो जायँगे—इसमें कोई संदेह नहीं।'

देवि! इस प्रकार 'रुरु'को वर देकर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया और वह भी समयानुसार पवित्र तीर्थ बन गयी। (अध्याय १४६)

'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ और उसका माहात्म्य

धरणीने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने रुरु-क्षेत्र हृषीकेशकी महिमाका वर्णन सुना। देवेश! अब जो अन्य पावन क्षेत्र हैं, उन्हें बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! हिमालय-पर्वतके शिखरपर मेरा एक क्षेत्र है, जिसका नाम है—'गोनिष्क्रमण', जहाँ पहले सुरभी आदि गौएँ समुद्रसे तरकर बाहर निकली थीं। बहुत पहले 'और्व'नामसे प्रसिद्ध एक प्रजापति थे, जिन्होंने यहाँ दीर्घकालतक निष्कामभावसे तपस्या की थी। वसुंधरे! कुछ दिनोंके बाद जिस ऊँचे पर्वतपर वे तपस्या कर रहे थे, फलों एवं फूलोंसे परिपूर्ण लक्ष्मी भी वहाँ प्रकट हो गयीं। अतः वहाँ कुछ और तपस्वी ब्राह्मण आ गये। इसी समय कहींसे घूमते हुए वहाँ महान् तेजस्वी भगवान् शंकर भी आ गये। एक बार और्व मुनि जब कुछ कमलपुष्पोंके लिये हरिद्वार गये थे कि महादेवने अपने उग्र तेजसे और्व मुनिके उस प्रिय आश्रम-को भस्म कर दिया और फिर वहाँसे यथाशीघ्र अपने वासस्थान हिमालयपर चले गये। देवि! ठीक उसी समय मुनिवर और्व पत्र-पुष्पकी टोकरी लिये हरिद्वारसे अपने उस आश्रमपर आ गये। यद्यपि मुनि शान्त एवं मृदु स्वभावके क्षमाशील एवं सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले थे, तथापि प्रभूत फूलों, फलों एवं जलोंसे सम्पन्न उस आश्रमको दग्ध हुआ देखकर वे क्रोधसे भर गये। दुःखके कारण उनकी आँखें डबडबा गयीं और क्रोधसे भरकर उन्होंने यह शाप दिया—'प्रचुर फूलों, फलों और उदकोंसे सम्पन्न मेरे इस आश्रमको जिसने जलाया है, वह भी दुःखसे

* हृषीकाणि नियम्याहं यतः प्रत्यक्षतां गतः। 'हृषीकेश' इति ख्यातो नाम्ना तत्रैव संस्थितः॥
(वराहपुरा० १४६।७२)

संतप्त होकर सारे संसारमें भटकता फिरेगा। फलतः भगवान् शंकर समस्त संसारके स्वामी होते हुए भी उसी क्षण व्याकुल हो उठे और उन्होंने उमा देवीसे कहा— 'प्रिये! और्व मुनिकी कठिन तपस्या देखकर देवसमुदायके हृदयमें आतङ्क छा गया था। इसलिये मुझसे उन्होंने प्रार्थना की कि 'भगवन्! अखिल जगत् जल रहा है। फिर भी वे (और्व) इससे बचानेके लिये कोई चेष्टा नहीं करते। हमारी प्रार्थना है कि आप उसके निवारणके लिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सबकी सुरक्षा हो सके।' जब देवताओंने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैंने और्वके आश्रमपर तृतीय नेत्रकी दृष्टि डाल दी, अतः उनका वह आश्रम भस्म हो गया। हमलोग तो वहाँसे बाहर निकल गये; किंतु आश्रमके जलनेसे और्वको महान् दुःख तथा संताप हुआ। शिवे! वे क्रोधसे भर उठे हैं और अब उनके रोषयुक्त शापसे हमारे मनमें भी बड़ी व्यथा हो रही है।'

वसुंधरे! फिर महाभाग शम्भुने अशान्त होकर इधर-उधर भ्रमण करना आरम्भ किया; किंतु किसी क्षण वे शान्त न रह सके। मैं भी उनके आत्मा होनेसे उस समय उनके दुःखसे दुःखी और संतप्त होकर निश्चेष्ट-सा हो गया। इधर पार्वतीने भगवान् शंकरसे कहा—'अब हम-लोग भगवान् नारायणके पास चलें। सम्भव है, उनकी वाणी और परामर्शसे हमें शान्ति मिल जाय। अथवा भगवान् नारायणको साथ ले फिर हम सभी और्वके पास चलें और उनसे प्रार्थना करें कि आपने जो शाप दिया है, उसे वापस कर लें; क्योंकि इससे हम [illegible] रहे हैं।'

[illegible] प्रकारके सभी प्रयत्न [illegible] मेरी बात कभी [illegible] मैं उद्यम करता

सकता है। सुरभि गायोंको लेकर [illegible] और ये गौएँ अपने दूधोंसे इनको [illegible] दी इस शापसे आप सब छूट जायँगे, [illegible]

वसुंधरे! उस अवसरपर मैंने [illegible] शान्तिनी सानन्तर सुरभि गायोंको [illegible] और उनके दूधसे सिक्त हो जानेपर रुद्र [illegible] जलन भी सदाके लिये शान्त हो गयी। [illegible] स्थानका नाम 'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ हो गया। मनुष्य वहाँ एक रात भी निवास एवं स्नान [illegible] है, वह 'गोलोक'में जाकर आनन्दका उपभोग [illegible] है। उत्तम धर्मके आचरण करनेके पश्चात् यदि [illegible] वहाँ (गोनिष्क्रमण-तीर्थमें) मृत्यु होती है तो वह [illegible] चक्र एवं गदासे सम्पन्न होकर मेरे लोकमें [illegible] पाता है।

यहाँ गौओंके मुखसे निकला हुआ एक [illegible] श्रुति-सुखद शब्द सुनायी पड़ता है। एक बार [illegible] मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको मैंने स्वयं [illegible] सुसंस्कृत शब्द सुना था, अतः इसमें कोई संदेह [illegible] करना चाहिये। ऐसा ही 'गोस्वरवट'-नामका [illegible] परम पवित्र क्षेत्र है। वहाँ मुझमें श्रद्धा रखनेवाले पवित्रात्मा पुरुषको शुभ कर्म करना चाहिये। उनके प्रभावसे वह पापोंसे यथाशीघ्र छूट जाता है। महाभागे! जिस समय शंकरको और्वमुनिका शाप लगा था और वे उससे जल रहे थे, तब वे मरुद्गणोंके साथ वहाँ गये तथा शापसे उनकी मुक्ति हो गयी। इसीसे इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है। यह 'गोस्वर' नामवाला क्षेत्र परम श्रेष्ठ एवं सब प्रकारसे शान्ति प्रदान करनेवाला है।

महाभागे! यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण मङ्गलोंको प्रदान करनेवाला और मेरे मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्तोंके श्रद्धाकी वृद्धि करनेवाला [illegible] यह श्रेष्ठोंमें परम श्रेष्ठ,

मङ्गलोंमें परम मङ्गल, लाभोंमें परम लाभ और धर्मोंमें उत्तम धर्म है। यशस्विनि! मेरे निर्दिष्ट पथके पथिक पुरुष इसका पाठ करनेके प्रभावसे तेज, शोभा, लक्ष्मी तथा सब मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं। मनस्विनि! इसके पाठक इस अध्यायमें जितने अक्षर हैं, उतने वर्षोंतक मेरे धाममें सुशोभित होते हैं। प्रतिदिन इसे पढ़नेवाले मानवका कभी पतन नहीं होता और उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। निन्दक, मूर्ख और दुष्टोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। इसके स्वाध्याय करनेकी योग्यतावाले पुत्र या शिष्यको ही इसे सुनाना चाहिये। वसुंधरे! पाँच योजनके विस्तारवाले इस क्षेत्रसे मेरा अतिशय प्रेम है। अतएव मैं यहाँ सदा निवास करता हूँ। यहाँ गङ्गाकी धारा पूर्व दिशासे होकर पश्चिम दिशामें विपरीत बहती है।* ऐसे गुह्य-रहस्यकी जानकारी सभी सत्कर्मोंमें सुख प्रदान करती है। महाभागे! यही वह गुप्त क्षेत्र है, जिसके विषयमें तुमने पूछा था। (अध्याय १४७)

स्तुतस्वामीका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो! गौओंकी महिमा बड़ी विचित्र है। इसे सुनकर मेरी सम्पूर्ण शङ्काएँ शान्त हो गयीं। नारायण! ऐसे ही अन्य भी कुछ गुप्त तीर्थोंको बतानेकी कृपा कीजिये। प्रभो! यदि इस क्षेत्रसे भी कोई विशिष्ट श्रेष्ठ क्षेत्र हो तो उसे भी सुनाइये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! अब मैं तुम्हें एक दूसरा क्षेत्र बताता हूँ, जिसका नाम है 'स्तुतस्वामी'। सुन्दरि! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ निवास करूँगा। उस समय श्रीवसुदेवजी मेरे पिता होंगे और देवकी माता; कृष्ण मेरा नाम होगा और उस समय मैं सभी असुरोंका संहार करूँगा। उस समय मेरे पाँच— शाण्डिल्य, जाजलि, कपिल, उपसायक और भृगु नामक धर्मनिष्ठ शिष्य होंगे और मैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें सदा प्रत्यक्ष रहूँगा। उस समय कुछ लोग इस चतुर्व्यूहकी उपासनासे, कुछ ज्ञानके प्रभावसे और कुछ व्यक्ति सत्कर्ममें परायण रहकर मुक्त होंगे। सुश्रोणि! जिनलोगोंको तो इच्छानुसार किया हुआ यज्ञ तथा बहुतोंको कर्मयोग इस संसारसे तार देता है। कुछ सज्जन योगका फल भोगकर मुझमें स्थित संसारको देखते हैं। मुझमें विधिपूर्वक निष्ठा रखनेवाले जितने मनुष्य सब जीवोंमें मेरा ही रूप देखते हैं। भूमे! बहुत-से पुरुष अखिल धर्मोंका आचरण करते, सब कुछ भोजन कर लेते और सभी पदार्थोंका विक्रय भी करते हैं, तब भी यदि उनका चित्त मुझमें एकाग्र रहा और वे उचित व्यवस्थामें लगे रहे, तो उन्हें मेरा दर्शन सुलभ हो जाता है।

देवि! यह वराहपुराण संसारसे उद्धार करनेके लिये परम साधन एवं महान् शास्त्र है। मेरे भक्तोंकी व्यवस्था ठीक रूपसे चल सके, इसलिये मैंने इस परम प्रिय प्रयोगका वर्णन किया है। शाण्डिल्यप्रभृति मेरे वे शिष्य इच्छानुसार इन साधनोंका प्रचार (प्रवचन) करेंगे।

मेरे इस 'स्तुतस्वामी' क्षेत्रसे लगभग पाँच कोसकी दूरीपर पश्चिम दिशामें एक कुण्ड है। उसका जल मुझे बहुत प्रिय लगता है। उस अगाध जलवाले सरोवरका पानी स्वर्ग अथवा मरकतमणिके समान चमकता है। मेरे इस सरोवरमें पाँच दिनोंतक स्नान करनेसे मनुष्यके सभी पाप धुल जाते हैं। इसके समीप ही 'धूतपाप' नामक तीर्थ है, जो मणिपुरगिरिके ऊपर है। वहाँ निवास करनेवाले प्राणीपर तबतक जलधारा नहीं गिरती, जबतक उसके सभी पाप समाप्त न हो जायँ। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। सुश्रोणि! सम्पूर्ण पापोंके

* अनुमानतः यह स्थान श्रृङ्गिबेरके ऊपर ब्यासघाटसे कुछ दूर आगे है।

संतप्त होकर सारे संसारको जलाने लगी । फलतः भगवान् शंकर समस्त संसारके स्वामी होते हुए भी उसी क्षण व्याकुल हो उठे और उन्होंने उमा देवीसे कहा—'प्रिये! और्व मुनिकी कठिन तपस्या देखकर देवसमुदायके हृदयमें आतङ्क छा गया था । इसलिये मुझसे उन्होंने प्रार्थना की कि 'भगवन्! अखिल जगत् जल रहा है । फिर भी ये (और्व) इसको बचानेके लिये कोई चेष्टा नहीं करते । हमारी प्रार्थना है कि आप उसके निवारणके लिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सबकी सुरक्षा हो सके ।' जब देवताओंने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैंने औरके आश्रमपर तृतीय नेत्रकी दृष्टि डाल दी, अतः उनका वह आश्रम भस्म हो गया । हमलोग तो वहाँसे बाहर निकल गये; किंतु आश्रमके जलनेसे और्वको महान् दुःख तथा संताप हुआ । प्रिये ! वे क्रोधसे भर उठे हैं और अब उनके रोषयुक्त शापसे हमारे मनमें भी बड़ी व्यथा हो रही है ।'

वसुंधरे ! फिर महाभाग शम्भुने अशान्त होकर इधर-उधर भ्रमण करना आरम्भ किया; किंतु किसी क्षण वे शान्त न रह सके । मैं भी उनके आत्मा होनेसे उस समय उनके दुःखसे दुःखी और संतप्त होकर निश्चेष्ट-सा हो गया । इधर पार्वतीने भगवान् शंकरसे कहा—'अब हम-लोग भगवान् नारायणके पास चलें । सम्भव है, उनकी वाणी और परामर्शसे हमें शान्ति मिल जाय । अथवा भगवान् नारायणको साथ ले फिर हम सभी और्वके पास चलें और उनसे प्रार्थना करें कि आपने जो शाप दिया है, उसे वापस कर लें; क्योंकि इससे हम सभी जल रहे हैं ।'

देवि ! फिर उस समय इस प्रकारके सभी प्रयत्न किये गये, किंतु और्वने उत्तर दिया—'मेरी बात कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती । हाँ, मैं उपाय बतला सकता हूँ, सुरभि गायोंके ऊपर आप सब लोग जायँ और ये गौएँ अपने दूधोंसे इसको स्नान करायें तो फिर ही इस शापसे आप सब छूट जायँगे, इसमें संदेह नहीं ।'

वसुंधरे ! उस अवसरपर मैंने महान् ईश शम्भुको तत्पश्चात् सुरभि गायोंके स्तनोंसे नीचे उन और उनके दूधसे सिक्त होनेपर रुद्र एवं अन्य सबकी जलन भी सदाके लिये शान्त हो गयी । तबसे उस स्थानका नाम 'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ हो गया । जो मनुष्य वहाँ एक रात भी नियम एवं स्नान करता है, वह 'गोलोक'में जाकर आनन्दका उपभोग करता है । उत्तम धर्मके आचरण करनेके पश्चात् यदि उसकी वहाँ (गोनिष्क्रमण-तीर्थमें) मृत्यु होती है तो वह शङ्ख, चक्र एवं गदासे सम्पन्न होकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ।

यहाँ गौओंके मुखसे निकला हुआ एक अत्यन्त श्रुति-सुखद शब्द सुनायी पड़ता है । एक बार ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको मैंने स्वयं ऐसा सुसंस्कृत शब्द सुना था, अतः इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये । ऐसा ही 'गोस्थलक'-नामक एक परम पवित्र क्षेत्र है । वहाँ मुझमें श्रद्धा रखनेवाले पवित्रात्मा पुरुषको शुभ कर्म करना चाहिये । उसके प्रभावसे वह पापोंसे यथाशीघ्र छूट जाता है । महाभागे ! जिस समय शंकरको और्वमुनिका शाप लगा था और वे उससे जल रहे थे, तब वे मरुद्गणोंके साथ वहाँ गये तथा शापसे उनकी मुक्ति हो गयी, इसीसे इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है । यह 'गोस्थलक' नामवाला क्षेत्र परम श्रेष्ठ एवं सब प्रकारसे शान्ति प्रदान करनेवाला है ।

महाभागे ! यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण मङ्गलोंको प्रदान करनेवाला और मेरे मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्तोंमें श्रद्धाकी वृद्धि करनेवाला है । यह श्रेष्ठोंमें परम श्रेष्ठ,

मङ्गलोंमें परम मङ्गल, लाभोंमें परम लाभ और धर्मोंमें उत्तम धर्म है। यशस्विनि! मेरे निर्दिष्ट पथके पथिक पुरुष इसका पाठ करनेके प्रभावसे तेज, शोभा, लक्ष्मी तथा सब मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं। मनस्विनि! इसके पाठक इस अध्यायमें जितने अक्षर हैं, उतने वर्षोंतक मेरे धाममें सुशोभित होते हैं। प्रतिदिन इसे पढ़नेवाले मानवका कभी पतन नहीं होता और उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। निन्दक, मूर्ख और दुष्टोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। इसके स्वाध्याय करनेकी योग्यतावाले पुत्र या शिष्यको ही इसे सुनाना चाहिये। वसुंधरे! पाँच योजनके विस्तारवाले इस क्षेत्रसे मेरा अतिशय प्रेम है। अतएव मैं यहाँ सदा निवास करता हूँ। यहाँ गङ्गाकी धारा पूर्व दिशासे होकर पश्चिम दिशामें विपरीत बहती है।* ऐसे गुप्त-रहस्यकी जानकारी सभी सत्कर्मोंमें सुख प्रदान करती है। महाभागे! यही वह गुप्त क्षेत्र है, जिसके विषयमें तुमने पूछा था। (अध्याय १४७)

स्तुतस्वामीका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो! गौओंकी महिमा बड़ी विचित्र है। इसे सुनकर मेरी सम्पूर्ण शङ्काएँ शान्त हो गयीं। नारायण! ऐसे ही अन्य भी कुछ गुप्त तीर्थोंको बतानेकी कृपा कीजिये। प्रभो! यदि इस क्षेत्रसे भी कोई विशिष्ट श्रेष्ठ क्षेत्र हो तो उसे भी सुनाइये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! अब मैं तुम्हें एक दूसरा क्षेत्र बताता हूँ, जिसका नाम है 'स्तुतस्वामी'। सुन्दरि! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ निवास करूँगा। उस समय श्रीवसुदेवजी मेरे पिता होंगे और देवकी माता; कृष्ण मेरा नाम होगा और उस समय मैं सभी असुरोंका संहार करूँगा। उस समय मेरे पाँच—शाण्डिल्य, जाजलि, कपिल, उपसायक और भृगु नामक धर्मनिष्ठ शिष्य होंगे और मैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें सदा प्रत्यक्ष रहूँगा। उस समय कुछ लोग इस चतुर्व्यूहकी उपासनासे, कुछ ज्ञानके प्रभावसे और कुछ व्यक्ति सत्कर्ममें परायण रहकर मुक्त होंगे। सुश्रोणि! कितनोंको तो इच्छानुसार किया हुआ यज्ञ तथा बहुतोंको कर्मयोग इस संसारसे तार देता है। कुछ सज्जन योगका फल भोगकर मुझमें स्थित संसारको देखते हैं। मुझमें विधिपूर्वक निष्ठा रखनेवाले कितने मनुष्य सब जीवोंमें मेरा ही रूप देखते हैं। भूमे! बहुत-से पुरुष अखिल धर्मोंका आचरण करते, सब कुछ भोजन कर लेते और सभी पदार्थोंका विक्रय भी करते हैं, तब भी यदि उनका चित्त मुझमें एकाग्र रहा और वे उचित व्यवस्थामें लगे रहे, तो उन्हें मेरा दर्शन सुलभ हो जाता है।

देवि! यह वराहपुराण संसारसे उद्धार करनेके लिये परम साधन एवं महान् शास्त्र है। मेरे भक्तोंकी व्यवस्था ठीक रूपसे चल सके, इसलिये मैंने इस परम प्रिय प्रयोगका वर्णन किया है। शाण्डिल्यप्रभृति मेरे वे शिष्य इच्छानुसार इन साधनोंका प्रचार (प्रवचन) करेंगे।

मेरे इस 'स्तुतस्वामी' क्षेत्रसे लगभग पाँच कोसकी दूरीपर पश्चिम दिशामें एक कुण्ड है। उसका जल मुझे बहुत प्रिय लगता है। उस अगाध जलवाले सरोवरका पानी स्वर्ण अथवा मरकतमणिके समान चमकता है। मेरे इस सरोवरमें पाँच दिनोंतक स्नान करनेसे मनुष्यके सभी पाप धुल जाते हैं। इसके समीप ही 'धूतपाप' नामक तीर्थ है, जो मणिपुरगिरिके ऊपर है। वहाँ निवास करनेवाले प्राणीपर तबतक जल-धारा नहीं गिरती, जबतक उसके सभी पाप समाप्त न हो जायँ। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। सुश्रोणि! सम्पूर्ण पापोंके

* अनुमानतः यह स्थान ऋषिकेशके ऊपर व्यासघाटसे कुछ दूर आगे है।

संतप्त होकर सारे संसारमें भटकता फिरेगा। फलतः भगवान् शंकर समस्त संसारके स्वामी होते हुए भी उसी क्षण व्याकुल हो उठे और उन्होंने उमा देवीसे कहा—'प्रिये! और्व मुनिकी कठिन तपस्या देखकर देवसमुदायके हृदयमें आतङ्क छा गया था। इसलिये मुझसे उन्होंने प्रार्थना की कि 'भगवन्! अखिल जगत् जल रहा है। फिर भी वे (और्व) इससे बचानेके लिये कोई चेष्टा नहीं करते। हमारी प्रार्थना है कि आप उसके निवारणके लिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सबकी सुरक्षा हो सके।' जब देवताओंने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैंने और्वके आश्रमपर तृतीय नेत्रकी दृष्टि डाल दी, अतः उनका वह आश्रम भस्म हो गया। हमलोग तो वहाँसे बाहर निकल गये; किंतु आश्रमके जलनेसे और्वको महान् दुःख तथा संताप हुआ। शिवे! वे क्रोधसे भर उठे हैं और अब उनके रोषयुक्त शापसे हमारे मनमें भी बड़ी व्यथा हो रही है।'

वसुंधरे! फिर महाभाग शम्भुने अशान्त होकर इधर-उधर भ्रमण करना आरम्भ किया; किंतु किसी क्षण वे शान्त न रह सके। मैं भी उनके आत्मा होनेसे उस समय उनके दुःखसे दुःखी और संतप्त होकर निश्चेष्ट-सा हो गया। इधर पार्वतीने भगवान् शंकरसे कहा—'अब हमलोग भगवान् नारायणके पास चलें। सम्भव है, उनकी वाणी और परामर्शसे हमें शान्ति मिल जाय। अथवा भगवान् नारायणको साथ ले फिर हम सभी और्वके पास चलें और उनसे प्रार्थना करें कि आपने जो शाप दिया है, उसे वापस कर लें; क्योंकि इससे हम सभी जल रहे हैं।'

देवि! फिर उस समय इस प्रकारके सभी प्रयत्न किये गये, किंतु और्वने उत्तर दिया—'मेरी बात कभी भी निष्फल नहीं हो सकती। हाँ, मैं उपाय बतला सकता हूँ, सुरभि गायोंको लेकर आप लोग यहाँ जायँ। और ये गौएँ अपने दूधोंसे रुद्रको स्नान करायें तो निश्चय ही इस शापसे आप सब छूट जायँगे, इसमें संदेह नहीं।'

कल्याणि! उस अवसरपर मैंने महान् शक्तिशालिनी सतहत्तर सुरभि गायोंको स्वर्गसे नीचे उतारा और उनके दूधसे सिक्त हो जानेपर रुद्र एवं अन्य सबोंकी जलन भी सदाके लिये शान्त हो गयी। तबसे उस स्थानका नाम 'गोनिष्क्रमण'-तीर्थ हो गया। जो मनुष्य वहाँ एक रात भी निवास एवं स्नान करता है, वह 'गोलोक'में जाकर आनन्दका उपभोग करता है। उत्तम धर्मके आचरण करनेके पश्चात् यदि उसकी वहाँ (गोनिष्क्रमण-तीर्थमें) मृत्यु होती है तो वह शङ्ख, चक्र एवं गदासे सम्पन्न होकर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

यहाँ गौओंके मुखसे निकला हुआ एक अत्यन्त श्रुति-सुखद शब्द सुनायी पड़ता है। एक बार ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको मैंने स्वयं ऐसा सुसंस्कृत शब्द सुना था, अतः इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। ऐसा ही 'गोस्थलक'-नामक एक परम पवित्र क्षेत्र है। वहाँ मुझमें श्रद्धा रखनेवाले पवित्रात्मा पुरुषको शुभ कर्म करना चाहिये। उसके प्रभावसे वह पापोंसे यथाशीघ्र छूट जाता है। महाभागे! जिस समय शंकरको और्वमुनिका शाप लगा था और वे उससे जल रहे थे, तब वे मरुद्गणोंके साथ वहाँ गये तथा शापसे उनकी मुक्ति हो गयी, इसीसे इस क्षेत्रकी ऐसी महिमा है। यह 'गोस्थलक' नामवाला क्षेत्र परम श्रेष्ठ एवं सब प्रकारसे शान्ति प्रदान करनेवाला है।

महाभागे! यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण मङ्गलोंको प्रदान करनेवाला और मेरे मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्तोंमें श्रद्धाकी वृद्धि करनेवाला है। यह श्रेष्ठोंमें परम श्रेष्ठ,

मङ्गलोंमें परम मङ्गल, लाभोंमें परम लाभ और धर्मोंमें उत्तम धर्म है। यशस्विनि! मेरे निर्दिष्ट पथके पथिक पुरुष इसका पाठ करनेके प्रभावसे तेज, शोभा, लक्ष्मी तथा सब मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं। मनस्विनि! इसके पाठक इस अध्यायमें जितने अक्षर हैं, उतने वर्षोंतक मेरे धाममें सुशोभित होते हैं। प्रतिदिन इसे पढ़नेवाले मानवका कभी पतन नहीं होता और उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। निन्दक, मूर्ख और दुष्टोंके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। इसके स्वाध्याय करनेकी योग्यतावाले पुत्र या शिष्यको ही इसे सुनाना चाहिये। वसुंधरे! पाँच योजनके विस्तारवाले इस क्षेत्रसे मेरा अतिशय प्रेम है। अतएव मैं यहाँ सदा निवास करता हूँ। यहाँ गङ्गाकी धारा पूर्व दिशासे होकर पश्चिम दिशामें विपरीत बहती है।* ऐसे गुह्य-रहस्यकी जानकारी सभी सत्कर्मोंमें सुख प्रदान करती है। महाभागे! यही वह गुप्त क्षेत्र है, जिसके विषयमें तुमने पूछा था। (अध्याय १४७)

स्तुतस्वामीका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—जगत्प्रभो! गौओंकी महिमा बड़ी विचित्र है। इसे सुनकर मेरी सम्पूर्ण शङ्काएँ शान्त हो गयीं। नारायण! ऐसे ही अन्य भी कुछ गुप्त तीर्थोंको बतानेकी कृपा कीजिये। प्रभो! यदि इस क्षेत्रसे भी कोई विशिष्ट श्रेष्ठ क्षेत्र हो तो उसे भी सुनाइये।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! अब मैं तुम्हें एक दूसरा क्षेत्र बताता हूँ, जिसका नाम है 'स्तुतस्वामी'। सुन्दरि! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ निवास करूँगा। उस समय श्रीवसुदेवजी मेरे पिता होंगे और देवकी माता; कृष्ण मेरा नाम होगा और उस समय मैं सभी असुरोंका संहार करूँगा। उस समय मेरे पाँच—शाण्डिल्य, जाबलि, कपिल, उपसायक और भृगु नामक धर्मनिष्ठ शिष्य होंगे और मैं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंमें सदा प्रत्यक्ष रहूँगा। उस समय कुछ लोग इस चतुर्व्यूहकी उपासनासे, कुछ ज्ञानके प्रभावसे और कुछ व्यक्ति सत्कर्ममें परायण रहकर मुक्त होंगे। सुश्रोणि! कितनोंको तो इच्छानुसार किया हुआ यज्ञ तथा बहुतोंको कर्मयोग इस संसारसे तार देता है। कुछ सज्जन योगका फल भोगकर मुझमें स्थित संसारको देखते हैं। मुझमें विधिपूर्वक निष्ठा रखनेवाले कितने मनुष्य सब जीवोंमें मेरा ही रूप देखते हैं। भूमे! बहुत-से पुरुष अखिल धर्मोंका आचरण करते, सब कुछ भोजन कर लेते और सभी पदार्थोंका विक्रय भी करते हैं, तब भी यदि उनका चित्त मुझमें एकाग्र रहा और वे उचित व्यवस्थामें लगे रहे, तो उन्हें मेरा दर्शन सुलभ हो जाता है।

देवि! यह वराहपुराण संसारसे उद्धार करनेके लिये परम साधन एवं महान् शास्त्र है। मेरे भक्तोंकी व्यवस्था ठीक रूपसे चल सके, इसलिये मैंने इस परम प्रिय प्रयोगका वर्णन किया है। शाण्डिल्यप्रभृति मेरे वे शिष्य इच्छानुसार इन साधनोंका प्रचार (प्रवचन) करेंगे।

मेरे इस 'स्तुतस्वामी' क्षेत्रसे लगभग पाँच कोसकी दूरीपर पश्चिम दिशामें एक कुण्ड है। उसका जल मुझे बहुत प्रिय लगता है। उस अगाध जलवाले सरोवरका पानी स्वर्ग अथवा मरकतमणिके समान चमकता है। मेरे इस सरोवरमें पाँच दिनोंतक स्नान करनेसे मनुष्यके सभी पाप धुल जाते हैं। इसके समीप ही 'धूतपाप' नामक तीर्थ है, जो मणिपुरगिरिके ऊपर है। वहाँ निवास करनेवाले प्राणीपर तबतक जरा-मरण नहीं मिलती, जबतक उसके सभी पाप समाप्त न हो जायँ। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। सुश्रोणि! सम्पूर्ण पापोंक

* अनुमानतः यह स्थान ऋषिकेशके ऊपर ब्यासघाटसे कुछ दूर आगे है।

शरीरसे निकल गये तो फिर वह वहाँसे मेरे धाममें पहुँच जाता है। उसी द्वारकाक्षेत्रमें हंसकुण्डनामसे विख्यात एक तीर्थ है, जहाँ 'मणिपूर' पर्वतसे होकर एक धारा गिरती है। उस तीर्थमें छः दिनोंतक रहकर स्नान करनेकी बड़ी महिमा है। महाभागे! इसमें स्नान करनेवाला उससे आसक्तिरहित होकर वरुणलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। वरानने! यदि उस 'हंसतीर्थ'में वह अपने पाञ्चभौतिक शरीरका त्याग करता है तो वरुणलोकका परित्याग कर मेरे लोकमें पहुँचकर प्रतिष्ठा पाता है। उसी प्रसिद्ध द्वारका-क्षेत्रमें 'कदम्ब' नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। यह वह स्थान है, जहाँ वृष्णिकुलके शुद्ध व्यक्ति मेरे धाम सिधारे थे। मनुष्यको चाहिये कि चार राततक वहाँ निवास करके मेरा अभिषेक करे। ऐसा करनेसे वह पुण्यात्मा पुरुष निःसंदेह ऋषियोंके लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

वसुंधरे! मेरे उसी द्वारकाक्षेत्रमें 'चक्रतीर्थ' नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ मणिपूर पर्वतसे होती हुई पाँच धाराएँ गिरती हैं। पाँच दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करनेवाला मनुष्य दस हजार वर्षोंतक स्वर्गमें सुख भोगता है। लोभ और मोहसे मुक्त होकर मानव यदि वहाँ प्राण छोड़ता है तो सम्पूर्ण आसक्तियोंका परित्याग कर वह मेरे धाममें चला जाता है। उसी द्वारकाक्षेत्रमें एक 'रैवतक' नामक तीर्थ है, जहाँ मैं लीला करता हूँ, वह स्थान समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध है। बहुत-सी लताएँ, वल्लरियाँ और फल उसकी छवि छिटकाते रहते हैं। उसके दसों दिशाओंमें अनेक वर्णवाले पत्थर तथा गुहाएँ हैं और वह घाटियों तथा कन्दराओंसे भी युक्त है तथा देवसमुदायके लिये भी दुर्लभ है। मनुष्यको छः दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करना चाहिये। फिर तो वह कृतार्थ होकर निर्भय हो चन्द्रमाके लोकमें चला जाता है। मेरी पूजामें निरत वह पुरुष यदि वहाँ प्राणोंका त्याग करता है तो उस लोकसे मेरे धाममें निवास करने चला जाता है। महाभागे! वहाँकी भी एक अलौकिक बात बतलाता हूँ, सुनो। धर्मके अभिलाषी प्रायः सभी पुरुष वह दृश्य देख सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। वहाँ सम्पूर्ण वृक्षोंके बहुत-से पत्ते गिरते हैं, किंतु एक भी पत्ता किसीको दिखायी नहीं पड़ता। सभी पत्ते विमल जलमें चले जाते हैं। एक विशाल वृक्ष मेरे पूर्व भागमें है तथा इसके अतिरिक्त कुछ वृक्ष मेरे पार्श्वभागमें हैं। देवतालोग भी इन वृक्षोंका दर्शन करनेमें असमर्थ हैं। पाँच कोसका विस्तारवाला यह स्थान तथा महान् वृक्ष अत्यन्त शोभनीय हैं। सुन्दर गन्धवाले पद्म एवं उत्पल उसे चारों ओरसे घेरे हुए हैं। बहुत-सी मछलियाँ और जलोंसे पूर्ण तालाब भी उसके सभी भागोंमें हैं। मनुष्यको आठ दिनोंतक वहाँ रहकर अभिषेक करना चाहिये। इसमें स्नान करनेवाला अप्सराओंसे युक्त दिव्य नन्दनवनमें विहार करता है।

वसुंधरे! मेरे इस द्वारका-क्षेत्रमें 'विष्णुसंक्रम' नामक एक स्थान है, जहाँ 'जरा'नामक व्याधने मुझे अपने बाणसे मारा था। मैंने वहाँ पुनः अपनी मूर्तिकी स्थापना कर दी है। महाभागे! वहाँ एक कुण्ड भी है। यह स्थान 'मणिपूर पर्वत'पर है, ऐसा सुना जाता है। वहाँ एक धारा गिरती है। लाभ एवं हानिसे निश्चिन्त होकर वहाँ निवास करनेवाला मनुष्य सूर्यलोकका उल्लङ्घन कर मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

देवि! दसों दिशाओंमें चारों ओर फैला हुआ यह मेरा 'द्वारकाक्षेत्र' तीस योजनके प्रमाणमें है। वरारोहे! वहाँ जो पुण्यात्मा मनुष्य मेरा भक्तिपूर्वक दर्शन करेंगे, उन्हें बहुत शीघ्र ही परम गति प्राप्त हो जायगी। यह प्रसङ्ग आख्यानोंमें महान् आख्यान, शान्तियोंमें परम शान्ति, धर्मोंमें परम धर्म, द्युतियोंमें परम द्युति, लाभोंमें परम लाभ, क्रियाओंमें परम क्रिया, शुचियोंमें परम शुचि तथा तपस्याओंमें परम तपस्या है। भद्रे! जो

नष्ट हो जानेपर ही प्राणीपर धारा वहाँ गिरती है। ऐसे ही वहाँ एक पीपलका वृक्ष भी है।

पृथ्वी बोली—भगवन्! आप ही 'स्तुतस्वामी' हैं मैंने ऐसी बात सुनी है। अब इस 'स्तुतस्वामी' नामसे आपका अभिप्राय क्या है? इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! जब मैं 'मणिपूर' नामक स्थानपर था, उस समय मन्त्रोंके प्रवचन करनेवाले ब्रह्मा आदि बहुत-से देवतालोग मेरी स्तुति करने लगे। परम सौभाग्यवती देवि! इसी कारण नारद, असित, देवल तथा पर्वत नामवाले मुनिगणोंने भक्तिसे सम्पन्न होकर उस समय उस 'मणिपूर'-पर्वतपर मेरा नाम 'स्तुतस्वामी' रखा। तबसे मेरे सत्कर्मसे सम्बन्धित मेरा यह 'स्तुतस्वामी' नाम विख्यात हुआ। भद्रे! मैंने तुमसे अखिल धर्मोंको आश्रय देनेवाला यह 'श्रीस्तुतिस्वामीका माहात्म्य' बतलाया। अब तुम दूसरा कौन प्रश्न पूछना चाहती हो, यह बतलाओ। (अध्याय १४८)

द्वारका-माहात्म्य

पृथ्वी बोली—भगवन्! देवेश्वर! आपकी कृपासे 'स्तुतस्वामी'के माहात्म्य सुननेका सौभाग्य मिला है। कृपानिधे! अब इन स्तुतस्वामीके गुण एवं माहात्म्य मुझे सुनानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! द्वापरयुगमें यादवोंके कुलमें कुलोद्धारक 'शौरि-वसुदेव' नामसे मेरे पिता होंगे। उस समय विश्वकर्माद्वारा निर्मित दिव्य पुरी द्वारकामें मैं पाँच सौ वर्षोंतक निवास करूँगा। उन्हीं दिनों दुर्वासा नामसे विख्यात एक ऋषि होंगे, जो मेरे कुलको शाप दे देंगे। पृथ्वि! उन ऋषिके शापसे संतप्त होनेके कारण वृष्णि, अन्धक एवं भोज-कुलके सभी व्यक्तियोंका संहार हो जायगा। उसी समय जाम्बवती नामवाली मेरी एक प्रिय पत्नी होगी। वह मेरे सुखकी साधिका बनेगी। उससे एक महान् भाग्यशाली पुत्रका जन्म होगा। रूप एवं यौवनका गर्व करनेवाला मेरा वह परम सुन्दर पुत्र साम्ब नामसे विख्यात होगा, जो मुझे प्रिय होगा।

अब मैं वैष्णव पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले द्वारकाके स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। 'पञ्चसर' नामसे विख्यात मेरा एक गुप्त क्षेत्र है। समुद्रके तटसे कुछ दूर जाकर मेरे कर्ममें (भक्तिमें) संलग्न मानवको सुखी बनानेवाले उस क्षेत्रमें छः दिनोंतक निवासकर स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप स्नान करनेवाला मनुष्य अप्सराओंसे भरे हुए स्वर्गलोकमें आनन्दका उपभोग करता है। उस 'पञ्चसर'धाममें प्राण-त्याग करनेवाला मनुष्य मेरे लोक (वैकुण्ठ)में प्रतिष्ठा पाता है। वहीं समुद्रमें मकरकी आकृतिवाला एक स्थान है, जहाँ अनेक मगरमच्छ इधर-उधर घूमते हुए दिखलायी पड़ते हैं, पर जलमें स्नान करनेवाले व्यक्तियोंके प्रति वे कुछ भी अपराध नहीं करते। मानव उस विमल जलमें जब पिण्डोंको फेंकते हैं तो उन्हें दूर रहनेपर भी वे झपटकर ले लेते हैं, परंतु बिना दिये वे उन्हें नहीं लेते। इसी प्रकार यदि कोई पापी मनुष्य जलमें पिण्ड देता है, तो उसे वे नहीं लेते, किंतु धर्मात्मा पुरुषोंके फेंके हुए पिण्डोंको वे ग्रहण कर लेते हैं।

देवि! मेरे इस द्वारकाक्षेत्रमें 'पञ्चपिण्ड' नामसे प्रसिद्ध एक गुप्त स्थान है, उसमें अगाध जल है। उसे पार करना सभीके लिये कठिन है। वह एक कोसके विस्तारमें फैला है। मनुष्य पाँच रात वहाँ रहकर मेरा अभिषेक करे। इससे वह इन्द्रके लोकमें निःसंदेह आनन्द भोगता है। यशस्विनि! यदि वहाँ उसके प्राण

सुशोभित है। देवि! वह पावन स्थल समुद्रके तटपर है। मैं वहाँ शाल्मली वृक्षके नीचे निवास करता हूँ। वहाँ पाँच दिनोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप मनुष्य ऋषिलोकमें जाकर अरुन्धतीका दर्शन कर सकता है। यदि मेरे शुद्ध सत्कर्ममें संलग्न रहता हुआ वह पुरुष अपने प्राणोंका त्याग करता है, तो ऋषिलोकको छोड़कर मेरे स्थानमें पहुँच जाता है। महाभागे! इसकी एक आश्चर्यमयी बात यह है कि यहाँ जो मुझे एक बार प्रणाम करता है, वह बारह वर्षोंतक किये गये नमस्कारके फलका भागी हो जाता है। इस शूर्पारक*-क्षेत्रमें निष्ठावान् पुरुष ही मेरा दर्शन कर पाते हैं, मायासे मोहित व्यक्ति मुझे नहीं देख पाते।

महाभागे! इसी 'सानन्दूर'क्षेत्रमें मेरा एक परम गुप्त स्थान है। वायव्य (पश्चिम और उत्तरके) कोणमें विराजमान उस क्षेत्रका नाम 'जटाकुण्ड' है। प्रिये! चारों ओर वह दस योजनतक फैला है। यह स्थान मलयाचलके दक्षिण और समुद्रके उत्तर भागमें है। यहाँ रहकर मानवको पाँच दिनोंतक स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर निश्चय ही आनन्दपूर्वक निवास कर सकता है। यदि मेरा चिन्तन करता हुआ मानव वहाँ प्राण-विसर्जन करता है, तो वह उस स्थानको छोड़कर मेरे लोकमें जानेका पूर्ण अधिकारी बन जाता है। सुश्रोणि! उस कुण्डकी नौ धाराएँ हैं।

भद्रे! यह 'सानन्दूर' क्षेत्रकी महिमाका मैंने वर्णन किया। इसे सुननेसे भगवान् श्रीहरिमें भक्ति और श्रद्धा बढ़ती है। यह क्षेत्र गुह्योंमें परम गुह्य और स्थानोंमें सर्वोत्तम स्थान है। सुश्रोणि! नौ प्रकारकी भक्तियोंमें संलग्न जो व्यक्ति इस 'सानन्दूर'क्षेत्रमें जाता है, उसे मेरे कथनानुसार परमसिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रसन्नताके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसके अठारह पीढ़ीके पूर्व पुरुष तर जाते हैं। (अध्याय १५०)

लोहार्गल-क्षेत्रका माहात्म्य

पृथ्वी बोली—विष्णो! आप जगत्के स्वामी हैं। मैं आपके मुखसे 'सानन्दूर'क्षेत्रकी परम उत्तम एवं रहस्यपूर्ण महिमा सुन चुकी। इसके सुननेसे मुझे परम शान्ति प्राप्त हुई। यदि इससे भिन्न और कोई सुखदायी गुप्त क्षेत्र हो, तो मैं उसे भी जानना चाहती हूँ, आप कृपया उसे भी बतलायें।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मैं अब तत्परतापूर्वक एक दूसरे गुप्त क्षेत्रका प्रसङ्ग बताता हूँ, सुनो। 'मिश्रक' नामक स्थानसे तीस योजनकी दूरीपर म्लेच्छोंका देश है, जिसके मध्य दक्षिण भागमें हिमालयपर्वत स्थित है। वहीं मेरा 'लोहार्गल'† नामसे प्रसिद्ध एक गुप्त क्षेत्र है। वह पंद्रह आयामका क्षेत्र चारों ओर पाँच योजनतक फैला है। चतुर्दिक् वेष्टित वह स्थान पापियोंके लिये दुर्गम एवं दुःसह है, पर जो सदा मेरे चिन्तनमें तत्पर रहते हैं और जिनका सारा समय पुण्यकार्यमें लगता है, उनके लिये यह परम सुलभ है। भद्रे! उस स्थानके उत्तर दिशामें मैं निवास करता हूँ। वहीं सुवर्णमयी मेरी प्रधान प्रतिमा है।

वसुंधरे! एक समय मेरे उस उत्तम स्थानपर सम्पूर्ण दानवोंने आक्रमण कर दिया। मायाके बलसे

* शूर्पारक-क्षेत्र आजका बम्बई नगरका 'सोपारा' स्थान है। इसका महाभारत १०।७९।२० तथा [illegible] २।३१। ६५; ३। ८५। ४३; ११८। ८; १२। ४९। ६६-७, [illegible] ४। १२८ आदिमें भी वर्णन आता है। [illegible] पाश्चात्य लोगोंने [illegible] भी उल्लेख मिलता है।

† इसका वर्णन अ० १४०।५ आदिमें भी आया है, यह लोहागर्ल [illegible] 'लोहार्गल' है। देखिये पृष्ठ २१९ की टिप्पणी।

'Lohaglat in Kumaon, 3 miles north to the champawat, on the river Loha.' (N. L. Dey. Geog. Dic. of Anc. & Med. India. P. 115)

मानव प्रातःकाल उठकर इसका अध्ययन करता है, वह अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। देवि ! द्वारका-क्षेत्रके इस पुनीत प्रसङ्गको मैंने तुम्हें सुना दिया। अब उचित एवं लोकोपकारी अन्य कोई प्रसङ्ग तुम पूछना चाहती हो तो पूछो।

(अध्याय १४८)

सानन्दूर-माहात्म्य

पृथ्वी बोली—प्रभो ! आपने कृपापूर्वक मुझे द्वारका-माहात्म्यका वर्णन सुनाया। इस परम पवित्र विषयको सुननेसे मैं कृतकृत्य हो गयी। जगत्प्रभो ! यदि इससे भी अधिक कोई गुह्य प्रसङ्ग हो तो वह भी मैं सुनना चाहती हूँ। जनार्दन ! यदि मुझपर आपकी अपार दया हो, तो वह भी कहनेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! 'सानन्दूर' नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम गुप्त निवासस्थल है। यह क्षेत्र समुद्रसे उत्तर और मलयगिरिसे दक्षिणकी ओर है। वहाँ मेरी एक मध्यम प्रमाणकी अत्यन्त आश्चर्यमयी प्रतिमा है। जिसे कुछ लोग लोहेकी, कुछ लोग ताँबेकी और कितने व्यक्ति कांस्य (काँसा)धातुसे निर्मित समझते हैं तथा कुछ लोग कहते हैं कि यह सीसेकी बनी है। मेरी उस प्रतिमाको अन्य व्यक्ति प्रस्तरकी बनी हुई भी कहते हैं। भूमे ! अब वहाँके स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। यशस्विनि ! इस 'सानन्दूर' नामक मेरे क्षेत्रकी ऐसी महिमा है कि वहाँ जानेवाले मानव संसार-सागरसे पार हो जाते हैं।

वरानने ! 'सानन्दूर' क्षेत्रमें संगमन नामका एक मेरा परम उत्तम गुह्य क्षेत्र है। प्रिये ! राम और समुद्रके समागमका वह स्थान है। महाभागे ! वहाँ स्वच्छ जल-वाला एक कुण्ड है। बहुत-सी वल्लरियों, लताओं और पक्षियोंसे उसकी विचित्र शोभा होती है। समुद्रके संनिकटमें ही कुछ योजन दूरीपर वह स्थान है। अनेक सुगन्धित उत्तम कुमुद एवं कमलके पुष्प उसकी सदा मनोहरता बढ़ाते रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि वहाँ छः दिनोंतक निवास एवं अवगाहन करे। इसके प्रभावसे वह कुछ समय समुद्रके भवनमें रहकर मेरे धाममें चला जाता है।

सुमध्यमे ! सानन्दूर क्षेत्रमें 'शक्रसर' नामसे विख्यात मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँसे पूर्व भागमें कुछ योजनकी दूरीपर वह स्थान है। उस कुण्डके मध्यभागमें विषमरूपसे चार धाराएँ गिरती हैं। कल्याणि ! उन धाराओंके जल अत्यन्त निर्मल होते हैं। चार दिनोंतक रहकर वहाँ मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इस पुण्यसे वह चार लोकपालोंके उत्तम नगरोंमें जानेका अधिकारी होता है। वहाँके तालाबका नाम 'शक्रसर' है। यदि वहाँ कोई व्यक्ति प्राण परित्याग करता है। तो वह लोकपालोंका स्थान छोड़कर मेरे धाममें आनन्दपूर्वक निवास करता है। महाभागे ! वहाँ जो आश्चर्यकी बात देखी जाती है, उसे कहता हूँ, सुनो। भूमे ! जिनका अन्तःकरण पवित्र है तथा जो मुझमें श्रद्धा रखते हैं, वे ही उस दृश्यको देख पाते हैं। उस दृश्यके प्रभावसे संसार-सागरसे पुरुषोंका उद्धार हो जाता है। भद्रे ! वहाँ चारों दिशाओंसे चार धाराएँ गिरती हैं। वहाँका गिरा हुआ जल न अधिक बढ़ता है और न कम ही होता है, उसकी स्थिति सदा समान बनी रहती है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिके पुण्यपर्वपर कानोंको मनोहर सुनायी पड़नेवाला उत्तम गीत वहाँ उच्चरित होता रहता है।

वसुंधरे ! शूर्पारक नामसे प्रसिद्ध मेरा एक परम पवित्र एवं गुह्य क्षेत्र है, जो परशुराम और श्रीरामके आश्रमोंसे

। परमसुन्दरी पत्नी गौरीका प्राकट्य हुआ था । स रातोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना । इससे उसे गौरीका दर्शन सुलभ होता है नके लोकमें वह सानन्द निवास करता है । ायु क्षीण होनेपर वह मनुष्य उस स्थानपर त्याग करता है तो उस लोकसे हटकर मेरे ोभा पाता है । भगवान् शंकरके साथ उमादेवीका ाह हुआ था । इसमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, आदि पक्षी सदा निवास करते हैं । हिमालय होकर यहाँ निर्मल जलकी तीन धाराएँ गिरती नुष्य बारह दिनोंतक यहाँ निवास और स्नान वह रुद्रलोकमें आनन्द करता है । यदि वहाँ यन्त कठिन कर्म करके प्राणोंको छोड़ता है, तो से पृथक् होकर मेरे स्थानकी यात्रा करता है । ह्मकुण्ड'नामक स्थानमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति हुई सीके उत्तर-पार्श्वमें सुवर्णके समान रंगवाली एक स्वच्छ धारा गिरती है, जहाँ ऋग्वेदकी ध्वनि हुई थी । यहीं पश्चिमभागमें यजुर्वेदसे युक्त धारा तथा दक्षिण-पार्श्वमें अथर्ववेदसे समन्वित धारा गिरती है । सात रातोंतक रहकर जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह ब्रह्माके लोकको प्राप्त करता है । यदि अहंकारशून्य होकर वह व्यक्ति वहाँ प्राण त्यागता है तो उस लोकका परित्याग करके मेरे लोकमें आ जाता है । महाभागे ! मेरे इस 'लोहार्गल'क्षेत्रकी कथा बड़ी ही रहस्यात्मक है । सिद्धि चाहनेवाले मनुष्यको वहाँ अवश्य जाना चाहिये । वरानने ! वह क्षेत्र पचीस योजनकी दूरीमें चारों ओर फैला है और स्वयं ही प्रकट हुआ है । यह विषय आख्यानोंमें परम आख्यान, धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट धर्म तथा पवित्रोंमें परम पवित्र है । जो श्रद्धालु पुरुष इसका पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं, उनके माता एवं पिता— इन दोनों कुलोंके दस-दस पूर्वपुरुषोंका संसार-सागरसे उद्धार हो जाता है ।　　(अध्याय १५१)

मथुरातीर्थकी प्रशंसा

तजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् श्रीहरिके द्वारा र्गल'क्षेत्रकी महिमा सुनकर पृथ्वीको बड़ा आश्चर्य ौर वे बोलीं—

भो ! आपकी कृपासे मैंने 'लोहार्गल'क्षेत्रका माहात्म्य । यदि इससे भी श्रेष्ठ तीर्थोंमें सर्वोत्तम एवं सबके कल्याणकारी कोई तीर्थ हो तो उसे बतानेकी ीजिये ।

गवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मथुराके मेरे लिये दूसरा कोई भी तीर्थ आकाश, एवं मर्त्य—इन तीनों लोकोंमें कहीं प्रिय नहीं होता । इसी पुरीमें मेरा श्रीकृष्णावतार अतः यह पुष्कर, प्रयाग, उज्जैन, काशी एवं रन्यसे भी बढ़कर है । वहाँ विधिपूर्वक निवास करनेवाला मानव निःसंदेह आवागमनसे मुक्त हो जाता है । माघमासके उत्तम पर्वपर प्रयागमें निवास करनेसे मनुष्यको जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, वह मथुरामें एक दिन रहनेपर ही मिल जाता है । इसी प्रकार वाराणसीमें हजार वर्षोंतक निवास करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह मथुरामें एक क्षण निवास करनेपर सुलभ हो जाता है । वसुंधरे ! कार्तिक मासमें पुष्करक्षेत्रके निवासका जो सुविख्यात पुण्य (फल) है, वही पुण्य मथुरामें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषको सहज प्राप्त हो जाता है । यदि कोई 'मथुरामण्डल'का नाम भी उच्चारण करता है और उसे दूसरा कोई सुन लेता है तो सुननेवाला भी सब पापोंसे छूट जाता है । भूमण्डलपर समुद्रपर्यन्त जितने तीर्थ एवं सरोवर हैं, वे सभी मथुरा-के अन्तर्गत स्थित हैं, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीहरि

शंकरकी परमसुन्दरी पत्नी गौरीका प्राकट्य हुआ था। वहाँ दस रातोंतक रहकर मनुष्यको स्नान करना चाहिये। इससे उसे गौरीका दर्शन सुलभ होता है और उनके लोकमें वह सानन्द निवास करता है। यदि आयु क्षीण होनेपर वह मनुष्य उस स्थानपर प्राणका त्याग करता है तो उस लोकसे हटकर मेरे धाममें शोभा पाता है। भगवान् शंकरके साथ उमादेवीका यहीं विवाह हुआ था। इसमें हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस आदि पक्षी सदा निवास करते हैं। हिमालय पर्वतसे होकर यहाँ निर्मल जलकी तीन धाराएँ गिरती हैं। मनुष्य बारह दिनोंतक यहाँ निवास और स्नान करे तो वह रुद्रलोकमें आनन्द करता है। यदि वहाँ वह अत्यन्त कठिन कर्म करके प्राणोंको छोड़ता है, तो रुद्रलोकसे पृथक् होकर मेरे स्थानकी यात्रा करता है। वहीं 'ब्रह्मकुण्ड'नामक स्थानमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति हुई थी। इसीके उत्तर-पार्श्वमें सुवर्णके समान रंगवाली एक स्वच्छ धारा गिरती है, जहाँ ऋग्वेदकी ध्वनि हुई थी। यहीं पश्चिमभागमें यजुर्वेदसे युक्त धारा तथा दक्षिण-पार्श्वमें अथर्ववेदसे समन्वित धारा गिरती है। सात रातोंतक रहकर जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह ब्रह्माके लोकको प्राप्त करता है। यदि अहंकारशून्य होकर वह व्यक्ति वहाँ प्राण त्यागता है तो उस लोकका परित्याग करके मेरे लोकमें आ जाता है। महाभागे! मेरे इस 'लोहार्गल'क्षेत्रकी कथा बड़ी ही रहस्यात्मक है। सिद्धि चाहनेवाले मनुष्यको वहाँ अवश्य जाना चाहिये। वरानने! वह क्षेत्र पचीस योजनकी दूरीमें चारों ओर फैला है और स्वयं ही प्रकट हुआ है। यह विषय आख्यानोंमें परम आख्यान, धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट धर्म तथा पवित्रोंमें परम पवित्र है। जो श्रद्धालु पुरुष इसका पाठ करते हैं अथवा सुनते हैं, उनके माता एवं पिता— इन दोनों कुलोंके दस-दस पूर्वपुरुषोंका संसार-सागरसे उद्धार हो जाता है। (अध्याय १५१)

मथुरातीर्थकी प्रशंसा

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् श्रीहरिके द्वारा 'लोहार्गल'क्षेत्रकी महिमा सुनकर पृथ्वीको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बोलीं—

प्रभो! आपकी कृपासे मैंने 'लोहार्गल'क्षेत्रका माहात्म्य सुना। यदि इससे भी श्रेष्ठ तीर्थोंमें सर्वोत्तम एवं सबके लिये कल्याणकारी कोई तीर्थ हो तो उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मथुराके समान मेरे लिये दूसरा कोई भी तीर्थ आकाश, पाताल एवं मर्त्य—इन तीनों लोकोंमें कहीं प्रिय प्रतीत नहीं होता। इसी पुरीमें मेरा श्रीकृष्णावतार हुआ, अतः यह पुष्कर, प्रयाग, उज्जैन, काशी एवं नैमिषारण्यसे भी बढ़कर है। यहाँ विधिपूर्वक निवास करनेवाला मानव निःसंदेह आवागमनसे मुक्त हो जाता है। माघमासके उत्तम पर्वपर प्रयागमें निवास करनेसे मनुष्यको जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, वह मथुरामें एक दिन रहनेपर ही मिल जाता है। इसी प्रकार वाराणसीमें हजार वर्षोंतक निवास करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह मथुरामें एक क्षण निवास करनेपर सुलभ हो जाता है। वसुंधरे! कार्तिक मासमें पुष्करक्षेत्रके निवासका जो सुविख्यात पुण्य (फल) है, वही पुण्य मथुरामें निवास करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषको सहज प्राप्त हो जाता है। यदि कोई 'मथुरामण्डल'का नाम भी उच्चारण करता है और उसे दूसरा कोई सुन लेता है तो सुननेवाला भी सब पापोंसे छूट जाता है। पृथ्वीमण्डल समुद्रपर्यन्त जितने तीर्थ एवं सरोवर हैं, वे सभी मथुरा-के अन्तर्गत स्थित हैं, क्योंकि साक्षात् भगवान् श्रीहरि

ही गुप्तरूपसे वहाँ निरन्तर निवास करते हैं । कुब्जाम्रक, सौकरव और मथुरा—ये परम विशिष्ट तीर्थ हैं, जहाँ योग-तपकी साधना न रहनेपर भी इन स्थानोंके निवासी सिद्धि पा जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।

देवि ! द्वापरयुग आनेपर मैं वहाँ राजा ययातिके वंशमें अवतार ग्रहण करूँगा और मेरी क्षत्रिय जाति होगी। उस समय मैं चार मूर्ति—कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध बनकर चतुर्व्यूहके रूपमें सौ वर्षोंतक वहाँ निवास करूँगा। मेरे ये चारों विग्रह क्रमशः चन्दन, सुवर्ण, अशोक एवं कमलके सदृश रूपवाले होंगे। उस समय धर्मसे द्वेष करनेवाले कंस आदि महान् भयंकर बत्तीस दैत्य उत्पन्न होंगे, जिनका मैं संहार करूँगा, वहाँ सूर्यकी पुत्री यमुनाका सुन्दर प्रवाह सदा संनिकट शोभा पाता है। मथुरामें मेरे और बहुत-से गुप्त तीर्थ हैं। देवि ! उन तीर्थोंमें स्नान करनेपर मनुष्य मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँ मरनेपर वह चार भुजाओंसे युक्त होकर मेरा स्वरूप बन जाता है ।

देवि ! मथुरामण्डलमें 'विश्रान्ति'नामका एक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करनेवाला मानव मेरे लोकमें रहनेका स्थान पाता है और वहाँ मेरी प्रतिमाका दर्शनकर सम्पूर्ण तीर्थोंके अवगाहनका फल प्राप्त करता है। जो दो बार उसकी प्रदक्षिणा कर लेता है, वह विष्णुलोकका भागी होता है। इसी प्रकार एक वनखण्ड नामक अत्यन्त गुह्य स्थान है, जहाँ केवल स्नान करनेसे ही मनुष्य स्वर्ग-सुखका अधिकारी हो जाता है। ऐसे ही 'तिन्दुक' नामसे विख्यात मेरा एक परम गोप्य क्षेत्र है। देवि ! उस क्षेत्रमें स्नान करनेवाला व्यक्ति मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ।

वसुंधरे! अब उस तीर्थमें घटित एक प्राचीन इतिहास सुनो। ... काम्पिल्य* नगरमें राजा ब्रह्मदत्त रहते थे। वहीं तिन्दुक नामक एक नाई रहता था। बहुत दिनोंतक यहाँ निवास करनेके बाद उसका पूरा परिवार क्षीण हो गया और वह पीड़ित होकर वहाँसे मथुरा चला आया और एक ब्राह्मणके घर रहने लगा। वहाँ वह ब्राह्मणके सैकड़ों कार्य करते हुए प्रतिदिन यमुना-स्नान भी करता। इस प्रकार दीर्घकाल व्यतीत होनेपर उसकी इसी तीर्थमें मृत्यु हुई, जिससे दूसरे जन्ममें वह जातिस्मर ब्राह्मण हुआ ।

इसी मथुरामें एक 'सूर्यतीर्थ' है, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है, जहाँ विरोचनपुत्र बलिने पहले सूर्यदेवकी उपासना की थी। उसकी उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यदेवने तपका कारण पूछा। इसपर बलि कहा—'देवेश्वर ! पातालमें मेरा निवास है। इस समय मैं राज्यसे वञ्चित हो गया हूँ एवं धनहीन हूँ।' इसपर भगवान् सूर्यने बलिको अपने मुकुटसे चिन्तामणि निकाल कर दिया, जिसे लेकर बलि पाताललोक चले गये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यके समस्त पाप समाप्त हो जा हैं और वहाँ मरनेपर उस प्राणीको मेरे लोककी प्राप्ति होती है। देवि ! प्रत्येक रविवारके दिन, संक्रान्ति अवसरपर अथवा सूर्य एवं चन्द्रग्रहणमें उस तीर्थ स्नान करनेसे राजसूय यज्ञके समान फल मिलता है ध्रुवने भी यहीं स्नानादिपूर्वक कठोर तपस्या की थी जिससे वह आज भी 'ध्रुवलोक'में प्रतिष्ठा पाता है वसुधे ! जो पुरुष इस 'ध्रुवतीर्थ'में श्रद्धा रखता है उसके सभी पितर तर जाते हैं। 'ध्रुवतीर्थ'के दक्षि भागमें तीर्थराजका स्थान है। देवि ! वहाँ अवगाह कर मानव मेरा धाम प्राप्त करता है। देवि ! मथुरा 'कोटितीर्थ' नामक एक स्थान है, जिसका दर्शन देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। वहाँ स्नान एवं दान करने मेरे धाममें प्रतिष्ठा मिलती है। उस 'कोटितीर्थ'में स्ना करके पितरों एवं देवताओंका तर्पण करना चाहिये

* ... कम्पिल नगर ।

इससे पितामह आदि सभी पितर तर जाते हैं। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है। यहीं पितरोंके लिये भी दुर्लभ एक 'वायुतीर्थ' है, जहाँ पिण्डदान करनेसे पुरुष पितृलोकमें जाता है। देवि! गयामें पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल यहाँ ज्येष्ठमें पिण्ड देनेसे प्राप्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। इन बारह तीर्थोंका केवल स्मरण करनेसे भी पाप दूर हो जाते हैं और मनुष्यकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

(अध्याय १५२)

मथुरा, यमुना और अक्रूरतीर्थोंके माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! 'शिवकुण्ड'के उत्तर 'नवक'-नामक एक पवित्र क्षेत्र है, जहाँ स्नान करनेमात्रसे ही प्राणीको सौभाग्य सुलभ हो जाता है और पापी भी मेरे धाममें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

अब इस तीर्थकी एक पुरानी घटना सुनो। पहले नैमारण्यमें एक दुष्ट निषाद रहता था। एक बार वह किसी मासकी चतुर्दशीको मथुरा आया और उसके मनमें यमुनामें तैरनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। यद्यपि वह यमुनामें तैरता हुआ 'संयमन' तीर्थतक पहुँच गया, फिर भी दैवयोगसे वह उससे बाहर न निकल पाया और वहीं उसका प्राणान्त भी हो गया। दूसरे जन्ममें वही (निषाद) क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी बना, जिसकी राजधानी सौराष्ट्रमें थी और कालान्तरमें वही 'पद्मधनु' नामसे प्रख्यात हुआ। वह अपने धर्म (क्षात्रधर्म तथा राजधर्म)का भलीभाँति पालन करता तथा अपने राज्यकी रक्षा और प्रजाका रञ्जन करनेमें समर्थ और सफल था। उसका विवाह काशिराजकी सुन्दरी कन्या पीवरीसे हुआ। पद्मधनुकी और भी रानियाँ थीं, किंतु सभी रानियोंमें पीवरी ही उसे सबसे अधिक प्रिय थी। वह उसके साथ भवनों, उद्यानों, उपवनों और नदी-तटोंपर विहार करता हुआ राज्यसुख-का उपभोग करने लगा। कालान्तरमें उसके सात पुत्र और पाँच पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार पद्मधनुके सत्तहत्तर वर्ष बीत गये। एक समय जब वह शयन कर रहा था तो अचानक उसे मथुराके संयमन-तीर्थकी स्मृति हो आयी और उसके मुँहसे 'हा! हा!' शब्द निकलने लगा। इसपर पासमें सोयी उसकी पटरानी पीवरीने कहा—'राजन्! आप यह क्या कह रहे हैं?' राजाने उत्तर दिया—'प्रिये! जो किसी मादक वस्तु आदिके सेवनसे बेसुध रहता है, नींदमें रहता है अथवा जिसका चित्त विक्षिप्त रहता है, उसके मुखसे असम्बद्ध शब्दोंका निकल जाना स्वाभाविक है। मैं नींदमें था, इसीसे ये शब्द निकल गये। अतः इस विषयमें तुम्हें नहीं पूछना चाहिये।' फिर रानीके बार-बार आग्रह करनेपर पद्मधनुने कहा—'शुभानने! यदि मेरी बात तुम्हें सुननी आवश्यक जान पड़ती है तो हम दोनों मथुरापुरी चलें। वहीं मैं तुम्हें यह बात बताऊँगा। ग्राम, रत्न, खजाना और जनताकी सँभालके लिये पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर देना चाहिये। देवि! विद्याके समान कोई आँख नहीं है, धर्मके समान कोई बल नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागसे बढ़कर दूसरा कोई सुख नहीं है। संसारका संग्रह करनेवालेकी अपेक्षा त्यागी पुरुष सदैव श्रेष्ठ माना गया है।'

वसुंधरे! राजा पद्मधनुने इस प्रकार अपनी पत्नी पीवरीसे सलाहकर अपने ज्येष्ठ पुत्रका राज्याभिषेक किया और उसके साथ श्रेष्ठ पुरुषों (मन्त्री आदि)के रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर पुरवासी जनतासे विदा ले हाथी, घोड़ा, कोष और कुछ पैदल चलनेवाले पुरुषोंको साथ लेकर वे दोनों मथुराके लिये चल पड़े और बहुत दिनोंके बाद वे मथुरा पहुँचे। मथुरापुरी उस समय देवताओंकी पुरी 'अमरावती' जैसी प्रतीत हो रही थी। बारह तीर्थोंसे सम्पन्न

मनसे निर्मित होनेके कारण इसका नाम 'मानसतीर्थ' पड़ गया है। यहाँ जो स्नान करते हैं, उन्हें स्वर्ग मिलता है। यहीं भगवान् श्रीगणेशका एक पुण्यमय तीर्थ है, जिसके प्रभावसे पाप दूरसे ही भाग जाते हैं। वहाँ चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीके दिन स्नान करनेसे मनुष्योंके सामने श्रीगणेशजीके प्रभावसे दुःख पासमें नहीं फटकते। विद्या आरम्भ की जाय अथवा यज्ञ एवं दान आदिकी क्रियाएँ सम्पन्न करनी हों तो सभी समयोंमें गौरीनन्दन गणेशजी धर्मकर्ता पुरुषके कार्यको सदा निर्विघ्नपूर्ण कर देते हैं। यहीं आधा कोसके परिमाणवाला परम दुष्कर 'शिवक्षेत्र' है, जहाँ रहकर भगवान् शंकर इस मथुरापुरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं। उसके जलमें स्नान और उस जलका पानकर मनुष्य मथुरावासका फल प्राप्त करता है।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! अब मैं एक दूसरे दुर्लभ 'अक्रूर'तीर्थका वर्णन करता हूँ। अयन,* विषुव† तथा विष्णुपदीके‡ शुभ अवसरपर मैं श्रीकृष्णरूपमें वहाँ स्थित रहता हूँ। यहाँ सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे मनुष्य 'राजसूय' एवं 'अश्वमेध' यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। अब इस तीर्थके एक बहुत पुराने इतिहासको सुनो। पहले यहाँ सुधन नामक एक धनी एवं भक्त वैश्य रहता था। वह स्त्री-पुत्र और अपने बन्धुओंके साथ सदा मेरी उपासनामें लगा रहता तथा गन्ध, पुष्प, धूप तथा दीप अर्पण करके नित्य नियमानुसार मुझ श्रीहरिकी पूजा करता था। वह प्रायः एकादशीको इसी अक्रूरतीर्थमें आकर मेरे सामने नृत्य करता।

एक बार वह रात्रिजागरण, नृत्य तथा कीर्तन आदि करनेके उद्देश्यसे मेरे पास आ रहा था कि किसी भयंकर ब्रह्मराक्षसने उसके पैर पकड़ लिये। उसकी आकृति बड़ी डरावनी थी तथा बाल ऊपरको उठे हुए थे। उसने सुधनसे कहा—'वैश्य! आज मैं तुम्हें खाकर तृप्ति प्राप्त करूँगा।' इसपर सुधन बोला—'राक्षस! बस, तुम थोड़ी देर प्रतीक्षा करो, मैं तुम्हें पर्याप्त भोजन दूँगा और बादमें तुम मेरे इस शरीरको भी भक्षण कर लेना। पर इस समय मैं देवेश्वर श्रीहरिके सामने नृत्य एवं जागरण करनेके लिये जा रहा हूँ। मैं अपना यह व्रत पूरा कर प्रातः सूर्यके उदय होते ही तुम्हारे पास वापस आ जाऊँगा तब तुम मेरे इस शरीरको अवश्य खा लेना। भगवान् नारायणकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले मेरे इस व्रतको भङ्ग करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।' इसपर ब्रह्मराक्षस आदरपूर्वक मधुर वाणीसे बोला—'साधो! तुम यह असत्य बात क्यों कह रहे हो? भला, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो राक्षसके मुखसे छूटकर पुनः स्वेच्छासे उसके पास लौट आये।'

इसपर वैश्यवर बोला—'सम्पूर्ण संसारकी जड़ सत्य है। सत्यपर ही अखिल जगत् प्रतिष्ठित है। वेदके पारगामी ऋषियोग सत्यके बलपर ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। यद्यपि पूर्वजन्मके कर्मवश मेरी उत्पत्ति धनी वैश्यकुलमें हुई है, फिर भी मैं निर्दोष हूँ। ब्रह्मराक्षस! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि वहाँ जागरण और नृत्य करके सुखपूर्वक मैं अवश्य लौट आऊँगा। सत्यसे ही कन्याका दान होता है और ब्राह्मण सदा सत्य बोलते हैं। सत्यसे ही राजाओंका राज्य चलता है। सत्यसे ही पृथ्वी सुरक्षित है। सत्यसे ही स्वर्ग सुलभ होता है और

*-सूर्यके कर्कराशिमें आनेपर दक्षिणायन एवं मकर-राशिमें आनेपर उत्तरायण होता है। सूर्यकी इस सामयिक गति एवं स्थितिको 'अयन' कहते हैं।

†-जिस समय दिन और रातका मान बराबर होता है—उसका नाम 'विषुव' है। यह स्थिति प्रायः २१ मार्च और २३ सितम्बरको होती है।

‡-वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशियोंकी सूर्य-संक्रान्तियोंका नाम 'विष्णुपदी' है।

उस पुण्यमयी पुरीने सभी पापोंको नष्ट करनेके लिये अपनेको मनोहर बना लिया हो ।

वसुंधरे! जब राजा वसुधनु और पीवरीने मथुरापुरीका दर्शन किया तो उनका हृदय प्रसन्न हो गया । फिर उस रानीने उस रहस्यको पूछा, जिसके लिये वे मथुरा आये थे । इसपर वसुधनुने कहा—'पहले तुम अपनी सम्पूर्ण बात बताओ, तब मैं बताऊँगा ।'

पीवरी बोली—पहले मेरा निवास गङ्गाके तटपर था, किंतु वहाँ भी मेरा नाम 'पीवरी' ही था । एकबार मैं कार्तिक द्वादशीके दिन इस मथुरापुरीके दर्शनके लिये यहाँ आयी । उसी समय नावद्वारा यमुनाको पार करते समय मैं अचानक 'धारापतन'तीर्थके पासमें जलमें गिर गयी, जिससे मेरे प्राण निकल गये । इसी तीर्थके प्रभावसे मेरा काशी-नरेशके यहाँ जन्म तथा फिर आपसे विवाह हुआ ।'

वसुंधरे! इसके बाद राजा वसुधनुने जिस प्रकार संयमन-तीर्थमें उसकी मृत्यु हुई थी, वह सब कथा पीवरीसे सुनायी । अब वे दोनों मथुरामें ही रहने लगे और यमुनामें स्नान करनेका नियम बना लिया । प्रतिदिन नियमसे वे मेरा दर्शन करते । कालान्तरमें वहीं शरीर त्यागकर सभी बन्धनोंसे मुक्त होकर वे मेरे लोकको प्राप्त हुए ।

देवि! उसी मथुरामें 'मधुवन' नामक एक अत्यन्त सुन्दर स्थान है और यहीं एक 'कुन्दवन'के नामसे मेरा प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ जानेपर ही व्यक्ति सफल-मनोरथ हो जाता है । यहीं वनोंमें प्रधान एक 'काम्यकवन' है, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य मेरे धामको प्राप्त होता है । यहाँके 'विमल-कुण्ड' तीर्थमें स्नान करनेसे प्राणीके सम्पूर्ण पाप धुल जाते हैं और जो वहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह मेरे लोकमें चला जाता है । चौथे वनको 'कुमुदवन' कहते हैं । यहाँ स्नान कर मनुष्य 'अग्निष्टोम'का फल पाता है । यमुनाके उस पार 'भद्रवन' नामका छठा वन है । मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले पुरुष ही वहाँ जा पाते हैं और उन्हें नागलोककी प्राप्ति होती है । 'खदिरवन' सातवाँ है और आठवाँ 'महावन' । नवाँ वन 'लौहजङ्घवन' है, क्योंकि लौहजङ्घ ही इसकी रक्षा करता था । दसवें वनका नाम 'बिल्ववन' है । वहाँ जानेवाला प्राणी ब्रह्माजीके लोकमें प्रतिष्ठा पाता है । 'भाण्डीर' वन ग्यारहवाँ है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य माताके गर्भमें नहीं आता । बारहवाँ वन 'वृन्दावन' है, जहाँकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवी हैं । देवि! समस्त पापोंका संहार करनेवाला यह स्थान मुझे बहुत प्रिय है । वसुंधरे! वृन्दावन जाकर जो गोविन्दका दर्शन करते हैं, उन्हें यमपुरीमें कदापि नहीं जाना पड़ता । उनको पुण्यात्मा पुरुषोंकी गति सहज सुलभ हो जाती है ।

यमुनेश्वर-तीर्थके 'धारापतन'में स्नानकरनेवाला मनुष्य स्वर्गका आनन्द पाता है और यहाँ प्राण त्यागनेवाला मेरे धामको जाता है । इसके आगे नागतीर्थ और 'घण्टाभरणतीर्थ' है, जिसमें स्नानकर मनुष्य सूर्यलोकमें जाता है । वसुधे! यहाँ 'सोमतीर्थ'का वह पवित्र स्थान है, जहाँ द्वापरमें चन्द्रमा मेरा दर्शन करते हैं । इसमें अभिषेककर मनुष्य चन्द्रलोकमें निवास करता है । यहाँ जहाँ सरस्वती नदी ऊपरसे उतरी है, वह पवित्र स्थान सम्पूर्ण पापोंका हरनेवाला है ।

मथुराके पश्चिममें ऋषिगण निरन्तर मेरी पूजा करते हैं । प्राचीन कालमें सृष्टिके अवसरपर ब्रह्मा

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! उसी समय वहाँ प्रलयाग्निसदृश जगत् शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये मैं (भगवान् श्रीहरि) प्रकट हो गया। उस समय मेरे (श्रीविष्णुरूपके अपने) श्रीविग्रहकी आभा परम दिव्य थी। भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले (श्रीविष्णुरूपमें) मैंने उस वैश्यसे मधुर वाणीमें कहा—'तुम अब सपरिवार उत्तम विमानपर चढ़कर मेरे दिव्य विष्णुलोकको जाओ।'

वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर मैं (भगवान् श्रीहरि) वहीं अन्तर्धान हो गया और सुजन भी अपने परिवारके सहित दिव्य विमानद्वारा सशरीर विष्णुलोकमें चला गया। देवि ! 'अक्रूर-तीर्थ'की यह महिमा मैंने तुम्हें बतला दी। उस कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको जो तीर्थमें स्नान करता है, उसे 'राजसूययज्ञ'का फल प्राप्त होता है और वहाँ श्राद्ध तथा वृषोत्सर्ग करनेवाला पुरुष अपने कुलके सभी पितरोंको तार देता है।

(अध्याय १५३—५५)

मथुरामण्डलके 'वृन्दावन' आदि तीर्थ और उनमें स्नान-दानादिका महत्त्व

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं मथुरा-मण्डलके 'वत्स-क्रीडन'नामक तीर्थका वर्णन करता हूँ। यहाँ लाल रंगकी बहुत-सी शिलाएँ हैं। यहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य वायुदेवके लोकको प्राप्त होता है। यहीं दूसरा एक 'भाण्डीर' वन भी है, जिसकी साखू, ताल-तमाल, अर्जुन, इङ्गुदी, पीलुक, करील तथा लाल फलवाले अनेक वृक्ष शोभा बढ़ाते हैं। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह इन्द्रके लोकको प्राप्त होता है। वल्लरियों तथा लताओंसे आच्छादित यहाँका रमणीय वृन्दावन देवता, दानवों और सिद्धोंके लिये भी दुर्लभ है। गायों और गोपालोंके साथ मैं यहाँ (कृष्णावतारमें) क्रीडा करता हूँ। यहाँ एक रात निवास तथा कालिन्दीमें अवगाहनकर मनुष्य गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है और यहीं प्राणोंका त्याग कर मनुष्य मेरे धामको प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! यहाँ एक दूसरा तीर्थ 'केशिस्थल' है। 'वृन्दावन'के इसी स्थानपर मैंने केशीदैत्यका वध किया था। उस 'केशीतीर्थ'में पिण्डदान करनेसे गयामें पिण्ड देनेके समान ही फल मिलता है। यहाँ 'स्नान-दान और हवन करनेसे 'अग्निष्टोम'यज्ञका फल मिलता है। यहाँ द्वादशादित्यतीर्थपर यमुना लहराती है, जहाँ कालियनाग आनन्द पूर्वक निवास करता था। यहीं (कालियह्रदमें) मैंने उसका दमन और द्वादश आदित्योंकी स्थापना की थी। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और जो व्यक्ति यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह मेरे धाममें आ जाता है। इस स्थानका नाम 'हरिदेव' क्षेत्र और 'कालियह्रद' है। इस 'हरिदेव'क्षेत्रके उत्तर और 'कालियह्रद'के दक्षिण-भागमें जिनका पाञ्चभौतिक शरीर छूटता है, उनका संसारमें पुनरावर्तन नहीं होता*।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! यमुनाके उस पार 'यमलार्जुन' नामक तीर्थ है, जहाँ शकट (भाण्डोंसे भरी हुई गाड़ी) भग्न और भाण्ड छिन्न-भिन्न हुए थे। वहाँ स्नान और उपवास करनेका फल अनन्त है। वसुंधरे ! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन उस तीर्थमें स्नान और दान करनेसे महान् पापकर्मी मनुष्यको भी परमगति प्राप्त होती है। इन्द्रियनिग्रही मनुष्य यमुनाके जलमें स्नान करनेपर पवित्र हो जाता है और सम्यक् प्रकारसे श्रीहरिकी अर्चना करके वह परम गति प्राप्त कर सकता है। देवि ! स्वर्गमें गये हुए पितृगण यह गाते हैं—'हमारे कुलमें उत्पन्न जो पुरुष मथुरामें निवास करके कालिन्दीमें स्नान करेगा और भगवान्

* ग्रीक ग्रन्थोंमें 'वृन्दावन'का नाम भी *Kliso bora* या 'कालिकावर्त' अर्थात् कालियनागका स्थान है। १८वीं सदीमें काशीके राजा चेतसिंहने दोनों नगरोंके पूरे दूधसे यहाँ अर्चना की थी। (Cunningham's Anc. Geog. P. 316) वृन्दावनके विशेष वर्णनके लिये 'भागवत' 'कल्याण' 'तीर्थाङ्क,' पद्म० पाताल खण्ड ७० से ८२ तथा भुवनेश ६।५० आदि देखना चाहिये। 'दे' के अनुसार आजका वृन्दावन चैतन्य महाप्रभुके अनुयायी गोस्वामी व पुजेरी गोंव है, प्राचीन वृन्दावन मथुरासे कुछ अधिक दूर होना चाहिये। ('दे'का भूगोल पृष्ठ ४२)

सत्यसे ही मोक्ष मिलता है । अतः यदि मैं तुम्हारे सामने न आऊँ तो पृथ्वीका दान करके पुनः उसका उपभोग करनेसे जो पाप होता है, मैं उसका भागी बनूँ । अथवा क्रोध या द्वेषवश जो पत्नीका त्याग करता है, वह पाप मुझे लगे । यदि मैं पुनः तुम्हारे पास न आऊँ तो एक साथ बैठकर भोजन करनेवाले व्यक्तियोंमें जो पङ्क्तिभेदका पाप करता है, मुझे वह पाप लगे । अथवा यदि मैं फिर तुम्हारे पास पुनः न आऊँ, तो एक बार कन्यादान करके फिर दूसरेको दान करने अथवा ब्राह्मण-की हत्या करने, मदिरा पीने, चोरी करने या व्रत भङ्ग करनेपर जो बुरी गति मिलती है, वह गति मुझे प्राप्त हो ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! सुधनकी बात सुनकर वह ब्रह्मराक्षस संतुष्ट हो गया । उसने कहा—'भाई ! तुम वन्दनीय हो और अब जा सकते हो ।' इसपर वह कलामर्मज्ञ वैश्य मेरे सामने आकर नृत्य-गान करने लगा और प्रातःकालतक नृत्य करता रहा । दूसरे दिन उसने '**ॐ नमो नारायणाय**' प्रातःकालका उच्चारण कर यमुनामें गोता लगाया और मथुरा पहुँचकर मेरे दिव्य रूपका दर्शन किया । देवि ! उसी समय मैं एक दूसरा रूप धारणकर उसके सामने प्रकट हुआ और उससे मैंने पूछा—'आप ! इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हैं ?' इसपर सुधनने कहा—'मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार ब्रह्मराक्षसके पास जा रहा हूँ ।' उस समय मैंने उसे मना किया और कहा—'अनघ ! तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये । जीवन रहनेपर ही धर्मानुष्ठान सम्भव है ।' इसपर उस वैश्यने उत्तर दिया—'महाभाग ! मैं ब्रह्मराक्षसके पास अवश्य जाऊँगा, जिससे मेरी (सत्यकी) प्रतिज्ञा सुरक्षित हो । जगत्प्रभु भगवान् विष्णुके निमित्त जागरण और नृत्य करनेका [illegible] व्रत था । वह नियम सुखपूर्वक सम्पन्न हो गया [illegible] कहकर [illegible] चला गया और ब्रह्मराक्षससे कहा—'राक्षस ! तुम अब इच्छानुसार इस शरीरको खा जाओ ।'

इसपर ब्रह्मराक्षसने कहा—'वैश्यवर ! तुम वस्तु सत्य एवं धर्मका पालन करनेवाले साधुपुरुष हो, तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुम्हारे व्यवहारसे संतुष्ट हूँ । महाभाग ! अब तुम अपने नृत्य एवं जागरणके पूरे पुण्यको मुझे देनेकी कृपा करो । तुम्हारे प्रभावसे मेरा भी उद्धार हो जायगा ।'

'राक्षस ! मैं तुम्हें अपने रात्रिजागरण एवं नृत्यका पुण्य नहीं दे सकता । आधीरात, एक प्रहर तथा आधे प्रहरके भी जागरणका पुण्य मैं तुम्हें नहीं दे सकता'—वैश्यने कहा ।'

'तब बस एक नृत्यका ही पुण्य मुझे देनेकी दया करो ।'—राक्षस बोला ।

'मैं तुम्हें पुण्य तो यह भी नहीं दे सकता । पर मैं बात कह चुका हूँ, उसके लिये आ गया हूँ । साथ ही मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि तुम किस कर्मके दोषसे ब्रह्मराक्षस हुए ? यदि यह बहुत गोप्य न हो तो मुझे बता दो ।'—वैश्यने कहा ।

अब ब्रह्मराक्षसके मुखपर हँसी छा गयी । उसने कहा—'वैश्यवर ! तुम ऐसी बात क्यों कहते हो । मैं तो तुम्हारे पासका ही रहनेवाला हूँ । मेरा नाम 'अग्निदत्त' है । मैं पूर्वजन्ममें वेदाभ्यासी ब्राह्मण था । किंतु चौर्यदोषसे मुझे ब्रह्मराक्षस होना पड़ा । दैवयोगसे तुमसे भेंट हो गयी है । अब तुम मेरा उपकार करनेकी कृपा करो । वैश्यवर ! तुम यदि एक ही 'नृत्य एवं गान'का पुण्य मुझे दे दो तो मेरा उद्धार हो जाय ।' वैश्यने कहा—'राक्षस ! मैंने एक नृत्यके पुण्यका फल तुम्हें दे दिया ।' फिर तो उस एक नृत्यके पुण्यके प्रतापसे उसका तत्काल उद्धार हो गया और ब्रह्मराक्षसको दोनोंसे सदाके लिये मुक्ति मिल गयी ।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! उसी समय वहाँ ब्रह्मराक्षसकी जगह शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये मैं (भगवान् श्रीहरि) प्रकट हो गया। उस समय मेरे (श्रीविष्णुरूपके अपने) श्रीविग्रहकी आभा परम दिव्य थी। भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले (श्रीविष्णुरूपमें) मैंने उस वैश्यसे मधुर वाणीमें कहा—'तुम अब सपरिवार उत्तम विमानपर चढ़कर मेरे दिव्य विष्णुलोकको जाओ।'

वसुंधरे ! इस प्रकार कहकर मैं (भगवान् श्रीहरि) वहीं अन्तर्धान हो गया और सुधन भी अपने परिवारके सहित दिव्य विमानद्वारा सशरीर विष्णुलोकमें चला गया। देवि ! 'अक्रूर-तीर्थ'की यह महिमा मैंने तुम्हें बतला दी। उस कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको जो तीर्थमें स्नान करता है, उसे 'राजसूययज्ञ'का फल प्राप्त होता है और वहाँ श्राद्ध तथा वृषोत्सर्ग करनेवाला पुरुष अपने कुलके सभी पितरोंको तार देता है।

(अध्याय १५३—५५)

मथुरामण्डलके 'वृन्दावन' आदि तीर्थ और उनमें स्नान-दानादिका महत्त्व

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब मैं मथुरा-मण्डलके 'वत्स-क्रीडन'नामक तीर्थका वर्णन करता हूँ। यहाँ लाल रंगकी बहुत-सी शिलाएँ हैं। यहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य वायुदेवके लोकको प्राप्त होता है। यहीं दूसरा एक 'भाण्डीर' वन भी है, जिसकी साखू, ताल-तमाल, अर्जुन, इङ्गुदी, पीलुक, करीर तथा लाल फूलवाले अनेक वृक्ष शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह इन्द्रके लोकको प्राप्त होता है। वल्लरियों तथा लताओंसे आच्छादित यहाँका रमणीय वृन्दावन देवता, दानवों और सिद्धोंके लिये भी दुर्लभ है। गायों और गोपालोंके साथ मैं यहाँ (कृष्णावतारमें) क्रीडा करता हूँ। यहाँ एक रात निवास तथा कालिन्दीमें अवगाहनकर मनुष्य गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है और यहाँ प्राणोंका त्याग कर मनुष्य मेरे धामको प्राप्त होता है।

वसुंधरे ! यहाँ एक दूसरा तीर्थ 'केशितीर्थ' है। 'वृन्दावन'के इसी स्थानपर मैंने केशीदैत्यका वध किया था। उस 'केशीतीर्थ'में पिण्डदान करनेसे गयामें पिण्ड देनेके समान ही फल मिलता है। यहाँ 'स्नान-दान और हवन करनेसे 'अग्निष्टोम'यज्ञका फल मिलता है। यहाँ द्वादशादित्यतीर्थपर यमुना बहती हैं, जहाँ कालियनाग आनन्द पूर्वक निवास करता था। यहीं (कालियह्रदमें) मैंने उसका दमन और द्वादश आदित्योंकी स्थापना की थी। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और जो व्यक्ति यहाँ प्राणोंका परित्याग करता है, वह मेरे धाममें आ जाता है। इस स्थानका नाम 'हरिदेव' क्षेत्र और 'कालियह्रद' है। इस 'हरिदेव'क्षेत्रके उत्तर और 'कालियह्रद'के दक्षिण-भागमें जिनका पाञ्चभौतिक शरीर छूटता है, उनका संसारमें पुनरावर्तन नहीं होता*।

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! यमुनाके उस पार 'यमलार्जुन' नामक तीर्थ है, जहाँ शकट (भाण्डोंसे भरी हुई गाड़ी) भग्न और भाण्ड छिन्न-भिन्न हुए थे। वहाँ स्नान और उपवास करनेका फल अनन्त है। वसुंधरे ! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन उस तीर्थमें स्नान और दान करनेसे महान् पापी मनुष्यको भी परमगति प्राप्त होती है। इन्द्रियनिग्रही मनुष्य यमुनाके जलमें स्नान करनेसे दीप्त हो जाता है और सम्यक् प्रकारसे श्रीहरिकी अर्चना करके वह परम गति प्राप्त कर सकता है। देवि ! यहाँ गाये हुए पितृगण यह गाते हैं—'हमारे कुलमें उत्पन्न जो पुरुष मथुरामें निराहार रहकर कालिन्दीमें स्नान करेगा और भगवान्

* ग्राउज महोदयने 'वृन्दावन'का नाम ही Alice bower या 'वर्षानिकुञ्ज' अर्थात् वर्षावनका स्थल है। १८९ [illegible] (Cunningham's Anc. Geog. P. [illegible]) [illegible] विशेष वर्णनके लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वृन्दावन [illegible] मथुराके [illegible] [illegible] (देखिये [illegible])

मथुरा-तीर्थका प्रादुर्भाव, इसकी प्रदक्षिणाकी विधि एवं माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मेरे मथुरा-
त्रकी सीमा बीस योजनमें है*, जिसमें जहाँ-कहीं भी
न कर मानव सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। वर्षाऋतुमें
ुरा विशेष आनन्दप्रद रहती है और हरिशयनीके
द चार मासके लिये तो मानो सातों द्वीपोंके पुण्यमय
र्थ और मन्दिर मथुरामें ही पहुँच जाते हैं। जो
ोपानके समय मेरे उठनेपर मथुरामें मेरा दर्शन करते
, उनके सामने वहाँ मैं सदा उपस्थित रहता हूँ, इसमें
ोई संशय नहीं। वसुधे ! उस समय मेरे (श्रीकृष्णरूपके)
मल-जैसे मुखको देखकर मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे
त्काल मुक्त हो जाता है। जिसने मथुरामें पहुँचकर मेरे
श्रीकृष्णके विग्रह)की विधिवत् पूजा कर प्रदक्षिणा कर ली,
उसने मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली।

धरणीने पूछा—भगवन् ! प्रायः सभी तीर्थ क्षेत्र
ग्रह, भूत, पिशाच और विनायक—इन उपद्रव करनेवाले
ाणियोंसे बाधित होते रहते हैं। फिर यह मथुरापुरी किस
देवताके द्वारा सुरक्षित रहकर अनन्त फल प्रदान करनेमें
समर्थ है ?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! मेरे प्रभावसे विघ्न-
कारी शक्तियाँ मेरे इस क्षेत्रपर या भक्तोंपर कभी दृष्टि नहीं
डाल पातीं। इसकी रक्षाके लिये मैंने दस दिक्पालों और चार
लोकपालोंको नियुक्त कर रखा है, जो निरन्तर इस पुरीकी
रक्षामें तत्पर रहते हैं। इसके पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम,
पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर तथा मध्यभागमें उमापति
महादेवजी रक्षा करते हैं। जो मनुष्य मथुरामें कोठेदार
मकान बनवाता है, उस जीवन्मुक्त पुरुषको चार
भुजाओंवाले विष्णुका ही रूप समझना चाहिये।

अब यहाँके निर्मल जलवाले 'मथुराकुण्ड'की एक आश्चर्य-
की बात कहता हूँ, सुनो। हेमन्त-ऋतुमें इसका जल गर्म
रहता है और ग्रीष्म-ऋतुमें बर्फके समान शीतल।
साथ ही वर्षाऋतुमें वहाँका पानी न बढ़ता
है और न ग्रीष्मऋतुमें सूखता ही है। वसुंधरे !
मथुरामें पग-पगपर तीर्थ हैं, जिनमें स्नानकर मनुष्य
सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

'मुचुकुन्दतीर्थ' नामक यहाँ एक दिव्य क्षेत्र है,
जहाँ देवासुरसंग्रामके बाद राजा मुचुकुन्दने शयन किया
था। वहाँ स्नान करनेवालेको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती
है तथा मरनेवालोंको मेरे लोककी।

देवि ! भगवान् केशवके नाम-संकीर्तनमें ऐसी शक्ति है
कि वह इस जन्मके तथा पूर्वजन्मोंमें किये हुए सभी पापोंको
उसी क्षण नष्ट कर डालता है। अतः कार्तिक शुक्ला अक्षय-
नवमीको भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए मथुराकी प्रदक्षिणा
करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसकी विधि
यह है कि कार्तिक शुक्ला अष्टमीको मथुरामें जाकर ब्रह्मचर्यका
पालन करते हुए निवास करे तथा रात्रिमें ही प्रदक्षिणाका
संकल्प कर ले। प्रातःकाल दन्तधावन कर स्नान करके
धौतवस्त्र पहन ले और मौन होकर इसकी प्रदक्षिणा प्रारम्भ
करे। इससे मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रदक्षिणा

* मथुराका माहात्म्य इस वराहपुराणके अतिरिक्त नारदपुराण उत्तरभाग अध्याय ७९—८०; पद्मपुराण, [illegible] खण्ड, अध्याय ६९ से ८३, उत्तरखण्ड ९५; स्कन्दपु० ४। २० आदिमें भी है। यह सप्तपुरियोंमेंसे एक है। इसका पूर्वनाम मधुरा (वाल्मी० उत्तरकाण्ड ७। १०८), मधुपुरी तथा महोली भी है। यहाँ (कराहपुर गाँवमें) इसकी [illegible] दोहन [illegible] है। [illegible] मथुरा [illegible] ८११ [illegible] एवं मथुरानगर प्रायः [illegible] देते थे। (Julien's II [illegible] Thsang II 24, Cunningham's Ancient Geography, P. 314) जैन ग्रन्थोंमें इसका नाम [illegible] है। [illegible] इसके [illegible] तथा [illegible] अनेक [illegible] हैं। यहाँके [illegible] तथा [illegible] के लिये [illegible] १९—१०५ तकके पृष्ठोंको देखना चाहिये।

कृष्णगङ्गा (यमुना) के तटपर श्यामा-श्याम

—राजिता'का भी दर्शन करे। देवि! फिर 'कंस-निका', 'औग्रसेना', 'चर्चिका' तथा 'कधूटी' देवियोंका न करे। ये देवियाँ दानवोंको पराजय और देवताओं-विजयप्रदान करानेवाली हैं। पुनः देवताओंसे सुपूजित माताओं, गृहदेवियों और वास्तुदेवियोंका दर्शनकर उनसे आज्ञा लेकर यात्रा आरम्भ करे। जबतक क्रमामें 'दक्षिणकोटि'तीर्थ न मिले, तबतक मौन होकर ना करनी चाहिये। 'दक्षिणकोटि'तीर्थमें स्नान, पितृतर्पण, दर्शन और प्रणाम कर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा पूजित नी 'इक्षुवासा'को प्रणाम करे। इसके बाद 'वासपुत्र', स्थल', 'वीरस्थल', 'कुशस्थल', 'पुण्यस्थल' और प्रचुर पोंके नाशक 'महास्थल'पर जाय। ये सभी तीर्थ सम्पूर्ण पोंको दूर भगा देते हैं। फिर 'हयमुक्ति', 'सिन्दूर' और हायक' नामके प्रसिद्ध स्थानोंपर जाय।

इस विषयमें ऋषियोंकी कही हुई एक प्राचीन गाथा सुनी ती है—कहते हैं, कभी कोई राजकुमार घोड़ेपर सवार होकर मथुराकी सुखपूर्वक परिक्रमा कर रहा था। पर बीचमें नौकरसहित घोड़ेकी तो मुक्ति हो गयी, पर वह राजकुमार स संसारमें ही पड़ा रह गया। अतएव जिसे श्रेष्ठ फलकी इच्छा हो, उसे सवारीपर चढ़कर मथुराकी कदापि परिक्रमा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इससे मुक्ति नहीं मिलती'।

उस 'हयमुक्ति'तीर्थका दर्शन एवं स्पर्श करनेसे पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। बीचमें 'शिवकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध एक महान् तीर्थ है। भगवान् कृष्णको विजयी बनानेवाली 'मल्लिका'—देवीका भी दर्शन करना चाहिये। फिर 'कदम्बखण्ड'की यात्राकर सपरिवार 'चर्चिका' योगिनीका दर्शन करे। फिर पापोंके हरण करनेवाले 'चर्मखात' नामक श्रेष्ठ कुण्डपर जाकर स्नान और तर्पण करना चाहिये।

देवि! यहाँ भूतोंके अध्यक्ष भगवान् महादेवका दिव्य विग्रह है। इसके आगे 'कृष्णक्रीडा-सेतुबन्ध' तथा 'बलिहृद' कुण्ड है, जहाँ श्रीकृष्णने जलविहार किया था। इसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यहीं कुछ आगे गंधोंसे सुवासित रहनेवाला 'स्तम्भोच्चय' नामक एक शिखर है, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने सजाया और पूजित किया था। इसकी भी यत्नके साथ प्रदक्षिणा तथा पूजा करनी चाहिये, इससे प्राणी सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको जाता है। इसके पश्चात् 'नारायणस्थान'तीर्थपर जाकर फिर 'कुब्जिका' तथा 'वामनस्थान'पर जाये। यहीं 'विघेश्वरी' देवीका भी स्थान है, जो श्रीकृष्णकी रक्षा करनेके लिये यहाँ सदा तत्पर रहती हैं। कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलभद्र और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी। तबसे इन्हें 'सिद्धिदा, 'भोगदा' और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है और कुछ व्यक्ति इन्हें 'संकेतकेश्वरी' भी कहते हैं। इनका दर्शन करनेसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँके कुण्डका स्वच्छ जल सब पापोंको नष्ट कर देता है। इसके बाद 'गोकर्णेश्वरी'-देवीका दर्शनकर सरस्वती नदी और विघ्नराज गणेशके दर्शन करनेसे मनुष्य श्रेयको प्राप्त करता है।

फिर प्रचुर पुण्यवाले 'गार्ग्यतीर्थ', 'भद्रेश्वर-तीर्थ' तथा 'सोमेश्वर' तीर्थमें जाना चाहिये। 'सोमेश्वर'तीर्थमें स्नान करके भगवान् सोमेश्वरका दर्शन फिर 'घण्टाभरणक', 'गरुडकेशव', 'धारालोपनक', 'वैकुण्ठ', 'खण्डवेलक', 'मन्दाकिनी', 'संयमन', 'असिकुण्ड', 'गोपतीर्थ', 'मुक्तिकेश्वर' 'वैलक्षगरुड़' और 'महापातक-नाशन' तीर्थोंमें भी जाना चाहिये।

तत्पश्चात् भगवान् शिवसे यों प्रार्थना करे—'देवेश! आप मुक्ति देनेवाले प्रधान देवता हैं। सप्तर्षियोंने भी पृथ्वीकी परिक्रमाके समय आपकी स्तुति की थी। इसी प्रकार मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूँ।

कृष्णगङ्गा (यमुना) के तटपर श्यामा-श्याम

जिता'का भी दर्शन करे। देवि! फिर 'कंस-का', 'औग्रसेना', 'चर्चिका' तथा 'कचूटी' देवियोंका करे। ये देवियाँ दानवोंको पराजय और देवताओं-जयप्रदान करनेवाली हैं। पुनः देवताओंसे सुपूजित माताओं, गृहदेवियों और वास्तुदेवियोंका दर्शनकर उनसे आज्ञा लेकर यात्रा आरम्भ करे। जबतक मार्गमें 'दक्षिणकोटि'तीर्थ न मिले, तबतक मौन होकर करनी चाहिये। 'दक्षिणकोटि'तीर्थमें स्नान, पितृतर्पण, र्शन और प्रणाम कर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा पूजित ती 'इक्षुवासा'को प्रणाम करे। इसके बाद 'वासपुत्र', स्थल', 'धीरस्थल', 'कुशस्थल', 'पुण्यस्थल' और प्रचुर के नाशक 'महास्थल'पर जाय। ये सभी तीर्थ सम्पूर्ण को दूर भगा देते हैं। फिर 'हयमुक्ति', 'सिन्दूर' और ामक' नामके प्रसिद्ध स्थानोंपर जाय।

इस विषयमें ऋषियोंकी कही हुई एक प्राचीन गाथा सुनी ी है—कहते हैं, कभी कोई राजकुमार घोड़ेपर सवार र मथुराकी सुखपूर्वक परिक्रमा कर रहा था। पर बीचमें नौकरसहित घोड़ेकी तो मुक्ति हो गयी, पर वह राजकुमार संसारमें ही पड़ा रह गया। अतएव जिसे श्रेष्ठ फलकी छा हो, उसे सवारीपर चढ़कर मथुराकी कदापि परिक्रमा हीं करनी चाहिये, क्योंकि इससे मुक्ति नहीं मिलती'। उस 'हयमुक्ति'तीर्थका दर्शन एवं स्पर्श करनेसे पोंसे मुक्ति मिल जाती है। बीचमें 'शिवकुण्ड' ामसे प्रसिद्ध एक महान् तीर्थ है। भगवान् ृष्णको विजयी बनानेवाली 'मल्लिका'—देवीका ी दर्शन करना चाहिये। फिर 'कदम्बखण्ड'की यात्राकर सपरिवार 'चर्चिका' योगिनीका दर्शन करे। फिर पापोंके हरण करनेवाले 'वर्षखात' नामक श्रेष्ठ कुण्डपर जाकर स्नान और तर्पण करना चाहिये।

देवि! यहाँ भूतोंके अध्यक्ष भगवान् महादेवका दिव्य विग्रह है। इसके आगे 'कृष्णक्रीडा-सेतुबन्ध' तथा 'बलिहृद' कुण्ड है, जहाँ श्रीकृष्णने जलविहार किया था। इसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यहीं कुछ आगे गंधोंसे सुवासित रहनेवाला 'स्तम्भोच्चय' नामक एक शिखर है, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने सजाया और पूजित किया था। इसकी भी यत्नके साथ प्रदक्षिणा तथा पूजा करनी चाहिये, इससे प्राणी सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको जाता है। इसके पश्चात् 'नारायणस्थान'तीर्थपर जाकर फिर 'कुब्जिका' तथा 'वामनस्थान'पर जाये। यहीं 'विघेश्वरी' देवीका भी स्थान है, जो श्रीकृष्णकी रक्षा करनेके लिये यहाँ सदा तत्पर रहती हैं। कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलभद्र और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी। तबसे इन्हें 'सिद्धिदा, 'भोगदा' और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है और कुछ व्यक्ति इन्हें 'संकेतकेश्वरी' भी कहते हैं। इनका दर्शन करनेसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँके कुण्डका स्वच्छ जल सब पापोंको नष्ट कर देता है। इसके बाद 'गोकर्णेश्वरी'-देवीका दर्शनकर सरस्वती नदी और विघ्नराज गणेशके दर्शन करनेसे मनुष्य श्रेयको प्राप्त करता है।

फिर प्रचुर पुण्यवाले 'गार्ग्यतीर्थ', 'भद्रेश्वर-तीर्थ' तथा 'सोमेश्वर' तीर्थमें जाना चाहिये। 'सोमेश्वर'तीर्थमें स्नान करके भगवान् सोमेश्वरका दर्शन फिर 'घण्टाभरणक', 'गरुडकेशव', 'धारालोपनक', 'वैकुण्ठ', 'खण्डवेलक', 'मन्दाकिनी', 'संयमन', 'असिकुण्ड', 'गोपतीर्थ', 'मुक्तिकेश्वर' 'वैलक्षगरुड' और 'महापातक-नाशन' तीर्थोंमें भी जाना चाहिये।

तत्पश्चात् भगवान् शिवसे यों प्रार्थना करे—'देवेश! आप मुक्ति देनेवाले प्रधान देवता हैं। सप्तर्षियोंने भी पृथ्वीकी परिक्रमाके समय आपकी स्तुति की थी। इसी प्रकार मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूँ।

कृष्णगङ्गा (यमुना) के तटपर श्यामा-श्याम

ाजिता'का भी दर्शन करे। देवि! फिर 'कंस-नेका', 'औमरेना', 'चर्चिका' तथा 'वधूटी' देवियोंका करे। ये देवियाँ दानवोंको पराजय और देवताओं-विजयप्रदान करानेवाली हैं। पुनः देवताओंसे सुपूजित माताओं, गृहदेवियों और वास्तुदेवियोंका दर्शनकर उनसे आज्ञा लेकर यात्रा आरम्भ करे। जबतक क्रमामें 'दक्षिणकोटि'तीर्थ न मिले, तबतक मौन होकर ा करनी चाहिये। 'दक्षिणकोटि'तीर्थमें स्नान, पितृतर्पण, दर्शन और प्रणाम कर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा पूजित वती 'इक्षुवासा'को प्रणाम करे। इसके बाद 'वासपुत्र', 'स्थल', 'धीरस्थल', 'कुशास्थल', 'पुण्यस्थल' और प्रचुर ोंके नाशक 'महास्थल'पर जाय। ये सभी तीर्थ सम्पूर्ण ोंको दूर भगा देते हैं। फिर 'हयमुक्ति', 'सिन्दूर' और ायक' नामके प्रसिद्ध स्थानोंपर जाय।

इस विषयमें ऋषियोंकी कही हुई एक प्राचीन गाथा सुनी ती है—कहते हैं, कभी कोई राजकुमार घोड़ेपर सवार कर मथुराकी सुखपूर्वक परिक्रमा कर रहा था। पर बीचमें नौकरसहित घोड़ेकी तो मुक्ति हो गयी, पर वह राजकुमार त संसारमें ही पड़ा रह गया। अतएव जिसे श्रेष्ठ फलकी च्छा हो, उसे सवारीपर चढ़कर मथुराकी कदापि परिक्रमा हीं करनी चाहिये, क्योंकि इससे मुक्ति नहीं मिलती'।

उस 'हयमुक्ति'तीर्थका दर्शन एवं स्पर्श करनेसे पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। बीचमें 'शिवकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध एक महान् तीर्थ है। भगवान् कृष्णको विजयी बनानेवाली 'मल्लिका'—देवीका भी दर्शन करना चाहिये। फिर 'कदम्बखण्ड'की यात्राकर सपरिवार 'चर्चिका' योगिनीका दर्शन करे। फिर पापोंके हरण करनेवाले 'वर्षखात' नामक श्रेष्ठ कुण्डपर जाकर स्नान और तर्पण करना चाहिये।

देवि! यहाँ भूतोंके अध्यक्ष भगवान् महादेवका दिव्य विग्रह है। इसके आगे 'कृष्णक्रीडा-सेतुबन्ध' तथा 'बलिहृद' कुण्ड है, जहाँ श्रीकृष्णने जलविहार किया था। इसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यहीं कुछ आगे गंधोंसे सुवासित रहनेवाला 'स्तम्भोच्चय' नामक एक शिखर है, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने सजाया और पूजित किया था। इसकी भी यत्नके साथ प्रदक्षिणा तथा पूजा करनी चाहिये, इससे प्राणी सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको जाता है। इसके पश्चात् 'नारायणस्थान'तीर्थपर जाकर फिर 'कुब्जिका' तथा 'वामनस्थान'पर जाये। यहीं 'विघ्नेश्वरी' देवीका भी स्थान है, जो श्रीकृष्णकी रक्षा करनेके लिये यहाँ सदा तत्पर रहती हैं। कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलभद्र और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी। तबसे इन्हें 'सिद्धिदा, 'भोगदा' और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है और कुछ व्यक्ति इन्हें 'संकेतकेश्वरी' भी कहते हैं। इनका दर्शन करनेसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँके कुण्डका स्वच्छ जल सब पापोंको नष्ट कर देता है। इसके बाद 'गोकर्णेश्वरी'-देवीका दर्शनकर सरस्वती नदी और विघ्नराज गणेशके दर्शन करनेसे मनुष्य श्रेयको प्राप्त करता है।

फिर प्रचुर पुण्यवाले 'गार्ग्यतीर्थ', 'भद्रेश्वर-तीर्थ' तथा 'सोमेश्वर' तीर्थमें जाना चाहिये। 'सोमेश्वर'तीर्थमें स्नान करके भगवान् सोमेश्वरका दर्शन फिर 'घण्टाभरणक', 'गरुडकेशव', 'धारालोपनक', 'वैकुण्ठ', 'खण्डवेलक', 'मन्दाकिनी', 'संयमन', 'असिकुण्ड', 'गोपतीर्थ', 'मुक्तिकेश्वर' 'वैलक्षगरुड' और 'महापातक-नाशन' तीर्थोंमें भी जाना चाहिये।

तत्पश्चात् भगवान् शिवसे यों प्रार्थना करे—'देवेश! आप मुक्ति देनेवाले प्रधान देवता हैं। सप्तर्षियोंने भी पृथ्वीकी परिक्रमाके समय आपकी स्तुति की थी। इसी प्रकार मैं भी आपसे प्रार्थना करता हूँ।

लेकर शालग्राम (मुक्तिनाथ) तीर्थको गया और वहीं अपना निवास बना लिया । वहाँ वह नियमतः पवित्र नदीमें स्नान कर देवताओंका दर्शन करना, उसका नियम था । वहीं उसे एक 'कान्यकुब्ज'के पुरुषके दर्शन हुए, जो बहुधा 'कलग्राम'में भी जाया करता था । बातचीतके प्रसङ्गमें वह सिद्ध प्रायः प्रतिदिन कलग्रामकी प्रशंसा करता । उस ग्रामकी विभूति सुनकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके मनमें भी विचार उठा कि मैं भी उस कलग्राममें चलूँ और उसने सिद्ध पुरुषसे प्रार्थना की— 'द्विजवर ! आप सिद्ध पुरुष हैं, अतः एक बार मुझे भी आप कलग्राम' ले चलनेकी कृपा कीजिये ।'

पृथ्वि ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणकी बात सुनकर सिद्ध पुरुषने कहा—'द्विजवर ! वहाँ तो केवल सिद्ध पुरुष ही जा सकते हैं, सामान्य व्यक्तिका वहाँ जाना सम्भव नहीं है ।' इसपर उस ब्राह्मणने कहा—'मुझे भी आत्मयोगकी शक्ति प्राप्त है, अतः उसके सहारे मैं अपने पुत्रके साथ वहाँ चल सकूँगा ।' फिर तो उस सिद्ध पुरुषने अपने दाहिने हाथमें उस वेदज्ञ ब्राह्मणको तथा बायें हाथमें उसके परम बुद्धिमान् पुत्रको लेकर ऊपर उड़ा और 'कलग्राम'में पहुँच गया । वहाँ पहुँच जानेपर वे पिता-पुत्र अब 'कलग्राम'में ही रहने लगे । बहुत समय व्यतीत हो जानेपर उस ब्राह्मणके शरीरमें व्याधि उत्पन्न हो गयी, वृद्धावस्था तो थी ही, अतः मरनेका निश्चय कर उस धर्मात्मा ब्राह्मणने अपने सुयोग्य पुत्रको सामने बुलाया और कहा—'वत्स ! मुझे गङ्गाके तटपर ले चलो ।' पुत्रने उसे गङ्गाके किनारे पहुँचाया और वह भी अपने पिताके प्रति अपार श्रद्धा-भक्तिके कारण वहीं उसके पास रहने लगा ।

भद्रे ! एक दिनकी बात है, दैववश कान्यकुब्ज-देशके निवासी उस सिद्ध पुरुषके घर वह ब्राह्मणकुमार भोजनके लिये गया । उस सिद्धने ब्राह्मणकुमारका स्वागत-सत्कार किया और न्यायपूर्वक उसकी अर्चना करनेके पश्चात् उसके साथ अपनी कन्याका विवाह भी कर दिया । तबसे वह ब्राह्मणकुमार प्रतिदिन अपने श्वशुरके ही घर जाकर भोजन करने लगा । अपने पिताकी चिन्तनीय स्थिति देखकर उस ब्राह्मणकुमारने एक दिन अपने उस सिद्ध पुरुष श्वशुरसे पूछा—'स्वामिन् ! आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि पिताजीका यह कष्टजर्जित शरीर कब शान्त होगा ?' इसपर उस सिद्ध पुरुषने मुस्कुराकर कहा— 'द्विजवर ! तुम्हारे पिताने अपवित्र अन्न खाया था । इसी आहार-दोषने उन्हें इस दुर्गतिको पहुँचा दिया है । वह अन्न अभी इनके पैरोंमें पड़ा है ।

लड़केने किसी दिन यह बात अपने पिताको बतला दी, अतः शरीरकी जर्जरतासे अत्यन्त दुःखी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने एक दिन गङ्गातटपर पड़े एक पत्थरसे (अन्नदोषयुक्त) अपनी दोनों टाँगें तोड़ दीं, जिससे उसके प्राण निकल गये । उस समय उसका पुत्र अपने श्वशुरके गृह स्नान तथा भोजनादिके लिये गया हुआ था । लौटनेपर उसने जब अपने पिताका शव देखा तो विलाप करने लगा । आपस्तम्ब मुनिने ठीक ही कहा है—'सर्पके काटनेसे, सींग एवं दाँतवाले जानवरोंके मारनेसे तथा सहसा अपने प्राणोंके त्यागनेसे अर्थात् आत्महत्या करनेसे जिसके प्राण जाते हैं, वह मनुष्य पापका भागी होता है ।'

अब वह ब्राह्मण-कुमार जब पुनः अपने श्वशुरके घर गया तो उसे देखते ही श्वशुरने कहा—'अरे ! तुम्हें तो ब्रह्महत्या लगी है, तुम यहाँसे चले जाओ ।' श्वशुरकी बात सुनकर जामाताने कहा—'महानुभाव ! मैंने तो कभी किसी ब्राह्मणकी हत्या नहीं की, फिर आप मुझपर ब्रह्महत्याका दोषारोपण कैसे कर रहे हैं ?' श्वशुरने उससे कहा— 'पुत्रक ! तुम अपने पिताकी ही मृत्युके हेतु बने हो, अतः तुम ब्रह्महत्याके भागी हुए हो । ऐसा नियम है कि 'यदि किसी पतितके साथ संनिकटमें एक वर्षतक शयन, भोजन अथवा वार्तालाप किया जाय तो शुद्ध पुरुष भी पतित

जिसके शरीरमें ब्रह्महत्याके चिह्न थे। उसके हाथसे
। रुधिरकी धारा गिरती रहती थी, जिसे प्रायः सभी
ग देखते थे। वह ब्राह्मण उस हत्यासे मुक्त होनेके
ये सभी तीर्थोंमें भ्रमण-स्नान कर चुका था, फिर
उसकी ब्रह्महत्या दूर न हुई। किंतु इसके बाद जब
ने 'वैकुण्ठ'तीर्थमें स्नान किया तो वह रुधिरधारा स्वतः
: हो गयी। अब उसके सभी सहवासी आश्चर्यसे कहने
गे—'यह कैसे हो गया, यह कैसे हो गया!' उसी समय
ह्मणका रूप धारण कर एक दिव्य पुरुष वहाँ आया
र उसने उन सभी उपस्थित लोगोंसे पूछा—'यहाँसे
ह्महत्या इस ब्राह्मणको छोड़कर कैसे चली गयी?' इसपर
न लोगोंने उसे उस ब्राह्मणके ब्रह्महत्यासे छूटनेके सारे
यत्न और अन्तमें 'वैकुण्ठ-तीर्थ'में स्नानद्वारा हत्यामुक्ति-
ी बात बतला दी, अतः इस तीर्थकी महिमामें किंचित्
ी संदेह नहीं करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद भगवान्
राहने पुनः पृथ्वीसे कहा—'देवि! यहाँ अमित पुण्य
दान करनेवाला 'असिकुण्ड'-नामक एक दूसरा क्षेत्र है,
ब मैं उसे बताता हूँ। उस क्षेत्रमें एक अन्य कुण्ड भी है,
जसे 'गन्धर्वकुण्ड' कहते हैं। वह सभी तीर्थोंमें प्रमुख है।
हाँ अवगाहन करनेवाला गन्धर्वोंके साथ आनन्द भोगता
है और जो उस स्थानपर प्राणोंका त्याग करता है, वह
मेरे लोकमें चला जाता है।

देवि! मथुरा-मण्डलकी सीमा बीस योजनमें है।
और सभीको मुक्ति देनेमें परम समर्थ उस पुरीकी
आकृति कमलके समान है। इसकी कर्णिकाके
मध्यभागमें क्लेशोंके नाशक भगवान् केशव विराजते
हैं। इस स्थानपर जिनके प्राण प्रस्थान करते हैं,
वे मुक्तिके भागी होते हैं। यही क्यों? मथुराके भीतर
कहीं भी जिनकी मृत्यु होती है, वे सभी मुक्त हो
जाते हैं। इस तीर्थके पश्चिम भागमें 'गोवर्धनपर्वत' है,
जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं। वहाँ उन
देवेश्वरके दर्शन प्राप्त कर लेनेपर मनमें संताप नहीं
रह जाता।

पृथ्वि! पूर्वकालमें मान्धाता नामके एक राजा थे।
उनकी भक्तिपूर्वक स्तुतिसे प्रसन्न होकर मैंने उन्हें
यह प्रतिमा सौंपी थी। राजा मान्धाताके मनमें
मुक्ति पानेकी अभिलाषा थी, अतः वे नित्य इस
प्रतिमाकी अर्चना करने लगे। जिस समय मथुरामें
लवणासुरका वध हुआ था, उसी समय वह प्रतिमा
इस तीर्थमें स्थापित की गयी थी। यह विग्रह परम
दिव्य, पुण्यस्वरूप एवं तेजसे सम्पन्न है।

इसके मथुरा आनेकी कथा विचित्र है। कपिल नामके
मुनिने अपार श्रद्धा और मनोयोगपूर्वक मेरी इस वाराही
प्रतिमाका निर्माण किया था। ये विप्रवर कपिल प्रतिदिन
इस प्रतिमाका ध्यान एवं पूजन करते थे। देवि! फिर
इन्द्रने उन मुनिवर कपिलसे इसके लिये प्रार्थना की।
तब कपिलने प्रसन्न होकर यह दिव्य रूपवाली
प्रतिमा उन्हें दे दी। जब इन्द्रको यह प्रतिमा प्राप्त हुई
तो उनके हृदयमें हर्ष भर गया और नित्यप्रति भक्तिके
साथ मेरा पूजन करने लगे। इसके फलस्वरूप शक्रको
सर्वोत्कृष्ट दिव्यज्ञान प्राप्त हो गया। इन्द्रने मेरी इस
'कपिलवराह' नामक प्रतिमाकी बहुत वर्षोंतक पूजा की।
इसके बाद रावणनामक दुर्दान्त राक्षस हुआ। वह महान्
पराक्रमी निशाचर इन्द्रके लोकमें गया और स्वर्गको
जीतनेकी चेष्टा करने लगा और देवराजके साथ
युद्ध करने लगा। उसने देवताओंको परास्त कर
दिया। परम पराक्रमी इन्द्र भी उससे हार गये
और उन्हें बन्दी बनाकर रावण उनके भवनमें
घुस गया। जब वह राक्षस रत्नोंसे सुशोभित इन्द्र-
भवनमें गया तो उसे इन भगवान् 'कपिलवराह'के दर्शन
हुए। देखते ही उसने अपना मस्तक जमीनपर टेक
दिया और दीर्घकालतक इन श्रीहरिकी स्तुति की। इसपर
भगवान् विष्णु सौम्यरूप धारणकर पुष्पक विमानपर आरूढ़

होकर उस राक्षसके पास आये। साथ ही उस विग्रहमें उनका प्रवेश हो गया। रावणने प्रतिमा उठानी चाही, किंतु वह उठा न सका। अब उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने कहा—'भगवन्! बहुत पहलेकी बात है, मैंने शंकरसहित कैलासपर्वतको भी अपने हाथोंसे उठा लिया था। आपकी आकृति तो बहुत ही छोटी है, फिर भी उठानेमें मेरी शक्ति कुण्ठित हो गयी है। देवेश्वर! आपको नमस्कार है। मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें। प्रभो! मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं आपको अपनी सर्वोत्तम पुरी लङ्कामें ले चलूँ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! उस समय मैंने 'कपिलवराह'के रूपमें रावणसे कहा था—'राक्षस! तुम अवैष्णव व्यक्ति हो। तुम्हें ऐसी भक्ति कहाँसे प्राप्त हो गयी?' तब मुझ 'कपिलवराह'की बात सुनकर रावणने कहा—'महात्मन्! आपके पवित्र दर्शनसे ही मुझे ऐसी अनन्य भक्ति सुलभ हो गयी है। देवेश्वर! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है। आप कृपया मेरी पुरीमें पधारें।' पृथ्वि! तब मेरी यह प्रतिमा हल्की हो गयी और रावण तीनों लोकोंमें विख्यात मेरी उस 'कपिलवराह'की प्रतिमाको पुष्पकविमानपर चढ़ाकर लङ्का ले आया और वहाँ उसे प्रतिष्ठित कर दी। तदनन्तर जब भगवान् रामने राक्षसराज रावणको मारकर लङ्काके राजसिंहासनपर विभीषणका अभिषेक किया तो विभीषणने श्रीरामसे प्रार्थना की—'प्रभो! यह सारा राज्य आपका है। आप इसे स्वीकार करें।'

श्रीरामने कहा—'राक्षसराज विभीषण! यह सब कुछ तुम्हारा है, इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। पर राक्षसेश्वर! इन्द्रके लोकसे रावणद्वारा जो 'कपिलवराह'की प्रतिमा यहाँ लायी गयी है, केवल उसे मुझे दे दो। उन वराहभगवान्‌की मैं प्रतिदिन पूजा करना चाहता हूँ। दानवेश्वर! मैं उन्हें अयोध्या ले जाऊँगा।' तब विभीषणने उस दिव्य प्रतिमाको श्रीरामको सादर समर्पित कर दिया। श्रीरामने उसे पुष्पक विमानपर रखकर अपनी नगरी अयोध्याके लिये प्रस्थान किया और अयोध्या पहुँचकर उसकी स्थापना की और प्रतिदिन पूजा करनेका नियम बना लिया। इस प्रकार दस वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीरामने लवणासुरका वध करनेके लिये शत्रुघ्नको आज्ञा दी। उस समय वह दानव मथुरामें रहता था। शत्रुघ्नने महात्मा श्रीरामको प्रणाम किया और अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर मथुराके लिये चल पड़े। लवणासुरका रूप बड़ा भयंकर था। सभी राक्षस उसे अपना नायक मानते थे। फिर भी शत्रुघ्नने उसका वध कर डाला। तदनन्तर शत्रुघ्न मथुरा नगरके भीतर गये, और वहाँ उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी छब्बीस हजार वेदके पारगामी ब्राह्मणोंको बसाया। जहाँ एक भी निवासी वेद नहीं जानता था, वहाँ चारों वेदोंके ज्ञाता पुरुष निवास करने लगे। अब वह ऐसा स्थान पवित्र बन गया, जहाँ एक ब्राह्मणको भोजन कराया जाय तो करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समान फल होने लगा।

पृथ्वि! फिर लौटनेपर जब शत्रुघ्नने लवणासुरके वधका यथावत् समाचार श्रीरामसे कहा, तब उस असुरकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर भगवान् राघवेन्द्रने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'शत्रुघ्न! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी अभिलाषा हो, वह तुम मुझसे वरके रूपमें माँग लो।' उस समय श्रीरामकी बात सुनकर शत्रुघ्नने कहा—'भगवन्! आप मेरे पूज्य हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो मुझे यह भगवान् 'कपिलवराह'की प्रतिमा देनेकी कृपा करें।' तब शत्रुघ्नके वचन सुनकर श्रीरामने कहा—'शत्रुघ्न! तुम इन वराह भगवान्‌की प्रतिमा ले जा सकते हो। तुम्हारे अनुगामी मण्डलीको धन्यवाद और संसारमें पवित्र उस मथुरापुरीको धन्यवाद! मथुराका यह जनसमा

य है, जो सदा 'श्रीकपिलवराह'का दर्शन करेगा। ध्न! जो इन कपिलवराहका दर्शन, स्पर्श एवं ध्यान रता है और इन्हें प्रतिदिन स्नान कराता तथा का अनुलेपन करता है, उसके सब पापोंको ये हर ते हैं। जो इनकी पूजा तथा दर्शन करता है सके समस्त पापोंका नाश करके ये मोक्षतक दे ते हैं।'

पृथ्वि! इस प्रकार कहकर श्रीरामने कपिलवराहकी ह प्रतिमा शत्रुघ्नको दे दी। उसे लेकर शत्रुघ्न मथुरा-री चले गये। और वहाँ उन्होंने मेरे पास ही उसकी स्थापना कर दी। मध्यभागमें स्थापित करके उनकी विधिवत् पूजा की। 'गया'में तथा ज्येष्ठ मासमें 'पुष्कर'क्षेत्रमें पिण्डदान करनेसे एवं 'सेतुबन्ध-रामेश्वर'के दर्शन करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह इनका दर्शन करनेसे पा जाता है। वैसा ही फल विश्रान्तिसंज्ञक, गोविन्द, केशव तथा दीर्घविष्णुके प्रति श्रद्धा होनेपर प्राप्त होता है। मेरा तेज प्रातःकाल 'विश्रान्तिसंज्ञक'में, मध्याह्नके अवसरपर 'दीर्घविष्णु'में तथा दिनके चतुर्थ भाग अर्थात् सायंकालमें 'केशव'में प्रतिष्ठित रहता है। देवि! यह ब्रह्मविद्या (वराहपुराण) परम प्राचीन है। (अध्याय १६३)

अन्नकूट (गोवर्धन)-पर्वतकी परिक्रमाका प्रभाव

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! मथुराके पास ही श्चिम दिशामें दो योजनके विस्तारमें गोवर्धन नामसे सिद्ध एक क्षेत्र है, जहाँ वृक्षों और लताओंसे ण्डित एक सुन्दर सरोवर भी है। मथुराके पूर्व भागमें इन्द्र'तीर्थ, दक्षिणमें 'यम'तीर्थ, पश्चिममें 'वरुण'तीर्थ और उत्तरमें 'कुबेर'तीर्थ—ये चार तीर्थ हैं। भद्रे! वहाँ 'अन्नकुण्ड' नामका भी एक क्षेत्र है, इसकी परिक्रमा करनेवाले मानवका संसारमें फिर जन्म नहीं होता। फिर 'मानसी-गङ्गा'में स्नान कर गोवर्धनगिरिपर भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करना चाहिये। जो इस गोवर्धन-पर्वतकी प्रदक्षिणा कर लेता है ... कर्तव्य

गोवर्धनकी परिक्रमाकी विधि यह है कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी पुण्यमयी एकादशी तिथिके दिन इस पर्वतके पास उपवास रहकर प्रातःकाल सूर्योदयके समय स्नान कर पर्वतपर स्थित श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद 'पुण्डरीक'तीर्थपर जाकर वहाँके कुण्डमें स्नान कर देवताओं और पितरोंका सम्यक् प्रकारसे अर्चन करके भगवान् पुण्डरीकका पूजन करे। वहाँ निर्मल जलसे पूर्ण एक 'अप्सराकुण्ड' है। वहाँ स्नान करनेसे सभी पाप धुल जाते हैं। उस कुण्डपर तर्पण करनेसे राज-सूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल निश्चय ही मिल जाता है।

इन्द्रने घोर वृष्टि की। वह जब व्रजवासियों तथा गौओंके लिये कष्टप्रद होने लगा। श्रीकृष्णने उनकी रक्षा करनेके निमित्त इस श्रेष्ठ पर्वत (गोवर्धन)को हाथपर उठा लिया था। तभीसे यह पर्वत 'अन्नकूट-पर्वत'के नामसे विख्यात हो गया। वहीं आगे एक परम उत्तम 'कदम्बखण्ड' नामका कुण्ड है। वहाँ स्नान करके पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेधकी प्राप्ति होती है। इसके बाद श्री शिलाखण्डसे देवगिरिपर जाय, जहाँ स्नान एवं दर्शन करनेसे 'वाजपेय' यज्ञका फल मिलता है।

देवि! जब 'मानसीगङ्गा'के उत्तर तटपर वृषरूप धारण करनेवाले दैत्यवर श्रीहरिका अरिष्टासुरके साथ घोर युद्ध हुआ था, तब उस असुरने अपना वेष बैलका बना लिया था। उसकी जीवनलीला श्रीकृष्णके ही हाथ समाप्त हुई। उसके रोषपूर्वक एड़ीके प्रहारसे वृषवीर एक तीर्थ बन गया। यह वृषभासुरके वधसे निर्मित तीर्थ अत्यन्त अद्भुत है—यह जानने योग्य बात है। उस वृषभरूपी महासुरको मारनेके पश्चात् श्रीकृष्णने उसी तीर्थमें स्नान किया था। यह जानकर श्रीकृष्णके मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि यह पापी अरिष्टासुर बैलके रूपमें था और मेरे हाथ इसकी हत्या हो गयी है। इतनेहीमें भगवती श्रीराधादेवी श्रीकृष्णके समीप पधारीं। उन्होंने अपने नामसे सम्बद्ध उस स्थानको एक तीर्थरूप कुण्ड बना दिया। तबसे समस्त पापोंको हरनेवाले उस शुभ स्थानकी 'राधाकुण्ड'नामसे प्रसिद्धि हुई। प्रसङ्गतया लोग उसे 'अरिष्टकुण्ड' और 'राधाकुण्ड' भी कहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है। मथुराके पूर्व दिशामें एक तीर्थ 'इन्द्रध्वज'के नामसे विख्यात है, वहाँ स्नान करनेवाले स्वर्गलोकमें जाते हैं। यहाँ परिक्रमा एवं यात्राका पुण्य भगवान्‌को समर्पित कर देना चाहिये। मनुष्यका कर्तव्य है कि प्रारम्भ करते समय 'चक्रतीर्थ'में स्नान करे और ... अवसरपर 'पञ्चतीर्थ-कुण्ड'में स्नान कर ले। वहीं सर्व-पापहारक भी लिङ्ग है। इसके स्पर्शसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

भद्रे! 'अन्नकूटपर्वत'की परिक्रमाका विधान मैं तुमसे बतला दिया। इसी प्रकार इसी वनमें अन्य भी प्रदक्षिणा की जाती है। जो मनुष्य भक्तिसे भगवान् श्रीहरिके इस तीर्थकी प्रदक्षिणाके प्रसङ्गमें गोवर्धनके माहात्म्यको सुनता है, उसे गङ्गामें स्नान करनेका फल मिल जाता है।

भगवान् वराह कहते हैं—पृथ्वि! अब इतिहासयुक्त दूसरा प्रसङ्ग सुनो। मथुराके दक्षिण नगरमें सुशील नामक एक धनी वैश्य रहता था। वैश्यका प्रायः सारा जीवन क्रय-विक्रयमें ही गया। न कभी उसे किसी प्रकारका सत्सङ्ग प्राप्त और न उसने कोई दान-धर्म आदि सत्कर्म ही किये। इस प्रकार गृह-कुटुम्बमें आसक्त रहते ही वह कालवश होकर इस लोकसे चल बसा और उसे प्रेतयोनि मिली और बिना जलवाले तथा छायारहित जङ्गलमें भूख-प्याससे व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटकने लगा। यों घूमता हुआ वह भयंकर प्रेत मरुस्थलमें पहुँच गया और बहुत दिनोंतक वहाँ एक वृक्षपर निवास करता रहा।

पृथ्वि! इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर दैवयोगसे वहाँ एक खरीद-बिक्री करनेवाला वैश्य आया, जिसे देखकर उस प्रेतको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और नाचते हुए वह बोला—'अहो! तुम इस समय मेरा आहार बनकर यहाँ आ गये हो!' अब क्या था, प्रेतकी बात सुनकर वह व्यापारी वैश्य अत्यन्त भयभीत होकर भाग चला, पर प्रेतने दौड़कर उसे पकड़ लिया और कहा—'अब मैं तुम्हें खाऊँगा।' उस प्रेतकी बात सुनकर महाजनने कहा—'राक्षस! मैं अपने परिवारके भरण-पोषणके विचारसे इस घोर वनमें आया हूँ। मेरे घरमें बूढ़े पिता और माता हैं, एक पतिव्रता पत्नी भी है। यदि तुम मुझे खा लोगे तो

उन सबकी मृत्यु हो जायगी।' उस वैश्यकी बात सुनकर प्रेतने पूछा—'महामते! तुम किस स्थानसे यहाँ कैसे आये हो? सब सत्य-सत्य बताओ।'

वैश्यने कहा—'प्रेत! मैं गिरिराज गोवर्धन और महानदी यमुना—इन दोनोंके बीच मथुरापुरीमें रहता हूँ। मैंने पहलेसे जो कुछ सम्पत्ति संचित की थी, वह सब चोर उठा ले गये और मैं सर्वथा निर्धन हो गया, अतः थोड़ा धन लेकर व्यापारके लिये इस मरुस्थलकी ओर आया हूँ। ऐसी स्थितिमें अब तुम्हें जो जँचे, वह करो।

प्रेतने कहा—'वैश्य! तुमपर मुझे दया आ गयी है, अतः अब मैं तुम्हें खाना नहीं चाहता। यदि तुम मेरे वचनका पालन कर सको तो एक शर्तपर मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। तुम मेरा एक कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँसे लौटकर मथुरा जाओ। वहाँ जाकर तुम 'चातुःसामुद्रिक' नाम कूपपर जाकर सविधि स्नान कर मेरे नामका उच्चारण करके अपने घरके धनसे विधिपूर्वक पिण्डदान करो और उन स्नान-दानादि सभी धर्मोंका फल मुझे दे देना। बस, इतना ही काम है, अब तुम सुखपूर्वक जा सकते हो।' प्रेतकी बात सुनकर वैश्यने उत्तर दिया—'प्रेत! मेरे पास एक मकानको छोड़कर घरपर और कोई धन नहीं है।' इसपर प्रेतने उससे मुसकाकर कहा—'वैश्य! मैंने जो तुमसे कहा है कि तुम्हारे घरमें धन है, उसका अभिप्राय यह है—तुम्हारे घरमें एक गड्ढा है और उसमें सुवर्णकी बहुत बड़ी संचित राशि गड़ी है। मैं तुम्हें मथुराका मार्ग भी दिखला देता हूँ।'

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसपर उस वैश्यने पुनः पूछा—'प्रेत! इस योनिमें तुम्हें ऐसा दिव्य ज्ञान कैसे प्राप्त है?'

प्रेतने कहा—'वैश्य! मैं भी पहले जन्ममें मथुराका निवासी था। जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण विराजते हैं। एक दिन प्रातःकाल उन भगवान्‌के मन्दिरपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजनोंका समाज जुटा था। वहाँ एक श्रेष्ठ कथावाचक बैठे थे जो पुराणोंकी पवित्र कथा कह रहे थे। मेरा एक मित्र भी प्रतिदिन वहाँ जाया करता था। उस दिन मित्रकी प्रेरणासे मैं भी वहाँ पहुँच गया। अत्यन्त आदरके साथ समाजने बार-बार मुझे संतुष्ट करनेका प्रयत्न किया। उसमें मैंने सुना कि वहाँ एक पवित्र कूप है जो पापोंको धो डालता है। इस कूपमें चारों समुद्र आ करके प्रतिष्ठित होते हैं। इस कूपके माहात्म्यको सुननेसे महान् फल मिलता है। उस समय सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने कथा-वाचकजीको धन दिया, किंतु मैं मौन रह गया। तब मित्रने मुझसे पुनः कहा—'प्रियवर! अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अवश्य देना चाहिये।' इसपर मैंने उन कथावाचकको एक 'सुवर्ण' (आठ रत्ती सोनेकी एक मुद्रा) प्रदान कर दिया। इसके बाद जब मेरी मृत्यु हुई तो मेरे पूर्वकर्मोंके अनुसार यमराजकी आज्ञासे मुझे यह दुःखद प्रेतयोनि मिली। मैंने पूर्वजन्ममें कभी तीर्थस्नान, दान-हवन अथवा पितरोंके लिये तर्पण नहीं किये थे, इसी कारण मुझे प्रेत बनना पड़ा।' इसपर उस वैश्यने पुनः पूछा—'तुम इस वृक्षकी जड़में रहकर कैसे प्राण धारण करते हो?'

प्रेत बोला—'पहलेकी बातें मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। मैंने उन कथावाचकको जो सुवर्णमुद्रा दी थी, उसीके प्रभावसे मैं इस वृक्षपर भी प्रायः तृप्त रहता हूँ, यद्यपि उसे भी मैंने दूसरेकी प्रेरणासे ही दी थी। इसीका परिणाम है कि प्रेतयोनिमें भी मेरा दिव्य ज्ञान बना है।

वसुंधरे! प्रेतकी बात सुनकर वह वैश्य मथुरापुरी गया और वहाँ पहुँचकर उसने प्रेतके निर्देशानुसार सब कुछ वैसा ही किया। इससे वह प्रेत मुक्त होकर स्वर्ग गया।

देवि! यह मथुरापुरीका माहात्म्य है। यहाँ 'चतुः-सामुद्रिक' कूपपर पिण्डदान करनेसे परमगति प्राप्त होती

है। मथुराके किसी स्थानपर, चाहे वह देवमन्दिर हो या चौराहा—जहाँ कहीं भी किसीकी मृत्यु हो, वह मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। दूसरी जगहके किये हुए पाप तीर्थोंमें जानेपर नष्ट हो जाते हैं, पर जो पाप उन तीर्थस्थलोंमें किये जाते हैं, वे तो वज्रलेप हो जाते हैं। पर यह मथुरापुरीकी ही विशेषता है कि यदि (भूलसे) यहाँ पाप बन भी गया तो वह यहीं नष्ट भी हो जाता है, क्योंकि यह पुरी परम पुण्यमयी है और इसमें यहाँ पापके लिये स्थान नहीं है*। यदि कोई एक पुरुष हजार युगोंतक एक पैरपर खड़ा होकर तपस्या करे और एक व्यक्ति मथुरामें निवास करे तो मथुरावासीका पुण्य ही अधिक होता है। [illegible] करते हैं, वे देवलोकमें जाते हैं। दूसरी जगह [illegible] महात्मा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है, वह फल मथुरामें एक ब्राह्मणकी पूजासे प्राप्त होता है; क्योंकि देवताओंके लिये [illegible] मथुरामें अत्यन्त [illegible] स्थित है। देवताओं, सिद्धों और मुनियोंके जो समुदाय हैं, वे सभी यहाँ चार भुजाओंसे विभूषित मथुरावासी प्राणियोंका दर्शन करने आते हैं; अतः मथुरामें जो मनुष्य हैं, वे विष्णुके ही स्वरूप हैं। (अध्याय १६४)

'असिकुण्ड'-तीर्थ तथा विश्रान्तिका माहात्म्य

धरणीने कहा - प्रभो ! महादेव ! आपके श्रीमुखसे मैं अनेक प्रकारके तीर्थोंका वर्णन सुन चुकी। अब आप मुझे 'असिकुण्ड'के तीर्थका प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं - वसुंधरे ! सुमति नामके एक धार्मिक और विख्यात राजा थे, जिनकी किसी तीर्थ-यात्रा प्रसङ्गमें मृत्यु हो गयी। अब उनके पुत्र विमतिने राज्य सँभाला। इसी बीच एक दिन वहाँ नारदजी पधारे। उसने उनका पाद्य एवं अर्घ्य आदिसे स्वागत किया। फिर बातोंके प्रसङ्गमें मुनिने उससे कहा—'राजन् ! पिताके ऋणको चुका देनेपर ही पुत्र धर्मका भागी हो सकता है।' यों कहकर नारदमुनि वहीं अन्तर्धान हो गये। मुनिके चले जानेपर राजाने अपने मन्त्रियोंसे नारदजीकी बातका अर्थ पूछा। मन्त्रियोंने कहा—'अपनी तीर्थयात्राका फल आप महाराजको समर्पण कर दें तो पिताका ऋण चुक सकता है, क्योंकि उनकी तीर्थयात्रा अधूरी ही रही थी।' नारदजीके कथनका यही आशय था।

देवि ! मन्त्रियोंकी बात सुनकर विमतिने मधु-पुरीमें निवासकी बात सोची, क्योंकि वहाँ प्रायः सभी तीर्थ स्थित हैं। विमतिके मथुरा अनेके पहले तीर्थोंने आपसमें कहा—'इसका सामना करनेमें तो हम सभी असमर्थ हैं; अतः उचित है कि जहाँ भगवान् वराह विराजते हैं, हमलोग उस 'कल्पग्राम'में चलें।' वसुंधरे ! इस प्रकार परामर्श करके सभी तीर्थ 'कल्पग्राम'में चले गये। देवि ! वराहका रूप धारण कर वहाँ मैं आनन्दसे निवास करता हूँ। वे सभी मेरे सामने कल्पग्राममें आये और कहने लगे—'भगवन् ! आप स्वयं श्रीहरि हैं, आप अचिन्त्य, अच्युत एवं जगत्के शास्ता और स्रष्टा हैं। प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो !

भगवान् वराह कहते हैं—वसुधे ! जब तीर्थोंने मेरी इस प्रकार स्तुति की, तब मैंने उनसे कहा—'तीर्थवरो ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

---

* अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति । तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ।
पापं तत्रैव च विनश्यति । एषा पुरी महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते ॥
(वराहपुराण १६५ । ५७-५८)

तीर्थ बोले—'वराहका रूप धारण करनेवाले ईश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें विपत्तिसे अभय प्रदान करनेकी कृपा कीजिये !'

इसपर मैं चलकर मथुरापुरी आया और अपने 'असि' (तलवार)से विमतिका शिरश्छेद कर दिया। तलवारकी नोकसे वहाँ पृथ्वीमें एक गड्ढा हो गया, जो एक दिव्य कुण्डके रूपमें परिवर्तित हो गया और वही 'असिकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रभावसे सुमति और विमति भी मुक्त हो गये।

देवि ! दक्षिणसे उत्तरतकके तीर्थोंकी जो संख्या पहले कह चुका हूँ, उनकी गणना इस असिकुण्डसे आरम्भ करनी उत्तम है। जो मनुष्य द्वादशीके दिन प्रातःकाल सोनेसे उठते ही असिकुण्डमें स्नान करता है, उसे वहाँ वराह, नारायण, वामन और राघवकी सुवर्ण-प्रतिमाओंके दिव्य दर्शन होते हैं। इनका दर्शन करनेवाला फिर संसारमें नहीं आता।

भगवान् वराहने कहा—देवि ! अब विश्रान्ति-तीर्थकी महिमा सुनो। पहले उज्जयिनीमें एक दुराचारी ब्राह्मण रहता था। वह न देवताओंकी पूजा करता, न साधु-संतोंको प्रणाम करता और न तीर्थोंमें जाकर कभी स्नान ही करता था। वह मूर्ख प्रातः और सायंकाल इन दोनों संध्याओंमें भी सोया रहता था। ब्रह्माजीने बताया है कि सम्पूर्ण आश्रमोंमें गार्हस्थ्य ही उत्तम है। जैसे सभी जन्तु पृथ्वीके आश्रित हैं और शिशुओंका जीवन मातापर अवलम्बित है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणिवर्ग गृहस्थोंपर ही आश्रित है। पर वह अधम ब्राह्मण इस आश्रममें भी रहकर सदा चोरी आदिमें ही लगा रहता।

वसुंधरे ! एक बार जब वह रातमें चोरीके लिये इधर-उधर दौड़ रहा था, उसी समय राजाके सैनिकोंने उसे पकड़नेके लिये ललकारा। इसपर वह तेजीसे भागता हुआ एक कुएँमें जा गिरा, जहाँ उसकी जीवनलीला ही समाप्त हो गयी और इस प्रकार वह अगले जन्ममें एक वनमें ब्रह्मराक्षस हुआ।

उसका रूप बड़ा भयंकर था। एक समयकी बात है कि कार्यवश वहीं एक जनसमाज आ गया। उसीमें एक ऐसा ब्राह्मण भी था, जो रक्षोघ्नमन्त्र पढ़कर सबकी रक्षा करता था। अब वह ब्रह्मराक्षस उस ब्राह्मणसे आकर कहने लगा—'विप्र ! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मैं तुम्हें देनेके लिये तत्पर हूँ। बहुत दिनोंके बाद आज मुझे मनचाहा भोजन प्राप्त हुआ है। विप्र ! तुम उठो और यहाँसे अन्यत्र जाकर कहीं सो जाओ। जिससे मैं इन सबको खाकर तृप्त हो जाऊँ। इसपर ब्राह्मणने कहा—'राक्षस ! मैं इन्हींके साथ यहाँ आया हूँ, ये सभी मेरे परिवार ही हैं। अतः मैं इन्हें छोड़ नहीं सकता। तुम यहाँसे चले जाओ। मेरे मन्त्रमें ऐसी शक्ति है कि उसके प्रभावसे तुम इनपर आँखतक नहीं उठा सकते। अस्तु, अब तुम यह बतलाओ कि तुम्हें यह योनि कैसे मिली !'

इसपर वह राक्षस कहने लगा—'विप्र ! केवल अनाचारके कारण मेरी यह दुर्गति हुई है।' इस प्रकार उस राक्षसने अपनी सारी बातें यथावत् ब्राह्मणके सामने स्पष्ट कीं। इसपर उस ब्राह्मणने कहा—'राक्षस ! तुम अब मित्रकी श्रेणीमें आ गये हो। बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ।'

राक्षस बोला—'विप्र ! मेरे मनमें जो बात बसी है, यदि वह तुम देना चाहते हो तो दे दो। तुमने मथुरा-पुरीमें विश्रान्तितीर्थमें जो स्नान किया है, उसका फल मुझे देनेकी कृपा करो, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ।' अब राक्षसके दुःखसे दुःखी होकर वह कृपालु ब्राह्मण बोला—'राक्षस ! विश्रान्ति नामक तीर्थके विषयमें तुम्हें जानकारी कैसे प्राप्त हुई और उसका ऐसा नाम क्यों हुआ ! इसे बतानेकी कृपा करो।'

राक्षस बोला—'ब्राह्मण ! मैं पहले उज्जयिनीमें निवास करता था। एक समयकी बात है, मैं संयोगवश श्रीविष्णुके मन्दिरमें चला गया। उस मन्दिरके पासपर एक कथा कहनेवाले वेदके विद्वान् ब्राह्मण बैठे थे,

[illegible]

मथुरा तथा उसके अवान्तरके तीर्थोंका माहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! भगवान् शिव इस मथुरापुरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं। उनके दर्शनमात्रसे मथुराका पुण्य-फल सुलभ हो जाता है। बहुत पहले इन्होंने पूरे एक हजार वर्षतक मेरी कठिन तपस्या की थी। मैंने संतुष्ट होकर कहा—'हर ! आपके मनमें जो भी हो, वह वर मुझसे माँग लें।

महादेवजी बोले—देवेश ! आप सर्वत्र विराजमान हैं। आप मुझे मथुरामें रहनेके लिये स्थान देनेकी कृपा करें।' इसपर मैंने कहा—'देव ! आप मथुरामें क्षेत्रपालका स्थान ग्रहण करें—मैं यह चाहता हूँ। जो व्यक्ति यहाँ आकर आपका दर्शन नहीं करेगा, उसे कोई सिद्धि प्राप्त न होगी। जिस प्रकार स्वर्गमें इन्द्रकी अमरावतीपुरी है, वैसी ही जम्बूद्वीपमें यह मथुरापुरी है। यद्यपि मथुरा-मण्डलका विस्तार बीस योजनोंका है, पर यहाँ एक-एक पैर रखनेपर भी अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। इस क्षेत्रमें साठ करोड़, छः हजार तीर्थ हैं। गोवर्धन तथा अक्रूरक्षेत्र—ये दो करोड़ तीर्थोंके समान हैं एवं 'प्रस्कन्दन' और 'भाण्डीर'—ये छः कुरुक्षेत्रोंके समान हैं। 'सोमतीर्थ', 'चक्रतीर्थ', 'अविमुक्त', 'यमन', 'तिन्दुक' और 'अक्रूर' नामक तीर्थोंकी 'द्वादशादित्य' संज्ञा है। मथुराके सभी तीर्थ कुरुक्षेत्रसे सौ गुना बढ़कर हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो मथुरापुरीके इस माहात्म्यको समाहित चित्तसे पढ़ता या सुनता है, वह परमपदको प्राप्त होता है और अपने मातृ-पितृ—दोनों पक्षोंके सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है।

मथुराके सभी स्थानोंमें भगवान् श्रीकृष्णके चरण चिह्न सुशोभित हैं। उन्हींके मध्यमें एक देश भी ऐसा है जहाँ चक्रका आधा ही चिह्न दृष्टिगोचर होता है। वहाँ निवासी मुक्ति पानेके अधिकारी हो जाते हैं—इसमें संशय नहीं। श्रीकृष्णकी क्रीडाभूमिके भी दो छोर हैं—एक उत्तर और दूसरा दक्षिण। उन दोनोंके मध्य मध्यमें वे विराजते हैं। आकारमें वे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान और दान करता है उसे वे दिव्य तीर्थ मथुराक्षेत्रका फल प्रदान करनेके लिये सदा उद्यत रहते हैं। यहाँ नियमके अनुसार रहकर जो शुद्ध भोजन करनेवाले व्यक्ति स्नान करते हैं, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है—इसमें कोई संशय नहीं। 'दक्षिणकोटि'से आरम्भ करके 'उत्तरकोटि'पर यात्रा समाप्त करनी चाहिये। वहाँ यज्ञोपवीतके प्रमाणभर भूमिपर जो चलते हैं, उनके द्वारा अनेक कुलोंकी रक्षा हो सकती है।

पृथ्वीने पूछा—प्रभो ! 'यज्ञोपवीत'का क्या माप है? आप यह मुझे स्पष्टतः बतानेकी कृपा करें।

भगवान् वराह कहते हैं—वरवर्णिनि ! अब यज्ञोपवीतकी विधि बताता हूँ, सुनो। मेरी क्रीडाभूमि

े दक्षिणका छोर है, वहाँसे लेकर और उत्तर तेतककी जो सीमा है, इसीको 'यज्ञोपवीत'की सीमा ही गयी है । इसी क्रमसे दक्षिणसे आरम्भ करके उत्तरकी सीमापर यात्रा समाप्त करनी चाहिये । घरसे हर होनेपर जबतक स्नान न करे, तबतक मौन हनेका नियम है । वसुंधरे ! स्नान करनेके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करना परम आवश्यक है । इसके बाद थोड़ा जा सकता है । देवि ! स्नान समाप्त होनेपर क्रमशः देवाधिदेव श्रीकृष्णकी पूजा, यज्ञ, पयस्विनी गौका दान, सुवर्ण एवं धनका वितरण कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये । इस प्रकार धर्म करनेवाला व्यक्ति पुनः संसारमें लौटकर नहीं आता, वह मेरे धामको प्राप्त होता है । इस 'अर्द्धचन्द्र' तीर्थमें जिनकी मृत्यु होती है, या और्ध्वदैहिक क्रिया होती है, वे सभी स्वर्गमें जाते हैं । इस तीर्थमें पुरुषकी हड्डियाँ जबतक रहती हैं, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है । अधिक क्या ! यदि यहाँ गदहेका भी शरीर जला दिया जाय तो वह भी विष्णुका रूप प्राप्त कर सकता है ।

मथुराके प्राणी मेरे ही रूप हैं, उनके तृप्त होनेसे मैं तृप्त होता हूँ—इसमें संशय नहीं । देवि ! इस विषयमें गरुडका एक आख्यान सुनो । एक बार वे श्रीकृष्ण-दर्शनकी अभिलाषासे मथुरा आये और देखा कि यहाँके सभी निवासी कृष्णके रूप थे । अन्तमें वे जैसे-तैसे भगवान्‌के पास पहुँचे और उनकी बड़ी स्तुति की । उनकी स्तुति सुनकर भगवान्‌ने कहा—'गरुड ! तुम किस उद्देश्यसे मथुरा आये हो ? और किसलिये यह मेरी स्तुति कर रहे हो ? सभी बातें स्पष्ट बताओ ।'

गरुड बोले—भगवन् ! मैं आपके कृष्णरूपके दर्शनकी अभिलाषासे मथुरा आया था । पर यहाँके सभी निवासी मुझे आपके ही स्वरूप दीखे । मेरी दृष्टिमें मथुराकी सारी जनता एक समान प्रतीत होने लगी । सबको एक समान देखकर मैं मोहमें पड़ गया हूँ । गरुडकी यह बात सुनकर श्रीहरि मुसकाये और मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले ।

श्रीकृष्णने कहा—'गरुड ! मथुराके निवासियोंका जो रूप है, वह मेरा ही रूप है । पक्षिराज ! जिनके भीतर पाप भरे हैं, वे ही मथुरावासियोंको मुझसे भिन्न देखते हैं ।' इस प्रकार कहकर भगवान् कृष्ण तत्क्षण वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुड भी वहाँसे वैकुण्ठ गये । यहाँ मरकर मनुष्य, पशु, पक्षी अथवा तिर्यग्योनिके कीड़े, पतंगतक भी—सब-के-सब चार भुजावाले विष्णुके रूप बन जाते हैं—यह नितान्त निश्चित है । देवि ! यहाँ आकर श्रीकृष्णकी बहन भगवती एकानंशा, उनकी माता यशोदा-देवकी तथा 'महाविद्येश्वरी' देवियोंका अवश्य दर्शन करना चाहिये । यहाँके विश्रान्तितीर्थ, दीर्घविष्णु और केशव-के दर्शन करनेसे सभी देवताओंके दर्शन एवं पूजनका पुण्य-फल प्राप्त होता है । (अध्याय १६८-६९)

गोकर्णतीर्थ और सरस्वतीकी महिमा

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! अब एक दूसरा प्राचीन इतिहास बताता हूँ, उसे सुनो । बहुत पहले मथुरामें वसुकर्ण नामक एक प्रसिद्ध वैश्य रहता था । उसकी स्त्री सुशीला, बड़ी सद्गुणवती थी, पर उसे कोई संतान न थी । देवि ! एकदिन जब वह वैश्य-पत्नी 'सरस्वती'नदीके तटपर अनेक पुत्रवती स्त्रियोंको देखकर एकान्तमें खिन्न होकर रो रही थी, तो एक मुनिके हृदयमें बड़ी दया आयी और उन्होंने उससे पूछा—'सुभगे ! तुम कौन हो और क्यों रो रही हो ?'

इसपर सुशीलाने कहा—'मैं एक पुत्रहीना स्त्री हूँ, पर मेरी सभी सखियाँ पुत्रवती हैं । यही मेरे खेदका कारण है ।' इसपर मुनिने कहा—'देवि ! भगवान्

गोकर्णकी कृपासे तुम्हें पुत्र मिलेगा । यशस्विनि ! तुम अपने पतिके साथ उनकी आराधना करो और स्नान, दीपदान-उपहार तथा अनेक प्रकारके जप और स्तोत्रोंद्वारा उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करो ।'

मुनिके इस उपदेशको सुनकर वह स्त्री उन्हें प्रणाम कर अपने घर गयी और इससे अपने पतिको अवगत कराया । इसपर वसुकर्णने उससे कहा – 'देवि ! मुनिने जो बात कही है, वह मुझे भी आशाप्रद और अनुकूल जान पड़ती है ।' अब वैश्य-दम्पति प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान कर पुष्प-धूप-दीप आदिके द्वारा गोकर्ण-महादेवकी आराधना करने लगे । इस प्रकार दस वर्ष बीत जानेपर भगवान् शंकर उनपर प्रसन्न हुए और उन्हें रूपवान् एवं गुणी पुत्र-प्राप्तिका वर दिया । फिर दसवें महीनेमें सुशीलाके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ । वसुकर्णने पुत्र-जन्मोत्सवके समय हजार गौओं, बहुत-से सुवर्ण तथा वस्त्रोंका दान किया । उसने भगवान् गोकर्णकी कृपासे उत्पन्न होनेके कारण उस बालकका नाम भी 'गोकर्ण' रखा । फिर यथासमय उसके अन्नप्राशन, चूडाकरण तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराये और वैवाहिक गोदान कराया । अब वसुकर्णका अधिकांश समय भगवान्‌की पूजा-उपासनादिमें बीतने लगा । इधर गोकर्ण भी युवावस्थामें पहुँच गया, पर उसे कोई पुत्र न हुआ, अतः पिताने उसके तीन और विवाह कर दिये । इस प्रकार उसको चार भार्याएँ हो गयीं, जो सभी परम सुन्दरी, [illegible], रूप और उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थीं । फिर भी किसीको संतान-सुख सुलभ न हो सका, अतः गोकर्णने भी पुत्र-प्राप्तिके लिये धर्मकृत्य आरम्भ किये और अनेक वापी, कूप, तालाब, मन्दिर आदि निर्माण कराये । फलोंके लिये [illegible] तथा [illegible] लिये सदाव्रतोंकी भी व्यवस्था की । उसने [illegible] शिखरकी दक्षिण दिशामें भगवान् [illegible] बहुत बड़ा देवायतन (मन्दिर) बनवाया और एक विशाल उद्यान लगवाया, जिसमें अनेक प्रकारके वृक्ष एवं पुष्प भी लगवाये । वे वहाँ नित्य मन्दिरमें जाकर भगवान्‌की पूजा-अर्चा करते । इस प्रकार धर्मनिष्ठामें प्रवृत्त गोकर्णके जब सारे धन-धान्य धीरे-धीरे समाप्त हो गये, तो उसे चिन्ता हुई । वह सोचने लगा कि 'अब महान् कष्टका समय उपस्थित हो गया; क्योंकि माता-पिता तथा आश्रित परिवारके भोजनकी व्यवस्था मुझपर निर्भर है और धनके बिना यह कार्य सुलभ नहीं' उसने पुनः व्यापार करनेके लिये मनमें निश्चय किया और कुछ सहायकोंको साथ लेकर मथुरानगरसे बाहर गया और कुछ क्रय-विक्रयकी सामग्री लेकर वह अपने घर आया ।

एक दिन वह थोड़े विश्रामकी इच्छासे पासके एक पर्वतकी चोटीपर गया, जहाँ बहुत-सी सुन्दर कन्दराएँ थीं । वहाँ जब वह इधर-उधर घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक अनुपम स्थानपर पड़ी, जो स्वच्छ जलसे सम्पन्न था । वहाँ फलवाले वृक्षों और सुगन्धित लता-पुष्पोंकी भी भरमार थी । एक जगह दो पहाड़ोंकी सन्धिमें मालाकी तरह गोलाकार रिक्त स्थान पड़ा था । वहीं उसे ऐसा शब्द सुनायी पड़ा, मानो कोई अतिथिके स्वागतके लिये बुला रहा हो । इतनेमें उसकी दृष्टि एक तोतेपर पड़ी, जो एक पिंजड़ेमें बैठा था । जब गोकर्ण उसके सामने पहुँचा तो उस सुग्गेने कहा—'भद्र ! कृपया आप अपने साथियोंसहित पधारें, इस उत्तम आसनपर बैठें और पाद्य-अर्घ, फल-फूल स्वीकार करें । अभी मेरे माता-पिता यहाँ आकर आप सबका विशेषरूपसे स्वागत करेंगे । कारण, जो गृहस्थ आये हुए अतिथिका स्वागत नहीं करता, उसके पितर निश्चय ही नरकमें गिरते हैं । और जो अतिथियोंका सम्मान करते हैं, उन्हें अनन्त कालतक स्वर्गमें अनन्त भोगोंका अवसर मिलता है । जिस गृहस्थके घर अतिथि आदर [illegible] लौट जाता है,

अपना पाप उस गृहस्थको देकर उसका पुण्य र चला जाता है। अतएव गृहाश्रमीको चाहिये वह सब प्रकारसे प्रयत्न कर अतिथिका स्वागत * । अतिथि समयपर आया हो या असमयमें, वह वान् विष्णुके समान ही पूजाका पात्र है।'

इसपर गोकर्णने तोतेसे पूछा—'पुराणके रहस्यको ननेवाले तुम कौन हो ? वह मनुष्य धन्य है, जिसके स तुम निवास करते हो।' इसपर उस तोतेने अपना इतिहास बताना प्रारम्भ किया। वह बोला—न्य! बहुत पहलेकी बात है एक बार सुमेरुगिरिके उत्तर गमें जहाँ महर्षियोंका निवास है, मुनिवर शुकदेव स्या कर रहे थे। वे प्रतिदिन पुराणों एवं इतिहासोंका चन करते, जिसे सुननेके लिये असित, देवल, र्कण्डेय, भरद्वाज, यवक्रीत, भृगु, अङ्गिरा, तैत्तिरि, प्य, कण्व, मेधातिथि, क्रत, तन्तु, सुमन्तु, वसुमान्, कत, द्वित, वामदेव, अश्वशिरा, त्रिशीर्ष तथा गौतमोदर वं अन्य भी अनेक वेदज्ञ ऋषि-महर्षि सिद्ध देवता, पन्नग और गुह्यक आदि आते तथा धर्मसंहिताके विषयमें शङ्काओं-का निराकरण कराते। उस समय मैं वामदेव मुनिका

'यह बड़ा ही बकवादी है, अतः जैसा इसका नाम है, उसीके अनुसार यह शुक (तोता) पक्षी हो जाय'—बस क्या था, मैं तुरंत तोता बन गया। फिर मुनियोंकी प्रार्थनापर उन्होंने कहा कि—इसका रूप तो पक्षीका होगा, परंतु यह पुराणोंका जानकार होगा और सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थ इसे अवगत होंगे और अन्तमें मथुरामें मरकर यह ब्रह्मलोकको प्राप्त होगा।''

'मान्य! इसके बाद मैं वहाँसे उड़कर इस हिमालय-पर आकर इस गुहामें रहने लगा और सावधानीसे सदा 'मथुरा'का नाम जपता रहता हूँ। फिर मैं एक बहेलियेके चंगुलमें फँस गया, जिससे इस पिंजड़ेमें रहना पड़ता है।' अब गोकर्ण कहने लगा—'भद्र! मैं पापनाशिनी मथुरापुरीमें ही रहता हूँ और व्यापारसे थककर विश्रामके विचारसे यहाँ आया हूँ। इधर इन दोनोंमें इस प्रकारकी बात हो ही रही थी कि शबरकी स्त्री, जो उस समय सो रही थी, कुछ आहट पाकर नींदसे जग गयी। तोतेने उससे कहा—'माँ! ये अतिथिरूपमें यहाँ पधारे हैं, अतः पूज्य हैं। इसपर वह स्वागतका सामान संग्रह करने लगी, इसी बीच शबर भी आ पहुँचा। तोतेने उसे भी अतिथि-सत्कारकी सलाह दी। उसने गोकर्णको

इसके बदले हमें तुम यमुना-स्नानका फल दे सकते हो ! इस तोतेने मुझे बताया है कि कोई नीच योनिमें अथवा जन्मसे राक्षस ही क्यों न हो, यदि वह मथुरा-वास, सङ्गम-स्नान एवं द्वादशीव्रत करता है तो उसे अभीष्ट गति प्राप्त हो सकती है । जो सङ्गममें स्नान कर भगवान् गोकर्णेश्वरका दर्शन करता है, वह यमपुरी नहीं जाता । उसे भगवान् श्रीहरिके लोककी ही प्राप्ति होती है ।' इसपर गोकर्णने स्वीकृति दे दी । (अ यय १७०)

सुग्गेका मथुरा जाना और वसुकर्णसे वार्तालाप

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकार गोकर्णने शबरसे (मथुरास्नानके बदले) उस सुग्गेको प्राप्तकर पीछे नगरके लिये प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उस तोतेको अपने माता-पिताको सौंप दिया तथा उसका परिचय भी दे दिया । फिर कुछ दिनोंके बाद वह व्यापार करनेके लिये उस तोतेको अपने साथ लेकर अपने सहकर्मियोंके साथ समुद्रमार्गसे चल पड़ा ।

इसी बीच एक दिन प्रतिकूल वायु चलनेसे समुद्रमें सहसा भयंकर तूफान आ गया, जिससे सभी पोतयात्री घबड़ा गये और 'गोकर्ण'को लक्ष्यकर कहने लगे—'कोई निकृष्ट एवं पापी व्यक्ति इस जहाजपर चढ़ गया है, जिसके कारण हमारी यह दुर्दशा हुई और हम सभी मरे जा रहे हैं। गोकर्णने तोतेके सामने अपनी दयनीय स्थिति रखी और कहा कि 'पुत्रहीन व्यक्तिकी बड़ी दुर्गति होती है । यहाँ जहाजमें जितने व्यक्ति हैं, उनके बीच मैं ही सबसे बड़ा पापी हूँ । अब क्या करना उचित है—यह तुम्हीं जानते हो ।'

तोतेने कहा—'पिताजी ! आप खेद न करें, मै अभी एक उपाय करता हूँ ।' इस प्रकार गोकर्णको आश्वासन देकर वह तोता उड़ा और ध्रुवकी ओर उत्तर दिशामें बढ़ता गया । आगे एक योजनके ऊँचे पर्वतकी एक चोटी पड़ी, जिसे लाँघकर वह भगवान् विष्णुके पहुँचा, जिसके प्रकाशसे सब ओर वहाँ थीं । उसके भीतर प्रवेश कर उसने कौन देवता विराज रहे हैं ! मैं उनसे जानना चाहता हूँ कि अपार कठिनाईको पार करनेवाले पुण्यात्मा पुरुषकी भाँति मेरे पिताजी इस घोर समुद्रको कब पार कर सकेंगे !'

पृथ्वि ! वह सुग्गा इस चिन्तामें ही था कि वहाँ एक देवी आयी, जिसके हाथमें एक सुवर्णपात्र था । उसने विष्णुकी पूजा की और 'नमो नारायणाय' कहकर एक उत्तम आसनपर बैठ गयी । अभी पलमात्र ही समय बीता होगा कि फिर वहाँ वैसी असंख्य रूपवती देवियाँ आ गयीं और वे सभी नृत्य, गान, वाद्यसे देवार्चन करके वापस चली गयीं । वहीं जटायुके वंशके कुछ पक्षी भी थे । उन्होंने उस सुग्गेसे पूछा—'तुम यहाँ कैसे पहुँचे, क्योंकि अगाध जलसे परिपूर्ण समुद्रको पार करना साधारण काम नहीं है ।' इसपर तोतेने उत्तर दिया—'मेरे पिताजी वायुकी तेज गतिमें समुद्री जहाजपर बड़ी कठिनाईका अनुभव कर रहे हैं । उनकी रक्षाके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ । आपलोग कुछ प्रयत्न करें जिससे वे सुखी हो सकें ।'

पक्षीगण बोले—'जिस मार्गसे हम चलें, तुम उसका अनुसरण करो । हम पादविन्याससे ही समुद्रमें नाक चोंचोंसे मकर-मत्स्यादिका संहार कर डालेंगे । इससे तुम्हारे साथ तुम्हारे पिता भी समुद्र तर जायँगे ।' अब वह तोता उन पक्षियोंके पीछे-पीछे चलता हुआ गोकर्णके पास पहुँचा और उनके प्रयाससे गोकर्ण समुद्रसे बाहर निकल गया । वहाँ पहुँचकर वह उसी देवमन्दिरके सामने गया; जहाँ चमरोंसे सुशोभित एक सरोवर था जिसके

सीढ़ियाँ मणियों और रत्नोंसे बनी थीं। गोकर्णने उस सरोवरमें स्नान कर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया, फिर मन्दिरमें जाकर भगवान् केशवकी आराधना की। वह प्रभूत रत्नोंद्वारा सम्पन्न उस पञ्चायतनमन्दिरमें तोतेके साथ एक ओर छिप गया। इतनेमें ही वे देवियाँ, जिन्होंने पहले उस मन्दिरमें देवार्चन किया था, वहीं पुनः आ गयीं और देवपूजन करने लगीं। फिर उनमेंसे एक प्रधान देवीने कहा—'सखियो! ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाले गोकर्णके खानेके लिये दिव्य फल और पीनेके लिये उत्तम जल प्रदान करो, जिससे तीन महीनोंतक इनकी तृप्ति बनी रहे और इसके शोक, मोह तथा पाप भी नष्ट हो जायँ।'

इसपर उन देवियोंने सब कुछ वैसा ही कर गोकर्णसे कहा—'तुम निश्चिन्त एवं निर्भय होकर इस स्वर्गके समान सुखदायी स्थानमें तबतक निवास करो, जबतक तुम्हारा काम सिद्ध न हो जाय,' और फिर वे वहाँसे चली गयीं। अब गोकर्ण वहाँ इस प्रकार रहने लगा मानो मथुरापुरीमें ही हो। कुछ समयके पश्चात् उसका जहाज भी संयोगवश किनारे लग गया। अब इधर जहाजपरके उसके साथी उसे न देखकर परस्पर कहने लगे—'अरे, पता नहीं गोकर्ण कहाँ चला गया! वह मर गया, जलमें डूब गया अथवा किसी जीवने उसे खा लिया! हो सकता है, लज्जाके कारण वह समुद्रमें डूब गया हो। अब हमलोगोंका यही कर्तव्य है कि उसके पिताके सामने हम ही—पुत्ररूपमें रहें। उपार्जित रत्नोंमेंसे जितना भाग गोकर्णका हो, वह उसके पिताको हम सौंप दें।'

उधर गोकर्णका मन बड़ा शोकाकुल था। उसने तोतेसे माता-पिताके हितकी बात पूछी। सुग्गेने कहा—'मैं तुच्छ पक्षी आपको वहाँ ले चलूँ—यह मेरी शक्तिसे बाहर है। हाँ, मैं आपकी आज्ञासे आकाशमार्गसे मथुरा जाकर तथा आपकी बात उनके पास तथा उनका संदेश आपके पास पहुँचा सकता हूँ।' गोकर्णने कहा—'पुत्र! ठीक है, यही करो तुम मथुरा जाओ और मेरी अवस्था पिताजीसे बता दो और वहाँसे फिर शीघ्र वापस आ जाओ।'

अब वह सुग्गा मथुरा पहुँचा और गोकर्णकी सारी स्थिति उसके पितासे बता दी। इस विषम परिस्थितिको सुनकर माता-पिताको दारुण दुःख हुआ और बहुत देरतक उनकी आँखोंसे अश्रुधारा गिरती रही। फिर उस सुग्गेके प्रति उनके मनमें बड़ा स्नेह हुआ। उन्होंने कहा—'विहंगम! तुमने धर्मके अनुकूल (नीतिपूर्ण) वृत्तान्त कहकर हमारे जीवन-रक्षाके लिये यह बड़ा उत्तम कार्य किया है।' वसुंधरे! इस प्रकार उस पक्षीने अपनी बुद्धि एवं विद्याके बलसे पुत्र-शोकके कारण अत्यन्त दुःखी गोकर्णके वृद्ध माता-पिताको पूर्ण शान्ति प्रदान की। इधर गोकर्णके बीसों साथी भी वसुकर्णके पास प्रभूत रत्न लेकर आये। उनके पास अतुल रत्न-राशि थी, अतः वसुकर्णके प्रति उन सबने पुत्र-जैसा ही व्यवहार किया और फिर उसकी आज्ञा लेकर वे अपने-अपने घर गये। (अध्याय १०१)

गोकर्णका दिव्य देवियोंसे वार्तालाप तथा मथुरामें जाना

भगवान् वराह कहते हैं—शुभे! गोकर्णने दिव्य देवियोंके आदेशसे उस मन्दिरमें तेरह दिनोंकी आराधना आरम्भ की। इस बीच वे देवियाँ भी यथासमय आकर नृत्य करतीं। इसी बीच एक दिन गोकर्णने इन सभी देवियोंको अत्यन्त म्लान, निस्तेज और दुःखी देखा। वह सोचने लगा कि शास्त्रोंमें ठीक ही कहा गया है कि पुत्रहीन पुरुषकी सद्गति नहीं होती। अहो! मुझ पापात्माके दोषसे ये देवियाँ भी इस स्थितिमें आ गयी हैं, मानो इन्हें बुढ़ापेने घेर लिया है।' फिर साहसकर उसने उनसे उदास होनेका

तब देवियोंने कहा—'अनघ ! यदि तुम्हें जानेकी उत्कट अभिलाषा है तो मैं तुम्हें वहाँ हो पहुँचा सकती हूँ । इससे हमें भी मथुरापुरीका सुलभ हो जायगा । तुम इस सुन्दर विमानपर बैठो और इन दिव्य रत्न, आभूषण तथा फलोंको साथ ले लो ।' अब गोकर्ण विमानपर बैठा और उन् श्रीहरिको नमस्कार तथा देवियोंका अभिवादन मथुराके लिये प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँचकर ं अयोध्याके राजाको वे रत्न, फल फूल समर्पित किये । गोकर्णको आया देखकर राजाके मनमें अपार आनन्द । उसने उसे अपने आसनपर ऐसे बैठाया, मानो ह रक्षाका धर्म। व्यक्तिको आसन दे रहा हो और बड़ा र किया । अब गोकर्णने राजासे कहा —'थोड़ी देरके पे आप इस स्थानसे बाहर चलें । अभी मैं एक आश्चर्यमय प दिखाऊँगा और आपसे कुछ निवेदन भी करूँगा ।' का प्रबन्ध हो जानेपर वे सभी देवियाँ भी विमानसे वहाँ गयीं । सभी बात ज्ञात होनेपर राजाने अपनी सेना पुरसे अयोध्या वापस कर और गोकर्णको बारंबार धन्यवाद कर उसकी प्रशंसा कर उसे इच्छानुसार वर दिया । देवियाँ गोकर्णसे—'तुम्हारा कल्याण हो'—यों कहकर दिव्य कमें चली गयीं । अयोध्या नरेशने गोकर्णको बहुत-से त्न, अमूल्य वस्त्र, हाथी, घोड़े तथा अन्य अपार धन भी दिये । 'बाग-बगीचे लगाना परम धर्म है । इससे आश्चर्य-मय महान् फलकी प्राप्ति होती है'—यह सुनकर उस नरेशने अन्य उद्यानोंके आरोपणकी भी व्यवस्था कर दी ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! गोकर्ण न्याय-का पालन करते हुए अब मथुरामें निवास करने लगा । उसने घर पहुँचकर अपने माता और पिताके चरणकमलोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया । उस दोनोंने भी गोकर्णके माता-पिता और चारों सहधर्मिणियोंका अपने वैभव एवं शक्तिके अनुसार सम्मान करके उनकी पूजा की । मथुरामें निवास करनेवाली प्रजाको बाग लगानेकी प्रेरणा दी । फिर गोकर्णने एक यज्ञ आरम्भ किया और ब्राह्मणोंको उत्तम भोज्य एवं अन्य बहुत-से दान दिये । तोतेको हृदयसे लगाकर भली प्रकार उसने देखा और गद्गद होकर कहने लगा—'यह ऐसा जीव है, जिसकी कृपासे मुझे जीवन, सद्म तथा उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई है ।'

गोकर्णने मथुरामें एक मन्दिर बनवाया और उसका नाम 'शुकेश्वर'मन्दिर रखा । उसमें 'शुकेश्वर'के नामसे एक प्रतिमा भी स्थापित की और एक अन्न-वितरण करनेकी संस्था भी खोल दी । उसमें दो सौ ब्राह्मणोंको भोजनके लिये प्रतिदिन अन्न बँटने लगा । गोकर्णने उस संस्थाका नाम 'शुकसत्र' रख दिया । उस स्थानपर जिसकी मृत्यु होती है, वह मुक्त हो जाता है । अन्तमें वह सुग्गा भी विचित्र विमानपर चढ़कर स्वर्ग-लोकमें चला गया । जिस शबरकी कृपासे गोकर्णको वह तोता प्राप्त हुआ था, उसका उद्धार होनेके लिये गोकर्णने त्रिवेणी स्नानका फल अर्पण कर दिया । अतः वह शबर अपनी पत्नीसहित स्वर्ग गया । शुकोदरके साथ ही वे सभी दिव्य विमानपर विराजमान होकर स्वर्ग गये ।

वसुंधरे ! इस प्रकार मैंने तुमसे मथुराके सरस्वती-सङ्गममें स्नानका, गोकर्णेश्वर शिवके दर्शनका, गोकर्ण नामक वैश्यकी अविनाशी सन्तानका तथा उसके सुख-सुखोपभोग और मुक्तिलाभका वर्णन कर दिया ।

(अध्याय १७२-७३)

ब्राह्मण-प्रेत-संवाद, सङ्गम-महिमा तथा वामन-पूजाकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! त्रिवेणी-सङ्गमसे सम्बन्धित एक दूसरा प्रसङ्ग सुनो। पूर्व समयमें यहीं महानाम वनमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाला एक 'महानाम' संज्ञक योगाभ्यासी ब्राह्मण भी रहता था। एक बार तीर्थयात्राके विचारसे उसने मथुराकी यात्रा की, मार्गमें उसे पाँच विकराल प्रेत मिले। उनसे ब्राह्मणने पूछा—'अत्यन्त भयंकर रूपवाले आपलोग कौन हैं? तथा आपलोगोंका ऐसा बीभत्स रूप किस कर्मसे हुआ है?'

अब प्रथम प्रेत बोला—'हमलोग प्रेत हैं और हमारे नाम क्रमशः 'पर्युषित', 'सूचीमुख', 'शीघ्रग', 'रोधक' और 'लेखक' हैं। इनमेंसे मैं तो स्वयं स्वादिष्ट भोजन करता और बासी अन्न ब्राह्मणको दिया करता था, इसी कारण मेरा नाम 'पर्युषित' पड़ा है। इस दूसरेके पास अन्न पानेकी इच्छासे जो ब्राह्मण आते थे उनको यह मार डालता था, अतः यह 'सूचीमुख' है। इस तीसरेके पास देनेकी शक्ति थी, किंतु जब कोई ब्राह्मण इससे याचना करने आता तो यह कहीं अन्यत्र ही चला जाता, अतः लोग इसे 'शीघ्रग' कहते हैं। चौथा माँगनेके डरसे ही अकेले सदा उद्विग्न होकर घरमें ही बैठा रहता था, अतः इसे 'रोधक' कहा जाता है। जो मनुष्यके याचना करनेपर मौन होकर सदा बैठ जाता और पृथ्वीपर रेखा खींचने लगता, वह हम सभीमें अधिक पापी है। उसका अनुरूप नाम 'लेखक' पड़ा है। अभिमान करनेसे 'रोधक' तथा नीचे मुख करनेसे 'लेखक'को यह दशा हुई है। 'लेखक' और 'रोधक' [illegible] 'सूचीमुख' इस समय [illegible] करता है। उसकी गर्दन टेढ़ी, ओठ लम्बे और पेट बड़ा है। [illegible] हमारी ऐसी स्थिति है। विप्र! यदि तुम्हें हमारी इस स्थितिके अतिरिक्त अन्य भी कुछ सुननेकी इच्छा हो या पूछना चाहते हो तो पूछो!'

ब्राह्मणने कहा—'प्रेतो! पृथ्वीके सभी प्राणी जीवन आहारपर ही अवलम्बित है। अतः मैं जानना चाहता हूँ कि तुम लोगोंके आहार क्या हैं?'

प्रेत बोले—'दयालु ब्राह्मण! हमारे जो आहार हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो। वे आहार ऐसे हैं, जिन्हें सुनकर तुम्हें अत्यन्त घृणा होगी। जिन घरोंमें सफाई नहीं रहती, स्त्रियाँ जहाँ कहीं भी थूक-खखार देती हैं और सामान यत्र-तत्र पड़ा रहता है, उन घरोंमें हम नित्य ही भोजन करते हैं। जहाँ पञ्चबलि नहीं होती, वेद नहीं पढ़े जाते, दान धर्म नहीं होता, गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती, भाण्ड इधर-उधर बिखरे रहते हैं, जहाँ-तहाँ भी झूठा अन्न पड़ा रहता है, प्रतिदिन परस्पर लड़ाई होती रहती है, ऐसे घरोंसे हम प्रेत भोजन प्राप्त करते हैं। विप्रवर! तुम तपस्याके महान् धनी पुरुष हो। हम तुमसे पूछना चाहते हैं, मनुष्यको ऐसा कौन-सा कर्म करना चाहिये, जिससे उसे प्रेत न होना पड़े, तुम उसे हमें बतानेकी कृपा करो।'

ब्राह्मण बोला—'एकरात्र, त्रिरात्र, चान्द्रायण, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि व्रत करनेसे पवित्र हुए मनुष्यको प्रेतकी योनि नहीं मिलती। जो श्रद्धापूर्वक [illegible] एवं [illegible] करता है, जो संन्यासीका सम्मान करता है, वह प्रेत नहीं होता। पाँच, तीन अथवा एक वृक्षको भी जो [illegible] जलसे सींचता है तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता है, वह प्रेत नहीं होता। देवता, अतिथि, गुरु एवं पितरोंकी नित्य पूजा करनेवाला व्यक्ति भी प्रेत नहीं होता। क्रोधपर विजय पानेवाला, परम उदार, सदा [illegible] अमर्षशून्य, सन्तोषी और दानी व्यक्ति प्रेत नहीं होता।

* [illegible] पद्मपुराण [illegible] तथा [illegible] होता है।

समता। जो व्यक्ति शुक्ल तथा कृष्णपक्षकी एकादशी-का व्रत करता है तथा सप्तमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको उपवास करता है, वह भी प्रेत नहीं होता। गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदियों तथा देवताओंको जो नित्य नमस्कार करता है, उसे प्रेतकी योनि नहीं मिलती। जो मनुष्य सदा पाखण्ड करता, मदिरा पीता है और चरित्रहीन तथा मांसाहारी है, उसे प्रेत होना पड़ता है। जो व्यक्ति दूसरेका धन हड़प लेता है तथा शुल्क (धन) लेकर कन्या बेचता है, वह प्रेत होता है। जो अपने निर्दोष माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री अथवा पुत्रका परित्याग कर देता है, वह भी प्रेत होता है। इसी प्रकार गो-ब्राह्मण-हत्यारे, कृतघ्न तथा भूमिदारापहारी पापी व्यक्ति भी प्रेत होते हैं।'

प्रेतोंने पूछा—'जो मूर्खतावश सदा अधर्म तथा विरुद्ध कर्म करते हैं, ऐसे पापी व्यक्तियोंके प्रेतत्वमुक्तिके क्या उपाय हैं, आप यह बतानेकी कृपा करें।'

ब्राह्मणने कहा—'महाभागो! बहुत पहले राजा मान्धाताके इसी प्रकार प्रश्न पूछनेपर वसिष्ठजीने उन्हें इसका उपदेश किया था। यह पुण्यमय प्रसङ्ग प्रेतोंको मुक्त कर उन्हें उत्तम गति प्रदान करता है। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीमें किये गये दान, हवन और स्नान—ये सभी लाख गुना फल प्रदान करते हैं। उस दिन सरस्वती-सङ्गममें स्नानकर भगवान् वामनकी पूजाकर विधिपूर्वक कमण्डलुका दान करे। इस वामनद्वादशीके व्रतसे मनुष्य प्रेत नहीं होता और मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह वेदपारगामी 'जातिस्मर' ब्राह्मण होता है। और फिर निरन्तर ब्रह्मचिन्तन करनेसे वह मुक्त हो जाता है।'

"उस दिन भगवान्के षोडशोपचार-पूजनकी विधि है। इसके लिये वह आवाहन करते हुए कहे—

'श्रीपते! आप अपने अंशसे सब जगह विराजमान रहते हैं। मुझपर कृपा करके यहाँ पधारिये और इस स्थानको सुशोभित कीजिये'। फिर—'आप श्रवणनक्षत्रके रूपमें साक्षात् भगवान् ही हैं और आज द्वादशीको आकाशमें सुशोभित हैं। अपनी अभिलाषा-सिद्धिके लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ', ऐसा कहकर श्रवणनक्षत्रका भी पूजन-वन्दन करे। फिर—'केशव! आपकी नाभिसे कमल निकला है और यह विश्व आपपर ही अवलम्बित है, आपको मेरा प्रणाम है'—यह कहकर भगवान् वामनको स्नान कराये। 'नारायण! आप निराकाररूपसे सर्वत्र विराजते हैं। जगद्योने! आप सर्वव्यापी, सर्वमय एवं अच्युत हैं। आपको नमस्कार', यह कहकर चन्दनसे उनकी पूजा करे। 'केशव! श्रवण-नक्षत्र और द्वादशी तिथिसे युक्त इस पुण्यमय अवसरपर मेरी पूजा स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये'—यह कहकर पुष्प चढ़ाये। 'शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले भगवन्! आप देवताओंके भी आराध्य हैं। यह धूप सेवामें समर्पित है'—यह कहकर धूप दे। दीपक-समर्पण करनेके लिये कहे—'अच्युत, अनन्त, गोविन्द तथा वासुदेव आदि नामोंको अलङ्कृत करनेवाले प्रभो! आपके लिये नमस्कार है। आपकी कृपासे इस तेजद्वारा यह विस्तृत अखिल विश्व नष्ट न होकर सदा प्रकाश प्राप्त करता रहे।' नैवेद्य-अर्पण करते हुए कहे—'भक्तोंकी याचना पूर्ण करनेवाले भगवन्! आप तेजका रूप धारण करके सर्वत्र व्याप्त हैं। आपके लिये नमस्कार है। प्रभो! आप अदितिके गर्भमें आकर भूमण्डलपर पधार चुके हैं। आपने अपने तीन पगोंसे अखिल लोकको नाप लिया और बलिका शासन समाप्त किया था। आपको मेरा नमस्कार है।' 'भगवन्! आप अज, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और अग्नि आदिका रूप धारण करके सदा विराजते हैं'—यह कहकर कमण्डलु प्रदान करे।

फिर 'इस कपिला गौके अङ्गोंमें चौदह भुवन स्थित हैं। इसके दानसे मेरी मनःकामना पूर्ण हो'—यह कहकर कपिला दान करे। अन्तमें इस प्रकार कहकर विसर्जन करे—'भगवन्! आपको देवगर्भ कहा जाता है। मैं भलीभाँति आपका पूजन कर चुका। प्रभो! आपको नमस्कार है।' जो विज्ञ मनुष्य श्रद्धासे सम्पन्न होकर जिस-किसी भी भाद्रपद मासमें भगवान् वामनकी इस प्रकार आराधना करेगा, उसे सफलता अवश्य प्राप्त होगी।"

ब्राह्मणने पुनः कहा—"जहाँ यमुना और सरस्वती नदीका सङ्गम हुआ है, उस 'सारस्वत'तीर्थपर जो इस विधिके साथ श्रद्धापूर्वक यह व्रत करता है, उसे सौ गुना फल प्राप्त होता है। मैंने भी श्रद्धाके साथ उस तीर्थका सेवन किया है और क्षेत्रसंन्यासी-के रूपमें वहाँ बहुत दिनोंतक निवास किया है, जिससे तुमलोग मुझे अभिभूत नहीं कर पाये। इस तीर्थकी महिमा तथा इस व्रतके माहात्म्य सुननेसे तुमलोगोंका भी कल्याण होगा।"

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! ब्रा... इस प्रकार वह ही रहा था कि आकाशमें दुन्दुभि... उठी और पुष्प-वृष्टि होने लगी, साथ ही उन... लेनेके लिये चारों ओर विमान आकर ... देवदूतने प्रेतोंसे कहा—'इस ब्राह्मणके ... वार्तालाप करने, पुण्यमय चरित्र सुनने तथा तीर्थ... महिमा सुननेसे अब तुमलोग प्रेतयोनिसे मुक्त... गये। अतः प्रयत्नपूर्वक संत-पुरुषके साथ सम्पर्क... करना चाहिये।'

इस प्रकार देवतीर्थमें अभिषेक करने तथा सन्त... सङ्गमके पुण्यसम्पर्कमात्रसे उन दुरात्मा प्रेतोंको अक्षय ... प्राप्त हो गया और उस तीर्थकी महिमाके श्रवणमात्र... मुक्तिके भागी हो गये। तबसे यह स्थान 'नि... तीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ। उन पाँचों प्रेतोंको मु... देनेवाला यह प्रसङ्ग सम्पूर्ण धर्मोंका तिलक है... जो परम भक्तिके साथ तत्परतापूर्वक इस चरित्र... पढ़ता अथवा सुनता है तथा इसपर श्रद्धा क... है, वह भी प्रेत नहीं होता। (अध्याय १३...)

ब्राह्मण-कुमारीकी मुक्ति

भगवान् वराह कहते हैं—देवि! अब कृष्ण (मानसी) गङ्गासे* सम्बन्धित एक दूसरा प्रसङ्ग सुनो। एक समय श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिने मथुरामें एक दिव्य आश्रम बनाकर बारह वर्षोंतक यमुनाकी धारामें नियमपूर्वक अवगाहनका नियम बनाया। अतः वहाँ चातुर्मास्यके लिये अनेक वेद-तत्त्वज्ञ एवं उत्तम व्रतोंके पालन करनेवाले मुनियोंका आना-जाना बना रहता। वे उनसे श्रौत, स्मार्त्त-पुराणादिकी अनेक शङ्काएँ पूछते और मुनि उनकी शङ्का-का निराकरण करते थे। वहीं 'कालञ्जर' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके प्रधान देवता शिव हैं। उनका दर्शन करनेसे ही 'कृष्णगङ्गा'में स्नान करनेका फल होता है।

इसी बीच ध्यानयोगमें सदा संलग्न रहनेवाले मुनि... व्यास एक बार हिमालय पर्वतपर गये और बदरिकाश्रममें ... समयके लिये ठहर गये। उन त्रिकालदर्शी सिद्ध मुनिने अ... ज्ञाननेत्रसे 'कृष्णगङ्गा'के तटका एक बड़ा ... दिव्य दृश्य देखा, जो इस प्रकार है। नदीके उस ... 'पाञ्चाल'कुलका 'वसु' नामक एक ब्राह्मण रहता था... दुर्भिक्षसे पीड़ित होनेके कारण वह अपनी स्त्रीको ... लेकर दक्षिणा-पथको गया और शिवानदीके दक्षिणतटके ... एक नगरमें ब्राह्मणी-वृत्तिसे रहने लगा। वहाँ उसके ... पुत्र और एक कन्या भी उत्पन्न हुई। कन्याका विवाह... उसने किसी ब्राह्मणके साथ कर दिया। फिर वह ब्राह्मण...

* 'सोमतीर्थ' और 'वैकुण्ठतीर्थ'के बीच 'कृष्णगङ्गा' स्थान है।

नीका कालधर्मको प्राप्त हो गया । उस समय वह लोत्तमा' कन्या ही माता-पिताकी हड्डियाँ लेकर तीर्थ-त्रियोंके साथ मथुरा आयी; क्योंकि उसने पुराणोंमें सुना कि जिसकी हड्डी मथुराके 'अर्द्धचन्द्र'तीर्थमें ती है, वह सदा स्वर्गमें निवास करता है ।' पुत्री उस ब्राह्मणकी सबसे छोटी संतान थी, जो ाहके कुछ ही काल बाद विधवा हो गयी थी ।

उन्हीं दिनों 'कान्यकुब्ज' राजाने मथुराके गर्तेश्वर हादेवके लिये एक 'अन्न-सत्र' खोल रखा था, जहाँ निरन्तर जन-वितरण होता रहता था । उस नरेशके यहाँ नृत्य-न भी होना था। यहाँ वेश्याओंके दुश्चक्रमें पड़कर वह न्या भी उसी कर्ममें लग गयी और थोड़े ही दिनोंके द वह भी उस राजाकी परिजन बन गयी ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! उस 'वसु' ाह्मणके कनिष्ठ पुत्रका नाम पाञ्चाल था, जो बड़ा रूपवान् । वह कुछ व्यापारियोंके साथ अनेक देशों, राज्यों, र्वतों और नदियोंको पारकर यात्रा करते हुए मथुरा हुँचा और वहीं रहने लगा । एक दिन प्रातःकाल छ पुरुषोंके साथ स्नान करनेके लिये वहाँके त्तम 'कालञ्जर' तीर्थमें गया और स्नानकर श्रेष्ठ वस्त्र और मलङ्कारोंसे अलङ्कृत होकर धनके गर्वमें एक यानपर बैठकर देवताका दर्शन करनेके लिये 'त्रिगर्तेश्वर' हादेवके स्थानपर पहुँचा । वहाँ उसकी दृष्टि 'तिलोत्तमा' र पड़ी, जिसे देखकर वह सर्वथा मुग्ध हो गया । फिर उसने उस कन्याकी धाईके द्वारा उसे करोड़ोंकी गाँठे, सैकड़ों सुवर्णके आभूषण तथा रत्नोंके हार भेंट किये । अब वह आसक्तिके कारण प्रायः उसीके घर रहता और जब आधा पहर दिन चढ़ जाता तब अपनी छावनीपर जाता और समीपके 'कृष्णगङ्गोद्भव'-तीर्थमें स्नान करता, इस प्रकार छः महीने बीत गये । एक बार जब वह सुमन्तुमुनिके आश्रमके पास स्नान कर रहा था तो मुनिकी दृष्टि उसपर पड़ गयी । उसके शरीरमें कीड़े पड़ गये थे, जो रोम-कूपोंसे निकलकर जलमें गिर रहे थे । पर स्नान कर लेनेके बाद वह सर्वथा नीरोग हो गया। जब मुनिने इस प्रकारका दृश्य देखा तो उससे पूछा—'सौम्य ! तुम कौन हो, तुम्हारे पिता कौन हैं ? यहाँके रहनेवाले हो, तुम्हारी कौन-सी जाति है तथा तुम दिन-रात किस काममें व्यस्त रहते हो ? यह सब तुम मुझे बताओ ।'

पाञ्चालने कहा—'मैं एक ब्राह्मणका बालक हूँ और मेरा नाम 'पाञ्चाल' है । इस समय मैं व्यापार-कार्यसे दक्षिण-भारतसे यहाँ आया हूँ और प्रातःकाल यहाँ स्नानकर 'त्रिगर्तेश्वर'महादेवका दर्शन करता हूँ । फिर कालञ्जर-क्षेत्रमें आकर आपके चरणोंका दर्शन करता हूँ । तत्पश्चात् छावनीमें लौट जाता हूँ ।'

मुनिने कहा—'ब्राह्मण ! तुम्हारे शरीरमें मैं प्रति-दिन एक महान् आश्चर्यकी बात देखता हूँ । तुम्हारा शरीर स्नानके पहले कृमिपूर्ण और स्नान कर लेनेपर स्वच्छ एवं प्रकाशमय बन जाता है । तुम किसी पाप-प्रपञ्चमें पड़े हो, जो इस तीर्थमें स्नान करनेके प्रभावसे दूर हो जाता है । अब तुम सोच-विचारकर उसका पता लगाकर मुझे बताओ ।'

इसपर पाञ्चालने उस कन्याके घर जाकर उससे एकान्तमें आदरपूर्वक पूछा—'सुभगे ! तुम किसकी पुत्री हो और तुम्हारा कौन-सा देश है ? और यहाँ कैसे आयी तथा रहती हो ?

उस समय पाञ्चालके अनुरोधपूर्वक पूछनेपर भी उस कन्याने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया । कुछ समय बाद पाञ्चालने कहा—'देखो, अब तुम यदि सच्ची बात नहीं कहोगी तो मैं अपने प्राणोंका त्याग कर दूँगा ।' उसके इस निश्चयको देख उस कन्याने अपने माता-पिता, भाई, देश, जाति और कुल सबका यथावत् परिचय देते हुए बतलाया कि 'मेरे पिताके पाँच पुत्र और मैं ये छः संतानें हुई थीं, जिनमें सबसे छोटी संतान मैं ही हूँ । विवाहके बाद मेरे पतिदेवका

शीघ्र ही देहान्त हो गया। पाँचवें भाईने जो सबसे छोटा था, वह अपनी पुत्रीको बचपनमें ही व्यभिचारिणीके साथ विदेश चला गया। उसके पाँव अंगार में ... गये। अतएव कुछ समयतक ... साथ रहकर मैं इस तीर्थमें उसके अभिषेकके लिये चली आयी। यहाँ कुछ वेश्याओंके कुलको पाकर मैं रह रहा हूँ। मैंने कुलका विशेष धर्म अपनाकर अपने कुलको नष्ट कर दिया। यही नहीं, मातृ पितृ और पति—इन तीनों कुलोंके इक्कीस पीढ़ियोंको घोर नरकमें गिरा दिया।'

इस प्रसङ्गको सुनकर पाञ्चालको तो मूर्च्छा आ गयी और वह भूमिपर गिर पड़ा। वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ भी ब्राह्मण-कुमारीको समझा-बुझाकर उसके चारों ओर खड़ी हो गयीं और फिर अनेक प्रकारके उपायोंका प्रयोग कर उन सबोंने उसकी मूर्च्छाको दूर किया। जब उसके शरीरमें चेतना आयी तो उन्होंने उससे बेहोशीका कारण पूछा। इसपर उस ब्राह्मणकुमारने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर इस पापसे उसके मनमें घोर चिन्ता व्याप्त हो गयी और वह प्रायश्चित्तकी बात सोचने लगा। उसने कहा—'मुनियोंने विचार करके यह आदेश दिया है कि यदि कोई द्विजाति ब्राह्मणकी हत्या कर दे अथवा मदिरा पी ले तो उसका प्रायश्चित्त शरीरका परित्याग ही है। माता, गुरुकी पत्नी, बहन, पुत्री, और पुत्रवधूसे अवैध सम्बन्ध रखनेवालेको जलती अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसकी शुद्धिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

जब पाञ्चालीने अपने बड़े भाईके मुखसे ही मुनिकथित यह प्रायश्चित्त सुना तो उसने भी अपने सौभाग्यके सम्पूर्ण आभूषण, रत्न-वस्त्र, धन और धान्य आदि जो कुछ भी वस्तुएँ संचित कर रखी थीं, वह सब-का-सब ब्राह्मणोंमें बाँट दिया। साथ ही बताया कि 'इस द्रव्यसे कालञ्जरका शृङ्गार तथा एक उद्यानका निर्माण करना चाहिये।' फिर उसने देव-... आप दूसरेके लिये भृगुतुङ्गतीर्थमें स्नानकर पूर्व निवेदन करूँ।'

उधर पाञ्चालने भी सुमन्तुमुनिके पास ... उन्हें प्रणामकर भृगुके तटपर ... भृगुके मित्रों ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें दान देकर अपनी शेष सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी और विधिके अनुसार अपनी ... सत्कारके लिये भी व्यवस्था कर ली। भृगुतुङ्गपर उसने ... दर्शनकर, उन्हें प्रणाम किया। सुमन्तुमुनिके चरणोंको पकड़कर प्रार्थना की—'... मैं अपनी ... दोषसे महान् पापी बन गया। मुझ कुलनाशकका स्वभगिनीके साथ ही दुर्दैववश सम्बन्ध हो गया। अब मैं अपने शरीरका दाह करना चाहता हूँ। आप आज्ञा दें।'

इस प्रकार सुमन्तुमुनिको अपना पाप सुनाकर चिता धूम ठीक कर वह अग्निमें प्रवेश करना ही चाहता था कि सहसा आकाशवाणी हुई—'ऐसा दुःसाहस मत करो; क्योंकि तुम दोनोंके पाप सर्वथा धुल गये। जहाँ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने सुखपूर्वक लीला की है तथा जो स्थान उनके चरणके चिह्नसे चिह्नित है वह तो ब्रह्मलोकसे भी श्रेष्ठ है। दूसरी जगह किये हुए पाप इस तीर्थमें आते ही नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य 'गङ्गा-सागर'में एक बार स्नान करनेसे ब्रह्महत्या जैसे पापसे छूट जाता है। पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं उन सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल 'पञ्चतीर्थ'में स्नान करनेसे मिल जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। शुक्ल और कृष्णपक्षकी एकादशियोंको विश्रान्ति-तीर्थमें, द्वादशीको 'सौकर' तीर्थमें, त्रयोदशीको नैमिषारण्यमें, चतुर्दशीको प्रयाग तथा कार्तिकी एकादशीको पुष्करमें स्नान करना चाहिये। इससे सारे पाप दूर हो जाते हैं।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर पाञ्चालने सुमन्तुसे पूछा—मुने ! आप मुझे बतानेकी कृपा करें कि मैं आगमें प्रवेश करूँ या 'त्रिरात्र', 'कृच्छ्र' या 'चान्द्रायण' व्रत करूँ ?'

मुनिने आकाशवाणीकी बातोंपर विश्वासकर उसे शुद्ध धर्माचरणका आदेश दिया। देवि ! जो मनुष्य श्रद्धासे इस माहात्म्यका श्रवण एवं पठन करेगा, वह कभी भी पापसे लिप्त नहीं हो सकता, साथ ही उसके सात जन्म पहलेके भी किये हुए पाप दूर भाग जाते हैं और वह जरा-मरणसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको चला जाता है।

(अध्याय १७५-७६)

साम्बको शाप लगना और उनका सूर्याराधन-व्रत

भगवान् वराह कहते हैं—शुभाङ्गि ! अब मैं कृष्णकी कथाका वह अद्भुत प्रसङ्ग कहता हूँ, जो द्वारकापुरीमें घटित हुआ था। साथ ही साम्बके शापकी बात भी सुनो। एक बार जब भगवान् सानन्द द्वारकामें विराजमान थे तो नारद मुनि वहाँ पधारे। श्रीभगवान्ने उन्हें आसन, अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क एवं गौ समर्पण किये। अनन्तर मुनिने उन्हें यह सूचना दी—कि 'मैं आपसे एकान्तमें कुछ कहना चाहता हूँ और एकान्तमें कहा—'प्रभो ! आपका नवयुवक पुत्र साम्ब बड़ा वाग्मी, रूपवान्, परम सुन्दर तथा देवताओंमें भी आदर पानेवाला है। देवेश्वर ! आपकी मनुष्य हजारों स्त्रियाँ भी उसको देखकर क्षुब्ध हो जाती हैं। आप साम्बको और उन देवियोंको यहाँ बुलाकर परीक्षा करें कि वस्तुतः क्षोभ है या नहीं।' इसके पश्चात् सभी स्त्रियाँ तथा साम्ब श्रीकृष्णके सामने आये और हाथ जोड़कर बैठ गये। क्षणभरके बाद साम्बने पूछा—'प्रभो ! आपकी क्या आज्ञा है ?' वस्तुतः साम्बकी सुन्दरताको देखकर श्रीकृष्णके सामने ही उन स्त्रियोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न हो गया था।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'देवियो ! अब तुम सभी उठो और अपने स्थानको जाओ।' श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर वे देवियाँ अपने-अपने स्थानको चली गयीं। पर साम्ब वहीं बैठे रहे। उनके शरीरमें कँपकँपी बँध रही थी। श्रीकृष्णने कहा—'नारदजी ! स्त्रियोंका स्वभाव बड़ा ही विलक्षण है।'

नारदजीने कहा—'प्रभो ! इनकी इस प्रवृत्तिसे सत्यलोकमें भी आपकी निन्दा हो रही है, अतः अब साम्बका परित्याग ही उचित है। भगवन् ! संसारमें आपकी तुलना करनेवाला दूसरा कौन पुरुष है ! आप ही इसे कर सकते हैं।'

वसुंधरे ! नारदके इस कथनपर श्रीकृष्णने साम्बको रूपहीन होनेका शाप दे दिया, जिससे साम्बके शरीरमें कुष्ठ-रोग हो गया और उनके शरीरसे दुर्गन्धयुक्त रक्त गिरने लगा। अब उनका शरीर ऐसा दिखायी पड़ने लगा, मानो कोई छिन्न-भिन्न अङ्गवाला पशु हो। फिर नारदजीने ही साम्बको शापसे छूटनेके लिये सूर्यकी आराधनाका उपदेश दिया और साथ ही कहा—'जाम्बवती-नन्दन ! तुम्हें वेद और उपनिषदोंमें कहे हुए मन्त्रोंका उच्चारण करके विधिके अनुसार सूर्य-नमस्कार करना चाहिये। इससे वे संतुष्ट हो जायँगे।' फिर सूर्यसे तुम्हारा समुचित संवाद होगा, जिस प्रसङ्गको लेकर 'भविष्यपुराण' निर्मित होगा। उसे मैं ब्रह्माजीके लोकमें जाकर उनके सामने सदा पाठ करूँगा। फिर सुमन्तुमुनि मर्त्यलोकमें मनुके सामने उसका कथन करेंगे। इस प्रकार उसका सभी लोकोंमें प्रचार-प्रसार होगा।'

साम्बने कहा—'प्रभो ! मेरी स्थिति तो ऐसी है, मानो मांसका एक पिण्ड हो। फिर उदयाचलपर मैं जा ही कैसे सकता हूँ। यह आपकी ही कृपा है कि मुझे

यह दुःख भोगना पड़ रहा है, नहीं तो वस्तुतः मैं विशुद्ध दोषरहित था।'

नारदजी बोले—साम्ब ! उपवासपूर्वक आप सूर्यकी आराधना करनेसे जैसा फल मिलता है, वैसा ही फल मथुराके सम्पूर्ण तीर्थोंपर सुलभ हो जाता है। यहाँ भगवान् सूर्यकी प्रतिमाओंका प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में जो पूजन करता है, वह तुरंत ही साम्राज्य-जैसा फल प्राप्त कर सकता है। प्रातः, मध्याह्न और सायं – इन तीनों पवित्र समयोंमें सूर्यमन्त्रका जप तथा उपवाससे उनके स्तोत्रपाठसे सारे पाप धुलकर कुष्ठ आदि रोगोंसे भी मुक्ति मिल जाती है।'

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मुनिवर नारदसे ऐसा कहनेपर महाबाहु साम्बने श्रीकृष्णसे आज्ञा प्राप्त करके भुक्तिमुक्ति फल देनेवाली मथुरामें आकर देवर्षि नारदकी बतायी विधिके अनुसार प्रातः, मध्याह्न, और सायंकालमें उन त्रसूर्योंकी पूजा एवं दिव्य स्तोत्रद्वारा उपासना आरम्भ कर दी। भगवान् सूर्यने भी योगबलकी सहायतासे एक सुन्दर रूप धारण कर साम्बके सामने आकर कहा— 'साम्ब ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम मुझसे कोई वर माँग लो। मेरे कल्याणकारी व्रत एवं उपासनापद्धतिके प्रचारके लिये भी इसे करना परम आवश्यक है। मुनिवर नारदने तुम्हें जो स्तोत्र बताया है और जिसे तुमने मेरे सामने व्यक्त किया है, उस तुम्हारी 'साम्बपञ्चाशिका'-स्तुतिमें वैदिक अक्षरों एवं पदोंसे सम्बद्ध पचास श्लोक हैं। वीर ! नारदजीद्वारा निर्दिष्ट इन श्लोकोंद्वारा तुमने जो मेरी स्तुति की है, इससे मैं तुमपर पूर्ण संतुष्ट हो गया हूँ।'

वसुधे ! यह कहकर भगवान् सूर्यने साम्बके शरीरका स्पर्श किया। उनके छूते ही साम्ब दिव्यगुण होकर चमक उठे। फिर तो वे ऐसे दिखने लगे, मानो दूसरे सूर्य ही हों। उसी क्षण दाल्भ्य मुनि माध्यंदिन यज्ञ करना चाहते थे। भगवान् सूर्य साम्बको लेकर उनके, यहीं गये और वहाँ 'माध्यंदिनसंहिता'का अध्ययन कराया। तबसे इनका एक नाम 'माध्यंदिन' पड़ गया। श्रीकृष्णके दक्षिण भागमें यह यज्ञ सम्पन्न हुआ था। अतएव इस स्थानको 'माध्यंदिनीयतीर्थ' कहते हैं। यहाँ स्नान एवं दर्शन करनेके प्रभावसे मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। इनके प्रसन्न करनेपर सूर्यने जो प्रवचन किया, वही 'भविष्यपुराण'के नामसे प्रख्यात पुराण बन गया। यहाँ साम्बने 'कृष्णगङ्गा'के दक्षिण तटपर मध्याह्नके सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की। जो मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और अस्त होते समय इन सूर्यदेवका यहाँ दर्शन करता है, वह परम पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त सूर्यकी एक दूसरी उत्तम प्रातःकालीन विख्यात प्रतिमा भगवान् 'कालप्रिय' नामसे प्रतिष्ठित हुई। तदनन्तर पश्चिम भागमें 'मूलस्थान'में अस्ताचलके पास 'मूलस्थान'नामक प्रतिमाकी प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार साम्बने सूर्यकी तीन प्रतिमाएँ स्थापित कर उनकी प्रातः, मध्याह्न एवं संध्या—तीनों कालोंमें उपासनाकी भी व्यवस्था की*। देवि ! साम्बने 'भविष्यपुराण'में निर्दिष्ट विधिके अनुसार भी अपने नामसे प्रसिद्ध एक मूर्तिकी यहाँ स्थापना करायी। मथुराका यह श्रेष्ठ स्थान 'साम्ब-

* 'वराहपुराण'का यह साम्बोपाख्यान या 'सूर्योपासनाध्याय' बड़े महत्त्वका है। इसमें सूर्यभगवान्‌के अत्यन्त दिव्य स्तोत्र 'साम्ब-पञ्चाशिका'-स्तुति तथा कोणार्क, उज्जयिनी एवं मुल्तानके प्राचीन भव्य सूर्य-मन्दिरोंका भी संकेत है, जिनकी प्रतिनिधिभूत अर्चाएँ मथुरामें प्रतिष्ठित थीं। इस विषयमें अल्बरूनीके "Indica" p. 298 का—'Multān was originally called Kāśyapapura, then Hamsapur, then Bagpur, then Sāmbapur and then Mulsthan' यह कथन बड़े महत्त्वका है, जिसमें मुल्तान नगरके पूर्वनाम 'काश्यपपुर' या सूर्यपुर, फिर साम्बपुर तथा मूलस्थान आदि निर्दिष्ट हैं। इसीके खण्ड १ पृष्ठ ११६-७ पर अल्बरूनीने इसके मन्दिर तथा प्रतिमाध्वंसकी कथाका—'Jalam Iben shaiban the usurper, broke the idol into pieces and killed its priests.' आदि शब्दोंमें विस्तृत वर्णन किया है।

के नामसे प्रसिद्ध है । सूर्यकी आज्ञाके अनुसार वहाँ यात्राका प्रबन्ध हुआ । माघ मासकी सप्तमी तिथिके । जो सम्पूर्ण राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे मुक्त मानव उस य स्थानमें रथ-यात्राकी व्यवस्था करते हैं, वे सूर्यमण्डलका भेदन कर परमपद प्राप्त करते हैं । देवि ! साम्बके शापका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें बतलाया । इसके श्रवणसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।

(अध्याय १७७)

शत्रुघ्नका चरित्र, सेवापराध एवं मथुरामाहात्म्य

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! प्राचीन समयकी । है—मथुरामें लवण नामक एक राक्षस था । ब्राह्मणोंकी ाके लिये महात्मा शत्रुघ्नने उसका वध किया था । उस नकी बड़ी महिमा है । मार्गशीर्षकी द्वादशी तिथिके अवसर- वहाँ संयमपूर्वक पवित्र रहकर स्नान करना और शत्रुघ्नके रेत्रका वर्णन करना चाहिये । लवणासुरके वध करनेसे त्रुघ्नको अपने शरीरमें पापकी आशङ्का हो गयी थी । उसे दूर रनेके लिये उन्होंने सुस्वादु अन्नोंसे ब्राह्मणोंको तृप्त किया । इस समाचारसे भगवान् श्रीरामको अत्यन्त आनन्द मिला । अतः अपनी सेनाके साथ अयोध्यासे यहाँ आकर न्होंने इसके उपलक्ष्यमें महान् उत्सव किया । अगहन सके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिके दिन भगवान् राम थुरा पहुँचे थे और वहाँ एकादशी तिथिके पुण्य- वसरपर उपवास करके 'विश्रान्ति-तीर्थ'में सपरिवार नान कर महान् उत्सव मनाया । फिर ब्राह्मणोंको तृप्त रके स्वयं भोजन किया । उस दिन जो वहाँ उत्सव नाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर पितरोंके साथ दीर्घकालतक अर्थात् प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें नेवास करता है ।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे ! मन, वाणी अथवा कर्म किसी प्रकारसे भी पाप-कर्ममें रुचि रखना अपराध है । दन्तधावन न करने, राजान्न खाने, शवस्पर्श करने, सूतकवाले व्यक्तिका जलग्रहण करने एवं उसका स्पर्श तथा मल, मूत्र आदि क्रियाओंसे भी अपराध बन जाते हैं । अवाच्यवाणी बोलना, अभक्ष्य-भक्षण करना, पिण्याक (हींग)को भोजनमें सम्मिलित करना, दूसरेके मलिन वस्त्र, नीले रंगवाला वस्त्र धारण करना, गुरुसे असत्य भाषण, पतित व्यक्तिका अन्न खाना तथा भोजन न देनेका भय उत्पन्न करना ये—सब सेवापराध हैं । उत्तम अन्न स्वयं खा लेना, बत्तक आदिका मांस खाना और देव मन्दिरमें जूता पहनकर जाना भी अपराध है । देवताकी आराधनामें जिस फूलको शास्त्रमें निषिद्ध माना गया है, उसे काममें लेना, निर्माल्य-को विग्रह (मूर्ति) परसे हटाये बिना ही अस्त-व्यस्त होकर अँधेरेमें भगवान्‌की पूजा करना भी अपराध है । मदिरा पीना, अन्धकारमें इष्टदेवताको जगाना, भगवान्‌की पूजा एवं प्रणाम न करके सांसारिक काममें प्रवृत्त हो जाना—ये सभी अपराध हैं । वसुधे ! इस प्रकारके तैंतीस अपराधोंको मैंने स्पष्ट कर दिया । इन अपराधोंसे युक्त पुरुष परम प्रभु श्रीहरिका दर्शन नहीं पा सकता । यदि वह दूर रहकर भी पूजा एवं नमस्कार करे तो उसका वह कर्म राक्षसी माना जाता है ।

क्रमशः इनकी शुद्धिका प्रकार यह है—मैले वस्त्रसे दूषित व्यक्ति एक रात, दो रात अथवा तीन रातोंतक व्रत पहने ही स्नान करे और पञ्चगव्य पिये तो उसकी शुद्धि हो जाती है । नीला वस्त्र पहननेके पापसे बचनेके लिये मानव गोमयद्वारा अपने शरीरको भलीभाँति मले और 'प्राजापत्य' व्रत करे तो वह पवित्र हो जाता है । गुरुके प्रति बने हुए पापसे मुक्तिके लिये दो 'चान्द्रायण' व्रत करनेका

विधान है। लोग पतितका अन्न खा लेनेपर 'चान्द्रायण'* और 'पराक'व्रत† करनेसे शुद्ध होते हैं। जूता पहनकर मन्दिरमें जानेवाला मानव 'कृच्छ्रपाद'व्रत और दो दिन उपवास करे। फल तथा नैवेद्यके अभावमें भी पञ्चामृतसे भगवान्‌का स्नान एवं स्पर्श करके नमस्कार करनेकी विधि है। मदिरा-पानके पापसे शुद्ध होनेके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको चाहिये कि चार 'चान्द्रायण' व्रत तथा बारह वर्षोंतक तीन 'प्राजापत्य' व्रत करे।

अथवा 'सौकरवक्षेत्र'में आकर उपवास एवं गङ्गामें स्नान करे। उसके प्रभावसे प्राणी शुद्ध हो सकता है। ऐसे ही मथुरामें भी स्नान-उपवास करनेसे शुद्धि सम्भव है। जो मनुष्य इन दोनों तीर्थोंका उक्त प्रकारसे एक बार भी सेवन करता है, वह अनेक जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। इन तीर्थोंमें स्नान, जलपान तथा भगवान्‌के ध्यान-धारणा, कीर्तन, मनन-श्रवण एवं दर्शन करनेसे भी पातक पलायन कर जाते हैं।

पृथ्वीने पूछा—सुरेश्वर! मथुरा और सूकर—ये दोनों ही तीर्थ आपको अधिक प्रिय हैं। पर यदि इनसे भी बढ़कर कोई अन्य तीर्थ हो तो अब उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुधे! छोटी-छोटी नदियोंसे लेकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, उन सबमें 'कुब्जाम्रक' तीर्थ श्रेष्ठ माना जाता है। मैं... श्रद्धासे सम्पन्न सत्पुरुष सदा उसकी प्रशंसा करते हैं। कुब्जाम्रकसे भी कोटिगुना अधिक परम गुह्य 'सौकर' तीर्थ है। एक समयकी बात है—मार्गशीर्षके ... पक्षकी द्वादशी तिथिको मैं 'सितवैष्णव'तीर्थमें गया ... वहाँ पुराणोंमें श्रेष्ठ एक 'गङ्गासागरिक' नामका पुराण देखा है। इसमें मेरे मथुरामण्डलके तीर्थोंकी अत्यन्त गु... महिमा वर्णित है। 'सिततीर्थसे' परार्द्धगुणा फ... यहाँ सुलभ होना है—इसमें कोई संशय नहीं है। 'कुब्जाम्रक' प्रभृति समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करनेके पश्चा... मैं मथुरामें आया और एक स्थानपर बैठ गया। ... उस स्थानका नाम 'विश्रान्तितीर्थ' पड़ गया। वह स्था... गोपनीयोंमें भी परम गोपनीय है। वहाँ स्नान करनेसे प... उत्तम फल मिलता है। गतिका अन्वेषण करनेवा... व्यक्तियोंके लिये मथुरा परम गति है। मथुरामें विशेष क... 'कुब्जाम्रक' और 'सौकर' क्षेत्रकी महिमा है। सांख्य... और कर्मयोगके अनुष्ठानके विना भी इन तीर्थोंकी कृ... मानव मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। यो... से सम्पन्न विद्वान् ब्राह्मणके लिये जो गति निश्चित है, वही गति मथुरामें प्राण-त्याग करनेसे साधारण व्यक्ति... भी प्राप्त हो जाती है। सुव्रते! वस्तुतः मथुरासे उ... न कोई दूसरा तीर्थ है और न भगवान् केशवसे ब... कोई देवता है। (अध्याय १७१)

श्राद्धसे अगस्तिका उद्धार, श्राद्ध-विधि तथा 'ध्रुवतीर्थ'की महिमा

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब पितरोंसे सम्बद्ध एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, उसे सुनो। मथुरापुरीमें पहले एक धार्मिक एवं शूर-वीर राजा थे, जिनका नाम चन्द्रसेन था। उनकी दो सौ रानियाँ थीं, जिनमें 'चन्द्रप्रभा' सबसे गुणवती थी। उस... सौ दासियाँ थीं, जिनमें एकका नाम 'प्रभावती' था... उस दासीके परिवारके पुरुष सदाचार विहीन थे। स...

* चान्द्रायणव्रतके अनेक भेद हैं, जैसे 'पिपीलिका', 'यवमध्य', 'शिशुचान्द्रायण' आदि। शुक्लपक्ष प्रतिपद... ग्रासवृद्धिपूर्वक अमावास्याको सर्वथा उपवास रहना 'यवमध्य' सर्वोत्तम चान्द्रायण है।

† १२ दिनोंका सर्वथा उपवास 'पराकव्रत' है। यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्। पराको नाम कृच्छ्रो... ...दनः॥ (मनु० ११। २१५)

मरकर दोषके कारण नरकयातनामें पड़ गये; क्योंकि उनके कुलमें एक वर्णसंकर उत्पन्न हो गया था।

देवि! एक समय वे पितर 'ध्रुवतीर्थ'में आये, नपर एक त्रिकालदर्शी ऋषिकी दृष्टि पड़ गयी। नमें कुछ दिव्यरूपवाले पितर आकाशगमनकी क्तिसे युक्त श्रेष्ठ वाहनोंपर चढ़कर आये और अपने शजोंको आशीर्वाद देकर चले गये। कुछ दूसरे तृगण जो 'ध्रुवतीर्थ'में आये, उनके श्राद्ध न होनेसे दमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। अतः वे पुत्रोंको शाप देकर ले गये। त्रिकालज्ञ मुनि यह सब दृश्य देख रहे थे। ब पितृगण चले गये और वे मुनि अकेले आश्रममें ह गये तो एक सूक्ष्मशरीरधारी पितरने उनसे कहा—मुने! वर्णसंकरसम्बन्धी दोषके कारण मुझे नरकमें स्थान मिला है। मैं सौ वर्षोंसे आशारूपी रस्सियोंसे बँधा प्रतीक्षा करता रहा; पर अब निराश होकर आपके पास आया हूँ। तीनों तापोंसे अत्यन्त घबराकर और विवश होकर मैं आपकी शरण आया हूँ। जिनके पुत्रोंने पिण्डदान एवं तर्पण किया है, वे पितर हृष्ट-पुष्ट होकर आकाशगमनकी शक्तिसे स्वर्गमें चले गये हैं। किंतु मैं बलहीन व्यक्ति कहीं भी नहीं जा सकता हूँ। जिनकी संतान अपने बाल-बच्चोंके साथ सदा सम्पन्न है, वे उनके द्वारा स्वधासे सुपूजित होकर परम गतिके अधिकारी होते हैं। त्रिकालज्ञ मुनिवर! आपको दिव्यदृष्टि सुलभ है। उसके प्रभावसे आपने जिन पितरोंको स्वर्गमें जाते हुए देखा है, वे सभी आज राजा चन्द्रसेनके द्वारा सत्कृत हुए हैं।'

पितरने कहा—'जो पितरोंके लिये श्राद्ध करता है, उसका उत्तम फल निश्चित है, किंतु न करनेसे विपरीत फल सामने आता है और पितर नरकके भागी हो जाते हैं; इसमें कुछ कारण है, वह भी मैं आपको बताता हूँ; सुनें। श्राद्धसम्बन्धी जो द्रव्य उचित देश, काल और पात्रको नहीं दिया गया, विधिकी रक्षा न हुई, साथमें दक्षिणा न दी गयी तो वह प्रत्यवायका कारण हो जाता है। जो श्राद्ध श्रद्धाके साथ सम्पन्न नहीं हुआ, जिसपर दुष्ट प्राणीकी दृष्टि पड़ गयी, जिसमें तिल और कुशाका अभाव रहा एवं मन्त्र भी नहीं पढ़े गये, उस श्राद्धको असुर ग्रहण कर लेते हैं। प्राचीन समयसे ही भगवान् वामनने ऐसे श्राद्धका अधिकारी बलिको बना रखा है। ऐसे ही दशरथ-नन्दन भगवान् रामके द्वारा अपने गणोंके साथ क्रूर रावण जब दिवंगत हो गया तो उन त्रिभुवन-भर्ता श्रीरामने कुछ ऐसे श्राद्धोंका फल त्रिजटाको भी दे दिया था। भगवान् राम जब भगवती सीताके साथ बैठे थे, सीताने उनसे कहा—'त्रिजटा आपमें भक्ति रखती थी। सीताजीकी बात सुनकर श्रीराम प्रसन्न हो गये।' अतः उन परम प्रभुने उस राक्षसीको यह वर दिया—'त्रिजटे! जिस श्राद्ध करनेवाले व्यक्तिके घर श्राद्धकी उत्तम हविष् पदार्थ आदि सामग्रियाँ न हों, विधि और पात्र उचित रहनेपर भी यदि श्राद्ध करते समय क्रोध आ गया हो तथा पाक्षिक एवं मासिक श्राद्ध उचित समयपर सम्पन्न न हों एवं दक्षिणा भी न दी जाय तो उसका फल मैं तुम्हें देता हूँ।'

इसी प्रकार एक बार भगवान् शंकरने नागराज वासुकिकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसे वर देते हुए कहा था—'नागराज! जिस मनुष्यने वार्षिक श्राद्ध करनेके पूर्व भगवान् श्रीहरिसे आज्ञा प्राप्त नहीं की और श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न कर ली, यज्ञके अवसरपर उचित दक्षिणा न दी, देवता एवं ब्राह्मणके सामने देनेकी प्रतिज्ञा करके उसे पूरा नहीं किया, श्राद्धमें बिना मन्त्र पढ़े ही क्रियाएँ कर दीं—ऐसे यज्ञों एवं श्राद्धोंका सम्पूर्ण फल मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ।' मुने! ये सभी बातें पुराणों एवं इतिहासोंमें वर्णित हैं।

'मुने! जिन्हें आपने दयनीय दशामें देखा था, उनके श्राद्ध, अधिक रूपमें ही अनुचित हुए हैं। अतः उसका

उत्तम फल इन पितरोंको प्राप्त नहीं हो सका है। यही कारण है कि ये नंग-धड़ंग वाक्शेष कर रहे हैं। इनके पुत्रोंने जो श्राद्ध-क्रिया की थी, उसमें त्रुटि रह गयी थी। इसीलिये पितृगण गाथा गाते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें ऐसा कोई व्यक्ति जन्म लेगा, जो प्रभूत जलवाली नदियोंमें 'पुण्यघ्नं०, उदीरतां०, आयन्तु०' इत्यादि मन्त्रोंसे हमारा तर्पण एवं उनके तटपर श्राद्ध करेगा। महाप्राज्ञ! आपने मुझसे जो पूछा था, संक्षेपमें उसका यही उत्तर है।"

वसुंधरे! यह सब सुनकर वे ऋषि राजा चन्द्रसेनके पास पहुँचे। उन ऋषिको देखकर राजा सिंहासनसे उठकर पृथ्वीपर खड़े होकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मुनिवर! आप मेरे घरपर पधारे, इससे मैं धन्य एवं कृतार्थ हो गया। आपके यहाँ आ जानेसे मेरा जन्म सफल हो गया। मुने! पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क और गौ—ये सभी वस्तुएँ आपकी सेवामें समर्पित हैं। इन्हें आप स्वीकार करें, जिससे मुझे पूर्ण संतोष हो जाय।'

देवि! उस समय राजा चन्द्रसेनके दिये हुए अर्घ्य आदिको स्वीकार करके विराध मुनिने तुरंत उन नरेशसे कहा—'राजन्! मेरे आनेका एक विशेष कारण भी है, आप उसे सुनें।' तब राजर्षि चन्द्रसेनने उन तपोधन ऋषिसे पूछा—'भगवन्! वह कौन-सा कार्य है? आप बतानेकी कृपा कीजिये। मैं वह [illegible] करनेके लिये उद्यत हूँ, जिससे आपका मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

मुनिने कहा—'राजन्! आप अपनी [illegible] [illegible] है, उसे बुलायें।' [illegible] यहाँ बुलवाया। [illegible] थी। वे अत्यन्त [illegible] [illegible] थी, [illegible]

रहा था। उन्होंने आते ही विनयपूर्वक ऋषिको प्रणाम किया।

उनके बैठ जानेपर मुनिने कहा—"मैं 'ध्रुवतीर्थ'में जो आश्चर्यकी एक बात देखी है, उसे इन सभीके सामने व्यक्त करना चाहता हूँ। वह यह है कि आज प्राणियोंके पितृगण 'ध्रुवतीर्थ'में उपस्थित हुए थे। श्राद्ध करनेमें कुशल पुत्रोंने जिनका विधिवत् श्राद्ध किया है, वे तो तृप्त होकर स्वर्ग चले गये; किंतु वहीं मुझे एक अत्यन्त दुःखी पितर मिले। उनका शरीर भूख-प्याससे सूख गया है। उनका मुख शुष्क और आँखें बड़ी छोटी हैं। स्वर्गमें जानेकी बात तो दूर, वे पुनः अपवित्र नरकमें ही जानेके लिये स्थित हैं। उन्हें देखकर मेरे हृदयमें बड़ी दया आयी, अतः मैंने उनसे पूछा—'भाई! तुम कौन हो और क्या चाहते हो? मुझे बतानेकी कृपा करो।' तब उन्होंने अपनी सारी स्थिति बतायी। उस समय उनकी बात सुनते ही करुणासे मैं विह्वल हो गया हूँ। महारानीजी! बात ऐसी है—आपकी जो यह दासी है, इसकी एक पुत्री है, जो 'शिल्पकनिधि' नामसे प्रसिद्ध है। आप उसे भी इस समय यहाँ बुलानेकी कृपा करें।"

वसुंधरे! इस प्रकार मुनिवर विराधकी बात सुनकर महाराज चन्द्रसेनकी रानीने उसी क्षण उस दासीपुत्रीको बुलानेकी आज्ञा दी। उस समय वह मदपानसे उन्मत्त हो रही थी। किसी प्रकार राजसेवकोंने उसे खींचकर हाथसे पकड़े हुए वहाँ लाकर उन मुनिके सामने उपस्थित किया। मुनि धर्मके पूर्ण ज्ञाता थे। उन्होंने [illegible] उस दासीको देखकर उन्होंने उससे पूछा—'अरे! तुमने पितरोंके लिये [illegible] [illegible] किया है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है?' वसुंधरे! तब उस दासीने उन मुनिसे [illegible] [illegible] नहीं की है। [illegible]

भी नहीं जानती कि कौन मेरे पितर हैं और उनके कौन-सी क्रिया करनी चाहिये।'

पृथ्वि! फिर तो ऐसी बात कहनेवाली उस दासीसे त्रिकालज्ञ मुनिने कहा—'आज इस नगरके राजा, महारानी और यहाँके निवासी—सभी सज्जन 'ध्रुवतीर्थ'में पधारें। वहाँ पितरोंके लिये पुत्रोंद्वारा किये गये श्राद्धकी महिमाका फल आपलोगोंके सामने प्रकट हो जायगा। यह सुनकर सभी नगरनिवासी और जिनकी श्राद्ध करनेमें कौतुकवश भी प्रवृत्ति न थी, वे सभी अधिकारी ब्राह्मण भी 'ध्रुवतीर्थ'में गये। वहाँ जानेपर सबकी दृष्टि उस संतानद्वारा असत्कृत एवं अव्यवस्थित प्राणीपर पड़ी। विचारेको क्षुद्र मच्छड़-जैसे जीव चारों ओरसे घेरे हुए थे। साथ ही वह भूखसे भी अत्यन्त व्यथित था। उस समय त्रिकालज्ञने कहा—'देखो, ये स्त्रियाँ तुम्हारी संतानोंसे उत्पन्न हैं। तुम संतुष्ट हो जाओ, एतदर्थ राजाकी कृपासे इनका यहाँ आगमन हुआ है।'

तब वह पितर बोला—'यह दासी इस 'ध्रुवतीर्थ'में पहले स्नान करे, फिर वेदमें निर्दिष्ट क्रमसे तर्पण करे। तदनन्तर प्राचीन ऋषियोंने जो विधि बतायी है, उसके अनुसार इसे पिण्डदानादि श्राद्ध कर्म करना चाहिये। सभी कर्मपात्र चाँदीके हों। साथमें वस्त्र और चन्दन रहना आवश्यक है। फिर भक्तिपूर्वक पिण्डार्चन करके पितरोंकी पूजा करे। आप सभी सज्जन यहीं रहें और इसका परिणाम तत्काल देख लें—मैं परम सुखसे सम्पन्न हो जाऊँगा। इस विधानसे इस संतानके द्वारा मेरा श्राद्ध कराना आप सभीकी कृपापर निर्भर है।'

वसुंधरे! रानी चन्द्रप्रभा अगस्तिकी बात सुनकर दासीके द्वारा उस प्राणीका श्राद्ध करानेमें तत्पर हो गयीं। उस श्राद्धमें बहुत-सी दक्षिणाएँ दी गयीं। रेशमी वस्त्र, धूप, कर्पूर, अगुरु, चन्दन, तिल और अन्न आदि विविध वस्तुएँ पिण्डदानके अवसरपर काममें लायी गयीं। फलस्वरूप श्राद्ध एवं पिण्डदानका क्रम समाप्त होते ही वह विकृत दशावाला अगस्ति ऐसा बन गया, मानो कोई देवता हो। उसका शरीर परम तेजोमय हो गया। पार्श्ववर्ती जो मशक थे, उनकी आकृतिमें भी वैसा ही परिवर्तन हो गया। अब उनसे घिरा हुआ वह प्राणी ऐसी असीम शोभा पाने लगा, मानो यज्ञमें दीक्षित कोई पुरुष अन्तमें अवभृथ-स्नानसे सम्पन्न हुआ हो। उस समय स्वर्गसे इतने दिव्य विमान आये कि आकाश ढक गया।

अब अगस्ति आदि सभी बोले—'महानुभावो! हम लोग भलीभाँति तृप्त हो गये हैं। अतः अब परमधाममें जाते हैं। ध्रुवतीर्थकी यह महिमा मैंने आपके सामने प्रकट कर दी। महामुने! मेरे कहनेकी बात ही क्या है। आप सबने स्वयं भी इसकी महिमा देख ली। हमारा उद्धार होना नितान्त असम्भव था; किंतु आपकी कृपासे हमने इस दुस्तर पापपुञ्जको पार कर लिया।'

पृथ्वि! अब वह अगस्ति नामका प्राणी, मुनिवर त्रिकालज्ञ, राजा चन्द्रसेन, रानी चन्द्रप्रभा, उपस्थित जनता, दासी प्रभावती तथा उसकी पुत्रीको इस प्रकारकी बातें सुनाकर तथा 'आप सभी लोगोंका कल्याण हो'—इस प्रकार कहता हुआ अपने सहचरोंके साथ उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गके लिये प्रस्थान कर गया।

भगवान् वराह कहते हैं—भद्रे! इसके पश्चात् महाराज चन्द्रसेन उस तीर्थकी महिमा देखकर महर्षि त्रिकालज्ञको प्रणाम कर अपने परिजन, पुरजन-सहित नगरको लौट गये।

पृथ्वि! मथुरा-मण्डलके अन्तर्गत तीर्थोंका माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया। यह तीर्थ ऐसा शान्तिमय है कि जिसका स्मरण करनेसे भी मनुष्यके पूर्व-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी संनिधिमें

बैठकर इस प्रसङ्गको पढ़ता है, उसने मानो गयशिरपर (गयाक्षेत्रमें) आकर अपने पितरोंको तृप्त कर दिया। महाभागे ! जिसकी व्रतमें आस्था न हो, इस प्रसङ्गको सुननेमें उदासीन हो तथा भगवान् श्रीहरिकी अर्चासे विमुख हो, उसके सामने इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। यह प्रसङ्ग तीर्थोंमें परम तीर्थ, धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म, ज्ञानोंमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान एवं लाभोंमें उत्तम लाभ है। महाभागे ! जिनकी भगवान् श्रीहरिमें सदा श्रद्धा रहती है तथा जो पुण्यात्मा पुरुष हैं, उनके सामने ही इसका प्रवचन करना उचित है।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् वराहकी यह वाणी सुनकर देवी धरणीका मन अत्यन्त आश्चर्य से भर गया। अब उन देवीने प्रसन्नतापूर्वक प्रतिमा-स्थापनाके विषयमें प्रभुसे पुनः प्रश्न करना आरम्भ किया।

(अध्याय १८०)

काष्ठ-पाषाण-प्रतिमाके निर्माण, प्रतिष्ठा एवं पूजाकी विधि

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवती वसुंधराने जब तीर्थोंका महत्त्व सुना तो वे आश्चर्य एवं प्रसन्नतासे भर गयीं और भगवान् वराहसे पुनः बोलीं।

धरणीने पूछा—भगवन् ! आपने मथुरा-क्षेत्रकी महत्ताका जो वर्णन किया, उसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई; परंतु मेरे हृदयमें एक जिज्ञासा है। विष्णो ! उसे सविस्तार बतानेकी कृपा कीजिये। मैं यह जानना चाहती हूँ कि काष्ठ, पाषाण एवं मृत्तिकाके विग्रहमें आप किस प्रकार विराजते हैं ! अथवा ताँबा, काँसा, चाँदी और सुवर्ण आदिकी प्रतिमामें आपको कैसे प्रतिष्ठित करना चाहिये, जिससे वे अर्चाएँ आपका स्वरूप बन सकें। माधव ! लोग अपने दक्षिण-भागमें दीवारपर अथवा भूमिपर भी आपके श्रीविग्रहकी रचना करते हैं, मैं उसकी विधि भी जानना चाहती हूँ।

भगवान् वराह बोले—वसुंधरे ! जिस वस्तु या द्रव्यादिसे प्रतिमा बनानी हो, पहले उसका शोधन करके उसे शास्त्रोंके अनुसार निर्मित करना चाहिये। फिर उसकी शुद्धि कर विधिसे प्रतिष्ठा करानी चाहिये। देवि ! इसके पश्चात् उपासकको अपने शुभ होनेके लिये उसकी पूजा करनी चाहिये। वसुंधरे ! यदि काष्ठकी प्रतिमा ... हो तो मैं सम्पूर्ण कार्यों ... है। प्रतिमा बन जानेपर उसकी सविधि प्रतिष्ठा-पूजा करे। प्रतिष्ठाके समय अर्चनाकी जिन वस्तुओंका मैंने वर्णन किया है, उन गन्ध आदि पदार्थोंको विग्रहपर अर्पित करना चाहिये। कपूर, कुङ्कुम, दालचीनी, अगुरु, रस, इत्र, चन्दन, सिल्हक तथा उशीर आदि सामानोंसे विवेकशील पुरुष उस प्रतिमाका अनुलेपन एवं पूजन करे। स्वस्तिक शुद्धिका सूचक है। अतः प्रतिमापर उसका, श्रीवत्सका तथा कौस्तुभ मणिका चिह्न रहना आवश्यक है। फिर विधिपूर्वक उसका पूजन कर अर्चाको दूधसे सिद्ध हुए खीरका भोग लगाना चाहिये। यह अत्यन्त मङ्गलप्रद है। तिलके तेल या घीका दीपक पूजाके लिये उत्तम है—इसमें कोई संदेह नहीं।

प्राणायाम करके इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये — मन्त्रका भाव इस प्रकार है 'भगवन् ! यह सम्पूर्ण विश्व आपका ही स्वरूप है, तथापि आपकी स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। प्रभो ! अब आप सुस्पष्ट रूपसे सुप्रकाशित होकर इस काष्ठकी प्रतिमामें प्रतिष्ठित होइये।' काष्ठकी बनी हुई प्रतिमाओंमें भगवान्‌की स्थापनाकी यह विधि है। स्थापनाके बाद भगवत्प्रेमी पुरुषोंके साथ प्रदक्षिणा करनी चाहिये। पूजाके बाद भी दीपक प्रज्वलित रहना चाहिये। मन-ही-मन 'ॐ नमो नारायणाय' इस

का उच्चारण करे। प्रतिष्ठित मूर्तिकी पूजा नित्य ... चाहिये। साथ ही इस प्रकार प्रार्थना करे— ... न्! आप मेरे एकमात्र आश्रय हैं। वासुदेव! मैं ... ना करता हूँ कि आप इस स्थानका कभी परित्याग ... रें।'

वसुंधरे! फिर उस समय वहाँ अन्य जितने भी ... प्रेमी लोग उपस्थित हों, वे सभी इसी विधिसे ... विग्रहकी पूजा करें। फिर सबको चन्दन, पुष्प, ... नुलेपन एवं नैवेद्यद्वारा सविधि पूजन करना चाहिये। ... न्दरि! मधुएकी लकड़ीसे प्रतिमा बनाने और प्रतिष्ठा ... रनेका यही विधान है। जो मानव काष्ठकी प्रतिमा ... ापित कर इस विधिके साथ पूजा करता है, वह ... सारमें न जाकर मेरे लोकको प्राप्त होता है।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब मैं जिस ... कार पाषाणकी बनी हुई प्रतिमाओंमें निवास करता ... , वह बतलाता हूँ। पाषाणकी अच्छी प्रतिमा बनानेके ... लिये देखनेमें सुन्दर, शल्यरहित एवं भलीभाँति शुद्ध किसी ... पत्थरको देखकर उसमें दक्ष कलाकारको नियुक्त करे। सर्वप्रथम उस पत्थरपर एक उजली बत्तीसे प्रतिमा चिह्नित करके उसकी अक्षत आदिसे पूजा कर, दीपक दिखाये और दही एवं चावलसे बलि देकर प्रदक्षिणा करे। इसके पश्चात्—'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र पढ़कर कहे—'भगवन्! आप सम्पूर्ण प्राणियोंमें श्रेष्ठ एवं परम प्रसिद्ध हैं; सूर्य-चन्द्रमा एवं अग्नि आपके ही रूप हैं। आपसे अधिक विज्ञ चराचर विश्वमें अन्य कोई है ही नहीं। भगवान् वासुदेव! इस मन्त्रके प्रभावसे प्रभावित होकर प्रतिमामें शनैः-शनैः प्रतिष्ठित होकर मेरी ... स्वयं भी वृद्धिको प्राप्त हों। अच्युत वराह! आपकी जय हो, जय हो। आप अपनी अभीष्ट प्रतिमा स्वयं निर्मित करायें।'* फिर ऐसी धारणा करे कि सारा विश्व एक परम प्रभु भगवान् नारायणका ही स्वरूप है। जब मूर्ति बन जाये तो उसे पूर्वाभिमुख रखे। फिर उज्ज्वल वस्त्र धारणकर रातमें उपवास करे। पुनः प्रातः दन्तधावन कर और सफेद यज्ञोपवीत पहनकर हाथमें गन्धादि लेकर कहे—'भगवन्! जिन्हें सर्वरूप एवं 'मायाशबल' कहा जाता है, वही आप अखिल जगत्के रूपमें विराजते हैं। प्रभो! इस प्रतिमामें भी आपका वास है। जगत्के कारण जगत्के आकार तथा अर्चाकार धारण करके शोभा पानेवाले लोकनाथ! इस प्रकार मैंने आपकी आराधना की है। यह विग्रह भी आपसे रिक्त नहीं है। आदि और अन्तसे रहित प्रभो! इस जगत्‌की सत्ता स्थिर रहनेमें आप ही निमित्त हैं। आप अपराजेय हैं।' इस प्रकार भगवद्विग्रहकी पूजा कर—'ॐ नमो वासुदेवाय' मन्त्र पढ़कर प्रतिमाके ऊपर जल छिड़कना चाहिये।

सुन्दरि! इस प्रकार पाषाणमयी प्रतिमामें मेरी प्राण-प्रतिष्ठाकर पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें अन्नादिमें अधिवासन करना चाहिये। मेरी उपासनामें उद्यत रहनेवाला जो व्यक्ति मेरी प्रतिमाकी स्थापना कराता है, वह शुद्ध भगवान् श्रीहरिके लोकमें जाता है—यह निश्चित है। स्थापनाके दिनोंमें साधक यव अथवा दूधसे बने आहारपर दिन-रात व्यतीत करे। इष्टदेवकी प्रतिमा प्रतिष्ठित हो जानेपर सायंकालकी संध्याके समय चार दीपक प्रज्वलित करे। भगवान्‌के आसनके नीचे पञ्चगव्य, चन्दन और जलसे परिपूर्ण चार कलश स्थापित करना चाहिये। इस समय सामवेदके गान करनेवाले ब्राह्मण वेदध्वनि करें। देवि!

... विधि अत्यन्त संक्षिप्त है। इसे विस्तारसे जाननेके लिये 'श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण' खण्ड ३, ... पृष्ठ ४९से ८० तक तथा 'Elements of Hindu Iconography'—(T. N. ... चाहिये।

औ [illegible] वेदके हजारों [illegible] हैं, [illegible] मुखसे निकलते हुए इस सुन्दर [illegible] सुनकर मैं यहाँ आ जाता हूँ। क्योंकि वेदध्वनि [illegible] मुझे परम प्रिय है। किंतु यहाँ अनर्गल प्रलाप नहीं होना चाहिये।

पुष्पकी [illegible] पूजाके समय इस अर्थवाले मन्त्रको पढ़कर आवाहन करे—'भगवन्! इस प्रकारके कर्मोंमें आपकी प्रधानता है। अतः पाँचों इन्द्रियोंसे सम्पन्न होकर यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिये। जगत्प्रभो! आपमें सभी वेदमन्त्र स्थान पाये हुए हैं। समस्त प्राणियोंकी स्थिति भी आपहीमें है। यह अर्घ्य आपके रहनेका सुरक्षित स्थान है।' इसी अर्थके मन्त्रका उच्चारण करते हुए तिल, घृत, समिधा और मधुसे एक सौ आठ आहुतियाँ भी देनी चाहिये। देवि! मैं इस विधिके द्वारा प्रतिमामें प्रतिष्ठित हो जाता हूँ*। फिर प्रातःकाल स्वच्छ जलमें स्नान करे और मन्त्र पढ़कर पञ्चगव्यका पान करे। अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प और लाजा आदिका प्रयोग कर फिर माङ्गलिक गीत-वाद्यके साथ प्रतिमाको मध्यभागमें एक ऊँचे स्थानपर स्थापित करे। सब प्रकारके सुगन्धोंको लेकर फिर प्रार्थना करे—'भगवन्! जिन्हें लक्षणोंसे लक्षित, देवी लक्ष्मीसे सुशोभित तथा सनातन श्रीहरि कहते हैं, वे आप ही तो हैं। प्रभो! हमारी प्रार्थना है कि परम प्रकाशसे सुशोभित होकर आप यहाँ विराजिये। आपको मेरा बारंबार नमस्कार है।'

इस प्रकार भगवान्‌की शैलार्चाकी स्थापना कर उसका अनुलेपन (उबटन) करना चाहिये। चन्दन-कुङ्कुमादिसे मिला हुआ 'यक्षकर्दम'का उद्वर्तन (उबटन) श्रेष्ठ है। इस प्रकार उद्वर्तन अर्पण करके इस 'अर्थ-का [illegible] पढ़ना चाहिये—[illegible]! [illegible] संसारमें प्रधान हैं तथा [illegible] और [illegible] आपकी [illegible] पूजा की है। अतः [illegible] कारण एवं मन्त्रयुक्त हैं। भगवन्! [illegible] मन्त्रोंके द्वारा स्वागत करता हूँ। अतः यहाँ [illegible] दर्शन दें।' इस विधिसे [illegible] [illegible] एवं फूलोंसे पूजा करनी चाहिये। फिर [illegible] वस्त्र पहनाना चाहिये। वस्त्र अर्पण करते समय [illegible] का मन्त्र पढ़े—'देवेश! भक्तिपूर्वक वस्त्र आपको अर्पित करता हूँ। विष्णो! इन वस्त्रोंको [illegible] करके मुझपर प्रसन्न होइये। आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।'

तत्पश्चात् कुङ्कुम और अगुरुसे मिश्र हुआ धूप देना चाहिये। धूप देने समय इस अर्थका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'देवेश! जो आदिरहित, पुराणपुरुष तथा सम्पूर्ण संसारमें सर्वोपरि शोभा पाते हैं, वे भगवन् नारायण! आप चन्दन, मालाएँ, धूप और दीप स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।'

इस प्रकार पूजा करनेके पश्चात् भगवत्प्रतिमाके सामने नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। प्राशन-अर्पण करनेका मन्त्र पूर्वमें बतला दिया गया है, उसीका उच्चारण करके विज्ञ पुरुष उसे अर्पित करे। शरीरकी शुद्धिके लिये नैवेद्यके बाद आचमन देना आवश्यक है। शान्ति-पाठ करे। क्योंकि शान्तिका पाठ करनेसे सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि सुलभ हो जाती है। मन्त्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! ओंकार आपका स्वरूप है। आप ऐसी कृपा करें कि राजा, राष्ट्र, ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, गौएँ, कन्याएँ तथा पतिव्रताओंमें

* यह प्रतिमा प्रतिष्ठाकी अत्यन्त संक्षिप्त विधि है। विशेष जानकारीके लिये—'शारदातिलक', 'प्रतिष्ठामयूख' ([illegible]स्कर), 'प्रतिष्ठा-महोदधि', 'कल्याण'-अग्निपुराणाङ्क-अध्याय ९२ से १०३ तक देखना चाहिये। प्रतिमा-निर्माणके बाद [illegible], जलान्नाधिवासन, ग्रामादिप्रदक्षिणा, हवन प्रतिष्ठा, न्यासादि कर्म भी आवश्यक होते हैं।

भलीभाँति शान्ति रहे। रोग नष्ट हो जायँ, किसानोंके हाँ सदा अच्छी फसल उत्पन्न हो। दुर्भिक्ष न रहे। समय अच्छी वृष्टि हो और विश्वमें शान्ति बनी रहे।*

वसुंधरे! व्रती पुरुष इस प्रकारकी विधिका पालन रते हुए शास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके द्वारा देवेश्वर भगवान्‌की ली प्रकारसे आराधना करे। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको हंकार-भावसे भोजन कराये। यदि अपनेमें शक्ति हो तो गरीबों एवं अनाथोंको भी तृप्त करनेका प्रयत्न करे। इस विधिसे मेरी अर्चाकी स्थापना करनी चाहिये। इसके परिणामस्वरूप पुरुष मेरे लोकमें प्रतिष्ठा पाता है। फिर तो मेरे अङ्गोंपर जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह विष्णुलोकमें रहनेका अधिकारी होता है। भूमे! अहंकारसे रहित जो व्यक्ति मेरी स्थापना करता है, वह मानो अपने उनचास पीढ़ीके पुरुषोंका उद्धार कर देता है। (अध्याय १८१-८२)

मृन्मयी एवं ताम्रप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाविधि

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! अब मृत्तिकासे नी अपनी प्रतिमाका स्थापन-विधान कहता हूँ, सुनो। मृन्मयी मूर्ति सुन्दर, स्पष्ट और अखण्डित होनी चाहिये। यदि काष्ठ न मिल सके तो मिट्टीका अथवा पाषाणका विग्रह बनानेका विधान है। कल्याणकी कामनावाले विद्वान् पुरुष ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना अथवा शीशा—इन वस्तुओंसे भी मेरी सुन्दर प्रतिमाका निर्माण कराते हैं। यदि कर्मकाण्डके संकोचकी इच्छा हो तो वेदीपर ही मेरी पूजा की जा सकती है। कुछ लोग जगत्‌में यश फैलनेकी कामनासे भी मेरी प्रतिमाओंकी स्थापना करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपना अभीष्ट पूरा होनेके लिये प्रतिमाएँ स्थापित करते हैं, कुछ लोग उत्तम तीर्थको देखकर वहीं मेरा पूजन कर लेते हैं, अथवा मेरे तेजसे प्रकट हुए सूर्यमण्डलमें ही मेरी आराधना करते हैं।

देवि! तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि मैं विभिन्न व्यक्तियोंकी भावनाके अनुसार वहीं उपस्थित हो जाता हूँ, और पूजा प्राप्त कर मैं उपासकको सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे पूर्ण कर देता हूँ, इसमें कोई संशय नहीं। मनुष्य जिस-जिस फलका उद्देश्य रखकर मन्त्रोंका उच्चारण अथवा विधिपूर्वक कर्मोंके सम्पादन-द्वारा मेरी आराधनामें लगा रहता है, उसे वह अभिलषित फल प्राप्त हो जाते हैं। यही नहीं, मेरी कृपासे उसे सर्वोत्तम गति भी प्राप्त हो जाती है। मेरा भक्त प्रतिदिनके नियमित कार्योंमें सदा व्यस्त रहते हुए मनसे भी मेरी आराधना कर सकता है। मेरे लिये यदि किसीने श्रद्धापूर्वक एक अञ्जलि जल भी अर्पण कर दिया तो मैं उसकी उस भक्तिसे संतुष्ट हो जाता हूँ। उसके लिये बहुतसे फूलों, जपों एवं नियमकी क्या आवश्यकता है, जो अपने अन्तःकरणको स्वच्छ रखकर नित्य मेरा चिन्तन करता है। मैं उसकी भी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी कर देता हूँ और उसे दिव्य एवं मनोरम भोग तथा ज्ञान एवं मोक्ष भी सुलभ हो जाते हैं।

वसुंधरे! ये सभी बातें अत्यन्त गोपनीय हैं, मेरे कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति मृन्मयी प्रतिमाका निर्माण कर श्रवणनक्षत्रमें उसके स्थापन एवं प्रतिष्ठाकी तैयारी करे। इसमें भी पूर्वोक्त मन्त्रोंका उच्चारणकर उसी विधिसे स्थापना करनी चाहिये। जलके साथ पञ्चगव्य और चन्दनको मिलाकर उससे मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। उस समय कहे—'अच्युत! जो विश्वकी रचना करते हैं तथा जिनकी कृपासे जगत्‌की सत्ता सुरक्षित है,

* तुलनीय यजुर्वेद—'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो······योगक्षेमो नः कल्पताम्।' (शु० यजुर्वेदसं० २२।२२)

जो ब्राह्मण वेदके हजारों मन्त्रोंको पढ़ते हैं, उनके मुखसे निकलते हुए इस शुभप्रद सामके स्वरको सुनकर मैं वहाँ आ जाता हूँ। क्योंकि वेद-मन्त्रका पाठ मुझे परम प्रिय है। किंतु वहाँ अनर्गल प्रलाप नहीं होना चाहिये।

पुण्यवान् व्यक्ति पूजाके समय इस अर्थवाले मन्त्रको पढ़कर आवाहन करे—'भगवन्! छः प्रकारके कर्मोंमें आपकी प्रधानता है। आप पाँचों इन्द्रियोंसे सम्पन्न होकर यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिये। जगत्प्रभो! आपमें सभी वेदमन्त्र स्थान पाये हुए हैं। समस्त प्राणियोंकी स्थिति भी आपहीमें है। यह अर्चा आपके रहनेका सुरक्षित स्थान है।' इसी अर्थके मन्त्रका उच्चारण करते हुए तिल, घृत, समिधा और मधुसे एक सौ आठ आहुतियाँ भी देनी चाहिये। देवि! मैं इस विधिके द्वारा प्रतिमामें प्रतिष्ठित हो जाता हूँ*। फिर प्रातःकाल स्वच्छ जलमें स्नान करे और मन्त्र पढ़कर पञ्चगव्यका पान करे। अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प और लाजा आदिका प्रयोग कर फिर माङ्गलिक गीत-वाद्यके साथ प्रतिमाको मध्यभागमें एक ऊँचे स्थानपर स्थापित करे। सब प्रकारके सुगन्धोंको लेकर फिर प्रार्थना करें—'भगवन्! जिन्हें लक्षणोंसे लक्षित, देवी लक्ष्मीसे सुशोभित तथा सनातन श्रीहरि कहते हैं, वे आप ही तो हैं। प्रभो! हमारी प्रार्थना है कि परम प्रकाशसे सुशोभित होकर आप यहाँ विराजिये। आपको मेरा बारंबार नमस्कार है।'

इस प्रकार भगवान्‌की शैलार्चाकी स्थापना कर उसका अनुलेपन (उबटन) करना चाहिये। चन्दन-कुङ्कुमादिसे मिला हुआ 'यक्षकर्दम'का उद्वर्तन (उबटन) श्रेष्ठ है। इस प्रकार उद्वर्तन अर्पण करके इस अर्थका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'प्रभो! आप सम्पूर्ण संसारमें प्रधान हैं तथा ब्रह्मा और बृहस्पति आपकी भलीभाँति पूजा की है। आप अखिल लोके कारण एवं मन्त्रयुक्त हैं। भगवन्! मैं आपका मन्त्रके द्वारा स्वागत करता हूँ। आप यहाँ विराजनेकी कृ कीजिये।' इस विधिसे भलीभाँति स्थापना करके ग एवं फूलोंसे पूजा करनी चाहिये। मेरे विग्रहपर पहले वस्त्र चढ़ाना चाहिये। वस्त्र अर्पण करते समय इस अ का मन्त्र पढ़े—'देवेश! भक्तिपूर्वक वस्त्र आपके लि अर्पित करता हूँ। विश्वमूर्ते! इन वस्त्रोंको आप ग्र करके मुझपर प्रसन्न होइये। आपको मेरा बारम्ब नमस्कार है।'

तत्पश्चात् कुङ्कुम और अगुरुसे मिला हुआ धूप दे चाहिये। धूप देते समय इस अर्थका मन्त्र पढ़ चाहिये—'देवेश! जो आदिरहित, पुराणपुरुष त सम्पूर्ण संसारमें सर्वोपरि शोभा पाते हैं, वे भगवा नारायण! आप चन्दन, मालाएँ, धूप और दीप स्वीक करनेकी कृपा कीजिये। आपको मेरा नित्य नमस्कार है।'

इस प्रकार पूजा करनेके पश्चात् भगवत्प्रतिमा सामने नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। प्राशन-अर्प करनेका मन्त्र पूर्वमें बतला दिया गया है, उसीक उच्चारण करके विज्ञ पुरुष उसे अर्पित करें शरीरकी शुद्धिके लिये नैवेद्यके बाद आचमन दे आवश्यक है। शान्ति-पाठ करे। क्योंकि शान्तिका पा करनेसे सम्पूर्ण कार्योंमें सिद्धि सुलभ हो जाती है मन्त्रका भाव यह है—'जगत्प्रभो! ओंकार आपक स्वरूप है। आप ऐसी कृपा करें कि राजा, राष्ट्र ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, गौएँ, कन्याएँ तथा पतिव्रताओं

* यह प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी अत्यन्त संक्षिप्त विधि है। विशेष जानकारीके लिये—'शारदातिलक', 'प्रतिष्ठामयूख' …), 'प्रतिष्ठा-महोदधि', 'कल्याण'-अग्निपुराणाङ्क-अध्याय ९२ से १०३ तक देखना चाहिये। प्रतिमा-निर्माणके बाद …, जलाधिवासन, ग्रामादिप्रदक्षिणा, हवन-प्रतिष्ठा, न्यासादि कर्म भी आवश्यक होते हैं।

पूर्वक मूर्तिको स्नान कराये। उपस्थित ब्राह्मणमण्डली ध्वनि करे और माङ्गलिक वस्तुएँ मण्डपमें रखी जायँ। ा करनेवाला व्यक्ति सुगन्धित द्रव्यसे युक्त जल लेकर । भावके मन्त्रको पढ़ता हुआ मेरी प्रतिमाको स्नान ाये । भाव यह है—'ॐकारस्वरूप प्रभो ! जो ौपरि विराजमान हैं, सर्वसमर्थ हैं, जिनकी शक्ति पाकर या बलवती हुई है तथा जो यौगिक शक्तिके शिरोमणि , वे पुरुष आप ही तो हैं। प्रभो ! मेरे कल्याणके ये यथाशीघ्र यहाँ पधारिये और इस ताम्रमयी प्रतिमामें ाजनेकी कृपा कीजिये । ॐकारस्वरूप भगवन् ! आप रम पुरुष हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, श्वास एवं श्वास—ये सब स्वयं आप ही तो हैं।' इसी प्रकार गन्ध, पुष्प एवं दीपकसे अर्चना करनी चाहिये। स्थापनाके न्त्रका भाव यह है—तीनों लोकोंके प्रतिपालक पुरुषोत्तम! आप प्रकाशके भी प्रकाशक, विज्ञानमय, आनन्दमय एवं संसारके प्रकाशक हैं। भगवन् ! यहाँ आइये और इस प्रतिमामें सदाके लिये विराजिये और कृपाकर मेरी रक्षा कीजिये।' वैष्णव-शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये गये हैं, उसके अनुसार इस मन्त्रको पढ़कर स्थापना करनी चाहिये। फिर हाथमें निर्मल श्वेत वस्त्र लेकर कहे— 'सम्पूर्ण विश्वपर शासन करनेवाले प्रभो ! आप ॐकार-स्वरूप, परम पुरुष परमात्मा, जगत्‌में एकमात्र तत्त्व एवं शुद्धस्वरूप हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कार है। मै आपको ये सुन्दर वस्त्र अर्पित करता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

पृथ्वि ! मेरे कर्ममें परायण रहनेवाला मानव प्रतिमा-को वस्त्रोंसे आच्छादितकर फिर विधिपूर्वक मेरी अर्चा करे। गन्ध एवं धूप आदिसे पूजा करनेके उपरान्त नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् शान्ति-पाठ कराया जाय। शान्ति-मन्त्रका भाव है—'देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये उत्तम शान्ति सुलभ हो। राजा, राष्ट्र, वैश्य, बालक, धान्य, व्यापार एवं गर्भिणी स्त्रियाँ—सबमें सदा शान्ति बनी रहे। देवेश ! आपकी कृपासे मैं कभी अशान्त न होऊँ।'

शान्ति-पाठके पश्चात् ब्राह्मणोंकी पूजाकर भोजन, वस्त्र एवं अलंकारोंके द्वारा गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जिसने गुरुकी पूजा की, उसने मेरी ही पूजा की। जिसके व्यवहारसे गुरु संतुष्ट न हुए, उससे मैं भी बहुत दूर रहता हूँ। जो मनुष्य इस विधानसे मेरी स्थापना करता है, उसके इस कार्यसे छत्तीस पीढ़ी तर जाती है। भद्रे ! ताम्बेकी प्रतिमामें मेरे स्थापनकी यह विधि है, जिसे तुम्हें बतला दिया। इसी भाँति सभी प्रतिमाओंकी पूजाका प्रकार मैं तुम्हें बता दूँगा। पृथ्वि ! मुझे स्नान कराते समय जलकी जितनी बूँदें मूर्तिके ऊपर गिरती हैं, प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति उतने वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास पाता है।

(अध्याय १८३-८४)

कांस्य-प्रतिमा-स्थापनकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि ! कांस्य-धातुसे स्वच्छ सुन्दर सभी अङ्ग-सम्पन्न प्रतिमा बनवाकर ज्येष्ठ मासमें मूर्तिको घरपर लाकर माङ्गलिक ध्वनिके साथ उसकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मेरी प्रतिमाके प्रवेशकालमें विधिके अनुकूल अर्घ्य लेकर मन्त्र पढ़ना चाहिये। उसका भाव यह है—'जगत्प्रभो ! जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें पूजा प्राप्त करते हैं, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, जो सारे संसारकी रक्षा करते हैं, जिनकी इच्छापर विश्वकी सृष्टि, पालन आदि निर्भर है तथा जो महान् आत्मा एवं सदा प्रसन्न रहते हैं, वे आप ही हैं। भगवन् ! आप भली प्रकारसे मेरी यह पूजा स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक इस विग्रहमें विराजिये।' फिर अर्घ्य देकर दर्शनीय विधिका पालन करते हुए मूर्तिके मुखको उत्तरकी ओर करके रखे। प्रतिष्ठाके समय पञ्चगव्य, सभी प्रकारके चन्दन, लाजा एवं मधुसे सम्पन्न चार कलशोंसे स्नपित

वे आप ही हैं। भगवन्! मुझपर कृपा करके आप इस मृन्मयी प्रतिमामें प्रतिष्ठित होइये। प्रभो! आप कारणके भी कारण, प्रचण्ड तेजस्वी, परम प्रकाशमान तथा महापुरुष हैं। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' ऐसा कहकर उस प्रतिमाकी मन्दिरमें स्थापना करे। यहाँ भी पहलेकी ही तरह चार कलशोंका स्थापन करना चाहिये। उन चारों कलशोंको लेकर इस भावका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'भगवन्! आप ओंकारस्वरूप हैं। समुद्र आपका ही रूप है, जो वरुणकी कृपा प्राप्त करके सम्यक् प्रकारसे पूजा पाता है तथा उसके हृदयमें जलराशि एवं प्रसन्नता भरी रहती है। इस विचारको सामने करके मैं आपको उत्तम अभिषेक अर्पित करता हूँ। जिसकी विशाल भुजाएँ हैं; अग्नि, पृथ्वी एवं रस—ये सभी जिनसे सत्तावान् बने हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

अर्चाविग्रहका इस प्रकार स्नान कराकर पूर्वकथित नियमोंके अनुसार चन्दन, पुष्प, माला, अगुरु, धूप, कपूर एवं कुङ्कुमयुक्त धूपसे—'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए पूजनकर न्यायके अनुसार पितृ-तर्पण करे। फिर वस्त्र-अर्पण करते समय भी 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् नैवेद्य अर्पित करे और पूर्वोक्त मन्त्रसे पुनः आचमन देकर शान्तिपाठ करे। मन्त्रका भाव यह है—'देवताओं, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंको शान्ति सुलभ हो। वृद्ध और बालवृन्द उत्तम शान्ति प्राप्त करें। भगवान् पर्जन्य जलकी वृष्टि करें और पृथ्वी धान्योंसे परिपूर्ण हो जाय।' इस अर्थवाले मन्त्रसे विधिपूर्वक शान्तिपाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीहरिमें श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मणोंका पूजन कर उनकी वन्दना करे और पुजारी पुरोहितके लिये धन-प्रार्पण का निर्णय करे। निमन्त्रण-के बाद वहाँ जितने लोग हों, उनका उचित सत्कार करना चाहिये। यदि किसीको मेरा मनुष्य प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वह गुरुकी भी विधिपूर्वक पू करे। जो व्यक्ति शास्त्र-विहित कर्मसे समस्त भक्तिके साथ गुरुकी पूजा करता है, वह मानो मि मेरी ही पूजा करता है। यदि कोई राजा प्रि प्रसन्न होता है तो बड़ी कठिनतासे उसे वहीं एक दे पाता है, किंतु गुरु यदि किसी प्रकार प्रसन्न गये तो उनकी कृपासे ब्रह्माण्डपर्यन्त पृथ्वी सुल जाती है। शुभे! मैंने जो बात कही है, यह शास्त्रोंका निश्च्योत है। कल्याणि! सम्पूर्ण शा गुरुदेवके पूजनकी समुचित व्यवस्था दी गयी। जो मनुष्य इस विधिसे मेरी प्रतिष्ठा करता उसके इस प्रयाससे दोनों कुलोंकी इक्कीस पी तर जाती हैं। पूजा करते समय मेरे विग्रहपर जि जलबिन्दुएँ गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक व्यक्ति मेरे लोकोंमें आनन्द भोगता है। भूमे! तुमसे मृत्तिकासे बनी हुई मूर्तिकी प्रतिष्ठाका व कर चुका। अब जो सम्पूर्ण भागवत पुरुषोंके प्रिय है, वह दूसरा प्रसङ्ग तुम्हें सुनाऊँगा।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मेरी ताम्र सुन्दर एवं चमकीली अर्चाका निर्माण कराकर सर्वो उपचारपूर्वक मन्दिरमें ले आये और उत्तराभिमु रखे। फिर चित्रा नक्षत्रमें उसका अधिवासन अनेक प्रकारके गन्धों एवं पञ्चगव्यसे मिश्रि जलसे मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। स्नान कराने मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! जो जगत्के परम तत्त्व तथा उसके आश्रय हैं, वे आप ही हैं आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके यहाँ पधारिये और पाँच भूतोंके साथ इस ताम्र (ताम्र)की प्रतिम प्रतिष्ठित होकर मुझे दर्शन दीजिये।' यशस्विनि इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक प्रतिमा स्थापित कर पूर्व विधिसे क्रमसे अधिवासनपूर्वक पूजा सम्पन्न करे। दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर तेजकी अपनी शुद्धि करे

पूर्वक मूर्तिको स्नान कराये। उपस्थित ब्राह्मणमण्डली ध्वनि करे और माङ्गलिक वस्तुएँ मण्डपमें रखी जायँ। करनेवाला व्यक्ति सुगन्धित द्रव्यसे युक्त जल लेकर भावके मन्त्रको पढ़ता हुआ मेरी प्रतिमाको स्नान ये। भाव यह है—'ॐकारस्वरूप प्रभो! जो परि विराजमान हैं, सर्वसमर्थ हैं, जिनकी शक्ति पाकर बरसती हुई है तथा जो यौगिक शक्तिके शिरोमणि वे पुरुष आप ही तो हैं। प्रभो! मेरे कल्याणके ये यथाशीघ्र यहाँ पधारिये और इस ताम्रमयी प्रतिमामें जनेकी कृपा कीजिये। ॐकारस्वरूप भगवन्! आप म पुरुष हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, श्वास एवं ास—ये सब स्वयं आप ही तो हैं।' इसी प्रकार गन्ध, प एवं दीपकसे अर्चना करनी चाहिये। स्थापनाके त्रका भाव यह है—तीनों लोकोंके प्रतिपालक पुरुषोत्तम! प प्रकाशके भी प्रकाशक, विज्ञानमय, आनन्दमय वं संसारके प्रकाशक हैं। भगवन्! यहाँ आइये और इ प्रतिमामें सदाके लिये विराजिये और कृपाकर मेरी रक्षा जिये।' वैष्णव-शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये गये हैं, सके अनुसार इस मन्त्रको पढ़कर स्थापना करनी चाहिये। फिर हाथमें निर्मल श्वेत वस्त्र लेकर कहे—सम्पूर्ण विश्वपर शासन करनेवाले प्रभो! आप ॐकार-स्वरूप, परम पुरुष परमात्मा, जगत्‌में एकमात्र तत्त्व एवं शुद्धस्वरूप हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कार है। मैं आपको ये सुन्दर वस्त्र अर्पित करता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

पृथ्वि! मेरे कर्ममें परायण रहनेवाला मानव प्रतिमा-को वस्त्रोंसे आच्छादितकर फिर विधिपूर्वक मेरी अर्चा करे। गन्ध एवं धूप आदिसे पूजा करनेके उपरान्त नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् शान्ति-पाठ कराया जाय। शान्ति-मन्त्रका भाव है—'देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये उत्तम शान्ति सुलभ हो। राजा, राष्ट्र, वैश्य, बालक, धान्य, व्यापार एवं गर्भिणी स्त्रियाँ—सबमें सदा शान्ति बनी रहे। देवेश! आपकी कृपासे मैं कभी अशान्त न होऊँ।'

शान्ति-पाठके पश्चात् ब्राह्मणोंकी पूजाकर भोजन, वस्त्र एवं अलंकारोंके द्वारा गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जिसने गुरुकी पूजा की, उसने मेरी ही पूजा की। जिसके व्यवहारसे गुरु संतुष्ट न हुए, उससे मैं भी बहुत दूर रहता हूँ। जो मनुष्य इस विधानसे मेरी स्थापना करता है, उसके इस कार्यसे छत्तीस पीढ़ी तर जाती है। भद्रे! ताम्बेकी प्रतिमामें मेरे स्थापनकी यह विधि है, जिसे तुम्हे बतला दिया। इसी भाँति सभी प्रतिमाओंकी पूजाका प्रकार मैं तुम्हें बता दूँगा। पृथ्वि! मुझे स्नान कराते समय जलकी जितनी बूँदें मूर्तिके ऊपर गिरती हैं, प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति उतने वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास पाता है।

(अध्याय १८३-८४)

कांस्य-प्रतिमा-स्थापनकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि! कांस्य-धातुसे स्वच्छ सुन्दर सभी अङ्ग-सम्पन्न प्रतिमा बनवाकर ज्येष्ठा नक्षत्रमें मूर्तिको घरपर लाकर माङ्गलिक ध्वनिके साथ उसकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मेरी प्रतिमाके प्रवेशकालमें विधिके अनुकूल अर्घ्य लेकर मन्त्र पढ़ना चाहिये। उसका भाव यह है—'जगत्प्रभो! जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें पूजा प्राप्त करते हैं, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, जो सदा सबकी रक्षा करते हैं, जिनकी इच्छापर विश्वकी सृष्टि, पालन आदि निर्भर है तथा जो महान् आत्मा एवं सदा प्रसन्न रहते हैं, वे आप ही हैं। भगवन्! आप भली प्रकारसे मेरी यह पूजा स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक इस विग्रहमें विराजिये। फिर अर्घ्य देकर शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए मूर्तिके मुखको उत्तरकी ओर करके रखे। प्रतिष्ठाके समय पञ्चगव्य, सभी प्रकारके चन्दन, लाजा एवं मधुसे सम्पन्न चार कलशोंसे स्नान

वे आप ही हैं। भगवन्! मुझपर कृपा करके आप इस मृन्मयी प्रतिमामें प्रतिष्ठित होइये। प्रभो! आप कारणके भी कारण, प्रचण्ड तेजस्वी, परम प्रकाशमान तथा महापुरुष हैं। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' ऐसा कहकर उस प्रतिमाकी मन्दिरमें स्थापना करे। यहाँ भी पहलेकी ही तरह चार कलशोंका स्थापन करना चाहिये। उन चारों कलशोंको लेकर इस भावका मन्त्र पढ़ना चाहिये—'भगवन्! आप ओंकारस्वरूप हैं। समुद्र आपका ही रूप है, जो वरुणकी कृपा प्राप्त करके सम्यक् प्रकारसे पूजा पाता है तथा उसके हृदयमें जलराशि एवं प्रसन्नता भरी रहती है। इस विचारको सामने करके मैं आपको उत्तम अभिषेक अर्पित करता हूँ। जिसकी विशाल भुजाएँ हैं; अग्नि, पृथ्वी एवं रस—ये सभी जिनसे सत्तावान् बने हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

अर्चाविग्रहका इस प्रकार स्नान कराकर पूर्वकथित नियमोंके अनुसार चन्दन, पुष्प, माला, अगुरु, धूप, कपूर एवं कुङ्कुमयुक्त धूपसे—'ॐ नमो नारायणाय'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए पूजनकर न्यायके अनुसार पितृ-तर्पण करे। फिर वस्त्र-अर्पण करते समय भी 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् नैवेद्य अर्पित करे और पूर्वोक्त मन्त्रसे पुनः आचमन देकर शान्तिपाठ करे। मन्त्रका भाव यह है—'देवताओं, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंको शान्ति सुलभ हो। वृद्ध और बालवृन्द उत्तम शान्ति प्राप्त करें। भगवान् पर्जन्य अच्छी वृष्टि करें और पृथ्वी धान्योंसे परिपूर्ण हो जाय।' इस अर्थवाले मन्त्रसे विधिपूर्वक शान्तिपाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीहरिमें श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मणोंका पूजन कर उनकी वन्दना करे और पूजाकी पूर्तिके लिये क्षमा-प्रार्थना कर विसर्जन करे। विसर्जनके बाद यहाँ जिसके लोग हैं, उनका उचित सत्कार करना चाहिये। यदि किसीको मेरा सम्पूर्ण प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वह गुरुकी भी विधिपूर्वक पूजा करे। जो व्यक्ति शास्त्र-विहित कर्मोंसे सम्पन्न हो भक्तिके साथ गुरुकी पूजा करता है, वह मानो निश्चय मेरी ही पूजा करता है। यदि कोई राजा किसीपर प्रसन्न होता है तो बड़ी कठिनतासे उसे वहीं एक गाँव दे पाता है, किंतु गुरु यदि किसी प्रकार प्रसन्न हो गये तो उनकी कृपासे ब्रह्माण्डपर्यन्त पृथ्वी सुलभ हो जाती है। शुभे! मैंने जो बात कही है, यह सभी शास्त्रोंका निश्चयोक्त है। कल्याणि! सम्पूर्ण शास्त्रोंमें गुरुदेवके पूजनकी समुचित व्यवस्था दी गयी है। जो मनुष्य इस विधिसे मेरी प्रतिष्ठा करता है, उसके इस प्रयाससे दोनों कुलोंकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। पूजा करते समय मेरे विग्रहपर जितने जलबिन्दुएँ गिरती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह व्यक्ति मेरे लोकोंमें आनन्द भोगता है। भूमे! मैं तुमसे मृत्तिकासे बनी हुई मूर्तिकी प्रतिष्ठाका वर्णन कर चुका। अब जो सम्पूर्ण भागवत पुरुषोंको प्रिय है, वह दूसरा प्रसङ्ग तुम्हें सुनाऊँगा।

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! मेरी ताम्रकी सुन्दर एवं चमकीली अर्चाका निर्माण कराकर समुचित उपचारपूर्वक मन्दिरमें ले आये और उत्तराभिमुख रखे। फिर चित्रा नक्षत्रमें उसका अधिवासनकर अनेक प्रकारके गन्धों एवं पञ्चगव्यसे मिश्रित जलसे मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। स्नान करानेके मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! जो जगत्‌के परम तत्त्व तथा उसके आश्रय हैं, वे आप ही हैं। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके यहाँ पधारिये और पाँच भूतोंके साथ इस ताम्र (ताम्र)की प्रतिमामें प्रतिष्ठित होकर मुझे दर्शन दीजिये।' वसुन्धरे! इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक प्रतिमा स्थापित कर पूर्वोक्त विधिसे क्रमसे अधिवासनसम्बन्धी पूजा सम्पन्न करे। दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर वेदकी आज्ञासे शुद्धि करे

विधिपूर्वक मूर्तिको स्नान कराये। उपस्थित ब्राह्मणमण्डली वेदध्वनि करे और माङ्गलिक वस्तुएँ मण्डपमें रखी जायँ। प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति सुगन्धित द्रव्यसे युक्त जल लेकर इस भावके मन्त्रको पढ़ता हुआ मेरी प्रतिमाको स्नान कराये। भाव यह है—'ॐकारस्वरूप प्रभो! जो सर्वोपरि विराजमान हैं, सर्वसमर्थ हैं, जिनकी शक्ति पाकर माया बलवती हुई है तथा जो यौगिक शक्तिके शिरोमणि हैं, वे पुरुष आप ही तो हैं। प्रभो! मेरे कल्याणके लिये यथाशीघ्र यहाँ पधारिये और इस ताम्रमयी प्रतिमामें विराजनेकी कृपा कीजिये। ॐकारस्वरूप भगवन्! आप परम पुरुष हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, श्वास एवं प्रश्वास—ये सब स्वयं आप ही तो हैं।' इसी प्रकार गन्ध, पुष्प एवं दीपकसे अर्चना करनी चाहिये। स्थापनाके मन्त्रका भाव यह है—तीनों लोकोंके प्रतिपालक पुरुषोत्तम! आप प्रकाशके भी प्रकाशक, विज्ञानमय, आनन्दमय एवं संसारके प्रकाशक हैं। भगवन्! यहाँ आइये और इस प्रतिमामें सदाके लिये विराजिये और कृपाकर मेरी रक्षा कीजिये।' वैष्णव-शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये गये हैं, उसके अनुसार इस मन्त्रको पढ़कर स्थापना करनी चाहिये। फिर हाथमें निर्मल श्वेत वस्त्र लेकर कहे—'सम्पूर्ण विश्वपर शासन करनेवाले प्रभो! आप ॐकार-स्वरूप, परम पुरुष परमात्मा, जगत्‌में एकमात्र तत्त्व एवं शुद्धस्वरूप हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमको मेरा नमस्कार है। मैं आपको ये सुन्दर वस्त्र अर्पित करता हूँ, आप इन्हें स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

पृथ्वि! मेरे कर्ममें परायण रहनेवाला मानव प्रतिमाको वस्त्रोंसे आच्छादितकर फिर विधिपूर्वक मेरी अर्चा करे। गन्ध एवं धूप आदिसे पूजा करनेके उपरान्त नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् शान्ति-पाठ कराया जाय। शान्ति-मन्त्रका भाव है—'देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये उत्तम शान्ति सुलभ हो। राजा, राष्ट्र, वैश्य, बालक, धान्य, व्यापार एवं गर्भिणी स्त्रियाँ—सबमें सदा शान्ति बनी रहे। देवेश! आपकी कृपासे मैं कभी अशान्त न होऊँ।'

शान्ति-पाठके पश्चात् ब्राह्मणोंकी पूजाकर भोजन, वस्त्र एवं अलंकारोंके द्वारा गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जिसने गुरुकी पूजा की, उसने मेरी ही पूजा की। जिसके व्यवहारसे गुरु संतुष्ट न हुए, उससे मैं भी बहुत दूर रहता हूँ। जो मनुष्य इस विधानसे मेरी स्थापना करता है, उसके इस कार्यसे छत्तीस पीढ़ी तर जाती है। भद्रे! ताम्बेकी प्रतिमामें मेरे स्थापनकी यह विधि है, जिसे तुम्हें बतला दिया। इसी भाँति सभी प्रतिमाओंकी पूजाका प्रकार मैं तुम्हें बता दूँगा। पृथ्वि! मुझे स्नान कराते समय जलकी जितनी बूँदें मूर्तिके ऊपर गिरती हैं, प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति उतने वर्षोंतक मेरे लोकमें निवास पाता है।

(अध्याय १८३-८४)

कांस्य-प्रतिमा-स्थापनकी विधि

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि! कांस्य-धातुसे स्वच्छ सुन्दर सभी अङ्ग-सम्पन्न प्रतिमा बनवाकर ज्येष्ठा नक्षत्रमें मूर्तिको घरपर लाकर माङ्गलिक ध्वनिके साथ उसकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मेरी प्रतिमाके प्रवेशकालमें विधिके अनुकूल अर्घ्य लेकर मन्त्र पढ़ना चाहिये। उसका भाव यह है—'जगत्प्रभो! जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें पूजा प्राप्त करते हैं, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं, जो सदा सबकी रक्षा करते हैं, जिनकी इच्छापर विश्वकी सृष्टि, पालन आदि निर्भर है तथा जो महान् आत्मा एवं सदा प्रसन्न रहते हैं, वे आप ही हैं। भगवन्! आप भली प्रकारसे मेरी यह पूजा स्वीकार कर प्रसन्नतापूर्वक इस विग्रहमें विराजिये। फिर अर्घ्य देकर शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए मूर्तिके मुखको उत्तरकी ओर करके रखे। प्रतिष्ठाके समय पञ्चगव्य, सभी प्रकारके चन्दन, लाजा एवं मधुसे सम्पन्न चार कलशोंसे शान्ति

करनेकी विधि है। पवित्रात्मा पुरुषको चाहिये कि सूर्यास्त हो जानेपर मेरी यह प्रतिमा पूजा करनेके विचारसे यहीं रख दे। साथ ही भगवन्निमित्त उन शुद्ध कलशोंको उठाकर विग्रहके पास—'ॐ नमो नारायणाय' कहकर रखना चाहिये। तत्पश्चात् आगेका मन्त्र पढ़ना चाहिये। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! ब्रह्माण्ड एवं युगका आदि और अन्त आपके ही रूप हैं। आपके अतिरिक्त विश्वमें कहीं कुछ भी नहीं है। लोकनाथ! अब आप यहाँ आ गये हैं, अतः सदाके लिये विराजिये। प्रभो! आप संसाररूपसे विचार, परमात्मरूपसे निराकार, निर्गुण होनेसे आकारशून्य तथा मूर्तिमान् होनेसे साकार भी हैं। आपको मेरा प्रणाम है।'

पृथ्वि! दूसरे दिन प्रातः सूर्य उदय होनेपर अश्विनी, मूल अथवा तीनों उत्तरा नक्षत्रसे युक्त मुहूर्तमें पूर्वोक्त विधानके अनुसार मुझे मन्दिरके द्वारदेशपर स्थापित करे। सब प्रकारसे शान्ति करनेके लिये जल, गन्ध और फलके साथ—'ॐ नमो नारायणाय' इसका उच्चारण कर प्रतिमाको भीतर ले जाय। कलशोंमें चन्दनयुक्त जल भरकर उसे अभिमन्त्रित करे। फिर उसी जलसे स्नान कराये। सम्पूर्ण अङ्गोंको शुद्ध करनेके लिये मन्त्र-पूर्वक जलका आवाहन करे। मन्त्रका भाव यह है—'पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। भगवन्! ऐसी कृपा करें कि समस्त सागर, सरिताएँ, सरोवर तथा पुष्कर आदि जितने तीर्थ हैं, वे सभी यहाँ आयें, जिनसे मेरे अङ्ग शुद्ध हो जायँ।'

तत्पश्चात् उपासक भक्तिपूर्वक प्रतिमाको स्नान कराकर सविधि अर्चन कर, गन्ध-धूप-दीप आदिसे पूजा कर वस्त्र अर्पित करे। साथ ही यह मन्त्र पढ़े—'ॐकार-स्वरूप देवेश! ये सूक्ष्म, सुन्दर एवं [illegible] आपकी सेवामें उपस्थित हैं। आप इन्हें [illegible] आपको मेरा नमस्कार है। वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये [illegible] रूप हैं और सभी आपकी आराधना करते हैं। मन्त्रके विशेषज्ञ व्यक्ति विधिके साथ पूजा [illegible] अलंकृत करनेके बाद नैवेद्य अर्पित कर आचमन [illegible] फिर शान्तिपाठ करें। शान्तिपाठके मन्त्रका भाव [illegible] 'विद्या, वेद, ब्राह्मण, सम्पूर्ण ग्रह, नदियाँ, [illegible] अग्नि, वरुण आठों लोकपाल आदि देवता— [illegible] विश्वमें शान्ति प्रदान करें। भक्तोंकी [illegible] करनेवाले भगवन्! आप सर्वत्र व्याप्त, [illegible] यम अर्थात् अहिंसा, सत्य वचन एवं ब्रह्मचर्य[illegible] ऐसे ॐकारमय आप परम पुरुषके लिये मेरा न[illegible] है।' फिर मेरी प्रदक्षिणा, स्तुति तथा अभिवादन [illegible] इसके पश्चात् भगवान् श्रीहरिमें श्रद्धा [illegible] ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें भी तृप्त करे। [illegible] विप्रवर्ग शान्ति-कलशका जल लेकर प्रतिमापर [illegible] करें। साधकको ब्राह्मण, मेरे भक्तों एवं गुरु[illegible] निन्दा नहीं करनी चाहिये। प्रतिष्ठाके समय [illegible] अङ्गोंपर जलकी जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने [illegible] वर्षोंतक वह व्यक्ति विष्णुलोकमें रहनेका अधिकारी [illegible] जाता है। जो मनुष्य इस विधिसे मेरी स्थापना करे [illegible] उसने मानो अपने मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों कु[illegible] पितरोंका उद्धार कर दिया। भद्रे! कांस्यधातुसे नि[illegible] मेरी प्रतिमाकी जैसे प्रतिष्ठा करनी चाहिये, वह सब तुम्हें बता चुका। अब ऐसे ही चाँदीसे बनी मूर्ति[illegible] भी स्थापना होती है। वह आगे बताऊँगा।

(अध्याय १८[illegible]

रजत-स्वर्णप्रतिमाके स्थापन तथा शालग्राम और शिवलिङ्गकी पूजाका विधान

भगवान् वराहने कहा—वसुंधरे! इसी प्रकार मेरी चाँदी तथा स्वर्णसे भी प्रतिमा बनाने एवं उसकी प्रकार [illegible] प्रतिष्ठा करनेका विधान है। मूर्ति-निर्माण एवं प्रतिष्ठा उ[illegible] चाहिये, जैसी ताम्र या काँसे[illegible]

है। वसुंधरे! इसमें भी पूजा-अर्चा, पाल्दा-स्थापन न्तिराटका भी पूर्वोक्त विधान ही अनुष्ठित होना ।

पृथ्वी बोली—माधव ! आपने सुवर्ण आदिसे हुई जिन प्रतिमाओंकी बात बतायी है, प्रायः भीमें आपका निवास है। पर शालग्रामशिलामें आप तथा सदा निवास करते हैं। प्रभो! मैं यह जानना ी हूँ कि गृह आदिमें साधारण रूपसे किनकी पूजा चाहिये अथवा विशेषरूपसे कौन देवता हैं! आप मुझे इसका रहस्य बतानेकी कृपा । साथ ही मुझे यह भी स्पष्ट करा दीजिये शिवपरिवारके पूजनमें कितनी संख्याएँ होनी श्यक हैं!

भगवान् वराह कहते हैं—वसुंधरे! गृहस्थके दो शिवलिङ्ग, तीन शालग्रामकी मूर्तियाँ, दो गोमती-, दो सूर्यकी प्रतिमाएँ, तीन गणेश तथा तीन की प्रतिमाओंका पूजन करना निषिद्ध है। विषम यायुक्त शालग्रामकी पूजा नहीं करनी चाहिये। में भी दोकी संख्या नहीं होनी चाहिये। मसंख्यक शालग्रामकी पूजा निषिद्ध है, पर समें भी एक शालग्रामका पूजन विहित है। इसमें मताका दोष नहीं है*। अग्निसे जली हुई तथा टूटी-फूटी तमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि घरमें ऐसी र्तियोंकी पूजा करनेसे गृह-स्वामीके मनमें उद्वेग या निष्ट होता है। शालग्रामकी मूर्ति यदि चक्रके चिह्नसे युक्त हो तो खण्डित होनेपर भी उसकी पूजा करनी चाहिये। क्योंकि वह टूटा-फूटा दीखनेपर भी शुभप्रद माना जाता है। देवि! जिसने शालग्रामकी बारह मूर्तिका विधिवत् पूजन कर लिया, अब मैं तुम्हें उसका पुण्य बताता हूँ। यदि बारह करोड़ शिवके लिङ्गोंका सोनेके कमलपुष्प चढ़ाकर बारह कल्पोंतक पूजन किया जाय, उससे जितना पुण्य प्राप्त होता है, उतना पुण्य केवल एक दिन बारह शालग्रामकी पूजासे होता है। श्रद्धाके साथ सौ शालग्रामका अर्चन करनेवाला जो फल पाता है, उसका वर्णन मेरे लिये सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। अन्य देवताओंकी तथा मणि आदिसे बने हुए शिवलिङ्गोंकी पूजा सर्वसाधारण व्यक्ति कर सकते हैं, पर शालग्रामकी पूजा स्त्री एवं हीन अपवित्र व्यक्तियोंको नहीं करनी चाहिये। शालग्रामके चरणामृत लेनेसे सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। शिवजीपर चढ़े हुए फल, फूल, नैवेद्य, पत्र एवं जल ग्रहण करना निषिद्ध है। हाँ, यदि शालग्रामकी शिलासे उसका स्पर्श हो जाय तो वह सदा पवित्र माना जा सकता है। देवि! जो व्यक्ति स्वर्णके साथ किसी भगवद्भक्त पुरुषको शालग्रामकी मूर्तिका दान करता है, उसका पुण्य कहता हूँ, सुनो। वसुंधरे! उसे वन एवं पर्वतसहित समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी सत्पात्र ब्राह्मणको देनेका पुण्य प्राप्त होता है। यदि शाल-ग्रामकी मूर्तिके मूल्यका निश्चय करके कभी कोई उसे बेचता और खरीदता है तो वे दोनों निश्चय ही नरकमें जाते हैं। वस्तुतः शालग्रामके पूजनके फलका वर्णन तो कोई सौ वर्षमें भी नहीं कर सकता। (अध्याय १८६)

---

* गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामत्रयं तथा। द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा॥
गणेशत्रितयं नार्च्यं शक्तित्रितयमेव च। शालग्रामसमाः पूज्याः समेषु द्वितयं नहि।
विषमा नैव पूज्याः स्युर्विषमे त्वेक एव हि। (वराहपुराण १८६। ४०—४२)

अह थे। इन सभी नियमोंका पालन करते हुए वह दस हजार वर्षोंतक तपस्यामें लीन रहा। इतनेमें कालवश उसका देहान्त हो गया। ऐसे सुयोग्य पुत्रकी मृत्युसे निमिका हृदय शोकपूर्ण हो गया। इस प्रकार पुत्रशोकके कारण ये निमि दिन-रात चिन्तित रहने लगे।

माधवि! उस समय निमिने तीन राततक शोक मनाया। उनकी बुद्धि बहुत विस्तृत थी। अतः इस शोकसे मुक्त होनेका विचार किया कि माघमासकी द्वादशीका दिन उपयुक्त है। और फिर उस दिन पुत्रके लिये श्राद्धकी व्यवस्था की। उस बालक (आत्रेय)को खाने एवं पीनेके लिये जितने भोजनके पदार्थ अन्न, फल, मूल तथा रस थे, उन्हें एकत्र कर फिर स्वयं पवित्र होकर सावधानीके साथ ब्राह्मणको आमन्त्रित किया और अपसव्य-विधानसे सभी श्राद्ध-कार्य सम्पन्न किये। सुन्दरि! इसके बाद सात दिनोंका कृत्य एक साथ सम्पन्न किया। शाक, फल और मूल—इन वस्तुओंसे पिण्डदान किया। सात ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा की। कुशोंको दक्षिणकी ओर अग्रभाग करके रखकर नाम और गोत्रका उच्चारण करके मुनिवर निमिने धार्मिक भावनासे अपने पुत्रके नाम पिण्ड अर्पण किया। भद्रे! इस प्रकार विधान पूरा करते रहे, दिन समाप्त हो गया और भगवान् सूर्य अस्ताचलको चले गये। यह परम दिव्य उत्तम कर्म श्रेष्ठभावसे सम्पन्न हुआ। उन्होंने मन और इन्द्रियोंको वशमें करके आशाएँ त्याग दीं और अकेले ही शुद्ध भूमिमें पहले कुश, तब मृगचर्म और इसके बाद वस्त्र बिछाकर बैठ गये। उनका वह आसन न बहुत ऊँचा था न अति नीचा। चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओं-को वशमें करके एकाग्र हो अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये उन्होंने योगासन लगाया और अपने शरीर तथा सिरको समान रखकर अचल कर लिया। उनकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर जमी थी। चित्तमें किसी प्रकारका क्षोभ भी न था। फिर निर्भीक एवं ब्रह्मचर्यसे रहकर श्रद्धाके साथ एकनिष्ठ होकर उन्होंने मुझमें अपने चित्तको लगाया। इस प्रकार सायंकालकी संध्या समाप्त हुई। पर रात्रिमें पुनः चिन्ता और शोकके कारण उनका मन सहसा क्षुब्ध हो उठा और इस प्रकार पिण्डदानकी क्रिया करनेसे उनके मनमें महान् पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे—'अहो, मैंने जो श्राद्ध-तर्पणकी क्रियाएँ की हैं, इन्हें आजतक किन्हीं मुनियोंने तो नहीं किया है। जन्म और मृत्यु पूर्वकर्मके फलसे सम्बद्ध हैं। पुत्रकी मृत्युके बाद मैंने जो तर्पण किया, यह अपवित्र कार्य है। अहो! स्नेह एवं मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। इसीसे मैंने यह कर्म किया। पितृ-पदपर स्थित जो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस आदि हैं, वे अब मुझे क्या कहेंगे।'

वसुंधरे! इस प्रकार निमि सारी रात चिन्तामें व्यग्र रहे। फिर रात्रि बीती, सूर्य उदित हुए। फिर निमिने प्रातःसंध्या कर, जैसे-तैसे अग्निहोत्र किया। पर वे चिन्ता-दुःखसे पुनः संतप्त हो उठे और अकेले बैठकर प्रलाप करने लगे। उन्होंने कहा—'ओह! मेरे कर्म, बल एवं जीवनको धिक्कार है। पुत्रसे सभी सुख सुलभ होते हैं। पर आज मैं उस सुपुत्रको देखनेमें असमर्थ हूँ। विवेकी पुरुषोंका कथन है कि 'पूतिका' नामका नरक घोर क्लेशदायक है, पर पुत्र इससे रक्षा करता है। अतः सभी मनुष्य इस लोक तथा परलोकके लिये ही पुत्रकी इच्छा करते हैं। अनेक देवताओंकी पूजा, विविध प्रकारके दान तथा विधिवत् अग्निहोत्र करनेके फलस्वरूप मनुष्य स्वर्गमें जानेका अधिकारी होता है, पर वही स्वर्ग पिताको पुत्रद्वारा सहज ही सुलभ हो जाता है। यही नहीं, पौत्रसे पितामह तथा

...द थे। इन सभी नियमोंका पालन करते हुए वह ... हजार वर्षोंतक तपस्यामें लीन रहा। इतनेमें ...वश उसका देहान्त हो गया। ऐसे सुयोग्य ...की मृत्युसे निमिका हृदय शोकपूर्ण हो गया। ... प्रकार पुत्रशोकके कारण ये निमि दिन-रात ...न्तित रहने लगे।

...मानवि! उस समय निमिने तीन राततक शोक ...या। उनकी बुद्धि बहुत विस्तृत थी। अतः इस ...कसे मुक्त होनेका विचार किया कि माघमासकी ...दशीका दिन उपयुक्त है। और फिर उस दिन पुत्रके ...ये श्राद्धकी व्यवस्था की। उस बालक (आत्रेय)को ...ने एवं पीनेके लिये जितने भोजनके पदार्थ अन्न, फल, ...ल तथा रस थे, उन्हें एकत्र कर फिर स्वयं पवित्र होकर ...वधानीके साथ ब्राह्मणको आमन्त्रित किया और अपसव्य-विधानसे सभी श्राद्ध-कार्य सम्पन्न किये। सुन्दरि! इसके बाद सात दिनोंका कृत्य एक साथ सम्पन्न किया। शाक, फल और मूल—इन वस्तुओंसे पिण्डदान किया। सात ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा की। कुशोंको दक्षिणकी ओर अग्रभाग करके रखकर नाम और गोत्रका उच्चारण करके मुनिवर निमिने धार्मिक भावनासे अपने पुत्रके नाम पिण्ड अर्पण किया। भद्रे! इस प्रकार विधान पूरा करते रहे, दिन समाप्त हो गया और भगवान् सूर्य अस्ताचलको चले गये। यह परम दिव्य उत्तम कर्म श्रेष्ठभावसे सम्पन्न हुआ। उन्होंने मन और इन्द्रियोंको वशमें करके आशाएँ त्याग दीं और अकेले ही शुद्ध भूमिमें पहले कुश, तब मृगचर्म और इसके बाद वस्त्र बिछाकर बैठ गये। उनका वह आसन न बहुत ऊँचा था न अति नीचा। चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओं-को वशमें करके एकाग्र हो अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये उन्होंने योगासन लगाया और अपने शरीर तथा सिरको समान रखकर अचल कर लिया। उनकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर जमी थी। चित्तमें किसी प्रकारका क्षोभ भी न था। फिर निर्भीक एवं ब्रह्मचर्यसे रहकर श्रद्धाके साथ एकनिष्ठ होकर उन्होंने मुझमें अपने चित्तको लगाया। इस प्रकार सायंकालकी संध्या समाप्त हुई। पर रात्रिमें पुनः चिन्ता और शोकके कारण उनका मन सहसा क्षुब्ध हो उठा और इस प्रकार पिण्डदानकी क्रिया करनेसे उनके मनमें महान् पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे—'अहो, मैंने जो श्राद्ध-तर्पणकी क्रियाएँ की हैं, इन्हें आजतक किन्हीं मुनियोंने तो नहीं किया है। जन्म और मृत्यु पूर्वकर्मके फलसे सम्बद्ध हैं। पुत्रकी मृत्युके बाद मैंने जो तर्पण किया, यह अपवित्र कार्य है। अहो! स्नेह एवं मोहके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। इसीसे मैंने यह कर्म किया। पितृ-पदपर स्थित जो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग और राक्षस आदि हैं, वे अब मुझे क्या कहेंगे।'

वसुंधरे! इस प्रकार निमि सारी रात चिन्तामें व्यग्र रहे। फिर रात्रि बीती, सूर्य उदित हुए। फिर निमिने प्रातःसंध्या कर, जैसे-तैसे अग्निहोत्र किया। पर वे चिन्ता-दुःखसे पुनः संतप्त हो उठे और अकेले बैठकर प्रलाप करने लगे। उन्होंने कहा—'ओह! मेरे कर्म, बल एवं जीवनको धिक्कार है। पुत्रसे सभी सुख सुलभ होते हैं। पर आज मैं उस सुपुत्रको देखनेमें असमर्थ हूँ। विवेकी पुरुषोंका कथन है कि 'पुतिका' नामका नरक घोर क्लेशदायक है, पर पुत्र इससे रक्षा करता है। अतः सभी मनुष्य इस लोक तथा परलोकके लिये ही पुत्रकी इच्छा करते हैं। अनेक देवताओंकी पूजा, विविध प्रकारके दान तथा विधिवत् अग्निहोत्र करनेके फलस्वरूप मनुष्य स्वर्गमें जानेका अधिकारी होता है, पर वही स्वर्ग पिताको पुत्रद्वारा सहज ही सुलभ हो जाता है। यही नहीं, पौत्रसे पितामह तथा

सृष्टि और श्राद्धकी उत्पत्ति-कथा एवं पितृयज्ञका वर्णन

पृथ्वी बोली—भगवन् ! आपके वराह तथा मधुरा-क्षेत्रकी महिमा मैं सुन चुकी । प्रभो ! मैं अब पितृयज्ञके सम्बन्धमें जानना चाहती हूँ कि यह क्या है और इसे किस प्रकार आरम्भ करना चाहिये ? सर्वप्रथम किसने इस यज्ञका शुभारम्भ किया तथा इसका प्रयोजन एवं स्वरूप क्या है ?

भगवान् वराह कहते हैं—देवि ! सर्वप्रथम मैंने स्वर्गलोककी रचना की, जो देवताओंका पहले आवास बना। जगत् प्रकाशशून्य था और सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था। उस समय मेरे मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि चर और अचर प्राणियोंसे सम्पन्न तीनों लोकोंका सृजन करूँ । उस समय मैं संसारकी सृष्टिसे विमुख शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहा था । ऐसा मेरा अनन्त शयन हुआ करता है । मायास्वरूपिणी निद्रा मेरी सहचरी है । इसका सृजन मेरी इच्छापर निर्भर है । इसीसे मैं सोता और जागता हूँ । सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वत्र जल-ही-जल था । कहीं कुछ भी पता नहीं चलता था । उस जलमें एक वट-वृक्षके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था । वह वट भी बीजजनित नहीं था, बल्कि मुझ विष्णुद्वारा ही उत्पन्न था* । मायाका आश्रय लेकर एक बालकके रूपमें मैं उसपर निवास करता था । मेरी आज्ञा पाकर मायाने चर और अचरसे परिपूर्ण तीनों लोकोंको सजाया

मुझसे पूछा कि मैं क्या करूँ ?' तब मैं
यह वचन कहा—'ब्रह्मन् ! तुम यथाशीघ्र मु
मानवोंकी सृष्टि करो ।'

देवि ! इस प्रकार मेरे कहनेपर ब्रह्माने हाथमे
उठाया और उसके जलसे आचमन कर दे
सृष्टिका कार्य आरम्भ कर दिया ।
बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, दो अ
उनचास मरुद्गण एवं सबका उद्धार करनेके लि
तथा सुरसमुदायकी सृष्टि की । उनकी
क्षत्रियोंकी, ऊरुओंसे वैश्योंकी तथा चरणोंसे
उत्पत्ति हुई । देवि ! उन्हींसे देवता और असु
सब धराधामपर विराजने लगे । देवता और
तप तथा यज्ञकी अधिकता हुई । अदिति देवीसे
वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार आ
करोड़ देवता उत्पन्न हुए । दिति देवीसे दे
विरोधी दानवोंकी उत्पत्ति हुई । उसी समय
तपोधन ऋषियोंको उत्पन्न किया । वे सभी ते
कारण सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे
सभी शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान था । अब उनके पु
पौत्रोंकी संख्या सीमित न रही । उन्हींमें ए
हुए । उन निमिको भी एक पुत्र हुआ, जो
नामसे प्रसिद्ध हुआ । वह जन्मसे ही सुन्दर, स

प्रतिमें प्रतिक्षण जो असह्य शोक हो रहा है। अब मैं अपने पुत्रके बिना मैं जीवित नहीं रहना चाहता हूँ।'

जो इस प्रकार चिन्तामें अत्यन्त दुःखी हो रहे थे कि देवर्षि नारद महात्मा उन निमिके आश्रममें पहुँच गये। उस अलौकिक आश्रममें सभी ओर अनुपम शोभा थी। अनेक प्रकारके फल-फूल एवं वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। प्रसन्न मन नारदजी निमिके आश्रमके भीतर गये। धर्मज्ञ निमिने उन्हें आया देखकर उनका स्वागत और पूजन किया। भीष्म! उस समय निमिके द्वारा आसन, पाद्य एवं अर्घ्य आदि दिये गये। नारदजी उन्हें ग्रहण कर फिर उनसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

नारद बोले—'निमे! तुम्हारे जैसे ज्ञानी पुरुषको इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये तथा जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये पण्डितजन शोक नहीं करते। यदि कोई मर जाय, नष्ट हो जाय अथवा कहीं चला जाय, इनके लिये जो व्यक्ति शोक करता है, उसके शत्रु हर्षित होते हैं। जो मर गया, नष्ट हो गया, वह पुनः लौट आये, यह सम्भव नहीं है। चर और अचर प्राणियोंसे सम्पन्न इन तीनों लोकोंमें मैं किसीको अमर नहीं देखता। देवता, दानव, गन्धर्व-मनुष्य, मृग—ये सभी कालके ही अधीन हैं। तुम्हारा पुत्र 'श्रीमान्' निश्चय ही एक महान् आत्मा था। उसने पूरे दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त कठिन तपस्या कर परम दिव्य गति प्राप्त की है। इन सब बातोंको जानकर तुम्हें सोच नहीं करना चाहिये।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर निमिने उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। किंतु फिर भी उनका मन पूरा शान्त न हुआ। वे बारंबार दीर्घ साँस ले रहे थे और उनका हृदय करुणासे व्याप्त था। वे लज्जित होकर कुछ डरते हुए-से बोले—'मुनिवर! आप अवश्य ही महान् धर्मज्ञ पुरुष हैं। अपने स्नेहवश मैंने यह मेरे हृदयमें सङ्कल्प कर लिया। फिर ब्राह्मणोंके भोजन कराके बादमें मैं दुःख सहन कर रहा हूँ कि जो गुरुजनोंद्वारा वर्जित है। ऐसा विरुद्ध कर्म मैंने कर डाला है। अतएव मैं उसके लिये बड़ा अनर्थ होगा यह, ऐसा मेरे चित्तमें भय हुआ है। साथ ही सात ब्राह्मणोंको भोजन कराके पूजन किया है तथा उनमेंसे कुछ ब्राह्मण स्वीकार किये हैं। द्विजवर! यह उनका कुल होके धर्म करता है इसमें सर्वं आपत्ति कही उत्पन्न नहीं सकती। मेरी बुद्धि मारी गयी थी। मैं कैसे हूँ—यह मुझे स्मरण न था। अज्ञानसे मोहित होनेके कारण यह कर्म मैं कर बैठा। पहलेके किसी देवता-ऋषियोंने ऐसा कर्म नहीं किया है। अतः मैं व्यामोहमें पड़ा हूँ कि कहीं मुझे कोई प्रत्यवाय दोष न लग जाय।'

नारदजी बोले—द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मेरे देखनेमें यह अधर्म नहीं किंतु परम धर्म है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। अब तुम अपने पिताकी शरणमें जाओ।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर निमिने अपने पिताका मन, वाणी और कर्मसे ध्यानपूर्वक शरण ग्रहण किया और उनके पिता भी उसी समय उनके सामने उपस्थित हो गये। उन्होंने निमिको पुत्र-शोकसे संतप्त देखकर उन्हें कभी व्यर्थ न होनेवाले अभीष्ट वचनोंद्वारा आश्वासन देना आरम्भ किया—'निमे! तुम्हारे द्वारा जो संकल्पित कार्य हुआ है, तपोधन! यह 'पितृयज्ञ' है। स्वयं ब्रह्माने इसका नाम 'पितृ-यज्ञ' रखा है। तभीसे यह धर्म 'श्रुत' एवं 'क्रतु' नामसे अभिहित होता आया है। बहुत पहले स्वयंभू ब्रह्माने भी इसका आचरण किया था। उस समय विधिके उत्तम जानकार ब्रह्माने जो यज्ञ किया था

उन्होंने नारदको भी सुनाया था।

भगवान् वराह कहते हैं—सुन्दरि ! अब मैंने ... द्वारा उपदिष्ट उस श्राद्धविधिका भलीभाँति प्रतिपादन ...ा हूँ, सुनो। इससे ज्ञात हो जायगा कि पुत्र ...के लिये किस प्रकार श्राद्ध करता है। जितने ...ी उत्पन्न होते हैं, उन सबकी समयानुसार ...ु हो जाती है। चींटी आदिसे लेकर ...ने भी जन्तु हैं, उनमें किसीको मैं अमर नहीं ...ता; क्योंकि जिसका जन्म होता है, उसकी ...ु और जो मरता है, उसका जन्म निश्चित है। ..., कोई विशेष कर्म अथवा प्रायश्चित्तका सहयोग प्राप्त ...नेसे मोक्ष होना भी निश्चित है।* सत्त्व, रज ...र तम—ये तीनों शरीरके गुण कहे जाते हैं। कुछ ...नोंके पश्चात् युगके अन्तमें मनुष्य अल्पायु हो ...येंगे। तमोगुणकी प्रधानतावाले मानव कर्म-दोषके ...भावसे सात्त्विक विषयपर ध्यान नहीं देते, अतः ...स कर्मके प्रभावसे उन्हें नरकमें जाना पड़ता है। ...िर अगले जन्मोंमें उन्हें पशु, पक्षी अथवा राक्षसकी ...योनि मिलती है। वेदको जाननेवाले सात्त्विक ज्ञानी ...ोग धर्म, ज्ञान और वैराग्यके सहारे मुक्ति-मार्गकी ओर अग्रसर होते हैं। क्रूर, भयभीत, हिंसक, निर्लज्ज, अज्ञानी, श्रद्धाहीन मनुष्यको और पिशाचके समान व्यवहार करनेवालेको तमोगुणी जानना चाहिये। उसे कोई अच्छी बात बतायी जाय तो वह समझता नहीं है। इसी प्रकार पराक्रमी, अपने वचनके पालन करनेवाले, स्थिर-बुद्धि, सदा संयमशील, शूरवीर तथा प्रसिद्ध व्यक्तिको

... स्वाध्यायमें सदा संलग्न रहते हैं, वे सात्त्विक ...

ब्रह्माजीने निमिसे कहा था—पुत्र! इस ... विचारकर तुम्हें शोक करना अनुचित है; ... सबका संहारक है। वह लोगोंके शरीरको ... उसके प्रभावसे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती ... धृति, धर्म, श्री, कीर्ति, नीति तथा सम्पू... मनुष्यका परित्याग कर देते हैं।† अतए... शोकका त्याग करके परम सुखी बननेका प्र... मूर्ख मनुष्य मोहवश हिंसा तथा मिथ्या-भ... तत्पर हो जाता है। ऐसे मनुष्यको ... कारण घोर नरकमें निवास करना पड़ता ... अब मैं धार्मिक जगत्‌का कल्याण होनेके ... बात बताता हूँ—तुम उसे सुनो—स... आसक्ति हटाकर धर्ममें बुद्धिको लगान... यह सार वस्तु है। स्वायम्भुव मनु... है तथा तुमने जो श्राद्ध किया है, इसपर... मैं चारों वर्णोंके लिये विधान बतलाता हूँ, ...

जिस समय प्राण कण्ठस्थानपर पहुँच ... समय मनुष्य भय और भ्रान्तिवश अत्यन्त ... है और वह सभी दिशाओंमें दृष्टि डालनेमें अ... है। किसी क्षणमें स्मृति भी आ जाती ... जीवको जबतक आँख नहीं खुलती, ... देवता ब्राह्मणगण स्नेहपूर्वक सामने सब... यथायोग्य दान आदि धर्म कराना समु... लोकमें उस प्राणीका कल्याण हो—इसलि...

---

* जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। मोक्षः कर्मविशेषेण प्रायश्चित्तेन निश्चितम् ... (वराहपुराण ...

† शोको दहति गात्राणि बुद्धिः शोकेन नश्यति। लज्जा धृतिश्च धर्मश्च श्रीः कीर्तिश्च स्मृतिस्... त्यजन्ति सर्वधर्माश्च शोकेनोपहतं नरम्॥ (वराहपुराण १८७। १३८, तुलनीय वाल्मी... २। ६२। १५—१६ आदि)

दिन क्षौर-कर्म करीनेर दूसरा पवित्र वस्त्र

चाहिये। गोत्रके सभी स्वजन तिल, आँवला और

र स्नान करें। दसवें दिन बाल बनवाकर

स्नान करनेके पश्चात् भाई-बन्धुओंके साथ

ाना चाहिये। ग्यारहवें दिन समुचित विधिसे

द्ध करनेका नियम है। स्नान करके शुद्ध

द अपने उस प्रेतको अन्य पितरोंमें

करनेके लिये पिण्ड दे। माधवि! चारों वर्णोंके

ये एकोद्दिष्टका विधान एकसमान है। तेरहवें

णोंको श्रद्धापूर्वक पकान्न भोजन कराना

समें जिस दिवंगत व्यक्तिके लिये श्राद्ध किया

उसका नाम लेकर संकल्प करना आवश्यक

के लिये पहले ब्राह्मणके घरपर जाकर

से नम्रतापूर्वक निमन्त्रण देना चाहिये। देवि!

मन-ही-मन यह मन्त्र पढ़ना चाहिये, जिसका

—'प्रियवर! तुम इस समय यमराजके

ार दिव्य लोकमें पहुँच गये हो, अब

रूप धारण करके मानसिक प्रयत्नद्वारा इस

शरीरमें स्थित होनेकी कृपा करो।' फिर उस श्रेष्ठ

नमस्कार करके पाद्यार्पण करना चाहिये।

दरि! उस समय ब्राह्मणके शरीरमें प्रेतके

कल्पना कर उसका हित करनेके विचारसे

हन (पैर दबाना) आदि कार्य परम उपयोगी

। मनुष्यका कर्तव्य है कि अशौचके दिनोंमें

त्रका स्पर्श न करे। रात बीत जानेपर प्रातः-

ूर्योदयके पश्चात् श्राद्धकर्ताको विधिपूर्वक बाल

र तैल आदि लगाकर स्नान करना चाहिये।

थ्वीको स्वच्छ करके वहाँ वेदी बनाये। इसका

देश नदीतट अथवा श्राद्धकर्मके लिये निश्चित

सुन्दरि! दक्षिण और पूर्वकी ओर मुख क

पितृभाग सम्पन्न होते हैं। नदीके तटपर वृक्षके

कुंजर* (पीपल) वृक्षकी छायामें भी श्र

करनेका विधान है। उस स्थानपर हीन

दृष्टि न पड़े। जिस स्थानमें प्रेत-सम्बन्धी

जायँ, वहाँ मुर्गा, कुत्ता, सूकर प्रभृति पशु-पक्षि

या नेत्र-दृष्टि निषिद्ध है। उनके शब्द भी क

चाहिये। वसुन्धरे! मुर्गेकी पाँख-सम्बन्धी

चण्डालकी दृष्टिसे युक्त स्थानमें श्राद्ध करने

बन्धन प्राप्त होता है।

सुन्दरि! इसलिये विवेकी मनुष्यका प

कि वे प्रेतकार्यमें इनका उपयोग न करें।

गन्धर्व, उरग, नाग, यक्ष-राक्षस, पिशाच,

और जङ्गम आदि जितने प्राणी हैं, वे सभी

भागपर प्रतिष्ठित हो स्नान आदि क्रियाएँ य

रहते हैं। यह सारा जगत् भगवान् विष्णुकी

है। चण्डालसे लेकर ब्राह्मणपर्यन्त सभी वर्णों

अथवा अशुभ कार्य करनेके लिये स्वतन्त्र हैं।

आवश्यकता यह है कि प्रेत-कार्य करनेके

स्नानपूर्वक स्थानकी शुद्धि करे। भूमिको

किये श्राद्ध करना अनुपयुक्त होता है। भद्रे!

आधारित है और तुम स्वभावतः शुद्ध हो

कार्योंके द्वारा तुम्हें दूषित बना दिया जाता

कभी बिना पवित्र किये स्थानपर श्राद्ध नहीं

क्योंकि उसे देवता और पितर स्वीकार नहीं

तक कि उस उच्छिष्ट स्थानके प्रभावसे उ

गिरना पड़ता है। अतएव स्थानकी शुद्धि

को पिण्ड देना चाहिये। माधवि! ना

* संस्कृतके कोशोंमें 'कुञ्जर' शब्दके अनेक अर्थ हैं, जिनमें यह पीपल वृक्ष भी एक है, किंतु इस अर्थ

नहीं मिलता, जो यहाँ इष्ट होता है।

…दः इस प्रकारकी विधिका पालन करना आवश्यक …। दसवें दिन क्षौर-कर्म कराकर दूसरा पवित्र वस्त्र …णकरना चाहिये। गोत्रके सभी स्वजन तिल, आँवला और … लगाकर स्नान करें। दसवें दिन बाल बनवाकर …धिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् भाई-बन्धुओंके साथ …ने घर जाना चाहिये। ग्यारहवें दिन समुचित विधिसे …कोद्दिष्ट श्राद्ध करनेका नियम है। स्नान करके शुद्ध …नेके बाद अपने उस प्रेतको अन्य पितरोंमें …मिलित करनेके लिये पिण्ड दे। माधवि! चारों वर्णोंके …नुष्योंके लिये एकोद्दिष्टका विधान एकसमान है। तेरहवें …न ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक पक्वान्न भोजन कराना …हिये। इसमें जिस दिवंगत व्यक्तिके लिये श्राद्ध किया …ना हो, उसका नाम लेकर संकल्प करना आवश्यक …। इसके लिये पहले ब्राह्मणके घरपर जाकर …स्थ चित्तसे नम्रतापूर्वक निमन्त्रण देना चाहिये। देवि! …स समय मन-ही-मन यह मन्त्र पढ़ना चाहिये, जिसका …भाव है—'प्रियवर! तुम इस समय यमराजके आदेशानुसार दिव्य लोकमें पहुँच गये हो, अब …वायुका रूप धारण करके मानसिक प्रयत्नद्वारा इस …ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होनेकी कृपा करो।' फिर उस श्रेष्ठ …ब्राह्मणको नमस्कार करके पाद्यार्पण करना चाहिये।

सुन्दरि! उस समय ब्राह्मणके शरीरमें प्रेतके …विग्रहकी कल्पना कर उसका हित करनेके विचारसे पाद-संवाहन (पैर दबाना) आदि कार्य परम उपयोगी है। भूमे! मनुष्यका कर्तव्य है कि अशौचके दिनोंमें मेरे गात्रका स्पर्श न करे। रात बीत जानेपर प्रातः-काल सूर्योदयके पश्चात् श्राद्धकर्ताको विधिपूर्वक बाल बनवाकर तैल आदि लगाकर स्नान करना चाहिये। फिर पृथ्वीको स्वच्छ करके वहाँ वेदी बनाये। इसका उपयुक्त देश नदीतट अथवा श्राद्धकर्मके लिये निश्चित भूमि है। ऐसे स्थानपर पिण्डदान करना उत्तम है। चौंसठ पिण्ड देनेसे यथार्थ सुकृत सुलभ होता है। सुन्दरि! दक्षिण और पूर्वकी ओर मुख करके ये सभी पितृभाग सम्पन्न होते हैं। नदीके तटपर वृक्षके नीचे अथवा कुंजर* (पीपल) वृक्षकी छायामें भी इस कार्यको करनेका विधान है। उस स्थानपर हीन प्राणियोंकी दृष्टि न पड़े। जिस स्थानमें प्रेत-सम्बन्धी कार्य किये जायँ, वहाँ मुर्गा, कुत्ता, सूकर प्रभृति पशु-पक्षियोंका प्रवेश या नेत्र-दृष्टि निषिद्ध हैं। उनके शब्द भी वहाँ नहीं होने चाहिये। वसुन्धरे! मुर्गेकी पाँख-सम्बन्धी वायुसे तथा चण्डालकी दृष्टिसे युक्त स्थानमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको बन्धन प्राप्त होता है।

सुन्दरि! इसलिये विवेकी मनुष्यका परम कर्तव्य है कि वे प्रेतकार्यमें इनका उपयोग न करें। देवता, दानव, गन्धर्व, उरग, नाग, यक्ष-राक्षस, पिशाच, तथा स्थावर और जङ्गम आदि जितने प्राणी हैं, वे सभी तुम्हारे पृष्ठ-भागपर प्रतिष्ठित हो स्नान आदि क्रियाएँ यथावसर करते रहते हैं। यह सारा जगत् भगवान् विष्णुकी मायाका क्षेत्र है। चण्डालसे लेकर ब्राह्मणपर्यन्त सभी वर्णके मनुष्य शुभ अथवा अशुभ कार्य करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। भूमे! इसलिये आवश्यकता यह है कि प्रेत-कार्य करनेके समय पहले स्नानपूर्वक स्थानकी शुद्धि करे। भूमिको बिना पवित्र किये श्राद्ध करना अनुपयुक्त होता है। भद्रे! जगत् तुमपर आधारित है और तुम स्वभावतः शुद्ध हो। पर अपवित्र कार्योंके द्वारा तुम्हें दूषित बना दिया जाता है। इसलिये कभी बिना पवित्र किये स्थानपर श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसे देवता और पितर स्वीकार नहीं करते। यहाँ-तक कि उस उच्छिष्ट स्थानके प्रभावसे उन्हें घोर नरकमें गिरना पड़ता है। अतएव स्थानकी शुद्धि करके ही प्रेत-को पिण्ड देना चाहिये। माधवि! नाम और गोत्रके

* संस्कृतके कोशोंमें 'कुञ्जर' शब्दके अनेक अर्थ हैं, जिनमें यह पीपल वृक्ष भी एक है, किंतु इस अर्थमें इसका प्रयोग प्रायः नहीं मिलता, जो यहाँ हुआ है।

चाहिये। इसकी विशेष महिमा है, घासका चरना और अमृत-तुल्य दुग्ध प्रदान करना गौका स्वाभाविक गुण है। इसके दानसे मनुष्य यथाशीघ्र तापसे छूट जाता है। इसके बाद मरणासन्न प्राणीके कानमें श्रुति-कथित दिव्यमन्त्र सुनाना चाहिये। जबतक प्राणी अत्यन्त विवश हो जाय तो मनुष्य उसे देखकर मन्त्र पढ़कर मरणकालोचित कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करे। इस मन्त्रमें सम्पूर्ण संसारसे प्राणीको मुक्त करनेकी शक्ति है। फिर तत्काल मधुपर्क हाथमें लेकर कहे—'ओंकार-स्वरूप भगवन्! आप मेरा अर्पण किया हुआ मधुपर्क स्वीकार करनेकी कृपा करें। यह परम स्वच्छ संसारमें आने-जानेका नाशक, अमृतके समान भगवत्प्रेमी व्यक्तियोंके लिये नारायणरचित, दाह मिटानेवाला तथा देवलोकमें परम पूजनीय है। यह कहकर उसे मरणासन्न प्राणीके मुखमें डाल दे। इसके फलस्वरूप व्यक्ति परलोकमें सुख पाता है। इस प्रकारकी विधि सम्पन्न होनेपर यदि प्राण निकलते हैं तो वह प्राणी फिर संसारमें जन्म नहीं पाता। मृत प्राणीकी सद्गतिके उद्देश्यसे उसे वृक्षके नीचे ले जाकर अनेक प्रकारके गन्धों तथा घृत, तैलके द्वारा उस प्राणीके शरीरका शोधन करे। साथ ही तैजस एवं अविनाशी सभी कार्य उसके लिये करना उचित है। जलके संनिकट दक्षिणकी ओर पैर करके लेटा देना चाहिये। तीर्थ आदिका आवाहन करके उसे स्नान करानेका विधान है। गया आदि [...] ऊँचे, विशाल एवं पुण्यमय पर्वत, कुरुक्षे[...] यमुना, कौशिकी, पयोष्णी, गण्डकी, सरयू, वरदा, अनेक वन, वराहतीर्थ, [...] पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थ तथा चारों समुद्र—[...] मनमें ध्यान करके मृत प्राणीको उस जलसे स्नान [...] चाहिये। फिर विधिके अनुसार उसे चितापर रखना [...] उसके पैर दक्षिणकी दिशामें हों। प्रधान दिव्य [...] ध्यान करके हाथमें अग्नि उठा ले। उसे [...] करके विधिवत् यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। मन्त्र[...] है—'अग्निदेव! यह मानव जाने अथवा [...] जो कुछ भी कठिन काम कर चुका है, कि[...] मृत्युकालके अधीन होकर यह इस लोकमें [...] धर्म, अधर्म, लोभ और मोहसे यह सदा सम्पन्न [...] है। फिर भी आप इसके गात्रोंको भस्म कर दें [...] यह स्वर्गलोकमें चला जाय।' इस प्रकार [...] प्रदक्षिणा कर जलती हुई अग्नि उसके सिरके [...] प्रज्वलित कर दे। फिर तर्पणकर मृत व्यक्तिका नाम [...] पृथ्वीपर उसके लिये पिण्ड दे। पुत्र! चारों [...] इसी प्रकारका संस्कार होता है। फिर शरीर [...] वस्त्रोंको धोकर वहाँसे लौटना चाहिये। उसी [...] दस दिनपर्यन्त सभी सगोत्रके लोग अशौचके भा[...] बन जाते हैं और उन्हें देवकर्मोंमें अधिकार नहीं [...] जाता है।

(अध्याय [...]

। कर परमगतिको प्राप्त कर चुके हो। मैंने भक्ति- तुम्हारे लिये यह गन्ध उपस्थित किया है, तुम होकर इसे स्वीकार करो।' साथ ही विप्रके प्रति —'विप्रवर! मेरे प्रयाससे ये सब प्रकारके गन्ध, धूप एवं दीप प्रेतकी सेवार्थ समर्पित हैं। आप स्वीकार करके प्रेतका उद्धार करनेकी कृपा करें।'

वसुंधरे! इसी प्रकार प्रेतके निमित्त सिद्ध अन्न, वस्त्र आभूषण भी ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माधवि! के उपभोगके योग्य अनेक द्रव्य-दान करनेके पश्चात् बार अपने पैरकी शुद्धि भी समुचित है। चारों वर्णोंको ही विधिका पालन करना चाहिये। प्रहीता ब्राह्मण मन्त्रका उच्चारण करके ही दातव्य वस्तु ग्रहण करे। श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणको ज्ञानी एवं शुद्ध- रूप होना अनिवार्य है। सर्वप्रथम प्रेतके लिये अन्न देना चाहिये। उस समय एक दूसरेका स्पर्श होना निषिद्ध है। उन सभी व्यञ्जनोंकी कल्पना प्रेतके निमित्त ही हो—ऐसा नियम है। सुव्रते! प्रेतके लिये पिण्डदान करते समय देवता और ब्राह्मण भी भाग पानेके अधिकारी हैं। बुद्धिमान् पुरुषको इस बातपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे अवसरोंपर मानवोचित व्यवहार भी बना रहे। विधिके साथ मन्त्र पढ़कर पितृतीर्थसे* पिण्ड अर्पण करना चाहिये। इस प्रकारके कार्य प्रेतों और ब्राह्मणोंके लिये स्वल्पान्तरके समयसे होना उचित है। प्रेतकार्यसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोना तथा विधिवत् आचमन करना चाहिये। फिर मन्त्रपूर्वक भक्षण करनेके योग्य सिद्ध अन्न हाथमें उठाये। जो ब्राह्मण प्रेतकार्यमें सदासे भोजन करता हो, अपनी जाति, बन्धु एवं गोत्रों- में जो भोजनका अधिकारी हो तथा जिसके लिये जैसा उचित हो, उसको समुचित रूपसे वैसा ही भाग देना चाहिये। ब्राह्मणको जब कुछ दिया जा रहा हो, उस समय किसीको मना नहीं करना चाहिये। यदि कोई दूसरा दान करता हो और कोई दूसरा उसे रोकता है तो गुरुकी हत्या-जैसे बुरे फलका भागी होता है। यही नहीं, ऐसे व्यक्तिके दिये हुए पदार्थको देवता, अग्नि और पितर भी ग्रहण नहीं करते और प्रेतको भी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती है। अतएव मनुष्यको ऐसा कार्य करना चाहिये कि जिसमे दान-धर्मका लोप न हो सके। जातिवाले तथा सम्बन्धियोंके बीच प्रसन्नमनसे जो ब्राह्मणको विशेषरूपसे प्रेतभाग भोजनके लिये प्रदान करता है, उसकी अचल प्रतिष्ठा होती है, केवल देखनेमात्रसे कोई तृप्त नहीं होता। इस प्रकार प्रेतकी भावना करके भोजन आदि पदार्थ अर्पण करनेके प्रभाव- से प्राणी यथाशीघ्र पापसे मुक्त हो जाता है।

शान्तिके लिये जलसे विधिवत् स्नानकर सिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके लिये दान देनेके स्थानपर आ जाय। देवि! तुम्हारी भक्तिमें निष्ठा रखते हुए मानवको इन मन्त्रोंको पढ़कर स्तुति करनेकी विधि है। मन्त्रका भाव यह है— 'वसुधे! आप जगत्की माता हैं तथा मेदिनी, उर्वी, महाशैलशिलाधारा—आदि नामोंसे विभूषित हैं। आप जगत्की जननी तथा उसे आश्रयप्रदान करनेवाली हैं। जगत् आपपर आधारित है। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' सुन्दरि! इस विधिसे जब भक्त पिण्डदान करता है तो उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके तिलोदक देना चाहिये। साथ ही दोनों घुटनोंको जमीन- पर टेककर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। मन्त्रपूर्वक अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उठाये और उन्हें शय्यापर बैठाकर अञ्जन आदि वस्तुओंको अर्पित करे। कुछ क्षणतक वहाँ विश्राम करके निवाप (श्राद्ध)- स्थानपर आ जाय और गौकी पूँछ पकड़कर ब्राह्मणके हाथमें उसका दान करना चाहिये। गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें काला तिल और जल लेकर द्विजाति-

* अँगूठे तथा तर्जनी अँगुलीके बीचका स्थान 'पितृतीर्थ' कहलाता है—'कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः।' (मनु० २।५९ तथा द्रष्टव्य भविष्यपुराण १. १३. ६१—६५; बौधायनधर्मसूत्र ५।१४—१८, याज्ञवल्क्यस्मृ० १।१९ आदिकी व्याख्याएँ।

ग पर परमगतिको प्राप्त कर चुके हो। मैंने भक्ति- तुम्हारे लिये यह गन्ध उपस्थित किया है, तुम होकर इसे स्वीकार करो।' साथ ही विप्रके प्रति —'विप्रवर! मेरे प्रयाससे ये सब प्रकारके गन्ध, धूप एवं दीप प्रेतकी सेवार्थ समर्पित हैं। आप स्वीकार करके प्रेतका उद्धार करनेकी कृपा करें।'

वसुंधरे! इसी प्रकार प्रेतके निमित्त सिद्ध अन्न, वस्त्र आभूषण भी ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माधवि! कि उपभोगके योग्य अनेक द्रव्य-दान करनेके पश्चात् न बार अपने पैरकी शुद्धि भी समुचित है। चारों वर्णोंको ही विधिका पालन करना चाहिये। ग्रहीता ब्राह्मण मन्त्रका उच्चारण करके ही दातव्य वस्तु ग्रहण करे। तश्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणको ज्ञानी एवं शुद्ध-रूप होना अनिवार्य है। सर्वप्रथम प्रेतके लिये अन्न देना हिये। उस समय एक दूसरेका स्पर्श होना निषिद्ध है। उन सभी व्यञ्जनोंकी कल्पना प्रेतके निमित्त ही हो—ऐसा नियम है। सुव्रते! प्रेतके लिये पिण्डदान करते समय देवता और ब्राह्मण भी भाग पानेके अधिकारी हैं। बुद्धिमान् पुरुषको इस बातपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे अवसरोंपर मानवोचित व्यवहार भी बना रहे। विधिके साथ मन्त्र पढ़कर पितृतीर्थसे* पिण्ड अर्पण करना चाहिये। इस प्रकारके कार्य प्रेतों और ब्राह्मणोंके लिये स्वल्पान्तरके समयसे होना उचित है। प्रेतकार्यसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोना तथा विधिवत् आचमन करना चाहिये। फिर मन्त्रपूर्वक भक्षण करनेके योग्य सिद्ध अन्न हाथमें उठाये। जो ब्राह्मण प्रेतकार्यमें सदासे भोजन करता हो, अपनी जाति, बन्धु एवं गोत्रोंमें जो भोजनका अधिकारी हो तथा जिसके लिये जैसा उचित हो, उसको समुचित रूपसे वैसा ही भाग देना चाहिये। ब्राह्मणको जब कुछ दिया जा रहा हो, उस समय किसीको मना नहीं करना चाहिये। यदि कोई दूसरा दान करता हो और कोई दूसरा उसे रोकता है तो गुरुकी हत्या-जैसे बुरे फलका भागी होता है। यही नहीं, ऐसे व्यक्तिके दिये हुए पदार्थको देवता, अग्नि और पितर भी ग्रहण नहीं करते और प्रेतको भी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती है। अतएव मनुष्यको ऐसा कार्य करना चाहिये कि जिससे दान-धर्मका लोप न हो सके। जातिवाले तथा सम्बन्धियोंके बीच प्रसन्नमनसे जो ब्राह्मणको विशेषरूपसे प्रेतभाग भोजनके लिये प्रदान करता है, उसकी अचल प्रतिष्ठा होती है, केवल देखनेमात्रसे कोई तृप्त नहीं होता। इस प्रकार प्रेतकी भावना करके भोजन आदि पदार्थ अर्पण करनेके प्रभावसे प्राणी यथाशीघ्र पापसे मुक्त हो जाता है।

शान्तिके लिये जलसे विधिवत् स्नानकर सिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके लिये दान देनेके स्थानपर आ जाय। देवि! तुम्हारी भक्तिमें निष्ठा रखते हुए मानवको इन मन्त्रोंको पढ़कर स्तुति करनेकी विधि है। मन्त्रका भाव यह है—'वसुधे! आप जगत्की माता हैं तथा मेदिनी, उर्वी, महाशैलशिलाधारा—आदि नामोंसे विभूषित हैं। आप जगत्की जननी तथा उसे आश्रयप्रदान करनेवाली हैं। जगत् आपपर आधारित है। आपको मेरा निरन्तर नमस्कार है।' सुन्दरि! इस विधिसे जब भक्त पिण्डदान करता है तो उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके तिलोदक देना चाहिये। साथ ही दोनों घुटनोंको जमीनपर टेककर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नमस्कार करे। मन्त्रपूर्वक अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़कर उठाये और उन्हें शय्यापर बैठाकर अञ्जन आदि वस्तुओंको अर्पित करे। कुछ क्षणतक वहाँ विश्राम करके निवाप (श्राद्ध)-स्थानपर आ जाय और गौकी पूँछ पकड़कर ब्राह्मणके हाथमें उसका दान करना चाहिये। गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें काला तिल और जल लेकर द्विजाति-

* अँगूठे तथा तर्जनी अँगुलीके बीचका स्थान 'पितृतीर्थ' कहलाता है—'कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः।' (मनु० २।५९ तथा द्रष्टव्य भविष्यपुराण १. १२. ६१—६५; बौधायनधर्मसूत्र ५। १४—१८, याज्ञवल्क्यस्मृ० १।१९ आदिकी व्याख्याएँ।

गण 'सौरभेय्यः सर्वहिताः' इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। मन्त्रसे जब जलकी शुद्धि हो जाती है तो उसके उपयोगसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद प्रेतका विसर्जन करके ब्राह्मणको दान देना उचित है। अन्तमें अपसव्य स्वरसे काकबलि देनी चाहिये। इसके बाद प्रेतके लिये बने हुए पदार्थमें चींटी आदि प्राणियोंके लिये भी सम्यक् प्रकारसे बलि देकर तर्पण करनेकी विधि है। माधवि ! सब लोग भोजन कर लें, इसके बाद अनाथों और गरीबोंको भी संतुष्ट करना चाहिये। इससे वे यमपुरीमें जाकर मृत प्राणीकी सहायता करते हैं। सुन्दरि ! अनाथोंको दिया हुआ सम्पूर्ण अन्न अक्षय हो जाता है। अतः प्रेतका संस्कार अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार चारों वर्णोंके लिये निमि प्रभृति आदर्श ऋषियों तथा स्वायम्भुव आदि मनुओंने सब प्रकारसे शुद्ध होनेके नियम प्रदर्शित किये हैं। अतः इससे पुरुष शुद्ध होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। प्रेतसम्बन्धी कार्यमें धर्मपूर्वक संकल्प करनेकी विशेष आवश्यकता है। आत्रेयने भी कहा था—'पुत्र ! तुमने जो प्रेतकार्य किया है और इसके विषयमें भयका अनुभव करते हो, यह कार्य अनुचित है। यह प्रसङ्ग मैं नारदके सामने विस्तारसे व्यक्त कर चुका हूँ। पुत्र ! तुम्हारे लिये मैं एक यज्ञकी प्रतिष्ठा कर देता हूँ। आजसे लेकर यह यज्ञ अखिल जगत्में पितृयज्ञके नामसे प्रसिद्ध होगा। वत्स ! अब तुम जा सकते हो। शोक करना तुम्हारे लिये अशोभनीय है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकमें रहनेका तुम्हें सुअवसर मिलेगा। इसमें कोई संशय नहीं।'

इस प्रकार पितृसम्बन्धी कर्मका वर्णन करके आत्रेय मुनिने निमिको आश्वासन दिया। अतएव तीसरे, सातवें, नवें, ग्यारहवें मासोंमें सांवत्सरिक क्रियाका नियम चल पड़ा। इन मासोंमें पिण्डदानकी विधि बन गयी है। प्रेतका यह कार्य पूरे एक वर्षमें पूर्ण होता है।

जितने प्राणी इस लोकमें आते हैं और [illegible] अन्य लोकमें भी पहुँचना पड़ता है। [illegible] पुत्र-पौत्र, स्त्री, जातिवाले, सम्बन्धीजन और [illegible] बान्धव—इन बहुसंख्यक प्राणियोंसे सम्बन्ध [illegible] यह संसार स्वप्नके समान मिथ्या और [illegible] किसीकी मृत्यु हो गयी तो उसका स्वजन कुछ [illegible] रोता है और फिर मुँह पीछे करके लौट [illegible] स्नेहरूपी बन्धनसे प्राणी जकड़ा हुआ है। [illegible] क्षणमें वह स्नेह-बन्धन कट भी जाता है। किसकी [illegible] माता, किसका कौन पिता, किसकी कौन स्त्री और किसका कौन पुत्र है ! प्रत्येक युगमें इनके सम्बन्ध होते [illegible] रहते हैं। अतः इनपर कोई आस्था नहीं रखनी चाहिये। संसार मोहकी रस्सीमें बँधा है। मृतक व्यक्तिके [illegible] संस्कारकी विधि श्रद्धा एवं स्नेहपूर्वक की जाती [illegible] इसीलिये उसे 'श्राद्ध' कहते हैं।

माता, पिता, पुत्र और स्त्री प्रभृति संसारमें आते [illegible] तथा चले भी जाते हैं। अतः वे किसके हैं और [illegible] किससे सम्बन्ध है ? मृत प्राणीके प्रेत-संस्कार [illegible] हो जानेपर वह पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो [illegible] है। फिर प्रत्येक मासकी अमावास्या तिथिको [illegible] उसके लिये तर्पण करना चाहिये। ब्राह्मणके मुख्में हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणको भोजन करानेसे [illegible] एवं प्रपितामह सदाके लिये तृप्त हो जाते हैं। पितृयज्ञके प्रतिनिधि आत्रेयमुनिने इस प्रकारकी निश्चयात्मक [illegible] बताकर कुछ समयतक भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

नारदजी कहते हैं—मुने ! हमने आत्रेयके लिये जो संस्कार-सम्बन्धी बात बतायी है और तुमने उसका श्रवण भी किया है, वह प्रायः चारों वर्णोंसे सम्बन्ध रखता है, अतः उसे विधिपूर्वक करना चाहिये। तभीसे तपके परम धनी ऋषियोंके द्वारा प्रत्येक मासकी अमावास्याके दिन न्यायके अनुसार यह पितृयज्ञ होता आ रहा है। निमिद्वारा निर्दिष्ट यह यज्ञ द्विजातियों

न्त्रसहित और शूद्रवर्गको बिना मन्त्र पढ़े करना ...—यह विधि है। तबसे इसका नाम 'नेमिश्राद्ध' पड़ ... और द्विजातिवर्णके प्राणी सदा इसे करते आ रहे ... महाभाग ! तुम मुनिगणोंमें परम प्रतिष्ठित हो । तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाना चाहता हूँ । माधवि ! इस प्रकार कहकर नारदमुनि अमरावतीके लिये प्रस्थान कर गये ।

(अध्याय १८८)

श्राद्धके दोष और उसकी रक्षाकी विधि

धरणीने कहा—भगवन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, ...य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको जिस विधिसे श्राद्ध ...ना चाहिये, इन्हें उसे अशौच लगता है और जैसे ...द्ध होते हैं तथा जिस विधिसे प्रेतकी सद्गतिके लिये ...जन आदि करानेका विधान है—यह प्रसङ्ग मैं ...न चुकी। प्रभो! ऐसा वर्णन मिलता है कि चारों ...गोंके सभी व्यक्तियोंका कर्तव्य है कि उत्तम ब्राह्मणको ...ो दान दें। मेरे हृदयमें यह शङ्का है कि दान किसे देना ...चित है ! प्रेतश्राद्धका दान ग्रहण करना निन्दित ...व गर्हित कार्य है, अतः पुरुषोत्तम ! आपसे मैं यह ...भी जानना चाहती हूँ कि विप्रसमाजमें जिस ब्राह्मणने ...तभाग स्वीकार कर लिया, वह क्या कर्म करे, जिससे उसके पाप दूर हो जायँ और दाताका भी श्रेय हो।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! जब पृथ्वीदेवीने इस प्रकार परम प्रभुसे प्रश्न किया तो शङ्ख एवं दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी। उस समय वराहरूपधारी भगवान् नारायणने भगवती वसुधरासे कहा ।

भगवान् वराह बोले—देवि ! ब्राह्मण जिस प्रकार दाताका उद्धार कर सकते हैं, वह मैं तुम्हें बताता हूँ । जो ब्राह्मण अज्ञानमें प्रेतके निमित्त दिया हुआ अन्न ग्रहण कर लेता है, उसे शरीरकी शुद्धिके लिये एक दिन और रात निराहार रहकर प्रायश्चित्त करना चाहिये । ऐसा करनेसे वह ब्राह्मण शुद्ध हो जाता है। उसे पूर्वकी ओर बहनेवाली नदीमें विधिके अनुसार स्नान कर प्रातः-सन्ध्या करनेके बाद तर्पण, अग्निमें तिलका हवन, शान्तिपाठ एवं मङ्गलपाठ करना चाहिये । फिर पञ्चगव्य-पान और मधुपर्कका सेवन परम शुद्धिका साधन है। तदनन्तर गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें शान्तिका जल लेकर वह ब्राह्मण अपने घरका मार्जन करे। पापोंको भस्म करनेके लिये देवताओंका मुख अग्निका काम करता है, अत समस्त देवताओंका क्रमशः तर्पण, भूतोंके लिये बलि तथा इसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । गौके दान करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः गोदान भी करे । ऐसी विधिका पालन करनेसे परमगति होती है। जिसके पेटमें प्रेतनिमित्तक अन्न हो और काल-धर्मके अनुसार उसके प्राण प्रयाण कर जायँ तो वह ब्राह्मण कल्प-पर्यन्त भयंकर नरकमें निवास करता है और उसे कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं। बादमें उसे राक्षसकी योनि मिलती है। इसलिये दाता और भोक्ता—दोनोंको स्वकल्याणार्थ प्रायश्चित्त करना नितान्त आवश्यक है । माधवि ! गौ, हाथी, घोड़ा तथा समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ दानमें लेनेवाला ब्राह्मण भी यदि मन्त्रपूर्वक प्रायश्चित्तका कार्य सम्पन्न कर ले तो निश्चय ही उसमें दाताके उद्धार करनेकी शक्ति आ जाती है ।

जो ज्ञानसे सम्पन्न तथा वेदका अभ्यास करनेमें सदा संलग्न रहता है, वह ब्राह्मण स्वयं अपनेको एवं दाताको तारनेमें पूर्ण समर्थ है—इसमें कोई संशय नहीं। वसुधरे ! तीनों वर्णोंका परम कर्तव्य है कि वे कभी भी ब्राह्मणका अनादर न करें। देवकार्यके अवसरपर,

जन्मनक्षत्रके दिन, श्राद्धकी तिथिमें, किसी पर्वकालपर अथवा प्रेत-सम्बन्धी कार्यमें प्रवीण ब्राह्मणको सम्मिलित करे। जो वैदिक विद्या जानता हो, जिसको व्रतमें निष्ठा हो, जो सदा धर्मका पालन करता हो, शीलवान्, परम संतोषी, धर्मज्ञानी, सत्यवादी, क्षमासे सम्पन्न, शास्त्रका पारगामी तथा अहिंसाव्रती हो, ऐसे ब्राह्मणको पाकर उसे तुरत दान देना चाहिये। वही ब्राह्मण दाताका उद्धार करनेमें समर्थ है। 'कुण्ड' अथवा 'गोलक' ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है।* वह दाताको नरकमें पहुँचा देता है। पितृसम्बन्धी या देवकार्यमें कदाचित् एक भी कुण्ड या गोलक ब्राह्मण उपस्थित हो जाय तो उसे देखकर पितर निराश होकर लौट जाते हैं।

यशस्विनि! अपात्रको भी कभी दान न दे। इस सम्बन्धमें एक प्राचीन प्रसङ्ग कहता हूँ, तुम उसे सुनो। अवन्तीपुरीमें पहले एक मनुके वंशमें उत्पन्न परम धार्मिक राजा रहते थे, जिनका नाम मेधातिथि था। उनके अत्रिगोत्रकुलोद्भव पुरोहितका नाम चन्द्रशर्मा था, जो सदा वेद-पाठमें संलग्न रहते थे। राजा मेधातिथि अत्यन्त दानी थे। वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको गौएँ दान दिया करते थे। विधिके साथ सौ गौएँ रोज दान करनेके पश्चात् ही उनका अन्न ग्रहण करनेका नियम था। वैशाख मासमें उन महाराजने अपने पिताके श्राद्ध-दिवसपर अनेक ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया। फिर उन ब्राह्मणों एवं गुरु (राजपुरोहित) के आनेपर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और विधिके साथ श्राद्धकार्य प्रारम्भ हुआ। पिण्ड-प्रदानके बाद अन्नदानका संकल्प करके उसे ब्राह्मणोंमें वितरित किया गया, पर उस विप्रसमाजमें एक गोलक ब्राह्मण भी था। राजाने श्राद्धमें संकल्पित अन्न उस ब्राह्मणको भी दिया जिससे श्राद्धमें एक ... उत्पन्न हो गया। इसी कारणसे राजा मेधातिथिके ... स्वर्गसे नीचे उतर आये और उन्हें काँटोंसे ... जंगलमें रहना पड़ा और रात-दिन भूख-प्यासकी ... सताने लगी। एक समयकी बात है—... मेधातिथि संयोगवश दो-तीन परिजनोंके साथ ... लिये उसी जंगलमें पहुँच गये। राजाने वहाँ उन ... को देखकर पूछा—'महानुभाव! आपलोग कौन ... और आप लोगोंकी ऐसी दशा कैसे हुई? आप ... कर्मके कारण यह दारुण दुःख भोग रहे हैं?— मुझे बतानेकी कृपा करें।'

पितरोंने कहा—हमारे वंशकी निरन्तर वृद्धि ... वाला एक शक्तिसम्पन्न पुरुष है। लोग उसे मे... कहते हैं। हम सभी उसीके पितर हैं; किंतु ... नरकमें पड़े हैं। देवि! उस समय पितरोंकी ... सुनकर राजा मेधातिथिके हृदयमें अवर्णनीय दुःख हुआ। उन्होंने पितरोंको सान्त्वना दी। साथ ही ... 'पितृगण! मेधातिथि तो मैं ही हूँ। आपलोग मेरे ही ... है। मैं जानना चाहता हूँ कि किस कर्मके ... आपको नरकमें जाना पड़ा है।'

पितर बोले—पुत्र! तुमने जो हमलोगोंके लिये श्रा... में अन्न संकल्प किये, दैववश वह अन्न एक गोलक ब्रा... के पास पहुँच गया। अतः श्राद्ध-कर्म दूषित हो ... उसीके फलस्वरूप हमें नरकमें जाना पड़ा और ... समयसे हम दुःख भोग रहे हैं। हमारे मनमें ... कि हमको किसी प्रकार पुनः स्वर्ग सुलभ हो। पुत्र! ... तो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें सदा संलग्न रहते हो। दान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। तुम्हारे ... अनगिनत गौएँ दानमें दी जा चुकी हैं। दक्षिणाएँ ...

* पतिके रहते हुए जार पुरुषसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह बालक 'कुण्ड' कहलाता है और जिसे पतिके मृत्युके पश्चात् स्त्री अन्य पुरुषसे जन्म देती है, उसे 'गोलक' कहते हैं।

पर्याप्त दी हैं । उसी पुण्यके प्रभावसे हम स्वर्ग पाना चाहते हैं । पर तुम्हें पुनः एक बार श्राद्ध करना चाहिये, जिससे हम सभी पितरोंका उद्धार हो सके ।

वसुंधरे ! पितरोंकी बात सुनकर राजा मेधातिथि वापस गये और उन्होंने अपने पुरोहित चन्द्रशर्माको बुलाया और उनसे उपर्युक्त वृत्तान्त कहा तथा पुनः श्राद्ध करनेकी इच्छा व्यक्त की और निवेदन किया कि इस श्राद्धमें 'कुण्ड-गोलक' ब्राह्मण सर्वथा न बुलाये जायँ ।

देवि ! राजा मेधातिथिके आदेशसे पुरोहित चन्द्रशर्माने ब्राह्मणोंको पुनः बुलाकर पिण्डदान एवं श्राद्ध सम्पन्न कराया और ब्राह्मणोंको भोजन कराया फिर दक्षिणाएँ देकर उनकी पूजा की । इसके बाद सबको विदा करके उसने स्वयं प्रसाद ग्रहण किया । तत्पश्चात् राजा पुनः वनमें गये और वहाँ उन्होंने अपने उन पितरोंको हृष्ट-पुष्ट तथा परम पराक्रमी-रूपमें देखा । अब उन नरेशके हर्षकी सीमा न रही । इस अवसरपर पितरोंमें श्रद्धा रखनेवाले राजा मेधातिथिको देखकर पितरोंके मुखमण्डलपर भी प्रसन्नता छा गयी और उन्होंने कहा—'तुम्हारा कल्याण हो । तुमने हमारा हित कर महान् कार्य सम्पन्न किया है । अब हम स्वर्गको जाते हैं ।'

देवि ! श्राद्धमें संकल्पित अन्नपात्र ब्राह्मणके अभावमें गौको दे, अथवा गौके अभावमें भी यत्नपूर्वक उसे नदीमें छोड़ दे, पर किसी प्रकार भी अपात्र, नास्तिक, गुरुद्रोही, गोलक अथवा कुण्डको वह अन्न न दे ।

भामिनि ! इस प्रकार अपना उद्धार प्रकट करके सभी पितर स्वर्ग चले गये और राजा मेधातिथि ब्राह्मणोंके साथ अपनी पुरीको लौटे । उन्होंने पितरोंकी आज्ञाका यथाविधि पालन किया । देवि ! यह इसीलिये मैंने तुम्हें बताया है कि एक भी उत्तम ब्राह्मण मिल जाय तो वही पर्याप्त है । उसीकी कृपासे यज्ञकर्ता कठिनाइयोंसे तर सकता है—इसमें कोई संशय नहीं । वह एक ही विप्र दाताको इस प्रकार पार करनेमें समर्थ है, जैसे अगाध जलको पार करनेके लिये एक नाव । वसुंधरे ! अतएव सुपात्र ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये । देवता, दानव, मानव, राक्षस, गन्धर्व और उरग—इन सभीके लिये यह विधान है ।

(अध्याय १८९)

श्राद्ध और पितृयज्ञकी विधि तथा दानका प्रकरण

पृथ्वी बोली—भगवन् ! देवता, मनुष्य, पशु, एवं पक्षी-प्रभृति सभी प्राणी कालवश प्रेत होते हैं, वे कभी नरकोंमें जाते हैं और पुनः संसारमें भी आते हैं । अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि पितर कौन-से हैं, जिन्हें विधिपूर्वक अर्पण करनेसे श्राद्ध-सम्बन्धी पदार्थ भोजनके लिये उपलब्ध होता है ? प्रत्येक मासमें संकल्पपूर्वक दिया गया पिण्ड किस प्रकार पितरोंके पास पहुँचता है ? पितृक्रियासे सम्बन्ध रखनेवाले श्राद्धमें कौन पितर भोजन पानेके अधिकारी हैं ? इस विषयमें मुझे महान् कौतूहल हो रहा है, कृपया निर्णयपूर्वक बतलायें ।

भगवान् वराह बोले—देवि ! तुम मुझसे जो पूछती हो, उसे मैं बताता हूँ । माधवि ! पितृसम्बन्धी यज्ञोंमें भाग पानेके जो अधिकारी हैं, उन्हें सुनो—पिता, पितामह तथा प्रपितामह—इन पितरोंके लिये पिण्डका संकल्प करना चाहिये । पितृपक्ष आनेपर नक्षत्र और तिथिकी जानकारी प्राप्त करके पितरके लिये उन्हें पुण्यपर्व मान ले । उन्हीं अवसरोंपर पिण्डदान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है । शुभलोचने ! जिन ज्ञानवान् पुरुषोंको जिस प्रकार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेका विधान है, वह सभी मैं तुम्हें बताता हूँ,

तुम सावधान होकर सुनो। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—ये अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। कुछ द्विजाति ब्रह्मयज्ञ, कुछ गृहस्थाश्रममें रहकर भूतयज्ञ तथा मनुष्ययज्ञ करके इष्टदेवकी उपासना करते हैं। अब मैं पितृयज्ञका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। वरारोहे ! जो लोग सौ यज्ञ करते हैं, उन सभीके द्वारा प्रायः मेरी ही आराधना होती है। तुम्हें मैं यह बिल्कुल सत्य बात बताता हूँ। माधवि ! हव्य एवं कव्य ग्रहण करनेके लिये देवताओंका मुख अग्नि है। यज्ञोंमें आवसथ्य (उत्तराग्नि), दक्षिणाग्नि और आहवनीयाग्नि प्रयुक्त होती हैं। इन सभी अग्नियोंमें मैं ही व्याप्त हूँ एवं समस्त कार्यों तथा देवयज्ञोंमें भी पालनरूपसे मैं ही व्यवस्थित हूँ। देवतीर्थमें भिक्षुक, वानप्रस्थी और संन्यासी—इनका सत्कार करना उचित है; किंतु श्राद्धमें इन्हें भोजन नहीं कराना चाहिये; क्योंकि देवताओंके निमित्त ही इनकी पूजा करनेका विधान है। अब जो व्रती ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रित करनेके लिये योग्य हैं, उनका निर्देश करता हूँ। जो अपने घरपर सदा संतुष्ट रहता है तथा क्षमाशील, संयमी, इन्द्रिय-विजयी, उदासीन, सत्यवादी, श्रोत्रिय एवं धर्मका प्रचारक है—ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धके लिये ग्राह्य मानना चाहिये। माधवि ! जो वेद-विद्याके पारगामी तथा स्वच्छ एवं मधुर अन्न खानेके स्वभाववाले हों, ऐसे ब्राह्मणोंको पितृयज्ञसम्बन्धी श्राद्धमें भोजन कराना हितकर है। सुन्दरि ! श्राद्धमें सर्वप्रथम देवतीर्थमें अवगाहन करनेकी आवश्यकता है। पहले अग्निमें हवन कर बादमें विधिका पालन करते हुए पितरके निमित्त ब्राह्मणोंके मुखमें हवन करना उचित है।

देवि ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—ये चारों वर्ण श्राद्ध करनेके अधिकारी हैं। श्राद्धके पदार्थको कुत्ते, मुर्गे, सूअर तथा अपवित्र व्यक्ति न देख सकें। जो अपनी श्रेणीसे च्युत हो गये हैं, जिनका संस्कार नहीं हुआ है, जो सब प्रकारके अनार्य कर्म करते हैं, जो संन्यासी हैं, ऐसे ब्राह्मणको पितृकर्म कर्मको नहीं देखना चाहिये। यदि कदाचित् ऐसे दृष्टि श्राद्धपर पड़ गयी तो उसे 'असुर' ... बहुत पहले जब मैंने इन्द्रका कार्य सिद्ध करने वामनका अवतार ग्रहण किया था तो ऐसे श्राद्धोंको दे चुका हूँ। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे ब्राह्मणोंको सम्मिलित न करे, जहाँ ... दृष्टि न पड़े, ऐसे स्थानमें पवित्र होकर ... ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन कराये। भूमे ! ... पितरोंका आवाहनकर तीन पिण्ड देने ... इन पिण्डोंके अधिकारी पिता, पितामह तथा प्र... हैं। प्रतिमासमें अपसव्य होकर इनके लिये ... तथा पिण्डदान करना चाहिये। फिर वैष्णवी, ... और अजया—इन नामोंका उच्चारण कर फिर ... तुम्हें भी प्रणाम करना चाहिये।

देवि ! इस प्रकार पिण्ड-दान करनेसे पितर ... हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। सृष्टिके प्रारम्भमें तीन पुरुष पितरोंके ... प्रकट हुए थे। पिण्ड ही उनका आहार है। देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व ... पन्नग—ये सब-के-सब वायुका रूप धारण कर ... पितृयज्ञ करनेवाले पुरुषकी श्राद्धक्रियाके ... दृष्टि लगाये रहते हैं—यह निश्चित है। जो ... व्यक्ति पितृयज्ञ करते हैं, उन्हें पितरोंकी कृपासे ... कीर्ति, बल, तेज, धन, पुत्र, पशु, स्त्री तथा आरो... सदाके लिये सुलभ हो जाते हैं—इसमें कोई सं... नहीं। यही नहीं—अपने इस उत्तम कर्मके प्र... वे मनुष्य परम पवित्र लोकोंके अधिकारी हो जाते हैं। वे प्रेत एवं पशु-पक्षीकी योनिमें नहीं पड़ते हैं। ऐसा पुरुष नरकमें गये हुए अपने पितरोंका उद्धार करनेमें पूर्ण समर्थ ... है। देवताओं तथा

की उपासना करनेवाला मनुष्य गृहस्थाश्रममें हुआ भी पूरी विधिके साथ द्विजाति वर्गके को तृप्त कर सकता है। श्राद्धमें तृप्त हुए पितर स वस्तुको अविनाशी मानते हैं। जिनकी पितरोंके श्रद्धा है, उनकी भी परमगति होती है। इस के ज्ञानीजन मृत्युके पश्चात् सत्त्वगुणसे सम्पन्न मार्गसे प्रयाण करते हैं।

देवि! जिनके मनपर अज्ञानका आवरण है, जो कृतघ्न प्रचण्ड मूर्ख हैं, ऐसे मनुष्य स्नेहमयी सैकड़ों गोंसे बँधकर भयंकर नरकमें गिरते हैं। पर जो कल्पपर्यन्तके लिये नरकमें पड़े हैं, उनके भी पुत्र पौत्र यदि कहीं श्राद्ध-क्रिया कर दें तो उसके से उन प्राणियोंकी सद्गति हो जाती है। मावास्याको जो जलाशयमें जाकर पितरोंके निमित्त मात्र भी जल देते हैं, उससे उनके नरकस्थित को भी तृप्ति प्राप्त हो जाती है। जो द्विजातिवर्गके पितरोंके लिये भक्तिपूर्वक तर्पण, तिलाञ्जलि एवं दानप्रभृति श्राद्ध कार्य करते हैं, उनके पितरोंको नसे मुक्ति मिल जाती है और वे सदाके तृप्त हो जाते हैं। श्राद्धमें गूलरकी लकड़ीके पात्रसे और जलद्वारा तर्पणकी बड़ी महिमा है। पितरोंका र करनेके लिये ब्राह्मणोंके वचनपर श्रद्धा रखना और ने वैभवके अनुसार उन्हें दक्षिणा देना परम श्यक है। नीले साँड़ छोड़नेसे जो पुण्य भूमण्डलपर है, उसके प्रभावसे पुरुषके पितर छाछठ हजार तक चन्द्रमाके लोकमें आनन्दपूर्वक निवास करते । उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती।

श्राद्ध-तर्पण गृहस्थोंके लिये महान् धर्म है। चींटी आदि म प्राणी एवं आकाशमें विचरनेवाले जीव गृहस्थोंके धार ही जीवन धारण करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। हस्थाश्रम ही सभी धर्मोंका मूल है। सारे वर्ण एवं आश्रम के आश्रित हैं। इस आश्रममें रहकर जो व्यक्ति प्रति मास पर्व तथा प्रत्येक निर्दिष्ट तिथिपर श्राद्ध करते हैं, उनके द्वारा पितरोंका निश्चय ही उद्धार हो जाता है। गृहस्थके घरमें धर्मपूर्वक श्राद्ध करनेसे जैसा फल प्राप्त होता है, वैसा फल यज्ञ, दान, अध्ययन, उपवास, तीर्थस्नान, अग्निहोत्र तथा विधिपूर्वक अनेक प्रकारके दानोंसे भी प्राप्य नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरमें प्रतिष्ठित पितृगण पिता, पितामह एवं प्रपितामहके रूपसे प्रकट होकर विराजते हैं। कश्यप उनके जनक हैं। पहले कभी अग्निमें हवन न करके ब्राह्मणके मुखमें हवन किया गया अर्थात् ब्राह्मणको भोजन कराया गया। भूमिपर कुश बिछाकर पिण्ड सकल्प करके उनपर रख दिये गये। उस पिण्डसे पितृदेवोंको अजीर्ण हो गया और उन्हें महान् पीड़ा होने लगी। उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया और दुःखसे अत्यन्त संतप्त होकर वे सोमदेवके पास गये। सुश्रोणि! अजीर्णसे दुःखी उन पितरोंपर चन्द्रमाकी दृष्टि पड़ी तो उन्होंने मधुर वाक्योंसे उनका स्वागत किया।

सोमने पूछा—'पितरो! तुम्हारे इस दुःखका क्या कारण है?' इसपर पितरोंने कहा—'सोमदेव! आप हमारी बातें सुननेकी कृपा करें। ब्रह्मा, विष्णु और शंकरके शरीरसे उत्पन्न हुए हम तीनों पितृदेवता हैं। हमलोगोंकी नियुक्ति श्राद्धमें हुई थी। पुत्र आदि द्वारा दिये गये पिण्डोंसे हम अत्यन्त तृप्त हो गये। यहाँतक कि हमें अजीर्ण हो गया। इसीसे हम दुःख पा रहे हैं।'

सोमने कहा—'पितृगण! मैं तुमलोगोंका मित्र बन जाता हूँ। अब तुम तीन ही नहीं रहे। एक चौथा पितर मैं भी बन गया। अब हम सभी ऐसी जगह चलें, जहाँ हमारे कल्याणकी सम्भावना हो।' वसुंधरे! सोमके इस प्रकार कहनेपर वे पितर उनके साथ सुमेरुपर्वतके शिखरपर गये, जहाँ नित्यानन्द महात्मा महर्षियोंद्वारा सेवित एवं सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने उन्हें प्रणाम

किया। फिर सोमने उनसे कहा—'भगवन्! ये पितर अजीर्णसे पीड़ित होकर आपकी शरण आये हैं, आप इनके क्लेश-नाशका उपाय करें।'

इसपर श्रीब्रह्माजी एक मुहूर्ततक परम योगीश्वर भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन रहे। फिर भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर उनसे कहा—'ब्रह्मन्! यह मेरी वैष्णवी मायाका ही प्रभाव है कि पहले जो देवता थे, वे अब पितरके रूपमें प्रकट हैं। मेरे अङ्गसे निकले हुए पिता ब्रह्माके रूप, पितामह विष्णुके रूप तथा प्रपितामह रुद्रके रूप माने जाते हैं। मर्त्यलोकमें श्राद्धके अवसरपर इन्हें पितृ-देवताके रूपमें नियोजित किया गया है। ब्राह्मणोंके हितार्थ विष्णुमायाकी आज्ञासे प्रजा इन्हें पितृयज्ञोंसे तृप्त करती है। अब मैं इनके अजीर्ण दूर होनेका उपाय बतला रहा हूँ। धूम्रकेतु और विभावसु* नामके शाण्डिल्य मुनिके दो तेजस्वी पुत्र हैं। मानवमात्रके लिये यह कर्तव्य है कि वे श्राद्ध करते समय पहले अग्निको भाग देकर शेष पिण्ड उन तेजस्वी विभावसुके साथ ही पितरोंको अर्पित करें।'

परम प्रभुके इस कथनपर ब्रह्माजीने मन-ही-मन हव्यवाहन अग्निका आवाहन किया। उनके स्मरण करते ही सर्वभक्षी अग्निदेव उनके पास आये। अग्निका शरीर प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त हो रहा था। मेरी प्रेरणासे ब्रह्माजीने उन्हें तीन प्रकारके यज्ञोंमें भाग लेनेका अधिकारी बनाया और अग्निसे कहा—'हुताशन! तुम अजीर्णनाशक हो। पितरोंके निमित्त श्राद्धमें दिये गये पिण्डके साथ—'ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा'—इस मन्त्रका उच्चारण करके तुम्हें ही अन्न [illegible] अर्पित किया जाता है। तुम्हारे साथ समर्पित [illegible] देवता [illegible] ग्रहण करनेके अधिकारी होंगे। तुम इनके

ग्रहण कर लेनेपर साधकका अन्न [illegible] जायगा और सोमसहित पितर उसके अधिकारी [illegible]

वसुंधरे! ब्रह्माकी इस व्यवस्थासे अग्नि, [illegible] पितर श्राद्धके भागी बने। तबसे अग्नि [illegible] साथ पितृयज्ञमें सभीका पितरोंके [illegible] करनेका सदाके लिये नियम बन गया। [illegible] देनेवाली पृथ्वी देवि! इस नियमके अनुसार पितरोंके निमित्त श्राद्ध करते समय सर्वप्रथम अग्निको देकर पश्चात् पितरोंको तृप्त करना [illegible] वसुंधरे! इस प्रकार जो मनुष्य मन्त्रोंका उच्चारण [illegible] विधिके साथ पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, वे [illegible] पितरोंकी कृपासे निरन्तर सुख-समृद्धिके भागी होते [illegible]

देवि! अब श्राद्धकी श्रेणीमें जो निन्द्य हैं, [illegible] ब्राह्मणोंका विवेचन करता हूँ। नपुंसक, [illegible] पशुपाल, कुमार्गी, काले दाँतवाला, काण (एक नेत्रसे [illegible]) लम्बोदर, नाच करनेवाला, गायक, कपड़ा रँगकर [illegible] चलानेवाला, वेदविक्रयी, सभी वर्णोंसे यज्ञ कराने[illegible] राजाका सेवक, व्यापारके निमित्त खरीदने एवं बेचने[illegible] ब्रह्मयोनिमें उत्पन्न, निन्दक, पतित, संस्काररहित, [illegible] गाँवमें घूमकर याचना करनेवाला, दीक्षित, [illegible] (शस्त्र लेकर घूमनेवाला), सूदखोर, [illegible] वृत्तिसे जीविका चलानेवाला, चोर, [illegible] शौण्डिक (शराब बनानेवाला), गैरिक (गेरुआ [illegible] खननेवाला) दम्भी, सभी वर्णोंसे सम्बन्धित कार्य[illegible] तथा सब कुछ बेचनेमें तत्पर—ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध[illegible] कर्मके लिये निन्द्य माने जाते हैं। इन्हें पितरोंके निमित्त श्राद्धमें भोजन नहीं कराना चाहिये। [illegible] [illegible] है कि जो [illegible] निमित्त [illegible] है, [illegible] है तथा पूर्ण एवं [illegible] है, [illegible] ब्राह्मणोंके श्राद्धमें सम्मिलित हो जानेसे [illegible] हो जाता है। देवि! इनके अतिरिक्त मैं निन्दित [illegible]

* ये दोनों अग्निके नाम हैं।

को बताता हूँ, वे सभी ब्राह्मण राजस माधवि ! श्राद्धसम्बन्धी कर्मोंमें पितरोंके लिये न करते समय ऐसे पङ्क्तिदूषित ब्राह्मणोंका क नहीं करना चाहिये । यदि ऐसे ब्राह्मण भोजन करते हों और उनपर श्राद्धकर्ता-टि पड़ गयी तो उसके पितर छः महीनोंतक दुःख उठाते हैं । वसुधे ! यदि कहीं ऐसी हो जाय तो श्राद्धकर्ता और भोक्ता दोनोंके लिये यक है कि वे यथाशीघ्र प्रायश्चित्त करें । प्रायश्चित्त-स्वरूप है कि प्रज्वलित अग्निमें घृतका हवन, का दर्शन, सिरका मुण्डन, पिता-पितामह आदिके लिये गन्ध-पुष्प-धूप आदिसे पूजन, अर्घ्य तथा तिलोदक-दान एवं विधिके साथ पवित्र होकर वह ब्राह्मण-न आदि कराये ।

सुन्दरि ! अब पुनः एक अन्य बात बताता हूँ, उसे ो । ज्ञानद्वारा जिसका अन्तःकरण पवित्र हो गया है, ब्राह्मण विधिके अनुसार मन्त्रशुद्धि करे । माधवि ! कभी भी मृतक सम्बन्धित अन्नका भक्षण नहीं रते हैं, ऐसे ब्राह्मणको वैश्वदेवनिमित्तक भाग देना चाहिये, उन्हें श्राद्धोंमें भोजन कराना अनुचित है । जो ब्राह्मण श्राद्धमें प्रेतान्न खाते हैं, अब उनका दोष बताता हूँ । प्रेतान्न खानेके प्रभावसे ऐसे दम्भी मनुष्यको नरकमें जाना पड़ता है । अब उसकी शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ । ऐसे द्विजातिपुरुषका कर्तव्य है कि माघमासके द्वादशी तिथिको पुष्यनक्षत्रमें मधु और फलसे पितरोंको तृप्त करके घृतयुक्त खीरका प्राशन करे । 'मुझे पवित्रता प्राप्त हो जाय'—इस संकल्पसे वह कपिला गौका दान करे तथा अपने कल्याणकी अभिलाषासे पितृ-श्राद्ध सम्पन्न कर, युग्म ब्राह्मणको भोजन कराकर विसर्जन करना चाहिये ।

विशालाक्षि ! अमावास्या तिथिको दन्तधावन करना प्रायः सभीके लिये निषिद्ध है । जो बुद्धिहीन व्यक्ति अमावास्याको दातुन करता है, उसके इस कर्मसे चन्द्रमा, देवता तथा पितर कष्ट पाते हैं । रात बीत जानेपर जब प्रातःकाल हो जाय और सूर्यकी किरणें प्रकाशित होने लगें तो दिनका कार्य आरम्भ करे । यह काम ब्राह्मणको सविधि सम्पन्न करना चाहिये । पितरोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाला मानव बाल बनवाने, नाखून कटवाने और तेल लगाकर स्नान करनेके पश्चात् पवित्र पक्वान्न तैयार करे । पाक बन जानेपर दिनके मध्यकालमें श्राद्ध करनेकी विधि है । फिर तीर्थके शुद्ध जलके द्वारा ब्राह्मणको पाद्य देकर मण्डपके भीतर प्रवेश कराकर विधिके साथ अर्घ्यपूर्वक चन्दन, माला, धूप-दीप, वस्त्र और तिल एवं जलसे उसकी पूजा करनी चाहिये । फिर भोजनके लिये सामने पात्र रखे और भस्मसे मण्डलकी रचना करे । पृथक्-पृथक् मण्डल होनेसे पङ्क्तिका दोष नहीं लगता । फिर अग्निसम्बन्धी कार्य सम्पन्न करके अन्नपरिवेषण करे । सपात्रक* श्राद्धमें पितरोंको लक्ष्य करके संकल्प नहीं करना पड़ता । इसमें केवल ब्राह्मणसे प्रार्थना करे—'द्विजदेव ! अब आपको सुख पूर्वक भोजन करना चाहिये । विद्वान् पुरुष भोजन करते समय 'रक्षोघ्न-मन्त्र'का भी पाठ करें । ब्राह्मणके तृप्त हो जानेपर अन्न-विकरण करनेका विधान है । इसके पश्चात् दूसरा आसन देकर पिण्ड देना चाहिये । भूमिपर कुश बिछाकर दक्षिणकी ओर मुख करके पिता, पितामह और प्रपितामह—इन पितरोंके लिये पिण्ड-अर्पण करे । फिर अपनी संतानमें वृद्धि होनेके उद्देश्यसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे । पूजाके अन्तमें ब्राह्मणके हाथमें अक्षयोदक देना चाहिये । जब ब्राह्मण संतुष्ट हो जायँ तो स्वस्ति-वाचनपूर्वक

* किसी देशमें पहले सपात्रक श्राद्ध भी होता है । वहाँ अन्न-परिवेषणमें स्वयं ब्राह्मण भोजन करते हैं ।

विसर्जन करे। वसुंधे! जबतक तीनों पिण्ड पृथ्वीपर रहते हैं, तबतक पितरोंको सुख मिलता रहता है।

फिर श्राद्धकर्ता आचमन करके पवित्र हो शान्ति-निमित्तक जल दे। फिर जहाँ पिण्डदान हुआ है, उस भूमिको वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया—इन नामोंका उच्चारण कर सिर झुकाकर प्रणाम करे। पहला पिण्ड स्वयं भक्षण करे, दूसरा पत्नीको दे और तीसरा पिण्ड पानीमें डाल दे, फिर प्रणाम करके पितरों एवं देवताओं-का विसर्जन करे। इस प्रकार ... प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय ... पितरोंकी कृपासे लम्बी आयु, पुत्र-पौत्र ... सुलभ हो जाती है। श्राद्धके अवसर ... ज्ञानी ब्राह्मणोंको तथा योगियोंको भी श्राद्धान्न ... समर्पण करे। अन्यथा वह श्राद्ध फल-प्रदान ... असमर्थ हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं।

(अध्याय ...)

'मधुपर्क'की विधि और शान्तिपाठकी महिमा

पृथ्वी बोली—भगवन्! यद्यपि आपसे मैं बहुत कुछ सुन चुकी, फिर भी तृप्ति नहीं हुई। अब मुझपर दयाकर आप यह बतानेकी कृपा कीजिये कि 'मधुपर्क'में कौन पदार्थ किस मात्रामें हो तथा उसके अर्पणकी क्या-क्या विधि तथा पुण्य है?

भगवान् वराहने कहा—देवि! मैं 'मधुपर्क'की उत्पत्ति और दानका प्रसङ्ग बताता हूँ, सुनो। इससे सारे अनिष्ट दूर हो जाते हैं। जब संसारकी सृष्टि हुई, तब मेरे दक्षिण अङ्गसे एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो बड़ा द्युतिमान् एवं कीर्तिमान् था। उसे देख ब्रह्माजीने पूछा—'प्रभो! यह कौन है?' तब मैंने उनसे कहा—'यह तो मधुपर्क है, जो मेरे ही शरीरसे उत्पन्न है तथा मेरे भक्तोंको संसारसे मुक्त करनेवाला है। जो व्यक्ति मेरी आराधनाके समय इस मधुपर्कको अर्पण करता है, उसे वह सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है, जहाँ जानेपर प्राणीको शोक नहीं होता।' अब इसके निर्माण और दानकी विधि भी बताता हूँ, जिसे करनेपर मानव मेरे दिव्य धाममें पहुँच जाते हैं। यदि सर्वश्रेष्ठ सिद्धि पानेकी अभिलाषा हो तो मधु, दही और घृतको समान भागमें लेकर मन्त्र पढ़नेके साथ ही विधिपूर्वक मिलाना चाहिये। ... इस विधिका पालन करते हैं, वे मेरे परम प्रिय हो जाते हैं। फिर मधुपर्क हाथमें ... यह कहना चाहिये—'ॐकारस्वरूप भगवन्! मधुपर्क आपको समर्पित है, आप इसे स्वीकार ... कृपा करें। प्रभो! यह आपके ही श्रीविग्रहसे प्रकट ... है। संसारसे मुक्त होनेके लिये यह परम ... भक्तिपूर्वक मैंने इसे सेवामें समर्पण किया ... देवेश! आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।'

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! मधुपर्ककी उत्पत्ति ... दानका पुण्य-फल तथा ग्रहणकी आवश्यकता सुनकर ... व्रतका पालन करनेवाली पृथ्वीदेवीको बड़ा आश्चर्य ... उन्होंने भगवान् श्रीहरिके चरण स्पर्श कर पूछा—'भग... आपका प्रिय पदार्थ मधुपर्क शान्तिपाठसहित ... श्रद्धालु भक्त किस प्रकार अर्पण करें? इस ... महान् कर्मकी विधि बतायें।

भगवान् वराह कहते हैं—महाभागे! मैं ... प्रसङ्ग बताता हूँ। इसके प्रभावसे मानव दुःख... संसारसे मुक्त हो जाते हैं। तुमने पहले जिस बात... चर्चा की है, उसे मेरी भक्तिमें रहनेवाले व्यक्ति ... करके शान्ति-पाठ करें।

शान्तिका पाठ करनेके पश्चात् मेरी भक्तिमें ... पुरुष मुझे जलाञ्जलि प्रदान करके पुनः इस भाग...

दें। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! जिनके द्वारा जगत्‌की सृष्टि होती है, देवसम्बन्धी यज्ञोंमें कर्मके जो साक्षी हैं, वे प्रभु स्वयं आप ही हैं। वासुदेव! मुझे शान्ति प्रदान करनेके साथ ही संसारके आवागमन-से मुक्त कर दें।'

पृथ्वि! यह सिद्धि, कीर्ति, बलोंमें महान् बल, लाभोंमें परम लाभ और गतियोंमें परम गति है। ऐसे शान्तिपाठका विचारपूर्वक जो पठन करता है, वह मुझमें लीन हो जाता है। संसारमें पुनः उसे आना नहीं पड़ता, इस प्रकार शान्तिपाठ करके मुझे मधुपर्क-निवेदन करना चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर मन्त्र पढ़नेकी विधि है। मन्त्रका भाव यह है—'भगवन्! आप सर्वश्रेष्ठ देवताओंके भी स्रष्टा हैं। मधुपर्क आपके नामसे सम्बन्ध रखता है। जो सभी जगह सुपूजित होते हैं, वे प्रभु आप ही हैं। आप संसार-सागरसे मेरा उद्धार करनेके लिये यहाँ पधारें और इन पात्रोंमें विराजमान हों।'

सुश्रोणि! गूलरकी लकड़ीसे बने हुए पात्रमें घी, दही और मधुको समानरूपसे रखकर मधुपर्क बनाना चाहिये। यदि शहद न मिल सके तो गुड़ भी मिलाया जा सकता है। घृतके अभावमें उसकी जगह धानके लावेसे भी काम चल सकता है। दही न मिले तो दूध ही मिला दे। इस प्रकार दही, शहद और घृत समान मात्रामें मिलाकर मधुपर्क बना ले*। फिर उसे इस प्रकार अर्पित करें—'देवेश! यह भी आपके ही रूप हैं। मैं दधि, घृत, मधुसे बना हुआ यह मधुपर्क आपको अर्पित करता हूँ।' यदि सभी वस्तुओंका अभाव हो तो श्रद्धालु भक्त केवल जल ही हाथमें लेकर यह मन्त्र पढ़े—'जिन प्रभुकी नाभिसे निकले हुए कमलपर संसारकी सृष्टि अवलम्बित है तथा यज्ञों, मन्त्रों और रहस्ययुक्त जपोंसे जिनकी अर्चना होती है, वे भगवान् आप ही हैं। भगवन्! यह मधुपर्क आपसे सम्बद्ध है। इस दिव्य पदार्थको आप स्वीकार करनेकी कृपा करें।'

भगवति! इस मधुपर्कको जो मुझे अर्पित करता है, उसे यज्ञसम्बन्धित सभी फल प्राप्त हो जाते हैं और वह मेरे लोकमें चला जाता है।

पृथ्वि! अब दूसरी बात सुनो—मेरे कर्ममें लगे रहनेवाले व्यक्तिके प्राण त्यागनेके समय यह प्रयोग करना चाहिये। उसकी प्राण-यात्राके समय विधिपूर्वक मन्त्र पढ़कर इस संसारमें ही मधुपर्क देनेका विधान है। प्राण-प्रयाणके समयमें ही अनेक कर्मोंका करना आवश्यक है। मेरा भक्त मरणासन्न (मृत्युको प्राप्त हो रहे) व्यक्तिको सम्पूर्ण संसारसे मुक्त करनेवाला मधुपर्क अवश्य दे। जब देखे कि यह व्यक्ति आतुर हो गया है तो हाथमें उत्तम मधुपर्क लेकर इस भावका मन्त्र पढ़े—'देवलोकके स्वामी भगवन्! जो सारे संसारमें प्रधान हैं तथा सबके शरीरमें जिनकी सत्ता शोभा पाती है, वह भगवान् नारायण आप ही हैं। प्रभो मैंने! मधुपर्क आपकी सेवामें भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। इसे आप स्वीकार करें। मृत्युके समय इसी मन्त्रके साथ मधुपर्क दे। पृथ्वि! मधुपर्कके इस सामर्थ्यको कोई नहीं जानता है, अतः सिद्धिके अभिलाषीको ऐसा मधुपर्क अवश्य देना चाहिये। उस समय सर्वप्रथम संसार-सागरसे मुक्त करनेवाले भगवान् श्रीहरिका अर्चन भी आवश्यक है। जो 'मधुपर्क' देता है, उसको परमगति मिलती है। यह प्रसङ्ग पवित्र, स्वच्छ, सम्पूर्ण कामनाओं-

* अन्यत्र दधि, मधु, जल, गुड़ और घी—इन पाँचके योगसे 'मधुपर्क' निर्माणका विधान है। द्रष्टव्य—मनु० ३। ३, ११९-२०, आपस्तम्बधर्मसूत्र २। ८। ५-९, गृह्य० १। १०। १-२, गौतम० ५। २७-३०, बृहत्सं० ११। १४ तथा याज्ञवल्क्य० १। १०९ आदिकी व्याख्याएँ।

को देनेवाला है। जो दीक्षित हों, गुरुमें भक्ति रखनेवाला शिष्य हो, उसके सामने इसका प्रसङ्ग सुनाना चाहिये। मधुपर्कका यह आख्यान पापोंको नष्ट करनेवाला है। जो इसे सुनता है, वह मेरी कृपासे परम दिव्य सिद्धिको प्राप्त होता है।

भद्रे! 'मधुपर्क'के परिचयका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। राजदरबारमें, श्मशानभूमिपर अथवा भय एवं दुःखकी परिस्थिति सामने आनेपर जो लोग इस शान्तिदायक प्रसङ्गका अध्ययन करेंगे, उन्हें [illegible] शीघ्र सफलता मिलेगी। इसके प्रभावसे पुत्रहीनोंको पुत्र, भार्याहीनोंको भार्या और पतिहीना स्त्रीको सुन्दर प[ति] मिलता है। मानवके बन्धन कटते हैं। मुने! [इसे] देनेवाला महान् शान्तिदायक यह प्रसङ्ग तुम्हें [सुना] चुका। यह विषय जगत्के उद्धारक परम रहस्य है। जो व्यक्ति विधिसहित इसका प्रयोग करता है, वह संसारकी आसक्तियोंको त्याग कर मेरे लोकको प्राप्त होता है। (अध्याय १११)

नचिकेताद्वारा यमपुरीकी यात्रा

लोमहर्षणजी कहते हैं—एक बार व्यासजीके शिष्य वेद-वेदाङ्गके पारगामी वैशम्पायन राजा जनमेजयके दरबारमें गये। पर उस समय राजाके अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेके कारण उन्हें फाटकपर रुकना पड़ा। जब यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि परम ज्ञानी वैशम्पायन ऋषि वहाँ पधारे हैं और गङ्गाके तटपर उन्होंने अपने रहनेका स्थान बना रखा है। 'ऋषि मुझसे मिलने आये थे, मेरे न मिल पानेसे एक प्रकारसे यह उनका अपमान ही हुआ।' इससे जनमेजय चिन्तासे व्याकुल हो गये। उनकी आँखें अकुला उठीं। राजा जनमेजयका जन्म कुरुवंशकी अन्तिम पीढ़ीमें हुआ था, अतः वे शीघ्र ही वैशम्पायन ऋषिके [illegible]

सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन [काल]में उद्दालक नामक एक वैदिक महर्षि थे। उनका नचिकेता नामका एक तेजस्वी योगाभ्यासी पुत्र था। संयोग[वश] उसके पिता उद्दालकने एक दिन रोषमें आकर अपने [उस] परम-धार्मिक पुत्रको शाप दे दिया—'दुर्मते! [तुम] यमराजकी पुरीमें चले जाओ!' इसपर नचिकेता[ने] कुछ क्षण विचार कर फिर बड़ी नम्रतासे पिता उद्दालकसे कहा—'पिताजी! आप धार्मिक पु[रुष] हैं। आपकी बात कभी मिथ्या नहीं हुई है। अतः [मैं] इसी समय आपकी आज्ञासे बुद्धिमान् धर्मराजकी सुरम्य नगरीमें जाता हूँ।'

[illegible]

को देनेवाला है । जो दीक्षित हों, गुरुमें भक्ति रखनेवाला शिष्य हो, उसके सामने इसका प्रसङ्ग सुनाना चाहिये । मधुपर्कका यह आख्यान पापोंको नष्ट करनेवाला है । जो इसे सुनता है, वह मेरी कृपासे परम दिव्य सिद्धिको प्राप्त होता है ।

भद्रे ! 'मधुपर्क'के परिचयका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया । राजदरबारमें, श्मशानभूमिपर अथवा भय एवं दुःखकी परिस्थिति सामने आनेपर जो लोग इस शान्तिदायक प्रसङ्गका अध्ययन करेंगे, उन्हें कार्यमें शीघ्र सफलता मिलेगी । इसके प्रभावसे पुत्रहीनोंको पुत्र, भार्याहीनोंको भार्या और पतिहीना स्त्रीको सुन्दर पति मिलता है । मानवके बन्धन कटते हैं । मुझे ! सुख देनेवाला महान् शान्तिदायक यह प्रसङ्ग तुम्हें सुना चुका । यह विषय जगत्से उद्धारक परम रहस्यपूर्ण है । जो व्यक्ति विधिसहित इसका प्रयोग करता है, वह संसारकी आसक्तियोंको त्याग कर मेरे लोकको प्राप्त होता है । (अध्याय ११९-१२)

नचिकेताद्वारा यमपुरीकी यात्रा

लोमहर्षणजी कहते हैं—एक बार व्यासजीके शिष्य वेद-वेदाङ्गके पारगामी वैशम्पायन राजा जनमेजयके दरबारमें गये । पर उस समय राजाके अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेके कारण उन्हें फाटकपर रुकना पड़ा । जब यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि परम ज्ञानी वैशम्पायन ऋषि वहाँ पधारे हैं और गङ्गाके तटपर उन्होंने अपने रहनेका स्थान बना रखा है । 'ऋषि मुझसे मिलने आये थे, मेरे न मिल पानेसे एक प्रकारसे यह उनका अपमान ही हुआ ।' इससे जनमेजय चिन्तासे व्याकुल हो गये । उनकी आँखें अकुला उठीं । राजा जनमेजयका जन्म कुरुवंशकी अन्तिम पीढ़ीमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । प्राचीन समयमें उद्दालक नामक एक वैदिक महर्षि थे । उनका नचिकेता नामका एक तेजस्वी योगाभ्यासी पुत्र था । संयोगवश उसके पिता उद्दालकने एक दिन रोषमें आकर अपने इस परम-धार्मिक पुत्रको शाप दे दिया—'दुर्मते ! तुम यमराजकी पुरीमें चले जाओ ।' इसपर नचिकेताने कुछ क्षण विचार कर फिर बड़ी नम्रतासे पिता उद्दालकसे कहा—'पिताजी ! आप धार्मिक पुरुष हैं । आपकी बात कभी मिथ्या नहीं हुई है । अतः मैं इसी समय आपकी आज्ञासे बुद्धिमान् धर्मराजकी सुरम्य नगरीमें जाता हूँ ।'

यदि तुम स्वेच्छासे भी वहाँ चले जाओगे तो वे महान् यशस्वी राजा रोकनेके कारण कभी भी तुम्हें आने नहीं देंगे। पुत्र ! तुम्हें देखना चाहिये कि अपने कुलके भविष्यका संहार करनेवाला मैं प्रायः नष्ट हो रहा हूँ। नरकका एक नाम (पुत्) है। उससे त्राण देनेके कारण लड़केको 'पुत्र' कहते हैं। अतएव लोग इस लोक तथा परलोकके लिये पुत्रकी कामना करते हैं। संतानहीन व्यक्तिका किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तप की हुई तपस्या तथा पितरोंका तर्पण—प्रायः ये सब-के-सब व्यर्थ हो जाते हैं।

'पुत्र ! मैंने सुना है कि सेवा-परायण शूद्र, खेतीसे जीविका चलानेवाला वैश्य, धनकी रक्षा करनेवाला राजसमूह, उपासना-कर्ममें निरत ब्राह्मण, महान् तप करनेवाला तपस्वी अथवा उत्तम दान करनेवाला कोई दानी व्यक्ति भी यदि संतानहीन है तो वह स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता। पुत्रसे पिताको, पौत्रसे पितामहको और प्रपौत्रसे प्रपितामहको परम आनन्द प्राप्त होता है। अतएव मैं अपने वंशकी वृद्धि करनेवाले तुम-जैसे पुत्रका त्याग नहीं करूँगा। मैं इसके लिये याचना करता हूँ, तुम यमपुरी न जाओ।'

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! मुनिवर उद्दालककी बात सुनकर नचिकेताने कहा—'पिताजी ! आप विषाद न करें। मैं पुनः यहाँ लौटकर वापस आऊँगा और आप मुझे निश्चितरूपसे पुनः देख सकेंगे। सारा संसार जिनको नमस्कार करता है, उन दिव्य पुरुष धर्मराजका दर्शन करके मैं पुनः यहाँ निश्चय ही लौट आऊँगा। पिताजी ! सत्यमें मुझे मृत्युसे बिल्कुल भय नहीं है। सत्य बड़ी शक्ति है, यह सत्य स्वर्गकी सीढ़ी है। सूर्य भी सूर्यके बकार ... सत्यसे ही दाहकता- ... है। सत्यसे ही सामवेद सत्यमन्त्रोंका गान करता है। सत्यपर ही सबकी प्रतिष्ठा है। स्वर्ग और धर्म—ये सभी सत्यके रूप हैं। सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। पिताजी ! मैंने तो ऐसा सुना है कि सत्यसे सब कुछ मिल सकता है और यदि उसका परित्याग कर दिया गया तो कोई भी उत्तम वस्तु हाथ नहीं लग सकती।

'ब्रह्माजीने भी सृष्टिके आरम्भमें यत्नपूर्वक सत्यकी दीक्षा ली थी। सत्यका आश्रय लेकर ही और्वमुनिने अग्निको बड़वामुखमें फेंक दिया था। पिताजी ! प्राचीन समयमें सर्वशक्तिसम्पन्न संवर्तने देवताओंपर कृपा करनेके लिये सम्पूर्ण लोकोंको आश्रय दिया था। पातालमें निवास करनेवाले बलिने भी सत्यके रक्षार्थ ही बन्धन स्वीकार किया था। सैकड़ों शिखरोंसे शोभा पानेवाला महान् विन्ध्यपर्वत बढ़ता जा रहा था। सत्यका पालन करनेके लिये बढ़नेसे रुक गया। सम्पूर्ण चर और अचरसे सम्पन्न यह जगत् सत्यसे ही शोभा पाता है। गृहस्थ, वानप्रस्थी एवं योगियोंके जितने उत्तम दृश्यमान (पालनीय) धर्म हैं तथा हजार अश्वमेध यज्ञोंका जो धर्म है, उसकी यदि सत्यसे तुलना की जाय तो सत्य ही सबसे बड़ा सिद्ध हो सकता है। सत्यसे धर्मकी रक्षा होती है और रक्षित धर्म प्राणियों-की रक्षा करता है। अतएव आप इस समय सत्यकी रक्षा कीजिये।'

सुमत ! इस प्रकार कहकर ऋषि-पुत्र नचिकेता यमराजकी उत्तम पुरीको चल पड़ा। तप एवं योगके प्रभावसे शीघ्र ही यमपुरी पहुँच गया। वहाँ पहुँचनेपर यमराजने उसका यथोचित स्वागत-सत्कार किया और कुछ ही दिनों बाद उसे वहाँसे वापस होनेकी सम्मति दे दी और फिर वह ऋषिकुमार घर आ गया। वत्स आये हुए पुत्रको देखकर उद्दालकमुनिने उसे दोनों बाहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया। उसका सिर सूँघा। उस समय अत्र इनके कारण पृथ्वी और आकाशमें भी हर्षध्वनि होने लगी।

नो देनेवाला है । जो दीक्षित हो, गुरुमें भक्ति रखनेवाला शिष्य हो, उसके सामने इसका प्रसङ्ग सुनाना चाहिये । मधुपर्कका यह आख्यान पापोंको नष्ट करनेवाला है । जो इसे सुनता है, वह मेरी कृपासे परम दिव्य सिद्धिको प्राप्त होता है ।

भद्रे ! 'मधुपर्क'के परिचयका यह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया । राजदरबारमें, श्मशानभूमिपर अथवा भय एवं दुःखकी परिस्थिति सामने आनेपर जो लोग इस शान्तिदायक प्रसङ्गका अध्ययन करेंगे, उन्हें कार्यमें शीघ्र सफलता मिलेगी । इसके प्रभावसे पुत्रहीनोंको पुत्र, भार्याहीनोंको भार्या और पतिहीना स्त्रीको सुन्दर पति मिलता है । मानवके बन्धन कटते हैं । मुने ! सुख देनेवाला महान् शान्तिदायक यह प्रसङ्ग तुम्हें सुना चुका । यह विषय जगत्‌से उद्धारक परम रहस्यपूर्ण है । जो व्यक्ति विधिसहित इसका प्रयोग करता है, वह संसारकी आसक्तियोंको त्याग कर मेरे लोकको प्राप्त होता है । (अध्याय १९१-९२)

नचिकेताद्वारा यमपुरीकी यात्रा

लोमहर्षणजी कहते हैं—एक बार व्यासजीके शिष्य वेद-वेदाङ्गके पारगामी वैशम्पायन राजा जनमेजयके दरबारमें गये । पर उस समय राजाके अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेके कारण उन्हें फाटकपर रुकना पड़ा । जब यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि परम ज्ञानी वैशम्पायन ऋषि वहाँ पधारे हैं और गङ्गाके तटपर उन्होंने अपने रहनेका स्थान बना रखा है । 'ऋषि मुझसे मिलने आये थे, मेरे न मिल पानेसे एक प्रकारसे यह उनका अपमान ही हुआ ।' इससे जनमेजय चिन्तासे व्याकुल हो गये । उनकी आँखें अकुला उठीं । राजा जनमेजयका जन्म कुरुवंशकी अन्तिम पीढ़ीमें हुआ था, अतः वे शीघ्र ही वैशम्पायन ऋषिके पास गये और उनका स्वागत करनेके बाद कहा—'भगवन् ! मेरा चित्त चिन्तासे व्याकुल है । मैं जानना चाहता हूँ कि यमराजकी पुरी कैसी और कितनी दूरमें विस्तृत है ? मैंने सुना है कि प्रेतपुरीके अध्यक्ष धर्मराज बड़े धीर हैं और सम्पूर्ण जगत्‌पर उनका शासन है । प्रभो ! कैसे कर्म किये जायँ कि वहाँ आना न पड़े ।'

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ, सुनो । जिसे सुनते ही मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है । प्राचीन समयमें उद्दालक नामक एक वैदिक महर्षि थे । उनका नचिकेता नामका एक तेजस्वी योगाभ्यासी पुत्र था । संयोगवश उसके पिता उद्दालकने एक दिन रोषमें आकर अपने इस परम-धार्मिक पुत्रको शाप दे दिया—'दुर्मते ! तुम यमराजकी पुरीमें चले जाओ ।' इसपर नचिकेताने कुछ क्षण विचार कर फिर बड़ी नम्रतासे पिता उद्दालकसे कहा—'पिताजी ! आप धार्मिक पुरुष हैं । आपकी बात कभी मिथ्या नहीं हुई है । अतः मैं इसी समय आपकी आज्ञासे बुद्धिमान् धर्मराजकी सुरम्य नगरीमें जाता हूँ ।'

अब उद्दालक पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—'तुम मेरे एक ही पुत्र हो । तुम्हारा दूसरा कोई भाई भी नहीं है । मैंने क्रोध किया, इससे मुझे अधर्म, निन्दा अथवा मिथ्यावादी कहलानेका दोष भले ही लग जाय, परंतु वत्स ! अब तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये, जिससे मेरा उद्धार हो जाय । मैंने तुम-जैसे सदा धर्मका आचरण करनेवाले पुत्रको जो शाप दिया, वह ठीक नहीं किया । तुम्हें यमपुरी जाना उचित नहीं है । उस पुरीके राजा वैवस्वत देव हैं ।

…ते, मदगान करते, ब्याज उगाहते, पाखंड करते, ब्रह्मनिष्ठा और धर्मका भी त्याग करते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो गुरुसे द्वेष करते, बुरे आचरणका पालन करते, कष्टभरी बातें बोलते, दूतका काम करते, गृह-सम्पत्तिकी सीमा ध्वंस करते तथा व्यर्थ ही फल-फूल तोड़ते रहते हैं, जो शरणागतपर दया नहीं करते तथा पापी, हिंसक, कल-भञ्जक, सोमविक्रयी, स्त्रीके ही अधीन रहते हैं, जिन्हें झूठ बोलनेकी आदत है तथा जो द्विज होकर वेद बेचते हैं, जो घर-घर नक्षत्रकी सूचना देते हैं, वे नरकमें जाते हैं और वहाँ अपने बुरे कर्मोंका फल भोगते हैं।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन्! जब उन परम तपस्वी मुनियोंने नचिकेताके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनीं, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। अतः वे उससे पुनः पूछने लगे।

ऋषियोंने कहा—'मुने! तुम बड़े ज्ञानी पुरुष हो। तुमने यमपुरीमें जो कुछ देखा है, वह सभी हमें बतानेकी कृपा करो। विद्वानोंका कहना है कि सूक्ष्म-शरीर यमयातनाके अनेक क्लेश भोगने, आगसे जलाने तथा अस्त्रोंसे काटनेपर भी नष्ट नहीं होता। विप्र! वैतरणी नदीका क्या रूप है? तथा उसमें कैसा …ल बहता है? रौरव नरककी कैसी स्थिति है? …था कूटशाल्मलिका क्या रूप है? यमराजके दूत …से हैं? उनका क्या कार्य है? और उनमें कैसा …तारतम्य है? वहाँके दूत किस प्रकार कार्यमें उद्यत …रहते हैं? और उनका कैसा आचार है? उनके अपूर्व तेजसे आच्छन्न हो जानेके कारण प्राणी प्रायः अचेत-सा हो जाता है। प्राणीके द्वारा समय-समयपर दोष होते रहते हैं। वह रज-तमसे भरा रहता है, अतः धैर्य भी उसका साथ नहीं देता। यह किसकी माया है, जिसके प्रभावसे प्राणी परम प्रभुको भूलकर संसारके चकाचौंधमें विह्वल रहते हैं? बहुत-से व्यक्ति मूर्खताके कारण पाप करते हैं और उसके फल-स्वरूप उन्हें कष्ट भोगने पड़ते हैं। वत्स! तुमने यमपुरीमें जाकर सभी बातें स्वयं देखी हैं, अतः इसे बतानेकी कृपा करो।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन्! उन सभी ऋषियोंका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र था। उनकी बात सुननेके पश्चात् बोलनेमें परम कुशल नचिकेताने सभी बातोंका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'द्विजवरो! धर्मराजकी वह पुरी दो परिखाओंसे घिरी और सोनेसे बनी एक हजार योजनमें फैली हुई है तथा अट्टालिकाओं और दिव्य भवनोंसे सुशोभित है। उसमें कहीं तो भीषण युद्ध और कहीं संघर्ष चलता है और कहीं प्राणी विवश होकर बँधे पड़े हैं। वहाँ पुष्पोदका नामकी एक नदी है, जिसके तटपर अनेक प्रकारके वृक्ष हैं। उसकी सीढ़ियाँ सोनेकी तथा बालुकाएँ सुवर्ण-जैसे रंगवाली हैं।

'वहाँ वैवस्वती नामकी एक प्रसिद्ध बहुत बड़ी नदी है। यह नदी वहाँकी सभी नदियोंमें पवित्र तथा श्रेष्ठ मानी जाती है। वह परम रमणीय सरिता पुरीके मध्यमें इस प्रकार विचरती है, मानो माता अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हो। उसका जल सबके लिये सुखदायी तथा मनको मुग्ध करनेवाला है। वह नदी सदा दिव्य जलसे भरी रहती है। कुन्द एवं चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाले हंस आनन्दके उमंगमें उसके तटोंपर निरन्तर घूमते रहते हैं। जिनका आकार तथा रंग बड़ा आकर्षक है तथा जिनकी कर्णिकाएँ तपाये हुए सुवर्णके समान चमकती हैं, ऐसे रमणीय कमलोंसे युक्त वह नदी बड़ी ही मनोहर दिखायी पड़ती है। सुवर्णनिर्मित सीढ़ियोंके कारण उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गयी है। उसके निर्मल जल स्वादिष्ट, सुगन्धपूर्ण तथा अमृतकी तुलना करते

फिर उद्दालकने उससे पूछा—'वत्स ! यमपुरीमें तुम्हें कोई यातना तो नहीं पहुँचायी गयी ? उस समय यमपुरीसे लौटे नचिकेताको देखनेके लिये वहाँ ऋषि, मुनि और बहुत-से देवता भी पधारे। उन ऋषियोंमें बहुत-से नंगे थे। अनेक ऐसे थे, जिनका पत्थरसे कूटकर अन्न खानेका स्वभाव था। बहुत-से ऋषि पत्थरसे कूटकर अन्न भक्षण करते थे। बहुतोंने मौनव्रत धारण कर रखा था। कुछ ऋषि वायु पीकर रह जाते थे। अनेक ऋषियोंका नियम अग्निसेवन था, उस व्रतके व्रती ऋषि धुआँ पीकर ही रह जाते थे। समस्त समुदाय उस ऋषिकुमारके चारों ओर खड़े हो उसे देखने लगा। कुछ ऋषि बैठे थे और कुछ खड़े थे। वे सभी शान्त, शिष्ट, अनुशासित एवं शालीन थे। उन सभी ऋषियोंने वेदान्तका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। जब प्रथम बार यमलोकसे आये हुए नचिकेतापर उनकी दृष्टि पड़ी, तो उनमेंसे कुछ भयके कारण घबड़ा-से गये। तथा कुछ महान् कौतूहलसे ग्रस्त थे। साथ ही उनके हृदयोंमें हर्ष भी भरा था। कुछ ऋषियोंके मनमें बेचैनी उत्पन्न हो गयी तथा कुछ लोग संदेहास्पद बातें करनेमें संलग्न थे। फिर उन ऋषियोंने तपके महान् धनी ऋषिकुमार नचिकेतासे एक साथ ही प्रश्न पूछना आरम्भ कर दिया।

ऋषियोंने उसे बार-बार सम्बोधित करके पूछा—'वत्स ! तुम बड़े विज्ञ और गुरुके परम सेवक तथा अपने धर्मपर अडिग रहनेवाले हो। नचिकेतः ! तुम सच्ची बात बताओ कि यमपुरीकी तुमने कौन-सी विशेषताएँ देखी और सुनी हैं ? उपस्थित सभी ऋषियोंके मनमें इसे सुननेकी इच्छा है। तुम्हारे पिता तो इस विषयको विशेषरूपसे सुनना चाहते हैं। तात ! हमारे पूछनेपर यदि कोई गुप्त बात हो तो भी शिष्ट मानवको उसे स्पष्ट कर ही देना चाहिये। क्योंकि उस पुरीसे सभी भयभीत रहते हैं—इस बातको प्रायः सभी जानते हैं। इस मायाराज्यमें स्थित सम्पूर्ण जगत् लोभ एवं मोहजनित अन्धकारसे व्याप्त है। चिन्तन तथा अन्वेषणकी क्रियाएँ तो होती रहती हैं; किंतु जो हितकी बात है, वह चित्तपर नहीं चढ़ती। यमपुरीमें चित्रगुप्तकी कार्य-शैली कैसी है ? पुनः उनके कथनका क्या रूप है ! मुने ! धर्मराज और कालका कैसा स्वरूप है ! वहाँ किन रूपसे व्याधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ? कर्मविपाकका स्वरूप भी हम जानना चाहते हैं। और यह भी जानना चाहते हैं कि किस कर्मसे उससे छुटकारा हो सकता है !

विप्रवर ! वहाँका जैसा दृश्य तुम्हें दिखायी पड़ा हो अथवा श्रवणगोचर हुआ हो तथा तुमने जिसे निश्चित रूपसे जाना हो, वह सब-का-सब विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन करनेकी कृपा करो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! नचिकेता महान् मनस्वी मुनि थे। महाराज ! जब ऋषियोंने उनसे इस प्रकार पूछा और उन श्रेष्ठ मुनिपुत्रने जो उत्तर दिया—अब मैं वह बताता हूँ, सुनो। (अध्याय ११-१४)

यमपुरीका वर्णन

नचिकेताने कहा—सदा तपमें तत्पर रहनेवाले द्विज-वरो ! आपलोगोंको मैं यमपुरीका प्रसङ्ग बताता हूँ। जो असत्य बोलते हैं, स्त्री एवं बालक आदि प्राणियोंका वध करते हैं, जो ब्रह्महत्यामें तत्पर रहनेवाले एवं विश्वास-घाती हैं, जिनमें शठता, कृतघ्नता तथा लोलुपता भी है, तथा जो दूसरोंकी स्त्रीका अपहरण करते और सदा पापमें रत रहते हैं, वे यमपुरीको जाते हैं। जो वेदोंकी निन्दा करने, वैदिकमार्गपर आघात पहुँचाने, मदिरा

[...]ते, मालगका वध करते, ब्याज उगाहते, कपट करते, [...]ता-पिता और पतिव्रता स्त्रीका त्याग करते हैं, वे [...]रकमें जाते हैं । जो गुरुसे द्वेष करते, बुरे आचरणका [...]लन करते, कपटभरी बातें बोलते, दूतका काम करते, [...]ह-ग्रामकी सीमा ध्वंस करते तथा व्यर्थ ही फल-फूल तोड़ते [र]हते हैं, जो पतित्रतापर दया नहीं करते तथा पापी, हिंसक, व्रत-भञ्जक, सोमविक्रयी, स्त्रीके ही अधीन रहते हैं, जिन्हें झूठ बोलनेकी आदत है तथा जो द्विज होकर वेद बेचते हैं, जो घर-घर नक्षत्रकी सूचना देते हैं, वे नरकमें जाते हैं और वहाँ अपने बुरे कर्मोंका फल भोगते हैं ।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन् ! जब उन परम तपस्वी मुनियोंने नचिकेताके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनीं, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । अतः वे उससे पुनः पूछने लगे ।

ऋषियोंने कहा—'मुने ! तुम बड़े ज्ञानी पुरुष हो । तुमने यमपुरीमें जो कुछ देखा है, वह सभी हमें बतानेकी कृपा करो । विद्वानोंका कहना है कि सूक्ष्म-शरीर यमयातनाके अनेक क्लेश भोगने, आगसे जलाने तथा अस्त्रोंसे काटनेपर भी नष्ट नहीं होता । विप्र ! वैतरणी नदीका क्या रूप है ? तथा उसमें कैसा [...] बहता है ? रौरव नरककी कैसी स्थिति है ? [...]का कूटशाल्मलिका क्या रूप है ? यमराजके दूत [...]ते हैं ? उनका क्या कार्य है ? और उनमें कैसा [...]क्रम है ? वहाँके दूत किस प्रकार कार्यमें उद्यत [र]हते हैं ? और उनका कैसा आचार है ? उनके अपूर्व [...]जसे आच्छन्न हो जानेके कारण प्राणी प्रायः अचेत-[...]ा हो जाता है । प्राणीके द्वारा समय-समयपर दोष [ह]ोते रहते हैं । वह रज-तमसे भरा रहता है, अतः धैर्य भी उसका साथ नहीं देता । यह किसकी माया है, जिसके प्रभावसे प्राणी परम प्रभुको भूलकर संसारके चक्करोंमें विह्वल रहते हैं ? बहुत-से व्यक्ति मूर्खताके कारण पाप करते हैं और उसके फल-स्वरूप उन्हें कष्ट भोगने पड़ते हैं । वत्स ! तुमने यमपुरीमें जाकर सभी बातें स्वयं देखी हैं, अतः इसे बतानेकी कृपा करो ।'

वैशम्पायनजी कहते हैं—'राजन् ! उन सभी ऋषियोंका अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र था । उनकी बात सुननेके पश्चात् बोलनेमें परम कुशल नचिकेताने सभी बातोंका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'द्विजवरो ! धर्मराजकी वह पुरी दो परिखाओंसे घिरी और सोनेसे बनी एक हजार योजनमें फैली हुई है तथा अट्टालिकाओं और दिव्य भवनोंसे सुशोभित है । उसमें कहीं तो भीषण युद्ध और कहीं संघर्ष चलता है और कहीं प्राणी विवश होकर बँधे पड़े हैं । वहाँ पुण्योदका नामकी एक नदी है, जिसके तटपर अनेक प्रकारके वृक्ष हैं । उसकी सीढ़ियाँ सोनेकी तथा बालुकाएँ सुवर्ण-जैसे रंगवाली हैं ।

'वहाँ वैवस्वती नामकी एक प्रसिद्ध बहुत बड़ी नदी है । यह नदी वहाँकी सभी नदियोंमें पवित्र तथा श्रेष्ठ मानी जाती है । वह परम रमणीय सरिता पुरीके मध्यमें इस प्रकार विचरती है, मानो माता अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हो । उसका जल सबके लिये सुखदायी तथा मनको मुग्ध करनेवाला है । वह नदी सदा दिव्य जलसे भरी रहती है । कुन्द एवं चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाले हंस आनन्दकी उमंगमें उसके तटोंपर निरन्तर घूमते रहते हैं । जिनका आकार तथा रंग बड़ा आकर्षक है तथा जिनकी कर्णिकाएँ तपाये हुए सुवर्णके समान चमकती हैं, ऐसे रमणीय कमलोंसे युक्त वह नदी बड़ी ही मनोहर दिखायी पड़ती है । सुवर्णनिर्मित सीढ़ियोंके कारण उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गयी है । उसके निर्मल जल स्वादिष्ट, सुगन्धपूर्ण तथा अमृतकी तुलना करते

कुम्भीपाक
रौरव
महारौरव

उनका कोई रक्षक न था । ऐसे ही बहुत-से प्राणी अन्धकारपूर्ण अगाध नरकमें पच रहे थे । कुछ प्राणी नरकोंमें पकाये जाते थे, जिनसे अग्निके लिये ईंधनका काम लिया जा रहा था । जो अधिक पापकर्मी थे, वे प्राणी खौलते हुए घृत, तेल एवं क्षार वस्तुवाले नरकमें गिरे थे । उनकी देह खौलते हुए घृत, तेल एवं क्षार पदार्थोंसे जलायी जा रही थी । भयंकर ज्वालाओंसे उनकी देह जल रही थी । अपने कर्मोंके अनुसार यत्र-तत्र विवश होकर वे रो रहे थे । कितने प्राणी तो तिलकी भाँति कोल्हूमें डालकर पेरे जा रहे थे । उन पापात्मा प्राणियोंके रुधिर, मेदादिसे एक दुस्तर वैतरणी नदी प्रकट हो गयी थी । उस भयंकर नदीमें फेनमिश्रित रुधिर भँवरें उठने लगीं । हजारों दूत ऐसे दृष्टिगोचर हुए, जो पापियोंको झूलकी नोकपर चढ़ाते और स्वयं वृक्षोंपर चढ़कर उन जीवोंको अत्यन्त भयंकर वैतरणी नदीमें फेंक देते थे । वह नदी अत्यन्त उष्ण रुधिरों तथा फेनोंसे भरी थी । उसमें अनेक सर्प थे, जो वहाँ पड़े हुए प्राणियोंको डँसा करते थे । उस नदीसे बाहर होना किसीके वशकी बात न थी । वे उस रुधिरमय जलमें डूबते और उतराते थे । उनके मुखसे वमन हो रहा था । उन्हें उनका कोई रक्षक नहीं मिलता ।

वहाँ बहुत-से ऐसे प्राणी भी थे, जिन्हें दूतोंने 'कूट-शाल्मलि' नामके वृक्षपर लटका दिया था । उस वृक्षमें लोहेके असंख्य काँटे थे । दूतोंद्वारा तलवारों और शक्तियोंसे बार-बार उनपर प्रहार हो रहा था । उस वृक्षकी शाखाएँ रोमाञ्च-कारी थीं । उनपर लटके हुए हजारों पापी जीवोंको मैंने देखा है । कूष्माण्ड और यातुधान—ये यमराजके अनुचर हैं । इनकी आकृति बड़ी लम्बी है । इन्हें देखते ही प्राणी डर जाते हैं । तीखे काँटोंसे भरे हुए शाल्मलिवृक्षकी शाखाओंपर ये बड़ी शीघ्रतासे चढ़ते और निःशङ्क होकर पापी प्राणियोंके सुन्दर अङ्गोंपर प्रहार करने लगते थे । वे कूष्माण्ड प्रभृति प्राणियोंको मारकर उनके मांस खानेमें तत्पर हो जाते । कारण, उनकी जाति भयंकर राक्षसकी है । पापियोंके मांस वे इस प्रकार खाने लगते थे, मानो बन्दर कुबेर फल खा रहे हों । जैसे मनुष्य वनमें आमके पके फल खाता है, ठीक वैसे ही लंबे मुखवाले एवं दुर्धर्ष वे कूष्माण्ड आदि राक्षस मुखसे लेकर उन प्राणियोंको अपने उदरमें पहुँचा देते थे । वे वृक्षपर ही उन पापी प्राणियोंको चूस लेते और जब केवल हड्डियाँ बच जाती थीं, तब उन जीवोंको जमीनपर फेंक देते थे । पृथ्वीपर पड़नेके पश्चात् वनवासी जानवर झट वहाँ आते और जो बचा-खुचा मज्जा-मांस रहता, उसे पुनः वे चूसने लगते थे । फिर भी अवशिष्ट कर्मोंका क्रम यथाशीघ्र चलता रहता था । वहाँ कभी पत्थरों और धूलोंकी वर्षा होती है, जिससे घबड़ाकर कितने पापात्मा प्राणी वृक्षके नीचे जाते हैं, पर वहाँ भी उनके शरीरमें आग लग जाती है । कोई और जोरसे भागनेका प्रयास करते हैं, किंतु दूत उन्हें सावधानीके साथ पकड़कर बाँध लेते हैं । भयंकर स्थानोंमें वे आगके द्वारा पचाये जाते हैं । वे दुःखी प्राणियोंसे कहते हैं—तुम सभी कृतघ्न, लोभी थे और परायी स्त्रियोंसे प्रेम करते थे । तुम्हारे मनमें सदा पाप बसा रहता था । तुमने कोई भी सुकृत नहीं किये । तुम सदा दूसरोंकी निन्दा किया करते थे । इस यातना-भोगके बाद भी जब तुम्हारा जगत्में जन्म होगा तो वहाँ भी दुर्गति ही होगी, क्योंकि पाप-कर्म करनेवाले प्राणी पुनः अत्यन्त दरिद्रकुलोंमें जन्म पाते हैं । जो सदाचारी हैं तथा सत्य भाषण करते, प्राणियोंपर दया रखते हैं, वे ही उत्तम कुलमें जन्म पाते हैं । उनके मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती । वे इन्द्रियोंको वशमें रखकर श्रेष्ठ साधना करते हुए अन्तमें परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं ।

संदंश
संतप्त
कुम्भीपाक
रौरव
महारौरव

नचिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा स्थल है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार फैला रहता है। उसकी स्थिति बड़ी विषम है। वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं। अधिकतर बिना हाथ और सिरके हैं। उसी यमपुरीमें लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके समान जलता है। उसकी आकृति बड़ी भयंकर है। जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है। तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है —'अरे पापी ! मैं तेरी बहन थी। ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी। अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, फुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था। उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था। अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता। अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है ? दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी। तूने जैसा कर्म किया है, उसका अब फल भोग।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, हिंसक जन्तु, कुत्ते और कौवे उन पापियोंको अपना ग्रास बनानेमें तत्पर हो जाते हैं और यमराजके दूत उन्हें 'असिपत्र-वन' और 'तालवन'संज्ञक नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ धुआँ और ज्वालाओंसे परिपूर्ण दावानलकी भाँति धाँय-धाँयें अग्नि जलती रहती है। जब पापात्मा प्राणियोंको अग्निकी ज्वालाएँ असह्य हो जाती हैं, तब वे वृक्षोंके नीचे विश्राम करनेके लिये चले जाते हैं। वहाँ तलवारके समान पत्तोंसे उनका शरीर छिद उठता है। फिर तो छिन्न-भिन्न होने, जलाये जाने तथा बुरी तरह मार खानेके कारण वे कराहते रहते हैं। पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं। असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटकपर महारथी वीर पहरा करते हैं। उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं। उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं। उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं। उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है। कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं। एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है। यमपुरमें मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अस्त्रखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं। उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं। अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी कहता है—हा ! अब मैं मारा गया। उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं। कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है। सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार सुनायी पड़ता है।

ऋषिकुमार नचिकेता कहते हैं—द्विजवरो ! तम, महातम, रौरव, महारौरव, ससनाल, कालसूत्र, अन्धकार, करीषगर्त, कुम्भीपाक तथा अन्धतामिस्र—ये दस प्रसिद्ध भयंकर नरक हैं, जिनमें उत्तरोत्तर दुगुना, तिगुना और दसगुना क्लेश है; यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। इन सबसे दिन-रात मार्गपर चलते रहनेपर यमपुरी पहुँचते हैं। दुष्टोंका दुःख क्रमशः बढ़ता ही जाता है। मार्गमें तथा वहाँ केवल दुःख-ही-दुःख रहता है, सुख सामने ...

चिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा
स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्ध-
ार ही अन्धकार फैला रहता है। उसकी स्थिति बड़ी
ण है। यहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं। इनके
तिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं।
धिकतर बिना हाथ और सिरके हैं। उसी यमपुरीमें
लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके
समान जलता है। उसकी आकृति बड़ी भयंकर है। जब
वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो
जलनेके कारण वह भागने लगता है। तब वह भी उसके
पीछे दौड़ती और कहती है —'अरे पापी ! मैं तेरी बहन
थी। ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी
पुत्रवधू थी। अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी,
फुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा
राजाकी स्त्री थी। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे
सौभाग्य मिला था। उस समय तूने हमसे बलात्कार
किया था। अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता।
अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों
है ! दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी। तूने जैसा
कर्म किया है, उसका अब फल भोग।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस,
... ... प्राणियोंको अपना
रहते हैं। पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते
हैं। असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटक-
पर महारथी वीर पहरा करते हैं। उनके रूपकी
भयंकरता अवर्णनीय है।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक
पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं।
उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं। उनका स्पर्श
होते ही प्राणी जलने लगते हैं। उनके चोंच ऐसे हैं,
मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है।
कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक
हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे
हैं। एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे
खचाखच भरा है। यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरो
और अस्त्रखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं। उस समय पापी
प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते
हैं। अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे
दारुण शब्द निकलते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी कहता
है—हा ! अब मैं मारा गया। उनके करुण क्रन्दनसे
सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं। कहीं कोई रोता
है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे
पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता
है। सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार

नचिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा [...] स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्ध[...]र ही अन्धकार फैला रहता है । उसकी स्थिति बड़ी [...]म है । वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं । इनके [...]तिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं । [...]धिकतर बिना हाथ और सिरके हैं । उसी यमपुरीमें [...]लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके [...]मान जलता है । उसकी आकृति बड़ी भयंकर है । जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है । तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है —'अरे पापी ! मैं तेरी बहन थी । ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी । अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, फुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी । श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था । उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था । अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता । अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है ! दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी । तूने जैसा काम किया है, उसका अब फल भोग ।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, [...] पापियोंको अपना रहते हैं । पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं । असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटक-पर महारथी वीर पहरा करते हैं । उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है ।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं । उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं । उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं । उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है । कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं । एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है । यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अस्मखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं । उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं । अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं । प्रत्येक प्राणी कहता है—हा ! अब मैं मारा गया । उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं । कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है । सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार

...नचिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा ...स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्ध-...र ही अन्धकार फैला रहता है । उसकी स्थिति बड़ी ...म है । वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं । इनके ...तिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं । ...धिकतर बिना हाथ और सिरके हैं । उसी यमपुरीमें ...लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके समान जलता है । उसकी आकृति बड़ी भयंकर है । जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है । तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है —'अरे पापी ! मैं तेरी बहन थी । ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी । अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, बुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी । श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था । उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था । अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता । अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है ? दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी । तूने जैसा काम किया है, उसका अब फल भोग ।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, रहते हैं । पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं । असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटक पर महारथी वीर पहरा करते हैं । उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है ।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं । उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं । उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं । उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है । कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं । एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है । यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अस्त्रखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं । उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं । अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं । प्रत्येक प्राणी कहता है—हा ! अब मैं मारा गया । उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं । कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है । सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार

...नचिकेताने कहा—द्विजवरो! यमपुरीमें एक ऐसा स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्ध-...र ही अन्धकार फैला रहता है। उसकी स्थिति बड़ी ...म है। वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं। इनके ...तिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं। ...धिकतर बिना हाथ और सिरके हैं। उसी यमपुरीमें ...लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके समान जलता है। उसकी आकृति बड़ी भयंकर है। जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है। तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है—'अरे पापी! मैं तेरी बहन थी। ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी। अरे मूर्ख! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, फूआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी। श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था। उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था। अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता। अरे निर्लज्ज! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है? दुष्ट! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी। तूने जैसा काम किया है; उसका अब फल भोग।'

द्विजवरो! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, हिंसक जन्तु, कुत्ते और कौवे उन पापियोंको अपना ग्रास बनानेमें तत्पर हो जाते हैं और यमराजके दूत उन्हें 'असिपत्र-वन' और 'तालवन'संज्ञक नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ धुआँ और ज्वालाओंसे परिपूर्ण दावानलकी भाँति धायँ-धायँ अग्नि जलती रहती है। जब ...प्राणियोंको अग्निकी ज्वालाएँ असह्य हो जाती तब वे वृक्षोंके नीचे विश्राम करनेके लिये चले ...। वहाँ तलवारके समान पत्रोंसे उनका शरीर ...है। फिर तो छिन्न-भिन्न होने, जलाये ...बुरी तरह मार खानेके कारण वे कराहते रहते हैं। पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं। असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटक-पर महारथी वीर पहरा करते हैं। उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है।

विप्रो! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं। उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं। उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं। उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है। कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं। एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है। यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अस्त्रखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं। उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं। अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं। प्रत्येक प्राणी कहता है—हा! अब मैं मारा गया। उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं। कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है। सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार सुनायी पड़ता है।

ऋषिकुमार नचिकेता कहते हैं—द्विजवरो! तप्त, महातप्त, रौरव, महारौरव, सप्तताल, कालसूत्र, अन्धकार, करीषगर्त, कुम्भीपाक तथा अन्धकाररव—ये दस प्रसिद्ध भयंकर नरक हैं, जिनमें उत्तरोत्तर दुगुना, तिगुना और दसगुना क्लेश है; यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। प्रेत यहाँसे दिन-रात मार्गपर चलते रहनेपर यमपुरी पहुँचते हैं। दुखियों-का दुःख क्रमशः बढ़ता ही जाता है। मार्गमें तथा वहाँ केवल दुःख-ही-दुःख रहता है, सुख सामने आता ही

नचिकेताने कहा—द्विजवरो ! यमपुरीमें एक ऐसा स्थान है, जहाँ लोहेके काँटे बिछे हैं और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार फैला रहता है । उसकी स्थिति बड़ी विषम है । वहाँ कुछ पापाचारी प्राणी पड़े हैं । इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जिनके पैर कट गये हैं । अधिकतर बिना हाथ और सिरके हैं । उसी यमपुरीमें लोहेकी बनी हुई एक स्त्री है, जिसका शरीर अग्निके समान जलता है । उसकी आकृति बड़ी भयंकर है । जब वह किसी पापी पुरुषके अङ्गसे अपना अङ्ग सटाती है तो जलनेके कारण वह भागने लगता है । तब वह भी उसके पीछे दौड़ती और कहती है —'अरे पापी ! मैं तेरी बहन थी । ऐसे ही अन्य स्त्रियाँ भी हैं, जो कहती हैं—मैं तेरी पुत्रवधू थी । अरे मूर्ख ! मैं तेरी मौसी थी, मामी थी, फुआ थी, गुरुपत्नी थी, मित्रकी भार्या थी, भाई तथा राजाकी स्त्री थी । श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पत्नी होनेका मुझे सौभाग्य मिला था । उस समय तूने हमसे बलात्कार किया था । अब तू इस क्लेशसे बच नहीं सकता । अरे निर्लज्ज ! अब विपत्तियोंसे घबड़ाकर भागता क्यों है ? दुष्ट ! मैं तुझे अवश्य मार डालूँगी । तूने जैसा काम किया है, उसका अब फल भोग ।'

द्विजवरो ! फिर बाघ, सिंह, सियार, गदहा, राक्षस, हिंसक जन्तु, कुत्ते और कौवे उन पापियोंको अपना ग्रास बनानेमें तत्पर हो जाते हैं और यमराजके दूत उन्हें 'असिपत्र-वन' और 'तालवन'संज्ञक नरकोंमें फेंक देते हैं । वहाँ धुआँ और ज्वालाओंसे परिपूर्ण दावानलकी भाँति धायँ-धायँ अग्नि जलती रहती है । जब पापात्मा प्राणियोंको अग्निकी ज्वालाएँ असह्य हो जाती ... नीचे विश्राम करनेके लिये चले ... अङ्गारके समान पत्तोंसे उनका शरीर फिर तो छिन्न-भिन्न होने, जलाये मार खानेके कारण वे रहते हैं । पीड़ासे मर्माहत होकर वे चिल्लाने लगते हैं । असिपत्र और तालवन नामवाले नरकोंके फाटकपर महारथी वीर पहरा करते हैं । उनके रूपकी भयंकरता अवर्णनीय है ।

विप्रो ! मैंने यमपुरीमें यह भी देखा कि वहाँ अनेक पक्षी अग्निकी ज्वालाके समान जलानेकी शक्ति रखते हैं । उनके शब्द अत्यन्त तीक्ष्ण एवं कर्कश होते हैं । उनका स्पर्श होते ही प्राणी जलने लगते हैं । उनके चोंच ऐसे हैं, मानो लोहेके बने हों, कहीं अत्यन्त भयंकर बाघोंका झुंड है । कहीं मांसभक्षी क्रूर कुत्तोंकी टोली है तथा अनेक हिंसक जानवर क्रोधमें भरकर पापी प्राणियोंको खा रहे हैं । एक जगह 'असितालवन' भालुओं और हाथियोंसे खचाखच भरा है । यमपुर में मेघ हड्डियों, पाषाणों, रुधिरों और अस्त्रखण्डोंकी भी वर्षा करते हैं । उस समय पापी प्राणी उनसे आहत होकर उछलते-दौड़ते हैं और भागते हैं । अत्यन्त आहत हो जानेके कारण उनके मुँहसे दारुण शब्द निकलते रहते हैं । प्रत्येक प्राणी कहता है—हा ! अब मैं मारा गया । उनके करुण क्रन्दनसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं । कहीं कोई रोता है, कहीं कोई बुरी तरहसे छिदा है, कहीं कोई मोटे पत्थरोंसे दबा है तथा कहीं कोई उठनेका प्रयास करता है । सर्वत्र हाहाकारपूर्ण अत्यन्त करुण पुकार सुनायी पड़ता है ।

ऋषिकुमार नचिकेता कहते हैं—द्विजवरो ! तप्त, महातप्त, रौरव, महारौरव, सप्तताल, कालसूत्र, अन्धकार, करीषगर्त, कुम्भीपाक तथा अन्धतामिस्र—ये दस प्रसिद्ध भयंकर नरक हैं, जिनमें उत्तरोत्तर दुगुना, तिगुना और दसगुना क्लेश है; यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं । प्रेत यहाँसे दिन-रात मार्गपर चलते रहनेपर यमपुरी पहुँचते हैं । दुःखियों-दुःख क्रमशः बढ़ता ही जाता है । मार्गमें तथा वहाँ दुःख-ही-दुःख रहता है, सुख सामने आता ही

प्रशंसनीय उत्तम गुणोंको सहनेमें असमर्थ हैं, कुत्सित एवं कठोर बातें कहते हैं तथा मनमें मूर्खता भरी रहती है, वे अधम मनुष्य बन्धन एवं नरकमें पड़ते हैं। इसके बाद पशु-योनि तथा कीड़े एवं पक्षी आदिकी अनेक योनियोंमें जन्म पानेके वे अधिकारी हैं।

इनके अतिरिक्त जगत्‌में जो दोषपूर्ण कार्य करते हैं तथा सभी प्राणियोंसे द्वेष करना जिनका स्वभाव बन गया है, वे पापकर्मा प्राणी बहुत दिनोंतक भयंकर नरकमें पड़े रहते हैं। जब नरककी अवधि पूरी हो जाती है तो वे फिर मनुष्यकी योनि प्राप्त करते हैं। उसमें भी किन्हींका शरीर क्षीण, कोई विकृत पेट आदिसे युक्त होते हैं। किन्हींके सिर और अङ्गोंमें व्रण, कोई अङ्गहीन अथवा वातके रोगी होते हैं, किन्हींकी आँखोंसे सदा आँसू गिरता रहता है तथा किन्हींको स्त्रीका अभाव, अथवा पत्नी होनेपर भी संतानका अभाव रहता है, या अपने समान शुभ लक्षणवाली संतान न मिलकर नटखट, कुरूप, विकृताङ्ग पुत्रादि मिलते हैं तथा वे आँखोंसे भी हीन होते हैं।

यमराज कहते हैं—'दूतो! जो चोरी करनेमें तत्पर रहते हैं, वे पशुओं अथवा मनुष्योंके शरीर प्राप्त करें और सदा व्यग्र रहें। जो धर्म-शीलादिसे सम्पन्न एवं शुभ लक्षणवाले व्यक्तिकी अवहेलना करते हैं, उन्हें हजारों वर्षोंतक नरकयातनामें डाल दो।' फिर नरक-यन्त्रणाके बाद भी ये व्यक्ति निर्लज्ज, चितकबरे अङ्गवाले, दुर्बलगात्र, स्त्रीके अधीन, स्त्रीके समान वेषवाले, स्त्रीमें सदा आसक्त, स्त्रियोंकी प्रभुतासे बड़े बननेवाले, स्त्रीके लिये ही प्राप्त पदार्थपर अवलम्बित, केवल स्त्रीको देवता माननेमें उद्यत, स्त्रीके नियम एवं वेषके अनुसार सर्व बन जानेवाले अथवा उन्हींकी भावना लेकर संसारमें उत्पन्न होते—जन्म पाते हैं। (अध्याय २०१—१)

कर्मविपाक-निरूपण

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! अब मैं धर्मराज और चित्रगुप्त-संवादका एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, आप उसे सुनें। चित्रगुप्त धर्मराजसे कह रहे थे—'यह मनुष्य स्वर्गमें जाय, यह प्राणी वृक्षकी योनिमें जन्म ले, यह पशुकी योनिमें जाय और इस प्राणीको मुक्त कर दिया जाय। इस व्यक्तिको उत्तम गति प्राप्त होनी चाहिये। इसे अपने पिता-पितामहप्रभृति पूर्वजोंसे मिलना चाहिये।' फिर वे दूसरे दूतोंसे कहने लगे—'महान् पराक्रमी वीरो! यह व्यक्ति सदा धर्मसे विमुख रहा है। इसने सारी धोखा परित्याग किया है। इसके पास पुत्र-पौत्र भी नहीं हैं, अतः इसे घोर नरकमें फेंक दो।'

[illegible]

व्यक्तियोंने जीवनभर किसीकी निन्दा नहीं की है। सम्पत्ति अथवा विपत्ति—किसी भी स्थितिमें इन्होंने सम्पूर्ण धर्मोंका पालन किया है, अतः ये स्वर्गमें जाकर अनेक कल्पोंतक वहाँ निवास करें। यह व्यक्ति पूर्वकालमें परम धार्मिक पुरुष रहा है, पर यह स्त्रीमें अधिक आसक्त रहा, अतः कलियुगमें मनुष्यकी योनि प्राप्त करे। इसके बाद स्वर्गमें वास करनेकी सुविधा मिलेगी। यह व्यक्ति युद्धभूमिमें शत्रुको मारकर पीछे स्वयं मरा है। ब्राह्मण, गौ अथवा राष्ट्रके लिये लड़ाई छिड़ी थी। उसमें इसने प्राण-विसर्जन किये हैं। अतः तुम्हें विनयके साथ इसने निवेदन करना चाहिये कि यह व्यक्ति विमानपर चढ़कर इन्द्रकी अमरावती [illegible]

वहाँ एक कल्पतक

किया है। इसके सभी क्षण दान करनेमें ही व्यतीत हुए हैं। यह समस्त प्राणियोंपर दया करता था। इसका गन्धों और मालाओंसे यथाशीघ्र सम्मान करो। इस महात्मा व्यक्तिके लिये तुमलोगोंसे मेरा यह आदेश है कि इसके ऊपर चँवर डुले जायँ और इसकी भली प्रकारसे पूजा होनी चाहिये।'

(किसी अन्य धर्मात्माको लक्ष्य कर) 'यह भी एक यशस्वी पुरुष है। इससे सभी प्राणी सुख पाते रहे हैं। इसका कल्याण होना चाहिये। इसे सैकड़ों गुणोंसे शोभा पानेवाले इन्द्रकी अमरावतीमें भेजा जाय। यह धर्मात्मा प्राणी स्वर्गमें तबतक रहेगा, जबतक वहाँ इन्द्र रहेंगे। जितने समयतक इसका धर्म साथ देता रहेगा, उतने कालतक स्वर्गमें आनन्द भोगने-का इसे सुअवसर मिले। वहाँसे समयानुसार इसे उतरना पड़े तो मनुष्यकी योनिमें जन्म पाकर सुख भोगे। इसने रत्नोंकी बाँसुरी बनवाकर दान किये हैं तथा सम्पूर्ण धर्मोंका विधिपूर्वक पालन किया है। इसको अश्विनी-कुमारके लोकमें ले जाओ। क्योंकि उस लोकमें सब प्रकारकी सुख-सामग्री सुलभ रहती है।'

(किसी अन्यके प्रति दृष्टि डालकर) 'यह महान् भाग्यशाली पुरुष है। यह देवाधिदेव सनातन श्रीहरिके पास पधारे। इसकी त्यागवृत्ति असीम था। यह सुखसे दूध देनेवाली गौएँ दान करता था। अपनी सभी शक्तियोंका उपयोग कर यह ब्राह्मणोंको गो-दान देनेमें उत्सुक रहता था। विशेषता यह भी कि इसने परम पवित्र ब्राह्मणोंको बहुत-सा अन्न भी दिया है। स्वर्णधेनुकी तुलना करनेवाली वे मनोहारिणी गौएँ, कल्पपर्यन्त इसका साथ देंगी। यह पुरुष एक कल्पतक रुद्रके लोकमें रहेगा—इसमें कोई संशय नहीं। इसने अनेक मधुर पदार्थ, सुगन्धित वस्तुएँ तथा रस दूधसे परिपूर्ण रसवती भी ब्राह्मणोंको दी थीं, जिनके सभी अङ्ग सुगन्धसे सुशोभित थे। इस महान् दाता पुरुषको सम्मान देनेकी पुस्तक मैंने देखी है। उसमें लिखा है, तीन करोड़ वर्षोंतक यह स्वर्गमें निवास करेगा। तत्पश्चात् ऋषियोंके कुलमें इसका जन्म होगा।'

(किसी अन्य प्राणीके विषयमें) 'इसने सुवर्णका दान किया है। इसको देवताओंके पास भेज देना चाहिये। उनसे आज्ञा पाकर उमापति भगवान् रुद्रके लोकमें यह जाय। यह निश्चय ही महान् तेजस्वी जान पड़ता है। वहाँ जाकर अपनी इच्छाके अनुसार कामनाएँ पूर्ण करे।' (किन्हीं अन्य प्राणियोंको देखकर) 'इन व्यक्तियोंने दान करनेका नियम बना लिया था। अनेक प्रकारके प्राणी इनका अभिवादन करते थे। अतः ये स्वर्गमें जायँ।' (किसी औरके प्रति) 'यह परम कुशल पुरुष है। इससे जनताकी आवश्यकता पूरी होती थी। समस्त हित-साधनमें यह संलग्न रहता था। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला यह प्राणी सबके लिये आदरका पात्र था। इसने ब्राह्मणोंको पृथ्वी दान की है।' अतः स्वर्गमें जाय और वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। इसके बाद अपने अनुयायियोंके साथ ब्रह्माजीके लोकमें स्थान पावे। इस श्रेष्ठ मानवकी अनेक प्रकारके [illegible] सेवा होनी चाहिये। इसका स्थान अक्षय और अमर होगा। महर्षिगण इसका आदर करेंगे।'

(किसी अन्य पुरुषको देखकर) 'यह प्राणी सबीके लिये अतिथिरूपमें रहता आया है। सब इन्द्रियाँ इसके अधीन हैं। यह सम्पूर्ण प्राणियोंपर कृपा करता था। प्रातः [illegible] अभि-[illegible] दान करनेमें इसकी प्रवृत्ति थी। [illegible] भोजन कर लेते थे, तब यह अन्न ग्रहण करता था। [illegible] ! तुम्हें इसको [illegible] चाहिये। [illegible] कर रहा है।'

[illegible] दान किये [illegible] हैं। [illegible]

प्रशंसनीय उत्तम गुणोंको सहनेमें असमर्थ हैं, कुत्सित एवं कठोर बातें कहते हैं तथा मनमें मूर्खता भरी रहती है, वे अधम मनुष्य बन्धन एवं नरकमें पड़ते हैं। इसके बाद पशु-योनि तथा कीड़े एवं पक्षी आदिकी अनेक योनियोंमें जन्म पानेके वे अधिकारी हैं।

इनके अतिरिक्त जगत्में जो दोषपूर्ण कार्य करते हैं तथा सभी प्राणियोंसे द्वेष करना जिनका स्वभाव बन गया है, वे पापकर्मा प्राणी बहुत दिनोंतक भयंकर नरकमें पड़े रहते हैं। जब नरककी अवधि पूरी हो जाती है तो वे फिर मनुष्यकी योनि प्राप्त करते हैं। उसमें भी किन्हींका शरीर क्षीण, कोई विकृत पेट आदिसे युक्त होते हैं। किन्हींके सिर और अङ्गोंमें व्रण, कोई अङ्ग-हीन अथवा वातके रोगी होते हैं, किन्हींकी आँखोंसे सदा आँसू गिरता रहता है तथा किन्हींको स्त्रीका अभाव, अथवा पत्नी होनेपर भी संतानका अभाव रहता है, या अपने समान सुन्दर लक्षणवाली संतान न मिलकर नटखट, कुरूप, विकारवान् पुत्रादि मिलते हैं तथा वे आँखोंसे भी हीन होते हैं।

यमराज कहते हैं—'दूतो! जो चोरी करनेमें तत्पर रहते हैं, वे पशुओं अथवा मनुष्योंके शरीर प्राप्त करें और सदा व्यग्र रहें। जो धर्म-शीलादिसे सम्पन्न एवं शुभ लक्षणवाले व्यक्तिकी अवहेलना करते हैं, उन्हें हजारों वर्षोंतक नरकयातनामें डाल दो।' फिर नरक-यन्त्रणाके बाद भी ये व्यक्ति निर्लज्ज, चितकबरे अङ्गवाले, दुर्बलगात्र, स्त्रीके अधीन, स्त्रीके समान वेषवाले, स्त्रीमें सदा आसक्त, स्त्रियोंकी प्रभुतासे बड़े बननेवाले, स्त्रीके लिये ही प्राप्त पदार्थपर अवलम्बित, केवल स्त्रीको देवता माननेमें उद्यत, स्त्रीके नियम एवं वेषके अनुसार स्वयं बन जानेवाले अथवा उन्हींकी भावना लेकर संसारमें उत्पन्न होते—जन्म पाते हैं। (अध्याय २०१—३)

कर्मविपाक-निरूपण

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! अब मैं धर्मराज और चित्रगुप्त-संवादका एक दूसरा प्रसङ्ग कहता हूँ, आप उसे सुनें। चित्रगुप्त धर्मराजसे कह रहे थे—'यह मनुष्य स्वर्गमें जाय, यह प्राणी वृक्षकी योनिमें जन्म ले, यह पशुकी योनिमें जाय और इस प्राणीको मुक्त कर दिया जाय। इस व्यक्तिको उत्तम गति प्राप्त होनी चाहिये। इसे अपने पिता-पितामहप्रभृति पूर्वजोंसे मिलना चाहिये। फिर वे दूसरे दूतोंसे कहने लगे—'महान् पराक्रमी वीरो! यह व्यक्ति सदा धर्मसे विमुख रहा है। इसने साध्वी स्त्रीका परित्याग किया है। इसके पास पुत्र-पौत्र भी नहीं हैं, अतः इसे रौरव नरकमें फेंक दो।'

'ये सभी बड़े धर्मात्मा व्यक्ति हैं। ऐसे मानव न हुए हैं और न होंगे ही। इनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। अतः बहुत शीघ्र इन्हें यहाँसे जानेके लिये कह दो। इन व्यक्तियोंने जीवनभर किसीकी निन्दा नहीं की है। सम्पत्ति अथवा विपत्ति—किसी भी स्थितिमें इन्होंने सम्पूर्ण धर्मोंका पालन किया है, अतः ये स्वर्गमें जाकर अनेक कल्पोंतक वहाँ निवास करें। यह व्यक्ति पूर्वकालमें परम धार्मिक पुरुष रहा है, पर यह स्त्रीमें अधिक आसक्त रहा, अतः कलियुगमें मनुष्यकी योनि प्राप्त करे। इसके बाद स्वर्गमें वास करनेकी सुविधा मिलेगी। यह व्यक्ति युद्धभूमिमें शत्रुको मारकर पीछे स्वयं मरा है। ब्राह्मण, गौ अथवा राष्ट्रके लिये लड़ाई छिड़ी थी। उसमें इसने प्राण-विसर्जन किये हैं। अतः तुम्हें विनयके साथ इससे निवेदन करना चाहिये कि यह व्यक्ति विमानपर चढ़कर इन्द्रकी अमरावती पुरीमें जाय और वहाँ एक कल्पतक निवास करे। उसीके समान यह भी एक धर्मात्मा पुरुष है। इस परम भाग्यशाली प्राणीने निरन्तर धर्मका पालन

धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ तथा
र्ण ज्ञाता हैं । विभो !
न मिल गया, इससे हम
न्तःकरण परम शुद्ध हो
ह देश भी सब ओरसे
आप अपने मनोरथकी

रे मर्मज्ञ हैं । धर्मराजकी
में जो उन्होंने कहा, वह
वही मैं तुमसे कहूँगा ।

! आपका शासन धर्मके
म, तप, शान्ति और धैर्यसे
मनमें एक महान् संदेह
आप बतानेकी कृपा करें ।
शय यह है कि 'प्राणी
धर्म और तपस्या करनेके
है तथा उसकी क्या विधि
सारमें अतुलनीय श्री, कीर्ति,
दुर्लभ सनातन पद तक प्राप्त
कुछ लोग जीवनभर क्लेश
आ जाते हैं ? आप तत्त्वपूर्वक
रनेकी कृपा कीजिये ।'

पोधन ! मै विस्तारके साथ वे
आप उन्हें सुनें । अधर्मियोंके
हुआ है । यहाँ पापी मानव ही
होत्र नहीं करता; संतानहीन
हित है, ऐसा मनुष्य मरकर
जो वेदोंके पारगामी विद्वान्
उनकी आयु सौ वर्षोंकी हो
स्वामीकी आज्ञाका नियमसे पालन
...ते हैं, वे कभी नरकमें

नहीं आते । जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, स्वामीमें श्रद्धा रखते हैं, हिंसा नहीं करते, यत्नसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, जो इन्द्रियनिग्रही एवं ब्राह्मणभक्त हैं, वे नरकमें नहीं आते । जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं तथा जो पुरुष एक पत्नीव्रतका पालन करनेवाले, शान्तस्वभाव, परायी स्त्रीसे विमुख, सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने समान माननेवाले तथा समस्त जीवोंपर कृपा करनेमें उद्यत रहते हैं, ऐसे मनुष्य अन्धकारसे आवृत एवं पापियोंसे भरे हुए इस नरकसंज्ञक देशमें नहीं आते हैं ।

इसी प्रकार जो द्विज ज्ञानी हैं, जिन्होंने साङ्गोपाङ्ग विद्याका अध्ययन कर लिया है, जो जगत्से उदासीन रहते हैं तथा जिन व्यक्तियोंने स्वामीके लिये अपने प्राणोंको होम दिया है, जो संसारमें सदा दान करते एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं तथा जो माता-पिताकी भली प्रकार सेवा करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते । जो प्रचुर मात्रामें तिल, गौ और पृथ्वीका दान करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते, यह निश्चित है । जो शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करते-कराते और चातुर्मास्य एवं आहिताग्नि-व्रतका नियम पालन तथा मौनव्रतका आचरण करते हैं, जो सदा स्वाध्याय करते हैं तथा शान्त स्वभाववाले एवं सभ्य हैं, ऐसे द्विज यमपुरीमें आकर मेरा दर्शन नहीं करते । जो जितेन्द्रिय व्यक्ति पर्वसे भिन्न समयमें केवल अपनी ही स्त्रीके पास जाते हैं, वे भी नरकमें नहीं जाते । ऐसे ब्राह्मण तो साक्षात् देवता बन जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है । जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं, जो किसीसे कुछ आशा नहीं रखते और अपनी इन्द्रियोंको सदा वशमें रखते हैं, वे इस घोर स्थानपर कभी नहीं आते ।

नारदजीने पूछा—सुव्रत ! कौन-सा दान श्रेष्ठ है और कैसे पात्रको दान देनेसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है अथवा कौन-सा ऐसा श्रेष्ठ कर्म है, जिसका सम्पादन करनेपर प्राणी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ?

स्वर्गमें सुख भोगनेका सुअवसर प्रदान करो। इसके पश्चात् यह मर्त्यलोक-निवासी किसी उत्तम कुलमें सर्वप्रथम जन्म पायगा। यह दयालु पुरुष दस हजार वर्षोंतक देवताओंके समान सुखपूर्वक स्वर्गमें विराजमान रहे, इसके बाद यह मनुष्यकी योनिमें जन्म पाये और सभी इसका सम्मान करें।' (किसी अन्यके विषयमें) 'यह वही व्यक्ति है, जिसने छाता, जूता और कमण्डलु बार-बार दान किये हैं, इसकी तुमलोग पूजा करो। जिस देशमें हजारों सभा-मण्डप हैं, उस देशमें विद्याधर बनकर यह चार महापद्म वर्षोंतक निरन्तर निवास करे।'

नचिकेताने कहा—विप्रो ! चित्रगुप्तद्वारा कथित एक अन्य महत्त्वकी बात बतलाता हूँ, उसे सुनें। वे कहते थे—'गौएँ दिव्य प्राणी हैं। इनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें सभी देवताओंका निवास है। अपने शरीरमें अमृत धारण करना और धरातलपर उसको बाँट देना इनका स्वाभाविक गुण है। ये तीर्थोंमें परम तीर्थ, पवित्र करनेवाले पदार्थोंमें परम पवित्रकर तथा पुष्टिकारकोंमें परम पुष्टिप्रद हैं। इनसे प्राणी शुद्ध हो जाता है। अतएव प्राचीन समयसे गौओंके दानकी परम्परा चली आ रही है। इनके दहीसे समस्त देवता, दूधसे भगवान् शंकर, घृतसे अग्निदेव तथा खीरसे पितामह ब्रह्मा तृप्तिका अनुभव करते हैं। इनके पञ्चगव्यके प्राशनसे अश्वमेधयज्ञका पुण्य प्राप्त होता है। गौके दाँतोंमें मरुद्गण, जिह्वामें सरस्वती, खुरके मध्यमें गन्धर्व, खुरोंके अग्रभागमें नागगण, सभी सन्धियोंमें साध्यगण, आँखोंमें चन्द्रमा एवं सूर्य, ककुद (मौर)में सभी नक्षत्र, पूँछमें धर्म, अपानमें अखिल तीर्थ, योनिमें गङ्गा नदी तथा अनेक द्वीपोंसे सम्पन्न चारों समुद्र, रोमकूपोंमें ऋषि-समुदाय, गोमयमें पद्मा लक्ष्मी, रोएँमें समस्त देवतागण तथा इनके चर्म और केशोंमें उत्तर एवं दक्षिण—दोनों अयन निवास करते हैं। इतना ही नहीं, धृति-कान्ति, पुष्टि-तुष्टि-वृद्धि, स्मृति-मेधा-लज्जा, वपु, कीर्ति, विद्या, शान्ति, मति और संतति —ये सब गौओंके पीछे चलती हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जहाँ गौओंका निवास है, वहीं सारा जगत्, प्रधान देवता, श्री-लक्ष्मी तथा ज्ञान एवं धर्म—ये सभी निवास करते हैं।* (अध्याय २०५-२०६)

दान-धर्मका महत्त्व

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! नारदजी यद्यपि परम सात्त्विक पुरुष हैं, किंतु उनके मनमें कलह देखनेकी भी इच्छा रहती है। इसी प्रकार वे एक बार कौतूहलवश घूमते हुए धर्मराजकी सभामें पधारे, जहाँ उनका राजाने बड़ा स्वागत किया। फिर उन्होंने नारदजीसे कहा—'द्विजवर ! आप यहाँ मेरे बड़े सौभाग्यसे पधारे हैं। महामुने !

* दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां तु सरस्वती। खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु तु पन्नगाः ॥
सर्वसन्धिषु साध्याश्च चन्द्रादित्यौ तु लोचने। ककुदे तु नक्षत्राणि लाङ्गूले धर्म आश्रितः ॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रावे जाह्नवी नदी। नानाद्वीपसमाकीर्णाश्चत्वारः सागरास्तथा ॥
ऋषयो रोमकूपेषु गोमये पद्मधारिणी। रोम्णि वसन्ति देवाश्च त्वक्केशेष्वयनद्वयम् ॥
स्थैर्यं धृतिश्च कान्तिश्च पुष्टिर्वृद्धिस्तथैव च। स्मृतिर्मेधा तथा लज्जा वपुः कीर्तिस्तथैव च ॥
विद्या शान्तिर्मतिश्चैव संततिः परमा तथा। गच्छन्तमनुगच्छन्ति ह्येता गां नात्र संशयः ॥

कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ तथा ... वेदविद्या एवं इतिहासके पूर्ण ज्ञाता हैं। विभो! आप यहाँ पधारे और हमें दर्शन मिल गया, इससे हम सभी पवित्र हो गये। हमारा अन्तःकरण परम शुद्ध हो गया। मुनिवर! यही नहीं, यह देश भी सब ओरसे पुनीत हो गया। भगवन्! अब आप अपने मनोरथकी बात कहें।'

प्रियो! नारदजी धर्मके पूरे मर्मज्ञ हैं। धर्मराजकी उक्त बात सुनकर प्रश्नके रूपमें जो उन्होंने कहा, वह भी एक महान् गूढ़ विषय है। वही मैं तुमसे कहूँगा।

नारदजी बोले—भगवन्! आपका शासन धर्मके अनुसार होता है। आप सत्य, तप, शान्ति और धैर्यसे सम्पन्न हैं। सुव्रत! मेरे मनमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, उसे आप बतानेकी कृपा करें। सुरोत्तम! मेरे संशयका विषय यह है कि 'प्राणी किस व्रत, नियम, दान, धर्म और तपस्या करनेके प्रभावसे अमरत्व प्राप्त करता है तथा उसकी क्या विधि है? बहुतसे महात्मा तो संसारमें अतुलनीय श्री, कीर्ति, महान् फल तथा परम दुर्लभ सनातन पद तक प्राप्त कर लेते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग जीवनभर क्लेश भोगकर मरनेपर नरकमें आ जाते हैं? आप तत्त्वपूर्वक ये सभी विषय स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिये।'

धर्मराजने कहा—तपोधन! मैं विस्तारके साथ वे सभी बातें बता रहा हूँ; आप उन्हें सुनें। अधर्मियोंके लिये नरकका निर्माण हुआ है। यहाँ पापी मानव ही आते हैं। जो अग्निहोत्र नहीं करता; संतानहीन है और भूमिदानसे रहित है, ऐसा मनुष्य मरकर नरकमें आता है। जो वेदोंके पारगामी विद्वान् ... पुरुष हैं, उनकी आयु सौ वर्षोंकी हो ... मानव स्वामीकी आज्ञाका नियमसे पालन ... सत्य भाषण करते हैं, वे कभी नरकमें नहीं आते। जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, स्वामीमें श्रद्धा रखते हैं, हिंसा नहीं करते, यत्नसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, जो इन्द्रियनिग्रही एवं ब्राह्मणभक्त हैं, वे नरकमें नहीं आते। जो स्त्रियाँ पतिव्रता हैं तथा जो पुरुष एक पत्नीव्रतका पालन करनेवाले, शान्तस्वभाव, परायी स्त्रीसे विमुख, सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने समान माननेवाले तथा समस्त जीवोंपर कृपा करनेमें उद्यत रहते हैं, ऐसे मनुष्य अन्धकारसे आवृत एवं पापियोंसे भरे हुए इस नरकसंज्ञक देशमें नहीं आते हैं।

इसी प्रकार जो द्विज ज्ञानी हैं, जिन्होंने साङ्गोपाङ्ग विद्याका अध्ययन कर लिया है, जो जगत्‌से उदासीन रहते हैं तथा जिन व्यक्तियोंने स्वामीके लिये अपने प्राणोंको होम दिया है, जो संसारमें सदा दान करते एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहते हैं तथा जो माता-पिताकी भली प्रकार सेवा करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते। जो प्रचुर मात्रामें तिल, गौ और पृथ्वीका दान करते हैं, वे नरकमें नहीं जाते, यह निश्चित है। जो शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करते-कराते और चातुर्मास्य एवं आहिताग्नि-व्रतका नियम पालन तथा मौनव्रतका आचरण करते हैं, जो सदा स्वाध्याय करते हैं तथा शान्त स्वभाववाले एवं सभ्य हैं, ऐसे द्विज यमपुरीमें आकर मेरा दर्शन नहीं करते। जो जितेन्द्रिय व्यक्ति पर्वसे भिन्न समयमें केवल अपनी ही स्त्रीके पास जाते हैं, वे भी नरकमें नहीं जाते। ऐसे ब्राह्मण तो साक्षात् देवता बन जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं, जो किसीसे कुछ आशा नहीं रखते और अपनी इन्द्रियोंको सदा वशमें रखते हैं, वे इस घोर स्थानपर कभी नहीं आते।

नारदजीने पूछा—सुव्रत! कौन-सा दान ... है और कैसे पात्रको दान देनेसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है अथवा कौन-सा ऐसा श्रेष्ठ कर्म है, जिसका सम्पादन करनेपर प्राणी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा पाता ...

किस दानकी ऐसी महिमा है, जिसके परिणामस्वरूप प्राणी सुन्दर रूप, धन, धान्य, आयु तथा उत्तम कुल प्राप्त कर सकता है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

धर्मराज बोले—देवर्षे ! दानकी विधियाँ तथा उनकी गतियाँ अगणित हैं, जिसे कोई सौ वर्षोंमें भी बता पानेमें असमर्थ है। फिर भी मनुष्य जिसके प्रभावसे उत्कृष्ट फल प्राप्त करते हैं, उसे संक्षेपमें बताता हूँ। तपस्या करनेसे स्वर्ग सुलभ होता है, तपस्यासे दीर्घ आयु और भोगकी वस्तुएँ मिलती हैं। ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य, सम्पत्ति—ये सभी तपस्यासे प्राप्त होते हैं। केवल मनमें संकल्प कर लेनेमात्रसे कोई भी सुख-भोग प्राप्त नहीं हो जाता। मौनव्रत पालन करनेसे अव्याहत आज्ञा-शक्ति प्राप्त होती है। दान करनेसे उपभोगकी सामग्रियाँ तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। अहिंसाके फलस्वरूप सुन्दर रूप तथा दीक्षा ग्रहण करनेसे उत्तम कुलमें जन्म मिलता है। फल और मूल खाकर निर्वाह करनेवाले प्राणी राज्य एवं केवल पत्तेके आहारपर अवलम्बित व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त करते हैं। पयोव्रत करनेसे स्वर्ग तथा गुरुकी सेवामें रत रहनेसे प्रचुर लक्ष्मी प्राप्त होती है। श्राद्ध, दान करनेके प्रभावसे पुरुष पुत्रवान् होते हैं। जो उचित विधिसे दीक्षा लेते अथवा तृण आदिकी शय्यापर शयन करके तप करते हैं, उन्हें गौ आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें त्रिकाल स्नानका अभ्यासी है, वह ब्रह्मको प्राप्त करता है। केवल जल पीकर तपस्या करनेवाला अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है*। सुव्रत ! यज्ञशाली पुरुष स्वर्ग तथा उपहार पानेका अधिकारी है। जो दस वर्षोंतक विशेष रूपसे जल पीकर ही तपस्यामें तत्पर रहते हैं तथा लवण आदि रासायनिक पदार्थोंका सेवन नहीं करते, उन्हें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। मांस-त्यागी व्यक्तिकी संतान दीर्घायु होती है। चन्दन और मालासे रहित तपस्वी मानव सुन्दर स्वरूप-वाला होता है। अन्नका दान करनेसे मानव बुद्धि और स्मरणशक्तिसे सम्पन्न होता है। छाता दान करनेसे उत्तम गृह, जूतादानसे रथ तथा वस्त्र-दान करनेसे सुन्दर रूप, प्रचुर धन एवं पुत्रोंसे प्राणी सम्पन्न होते हैं। प्राणियोंको जल पिलानेसे पुरुष सदा तृप्त रहता है। अन्न और जल—दोनोंका दान करनेके प्रभावसे प्राणियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो सुगन्धित फूलों एवं फलोंसे लदे हुए वृक्ष ब्राह्मणको दान करता है, वह सब प्रकारकी उपयोगी वस्तुओंसे भरा गृह प्राप्त करता है। सुन्दरी स्त्रियाँ और अमूल्य रत्न उस गृहमें परिपूर्ण रहते हैं। अन्न, वस्त्र, जल और रस प्रदान करनेसे व्यक्तिको दूसरे जन्ममें वे सभी सुलभ होते हैं। जो ब्राह्मणोंको धूप और चन्दन दान करता है, वह अगले जन्ममें सुन्दर तथा नीरोग होता है। जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको अन्न तथा सभी उपकरणोंसे युक्त गृह दान करता है, उसे जन्मान्तरमें बहुतसे हाथी, घोड़े और स्त्री-धन आदिसे परिपूर्ण उत्तम महल निवास करनेके लिये प्राप्त होते हैं। धूप प्रदान करनेसे मानवको गोलोकमें तथा वसुओंके लोकमें रहनेका

* ज्ञानविज्ञानमारोग्यं रूपसौभाग्यसम्पदः। तपसा प्राप्यते भोगा मनसा नोपदिश्यते॥
एवं प्राप्नोति दुर्भेन मौनेनाज्ञां महामुने। उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम्॥
अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। फलमूलाशिनो राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्॥
पयोभक्षा दिवं यान्ति [illegible] द्रविणाढ्यता। गुरुशुश्रूषया नित्यं श्राद्धदानेन सन्ततिः॥
[illegible] तु या तृणशायिनः। स्नानं त्रिषवणाद् ब्रह्म स्वतः पीतेऽश्नीत्यभाक्॥
(भविष्यपु० २०७। १८-२२)

.. अध्याय २१७में भी प्रसंग होता है।

[illegible] पुरुष होता है। [illegible] हृष्ट-पुष्ट [illegible] दान करनेसे प्राणी स्वर्गमें जाता है और वहाँ उसे [illegible] [illegible] होनेतक [illegible] सुख-भोग प्राप्त होता है। [illegible] दान करनेसे नेत्र एवं [illegible] तथा [illegible] [illegible] स्फूर्ति और शरीरमें कोमलता उत्पन्न होती है। [illegible] दान करनेसे प्राणी दूसरे जन्ममें अनेक प्रकारके [illegible] सदा तृप्त रहता है। दीपक दान करनेसे [illegible] नहीं होता तथा [illegible] दान करनेवाले

[illegible] शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। खीचड़ी दान करनेसे कोमलता और सौभाग्य प्राप्त होता है। फल दान करनेवाला व्यक्ति पुत्रवान् तथा भाग्यशाली होता है। [illegible] दान करनेसे दिव्य विमान तथा दर्पणोंका दान करनेसे प्राणी उत्तम भाग्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं। डरे हुए प्राणीको अभय प्रदान करनेसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय २००)

पतिव्रतोपाख्यान

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—मुने! इसी बीच [illegible],* शिलोञ्छ-वृत्ति स्वाध्यायवती तपस्वी ब्राह्मणों- [illegible] आने उससे जाने देखकर यमराज अत्यन्त उदास हो गये। [illegible]! इतनेमें ही वहाँ विमानपर सवार होकर अपने पतिदेवके साथ एक परम तेजस्विनी [illegible] भी आ गयी। उसके साथमें बहुत-से अनुचर, तथा परिकर-परिच्छद भी विराजमान थे। उस प्रियदर्शना देवीके आगमनकालमें नगाड़े आदि वाद्योंकी विपुल ध्वनि होने लगी। जीवमात्रपर अनुग्रह रखनेवाली उस देवीको धर्म- [illegible] पूर्ण जानकारी थी। उसके सारे प्रयासमें धर्मराजका हित भरा था। इस प्रकार साधन-सम्पन्न वह शुभाङ्गना विमानपर बैठे-बैठे ही धर्मराजको तपस्वियोंसे ईर्ष्या न करने तथा उनके प्रति सद्भाव रखनेका परामर्श देकर एवं उनसे पूजित हो आकाशमें अदृश्य हो गयी—जैसे बिजली बादलमें समा जाती है। इस अवसरपर धर्मराजके द्वारा सुपूजित उस [illegible] [illegible]दजीने पूछा—'राजन्! [illegible] कहकर [illegible] देवी [illegible] है।

इसका रूप बड़ा दिव्य है। अनुपम भाग्योंसे शोभा पानेवाले राजन्! मैं इस रहस्यको जानना चाहता हूँ। क्योंकि इससे मेरे मनमें महान् आश्चर्य हो रहा है। अतः इसे संक्षेपमें बतानेकी कृपा करें।'

धर्मराजने कहा—देवर्षे! मैंने जिस देवीकी पूजा की है, उसकी कथा परम सुखद है। उसे मैं आपके सामने विस्तारसे स्पष्ट करता हूँ। तात! पूर्व कल्पके सत्ययुगकी बात है—निमि नामसे प्रसिद्ध एक महान् तेजस्वी, सत्य-वादी एवं प्रजापालक राजा थे। उनके पुत्र मिथि हुए। केवल पितासे जन्म होनेके कारण जनताने उनका नाम जनक रख दिया। उनकी पत्नीका नाम 'रूपवती' था। वह निरन्तर अपने पतिके हितमें तत्पर रहती थी। पतिकी आज्ञाका पालन करना, उनमें अपार श्रद्धा-भक्ति रखना तथा शुभ कर्मोंमें लगे रहना उसका स्वाभाविक गुण था। स्वामीके वचनानुसार अत्यन्त प्रसन्नताके साथ वह कार्यमें तत्पर रहती थी। महाराज मिथि भी महान् तपस्वी, सत्यके समर्थक तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें ही अपने सारे समयका उपयोग करते थे। वे श्रम एवं धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करते थे। उनके

[illegible] १।४, औतसूत्र २४।२१) आदि वचनानुसार शिल आदि [illegible] वराह तथा अन्यपुराणोंमें एवं पाणिनि ३।२।१७६, [illegible] [illegible]र्थमें प्रयुक्त है। पाणि० ३।१।२के अनुसार [illegible] who like Janaka lived in [illegible]

* [illegible] सामर्थ्य आसंस्तेऽचान्य श्राग्यं समस्त-

...की बात सुनकर राजा मिथिने मधुर वचनोंमें ...प्रिये! पहलेके ही समान यहाँ भी सम्पत्तिका ... सकता है। सुन्दरि! बहुत संनिकट, पासमें ...की व्यवस्था हो सकती है। और चार मनुष्योंके ...कर यहाँ किंचिन्मात्र भी असुविधा नहीं ...। महादेवि! देखो, यह घर है। यहाँ किसी ... बाधा नहीं आ सकती है।' इतना कहनेके ... राजा अपनी पत्नीके साथ उस क्षेत्रका शोधन ...लगे। इधर सूर्य जब आकाशके मध्यभागमें चले ...र उनका उग्र ताप फैल गया, तब रानी सहसा प्यास-...कुल हो गयी। उस तपस्विनीको भूख भी सताने लगी। ...पैरके कोमल तलवे ताँबेके समान लाल हो गये। ... कारण वे संतप्त हो उठे। अब उस देवीने ...त व्यथित होकर पतिदेवसे कहा—'महाराज! मैं ...से पीड़ित होकर प्याससे व्याकुल हो गयी हूँ। ...न्! कृपापूर्वक मुझे शीघ्र जल देनेकी व्यवस्था ...।' उस समय देवी रूपवती दुःखसे अत्यन्त संतप्त ...के कारण अपनी सुध-बुध खो चुकी थी। अतः ...पृथ्वीपर पड़ गयी। उसी अवस्थामें उसके नेत्र सूर्यपर ... गये। गिरते समय उसके मनमें क्रोधका भाव भी ... गया था और उसकी दृष्टि स्वतः सूर्यपर पड़ ...गी थी। फिर तो आकाशमें रहते हुए भी भगवान् ...थरथर भयसे काँप उठे। उन महान् तेजस्वी देवको ...आकाश छोड़कर धरातलपर आ जानेके लिये विवश हो ...जाना पड़ा। इस प्रकृतिविरुद्ध बातको देखकर राजा ...जनकने कहा—'तेजस्विन्! आप आकाशमण्डलका ...त्याग करके यहाँ कैसे पधारे हैं? आप परम तेजस्वी ...देवता हैं। सभी व्यक्तियोंके द्वारा आपका अभिवादन ...होता है। मैं आपका क्या स्वागत करूँ?'

राजा मिथिसे सूर्यने विनयपूर्वक कहा—'राजन्! यह ...पतिव्रता सुन्दरी अत्यन्त क्रुद्ध हो गयी थी, अतएव मैं आकाश-...से आपके ...

भूमण्डलमें, स्वर्गमें, अथवा तीनों लोकोंमें इसके समान कोई भी ऐसी पतिव्रता स्त्री दृष्टिगोचर नहीं होती है। इसमें असीम शक्ति है। इसके तप, धैर्य, निष्ठा एवं पराक्रम एक-से-एक आश्चर्यकर हैं। इसके अन्य गुण भी प्रशंसनीय हैं। महाभाग! इसका चित्त भी आपके चित्तका सदा अनुसरण करता है। सुपात्र व्यक्तिका सुपात्रसे सम्बन्ध हो जाय—इसमें उसके पुण्यका महान् फल समझना चाहिये। आप दोनों शची एवं इन्द्रके समान सर्वथा एक दूसरेके अनुरूप हैं। राजन्! आपकी अभिलाषा किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये। महाराज! यदि भोजनके उचित प्रबन्धके लिये आपके मनमें खेतीका कार्य उत्तम प्रतीत होता है तो इसे अवश्य करें। इस विचारका व्यक्ति आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। आपका यह प्रयास सफल, यश देनेवाला तथा अभिलाषा पूर्ण करनेवाला होगा।'

ऐसा कहकर भगवान् सूर्यने उनके लिये जलसे भरे हुए एक पात्रका निर्माण किया। फिर वह पात्र, एक जोड़ा जूता तथा दिव्य अलङ्कारोंसे अलङ्कृत एक छाता—ये सभी वस्तुएँ उन्होंने उन राजा मिथिको दीं। भगवान् भास्करने यह भी बतला दिया कि यह इस स्त्रीके ही पुण्यकर्मका फल है। रानी रूपवती जल पाकर तृप्त हुई। वे अब सचेत और अभय हो गयीं। फिर वे इस आश्चर्यको देखकर राजासे बोलीं—'राजन्! किसने यह स्वच्छ एवं शीतल जल दिया है और ये दिव्य छत्र और उपानह् किसने दिये हैं? तपोधन! आप बतानेकी कृपा करें।'

राजा जनक बोले—महादेवि! ये विश्वके प्रधान देवता भगवान् विवस्वान् हैं, जो तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये गगन-मण्डलसे यहाँ आये हैं, इन्होंने ही ये सब पदार्थ दिये हैं।

राजा मिथिसे यह वचन सुनकर रानी रूपवतीने कहा—'प्राणनाथ ! इन सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये मैं क्या करूँ ? आप इनकी अभिलाषा जाननेका प्रयत्न करें।' राजा जनक महान् तेजस्वी पुरुष थे। रानीके यह कहनेपर उन्होंने भगवान् सूर्यके सामने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आपका मैं कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' राजाकी प्रार्थनापर भगवान् भास्करने कहा—'मानद ! मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि स्त्रियोंसे मुझे कभी कोई भय न हो।'

राजा मिथि सबका सम्मान करनेमें कुशल व्यक्ति थे। रानी रूपवती उनके हृदयको सदा आह्लादित रखती थीं। भुवनभास्करकी बात सुननेके उपरान्त राजाने अपनी स्त्रीसे सारा प्रसङ्ग सुना दिया। उनके वचन सुनकर मनको प्रसन्न करनेमें परम कुशल रानी आनन्दसे उठी। अतः उस देवीने अपना उद्गार प्रकट किया—'देव ! अपनी तीव्र किरणोंसे रक्षाके लिये आपने छत्र दान किया, साथ ही एक दिव्य जलपात्र दिया। ये दो उपानह् (जूते) पैरोंको सकुशल रखनेके लिये दिये हैं। ये सभी परम आवश्यक वस्तुएँ हैं। महाभाग ! आपने जैसा वर माँगा है, वैसा ही होगा। आपको स्त्रियोंसे किसी प्रकारका भय नहीं करना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें आप स्वतन्त्र हैं।'

यमराजने कहा—'विप्र ! यही इस स्त्रीकी कथा है, और तबसे इस प्रकारकी पतिव्रताओंको मैं प्रणाम तथा नमन करता हूँ।'

(अध्याय २०८)

पतिव्रताके माहात्म्यका वर्णन

नारदजी बोले—धर्मराज ! मैं जानना चाहता हूँ कि तपोधना स्त्रियाँ किस कर्म अथवा तपसे सर्वोत्तम गति पानेकी अधिकारिणी बन सकती हैं ? आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

यमराजने उत्तर दिया—उत्तम सुव्रत द्विजवर ! वैसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये नियम और तप कोई भी उपयोगी साधन नहीं है। महामुने ! उपवास, दान अथवा देवार्चन भी यथेष्ट गति प्रदान करनेमें असमर्थ है। यह स्थिति जिस प्रकारसे सुलभ हो सकती है, वह संक्षेपसे बताता हूँ, सुनें। जो स्त्री अपने पतिके सो जानेपर सोती और उसके जगनेके पूर्व ही स्वयं निद्रा त्याग देती है तथा पति [illegible] भोजन करती है, उसकी मृत्यु [illegible] है— सत्य है। द्विजवर [illegible] मौन रहती और [illegible] भी [illegible]

तपोधन ! जिसकी दृष्टि एकमात्र पतिपर ही पड़ती है, जिसका मन सदा पतिमें ही लगा रहता है तथा जो स्वामीकी आज्ञाका निरन्तर पालन करनेमें तत्पर रहती है, उस पतिव्रतासे हम सब लोग एवं अन्य सभी भय मानते हैं। जो स्वामीके वचनोंपर श्रद्धा रखती है और कभी भी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती, उस साध्वीकी संसारमें परम शोभा होती है। देवतालोग भी उसका सम्मान करते हैं। द्विजवर ! जो एकान्त स्थानमें भी किसी अन्य पुरुषका ध्यान नहीं करती, उसे 'पतिव्रता' कहते हैं। ऐसी स्त्रीको मृत्युका भय नहीं रहता। जो सदा स्वामीके हित-साधनमें संलग्न रहती [illegible] अभय रहती है। धर्मनन्दन ! जो स्त्री [illegible] सदा अनुराग करती है, वह मृत्युके [illegible]।

[illegible] ! जो भी पतिके जिनमें [illegible] माता, पिता, भाई [illegible]

...न देखता है, सदा पतिकी शुश्रूषामें संलग्न है, उसपर मेरा कोई शासन सफल नहीं होता। ...के ध्यान और उनके अनुसरण-अनुगमनके अतिरिक्त ...का एक क्षण भी व्यर्थचिन्तनमें नष्ट नहीं होता है, ...ह साध्वी है। मैं उसके सामने हाथ जोड़ता ...जो स्वामीके विचारके बाद अपना अनुकूल विचार ...करती है, उस पतिव्रताको मृत्युका आभास नहीं ...ना पड़ता। दृश्य, गीत और वाद्य—ये प्रायः ...देखने एवं सुननेके विषय हैं, किंतु जिस स्त्रीके ...तथा कान इनपर नहीं जाते हैं, बल्कि पतिकी ...में ही निरन्तर लगे रहते हैं, वह मृत्युके दरवाजेको ...नहीं देखती। जो स्नान करने, स्वच्छन्द बैठने अथवा ...संवारनेके समय मनसे भी किसी दूसरे व्यक्तिपर ...ष्टि नहीं डालती, उसे मृत्युका दरवाजा नहीं देखना ...ड़ता। द्विजवर! पति देवताकी आराधना कर रहा ...हो अथवा भोजनमें संलग्न हो, उस समय भी जो चित्तसे ...सदा उसीका चिन्तन करती रहती है, उसे मृत्युका ...द्वार नहीं देखना पड़ता। तपोधन! जो स्त्री सूर्योदयके पूर्व ही नित्य उठकर घरको बुहारने—साफ करनेमें उद्यत रहती है, उसकी दृष्टि मृत्युके फाटकपर नहीं पड़ती। जिसके नेत्र, शरीर और भाव सदा सुसंयत रहते हैं तथा जो अपने शुद्ध आचार एवं विचारसे सदा संयुक्त रहती है, उस साध्वी स्त्रीको मृत्युका दरवाजा नहीं देखना पड़ता। जो स्वामीके मुखको देखने, उसके चित्तका अनुसरण करने अथवा उसके हितमें अपना समय सार्थक करनेमें तत्पर रहती है, उसके सामने मृत्युका भय नहीं आता।

'द्विजवर! संसारमें यशस्वी मनुष्योंकी ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं, जो स्वर्गमें निवास करती हैं और जिनका देवतालोग भी दर्शन करते हैं। वही पतिव्रता मेरे सामने विराजमान थी। भगवान् सूर्यके द्वारा पतिव्रताकी यह महिमा सुननेका मुझे अवसर मिला था। विप्रवर! उन्हींकी कृपासे ये सभी गोपनीय रहस्यभरी बातें यथावत् मेरे कर्णगोचर हो गयीं। तभीसे मैं पतिव्रताओंको देखकर उनकी भक्तिभावसे पूजा करता हूँ। (अध्याय २०१)

कर्मविपाक एवं पापमुक्तिके उपाय

नारदजी कहते हैं—'यशस्विन्! आपने भगवान् सूर्यके मतानुसार पतिव्रता स्त्रियोंके उत्तम धर्मोंका रहस्यात्मक उपाख्यान कहा, जिसे मैंने बड़े ध्यानसे सुना। किंतु सभी प्राणियोंसे सम्बद्ध कर्मफलों (सुख-दुःखों)के विषयमें जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। महात्मा! मैं उसे सुनना चाहता हूँ, कृपया उसे कहें। जो मनुष्य दुःख और तापसे संतप्त होकर सुखके लिये कठोर तपस्या तो करते हैं, पर उनके मनोरथ पूर्ण होते नहीं दीखते। वे सब प्रकारके सांसारिक प्रिय तथा अप्रियको त्यागकर सुखके लिये अनेक व्रत एवं उपायका आचरण करते हैं, फिर भी सफल नहीं होते हैं, किसी-न-किसी प्रकार विफल कर दिये जाते हैं। लोकमें यह श्रुति प्रसिद्ध है कि धर्मके आचरणसे कल्याण होता है, पर देखा यह जाता है कि भलीभाँति कठोर तप करनेवाले भी क्लेशके भागी बन जाते हैं। यह क्यों? कौन इस (उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज) चार प्रकारके भूतग्रामवाले जगत्का संचालन करता है? धर्मात्मन्! कौन किस ढंगके कारण मनुष्यकी बुद्धिको पापकी ओर प्रेरित कर देता है? वह कौन है, जो इस लोकमें सुख तथा अत्यन्त कठोर दुःख भी उत्पन्न करता है?'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर महामना धर्मराजने कहा—'आपने जो यह पुण्यमय प्रश्न -

राजा मिथिसे यह वचन सुनकर रानी रूपवतीने कहा—'प्राणनाथ ! इन सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये मैं क्या करूँ ? आप इनकी अभिलाषा जाननेका प्रयत्न करें।' राजा जनक महान् तेजस्वी पुरुष थे। रानीके यह कहनेपर उन्होंने भगवान् सूर्यके सामने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आपका मैं कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?' राजाकी प्रार्थनापर भगवान् भास्करने कहा— 'मानद ! मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि स्त्रियोंसे मुझे कभी कोई भय न हो।'

राजा मिथि सबका सम्मान करनेमें कुशल व्यक्ति थे। रानी रूपवती उनके हृदयको सदा आह्लादित रखती थीं। भुवनभास्करकी बात सुननेके उपरान्त राजाने अपनी स्त्रीसे सारा प्रसङ्ग सुना दिया। उनके वचन सुनकर मनको प्रसन्न करनेमें परम कुशल रानी आनन्दसे [illegible] उठी। अतः उस देवीने अपना उद्गार प्रकट किया— 'देव ! अपनी तीव्र किरणोंसे रक्षाके लिये आपने छत्र दान किया, साथ ही एक दिव्य जलपात्र दिया। ये दो उपानह् (जूते) पैरोंको सकुशल रखनेके लिये [illegible] दिये हैं। ये सभी परम आवश्यक वस्तुएँ हैं। अतः महाभाग ! आपने जैसा वर माँगा है, वैसा ही होगा। आपको स्त्रियोंसे किसी प्रकारका भय नहीं करना चाहिये। अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें आप स्वतन्त्र हैं।'

यमराजने कहा—'विप्र ! यही इस स्त्रीकी कथा है, और तबसे इस प्रकारकी पतिव्रताओंको मैं पूजन तथा नमन करता हूँ।'

(अध्याय २०८)

पतिव्रताके माहात्म्यका वर्णन

नारदजी बोले—धर्मराज ! मैं जानना चाहता हूँ कि तपोधना स्त्रियाँ किस धर्म अथवा तपसे सर्वोत्तम गति पानेकी अधिकारिणी बन सकती हैं ? आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें।

यमराजने उत्तर दिया—उत्तम सुव्रत द्विजवर ! वैसी स्थिति प्राप्त करनेके लिये नियम और तप कोई भी उपयोगी साधन नहीं है। महामुने ! उपवास, दान अथवा देवार्चन भी यथेष्ट गति प्रदान करनेमें असमर्थ हैं। यह स्थिति जिस प्रकारसे सुलभ हो सकती है, वह संक्षेपसे बतलाता हूँ, सुनें। जो स्त्री अपने पतिके सो जानेपर सोती और उसके जगनेके पूर्व ही स्वयं निद्रा त्याग देती है तथा पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती है, उसकी मृत्युपर विजय हो जाती है—यह सत्य है। द्विजवर ! जो स्त्री पतिके मौन होनेपर मौन रहती और उसके आसन ग्रहण कर लेनेपर स्वयं भी बैठ जाती है, वह मृत्युको पराजित कर सकती है। तपोधन ! जिसकी दृष्टि एकमात्र पतिपर ही पड़ती है, जिसका मन सदा पतिमें ही लगा रहता है तथा जो स्वामीकी आज्ञाका निरन्तर पालन करनेमें तत्पर रहती है, उस पतिव्रतासे हम सब लोग एवं अन्य सभी भय मानते हैं। जो स्वामीके वचनोंपर श्रद्धा रखती है और कभी भी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती, उस साध्वीकी संसारमें परम शोभा होती है। देवतालोग भी उसका सम्मान करते हैं। द्विजवर ! जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्षमें भी किसी अन्य पुरुषका ध्यान नहीं करती, उसे 'पतिव्रता' कहते हैं। ऐसी स्त्रीको मृत्युका भय नहीं रहता। जो सदा स्वामीके हित साधनमें संलग्न रहती है, वह अभय रहती है। नारदजी ! जो पतिव्रता पतिकी आज्ञाका सदा अनुसरण करती है, वह मृत्युके द्वारा जीती नहीं जा सकती।

यमराजने कहा—द्विजवर ! जो स्त्री पतिके विषयमें यह विचार करती है कि यही मेरे लिये माता, पिता, भाई

सकी पूर्ण जानकारी है अथवा जान लेनेपर प्रमाद नहीं कर बैठता, उसीको सनातनपद ा है। गुण, अवगुण, क्षय एवं अक्षयको जो जानता है तथा ध्यानके प्रभावसे जिसका ट्र हो गया है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता संसारके सभी आकर्षणों एवं प्रलोभनोंकी दास होकर शुद्ध जीवन व्यतीत करता है वस्तुओंमें जिसका मन नहीं लुभाता एवं संयममें रखकर प्राणोंका त्याग करता है, पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। अपने जिसकी श्रद्धा है, जिसने क्रोधपर विजय प्राप्त है, जो दूसरेकी सम्पत्ति नहीं लेना चाहता सीसे द्वेष नहीं करता, वह मनुष्य सभी पापोंसे छूट है। जो गुरुकी सेवामें सदा संलग्न रहता है, भी किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करता है तथा जो वृत्तिका आचरण नहीं करता, वह मनुष्य सभी पापोंसे जाता है। जो प्रशस्त धर्म-कर्मोंका आचरण करता है निन्दित कर्मोंसे दूर रहता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता जो अपने अन्तःकरणको परम शुद्ध करके तीर्थोंमें ग करता है तथा दुराचरणसे सदा दूर रहता है, वह स्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको कर भक्तिभावसे भर उठता और समीप जाकर प्रणाम ता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है।

नारदजी बोले—परंतप! जो सम्पूर्ण प्राणियोंके ये कल्याणप्रद, हितकर एवं परम उपयोगी है, उसका र्णन आपके द्वारा भलीभाँति सम्पन्न हो गया। प्रभो! त्यार्थदर्शी व्यक्तियोंको सम्यक् प्रकारसे इसका पालन अवश्य करना चाहिये। आपकी कृपासे मेरा संदेह दूर हो गया। महाभाग अब आप योगकी अपेक्षा कोई छोटा उपाय जो पापको दूर कर सके, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि आप योगधर्मसे सम्बद्ध साधन पहले कह चुके हैं। पापको दूर करना महान् कठिन कार्य है। अतः कोई दूसरा ऐसा साधन बतायें जिससे जगत्‌में सुखप्राप्तिका लक्ष्य सिद्ध करनेके लिये विशेष प्रयास करना पड़े। इस लोक अथवा परलोकमें भी जो आत्मजयी व्यक्ति हैं तथा अनेक प्रकारके गुणोंकी जिनमें अधिकता है, वे सज्जन नित्य जिस साधनको काममें लेते हैं, मैं उसे जानना चाहता हूँ। महान् तपस्वी प्रभो! अनेक योनियोंमें प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है और उनसे अशुभ कर्म बने रहते हैं। अतः उनको दूर करनेके लिये कोई सरल सुगम उपाय हो तो बतायें।

यमराजने कहा—मुने! स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रजाजनके स्रष्टा हैं। इस धर्मके विषयमें उन्होंने जिस प्रकारका वर्णन किया है, वही मैं उन्हें प्रणाम करके व्यक्त करता हूँ। प्राणियोंका कल्याण तथा पापोंका विनाश ही इसका प्रधान उद्देश्य है। हाँ, क्रिया करना परम आवश्यक है, उसे कहता हूँ, सुनें। कैवल्यके प्रति श्रद्धालु बननेपर मनुष्यको ज्ञान होता है। जो व्यक्ति अपने अन्तःकरणको परमशुद्ध करके धर्मसे ओतप्रोत यह प्रसङ्ग सुनता है, उसकी सभी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा पापोंसे छूटकर वह इच्छानुसार सुख प्राप्त कर सकता है।

(ब्रह्माजीके कहे हुए उपदेशप्रद वचन ये हैं—) शिशुमारचक्र उनका ही स्वरूप है। जो मनुष्य उनके इस रूपकी प्रतिमा बनाकर अपने शरीरमें भावना करके प्रयत्नपूर्वक उसका अर्चन एवं अभिवादन करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और उस व्यक्तिका उद्धार हो जाता है। अपने उदरमें स्थित उसके स्वरूपका दर्शन करनेसे मन, वाणी तथा कर्मसे जो कुछ भी पाप बन गया है, वह दूर हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। जब उस चक्रमें स्थित सोम एवं गुरु आदि सभी ग्रहोंकी वह मानसिक प्रदक्षिणा तथा ध्यान करता है तो मानव अनेक पापोंसे मुक्त हो जाता है।

है, मैं उसका उत्तर देता हूँ, आप उसे ध्यान देकर सुनें। मुनिवर! इस संसारमें न कोई कर्ता दीखता है और न करनेकी प्रेरणा देनेवाला ही दृष्टिगोचर होता है। जिसमें कर्म प्रतिष्ठित है—जिसके अधीन कर्म है, जिसके नामका कीर्तन होता है, जिससे जगत् आदेशित होता है—प्रेरणा पाता है तथा जो कार्यका सम्पादन करता है, उसके विषयमें कहता हूँ, सुनिये। भगवन्! एक समय इस दिव्य सभामें बहुतसे महर्षि विराजमान थे। वहाँ जो (विचार-विमर्श हुआ और) मैंने जैसा देखा-सुना, उसे ही कहता हूँ। तात! मानव जिसे अपनी शक्तिसे स्वयं करता है, वही उसका स्वकर्म प्रारब्ध बनकर (परिणामरूपमें) भोगनेके लिये उसके सामने आ जाता है, चाहे वह सुकृत हो या दुष्कृत—सुख देनेवाला हो या दुःख देनेवाला। जो संसारके थपेड़ों (दुःखादि द्वन्द्वोंसे) पीड़ित हों, उन्हें चाहिये कि अपनेसे अपना उद्धार करें, क्योंकि मनुष्य अपने-आप ही अपना शत्रु और बन्धु है[1]। जीव अपने-आपका पहलेका किया हुआ कर्म ही निश्चित रूपसे इस संसारमें सैकड़ों योनियोंमें जन्म लेकर भोगता है। यह संसार सर्वथा सत्य है—ऐसी धारणा बन जानेके कारण वह आवागमनमें सर्वत्र भटकता है। प्राणी जो कुछ कर्म करता जाता है, वह उसके लिये संचित हो जाता है। फिर पुरुषका पाप-कर्म जैसे-जैसे क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे ही उसे शुभ बुद्धि प्राप्त होती जाती है। दोषयुक्त व्यक्ति शरीरधारी होकर संसारमें जन्म पाता है। जगत्‌में गिरे हुए प्राणियोंके बुरे कर्मका अन्त हो जानेपर शुद्ध बुद्धि या ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है। प्राणीको पूर्वशरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली शुभ अथवा अशुभ बुद्धि प्राप्त होती है। पुरुषके स्वयं उपार्जित किये हुए दुष्कृत एवं सुकृत दूसरे जन्ममें अनुरूप सहायक बनते हैं। पापका अन्त [होनेपर] क्लेश शान्त हो जाता है। फलस्वरूप प्राणी धर्ममें लग जाता है।

इस प्रकार मनुष्य जब सत्कर्मका फल और दुष्कर्मका अशुभ फल भोग लेता है, तब [उसके] विस्तृत कर्ममें निर्मलता आ जाती है और सद्[धर्ममें] उसकी प्रतिष्ठा होने लगती है। शुभ कर्मोंके फल[स्वरूप] उसे स्वर्ग मिलता तथा अशुभ कर्मोंसे वह नरकमें [जाता] है। वस्तुतः न तो दूसरा कोई किसी दूसरेको कुछ [देता] है और न कोई किसीका कुछ छीनता ही है।

नारदजीने पूछा—यदि ऐसा ही नियम है [कि] अपना ही किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म सा[मने] आता है और शुभसे अभ्युदय तथा अशुभसे [पतन] होता है तो प्राणी मन, वाणी, कर्म या तपस्या—इनमेंसे किसकी सहायता ले, जिससे वह इस संसार[के] क्लेशसे बच सके, आप उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

यमराजने कहा—मुनिवर! यह प्रसङ्ग अशुभों[को] भी शुभ बनानेवाला, परम पवित्र, पुण्यस्वरूप त[था] पाप एवं दोषका सदा संहारक है। अब मैं उन जगत्[के] जगदीश्वरको, जिनकी इच्छासे संसार चलता है, प्रणाम कर आपके सामने इसका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। चर और अचर संपूर्ण प्राणियोंसे सम्पन्न इस त्रिलोकका जिन्होंने सृजन किया है, वे आदि, मध्य एवं अन्तसे रहित हैं। देवता और दानव—किन्हींमें यह शक्ति नहीं है कि उन्हें जान सकें। जो समस्त प्राणियोंमें समान दृष्टि रखता है, वह वेद-तत्त्वको जाननेवाला सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसकी आत्मा वशमें है, जिसके मनमें सदा शान्ति विराजती है तथा जो ज्ञानी एवं सर्वज्ञ है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मका सार अर्थ एवं प्रकृति तथा पुरुषके

[1] तुलनीय गीता—६। ५।

ब्रह्मचारी मनुष्यका कर्तव्य है कि पूर्वकी ओर प्रवाह बहानेवाली नदीमें जाय और नाभिमात्र जलमें खड़ा होकर स्नान करे। फिर काले तिलसे मिश्रित सात अञ्जलि जलसे तर्पण करे। साथ ही तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। फलस्वरूप इसके जीवनपर्यन्तके पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य कमलके छिद्ररहित पत्तेमें जल रखकर सम्पूर्ण रत्नोंके सहित उससे तीन बार स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है*।

मुने! मैं आपसे एक दूसरे अत्यन्त गोपनीय उपायका वर्णन करता हूँ। कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी प्रबोधिनी एकादशी तिथिके व्रतसे भुक्ति और मुक्ति—ये दोनों सुलभ हो जाती हैं। मुनिवर! यह भगवान् विष्णुके व्यक्त और अव्यक्त रूपकी मूर्ति है, जो मर्त्यलोकमें आयी है। इसकी उपासना करनेवालेके करोड़ों जन्मोंके अशुभ नष्ट हो जाते हैं। प्राचीन समयकी बात है—भगवान् श्रीहरि वराहके रूपमें पधारे थे। ऐसे अवसरपर सम्पूर्ण संसारके कल्याणके विचारसे पृथ्वीदेवीने एकादशीको ही हृदयमें रखकर पूछा था।

धरणीने कहा—प्रभो! यह कलियुग प्रायः सभीके लिये भयानक है। इसमें मनुष्य सदा पापमें ही संलग्न रहते हैं। गुरु, ब्राह्मणका धन हड़प लेना और उनका वधतक लोगोंके लिये साधारण-सी बात हो जाती है। भगवन्! कलियुगके लोग गुरु, मित्र और स्वामीके प्रति वैर रखनेमें तत्पर रहते हैं। परायी स्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध करनेमें भी वे लोक-परलोकका भय नहीं करते। सुरेश्वर! दूसरेकी सम्पत्तिपर अधिकार जमाना, अभक्ष्य-भक्षण कर लेना तथा देवता एवं ब्राह्मणकी निन्दा करना उनका स्वभाव बन जाता है। प्रायः कलियुगके लोग दाम्भिक एवं मर्यादाहीन होते हैं। कुछ लोग तो अनीश्वरवादी तक बन जाते हैं। इसमें मनुष्य निन्दित दान लेने और अगम्यागमनमें रुचि रखनेवाले होते हैं। विभो! वे ये तथा इनके अतिरिक्त भी अनेक पाप करते हैं, उनका श्रेय कैसे हो

* गावः पवित्रा मङ्गल्या देवानामपि देवताः। यस्ताः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पञ्चगव्यं तु यः पिबेत्। यावज्जीवं कृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते ॥
लाङ्गलोत्क्षिप्ततं तोयं मूर्ध्ना गृह्णाति यो नरः। सर्वतीर्थफलं प्राप्य स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
ब्राह्मणस्तु सदा स्नातो भक्त्या परमया युतः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
उदयाद्रिःसुतं सूर्यं भक्त्या परमया युतः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
दध्यक्षताञ्जलीभिस्तु त्रिभिः पूजयते शुचिः। तस्य भानुः स संदह्य दूरीकुर्यात् सदा द्विज ॥
यावकं दधिमिश्रं तु पात्रे औदुम्बरे स्थितम्। सोमाय पौर्णमास्यां हि दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥
अरुंधतीं ध्रुवं चैव तथा सर्वान् महामुनीन्। अभ्यर्च्य वेदविधिना तेभ्यो दत्त्वा च यावकम् ॥
द्विजं शुश्रूषते यस्तु तर्पयित्वातिभक्तितः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते ॥
त्रिपुरेषु च योगेषु शुचिर्दत्त्वा पयो नरः। तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
दक्षिणावर्तसव्येन कृत्वा प्राक्स्रोतसं नदीम्। कृत्वाऽभिषेकं विधिवत् ततः पापात् प्रमुच्यते ॥
दक्षिणावर्तशङ्खेन कृत्वा चैव करे जलम्। शिरसा तद् गृहीत्वा तु विप्रो हृष्टमनाः शुचिः ॥
तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। प्राक्स्रोतसं नदीं गत्वा नाभिमात्रजले स्थितः ॥
स्नात्वा कृष्णतिलैर्मिश्रा दद्यात् सप्ताञ्जलीर्नरः। प्राणायामत्रयं कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। अच्छिद्रपद्मपत्रेण सर्वरत्नोदकेन तु ॥
त्रिधा यस्तु नरः स्नायात् सर्वपापैः प्रमुच्यते।

(वराहपु० २११। ८—११, १३, १४ ...)

शुक्र, बुध, शनैश्चर तथा मङ्गल—ये सभी बलवान् ग्रह हैं। चन्द्रमाका सौम्य रूप है। हृदयमें इन ग्रहोंकी भावना करके जब मनुष्य प्रदक्षिणा एवं ध्यान करता है, तब उसके पापका सदाके लिये शोधन हो जाता है। उस समय पुरुषको ऐसी शुद्धता प्राप्त हो जाती है, मानो शरद् ऋतुका चन्द्रमा हो। सौ बार प्राणायाम करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। मुने! मनुष्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक शुद्ध होकर जघन-स्थानमें स्थित चन्द्रमाका दर्शन तथा नमन करे। इसके फलस्वरूप समस्त पापोंसे वह मुक्त हो सकता है। 'शिशुमारचक्र' एक सौ आठ अक्षरोंसे सम्पन्न है। इसे जलमें भिगोकर स्वयं भी आर्द्र हो ध्यान करना चाहिये। चन्द्रमा और सूर्य—ये दोनों स्वयं स्वच्छ देवता हैं। आ[...] प्रकाशमान ये दोनों जब परस्पर एक दूसरे[...] हों, उस समय हृदयमें इनका ध्यान करना [...] इससे सदाके लिये पाप शमन हो जाता है। म[...] मानव इस प्रकारकी कल्पना करे कि ये श्रीहरि हैं[...] मारचक्रमय वामनरूपमें अवतीर्ण हुए तथा इन्हों[...] वराहका रूप धारण कर जलपर दर्शन दिया था औ[...] की दाढ़पर पृथ्वी शोभा पा रही थी तथा ये ही [...] रूपमें अवतीर्ण हुए थे। जल या दुग्धके आहारपर [...] उनकी आराधना करे। इससे उसका सम्पूर्ण पापोंसे [...] हो जाता है। जो विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम कर[...] वह भी सभी पापोंसे छूट जाता है। (अध्याय [...]

पाप-नाशके उपायका वर्णन

ऋषिपुत्र नचिकेता कहते हैं—विप्रो! धर्मराजकी इस प्रकारकी शुभ वाणी सुनकर नारदजीने भक्ति एवं भावसे पूर्ण पुनः उनसे यह वचन कहा।

नारदजी बोले—महाबाहो! धर्मराज! आप मेरे पिताके समान शक्तिशाली हैं तथा स्थावर एवं जङ्गम—सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान व्यवहार करते हैं। आपने अबतक द्विजातियोंके हितके लिये मुझसे सरल उपाय बताया है, अब कृपया औरोंके लिये भी उपाय बतायें।

यमराजने कहा—गौओंकी बड़ी महिमा है। वे परम पवित्र, मङ्गलमयी एवं देवताओंकी भी देवता हैं। उनकी सेवा करनेवाला पापोंसे मुक्त हो जाता है। शुभ मुहूर्तमें उनके पञ्चगव्यके पानसे मनुष्य तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाता है। उनकी पूँछसे गिरे जलको जो सिरपर चढ़ाता है, वह धन्य हो जाता है। उनको प्रणाम करनेवाला भी सभी तीर्थोंका फल प्राप्तकर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसलिये मनुष्यको गौओंकी सेवा अवश्य करनी चाहिये। उदयकालीन सूर्य, अरुन्धती, ध्रुव तथा सभी सप्तर्षियोंकी वैदिक विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। वैसे ही दहीसे [...] हुआ अक्षत उन्हें भी अर्पित करनेका विधान है। [...] ही मनको एकाग्र करके हाथ जोड़े हुए जो मानव [...] प्रणाम करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण [...] नष्ट हो जाते हैं। जो शूद्र व्यक्ति ब्राह्मणकी सेवा क[...] उन्हें तृप्त करता तथा भक्तिके साथ यत्नपूर्वक प्रणाम [...] है, वह पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। विषुवे[...] अर्थात् जिस दिन रात और दिनका मान बराबर [...] उस दिन जो पवित्र होकर दूधका दान करता [...] उसका जन्मभरका किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट [...] जाता है। जो मनुष्य पूर्वाग्र कुशा बिछाकर उसपर [...] को खड़ा करके दान देता है और ब्राह्मणोंको साथ ले[...] उसे प्रणाम करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जा[...] है। पूर्वकी ओर बहनेवाली नदीमें स्वच्छ होकर प्रदक्षि[...] क्रमसे विधिवत् अभिषेक करनेपर मनुष्य पापमुक्त हो जा[...] है। जो ब्राह्मण पवित्र होकर प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा[...] शङ्खसे हाथमें जल लेकर उसे सिरपर धारण करता है, [...] उसके जन्मभरके किये पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं।•[...]

• दक्षिणावर्त शङ्खके विषयमें पाठकोंकी जिज्ञासा प्रायः आती है। इस विषयमें शास्त्रोंमें कदाचित् उल्लेख है। [...] अतः वे स्कन्दपुराणके ये वचन निम्नरूपमें उद्धृत हैं।

[illegible] अत्यन्त थी। कुछ लोग शाक खाकर रहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ लोग घोर तपस्वी एवं [illegible] थे। उनका यह कथन था कि जन्म लेने और मरने-के अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछ बात नहीं है—वे ही [illegible] दुहराते थे। उनके मनमें संसारसे सदा भय बना रहता था। अतः सावधान होकर उक्त नियमोंका सदा पालन करते थे। उद्दालककुमार नचिकेतामें भी धर्मकी [illegible] थी। इन तपस्वी व्यक्तियोंको देखकर उनके मनमें [illegible] हुआ और फिर उनके द्वारा सदा धर्मका चिन्तन होने लगा। मनका विषय अमित वेदार्थ, शुद्धस्वरूप श्रीहरि तथा चिन्मय भगवद्विग्रह रह गया। फिर तो धर्मात्मा नचिकेता सावधान होकर शुद्ध तपस्याके मार्गपर ही आरूढ हो गये।

राजन्! इस उत्तम उपाख्यानके प्रभावसे भगवान्में श्रद्धा उत्पन्न होती है। इसे जो सुनेगा अथवा सुनायेगा, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी।

(अध्याय २११–१२)

गोकर्णेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीन समयकी बात है, जब तारकामय नामक घोर देवासुर-संग्राम हुआ था। उस उग्र युद्धमें देवता और दानव—दोनोंकी सेनामें एक-से-एक शूरवीर थे। युद्धके अन्तमें देवताओंने दानवोंकी सेनाको परास्त कर दिया था और इन्द्र फिरसे स्वर्गके सिंहासनपर प्रतिष्ठित हो गये। तीनों लोकोंके चर-अचर प्राणियोंमें सुख-शान्ति व्याप्त हो गयी। उन्हीं दिनों पर्वतराज मेरुके एक सुरम्य शिखरपर जिसको विविध रत्न सब ओरसे शोभा बढ़ा रहे थे और जहाँ-तहाँ विद्रुममणिकी खान भी थी, एक विशाल चमकता दिव्य आसनके रूपमें आस्तृत था। उस आसनपर ब्रह्माजी चित्तको एकाग्र करके सुखपूर्वक बैठे थे। एक दिन सनत्कुमारजी वहाँ आये और आते ही उन्होंने पितामहको प्रणाम किया और [illegible] इस प्रकार पूछा।

सनत्कुमारजीने पूछा—भगवन्! तपके जाननेवालोंमें आप श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मन्! मैं आपके श्रीमुख-से गोकर्णेश्वरका उत्तम पुराण सुनना चाहता हूँ। पिताजी! उत्तरगोकर्ण, दक्षिणगोकर्ण* और शृङ्गेश्वर—ये तीनों लिङ्ग कब उत्पन्न कहे जाते हैं। इनकी कैसे और क्यों प्रतिष्ठा हुई है? भगवान् शंकर मृगका रूप धारण करके वहाँ क्यों विराजते हैं? प्रमुख देवता लोग वहाँ कैसे निवास करते हैं? शंकरके मृगरूप होनेका क्या कारण है? तथा उनके विग्रहकी प्रतिष्ठा किस समय हुई है?

ब्रह्माजी बोले—वत्स! यह पुराण एक रहस्यपूर्ण विषय है। मैंने जैसा सुना है, उसके अनुसार यथार्थ तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो। गिरिराज मन्दराचलके परम पवित्र उत्तर भागमें 'मुञ्जवान्' नामसे प्रसिद्ध एक शिखर है, जिसकी शोभाको नन्दन नामक उपवन बढ़ाता रहता है। वहाँके साधारण पत्थर भी हीरा एवं स्फटिकमणिके समान हैं और कुछ (मूँगे)के सदृश लाल बालुकाओंसे सुशोभित हैं, कुछ अन्य शिलाखण्ड नीले और कुछ स्वच्छ भी हैं। वहाँ स्थान-स्थानपर श्रेष्ठ गुफाएँ तथा पानीके झरने हैं। उस पर्वतराजके सभी शिखर विचित्र फूलोंसे भरे हैं। विविध फल-फूलोंसे लदे उस शिखरकी शोभा अत्यन्त मनमोहक है। वहाँ देवतागण अपनी स्त्रियोंके साथ विहार करते रहते हैं। डालियोंपर कूजनेवाले मतवाले पक्षी उस पर्वत प्रान्तको मुखरित एवं सुशोभित करते रहते हैं। वहाँ उपवनोंमें बड़ी कचनार फूले हैं, बड़ी दाख और [illegible]

* [illegible] १०९ तथा पृ० ३११। उत्तरगोकर्ण भी दो हैं:—नेपालके पशुपतिनाथ तथा [illegible]
[illegible]

भगवान् वराहने उत्तर दिया—'भगवान् विष्णुकी सर्वोत्कृष्ट शक्तिने कलियुगके नाना प्रकारके घोर पापोंमें रत मनुष्योंके कल्याणके लिये ही एकादशीका रूप धारण किया था। इसलिये सभी मासोंके दोनों पक्षोंकी एकादशीको व्रत करना चाहिये। इससे मुक्ति सुलभ होती है। एकादशीके दिन अन्न नहीं खाना चाहिये। पूर्णरूपसे उपवास कर व्रत रहना चाहिये। यदि विशेष कारणसे पूर्ण उपवास सम्भव न हो तो नक्तव्रत* करे। मनुष्यको प्रबोधिनी एकादशीका व्रत तो अवश्य ही करना चाहिये। सोम-मङ्गलवार तथा पूर्व एवं उत्तर-भाद्रपद नक्षत्रोंके योगमें इस एकादशीका महत्त्व करोड़ गुणा बढ़ जाता है। उस दिन स्वर्णकी प्रतिमा बनवाकर भगवान् विष्णुकी तथा उनके दस अवतारोंकी भी विधिवत् पूजा करनेका विधान है। प्रबोधिनीकी महिमा हजारों मुखसे नहीं कही जा सकती। हजारों जन्मकी शिवोपासनासे प्राप्त होनेवाली वैष्णवता विश्वमें सर्वाधिक दुर्लभ वस्तु है, अतएव विद्वान् पुरुष प्रयत्न-पूर्वक विष्णुभक्त बननेकी चेष्टा करे†। इसके पाठसे दुःस्वप्न एवं सभी भय नष्ट हो जाते हैं।

यमराज कहते हैं—'मुने! उत्तम व्रतके पालनमें सदा तत्पर रहनेवाली महाभागा धरणीने जब भगवान् वराहकी यह बात सुनी तो वे जगत्प्रभुकी विधिवत् आराधना करके उनमें लीन हो गयीं।

नारदजी कहते हैं—'धर्मराज! आप सम्पूर्ण धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने जो यह दिव्य कथा कही है, यह धर्मसे ओतप्रोत है। अतः मैं भी आपद्वारा निर्दिष्ट धर्ममार्गकी व्याख्यासे संतुष्ट हो गया। अब मैं यथाशीघ्र उन लोकोंमें जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे मनमें आनन्दकी अनुभूति होती है। महाराज! आपका कल्याण हो।'

नचिकेता कहते हैं—'विप्रो! इस प्रकार कहकर मुनिवर नारदने वहाँसे प्रस्थान किया। वे मुनिवर अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र विचरनेमें समर्थ हैं। जाते समय आकाश उनके तेजसे प्रकाशित हो गया, मानो वे दूसरे सूर्य हों। धर्मराज धर्मपर विशेष आस्था रखते हैं। मुनिके जानेके बाद उन्होंने फिर बड़ी प्रसन्नतासे मुझे प्रणाम किया और आदर-सत्कारपूर्वक यह प्रिय वचन कहा—'सुव्रत! अब आप भी यहाँसे पधार सकते हैं।' उस समय शक्तिशाली धर्मराजकी अन्तरात्मा प्रसन्नतासे भर चुकी थी। विप्रो! मैंने भी उन धर्मराजकी उत्तम पुरीमें देखी-सुनी अपनी जानकारीकी सभी बातें आपलोगोंको सुना दीं।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! वे सभी ब्राह्मण तपको अपना धन मानते थे। नचिकेताकी इन बातोंको सुनकर उनके मनमें प्रसन्नता छा गयी और उनकी आँखें आश्चर्यसे भर गयी थीं। उनमें कुछ मुनि तथा विप्र ऐसे थे, जिनकी देशान्तर-भ्रमणमें विशेष रुचि थी। ऐसे ही अन्य ब्राह्मण वनमें निवास करनेके विचारसे आये थे। कुछ ब्राह्मण शालीन (यायावर) एवं कपोती वृत्तिके समर्थक थे। कितने ऐसे ब्राह्मण थे, जिनके मुखसे यह शुभ वाणी निकलती रहती थी कि सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करना कल्याणकर है। वे सभी बार-बार नचिकेताको धन्यवाद दे रहे थे। उनमेंसे कुछ ब्राह्मण शिल एवं उञ्छ‡ वृत्तिवाले थे, कुछ महान् तेजस्वी ब्राह्मणोंने काष्ठवृत्तिको अपनाया था। सबकी विधियाँ भिन्न-भिन्न थीं। कुछ लोग सदा आत्म-चिन्तनमें व्यस्त रहते थे। कितने विप्रोंने मौन-व्रत तथा जलशयन-व्रतको धारण कर लिया था। कुछ लोग ऊपर मुख करके सोते थे तथा कुछ ब्राह्मणोंका मृगके समान इधर-उधर स्वच्छन्द विचरण करनेका नियम था। कितने ब्राह्मण पञ्चाग्नि-व्रती तथा कुछ ब्राह्मण केवल पत्तेके आहारपर रहते थे। कुछ ब्राह्मणोंकी जीवन-यात्रा केवल जल अथवा कितनोंकी

* पृष्ठ ११९ की टिप्पणी देखिये।

† दुर्लभं वैष्णवत्वं हि त्रिषु लोकेषु सुन्दरि। जन्मान्तरसहस्रेषु समाराध्य वृषध्वजम्॥
वैष्णवत्वं लभेत् कश्चित् सर्वपापक्षये सति। (वराहपुराण २११। ८७-८८)

‡ फसल कटनेके बाद पृथ्वीपरसे अन्न चुनकर जीविका चलाना 'शिल' एवं 'उञ्छ' वृत्ति है।

मुनि स्वयं ऋषिसे यह वचन कहा—'विप्रवर ! वर माँगो। महामुने ! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलषित हो, वह सभी मैं देनेके लिये उद्यत हूँ । अतः तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो ।'

राजन् ! जब भगवान् शंकरने उन मुनिवर नन्दीसे इस प्रकार कहा, तब उनका अन्तःकरण प्रसन्नतासे भर गया और उन्होंने भगवान् शंकरसे कहा— 'प्रभो ! मुझे प्रभुत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, लोकपालत्व, अपवर्ग, अणिमादि आठों सिद्धियाँ, ऐश्वर्य, या गाणपत्य—इनमेंसे एक भी पदार्थ नहीं चाहिये। देवेश्वर ! आप कल्याण-स्वरूप हैं और अपने भक्तोंके कल्याण करनेमें सदा संलग्न रहते हैं, अतः यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सुरेश्वर ! आप कृपापूर्वक मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें। महेश्वर ! आपके अतिरिक्त अन्य किसी देवतामें मेरी भक्ति न हो और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाले आपमें ही भक्ति सदा स्थिर रहे—यही मेरी सच्ची हार्दिक अभिलाषा है, जिसके फलस्वरूप मैं आपके लिये सदा तपमें संलग्न रह सकूँ और मेरे इस कार्यमें विघ्न न उपस्थित हो । मैं रात दिन आपका ही नाम जपता रहूँ, मैं यही चाहता हूँ ।'

राजन् ! विप्रवर नन्दीकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरके मुखपर हँसी छा गयी । वे प्रसन्न होकर मधुर वाणीमें नन्दीसे कहने लगे—'विप्रर्षे ! उठो । पुत्र ! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ । महाभाग ! तुमने बड़े शुद्ध-चित्तसे भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है । तपोधन ! तुम्हारी तपस्यासे मुझे परम संतोष हुआ है । बस ! तुम मेरी आराधनामें दत्तचित्तसे निरन्तर लगे रहे । रुद्रोंके समक्ष तुमने मेरे लिये तीन करोड़ जप किये हैं। महामुने ! पूरे एक हजार वर्षोंतक तुमने तीव्र तपस्या की है । ऐसी तपस्या आजसे पहले किसी भी देवता, दानव अथवा ऋषिने नहीं की है । तुम्हारा किया हुआ यह अत्यन्त कठिन तप महान् आश्चर्यजनक है । इसके प्रभावसे चर और अचर प्राणियोंसे व्याप्त ये तीनों लोक अत्यन्त क्षुब्ध हो रहे हैं । तुम्हें देखनेके लिये इन्द्रके साथ सभी देवता अभी यहाँ आनेवाले हैं । सुरों और असुरोंके लिये तुम अक्षय, अव्यय तथा अतर्क्य हो । तुम्हारे शरीरसे दिव्य तेज निकल रहा है । अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत होकर तुम परम सुशोभित हो रहे हो। तुममें मुझ-जैसी ही शक्ति आ गयी है । देवता और दानव—ये सभी तुमको अद्वितीय पुरुष मानते हैं । अब तुम मेरे समान रूप धारण करोगे और तुम्हें मुझ-जैसा ही तेज प्राप्त होगा, तुम्हारे तीन नेत्र होंगे। सभी गुणोंकी तुममें प्रधानता रहेगी और देवता तथा दानव तुम्हारी आराधना करेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है । तुम इसी शरीरसे सदा अमर रहोगे। बुढ़ापा और मृत्यु तुम्हारे पास न आ सकेगी। इसको गाणेश्वरीगति कहते हैं । देवताओं-के द्वारा भी यह सदाके लिये अलभ्य है ! द्विजोत्तम ! मेरे पार्षदोंमें तुम्हारा प्रधान स्थान होगा । तुम्हें जनता 'नन्दीश्वर' कहेगी, इसमें कोई संशय नहीं है ।

'तपोधन ! तुम्हें सात्त्विक ऐश्वर्य या आठों सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और तुम मेरे ही एक दूसरे स्वरूप समझे जाओगे। देवता लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे । मुनीश्वर ! मेरी कृपासे संसारमें तुम स्वामीका पद प्राप्त करोगे । आजसे देवकार्योंमें तुम्हारी सर्वत्र प्रथम पूजा होगी और तुम मेरे पार्षदोंमें प्रधान होगे । मुझसे प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले सभी मानव भलीभाँति तुम्हारी ही अर्चना करेंगे । तुम मेरे गण बनो, मेरे द्वारपालपदपर प्रतिष्ठित हो जाओ और विषम समयमें मेरे शरीरकी रक्षा करते रहो । तीनों लोकोंमें वज्र, दण्ड, चक्र अथवा अग्नि—इनमेंसे किसीसे भी तुम्हें कोई बाधा न होगी; देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, पन्नग, राक्षस तथा जो मेरे भक्त पुरुष हैं, वे सभी तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेंगे । अब तुम्हारे संतुष्ट होनेपर मैं संतुष्ट हो जाऊँगा और तुम्हारे कुपित होनेपर मेरे मनमें भी क्रोधका आविर्भाव हो जायगा । द्विजवर ! अधिक क्या, तुमसे बढ़कर विश्वमें मेरा दूसरा कोई प्रिय है ही नहीं ।'

... निर्मल कमलोंवाले तालाब, जिनमें निर्मल जल भरा है, उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। पशु-पक्षी-नदियोंसे सनाथ और अत्यन्त शोभाशाली उद्यान-वाला वह स्थान तपस्याके लिये सर्वथा उपयुक्त है। उसे 'धर्मारण्य' कहते हैं। वहीं भगवान् 'स्थाणु महेश्वर'का स्थान है। वे प्रभु सम्पूर्ण सुरगणोंके गुरु हैं। भक्तोंपर सदा कृपा करनेवाले उन शक्तिशाली प्रभुके साथ गिरिराज-कन्या गौरी निरन्तर विराजती हैं। अपने पार्षदों और स्वामी कार्तिकेयके साथ उनका उस श्रेष्ठ पर्वतपर आसन लगा रहता है। वे देवेश्वर अजन्मा, अविनाशी और परम पूज्य हैं। उनकी सेवा करनेके विचारसे बहुत-से देवता विमानपर चढ़कर वहाँ आते हैं।

त्रेतायुगकी बात है। नन्दी नामसे विख्यात एक महान् मुनि भगवान् शंकरकी आराधना करनेकी अभिलाषासे वहाँ आकर तीव्र एवं कठिन तपस्या करने लगे। वे गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तापने और जाड़ेकी ऋतुमें पानीमें खड़ा रहकर तप करते थे। वे बिना किसी अवलम्बके खड़े होकर ऊपर हाथ उठाये तपस्या करते थे। जल, अग्नि और वायु केवल ये ही उनके सहारे थे। अनेक प्रकारके व्रतों और तपोंके नियमसे वे पूर्ण करते थे। ब्राह्मणोंमें नन्दीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे समय-समयपर जल, फल एवं अन्य उचित उपहारोंसे उन प्रभुकी अर्चना करते रहते थे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन द्विजवरने उग्र तपस्यासे अन्तेपर विजय प्राप्त कर ली थी। अन्ततः भगवान् शंकर उनपर परम प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिवर नन्दीको साक्षात् दर्शन दिया और कहा—'मुने! मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ। वत्स! अबतक तो तुम्हारे लिये मेरा रूप अदृश्य था, किंतु मैं प्रसन्न हो गया हूँ, अतः मेरा यह रूप देखो। संसारमें विद्वान् पुरुष ही मेरे इस अलौकिक एवं ओजस्वी ...

राजन्! उस समय शंकरजीके श्रीविग्रहसे ... किरणोंवाले सूर्यके समान प्रकाश फैल रहा था। वे ... पुञ्ज प्रतीत हो रहे थे। जटाएँ उनके सिरकी छवि बढ़ा ... थीं और चन्द्रमा ललाटको सुशोभित कर रहे थे। भ... शंकरके दो नेत्र परम प्रकाशमान थे तथा तीसरा नेत्र अ... समान धधक रहा था। कमलकी माला उनके ... अङ्गपर विराजमान थी। हाथमें कमण्डलु लिये हुए ... शरीरपर बाघाम्बर था। सर्पका यज्ञोपवीत धारण ... हुए थे। ऐसे भगवान् महादेवका दर्शन पाते ही मह... तपस्वी नन्दीको रोमाञ्च हो आया।

राजन्! वे प्रभु सनातन परब्रह्म परमात्माके ... रूपान्तर थे। उनका दर्शन प्राप्त होनेपर मुनिवर नन्दी... अञ्जलि बाँध ली और प्रभुकी इस प्रकार स्तुति कर... लगे—'जो स्वयं प्रकट होकर जगत्‌का धारण ए... पोषण करते हैं तथा वर देना जिनका स्वभाव है, उ... प्रभुके लिये मेरा नमस्कार है। जो 'त्रिनेत्र', 'शिव-शंकर' एवं 'भव' नामसे विख्यात हैं, संसारका संहार एवं पालन भी जिनके ऊपर निर्भर है तथा जो चर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले एवं मुनिरूप हैं, उन प्रभुके लिये नमस्कार है। जो नीलकण्ठ, भीम, भूत, भव्य, भव, प्रलम्बभुज, कराल, हरिनेत्र, कपर्दी, विशाल, मुञ्जकेश, धीमान्, शूल, पशुपति, विभु, स्थाणु, गणोंके पति, स्रष्टा, संक्षेता, भीषण, सौम्य, सौम्यतर, त्र्यम्बक, श्मशाननिवास, वरद, कपालमाली एवं 'हरितश्मश्रुधर' अभिनामोंसे सम्बोधित होते हैं, उन भगवान् रुद्रके लिये नमस्कार है। जो भक्तोंको सदा प्रिय हैं, उन परमात्मा शंकरको हमारा बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार मुनिवर नन्दीने भगवान् रुद्रकी स्तुति की और उनकी सम्यक् प्रकारसे आराधना कर सिर झुकाकर बार-बार नमस्कार किया तथा पुत्रार्थिनी ... की। भगवान्

हो चुकी है। उन्होंने वर देकर मुझे अपना पार्षद बना ही लिया है। मुझपर उनकी असीम कृपा है। निश्चय ही अब मेरे सारे कल्मष दूर हो गये। भगवान् शंकर बड़े महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने देवताओंके विषयमें मेरे सामने जो बात कही है, वह परम हितकर एवं सत्य सिद्ध हो गयी। उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं रहा। उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा था कि 'प्रिय नन्दिन्! देवर्षिलोग तुमपर प्रसन्न होकर तुम्हें देखने यहाँ पधार रहे हैं। आज परमेष्ठीद्वारा भी मैं आदर प्राप्त कर चुका। इससे मेरे हृदयमें अपार आनन्द भर गया है।'

देवताओंने कहा—'विप्रवर! नन्दिन्! हमलोग भी उन वरदायी भगवान् शंकरका दर्शन करना चाहते हैं। तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर जिन प्रभुने तुम्हें साक्षात् दर्शन दिया है, उन्हींका अवलोकन हमें भी अभीष्ट है।' इतनी बात कहनेके पश्चात् देवताओंने द्विजवर नन्दीसे पुनः पूछा—'कपाल धारण करनेवाले महाभाग महेश्वरका दर्शन हमलोग किस स्थानपर प्राप्त कर सकेंगे?'

नन्दीने कहा—'वे प्रभु तो मुझपर कृपा करके वहीं अन्तर्धान हो गये। अब मैं नहीं जानता हूँ कि वे कहाँ विराज रहे हैं। अतः वे जहाँ हों, आप सभी देवता स्वयं ही अन्वेषण कर लें।'

सनत्कुमारजीने पूछा—'भगवन्! महाभाग शंकरने नन्दीसे क्या कहा था, जिससे उन्होंने उनका पता नहीं बताया? देवेश! आप यह बात मुझे बतानेकी कृपा करें। प्रभो! भगवान् शंकरकी तो कोई भी बात गोपनीय नहीं है?'

ब्रह्माजी कहते हैं—'वत्स! शंकरने जो बातें कही हैं, उन्हें देवताओंके सामने स्पष्ट करना मेरे लिये भी उचित नहीं है। पर उन्होंने नन्दीसे जो बात कही थी, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो। भगवान् शंकरजीने कहा था—'विप्रवर! हिमालयके उस पार पृथ्वीपर एकशृङ्ग नामसे विख्यात एक सिद्ध स्थान है, जिसको अनेक वन, उपवन शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ 'श्लेष्मातक' नामका एक श्रेष्ठ सर्प निवास करता है। उसने तीव्र तपस्या की है, जिससे उसके सभी पाप भस्म हो गये हैं। इस समय उसपर अनुग्रह करना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ एक बहुत सुन्दर आश्रम है। वहीं निर्जन स्थानमें वह रहता है। उस दिव्य स्थानमें रहते हुए उसके बहुत-से वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। पवित्र पर्वतके ऊँचे शिखरपर वह स्थान है। श्लेष्मातक सर्पके निवास होनेके कारण उसीके नामसे 'श्लेष्मातक-वन' उसकी संज्ञा हो गयी है। एक समयकी बात है—मैं मृगका रूप धारणकर वहाँ विचर रहा था। मैंने देखा, देवतालोग मुझे पकड़नेके लिये प्रयास कर रहे हैं। मैं झट वहीं छिप गया। वे मुझे खोजनेमें व्यस्त हो गये। वत्स! तुम्हें यह प्रसङ्ग उन देवताओं और अप्सराओंको भी नहीं बताना चाहिये। मैंने उसे अनेक वर दिये, फिर मैं वहीं अन्तर्धान हो गया।'

(सनत्कुमारके प्रति ब्रह्माजीका कथन है —) जिस समय नन्दीको वर देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये, उस समय उनके तेजसे सभी दिशाएँ जगमगा उठी थीं। उनके पास अनेक देवता आ गये थे। उनका दिव्य शरीर द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति पूजनीय बन गया। मरुद्गणोंको साथ लेकर इन्द्र मनोगामी (इच्छानुसार चलनेवाले) रथपर बैठे और वहीं आ गये। उनके वहाँ पहुँचते ही पर्वत-भाग तेजसे चमचमाने लगे। विविध जलचर जीवोंके स्वामी वरुण वर देनेके विचारसे अपने गणोंको साथ लेकर वहाँ आये। उनका अत्यन्त तेजस्वी विमान चन्द्र एवं स्फटिकमणिके समान चमक रहा था। उस पर्वतके शिखरपर धनके स्वामी कुबेरका भी आगमन हो गया। उनका विचित्र रथ तपाये हुए सुवर्णके द्वारा निर्मित था। धनाध्यक्षके साथ बहुत-से यक्ष एवं राक्षस भी

इस प्रकार द्विजवर नन्दीको वर देकर उमापति भगवान् शंकरने प्रसन्नतापूर्वक स्वयं आकाशको गुँजानेवाली मधुर वाणीमें स्पष्टरूपसे कहा—'विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम कृतकृत्य हो गये। मरुद्गणोंके साथ समस्त देवता तुम्हारा दर्शन करनेके लिये यहाँ आ रहे हैं—ऐसा जान लो। सभी सुरसमुदाय यहाँ आकर जबतक मुझे दे लेता, इसके पूर्व ही मैं यहाँसे अन्यत्र चला जाना चा

बस, इतनी बात कहकर भगवान् शं अन्तर्हित हो गये। (अध्याय

गोकर्णमाहात्म्य और नन्दिकेश्वरको वर-प्रदान

ब्रह्माजी कहते हैं—सनत्कुमार! जब इस प्रकार कहकर भूतभावन भगवान् शंकर वहाँ अन्तर्धान हो गये तो उसी क्षण गणोंके अध्यक्ष नन्दीका शरीर परम दिव्य हो गया। वे चार भुजाओं और तीन नेत्रोंसे सम्पन्न होकर एक दिव्य स्थानपर बैठ गये। उनके विग्रहका वर्ण भी दिव्य हो गया और उससे दिव्य अगुरुकी सुगन्ध फैलने लगी। त्रिशूल, परिघ, दण्ड और पिनाक उनके हाथोंमें सुशोभित होने लगे और मूँजकी मेखला कमरकी शोभा बढ़ाने लगी। अपने तेजसे वे ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो दूसरे शंकर ही विराजमान हों। फिर भगवान् वामनकी भाँति उद्यत होकर उन्होंने अपना पैर ऐसे आगे बढ़ाया, मानो वे द्विजवर तीन डगोंमें पृथ्वीको नापनेका विचार कर रहे हों। उन्हें देखकर आकाशमें विचरनेवाले सम्पूर्ण देवताओंका मन आशङ्कित हो गया। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। अतः इन्द्रको इसकी सूचना देनेके लिये वे स्वर्गकी ओर चल पड़े। देवताओंके द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर इन्द्र तथा अन्य उपस्थित लोकपालोंको बड़ा विषाद हुआ। उनके मनमें चिन्ता व्याप्त हो गयी। उन सभीने सोचा, यह कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसने उमाकान्त भगवान् शंकरसे वर प्राप्त कर लिया है। अतः इसमें अपार शक्ति आ गयी है। अब यह श्रीमान् पुरुष तीनों लोकोंपर अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेगा। इसमें जैसा उत्साह, तेज और बल प्रतीत होता है, इससे सिद्ध होता है कि यह अवश्य कोई महान् पराक्रमी पुरुष हो यह तो देवताओंके मुख्य स्थानको भी छीन सक अतः अपने तेजके प्रभावसे जबतक यह स्वर्ग नहीं आ जाता है, इसके पूर्व ही हमलोग देनेमें कुशल भगवान् महेश्वरको प्रसन्न करनेमें हो जायँ।

मुने! इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके वे श्रेष्ठ देवता मेरे साथ 'मुञ्जवान्पर्वत'के शिखरपर गये। वहाँ जगत्के आश्रयदाता, अपार शक्ति भगवान् श्रीहरिने अपने लिये स्थान बना रखा थ जब श्रीहरिको ज्ञात हुआ कि सुरसमुदाय आ रहा तो वे दौड़कर आगे आ गये। कारण, सबके हृदय बात उन्हें विदित थी। अब उनकी कृपासे देवता और मुनियोंकी सभी बातें स्पष्ट हो गयीं। तब स भगवान् विष्णु, देवताओंके साथ मेरी दु करनेवाले नन्दीके पास पहुँच गये।

नन्दीने कहा—'ओह! आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैंने जितना परिश्रम किया है, वह आज सब सफल हो गया; क्योंकि देवताओंके अध्यक्ष इन्द्र तथा सम्पूर्ण संसारके शासक श्रीहरिके दर्शनका आज मुझे परम श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त हो गया है। आज मेरे जीवनकी साध पूरी हो गयी और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। पापोंका संहार करनेवाले भगवान् शिव शान्तस्वरूप हैं। उनकी प्रसन्नता तो मुझे प्राप्त

थे। सूर्यके समान प्रकाशमान वर्णोंवाले विमानोंसे वे आये थे। उन विमानोंकी शोभा अलौकिक थी। आते उत्तम पुष्पोंसे सुशोभित कुबेर ऐसे जान पड़ते थे, मानो दूसरे सूर्य हों। सूर्य चन्द्रमा तथा समस्त ग्रहमण्डल एवं नक्षत्रसमुद अग्निके समान तेजस्वी विमानोंपर चढ़कर आकाशसे पर्वतशिखर पर उतर आये। ग्यारह रुद्रों और बारह सूर्योंका भी वहाँ आगमन हो गया। दोनों अश्विनीकुमार उस महान् मुञ्जवान् पर्वतपर पधारे। विश्वेदेव, साध्यगण और तेजस्वी मरुद्गण भी आये। विशाख नामसे विख्यात स्वामी कार्तिकेय तथा भगवान् विघ्नविनायक भी उस श्रेष्ठ पर्वतपर पधारे। वहाँ सैकड़ों मोर बोल रहे थे। नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, परावसु, हाहा-हूहू तथा अन्य भी अनेक प्रसिद्ध गन्धर्व इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार विविध प्रकारके विमानोंद्वारा वहाँ आ गये। पवन-अग्नि वर्ग-सत्य, ध्रुव तथा देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, विद्याधर एवं गुह्यकोंका समुदाय भी वहाँ पहुँच गया। कई महान् आदरणीय-ऋषि भी आये। गन्धकाली, घृताची, बुद्धा, गौरी, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका, रम्भा, पुञ्जिकस्थला तथा ऐसी अन्य भी बहुत-सी अप्सराएँ उस मुञ्जवान् पर्वतपर आयीं। पुलस्त्य, अत्रि, मरीचि, वसिष्ठ, भृगु, कश्यप, पुलह, विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज, अग्निवेश्य, वृद्ध पराशर, मार्कण्डेय, अङ्गिरा, गर्ग, संवर्त, क्रतु, जमदग्नि, भार्गव और च्यवन—ये सभी महर्षि विष्णुकी तथा स्वर्गाधिप शक्रकी आज्ञासे वहाँ सामूहिक रूपसे आये थे।

स्त्री-पुरुषका रूप धारण करके सिन्धु, महानदी सरयू, ताम्रारुणा, चारुभागा, वितस्ता, कौशिकी, पुण्या, सरस्वती, कोका, नर्मदा, बाहुदा, शतद्रु, विपाशा, गण्डकी, सरिद्वरा, गोदावरी, वेणी, तापी, करतोया, सीता, चीरवती, नन्दा, चन्दना, चर्मण्वती, पर्णाशा, देविका, प्रभास, सोम, लौहित्य तथा गङ्गासागर एवं अन्य भी जितने अनेक पुण्य तीर्थ थे, वे सब भी इस समय वहाँ मुञ्जपर पधारे। इन्द्रकी आज्ञासे मुञ्जवान् नामक उस उत्तम पर्वत आगमन हो गया। पर्वतोंमें उत्तम महामेरु, मन्दराचल, हिमवान्, हेमकूट, निषध, विन्ध्याचल, महेन्द्र, मलय, मणिमान्, दर्दुर, म चित्रकूट, अञ्जन, ऊँचा द्रोणाचल, श्रीपर्वत, क परिपूर्ण पर्वतराज परिवार—ये सभी पर्वतोंमें उत्त माने हैं। इन सबका तथा अनेक अन्योंका भी आगमन हो गया। सम्पूर्ण यक्ष, समस्त पिशाच, स र्प, यक्ष, रक्ष, नाग, महान् ऋषि वसिष्ठ, म वासुकि, नागराज, अमृताशी, हजारों फणोंसे प्रका अनन्त शेषनाग, धृतराष्ट्र, सर्पोंके राजा विमौर, श्वे अभोगर, महान् तेजस्वी नागराज तथा सर्पोंके अ अन्यों एवं लाखों सर्प वहाँ आये। त्रिशृङ्ग, द्विजि शङ्खवर्ण, महाद्युति, तीनों लोकोंमें विख्यात वी अनिमिषेश्वर, विरोचनकुमार सत्य, इलोत्पल, सर्वे पर्वतकी भाँति अचल रहनेवाले तथा सैकड़ों फ युक्त शृङ्ग, अरिमेजयके साथ सर्पराज प्रज्ञावान् नाग चित्रन, भूरि, कम्बल और अश्वतर, सर्पोंके राजा पराक्र एकपत्र, नागोंके अध्यक्ष कर्कोटक एवं धनंजय—इ प्रकारके महान् पराक्रमी अनेकों भुजगेन्द्र मुञ्जवान् पर्व पर आये। दिन-रात, पक्ष-मास, संवत्सर, आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ और विदिशाएँ वहाँ आयीं। उस सम आये हुए देवताओं, यक्षों और सिद्धोंसे उस मुञ्जवान् पर्वतका शिखर इस प्रकार भर गया, जैसे प्रलयकालमें समुद्रका किनारा जलसे परिपूर्ण हो जाता है। जब उस पर्वतराज मुञ्जवान्के सुरम्य शिखरपर देवताओंका समाज जुट गया तो वायुसे प्रेरित होकर वृक्षोंने उनपर फूलोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय दिव्य गन्धर्वोंने उत्तम संगीत, अप्सराओंने प्रशंसनीय नृत्य और पक्षियोंने प्रसन्न होकर मधुर स्वरसे सुन्दर शब्द करना प्रारम्भ कर दिया। पवन पुष्प गन्धोंको लेकर प्रवाहित होने लगे। उसके स्पर्शसे सबका मन मुग्ध हो जाता था। उ

कार भगवान् विष्णुको आगे कर सभी देवता वहाँ उपस्थित हुए और देखा कि नन्दी सामने विराजमान हैं तथा दिव्य आभासे उनकी मूर्ति विद्योतित हो रही है। अब वहाँ आये हुए गन्धर्वों और अप्सराओंके गणोंपर नन्दीकी भी दृष्टि पड़ी। उन्होंने देखा कि अन्य सभी देवता तथा देवराज इन्द्र भी एक साथ ही वहाँ पधारे हैं। फिर तो नन्दी सावधान हो गये और उन्होंने हाथ जोड़ तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। सहसा एक साथ सभी देवताओंका आगमन देखकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। फिर वे सबके स्वागत करनेमें संलग्न हो गये। उपस्थित सभी देवताओंको क्रमशः नमस्कार करनेके पश्चात् उन्होंने उनके लिये यथाशीघ्र आसन, पाद्य एवं अर्घ्य आदिके लिये अपने अनुयायियोंको आदेश दिया। नन्दीके स्वागतको स्वीकारकर आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, गन्धर्व और गुह्यक आदि देवताओं तथा गण-देवताओंने नन्दीकी प्रशंसा की। विश्वावसु, हाहा-हूहू, नारद, तुम्बुरु, चित्रसेन और अन्य गन्धर्वोंने नन्दीकी भी पूजा की। वासुकिप्रभृति नाग सर्पोंके राजा कहे जाते हैं। उनमें असीम शक्ति है। सौम्य-मूर्ति नन्दीश्वरको देखकर उन सबोंने भी उनकी अर्चना की। सिद्ध, चारण, विद्याधर और अप्सराओंका उपस्थित समाज देवेश्वर इन्द्रसे सम्मानित नन्दीश्वरकी पूजा करने लगा। यक्ष, विद्याधर, ग्रह, समुद्र, पर्वत, सिद्ध, ब्रह्मर्षि-गण, गङ्गा आदि नदियाँ—इन सभीमें अपार हर्ष उत्पन्न हो गया था, अतः सभीने नन्दीश्वरको आशीर्वाद देना आरम्भ किया।'

देवता बोले—'मुने! पशुपति भगवान् शंकर तुमपर सदा प्रसन्न रहें। अनघ! तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति हो जाय अथवा द्विजवर! तुम्हें ऐसी शक्ति सुलभ हो जाय कि कोई भी देवता तुमसे श्रेष्ठ न हो सके। विभो! रोग-व्याधि तुम्हारे पास न आ सके। तुम अमर होकर विचरण कर सको। प्रत्युत! भगवान् शंकरके साथ लोकोंमें सुखसे रहनेका तुम्हें सौभाग्य प्राप्त हो।' देवताओंके इस प्रकार कहनेपर नन्दीश्वरने पुनः उनसे अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करना आरम्भ किया।

नन्दिकेश्वर बोले—'आप सभी प्रधान देवता हैं और मुझपर आप सभीका अगाध स्नेह है। आप महानुभावोंने जो प्रिय बात कहकर मुझे आशीर्वाद दिया है, उसके लिये मैं आपलोगोंका अत्यन्त आभारी हूँ। अब आपलोगोंके लिये मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। देवताओ! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ।' नन्दीश्वरकी यह बात सुनकर इन्द्रने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

शक्र बोले—'भद्र! तुम यह बतलाओ कि भगवान् शंकर कहाँ गये? और इस समय वे कहाँ विराज रहे हैं? विप्रवर! देवताओंके अध्यक्ष उन शक्तिशाली शिवको हम सभी लोग देखना चाहते हैं। मुने! जिन्हें स्थाणु, उग्र, शिव, शर्व एवं महादेव कहते हैं, उन भगवान् शंकरको तुम जानते हो कि वे इस समय कहाँ हैं? महर्षे! वह स्थान यथाशीघ्र मुझे बतानेकी कृपा करो।' वज्रपाणि इन्द्रकी यह बात बुद्धिमत्तापूर्ण थी। उसे सुनकर नन्दीने भगवान् शंकरका स्मरण किया। साथ ही वे इन्द्रको उत्तर देनेके लिये भी उद्यत हो गये।

नन्दिकेश्वरने कहा—'देवेन्द्र! आप स्वर्गके स्वामी हैं। इसके विषयमें यथार्थ बात सुनानेकी आप कृपा करें। इसी मुञ्जवान् पर्वतपर मैंने भगवान् शंकरकी पूजा की थी। वे परम शक्तिशाली पुरुष हैं। उन्होंने मुझपर प्रसन्न होकर अनेक दिव्य वर प्रदान किये। फिर वे प्रभु परम प्रसन्न होकर यहाँसे कहीं अन्यत्र चले गये। अब उनकी जानकारी करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वासव! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ। यदि आप उनके विषयमें मुझे आज्ञा देते हैं तो अब हम सभी प्रयत्नपूर्वक उन प्रभुका अन्वेषण करनेका प्रयास करें।'

(अध्याय २१०)

...र भगवान् विष्णुको आगे कर सभी देवता वहाँ उपस्थित ... और देखा कि नन्दी सामने विराजमान हैं तथा दिव्य ...ामें उनकी मूर्ति विद्योतित हो रही है। अब वहाँ आये ...गन्धर्वों और अप्सराओंके गणोंपर नन्दीकी भी दृष्टि पड़ी। ...ोंने देखा कि अन्य सभी देवता तथा देवराज इन्द्र भी एक ...ही वहाँ पधारे हैं। फिर तो नन्दी सावधान हो गये और ...ोंने हाथ जोड़ तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। ...सा एक साथ सभी देवताओंका आगमन देखकर उन्हें ...न् आश्चर्य हुआ। फिर वे सबके स्वागत करनेमें संलग्न हो ...। उपस्थित सभी देवताओंको क्रमशः नमस्कार करनेके ...चात् उन्होंने उनके लिये यथाशीघ्र आसन, पाद्य एवं ...र्घ्य आदिके लिये अपने अनुयायियोंको आदेश दिया। ...न्दीके स्वागतको स्वीकारकर आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्, ...श्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, गन्धर्व और गुह्यक ...ादि देवताओं तथा गण-देवताओंने नन्दीकी प्रशंसा की। ...िश्वावसु, हाहा-हूहू, नारद, तुम्बुरु, चित्रसेन और अन्य ...न्धर्वोंने नन्दीकी भी पूजा की। वासुकिप्रभृति नाग सर्पों-...के राजा कहे जाते हैं। उनमें असीम शक्ति है। सौम्य-...मूर्ति नन्दीश्वरको देखकर उन सबोंने भी उनकी अर्चना की। सिद्ध, चारण, विद्याधर और अप्सराओंका उपस्थित समाज देवेश्वर इन्द्रसे सम्मानित नन्दीश्वरकी पूजा करने लगा। यक्ष, विद्याधर, महद, समुद्र, पर्वत, सिद्ध, महर्षि-गण, गङ्गा आदि नदियाँ—इन सभीमें अपार हर्ष उत्पन्न हो गया था, अतः सभीने नन्दीश्वरको आशीर्वाद देना आरम्भ किया।'

देवता बोले—'मुने! पशुपति भगवान् शंकर तुमपर सदा प्रसन्न रहें। अनघ! तुम्हारी सर्वत्र अबाध गति हो जाय अथवा द्विजवर! तुम्हें ऐसी शक्ति सुलभ हो जाय कि कोई भी देवता तुमसे श्रेष्ठ न हो सके। विभो! रोग-व्याधि तुम्हारे पास न आ सके। तुम अमर होकर विचरण कर सको। प्रभुत! भगवान् शंकरके साथ लोकोंमें सुखसे रहनेका तुम्हें सौभाग्य प्राप्त हो।' देवताओंके इस प्रकार कहनेपर नन्दीश्वरने पुनः उनसे अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करना आरम्भ किया।

नन्दिकेश्वर बोले—'आप सभी प्रधान देवता हैं और मुझपर आप सभीका अगाध स्नेह है। आप महानुभावोंने जो प्रिय बात कहकर मुझे आशीर्वाद दिया है, उसके लिये मैं आपलोगोंका अत्यन्त आभारी हूँ। अब आपलोगोंके लिये मुझे क्या करना चाहिये? इसके लिये आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। देवताओ! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ।' नन्दीश्वरकी यह बात सुनकर इन्द्रने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

शक्र बोले—'भद्र! तुम यह बतलाओ कि भगवान् शंकर कहाँ गये? और इस समय वे कहाँ विराज रहे हैं? विप्रवर! देवताओंके अध्यक्ष उन शक्तिशाली शिवको हम सभी लोग देखना चाहते हैं। मुने! जिन्हें स्थाणु, उग्र, शिव, शर्व एवं महादेव कहते हैं, उन भगवान् शंकरको तुम जानते हो कि वे इस समय कहाँ हैं? महर्षे! वह स्थान यथाशीघ्र मुझे बतानेकी कृपा करो।' वज्रपाणि इन्द्रकी यह बात बुद्धिमत्तापूर्ण थी। उसे सुनकर नन्दीने भगवान् शंकरका स्मरण किया। साथ ही वे इन्द्रको उत्तर देनेके लिये भी उद्यत हो गये।

नन्दिकेश्वरने कहा—'देवेन्द्र! आप स्वर्गके स्वामी हैं। इसके विषयमें यथार्थ बात सुनानेकी आप कृपा करें। इसी मुञ्जवान् पर्वतपर मैंने भगवान् शंकरकी पूजा की थी। वे परम शक्तिशाली पुरुष हैं। उन्होंने मुझपर प्रसन्न होकर अनेक दिव्य वर प्रदान किये। फिर वे प्रभु परम प्रसन्न होकर यहाँसे कहीं अन्यत्र चले गये। अब उनकी जानकारी करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वासव! मैं आपका आज्ञाकारी हूँ। यदि आप उनके विषयमें मुझे आज्ञा देते हैं तो अब हम सभी प्रयत्नपूर्वक उन प्रभुका अन्वेषण करनेका प्रयास करें।'

(अध्याय २१४)

ब्रह्माजी कहते हैं—इसके बाद सम्पूर्ण देवताओंके साथ परामर्श कर इन्द्रने भगवान् शंकरके पास जानेका विचार किया। सभी देवता उस ऊँचे शिखरसे उठे और अन्दोंके साथ आकाशमार्गसे उन्होंने प्रस्थान कर दिया। भगवान् रुद्रके अन्वेषण करनेमें तत्पर होकर अखिल देवताओंने स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और नागलोक सर्वत्र छान डाला तथा वे उन्हें ढूँढते-ढूँढते थक गये, पर उनका पता न चला। अब उनके मनमें निराशा छा गयी। रुद्रका पता न देख उन्होंने चारों समुद्रोंपर्यन्त सात द्वीपोंवाली पृथ्वीपर भी ढूँढना आरम्भ किया। फिर वे वनोंसे युक्त महान् पर्वतोंकी कन्दराओं और उनके ऊँचे शिखरोंपर भी गये तथा उन्हें गहन निकुञ्जों और क्रीडा-स्थलोंमें भी सब ओर खोजते रहे। उनके इस ढूँढनेके प्रयाससे इस पृथ्वीके तृणोंके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये; पर इतना प्रयत्न करनेपर भी भगवान् शंकरको प्राप्त करनेमें देवताओंको सफलता न मिली और भगवान् शंकरका दर्शन उन्हें न मिल सका। अतः देवतालोग अत्यन्त उदास हो गये।

आगेके कर्तव्यके सम्बन्धमें परस्पर विचार-विमर्श और वार्तालाप करनेके पश्चात् वे सभी देवता मेरी (ब्रह्माकी) शरणमें आये। तब मैंने मनको सावधान करके संसारको कल्याण प्रदान करनेवाले उन शंकरका समाहित मनसे ध्यान किया। उनके वेश और अलंकारोंके ध्यान करनेसे मुझे एक उपाय सूझ गया। फिर मैंने देवताओंसे कहा—'हमलोगोंने निरन्तर अन्वेषण करते हुए सारी त्रिलोकी छान डाली है, किंतु भूमण्डलपर 'श्लेष्मातक'वन नामक स्थानपर नहीं गये। अतएव प्रधान देवताओ! हम सभी लोग यहाँसे उस देशमें चलें।' इस प्रकार कहकर उन सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र उस दिशाकी ओर प्रस्थित हो गये और शीघ्रतासे हिमालयपर चढ़कर 'श्लेष्मातक' वनमें* पहुँच गये। वह पुण्यमय स्थान सिद्ध और चारणोंसे सेवित था। वहाँ पर्वतोंकी बहुत-सी कन्दराएँ तथा अनेक प्रकारके पवित्र एवं रम्य स्थान ध्यान करनेके उपयुक्त थे। उनमें सभी गुणोंकी अधिकता थी। अनेक सुन्दर आश्रम, उद्यान और स्वच्छ जलवाली नदियाँ शोभा बढ़ा रही थीं। उस वनमें श्रेष्ठ सिंह, भैंसे, नीलगाय, भालू-बंदर, हाथी और मृगोंके झुंड शब्द कर रहे थे। सिद्ध आदि पुरुषोंसे वह स्थान भरा था।

देवताओंने इन्द्रको आगे करके उसमें प्रवेश किया। वहाँ वे रथ आदि सवारियोंको छोड़कर पैदल ही गये। फिर हम सभी कन्दराओं, झाड़ियों एवं वृक्षोंसे भरे हुए सघन वनोंमें सम्पूर्ण देवताओंके सहित भगवान् रुद्रको खोजनेमें संलग्न हो गये। आगे जानेपर हमें एक अत्यन्त सुन्दर वन मिला, जो सभी वनोंका अलंकार था। वहाँ बहुत-सी पर्वतीय नदियाँ और फूले हुए अनेक वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। सभी देवताओंने उसमें प्रवेश किया। नदियोंके तटपर कुन्द तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले हंस विचर रहे थे। फूलोंसे अच्छी गन्ध निकल रही थी, जिसके कारण वह वन सुवासित हो रहा था। वहाँ बिखरी हुई बालुकाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो मोतियोंके चूर्ण हैं। उसी स्थानपर कोई क्रीडा करती हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक कन्या दिखायी पड़ी। सभी देवताओंने उसे देखकर मुझे सूचित किया; क्योंकि सम्पूर्ण देवताओंका मैं अग्रणी

* यह 'श्लेष्मातक'-वन उत्तर-गोकर्णका ही नामान्तर है, जो पशुपतिनाथ (नेपाल)से केवल दो मीलकी दूरीपर है—Sleshmātaka Vana is Uttar (North) Gokarṇa, two miles to the north east of Paśupatinātha in Nepal, on the Bagmati river. (Śivapurāṇa 3. 215, Varāhapurāṇa 18. 16, Wright's History of Nepal P. 82. 10, Nandolal, Dey's Geographical Dictionary. P. 168)

विग्रहकी प्रतिष्ठा करेंगे। इसके बाद यह स्थान प्रसिद्ध ब्राह्मणों तथा सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंसे सम्पन्न होकर एक महान् जनपद बन जायगा। उस जनपदके विस्तृत भागमें राजाओंका सम्यक् प्रकारसे निवास होगा और सामान्य जनता वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगेगी। सभी प्राणी प्रत्येक समयमें वहाँ मेरी आराधना करेंगे।

जो सज्जन एक बार भी विधिके साथ मेरी वन्दना एवं दर्शन करेंगे, उनके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जायँगे। साथ ही वे शिवपुरीमें जायँगे और वहाँ उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायगा। मेरा यह स्थान गङ्गासे उत्तर और अश्विनी मुखसे दक्षिणमें चौदह योजन दूरीके विस्तारमें होगा, ऐसा समझना चाहिये। वाग्मती नामकी नदी हिमालय-के ऊँचे शिखरसे निकलकर उसकी शोभा बढ़ायगी। उस वाग्मती नदीका शुद्ध जल भागीरथी गङ्गासे भी सौगुना अधिक पवित्र कहा गया है। उसमें स्नान करनेके प्रभावसे मानव विष्णु और इन्द्रके लोकोंका स्पर्श करके शरीर त्यागनेके पश्चात् सीधे मेरे लोकमें पहुँच जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले घोर पापकर्मा ही क्यों न हों, उन्हें भी यह गति सुलभ हो जाती है। इन्द्रकी नगरीमें जो नियमपूर्वक निवास करनेवाले देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, उरग, मुनि, अप्सरा तथा यक्षप्रभृति हैं, वे सभी मेरी मायासे मोहित होनेके कारण मेरे उस गुप्त स्थानको जाननेमें असफल हैं।

मुनिवरो! तपस्वियोंके लिये यह तपोभूमि एवं सिद्धक्षेत्र कहा गया है। विद्वान् पुरुष प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर और कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर उस क्षेत्रकी महिमा बतलाते हैं। वहाँ मेरे श्वशुर पर्वतराज हिमवान् विराजते हैं। गङ्गा, जो नदियोंमें उत्तम मानी जाती हैं। उनका तथा अन्य कई श्रेष्ठ नदियोंका यहींसे उद्गम होता है। यह उत्तम क्षेत्र परम पुण्यमय है। सभी पर्वत पुण्यस्वरूप हैं। वहीं मेरा आश्रम होगा। और चारण उस आश्रमकी सेवा करेंगे। वहाँ मेरा लिङ्ग शैलेश्वर नामसे विख्यात होगा। धारारूपसे बहनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ एवं पुण्यमयी वाग्मती नामकी नदी वहींसे बढ़कर हिमालय आयगी। भागीरथी और वेगवती नामकी नदियाँ परम पवित्र हैं। इनका कीर्तन करनेसे भी मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है और दर्शन करनेसे तो प्राणी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्राप्त कर लेता है। इन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीने तथा अवगाहन करनेसे पुरुष अपने सात कुलोंको तार देता है। उस तीर्थकी महिमाको स्वयं लोकपाल भी गाते हैं। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो लोग बार-बार वहाँ नित्य स्नान और मेरी पूजा करते हैं, उनपर परम प्रसन्न होकर मैं संसार-सागरसे उनका उद्धार कर देता हूँ। जो उसके जलसे भरा हुआ एक घड़ा लाकर मनको पवित्र करके श्रद्धापूर्वक उससे मुझे स्नान कराता है, यह वेद एवं वेदाङ्गके ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मणकी सहायतासे मेरा अभिषेक करता है, उसे अग्निहोत्रका फल सुलभ हो जाता है। उसके नदीपार जलका भेदन करके मृगशृङ्गोदक नामसे प्रसिद्ध मेरी एक प्रतिमा प्रकट हुई है, जो मुनिजनोंको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ सावधान होकर सिरपर जल फेंकते हुए स्नान या अभिषेक करना चाहिये, इससे जीवनभरके किये हुए सभी पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। वहीं 'पञ्चनद' नामका भी एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ महर्षिगण निवास करते हैं। वहाँ केवल स्नान करनेमात्रसे प्राणी 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है। वाग्मती नदी वहाँ साठ हजार दिव्य गौओंकी रक्षा करती है, अतः उसे कृतघ्न अथवा पापी मानव प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं। जो सदा पवित्र रहते हैं, इन्द्रियोंपर

जो सत्यका पालन करते हैं,

भी मनुष्योंको ही वाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, भयभीत एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे निरन्तर कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें स्नानकर मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'वाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रुद्ररूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है। ये हजार अन्य नागोंके साथ मेरे दरवाजेपर सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकिका काम उनके सामने विघ्न उपस्थित करना है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकार-का भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें जाकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवता-लोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ट नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहींके एक स्थान का नाम 'शैलेश्वर' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे पार्षद होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे गणों तथा देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह 'शैलेश्वर'

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥ (कामन्दक-नीतिसार)
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, और बगलके राजा—इन छहोंको 'ईति' कहते हैं।

† यह वासुकिनाथका वर्णन है। यह देवघर वैद्यनाथ धामसे २८ मीलपर दुमका जानेवाली सड़कपर है। यहाँ नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग है। द्रष्टव्य 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' पृ-१७५।

विमहकी प्रतिष्ठा करेंगे। इसके बाद यह स्थान प्रसिद्ध ब्राह्मणों तथा सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंसे सम्पन्न होकर एक महान् जनपद बन जायगा। उस जनपदके विस्तृत भागमें राजाओंका सम्यक् प्रकारसे निवास होगा और सामान्य जनता यहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगेगी। सभी प्राणी प्रत्येक समयमें यहाँ मेरी आराधना करेंगे। जो सज्जन एक बार भी विधिके साथ मेरी वन्दना एवं दर्शन करेंगे, उनके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जायँगे। साथ ही वे शिवपुरीमें जायँगे और वहाँ उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायगा। मेरा यह स्थान गङ्गासे उत्तर और अश्विनी-मुखसे दक्षिणमें चौदह योजन दूरीके विस्तारमें होगा, ऐसा समझना चाहिये। वाग्मती नामकी नदी हिमालय-के ऊँचे शिखरसे निकलकर उसकी शोभा बढ़ायगी। उस वाग्मती नदीका शुद्ध जल भागीरथी गङ्गासे भी सौगुना अधिक पवित्र कहा गया है। उसमें स्नान करनेके प्रभावसे मानव विष्णु और इन्द्रके लोकोंका स्पर्श करके शरीर त्यागनेके पश्चात् सीधे मेरे लोकमें पहुँच जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले घोर पापकर्मा ही क्यों न हों, उन्हें भी यह गति सुलभ हो जाती है। इन्द्रकी नगरीमें जो नियमपूर्वक निवास करनेवाले देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, उरग, मुनि, अप्सरा तथा यक्षप्रभृति हैं, वे सभी मेरी मायासे मोहित होनेके कारण मेरे उस गुप्त स्थानको जाननेमें असफल हैं।

पुरुषोत्तमो! तपस्वियोंके लिये यह तपोभूमि एवं सिद्धक्षेत्र कहा गया है। विद्वान् पुरुष प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर और कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर उस क्षेत्रकी महिमा बताते हैं। वहाँ मेरे श्वशुर पर्वतराज हिमवान् स्वयं विराजते हैं। गङ्गा, जो नदियोंमें उत्तम मानी जाती हैं। उनका तथा अन्य कई श्रेष्ठ नदियोंका वहींसे उद्गम होता है। वह उत्तम क्षेत्र परम पुण्यमय है। सभी श्रेष्ठ नद-नदियाँ तथा तीर्थ वहींसे प्रकट होते हैं। वहाँके सभी पर्वत पुण्यस्वरूप हैं। वहीं मेरा आश्रम होगा। देव और चारण उस आश्रमकी सेवा करेंगे। वहाँ मेरा लिङ्ग शैलेश्वर नामसे विख्यात होगा। धाराओंसे बहनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ एवं पुण्यमयी वाग्मती नामकी नदी भी वहाँसे बढ़कर हिमालय आयगी। भागीरथी और वेत्रवती नामकी नदियाँ परम पवित्र हैं। इनका कीर्तन करनेसे भी मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है और दर्शन करनेसे तो प्राणी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्राप्त कर लेता है। इन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीने तथा अवगाहन करनेसे पुरुष अपने सात कुलोंको तार देता है। उस तीर्थकी महिमाको स्वयं लोकपाल भी गाते हैं। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। जो लोग बार-बार वहाँ नित्य स्नान और मेरी पूजा करते हैं उनपर परम प्रसन्न होकर मैं संसार-सागरसे उनका उद्धार कर देता हूँ। जो उसके जलसे भरा हुआ एक घड़ा लाकर मनको पवित्र करके श्रद्धापूर्वक उससे मुझे स्नान कराता है, वह वेद एवं वेदाङ्गके ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मणकी सहायतासे मेरा अभिषेक करता है, उसे अग्निहोत्रका फल सुलभ हो जाता है। उसके तटपर जलका भेदन करके मृगशृङ्गोदक नामसे प्रसिद्ध मेरी एक प्रतिमा प्रकट हुई है, जो मुनिजनोंको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ सावधान होकर सिरपर जल फेंकते हुए स्नान या अभिषेक करना चाहिये, इससे जीवनभरके किये हुए सभी पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। वहीं 'पञ्चनद' नामका भी एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ ब्रह्मर्षिगण निवास करते हैं। वहाँ केवल स्नान करनेमात्रसे प्राणी 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल प्राप्त कर लेता है। वाग्मती नदी यहाँ साठ हजार दिव्य गौओंकी रक्षा करती है, अतः उसे कृतघ्न अथवा पापी मानव प्राप्त करने-में असमर्थ हैं। जो सदा पवित्र रहते हैं, इष्टदेवतापर जिनकी श्रद्धा रहती है तथा जो सत्यका पालन करते हैं,

ही मनुष्योंको ही वाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, भयभीत एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे ग्रस्त कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें स्नानकर मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'वाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रुद्ररूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है। ये हजार अन्य नागोंके साथ मेरे दरवाजेपर सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकिका काम उनके सामने विघ्न उपस्थित करना है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकारका भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें जाकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवता-लोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ट नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहाँके एक स्थानका नाम 'शैलेश्वर' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कोई भी क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे पार्षद होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे गणों तथा देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह 'शैलेश्वर'

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥ (कामन्दकनीतिसार)

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, और समीपके राजा—इन छहोंको 'ईति' कहते हैं।

† यह वासुकिनाथका वर्णन है। यह देवघर वैद्यनाथधामसे २८ मीलपर दुमका जानेवाली सड़कपर है। यहीं नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग है। द्रष्टव्य 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' पृ १०५।

स्क० पु० अं० ४०,—

ऐसे मानवोंको ही बाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, भयभीत एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे त्रस्त कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें स्नानकर मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'वाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रुद्ररूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है†। ये हजार अन्य नागोंके साथ मेरे दरवाजेपर सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकिका काम उनके सामने विघ्न उपस्थित करना है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकारका भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें जाकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवता-लोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ठ नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहींके एक स्थान का नाम 'शैलेश्वर' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे पार्षद होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे गणों तथा देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह 'शैलेश्वर'

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥ (कामान्दकनीतिसार)
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, और बगलके राजा—इन छहोंको 'ईति' कहते हैं।

† यह वासुकिनाथका वर्णन है। यह देवघर वैद्यनाथधामसे २८ मीलपर दुमका जानेवाली सड़कपर है। यहीं नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग है। द्रष्टव्य 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' पृष्ठ-१७९।

विग्रहकी प्रतिष्ठा करेंगे । इसके बाद यह स्थान प्रसिद्ध ब्राह्मणों तथा सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंसे सम्पन्न होकर एक महान् जनपद बन जायगा । उस जनपदके विस्तृत भागमें राजाओंका सम्यक् प्रकारसे निवास होगा और सामान्य जनता वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगेगी । सभी प्राणी प्रत्येक समयमें वहाँ मेरी आराधना करेंगे । जो सज्जन एक बार भी विधिके साथ मेरी वन्दना एवं दर्शन करेंगे, उनके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जायँगे । साथ ही वे शिवपुरीमें जायँगे और वहाँ उन्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायगा । मेरा यह स्थान गङ्गासे उत्तर और अश्विनी मुखसे दक्षिणमें चौदह योजन दूरीके विस्तारमें होगा, ऐसा समझना चाहिये । वाग्मती नामकी नदी हिमालयके ऊँचे शिखरसे निकलकर उसकी शोभा बढ़ायगी । उस वाग्मती नदीका शुद्ध जल भागीरथी गङ्गासे भी सौगुना अधिक पवित्र कहा गया है । उसमें स्नान करनेके प्रभावसे मानव विष्णु और इन्द्रके लोकोंका स्पर्श करके शरीर त्यागनेके पश्चात् सीधे मेरे लोकमें पहुँच जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं । इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले घोर पापकर्मी ही क्यों न हों, उन्हें भी यह गति सुलभ हो जाती है । इन्द्रकी नगरीमें जो नियमपूर्वक निवास करनेवाले देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, उरग, मुनि, अप्सरा तथा यक्षप्रभृति हैं, वे सभी मेरी मायासे मोहित होनेके कारण मेरे उस गुप्त स्थानको जाननेमें असफल हैं ।

पुरोत्तमो ! तपस्वियोंके लिये यह तपोभूमि एवं सिद्धक्षेत्र कहा गया है । विद्वान् पुरुष प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य, पुष्कर और कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर उस क्षेत्रकी महिमा बताते हैं । वहाँ मेरे श्वशुर पर्वतराज हिमवान् स्वयं विराजते हैं । गङ्गा, जो नदियोंमें उत्तम मानी जाती हैं । उनका तथा अन्य कई श्रेष्ठ नदियोंका वहींसे उद्गम होता है । वह उत्तम क्षेत्र परम पुण्यमय है । सभी श्रेष्ठ नद-नदियाँ तथा तीर्थ वहींसे प्रकट होते हैं । वहाँके सभी पर्वत पुण्यप्रभव हैं । वहीं मेरा आश्रम होगा । और वाग्मी उस आश्रमकी सेवा करेंगे । वहाँ मेरा लि[ङ्ग]
शैलेश्वर नामसे विख्यात होगा । भागमानने बहुत[ेरी]
नदियोंमें श्रेष्ठ एवं पुण्यमयी वाग्मती नामकी नदी
वहींसे बढ़कर हिमालय आयगी । भागीरथी औ[र]
वेगवती नामकी नदियाँ परम पवित्र हैं । इनका कीर्त[न]
करनेसे भी मनुष्योंका पाप भस्म हो जाता है और दर्श[न]
करनेसे तो प्राणी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्राप्त कर लेता है । [ए]
श्रेष्ठ नदियोंका जल पीने तथा अवगाहन करनेसे पुर[ुष]
अपने सात कुलोंको तार देता है । उस तीर्थ[की]
महिमाको स्वयं लोकपाल भी गाते हैं । वहाँ जो स्ना[न]
करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृ[त्यु]
होती है, उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता ।
जो लोग बार-बार वहाँ नित्य स्नान और मेरी पूजा
करते हैं उनपर परम प्रसन्न होकर मैं संसार-सागरसे
उनका उद्धार कर देता हूँ । जो उसके जलसे भरा हुआ
एक घड़ा लाकर मनको पवित्र करके श्रद्धापूर्वक
उससे मुझे स्नान कराता है, वह वेद एवं वेदाङ्गके
ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मणकी सहायतासे मेरा अभिषेक
करता है, उसे अग्निहोत्रका फल सुलभ हो जाता है ।
उसके तटपर जलका भेदन करके मृगशृङ्गोदक नामसे
प्रसिद्ध मेरी एक प्रतिमा प्रकट हुई है, जो मुनिजनोंको
अत्यन्त प्रिय है । वहाँ सावधान होकर सिरपर जल
फेंकते हुए स्नान या अभिषेक करना चाहिये, इसमे
जीवनभरके किये हुए सभी पाप उसी क्षण नष्ट हो
जाते हैं । वहीं 'पद्मनद' नामका भी एक पवित्र तीर्थ है,
जहाँ ब्रह्मर्षिगण निवास करते हैं । वहाँ केवल स्नान
करनेमात्रसे प्राणी 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल प्राप्त कर लेता
है । वाग्मती नदी यहाँ साठ हजार दिव्य गौओंकी रक्षा
करती है, अतः उसे कृतघ्न अथवा पापी मानव प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं । जो सदा पवित्र रहते हैं, इष्टदेवतापर
जिनकी श्रद्धा रहती है तथा जो सत्यका पालन करते हैं,

[illegible] भक्तोंको ही वाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, मलीन एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे [illegible] कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें [illegible] मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'वाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है। वे हजार अन्य नागोंके साथ मेरे द्वारपालरूपमें सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकि नाग उनके सामने विघ्न उपस्थित करता है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकारका भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें जाकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवता-लोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ट नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहाँके एक स्थानका नाम 'श्रीस्वर्ग' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कोई भी क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे साथ [illegible] होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे [illegible] देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह '[illegible]'

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥ ([illegible])
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी और [illegible] राजा—ये छः ईति [illegible] करते हैं।
[illegible]

† यह वाग्मतीमाहात्म्य वर्णन है। [illegible]
[illegible] है। [illegible]

...मनुष्योंको ही वाग्मतीमें स्नान करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे उत्तम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो दुःखी, भयभीत एवं संतप्त मनुष्य हैं अथवा जो व्याधियोंसे कष्ट पाते रहते हैं, ऐसे व्यक्ति भी यदि इसमें स्नानकर मुझ 'पशुपतिनाथ'का दर्शन यहाँ करते हैं तो वे परम पवित्र हो जाते हैं और उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उसमें स्नान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पाप मेरी कृपासे नष्ट हो जाते हैं, इतना ही नहीं, ईति* आदि सभी उग्र उपद्रव भी सर्वथा शान्त हो जाते हैं। वाग्मती सम्पूर्ण नदियोंमें प्रधान है। उसके जलमें जो स्नानकर मेरा दर्शन करते हैं, उनके अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाते हैं। इस 'वाग्मती'के जलमें मानव जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहाँ-वहाँ उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। यह क्षेत्र एक योजनके भीतर चारों ओर फैला हुआ है।

जिस स्थानपर मैं स्वयं नागेश्वर रुद्ररूपमें विराजमान रहता हूँ, उसको मूल क्षेत्र जानना चाहिये। उसके पूर्व और दक्षिणके भागमें नागराज वासुकिका एक स्थान है। ये हजार अन्य नागोंके साथ मेरे दरवाजेपर सदा स्थित रहते हैं। जो लोग मेरे क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं, वासुकिका काम उनके सामने विघ्न उपस्थित करना है। पर जो पहले उन्हें नमस्कार करके फिर मुझे प्रणाम करने आनेका कार्यक्रम बनाते हैं, उन प्रवेश करनेवाले पुरुषोंके सामने किसी प्रकारका भी विघ्न उपस्थित नहीं हो पाता। उस क्षेत्रमें आकर जो मनुष्य परम भक्तिके साथ सदा मेरी वन्दना करता है, उसे पृथ्वीपर राजा होनेका सुयोग मिलता है और सभी प्राणी उसका अभिवादन करते हैं। जो मनुष्य गन्धों और मालाओंके द्वारा मेरी मूर्तिका अभ्यर्चन करता है, वह 'तुषित'संज्ञक देवताओंकी योनिमें पैदा होता है, इसमें कोई संशय नहीं। जो व्यक्ति मेरे उस पर्वतपर श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित दीप प्रदान करता है, उसकी उत्पत्ति 'सूर्यप्रभ' नामक देवताओंकी योनिमें होती है। जो लोग संगीत-वाद्य, नृत्य-स्तुति अथवा जागरण करके मेरी सेवा, उपासना करते हैं, वे मेरे लोकमें निवासके अधिकारी हो जाते हैं। जो प्राणी दही, दूध, मधु, घृत अथवा जलसे मुझे स्नान कराते हैं, उनपर, बुढ़ापा रोग और मृत्युका वश नहीं चलता। जो मानव श्राद्धके अवसरपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको इस स्थानमें भोजन कराता है, उसे स्वर्गमें अमृत पान करनेका अवसर मिलता है और देवता-लोग उसका आदर करते हैं। जो ब्राह्मण इस क्षेत्रमें अनेक प्रकारके व्रत-उपवास, भाँति-भाँतिके हवन, स्वादिष्ट नैवेद्य आदि उपचारोंके द्वारा समुचित श्रद्धासे सम्पन्न होकर मेरी आराधना करते हैं, उन्हें साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करनेका अवसर मिलता है। इसके पश्चात् उन्हें पुनः मृत्युलोकमें आना पड़ता है और उन्हें सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

यहींके एक स्थान का नाम '...श्वर' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्री ही क्यों न हो, यदि वहाँ जाकर भक्तिके साथ मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मेरे पार्षद होनेकी सुविधा मिलती है और वे सदा मेरे गणोंके साथ देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करते हैं। यह '...'

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥ ([illegible])
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, चूहे, पक्षी, और समीपके राजा—इन छहोंको 'ईति' कहते हैं।

† यह पशुपतिनाथका वर्णन है। यह देवता [illegible] है। यहीं [illegible] है। [illegible] ।

परम गुह्य स्थान है। इस भूमण्डलमें उससे श्रेष्ठ कहीं भी कोई दूसरा क्षेत्र नहीं है। ब्राह्मण, गुरु अथवा गौका जिसके द्वारा हनन हो गया है अथवा जो सम्पूर्ण पापोंसे लिप्त है, ऐसा मानव भी इस क्षेत्रमें आकर पापोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर अनेक प्रकारके तीर्थ तथा बहुत-से पवित्र देवता निवास करते हैं। इस तीर्थका जल उनसे सम्बद्ध है। अतः जो मानव उन जलोंका स्पर्श करता है, वह अखिल अघोंसे छुटकारा पा जाता है।

उसके दो कोसकी दूरीपर 'कोशोदक' नामसे प्रसिद्ध एक पवित्र तीर्थ है, जो देवताओंद्वारा निर्मित है। यह मुनियोंको बहुत प्रिय है। यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा उसका मन वशमें हो जाता है तथा उसकी सत्यमें रुचि होती है। साथ ही वह पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर सभी प्रकारके उत्तम फलका भागी बन जाता है। महात्मा शैलेश्वरके दक्षिण भागमें वह अविनाशी तीर्थ है। जो पुरुष वहाँ जाता है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है। वहीं 'भृगुप्रपतन' नामका स्थान है। उसके प्रभावसे मानव काम और क्रोधसे रहित होकर विमानके द्वारा स्वर्गमें सिधार जाता है। अप्सराओंके समुदायसे उसे सहायता मिलती रहती है। 'भृगुप्रपतन'के आगे एक ब्रह्मोद्भेद नामसे विख्यात तीर्थ है। इसके निर्माता स्वयं ब्रह्माजी हैं। उसका जो फल है, वह भी मैं कहता हूँ; सुनो! जो पुरुष संयमशील बनकर एक वर्षतक वहाँ स्नान करता है, वह ब्रह्माजीके 'विरज'संज्ञक लोकमें जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। वहीं 'गो-रक्ष' नामका एक तीर्थ है। उस स्थानपर गायों और बैलोंके अनेक पद-चिह्न हैं। उनका दर्शन करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है। वहीं 'गौरीशिखर' (गौरीशंकर) नामक भगवती गौरीका एक शिखर (चोटी) है, जहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। शिखरोंसे प्रेम रखनेवाली 'पार्वती देवी'

यहाँ सदा विराजमान रहती हैं। यहाँ भी जाना चा[illegible] संसारकी रक्षा करनेमें उद्यत जगन्माता भगवती वहाँ विराजती हैं। उनके दर्शन, चरणोंके तथा अभिवादन करनेसे मानव उनके लोकमें ज[illegible] अधिकारी हो जाता है। उनके स्थानसे नीचे ब[illegible] नदी प्रवाहित होती है। उसके तटपर जो अपना [illegible] त्यागता है, उसके सामने आकाशगामी विमान आता है उसपर चढ़कर वह तुरंत ही भगवती उमाके लो[illegible] चला जाता है। वहीं देवी उमासे सम्बन्धित स्तनकुण्ड है। जो मानव उसमें स्नान करता वह अग्निके समान प्रकाशमान होकर स्वामिकार्तिके लोकमें चला जाता है। यहीं पञ्चनद नामका एक [illegible] तीर्थ है। ब्रह्मर्षिगण वहाँ निवास करते हैं। वहाँ जा[illegible] केवल स्नान करनेसे प्राणीको अग्निहोत्र यज्ञका फल [illegible] जाता है।

एक बार एक नकुलके मनमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई अतः उसने सावधान होकर वहाँ स्नान किया। इ[illegible] उसका मन परम पवित्र बन गया और उसे पूर्वजन्मकी ब[illegible] याद आ गयी। उसके उत्तर भागमें सिद्धपुरुषोंसे सेवि[illegible] एक श्रेष्ठ तीर्थ है। उस गुह्यतीर्थका नाम 'प्रान्तकपानीय' है जिसकी गुह्यकगण निरन्तर रक्षा करते हैं। जो मनुष्य वह पूरे वर्षभर सदा स्नान करता है, उसे उत्तम बुद्धि प्रा[illegible] होती है और वह गुह्यकका शरीर प्राप्त कर भगवान् रुद्रका अनुचर बन जाता है। इस शिखरपर निवास करने[illegible]वाली भगवती उमाके पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागोंमें वाग्मतीकी धारा प्रवाहित होती है। यह पुण्य नदी हिमालयकी कन्दरासे निकली है। वहाँ ब्रह्मोद्भेद नामका एक दूसरा पवित्र तीर्थ भी है। वहाँ जाकर मानवको जलसे आचमन एवं स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप उसे मृत्युलोकका दर्शन नहीं होता। उसे किसी प्रकारकी बाधा कष्ट नहीं पहुँचा सकती। वहीं सुन्दरिका [illegible] । [illegible] निर्माण किया

...वहाँ उसमें स्नान करनेसे पुत्र सुन्दर रूपवाला ...होकर हो जाता है। मनुष्योंको चाहिये कि तीनों ...के उनमें वहाँ जाकर सम्यक् स्नान करें। इससे वह ...से मुक्त हो जाता है। वाग्मती और मणिमती ये ...नदियाँ हिमालयका भेदन करके निकली हैं। ...न देनेमें कल्याण करनेकी पूरी शक्ति है। जो ...एवं निर्मल द्विज पवित्र होकर दिन-रात वहाँ ...निवास करता और इसका जप करता है, वह ...निश्चय पवित्र फल प्राप्त करता है। राजा उसका ...सम्मान करते हैं। उसके इस धर्मके प्रभावसे ...सारा कुल तर जाता है। किसी प्रकारका ...व्यक्ति वहाँ स्नान करके तिल और जलसे तर्पण करता है तो उसके पितर तर जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। जहाँ-जहाँ वाग्मती नदी प्रवाहित हुई है, वहाँ-वहाँ श्रेष्ठ पुरुषको स्नान करना चाहिये। इसके फलस्वरूप वह मानव तिर्यग्योनिमें जन्म पानेसे मुक्त हो जाता है। किसी समृद्ध कुलमें उसका जन्म होता है। वाग्मती और मणिमती इन दोनों नदियोंमें थोड़ा भेद है। ऋषिलोग यहाँ निवास करते हैं। बुद्धिमान् पुरुषका कर्तव्य है कि वह काम और क्रोधसे रहित होकर विधानपूर्वक गङ्गाद्वारमें स्नान करे। वहाँ स्नान करनेका जो महान् पुण्यफल बताया गया है, उससे कहीं दसगुना अधिक फल उक्त नदियोंमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। इस क्षेत्रमें विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, देवता और यक्ष इनका समुदाय आकर स्नान करता और उपासनामें सदा संलग्न रहता है। यहाँपर यदि ब्राह्मणोंको थोड़ा भी धन दानमें दिया जाय तो उस दानका पुण्य-फल अक्षय हो जाता है। अतएव देवताओ! सब प्रकारसे प्रयत्न करके यहाँ धर्म-कार्यका सम्पादन करना चाहिये। यह 'श्लेष्मातक'वन परमपुण्य क्षेत्र है। इसमें देवता निवास करते हैं। इससे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम क्षेत्र है ही नहीं। प्रिय देववृन्द! मैंने मृगका रूप धारण करके जहाँ-जहाँ विचरण किया अथवा बैठा और सोया करता था, वहाँ-वहाँकी समूची, सब ओरकी भूमि सम्यक् प्रकारसे पुण्यक्षेत्र बन गयी है। सुरगणो! मेरे शृङ्गके ही ये तीन रूप बन गये थे, इसे भली प्रकार हृदयमें धारण कर लो। यह मेरा क्षेत्र पृथ्वीमें 'गोकर्णेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार सनातन भगवान् रुद्रने देवताओंको आदेश देकर अपना रूप संवरण कर लिया। अब देवता उन्हें देखनेमें असमर्थ हो गये और वे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। (अध्याय २१५)

'गोकर्णेश्वर' और 'शृङ्गेश्वर' आदिका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! मृगका रूप धारण करनेवाले भगवान् शंकर जब वहाँसे अन्यत्र चले गये तो मुझसहित उपस्थित सभी प्रधान देवताओंने पुनः परस्पर विचार करना प्रारम्भ किया। उस समयतक भगवान् शंकरका शृङ्ग तीन भागोंमें बँट चुका था। देवसमुदायने तदनन्तर वैदिक कर्मके अनुसार भलीभाँति पृथक्-पृथक् उनकी स्थापनाका प्रबन्ध किया। (भगवान् वराहका धरणीके प्रति कथन है—) देवि! वज्रपाणि इन्द्रके हाथमें सींगका अग्रभाग था। शक्तिशाली शंकरके शृङ्गका बिचला भाग (ब्रह्माजी कहते हैं—) मैंने ले रखा था। फिर देवराजने तथा मैंने उन भागोंको वहीं विधिपूर्वक स्थापित कर दिया। तब देवताओं, सिद्धों, देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंके प्रयाससे वह इस परम विशिष्ट मूर्तिकी 'गोकर्ण' नामसे प्रतिष्ठा हो गयी। श्रीहरिके हाथमें शृङ्गका मूलभाग पड़ा था। उन्होंने देवतीर्थसे उसकी स्थापना कर दी। वह विशाल विग्रह 'शृङ्गेश्वर'के नामसे वहाँ सुशोभित हुआ। शृङ्गमें तीन

रूप धारण करके भगवान् शिव विराजते थे। वे ही उन सभी स्थानोंमें प्रतिष्ठित हो गये। वस्तुतः वे एक ही अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हैं। उन्होंने उस मृगके शरीरमें अपने सौ भागोंको स्थान दिया था। फिर उस शृङ्गमें तीन प्रकारसे विभक्त भागोंको स्थापित कर सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न भगवान् शंकर उस मृगरूपी शरीरसे पृथक् होकर हिमालय पर्वतके शिखरपर पधार गये। पर्वतोंके राजा हिमालयपर सर्वसमर्थ शिवकी सैकड़ों मूर्तियाँ सुप्रतिष्ठित हैं। ये तीन प्रकारके विग्रह प्रभुके एक सींगमें ही सर्वप्रथम सुशोभित थे।

भगवान् शंकर समस्त संसारके शासक हैं। देवता और दानव सभी उन्हें अपना गुरु मानते हैं। उस समय उन सभीने अत्यन्त कठिन तपस्याके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की और अनेक प्रकारके वर प्राप्त किये। 'श्लेष्मातक'वनका समस्त भूभाग चारों ओरसे देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, यक्षों और महोरगोंके द्वारा भरा रहता था। तीर्थयात्राके विचारसे वे वहाँ आते और प्रदक्षिणा करनेमें संलग्न हो जाते थे। तीर्थोंके दर्शनसे फल प्राप्त होता है—यह भावना उनके मनमें भरी रहती थी तथा इस क्षेत्रका महान् फल भी उन्हें विदित था। प्रायः सभी सुरगण जहाँ-जहाँ तीर्थ हैं, वहाँ जाते और उस स्थानसे पुनः इस 'श्लेष्मातक'-तीर्थमें पधारते थे। एक दिन पुलस्त्य ऋषिका पौत्र रावण भी वहाँ आया। उसके साथ उसके दोनों भाई भी वहाँ आये थे। उसने अत्यन्त उग्र तपस्या करके भगवान् शंकरकी आराधना की। वहाँ सनातन श्रीशिवजी 'गोकर्णेश्वर' नामसे प्रतिष्ठित थे। जब रावणने उनकी असीम शुश्रूषा की, तब वे वर देनेमें कुशल प्रभु स्वयं उसपर संतुष्ट हो गये। ऐसी स्थितिमें रावणने तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये उनसे वर माँग लिया। अब भगवान् शंकरकी कृपासे उसकी सारी मनःकामना पूरी हो गयी। उन परम प्रभुने रावणकी बारम्बार सहायता की। फिर उसी क्षण त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करनेके विचारसे उसने अपने नगरसे प्रस्थान कर दिया। तीनों लोकोंको जीतकर उसने इन्द्रपर भी अपना अधिकार जमा लिया। इन्द्रजित् नामका उसका पुत्र उसे सहयोग दे रहा था। उस समय बहुत पहले इन्द्रने जो भगवान् शम्भुके सींगका अग्रभाग लेकर अपने यहाँ स्थापित किया था, उसे अपने पुत्रसहित रावणने उखाड़ लिया। पर जब वह राक्षस उसे लेकर अपनी पुरीको जा रहा था और सिन्धुके तटपर पहुँचा तो उस मूर्तिको जमीनपर रखकर मुहूर्तभर संध्या करने लगा। फिर संध्या समाप्त होनेपर जब उसने उसे बलपूर्वक उठानेकी चेष्टा की तो वह उसे उठा न सका और वह मूर्ति वज्रके समान कठोर बन गयी। तब रावणने उसे वहीं छोड़ दिया और लङ्काकी यात्रा की। (भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—) महामते! तुम्हें इसी मूर्तिको 'दक्षिणगोकर्णेश्वर' समझना चाहिये। भूतपति भगवान् शंकर वहाँ स्वयं प्रतिष्ठित हुए हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! मैंने तुम्हें विस्तारके साथ ये सभी बातें कह सुनायीं। इसी तरह महात्मा गोकर्णकी उत्तर दिशामें भी प्रतिष्ठा हुई है। विप्रर्षे! जैसे दक्षिणमें भगवान् 'शृङ्गेश्वर'की प्रतिष्ठा हुई है, उसी क्रमसे उत्तरमें भगवान् 'शैलेश्वर' विराजते हैं। बस! मैं तुमसे इस क्षेत्रके तीर्थोंकी महान् उत्पत्तिका प्रसङ्ग कह चुका। अब तुम मुझसे दूसरा कौन-सा प्रसङ्ग सुनना चाहते हो। (अध्याय २१६)

वराहपुराणकी फल-श्रुति

सनत्कुमारजी कहते हैं—भगवन्! आपने यथावत् मेरी सभी शङ्काओंका निराकरण कर सारी बातें स्पष्ट कर दीं। मैं संशयकी बातें पूछता रहा और आप उन्हें भलीभाँति स्पष्ट करते रहे हैं। विश्वरूप 'स्थाणु' जगदीश्वर भगवान् शंकर अप्रतिम तेजस्वी हैं। वे जंगलमें आनन्दपूर्वक विचर रहे थे। वह जंगल पुण्यक्षेत्र

।। जगत्‌का कल्याण करनेके लिये उनका विग्रह श्व जिस प्रकार प्रतिष्ठित हुआ तथा जैसे वे स्थान बन गये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। जगत्प्रभो! यथार्थरूपसे उसका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—महामुने! इन सभी तीर्थोंके फल- जो निश्चित रूप बतलाया गया है, उसका शेष भाग ये पुलस्त्यजी कहेंगे*। तुम इस समय मुनियोंके णी बनकर इस वनमें विराजो। तात! तुम मेरे समान वेद और वेदाङ्गके तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले पुत्र। जो पुरुष इस प्रसङ्गको सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट गा। यही नहीं, वह यशस्वी, कीर्तिमान् होकर इस कमें और पर-लोकमें भी पूज्य होगा। चारों वर्णोंके क्रियोंका कर्तव्य है कि वे मन और इन्द्रियोंको वधान करके निरन्तर इस प्रसङ्गका श्रवण करें। यह शानक परम मङ्गलस्वरूप, कल्याणमय, धर्म, अर्थ और मका साधक, समस्त मनोरथोंका प्रदान करनेवाला, परम वित्र, आयुवर्धक और विजय देनेमें सक्षम है। यह धन और यश देनेवाला, पापका नाशक, कल्याणकारी और शान्तिकारक है। इस पुराणको सुननेसे मनुष्यकी लोक- परलोकमें दुर्गति नहीं होती। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसका श्रवण-कीर्तन करता है, वह स्वर्गमें प्रतिष्ठित होता है।

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने सनत्कुमारजीसे ये सब बातें कहकर विराम लिया। उन सभी बातोंका मैंने भी आप लोगोंसे तत्त्वपूर्वक वर्णन किया। ऋषिवरो! भगवान् वराह और पृथ्वीदेवीके संवादका यह सारभाग है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सदा इसका पठन, श्रवण अथवा मनन करेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर परमगति प्राप्त करेगा। प्रभासक्षेत्र, नैमिषारण्य, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग, ब्रह्मतीर्थ और अमरकण्टकमें जानेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उससे कोटि-गुणा अधिक फल इस पुराणके श्रवण एवं पठनसे होता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको कपिला दान करनेपर जो फल मिलता है, उतना फल इस वराहपुराणके एक अध्यायका श्रवण करनेसे हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पवित्र होकर सावधानीके साथ इस पुराणके दस अध्यायोंका श्रवण करनेपर मनुष्य 'अग्निष्टोम' एवं 'अतिरात्र' यज्ञोंके फलका भागी हो जाता है। जो बुद्धिमान् व्यक्ति उत्तम भक्तिके साथ निरन्तर इसका श्रवण करता रहता है, उसे भगवान् वराह-के वचनानुसार यज्ञो, सभी दानों तथा अखिल तीर्थोंके अभिषेकका फल प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई संदेहकी बात नहीं। पुत्रहीन व्यक्ति इसके श्रवणसे पुत्रको और पुत्रवान् सुन्दर पौत्रको प्राप्त करता है। जिसके घरमें यह वराहपुराण लिखित रूपमें रहता है और उसकी पूजा होती है, उसपर भगवान् नारायण पूर्ण संतुष्ट हो जाते हैं।

वसुधरे! इस पुराणका श्रवण करके सनातन भगवान् विष्णुकी भाँति चन्दन, पुष्प और वस्त्रोंसे पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यदि राजा हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार ग्राम आदिका दान करना चाहिये। जो मानव पवित्र होकर संयत-चित्तसे इस पुराणका श्रवण करके इसकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय २१७)

* श्रीवराहपुराण समाप्त *

* ... है, जिसपर आगेके लेखोंमें पर्याप्त विचार प्राप्त होगा।

वराहपुराणके ग्रन्थ-परिमाणकी समस्या

(लेखक—श्री आनन्दस्वरूपजी गुप्त, एम्० ए०, शास्त्री)

प्राक्कथन

अठारह महापुराणोंकी सूची प्रायः सभी महापुराणोंमें दी हुई है। जो लगभग समान है, केवल क्रममें कुछ भेद है। ११वीं शताब्दीमें महमूद गजनवीके भारत-आक्रमणके समय अरबदेशीय विद्वान् अल्बेरूनीने, जो उस समय (१०३०ई०में) भारत आया था, पुराणोंकी दो सूचियाँ दी हैं। इनमें एक तो विष्णुपुराणकी सूची है, परंतु दूसरी सूची जो उसने दी है, उसमें 'पद्म,' 'भागवत,' 'नारदीय,' 'ब्रह्मवैवर्त,' 'अग्नि' तथा 'लिङ्गपुराण' के स्थानमें 'आदिपुराण,' 'नृसिंहपुराण,' 'नन्द*पुराण,' 'आदित्य-पुराण,' 'सोमपुराण' तथा 'साम्बपुराण' के नाम हैं। इनमेंसे चार पुराणों ('नरसिंह,' 'नन्दी†पुराण,' 'साम्ब' तथा 'पद्मपुराण')को 'मत्स्यपुराण' (५३। ६०-६३)में 'आदित्य-पुराण'तथा 'भविष्यपुराण'का उपभेद माना है। परंतु 'वराह-पुराण'का नाम महापुराणोंकी सभी सूचियोंमें संनिविष्ट है। अधिकतर सूचियोंमें उसे १२वाँ महापुराण माना है। 'पद्मपुराण' (आनन्दाश्रम-संस्करण, ६ । २६३ । ८१–८५) तथा 'मत्स्यपुराण'में वराहपुराणकी गणना सात्त्विक महापुराणोंमें की गयी है, क्योंकि उसमें भगवान् श्रीहरिका माहात्म्य विशेष है—

'सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः'

(मत्स्यपु० ५३ । ६८)

'मत्स्य'(अ० ५३), 'नारदीय' (१ । ९२–१०९), 'भागवत' (१२ । १३ । ४–८), 'देवीभागवत' (१ । ३ । ३–१२), 'ब्रह्मवैवर्त'(४ । १३३ । ११–२१), 'वायु' (१ । २२ । ३–१०), 'स्कन्द' (७ । २ । २८–७७) तथा 'अग्निपुराण' (२७२ । १–२३)में प्रत्येक महापुराणके ग्रन्थ-परिमाणका भी उल्लेख है। 'भविष्यपुराण'के अनुसार पहले प्रत्येक महापुराणका परिमाण १२ हजार श्लोक ही था, जो बढ़ते-बढ़ते आख्यान-उपाख्यानोंसे युक्त होकर बहुत बड़े आ[कार]प्राप्त हो गया।

सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ ।
द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः ॥
पुनर्वृद्धिं गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप ।

(भविष्यपुराण १ । १ । १०३)

इस प्रकार 'पुराण-वाङ्मय' बढ़ते-बढ़ते चार [लाख] श्लोकतक पहुँच गया —

'एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः ।'

(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । [..])

पुराण 'सर्वशास्त्रमय' हैं तथा ये मानवोपयोगी ज्ञा[न]के एक 'विश्वकोश'-से हैं। उसमें समय-समयपर दे[श]कालके अनुसार यथोचित परिवर्धन तथा परिवर्तन होता रहा है, जो दूषण नहीं, भूषण ही है। यह पुरा[ण]वाङ्मय प्रत्येक देश-कालमें धर्मके सम्बन्धमें परम प्रमा[ण] माना गया है (भविष्यपुराण १ । १ । ६५)।

वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

१. पुराणोंमें उल्लिखित वराहपुराणका ग्रन्थ परिमाण

इस समय जो मुख्य प्रश्न हमारे सामने है, वह वराहपुराणके ग्रन्थ-परिमाणके सम्बन्धमें है। पुराणोंमें १८ महापुराणोंकी जो सूचियाँ संनिविष्ट हैं, उनमेंसे उपर्युक्त मत्स्य, 'नारदीय' आदिमें 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २४ हजार श्लोक दिया हुआ है। केवल अग्नि-पुराणमें यह परिमाण १४ हजार है। परंतु इस समय 'वराहपुराण'का एशियाटिक-सोसायटी तथा 'वेंकटेश्वरप्रेस'-के जो देवनागरी अक्षरोंमें मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें भी ग्रन्थपरिमाण केवल १० सहस्रके ही लगभग हैं। 'बंगवासी' प्रेसके द्वारा बंगाक्षरोंमें मुद्रित संस्करणमें भी इतने

---

* तहक़ीक़े हिंद—पृ० ६३, Sechau's—'Alberuni's India, P. 130, सं० ८ पर नन्दीकी जगह 'नन्द' शब्द ही है। 'हाजरा'के अनुसार 'हेमाद्रि'में तो 'नान्दपुराण' भी प्रयुक्त है।

† इस दूसरे स्थानपर यह नाम शुद्ध है।

ही श्लोक हैं और उत्तर भारतके सभी देवनागरी हस्तलेखोंमें भी 'वराहपुराण'का लगभग इतना ही ग्रन्थ-परिमाण उपलब्ध है। शेष १४ सहस्र श्लोकोंका क्या हुआ यह प्रश्न अब विचारणीय है। सम्भव है, ये श्लोक वराहपुराणमें कभी रहे हों और बादमें कुछ नष्ट हो गये हों तथा कुछ भिन्न-भिन्न माहात्म्योंके रूपमें इधर-उधर बिखर गये हों। परंतु 'वराहपुराण'के अनेक श्लोक धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंमें तथा 'रामानुज' सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। उनमेंसे बहुत-से श्लोक इस समय मुद्रित 'वराहपुराण'में तथा हस्तलेखोंमें उपलब्ध नहीं हैं। यह स्थिति लगभग सभी पुराणोंके साथ है।

२. उपलब्ध वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

इस समय उपलब्ध दशसहस्रात्मक 'वराहपुराण' अपूर्ण है। यह बात 'नारदीय' पुराणमें दी हुई विषय-सूचीसे स्पष्ट है। 'नारदीय' पुराणमें 'वराहपुराण'के पूर्वभागकी जो विषय-सूची दी हुई है, केवल वही 'वराहपुराण'की मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकोंमें मिलती है।

'नारदीय'पुराणमें 'वराहपुराण'के उत्तरभागकी जो विषय-सूची दी हुई है, उसमें कथित विषय उपलब्ध 'वराह'-पुराणमें नहीं मिलते। 'नारदीय'-पुराणके अनुसार 'वराहपुराण'के उत्तरभागमें पुलस्त्य तथा कुरुराजके संवादके रूपमें सभी तीर्थोंका विस्तृत माहात्म्य, सम्पूर्ण धर्मोंका विवेचन तथा पौष्कर पुण्यपर्वका वर्णन है—

उत्तरे ... ।
... ।

(२१८वाँ) अध्याय और जोड़ दिया गया है, जो अधिकतर हस्तलेखोंमें नहीं मिलता। परंतु २१७ अध्यायके आरम्भके श्लोकोंमें ऐसा निर्देश मिलता है कि २१७ अध्यायके पश्चात् वराहपुराणमें उत्तरभाग भी रहा होगा; यथा—

> पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषं यदतोऽन्यन्महामुने।
> सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम्।
> कुरुराजं पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतो वने॥
> (वराहपु० २१७।४-५)

अतएव यही कहा जा सकता है कि वर्तमान समयमें उपलब्ध वराहपुराण पूर्ण नहीं है। इसका उत्तरभाग जो 'नारदीय'-पुराणके समयतक मिलता था, वह अब अप्राप्य है।

'बंगवासी'-प्रेसके बंगाली संस्करणमें भी यह अनुक्रमणिका ज्यों-की-त्यों दी हुई है। 'श्रीवेंकटेश्वर' प्रेसके संस्करणमें इस अनुक्रमणिकाके अन्तमें लिखा हुआ है—

'इति श्रीगौडलनिवासिकालिदाससतनूजनुषा जीवनरामशर्मणा विनिर्मिता श्रीवराहपुराणस्य विषयानुक्रमणिका सम्पूर्णा।'

इससे सिद्ध होता है कि यह अनुक्रमणिका वराहपुराणग्रन्थके अन्तर्गत नहीं आ सकती। अतएव मुद्रित संस्करणों तथा अधिकतर देवनागरी हस्तलेखोंके अनुसार उपलब्ध 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २१७ अध्याय या १० सहस्र श्लोक ही है।

३. वराहपुराणसे सम्बद्ध स्वतन्त्र माहात्म्य-ग्रन्थ

इस ग्रन्थ-परिमाणके अतिरिक्त अनेक माहात्म्य-ग्रन्थ पृथक् हस्तलेखोंके रूपमें ऐसे भी प्राप्त होते हैं, ... वराहपुराणके अन्तर्गत (वराहपुराणे) ... है। थियोडोर ऑफ्रेस्ट (Theodor ...) के 'कैटेलागस कैटेलोगरम' (Catalogus ...) ... 'वराहपुराण'के अन्तर्गत ... माहात्म्य तथा स्तोत्र-सम्बन्धी ... गया है; जिनमेंसे कुछ

अतएव यद्यपि वर्तमान उपलब्ध वराहपुराणमें लगभग दस सहस्र श्लोक ही उपलब्ध होते हैं, परंतु इसके अतिरिक्त इसी पुराणके अन्तर्गत अथवा इससे सम्बद्ध विभिन्न संहिताओं, माहात्म्यों तथा स्तोत्रोंके रूपमें वराहपुराणका और भी अंश रहा होगा, इसका स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है ।

४. वराहपुराणके बंगला हस्तलेखोंमें उपलब्ध ग्रन्थ-परिमाण

वराहपुराणका दस सहस्रसे भी कम ग्रन्थ-परिमाण बंगला लिपिके हस्तलेखोंमें मिलता है । तीनों बंगला लिपिवाले हस्तलेखोंमें, जिनका पाठ-संवाद (Collation) हमने अबतक किया है, 'वेङ्कटेश्वर'-संस्करणके २०२ अध्याय 'कर्मविपाको नाम'के ६२ श्लोकके पश्चात् फलश्रुति देकर वराहपुराणकी समाप्ति कर दी गयी है ।

५. दक्षिणके हस्तलेखोंमें वराहपुराणका ग्रन्थ-परिमाण

'सरस्वती-महल' तंजौर (दक्षिणभारत)से प्राप्त देवनागरी-लिपिके एक हस्तलेख (डी० १०१३०) में 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण केवल १०० अध्यायमात्र ही है । इसमें 'श्रीवेङ्कटेश्वर'-संस्करणके प्रथम ९९ अध्याय तथा ११२ अध्याय के ५६ श्लोकके पश्चात्के फलश्रुति तथा गुरुशिष्य-पाठपरम्पराके अन्तके कुछ श्लोक हैं । इस प्रकार तंजौरवाले उपर्युक्त हस्तलेखमें 'श्वेतोपाख्यान'के पश्चात् ही 'वराहपुराण' समाप्त कर दिया गया है । इस हस्तलेखमें 'श्रीवेङ्कटेश्वर'-संस्करणके १०० अध्यायसे लेकर ११२ अ० के ५६ श्लोकतकका पाठ, जिसमें विविध धेनुदानोंका वर्णन है, नहीं है । उपर्युक्त तीनों बंगला हस्तलेखोंमें भी यह धेनुदानवाला अंश नहीं है । इण्डिया आफिस, लंदनसे प्राप्त ग्रन्थ-लिपिवाला एक हस्तलेख (कै० ६८०७) भी इस १०० अध्यायवाले तंजौर-हस्तलेखसे पूर्णतया मिलता है । अतएव तंजौरवाला देवनागरी लिपिका उपर्युक्त हस्तलेख दक्षिण भारतवाले ग्रन्थ-लिपिमें लिखित १०० अध्यायोंके 'वराहपुराण'की परम्पराके अन्तर्गत ही है । त्रिवेन्द्रम् (केरल)से प्राप्त मलयालम्-हस्तलेखमें भी देवनागरी लिपिवाले ग्रन्थ 'वराहपुराण'के समान ही १०० अध्याय हैं । अतएव इन तीनों हस्तलेखोंमें दक्षिणभारतीय १०० अध्यायवाले वराहपुराणकी परम्परा सुरक्षित है ।

नारदीयपुराणोक्त वराहपुराणकी विषय-सूचीमें इतने (अर्थात् श्वेतोपाख्यानपर्यन्त) ग्रन्थको 'प्रथमोद्देशः' नाम दिया गया है—

> पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम् ।
> इत्यादि कृतवृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम्* ॥
> (नारदपुराण १ । १०३ । ८)

'भंडारकर शोध-संस्थान' पूना तथा 'ब्रिटिश म्यूजियम लंदनवाले' इन दो हस्तलेखोंमें 'श्वेतोपाख्यान'के पश्चात्—'प्रथमोद्देशः समाप्तः'—ऐसा पाठ भी है । बंगला-हस्तलेखोंमें यहाँ 'नारायणांशः समाप्तः'—ऐसा लिखा है ।

६. वराहपुराणका कौशिक-माहात्म्य

यहाँ इस संदर्भमें एक बात और विचारणीय है । दक्षिण भारतमें कन्नड तथा आन्ध्र लिपियोंमें लिखा हुआ 'वराहपुराण'का 'कौशिकमाहात्म्य' नामक ग्रन्थ (वेङ्कटेश्वरप्रेस-संस्करणमें १३९वें अध्यायका अंश) अलग हस्तलेखोंके रूपमें मिलता है । इन दाक्षिणात्य ग्रन्थ-लिपियोंके हस्तलेखमें इस 'कौशिक-माहात्म्य'को वराहपुराणका ४०वाँ अध्याय माना गया है तथा कन्नड और आन्ध्र (तेलगु) हस्तलेखोंमें इसे वराहपुराणका २४वाँ अध्याय माना गया है । सम्भव है किसी समय दक्षिणभारतमें प्रचलित वराहपुराणमें ग्रन्थलिपिमें लिखित मत्स्यपुराणके समान ही पूर्वभाग तथा उत्तरभाग—ये दो भाग रहे हों और 'कौशिक-माहात्म्य' उत्तरभागमें आया हो । बादमें इस प्रकारके कुछ माहात्म्य अलग हो गये हों और घटते-घटते यह

* यहाँ 'श्रीवेङ्कटेश्वर-प्रेस'की प्रतिमें 'प्रथमे दर्शित मया' यह पाठ है ।

वराहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा ।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये*॥
(शारदातिलक १७ । १५७ चौखं० सं०)

कल्याणकामी प्राणी अज्ञानोत्पन्न काम-क्रोध-शोक-मोह, मात्सर्यादि विविधानर्थ-परिप्लुत भवाटवीसे मुक्त होकर विशुद्ध परमात्मपदपर प्रतिष्ठित हो जायँ, एतदर्थ ही नारायणावतार, कृपालु भगवान् वेदव्यासने वेदोंका विभाजन एवं तदर्थोपबृंहित अष्टादश पुराणोपपुराण, वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), महाभारत एवं वेदव्यास-स्मृति आदि विविध धर्मशास्त्रोंका निर्माण किया—

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद् भवेत् ॥
(विष्णुपुराण ३ । ४ । ५, पद्म० १ । १ । ४५)

वस्तुतः सभी शास्त्रों, मन्त्रों, जप-तप, ध्यान-समाधि एवं अन्य धर्म-कर्मोंका भी एकमात्र यही उद्देश्य है कि साधक सभी दुःखोंसे मुक्त होकर कैवल्यका लाभ करे ।† पर वेद-वेदान्तादि शास्त्र दुरूह हैं, अतः तदुपबृंहण-स्वरूप पुराणोंका निर्माण हुआ, जिनमें भागवतादि सात्त्विक पुराणोंका प्रचार-प्रसार पर्याप्त है। पद्मपुराण (आ० सं०) उत्तरखण्ड २६३ । ८३में श्री'वराह'पुराणको भी सात्त्विक बतलाया गया है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वराहं शुभदर्शने ।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ।

(श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस तथा मोरके संस्करणोंमें ये ६ । २३६के १८,२० श्लोक हैं), क्योंकि इनमें भगवान् श्रीहरिकी महिमा निरूपित है—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥

प्रायः सभी पुराणोंके अनुसार यह वराह या वाराहपुराण बारहवीं संख्यापर ही परिगणित है‡ । किंतु इसकी श्लोक-संख्या उन पुराणोंमें भिन्न-भिन्न निर्दिष्ट है । कहीं इसे २५ हजार श्लोकोंका तो कहीं १४ हजार श्लोकोंका बतलाया गया है । श्रीमद्भागवत आदिमें इसे २५ हजार श्लोकोंका, किंतु अग्निपुराणमें इसे १४ हजार श्लोकोंका ही बतलाया गया है—

चतुर्दशसहस्राणि वराहं विष्णुनेरितम् ।
भूमौ वराहचरितं मानवाय प्रवर्तितम् ।
(२७२ । १६)

पर अभीतककी भारतकी सभी उपलब्ध प्रतियोंमें श्रेष्ठ श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेसके संस्करणमें भी प्रायः १० हजार श्लोक ही उपलब्ध हैं । अतः अनुमान होता है कि 'गीतामाहात्म्य' 'दुर्गाकवचादि' इसके खिल-भागके अंश भी २५ हजार-की संख्यामें वहाँसे वैसे ही जोड़ लिये गये हैं—जैसे मार्कण्डेयपुराणमें अर्गला, कीलक एवं प्राधानिक-रहस्यादि ।

वराहपुराणका निर्देश तथा शोधकार्य

इस वराहपुराणका स्पष्टरूपसे उल्लेख भविष्योत्तर-पुराणके १९४वें अध्यायमें—'धरणि-वराह-संवाद'के

* समुद्र जिसकी करधनी—मेखला, नदियाँ उत्तरीय—दुपट्टा-स्वरूप हैं तथा सुमेरु गिरि जिसका स्वर्णमुकुट है, ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वीको जिन्होंने केवल एक दाढ़के सहारे ऊपर उठा लिया—उद्धृतकर धारण कर रखा था, मैं उन भगवान् आदिवराहकी शरण लेता हूँ।

† (क) विमुञ्चति यदा कामान् मानवो मनसि स्थितान् । तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥
(भागवत ७ । १० । ९)

(ख) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
(कठोपनि० २ । ३ । १४, बृहदार० ४ । ४ । ७)

(ग) षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः । तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥
(भागवत ७ । १५ । २८)

‡ इसी प्रकार इसमें बारह वाराहक्षेत्रों तथा द्वादश द्वादशीव्रतोंका उल्लेख भी बड़ा आश्चर्यप्रद है । भविष्यपुराण (प्रतिसर्ग ३ । १८ । १३)में इसे मार्कण्डेय ऋषिद्वारा रचित कहा गया है—'मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम् ।' पर अनुमान होता है कि वह इस वराहपुराणसे भिन्न था; क्योंकि यह स्वयं भगवान् वराह या व्यासद्वारा कथित है ।

वराहपुराण केवल १०० अध्यायोंका ही रह गया हो।

७. रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें उद्धृत वराहपुराण

रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें वराहपुराणके कुछ ऐसे श्लोक भी उद्धृत हैं, जो इस समय वराहपुराणकी मुद्रित तथा प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें उनके ११५ तथा १४२ अध्यायोंमें मिलते हैं। इससे भी उपर्युक्त अनुमानकी ही पुष्टि होती है। अर्थात् सम्भव है किसी समय दक्षिणभारतके ग्रन्थलिपि इत्यादिमें लिखित वराहपुराणमें भी १००से अधिक अध्याय रहे हों। परंतु इस समय वराहपुराणके कन्नड ग्रन्थलिपिके तथा मल्याळम्लिपिके हस्तलेखोंमें 'वराहपुराण' आरम्भके १०० अध्यायोंके पश्चात् समाप्त हो जाता है।

८. प्राचीन 'वराहपुराणका' सम्भावित ग्रन्थ-परिमाण

वर्तमान 'वराहपुराण'की मुद्रित पुस्तकोंमें ११२वें अध्यायके अन्तमें जो फलश्रुति तथा गुरुशिष्य-परम्परा दी हुई है, उससे यही अनुमान होता है कि प्राचीन वराहपुराण यहींपर समाप्त होता था; क्योंकि ११३वें अध्यायका आरम्भ नवीन मङ्गलाचरणसे तथा 'सनत्कुमार-भूमि-संवाद'से किया गया है। अतः सम्भव है कि ११२वें अध्यायके बादका ग्रन्थ प्राचीन 'वराहपुराण'में शनैः-शनैः जुड़ता रहा हो और बढ़ते-बढ़ते यह कभी २४ हजार श्लोकोंतक भी पहुँच गया हो। इसी प्रकार प्रायः सभी पुराणोंमें वृद्धि हुई है, जो नारदीय पुराणके इस निर्देश समय-तक चरम सीमापर पहुँच गयी थी। उस समय भिन्न-भिन्न पुराणोंका इस प्रकार जो उपबृंहित ग्रन्थ-परिमाण उपलब्ध था, वही नारदीय पुराण तथा अन्य मत्स्य आदि पुराणोंमें संगृहीत कर लिया गया। बादमें कालचक्रके प्रभावसे अनेक पुराणोंका बहुत-सा अंश सदाके लिये नष्ट हो गया।

स्वर्गीय पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने अपने 'अष्टादश पुराणदर्पण' नामक ग्रन्थमें दक्षिणभारतमें प्रचलित एक किसी अन्य ऐसे 'वराहपुराण'का भी उल्लेख किया है, जिसका पाठ तथा अध्याय-क्रम 'नारदीय'-पुराणमें निर्दिष्ट 'वराहपुराण'से कुछ भिन्न है।

उपसंहार

इस प्रकार यद्यपि सभी पुराणोंमें 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २४ हजार श्लोक दिया है, परंतु २४ हजार श्लोकवाला वह 'वराहपुराण' मुद्रित अथवा हस्तलिखितरूपमें अब कहीं भी प्राप्य नहीं है। इस समय 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण अधिक-से-अधिक १० हजार श्लोकोंमें ही उपलब्ध है। नारदीय पुराणोक्त इसका उत्तरभाग अब अनुपलब्ध है। देश-कालके अनुसार अन्य पुराणोंके समान ही 'वराहपुराण'के ग्रन्थ-परिमाणमें भी भेद होता गया। सुतरां! मूल 'वराहपुराण'का वास्तविक ग्रन्थ-परिमाण क्या रहा होगा, यह समस्या एक प्रकारसे अब भी बनी ही हुई है।

भगवान् वराहकी जय

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना। शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे ॥

(महाकवि 'श्रीजयदेव'कृत—गीतगोविन्द १। २। ३)

विश्वेश्वर प्रभो! आपने जब वराहरूप धारण किया था तो आपकी दाढ़के अग्रभागमें संलग्न होकर पृथ्वी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो बालचन्द्रमाके अन्तर्वर्ती शशाङ्क-चिह्नकी कला निमग्न हो। केशव! आपके इस प्रकारके लीलाविग्रह-स्वरूपकी जय हो।

वराहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये*॥
(शारदातिलक १७। १५७ चौखं० सं०)

कल्याणकामी प्राणी अज्ञानोत्पन्न काम-क्रोध-शोक-मोह, मात्सर्यादि विविधानर्थ-परिप्लुत भवाटवीसे मुक्त होकर विशुद्ध परमात्मपदपर प्रतिष्ठित हो जायँ, एतदर्थ ही नारायणावतार, कृपालु भगवान् वेदव्यासने वेदोंका विभाजन एवं तदर्थोपबृंहित अष्टादश पुराणोपपुराण, वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), महाभारत एवं वेदव्यास-स्मृति आदि विविध धर्मशास्त्रोंका निर्माण किया—

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद् भवेत्॥
(विष्णुपुराण ३। ४। ५, पद्म० १। १। ४५)

वस्तुतः सभी शास्त्रों, मन्त्रों, जप-तप, ध्यान-समाधि एवं अन्य धर्म-कर्मोंका भी एकमात्र यही उद्देश्य है कि साधक सभी दुःखोंसे मुक्त होकर कैवल्यका लाभ करे।† पर वेद-वेदान्तादि शास्त्र दुरूह हैं, अतः तदुपबृंहण-स्वरूप पुराणोंका निर्माण हुआ, जिनमें भागवतादि सात्त्विक पुराणोंका प्रचार-प्रसार पर्याप्त है। पद्मपुराण (आ० सं०) उत्तरखण्ड २६३। ८३में श्री'वराह'पुराणको भी सात्त्विक बतलाया गया है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।

(श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस तथा मोरके संस्करणोंमें ये ६। २३६के १८,२० श्लोक हैं), क्योंकि इनमें भगवान् श्रीहरिकी महिमा निरूपित है—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥

प्रायः सभी पुराणोंके अनुसार यह वराह या वाराहपुराण बारहवीं संख्यापर ही परिगणित है‡। किंतु इसकी श्लोक-संख्या उन पुराणोंमें भिन्न-भिन्न निर्दिष्ट है। कहीं इसे २५ हजार श्लोकोंका तो कहीं १४ हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत आदिमें इसे २५ हजार श्लोकोंका, किंतु अग्निपुराणमें इसे १४ हजार श्लोकोंका ही बतलाया गया है—

चतुर्दशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम्।
भूमौ वराहचरितं मानवाय प्रवर्तितम्।
(२७२। १६)

पर अभीतककी भारतकी सभी उपलब्ध प्रतियोंमें श्रेष्ठ श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेसके संस्करणमें भी प्रायः १० हजार श्लोक ही उपलब्ध हैं। अतः अनुमान होता है कि 'गीतामाहात्म्य' 'दुर्गाकवचादि' इसके खिल-भागके अंश भी २५ हजार-की संख्यामें वहाँसे वैसे ही जोड़ लिये गये हैं—जैसे मार्कण्डेयपुराणमें अर्गला, कीलक एवं प्राधानिक-रहस्यादि।

वराहपुराणका निर्देश तथा शोधकार्य

इस वराहपुराणका स्पष्टरूपसे उल्लेख भविष्योत्तर-पुराणके १९४वें अध्यायमें—'धरणि-वराह-संवाद'के

* समुद्र जिसकी करधनी—मेखला, नदियाँ उत्तरीय—दुपट्टा-स्वरूप हैं तथा सुमेरु गिरि जिसका स्वर्णमुकुट है, ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वीको जिन्होंने केवल एक दाढ़के सहारे ऊपर उठा लिया—उद्धृतकर धारण कर रखा था, मैं उन भगवान् आदिवराहकी शरण लेता हूँ।

† (क) विमुञ्चति यदा कामान् मानवो मनसि स्थितान्। तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥
(भागवत ७। १०। ९)

(ख) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥
(कठोपनि० २। ३। १४, बृहदार० ४। ४। ७)

(ग) षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः। तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः॥
(भागवत ७। १५। २८)

‡ इसी प्रकार इसमें बारह वाराहक्षेत्रों तथा द्वादश द्वादशीव्रतोंका उल्लेख भी बड़ा आश्चर्यप्रद है। भविष्यपुराण (प्रतिसर्ग ३। २८। १२)में इसे मार्कण्डेय ऋषिद्वारा रचित कहा गया है—'मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम्।' पर अनुमान होता है कि वह इस वराहपुराणसे भिन्न था; क्योंकि यह स्वयं भगवान् वराह या व्यासद्वारा कथित है।

वराहपुराण केवल १०० अध्यायोंका ही रह गया हो।

७. रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें उद्धृत वराहपुराण

रामानुजाचार्यके गीताभाष्यमें वराहपुराणके कुछ ऐसे श्लोक उद्धृत हैं, जो इस समय वराहपुराणकी मुद्रित तथा प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें अ० ११५ तथा १४२ अध्यायोंमें मिलते हैं। इससे भी उपर्युक्त अनुमानकी ही पुष्टि होती है। अर्थात् सम्भव है किसी समय दक्षिणभारतके [illegible] प्रचलित विशिष्ट वराहपुराणमें भी १००से अधिक अध्याय रहे हों। परंतु इस समय वराहपुराणके [illegible] तथा मत्स्य-[illegible] हस्तलेखोंमें 'वराहपुराण' आरम्भके १०० अध्यायोंके पश्चात् समाप्त हो जाता है।

८. प्राचीन 'वराहपुराणका' सम्भावित ग्रन्थ-परिमाण

वर्तमान 'वराहपुराण'की मुद्रित पुस्तकोंमें ११२वें *अध्यायके अन्तमें जो फलश्रुति तथा गुरुशिष्य-परम्परा दी हुई* है, उससे यही अनुमान होता है कि प्राचीन वराह-पुराण यहींपर समाप्त होता था; क्योंकि ११३वें अध्याय-का आरम्भ नवीन मङ्गलाचरणसे तथा 'सनत्कुमार-भूमि-संवाद'से किया गया है। अतः सम्भव है कि ११२वें अध्यायके बादका ग्रन्थ प्राचीन 'वराहपुराण'में शनैः-शनैः जुड़ता रहा हो और बढ़ते-बढ़ते यह कभी २४ हजार श्लोकोंतक भी पहुँच गया हो। इसी प्रकार प्रायः सभी पुराणोंमें वृद्धि हुई है, जो नारदीय पुराणके इस निर्देश सम-[illegible] तक [illegible] नहीं [illegible] थी। इस प्रकार भिन्न-भिन्न पुराणोंका इस प्रकार भी [illegible] सम्पादित [illegible] नहीं [illegible]। पुराण तथा अन्य [illegible] पुराणोंमें [illegible] कर दिया गया। बादमें कालक्रमसे अनेक पुराणोंका बहुत-सा अंश लुप्त भी हो गया।

[illegible] इस प्रसङ्गमें विशेष ज्ञातव्य है कि 'आदित्य पुराणसंग्रह' नामक ग्रन्थमें दक्षिणभारतमें प्रचलित एक किसी अन्य ऐसे 'वराहपुराण'का भी उल्लेख मिलता है, जिसका पाठ तथा अध्याय-क्रम नारदीय-पुराणमें निर्दिष्ट वराहपुराणसे कुछ भिन्न है।

उपसंहार

इस प्रकार यद्यपि सभी पुराणोंमें 'वराह-पुराण'का ग्रन्थ-परिमाण २४ हजार श्लोक दिया है, परंतु २४ हजार श्लोकोंवाला यह *'वराहपुराण' मुद्रित अथवा* हस्तलिखित रूपमें अब कहीं भी प्राप्य नहीं है। इस समय 'वराहपुराण'का ग्रन्थ-परिमाण अधिक-से-अधिक १० हजार श्लोकोंमें ही उपलब्ध है। नारदीय पुराणोक्त इसका उत्तरभाग अब अनुपलब्ध है। देश-कालके अनुसार अन्य पुराणोंके समान ही 'वराहपुराण'के ग्रन्थ-परिमाणमें भी भेद होता गया। सुतरां! मूल 'वराह-पुराण'का वास्तविक ग्रन्थ-परिमाण क्या रहा होगा, यह समस्या एक प्रकारसे अब भी बनी ही हुई है।

भगवान् वराहकी जय

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना। शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे॥

(महाकवि 'श्रीजयदेव'कृत—गीतगोविन्द १।२।३)

विश्वेश्वर प्रभो! आपने जब वराहरूप धारण किया था तो आपकी दाढ़के अग्रभागमें संलग्न होकर पृथ्वी इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो बाल-चन्द्रमाके अन्तर्वर्ती शशाङ्क चिह्नकी कला निमग्न हो। केशव! आपके इस प्रकारके *लीलाविग्रहस्वरूपकी जय हो।*

वराहपुराण—एक संक्षिप्त परिचय

(ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये*॥
(शारदातिलक १७ । १५७ चौखं० सं०)

कल्याणकामी प्राणी अज्ञानोत्पन्न काम-क्रोध-शोक-मोह, मात्सर्यादि विविधानर्थ-परिप्लुत भवाटवीसे मुक्त होकर विशुद्ध परमात्मपदपर प्रतिष्ठित हो जायँ, एतदर्थ ही नारायणावतार, कृपालु भगवान् वेदव्यासने वेदोंका विभाजन एवं तदुपबृंहित अष्टादश पुराणोपपुराण, वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), महाभारत एवं वेदव्यास-स्मृति आदि विविध धर्मशास्त्रोंका निर्माण किया—

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद् भवेत्॥
(विष्णुपुराण ३ । ४ । ५, पद्म० १ । १ । ४५)

वस्तुतः सभी शास्त्रों, मन्त्रों, जप-तप, ध्यान-समाधि एवं अन्य धर्म-कर्मोंका भी एकमात्र यही उद्देश्य है कि साधक सभी दुःखोंसे मुक्त होकर कैवल्यका लाभ करे।† पर वेद-वेदान्तादि शास्त्र दुरूह हैं, अतः तदुपबृंहण-स्वरूप पुराणोंका निर्माण हुआ, जिनमें भागवतादि सात्त्विक पुराणोंका प्रचार-प्रसार पर्याप्त है। पद्मपुराण (आ० सं०) उत्तरखण्ड २६३ । ८३में श्री'वराह'पुराणको भी सात्त्विक बतलाया गया है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।

(श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस तथा मोरके संस्करणोंमें ये ६ । २३६के १८,२० श्लोक हैं), क्योंकि इनमें भगवान् श्रीहरिकी महिमा निरूपित है—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥

प्रायः सभी पुराणोंके अनुसार यह वराह या वाराहपुराण बारहवीं संख्यापर ही परिगणित है‡। किंतु इसकी श्लोक-संख्या उन पुराणोंमें भिन्न-भिन्न निर्दिष्ट है। कहीं इसे २५ हजार श्लोकोंका तो कहीं १४ हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। श्रीमद्भागवत आदिमें इसे २५ हजार श्लोकोंका, किंतु अग्निपुराणमें इसे १४ हजार श्लोकोंका ही बतलाया गया है—

चतुर्दशसहस्राणि वराहं विष्णुनेरितम्।
भूमौ वराहचरितं मानवाय प्रवर्तितम्।
(२७२ । १६)

पर अभीतककी भारतकी सभी उपलब्ध प्रतियोंमें श्रेष्ठ श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेसके संस्करणमें भी प्रायः १० हजार श्लोक ही उपलब्ध हैं। अतः अनुमान होता है कि 'गीतामाहात्म्य' 'दुर्गाकवचादि' इसके खिल-भागके अंश भी २५ हजार-की संख्यामें वहाँसे वैसे ही जोड़ लिये गये हैं—जैसे मार्कण्डेयपुराणमें अर्गला, कीलक एवं प्राधानिक-रहस्यादि।

वराहपुराणका निर्देश तथा शोधकार्य

इस वराहपुराणका स्पष्टरूपसे उल्लेख भविष्योत्तर-पुराणके १९४वें अध्यायमें—'धरणि-वराह-संवाद'के

---

* समुद्र जिसकी करधनी—मेखला, नदियाँ उत्तरीय—दुपट्टा-स्वरूप हैं तथा सुमेरु गिरि जिसका स्वर्णमुकुट है, ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वीको जिन्होंने केवल एक दाढ़के सहारे ऊपर उठा लिया—उद्धृतकर धारण कर रखा था, मैं उन भगवान् आदिवराहकी शरण लेता हूँ।

† (क) विमुञ्चति यदा कामान् मानवो मनसि स्थितान्। तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते॥
(भागवत ७ । १० । ९)

(ख) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥
(कठोपनि० २ । ३ । १४, बृहदार० ४ । ४ । ७)

(ग) षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः। तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः॥
(भागवत ७ । १५ । २८)

‡ इसी प्रकार इसमें बारह वाराहक्षेत्रों तथा द्वादश द्वादशीव्रतोंका उल्लेख भी बड़ा आश्चर्यप्रद है। भविष्यपुराण (प्रतिसर्ग ३ । २८ । १२)में इसे मार्कण्डेय ऋषिद्वारा रचित कहा गया है—'मार्कण्डेयं च वाराहं मार्कण्डेयेन निर्मितम्।' पर अनुमान होता है कि वह इस वराहपुराणसे भिन्न था; क्योंकि यह स्वयं भगवान् वराह या व्यासद्वारा कथित है।

रूपमें हुआ है। नरसिंहपुराण १। १४ आदिमें इसका बार-बार उल्लेख है, साथ ही इसी वराहपुराणके २४से३० अध्यायोंको ७वीं या ८वीं शतीके भारतीय विद्वान् जीमूतवाहनने नामोल्लेखपूर्वक अपने 'कालविवेक'में उद्धृत किया है। इसी समयके विद्वान् नारायणभट्टने 'हितोपदेश'-में भी 'वराहपुराण'के १७०। ५२—५४ आदि श्लोकों-को ग्रहण किया है*। इसी प्रकार १०वीं शतीके 'अपरा-दित्य'ने 'याज्ञवल्क्यस्मृति'की अपनी टीकामें वराहपुराणके ७०-७१ अध्यायोंके श्लोकोंको, इसी समयके कान्यकुब्ज-नरेश गोविन्दचन्द्रके आश्रित विद्वान् पं० लक्ष्मीधरने अपने 'कृत्यकल्पतरु'के विभिन्न चौदह काण्डोंमें इसके २३से१८० तकके जिन-किन्हीं अध्यायोंको एवं 'अनिरुद्धभट्ट'ने अपनी 'पितृदयिता' एवं 'हारलता'में, अध्याय १८७ को तथा ११ वीं शतीके आचार्य श्रीरामानुज तथा श्रीमध्वने अपने-अपने गीताभाष्योंमें वराहपुराणके श्लोकोंको और इसी समयके विद्वान् श्रीवल्लालसेनने अपने 'दानसागर'में अ० २०५ से २०७ तकके अध्यायोंको उद्धृत किया है†। १३वीं शतीके विद्वान् 'देवण्णभट्ट'ने अपनी 'स्मृति-चन्द्रिका'में‡ भी इसी वराहपुराणके अध्याय १९०के श्लोकोंको तथा हेमाद्रिने अपने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि'के विविधखण्डोंमें अध्याय १३से २११ तकके अधिकांश अध्यायोंको उद्धृत किया है। इसी प्रकार श्रीदत्त उपाध्यायने ११६, २१० एवं २११ अध्यायोंको, श्रीमाधव विद्यारण्यने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पराशरमाधव'में, १९०-२०२ अध्यायोंके श्लोकोंको, १४वीं शतीके विद्वान् चण्डेश्वर टाकुरने अपने 'कृत्य-रत्नाकर'में ३९-४१, ५८, १३६ तथा २११ वें अध्यायोंके श्लोकोंको वराहपुराणके नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत किया है। यों ही १५ वीं

---

* 'अन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते'की प्रतिज्ञासे 'हितोपदेश' १। ६२के 'अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते' आदि श्लोक वराहपुराणसे गृहीत दीखता है।

(अ) द्रष्टव्य—'अपरार्क' भाग १ (आ० सं०) पृ० २०१—२०९ पर वराहपुराणके ११२। ३१—४० श्लोक, पृ० ३०३ पर वराहपुराण अ० १०२, पृ० ४२६—२४ पर वराहपुराण १३। ३३—३६, पृ० ४३६ पर वराहपु० १३०। १०१—४, पृ० ५२५—२६ पर वराहपुराण १८८। १२—३२ तथा 'अपरार्क' खण्ड २ पृ० १०५२पर वराहपुराण अध्याय ७० के २२—३९ तकके श्लोकोंको अपरादित्यने उद्धृत किया है। जिसमें—'कुहकानीन्द्रजालानि विरुद्धाचरणानि च' आदि १ श्लोक अधिक है, जो वराहपुराण ७०।३७—३८के बीचमें होना चाहिये। इन्हीं ३६ से ३० तकके श्लोकोंको प्रकारान्तरसे आनन्दतीर्थने अपने गीताभाष्य २। ७२ (पृ० १५२। जिल्द १ गुजराती प्रेस) पर उद्धृत किया है।

† पं० लक्ष्मीधरके 'कृत्यकल्पतरु'में १४ बड़े-बड़े काण्ड हैं। अकेले 'तीर्थविवेचन' नामक ८वें काण्डमें पृ० १६३ से २२८ तक उन्होंने 'वराहपुराण'के प्रायः ८०० श्लोक उद्धृत किये हैं। पृ० १६३ पर 'विशालामाहात्म्य', पृष्ठ १८६ पर वराहपुराण मथुरामाहा०के १५२वें अध्यायके, पृ० २०६ पर वराहपुराणके १२६ वें अध्यायके, 'कुब्जाम्रक-माहात्म्य'को, पृ० २०९ पर 'कोकामुख'मा० (व० पु० अ० १३७), पृ० २१५ पर बदरीमाहा० (वराहपुराण अ० १४१), पृ० २१७ पर मन्दार-माहात्म्य (वराहपुराण १४३), पृ० २१९ पर 'शालग्राम'माहा० (व० पु० १४४), पृ० २२२ पर 'स्तुतस्वामी'माहा०, २२५ पर द्वारकामा० तथा २२८ पर 'लोहार्गल'माहा० (व० पु० अ० १५१)को उद्धृत किया है। इसी प्रकार अन्य—दान, गृहस्थ, नियतकाल तथा श्राद्धादिकाण्डोंमें भी इन्होंने ढेर-के-ढेर श्लोक उद्धृत किये हैं, जिन्हें विस्तारभयके कारण यहाँ उद्धृत नहीं किया जाता।

‡ (क) 'अनिरुद्ध-भट्ट'ने अपनी 'हारलता' (ए० सो०) पृ० १२८ से १३१ तकमें वराहपुराण अ० १८७ (वेंकटे० संस्क०) में श्लो० १०१ से १२० तक (ए० सोसा० के सं० में ये श्लो० सं० ८८ से १०९ हैं) उद्धृत किये हैं और 'पितृदयिता' के पृ० ७५—७७ पर भी इन्हीं श्लोकोंको उद्धृत किया है।

(ख) 'दान-सागर'के चारों भागोंने प्रायः ये ही श्लोक पुनरुद्धृत हैं।

(ग) द्र० 'स्मृतिचन्द्रिका' भाग ४—श्राद्धकाण्ड पृ० १८९—यहाँ 'वज्रधौचादि वर्तव्यं' आदि वराहपुराण पृ०१९०के श्लोक ११३—४ आदि उद्धृत हैं। (एशियाटिक सो०के 'वराहपुराण'के संस्करणमें यह श्लोक सं० १०३—४ है। मैसूर गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरीके—टिप्पर Bailothica Sanskrita No. 52 पर प्रकाशित)।

इसी प्रकार अन्य प्राचीन विद्वानोंने भी इसके श्लोक उद्धृत किये हैं। विस्तारभयसे यहाँ उनकी संख्याएँ नहीं लिखी जातीं।

के मूर्धन्य विद्वान् 'शूलपाणि,' गोविन्दानन्दकविकङ्कणाचार्य, विद्याधर वाजपेयी आदिने अपने 'दान-क्रिया-कौमुदी' आदि ग्रन्थोंमें तथा १६वीं शतीके गोपालभट्ट, सनातन गोस्वामी आदिने अपने-अपने 'हरिभक्ति-विलास'में तथा १७वीं शतीके पं० नीलकण्ठभट्टने 'दानमयूख'में वराहपुराणके ९७से ११२ तकके अध्यायोंको (द्रष्टव्य—पृ० १९१ से २१४ गुजराती प्रेसका सं०) तथा अन्य मयूखोंमें अन्य अध्यायोंको तथा श्रीभास्करराय भारतीने 'त्रिशक्ति-माहात्म्य' आदिके श्लोकोंको 'सेतुबंध'में जहाँ-तहाँ तथा 'सौभाग्यभास्करभाष्य'में तो प्रायः प्रतिपृष्ठ—पग-पगपर वराहपुराणके नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत किया है ।

वराहपुराणके वर्ण्य विषय

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'—(पद्म० १ । २ । ५१, वायु० १ । २०१)से पुराणोंका एक प्रमुख कार्य वेदोपबृंहण है । इस 'वराहपुराण'में भी वेदोक्त 'देव-शुनी' सरमाका सुन्दर आख्यान उपबृंहित हुआ है । इसी प्रकार इसमें कठोपनिषद्के नचिकेताके चरित्रका अध्याय १९३ से २१० तकमें उपबृंहण हुआ है । अथर्व० ८ । २८ के पृथुदोहनकी भी चर्चा है । पवित्र 'गजेन्द्रमोक्ष' भी अध्याय १४०, श्लोक ३४ से ५० तकमें वर्णित है, जो वामनपुराण एवं भागवतसे थोड़ा भिन्न है । 'पद्मपुराणकी' प्रारम्भिक सृष्टि 'विष्णुपुराण'-का श्राद्धप्रकरण तथा महाभारतकी धर्मव्याधकी कथा भी इसमें विशेष रूपसे चित्रित है । इसमें गीताके श्लोक तो बहुतेरे हैं । अकेले १८७वें अध्यायमें ही गीताके छठे तथा दूसरे अध्यायके बहुतसे श्लोक प्राप्त हैं । विचार करनेपर यह ग्रन्थ विशेष प्राचीन लगता है । कुछ लोग—

> अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
> भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥

इस देवीभागवत(१ । ३ । १७)के वचनसे 'महाभारत' की अपेक्षा भी पुराणोंको प्राचीन मानते हैं । जो हो, इसमें 'महाभारत' और 'हरिवंश'के ही समान तुलसी, (राधा) आदिका वर्णन प्रायः नहीं प्राप्त होता है; न मालाके रूपमें, न पत्तेके रूपमें । एक जगह (अध्याय १२३ श्लोक २६—७) 'गन्धपत्र'से उसका जैसे-तैसे भाव व्यक्त किया गया है । श्रीराधाजीका उल्लेख भी केवल १६४ । ३५—३७ श्लोकोंमें एक ही जगह 'राधाकुण्ड' निर्देशमें हुआ है । इसमें पुरुषोत्तम (मल) मासका भी उल्लेख नहीं है ।* अतः यह पुराण मूलतः महाभारतसे भी प्राचीन है । यह विषय शोधकर्ताओंके लिये विशेष अन्वेष्टव्य है ।

इसके अधिकांश भागमें विष्णुचरित है, अतः यह वैष्णवपुराण है । तथापि इसके २१-२२ एवं ९०—९६के अध्यायोंमें 'त्रिशक्ति-माहात्म्य', 'शक्ति-महिमा', २३वें अध्यायमें 'गणपति-चरित्र', २५वें और ७१वें अध्यायमें 'कार्तिकेय-चरित्र' और बीच-बीचमें रुद्र-शिव† एवं ब्रह्माजीके भी चरित्र निरूपित हैं । इसके

---

* यद्यपि कुछ लोगोंका मत है कि वेदोंमें मलमास-सम्पातका उल्लेख है—'In the yajurveda and Brahmanas occur the expressions of Nakśatra—darśa and Gaṇaka, and the adjustment of the lunar to the solar year by the insertion of a thirteenth or intercalary month (malmāsa, adhimāsa) is probably alluded to in an ancient hymn (Rigveda 1. 25. 8) and frequently in other (Vajasaneyi. 22. 30) & Atharveda Saṃhitā (V. 6. 4 6.). (Indian Wisdom p. 184) पर दूसरे अन्वेषक इसे और वादको वस्तु मानते हैं । 'वराहपुराण'के ३९से ४९तकके अध्यायोंमें द्वादश द्वादशीव्रतोंका ही उल्लेख है, जो मार्गशीर्षसे आरम्भकर कार्तिकमें समाप्त हो जाते हैं, पुरुषोत्तममासकी द्वादशियोंका उल्लेख नहीं है, जब कि एकादशी माहात्म्योंमें सर्वत्र ही उसका उल्लेख है । इस दृष्टिसे नारदपुराणके 'मोहिनी-आख्यान'के सहयोगसे विचार करनेपर—

'प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् । अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥'के अनुसार इस पाद्मकी परम प्राचीनता ही सिद्ध होती है ।

† इसमें भगवान् शंकरका सर्वाधिक आकर्षक एवं महत्त्वका चरित्र पुराणके अन्तमें 'गोकर्ण' वर्णनमें हुआ है ।

२०से ५०तकके अध्यायोंमें विविध व्रतोंका उल्लेख है* तथा ९९से ११२तकमें विविध दानोंका, ११५से १२५तकके अध्यायोंमें विष्णुपूजाकी सात्त्विक विधि निरूपित है। ६६वें अध्यायमें 'पञ्चरात्र'चर्चा तथा ७३से ९१तक 'भुवनकोष'का निरूपण है।

इसमें वैष्णव तीर्थोंके माहात्म्य भी पर्याप्त हैं। इसके १२२ एवं १४०में 'कोकामुखमाहात्म्य', १२५-२६में 'हरिद्वार-ऋषिकेश'माहात्म्य, अ० १५२से १८८में 'मथुरा-माहात्म्य' तथा अर्चावतार-महिमा, १३६से ३८में 'वराहक्षेत्र'की महिमा तथा १४४-४५में मुक्तिनाथकी महिमा है। १४१ अध्यायमें बदरीनाथकी महिमा है और १५१में 'लोहार्गल'का। ध्यान देनेपर इसमें कोकामुख, लोहार्गल आदि द्वादश वराहक्षेत्रोंकी महिमा निरूपित दीखती हैं (द्रष्टव्य 'कृत्यकल्पतरु', तीर्थविवेककाण्ड) अध्याय १२३ आदिमें मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मासोंका भी माहात्म्य दीखता है। अन्य पुराणोंमें जहाँ 'विशाला' नाम शिवपुरी उज्जयनीकी महिमा है, वहाँ इसमें 'विशाला-वैष्णवस्थली' बदरीनाथकी महिमा है। २१३–१६ अध्यायोंमें अनेक रुद्रक्षेत्रोंकी भी महिमा हैं—इनमें स्नान एवं प्राणत्यागकी महिमा है, पर 'प्राणत्याग'का तात्पर्य सर्वत्र केवल स्वाभाविक मरणसे ही है, आत्मघातसे कदापि नहीं।

भौगोलिक स्थानोंका परिचय

'वराहपुराण'पर 'कृत्यकल्पतरु'की भूमिकामें श्री० रावचन् तथा 'Geographical Dictionary of Ancient and Mediaevel India'के 'वाग्मती', 'कुमारी' नदी, 'कुब्जाम्रक', 'कोकामुख', गण्डकी', 'गोवर्धन', त्रिवेणी, 'देविका', 'नेपाल', 'मथुरा', 'मायापुरी', 'शालग्राम', 'चित्रोपला', 'श्लेष्मातकवन तथा पारियात्रादि पर्वतों एवं तीर्थोंके नामों और 'सप्तसागर', 'सूकरक्षेत्र', 'सोनपुर', 'हरिहरक्षेत्र' आदि शब्दोंपर नन्दलाल देने विस्तारसे विचार किया है, जिनपर यहाँ आगे यथास्थान नदी नामोंके संग्रह विवरणमें कुछ संक्षिप्त विचार किया जा रहा है।

वराहपुराणोक्त भारतकी प्रमुख नदियाँ

भारतीय संस्कृतिमें सुधास्यंदिनी भगवती गङ्गा, यमुना, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, सिन्धु, सरस्वती तथा कावेरी आदि नदियोंकी असीम महिमा है। इनके स्मरण-कीर्तन, अवगाहन, दर्शन, जलपान तथा इनके तटपर किये गये संध्यातर्पण, दान-श्राद्ध, यज्ञादिसे त्रिवर्गके साथ 'मोक्ष' तककी प्राप्ति हो जाती है—'जगत्पापहराः स्मृताः'। इनमें ताप्ती, गोदावरी आदि कई नदियोंके तो 'स्वतपुराण'तक (प्रकाशित) प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत वराहपुराणके अध्याय अङ्क ८५, पृष्ठ १५२-५३ पर भी इन नदियोंका सुन्दर परिचय है। मूलग्रन्थमें यह वर्णन गद्यके रूपमें आता है। यद्यपि यह वर्णन 'मार्कण्डेयपुराण' अ०५७।६।१६–३०, 'मत्स्यपुराण' ११४।२०–३३, 'ब्रह्मपुराण' १९।१०–१४, 'ब्रह्माण्डपुराण' १।१६।२४–३९ तथा ७२, 'वायुपुराण' ४५।६३–१०८, 'विष्णुपुराण' २।३।१, 'भागवत' ५।१९।१७–१८, 'वामनपुराण' १३, २३–३३† 'पद्मपुराण' पूर्वखण्ड ५५ तथा महाभारत भीष्मपर्व, अध्याय ९, श्लोक १४–३६,हरिवंश० २।१०८।२२-३४, 'श्रीशिवतत्त्वरत्नाकर' भाग—१, पृ० १९८ 'बृहत्संहिता' एवं 'नागरसंवृत्त' आदिमें पद्यरूपमें तथा Alberuni के 'Indica' भाग १, पृष्ठ २५५ पर स्रोतादिके साथ प्राप्त होता है, तथापि कई दृष्टियोंसे इस वराहपुराण‡का पाठ विशेष महत्त्वका है। जो इस प्रकार है—

* वराहपुराणके ये व्रताध्याय प्रायः 'व्रतराज', 'जयसिंह कल्पद्रुम', 'रणवीरसिंह म०रत्नाकर' सभी निबन्ध ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं।

† वामनपुराण १३।२१–३३में केवल ५ पर्वतोंसे उद्भूत नदियोंका ही वर्णन हुआ है। कुछ पर्वतोंके नाम गलत भी हैं। गङ्गाका नाम भी छूट गया है। द्रष्टव्य—Purāṇa Volume IX, 1, pages 148, 191

‡ ... १४० । ११५-१६ तथा २१४। ४९–५० आदिमें भी इन तथा कुछ अन्य नदियोंके नाम हैं, जो

गङ्गा सिन्धुः सरस्वती शतद्रुर्वितस्ता विपाशा चन्द्रभागा सरयूर्यमुना इरावती देविका कुहूर्गोमती धूतपापा बाहुदा दृषद्वती कौशिकी निश्चीरा गण्डकी चक्षुष्मती लोहिता इत्येता हिमवत्पादनिर्गताः ॥ ६ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवती सिन्धुः पर्णाशा चन्दना नर्मदा कावेरी पारा चर्मण्वती विदिशा वेत्रवती अवन्ती इत्येता पारियात्रोद्भवाः ॥ ७ ॥ शोणो ज्योतीरथा नर्मदा सुरसा मन्दाकिनी दशार्णा चित्रकूटा तमसा पिप्पला करतोया पिशाचिका चित्रोत्पला विमला विशाला मञ्जुला वालुवाहिनी शुक्तिमती विरजा पङ्किनी रात्री इत्येताः ऋक्षप्रसूताः ॥ ८ ॥ मणिजाला शुभा तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या वेणा पाशा वैतरणी वेदिपाला कुमुद्वती तोया दुर्गा अन्तःशिलागिरा एता विन्ध्यपादोद्भवाः ॥ ९ ॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णावेणी वञ्जुला तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्यकावेरी इत्येताः सह्यपादोद्भवाः ॥ १० ॥ कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पावती उत्पलावती इत्येता मलयजाः ॥ ११ ॥ त्रिसामा ऋषिकुल्या इक्षुला त्रिदिवा लाङ्गलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः ॥ १२ ॥ ऋषिका कुमारी मन्दगामिनी कृपा पलाशिनी इत्येताः शुक्तिमत्प्रभवाः ॥ १३ ॥ [इनका अर्थ तथा 'पारियात्र' आदि पर्वतोंका परिचय पृ० १५२-५३ पर देखें ।] गण्डकी आदि नदियोंकी नामव्युत्पत्ति भी केवल इसी पुराणमें मिलती है ।

इन परम पवित्र विश्वसंतापहारिणी, लोकमाता नदियोंको क्रमसे हिमालय, पारियात्र, ऋक्षमान्, विन्ध्याचल, सह्यादि, मलयगिरि, महेन्द्रगिरि और शुक्तिमान्—इन आठ श्रेष्ठ कुलपर्वतोंसे उद्भूत बतलाया गया है—

सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥
(वायु० ४५ । १०८ आदि पूर्वोक्त स्थल)

इनके स्थानोंका निर्देश तथा अन्य नामोंके साथ विशेष स्पष्टीकरण 'कल्याण'के 'तीर्थाङ्क,' गीताप्रेससे प्रकाशित 'महाभारतकी (संक्षिप्त परिचयसहित) नामानुक्रमणिका', देके 'प्राचीन भूगोल' बी० सी० लाके ऐतिहासिक भूगोल एवं एस० जी० कण्टवाल, शिवदास चौधरी तथा दिनेशचन्द्र सरकारके 'The Text of the Puranic list of rivers' (Indian Historical Quarterly XXVII 3, PP 22—28) इत्यादि निबन्धोंमें प्राप्त होता है, साथ ही इस अङ्कमें भी यत्र-तत्र निर्दिष्ट है ।)*

इन सबोंका वर्णन सभी पुराणोंमें परस्पर प्रायः सर्वथा मिलता-जुलता है । यहाँ वराहपुराणके अनुसार संक्षेपमें (अकारादिक्रमसे) इनका परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—†

वराहपुराण अ० ८५ की गद्य-संख्या विशेष विवरण

१–अन्तःशिला– ९ M. Williamsके संस्कृत-अंग्रेजी कोश'के अनुसार इसका नाम 'अन्त्रशिला', ब्रह्माण्ड पु० १ । १६ । ६३में 'अन्त्रशिला' तथा महाभारत ५ ।

* F. E. Pargiterने प्रायः सभी पुराणोंकी सैकड़ों हस्तलिखित एवं प्रकाशित प्रतियाँ एकत्रकर 'The Purana Text of the Dynasties of the kings of Kali Age' (कलियुगी राजाओंकी वंशनामानुक्रमणिकाका मूल पौराणिक पाठ) तैयार कर डाला । इसी प्रकार उनका मार्कण्डेयपुराणके अंग्रेजी अनुवादमें पर्वत, नदियोंके नामानुसंधानका श्रम भी श्लाघ्य है । वस्तुतः पाश्चात्योंके विद्याव्यसन, लगन एवं श्रमको देखकर सर्वथा आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है । पर तथापि खेद है, अभीतक इन नदियोंके नाम-परिचयपर कोई पूर्ण संतोषप्रद हल नहीं निकल सका है ।

† 'कल्याण' पत्रके पुराणानुवादकी शृङ्खलामें सबसे अन्तमें 'नरसिंहपुराण' प्रकाशित हुआ है । इसके १ । १४-१५, ३१ । ११०-१२ आदिमें 'वराहपुराणसे 'नरसिंहपुराण'के सम्बद्ध तथा प्रभावित होनेकी बात है । इसमें वराहपुराणकी महिमा भी है । पर वराहपुराणके प्रायः अधिकांश-मुद्रित संस्करण पर्याप्त प्रमादग्रस्त है । वायु, मत्स्यादि सभी पुराणों तथा 'सरकार' एवं मोनियर विलियम्द्वारा निर्धारित पाठके आधारपर यहाँ नदियोंके नामोंका यत्र-तत्र संशोधन किया गया है । इसके गद्य ६ में की सूचित नदियाँ हिमालयसे ७मेंकी निर्दिष्ट नदियाँ पारियात्र-पर्वतसे, ८की ऋक्षमान्‌से, ९की विन्ध्याचलसे, १०की सह्यगिरिसे, ११की मलयाचलसे, १२की महेन्द्र पर्वतसे तथा १३की निर्दिष्ट नदियाँ 'शुक्तिमान् पर्वत' (विन्ध्यका मध्यदक्षिणपूर्व-भाग) से निकली हैं । यहाँ गङ्गादि अत्यन्त प्रसिद्ध नदियोंके परिचयमें विशेष विवरण नहीं दिया जा रहा है ।

९ । १० के अनुसार 'चित्रशिला' भी है । यह विन्ध्याचलकी कोई छोटी नदी है ।

२-इक्षुमती— ६ पाणिनि अष्टा० २.२.८७, ४.२.८६ 'शर्करादिगणमें' परिगणित कुमायूँ, रुहेलखण्ड, कन्नौज आदिमें बहनेवाली इखान या 'काली' नामकी गङ्गाकी सहायक नदी । वाल्मीकीय रामायण २।६८। ('India, as known to Panini', P-43-44)

३-इक्षुला— १२ (महाभारत भीष्म० ९ । १७) उड़ीसा एवं मद्रासकी सीमापर बहनेवाली नदी, (कूर्मपु० २ । ३)

४-इरावती— ६ (पंजाबकी रावी नदीका शुद्ध नाम) यह हिमालयसे निकलकर कुरुक्षेत्रमें बहती है । तक्षक एवं अश्वसेननाग इसीमें रहते थे (महाभारत १ । ३ । १४१)

५-उत्पलावती-११ इस नामकी कई नदियाँ हैं । एक नैमिषारण्यके पास बहती है, पर यह पश्चिमीघाटके पासकी नदी है ।

६-ऋषिका— १३ पलाम् जिलेकी कोइल नदी ।

७-ऋषिकुल्या १२ कलिङ्ग (गंजम) नगर इसीपर (रासिकोइल) बसा है (ब्रह्माण्डपुरा० १ । ४८)। पर Thorntn's Gazeteer तथा अन्योंके मतसे यह जपलाके पास शोणमें मिलनेवाली कुइल नदी है । (दे ६ । १६)

८-कावेरी— ९ यही कावेरी नदी कूर्मपुराण २।३७ के अनुसार 'चन्द्रतीर्थसे' प्रकट होती है, जो कूर्ग (मैसूर) में ब्रह्मगिरिके पास है । पश्चिम समुद्रमें गिरती है और दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी है । पर यहाँकी निर्दिष्ट नदी छोटी कावेरी है, जो विन्ध्याचलसे प्रकट होकर 'ओंकारेश्वर मान्धाता'के पास नर्मदामें मिलती है । (नंदलाल दे)

९-करतोया— ८ इस नामकी कई नदियाँ हैं । बंगालकी करतोया नदी विशेष प्रसिद्ध है। पर यह मध्यभारतकी नदी है ।

१०-कुमारी— १३ 'कौरहारी नदी' जो शुक्तिमान् पर्वतसे निकलकर राजगिरि (बिहार) के पास बहती है । विष्णुपुरा० २। ३ में भी इसका उल्लेख है । [नन्दलाल देका भूगोल, पृष्ठ १०७।]

११-कुहू— ६ नन्दलाल देके अनुसार यह काबुल नदी है । वेदोंमें (ऋग्वेदसंहिता ५।५३।९) यह कुभा नदी है। टाल्मीके भूगोलमें इसका नाम (कोआ) है। लैसेन (Lassen) इसे पश्चिमभारतकी नदी मानते हैं।

१२-कृतमाला—११ पहले मत्स्य भगवान् सत्यव्रतराजाकी अञ्जलीमें, पुनः उनके कलशमें यहीं आये थे । भागवत ५ । १९ । १८, १० । ७९ । १९ तथा ८। २४ । १२, *, वामनपुराण १३ ।

* एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् । तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥
... ... । कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥
(श्रीमद्भागवत ८ । २४ । १२, १६ आदि)

… वहाँ इस नदीका भी उल्लेख है ।

२२, विष्णुपु० ३।२, चैतन्यचरितामृत ९आदिमें इसका उल्लेख है। यह दक्षिण भारतमें मदुराके पास बहनेवाली 'वेगई' नदी है। (Indian Historical quarterly XVIII.4. P. 314, XX)

१३–ऋषिकुल्या— १२ शुक्तिमान् पर्वत (विहार)से निकली उड़ीसाके उत्तरमें बहनेवाली एक नदी।

१४–कृष्णावेणी— १० 'कृष्णकर्णामृत'के रचयिता बिल्वमङ्गल इसीके तटपर रहते थे। यह मछलीपट्टम्‌से कुछ दूर दक्षिण 'बंगालसागर'में गिरती है।

१५–कौशिकी— ६ विहारकी कोसी नदी। इसका वर्णन 'वराहपुराण'के 'कोकामुख' क्षेत्रके वर्णनमें भी आया है।

१६–क्षिप्रा— ७ इसका शुद्ध पाठ 'शिप्रा' मानते हैं। कुछ लोग इन नामोंकी दो भिन्न-भिन्न नदियाँ भी मानते हैं।

१७–गङ्गा— ६ इसपर 'कल्याण'के 'तीर्थाङ्क', पृष्ठ ६६४-६७ तथा वर्ष ४७के ५ से ७ तकके सामान्य अङ्कोंमें भी धारावाहिक लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

१८–गण्डकी— ६ धवलागिरिसे 'सप्तगङ्गा' या 'सप्तगण्डक' स्थानसे प्रकट होनेवाली उत्तर भारतकी प्रसिद्ध नारायणी नदी, जो आगे चलकर गण्डक नामसे प्रसिद्ध होती है। वराहपुराण, अध्याय १४४ श्लोक १२२-२३के अनुसार भगवान् विष्णुके (गण्ड—गाल) मुँहसे प्रकट होनेके कारण ही इसका नाम गण्डकी हुआ है—
गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा। भविष्यति न संदेहो यस्य गर्भे भविष्यति। महाभारत १२। १। ९। ५। ९। २५में इसका नामान्तर 'हिरण्वती' भी बतलाया गया है।

१९–गिरा— ६.यह हिमालयसे निकली 'वाग्मती'-नदी*का ही नामान्तर है। इसका वर्णन वराहपुराणके २१५–१६ अध्यायोंमें विस्तारसे हुआ है।

२०–गोमती— ६.लखनऊके पाससे होकर बहती हुई काशीके पूर्व मार्कण्डेयेश्वरके पास मिलनेवाली उत्तर प्रदेशकी प्रसिद्ध नदी। मानस २।१८७।४; ३२१।५में भी इसका उल्लेख है।

२१–गोदावरी— १०.नासिकसे २० मीलपर ब्रह्मगिरिसे निकलकर पूर्व सागरमें मिलनेवाली यह गौतमी या 'आदिगङ्गा' नामकी दक्षिण भारतकी सबसे बड़ी नदी है (वाल्मी० रामा० ३-४)। यहाँ भी १२ वर्षपर (नासिकमें) कुम्भ-मेला लगता है। वराहपुराण अ० ७१में भी इसका वर्णन है।

२२–चक्षुमती— ६.यूनानी भूगोल-लेखकोंकी 'आक्सस' नदी या आमू-दरिया। 'भास्कराचार्य'ने 'सिद्धान्तशिरोमणि'के भुवनकोश ३७-३८में इसे केतुमालवर्षकी नदी माना है।

२३–चन्द्रनाभा या चन्दना— ६. 'दे'के अनुसार साबरमती-आश्रमके पासकी 'साभमती' नदी भी चन्दना कहलाती है। वाल्मीकिरामायण किष्किन्धाकाण्ड ४०।२०के अनुसार यह संथाल परगनाकी चन्दना है, जो गङ्गामें मिल जाती है। अधिकांश स्थलोंमें यह 'चन्दना' या चन्द्रवा (महा० ६।९।१८) नदी है।

२४–चन्द्रभागा—६. पञ्जाबकी चनाब नदी, 'भविष्यपुराण'में इसका [illegible] वर्णन [illegible] बहुधा उल्लेख है। [illegible]

* हिमवत्प्रभवा [illegible] मोदूता वाग्मती नदी। [illegible] (वराहपुराण २१५।९०)

'चन्द्रभागा' नामकी छोटी-बड़ी कई नदियाँ हैं।

२५-चित्रकूटा— ८. चित्रकूटकी पयस्विनी नदी।

२६-चित्रोत्पला—८. उड़ीसाकी प्रसिद्ध महानदी, ब्रह्मपुराण ४६, (Asiatic Researches, XV.)

२७-ज्योतीरथा—८. इसका विवरण लेखके अन्तमें देखिये।

२८-तमसा— ८. इस नामकी कई नदियाँ हैं, पर यह गङ्गाके दक्षिण ओरकी नदी है। इसीके तटपर महर्षि वाल्मीकिका आश्रम था और रामायणकी रचना हुई। (द्रष्टव्य वाल्मीकिरामायणकी भूमिका गीताप्रेस, तथा बालकाण्ड अध्याय २, श्लोक ३-४ आदि)।

२९-तापी— ९. दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी।

३०-ताम्रपर्णी—१३. ,, तिन्नेवेलीके पास प्रवाहित होनेवाली तिस्ता नदी।

३१-तुङ्गभद्रा— १०. दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी।

३२-त्रिसामा— १२. उड़ीसाकी प्रसिद्ध नदी।

३३-त्रिदिवा— १२. उड़ीसाकी ही एक नदी।

३४-दशार्णा— ८. द्रष्टव्य पाणिनि अष्टाध्यायी ४।८९ पर कात्यायनका वार्तिक, बुन्देलखण्डमें भोपाल जिलेकी 'धसान' नदी जो बेतवामें मिलती है। (Oxf. Hist. P. 12, Geo[illegible] Dict. N. L. Dey)

३५-दुर्गा*— ९. साबरमतीकी एक सहायक नदी —A Tributary of Sabarmati, in Gujarat, N.L. Dey

३६-दृषद्वती— ९. ऋग्वेद ३।२३।४-, मनुस्मृति २।१७, महाभा० ३।५।२,८३। ४, २०४ यह कुरुक्षेत्रमें बहनेवाली 'कग्गर,' घग्गर, चित्रांग या रक्षी नदी है।

३७-देविका— ६. इसका वर्णन लेखके अन्तमें देखें।

३८-धूतपापा†— ६. काशीके पास गङ्गाकी एक सहायक नदी तथा 'नैमिषारण्य' का 'धोपाप' तीर्थ एवं एक नदी है।

३९-नर्मदा— ८. मध्यभारतकी 'रेवा' नामकी अत्यन्त प्रसिद्ध नदी, स्कन्दपुराणका रेवाखण्ड तथा 'कल्याण' का 'तीर्थाङ्क' देखें।

४०-निर्विन्ध्या— ८. मध्यप्रदेशकी कालीसिन्ध-नदी (मेघदूत)।

४१-निश्चीरा— ६. 'हिमालय' से निकली एक नदी (महाभारत ६।९।२३ में यह कुशचीरा नदी है।)

४२-पद्मिनी— ८. 'ऋक्षमान्' पर्वतसे निकली नदी।

* 'दुर्गा' नदीका माहात्म्य 'पद्मपुराण' उत्तरखण्डके ६० वें अध्यायमें प्राप्त होता है। 'ब्रह्माण्डपुराण' के ४९ वें अध्यायमें भी इसका उल्लेख है।

† वराहपुराण १४८।१९ में भी इसका उल्लेख है। पं० लक्ष्मीधरके मतानुसार यह नैमिषारण्यमें गोमतीके पास है। स्तुतस्वामी (वराहपुराण अ० १४८।९-३०) भी यहीं हैं। यहीं धौतपापतीर्थ है। 'कृत्यकल्पतरु' के निर्माता लक्ष्मीधरके आश्रयदाता गहड़वाल राजे भगवान् वराहके ही उपासक थे। अतः 'कल्पतरु' के 'तीर्थकाण्ड' में उनके तीर्थोंकी विशेष चर्चा है—'And Stutasvāmi, (page 222—24), which must have been in the present U. P., as it is said, to be only three miles from Dhutapāpa, i.e. Dhopāpa, in Oudh. The family-deity of the Gāhḍawālas was Varāha (Viṣṇu). Introduction to the Tirtha-Kāṇḍa of KṛtyaKalpataru (Page 88.). 'कल्याण' 'तीर्थाङ्क' पृ० १११ पर भी 'धौतपाप' का वर्णन है।

४३-पयोष्णी*—८. दक्षिण भारतकी पैनगङ्गा नदी।

४४-पर्णाशा—८. बनास नदी, इस नामकी दो नदियाँ हैं, एक राजस्थानमें, दूसरी आरा जिलेमें (वर्तमान रोहतास) ससारामके पश्चिम।

४५-पलाशिनी—१३. 'गिरिनार'के 'रुद्रदामन' शिलालेखके अनुसार काठियावाड़में 'गिरिनार'के पास बहनेवाली नदीका यह नाम है। पर वस्तुतः यह उड़ीसामें 'कलिङ्गपट्टम'के पासकी 'पदैर' नदी है। (दे, पृ० १४४) (महाभारत ६ । ९ । २२)में यहाँ 'पाशाशिनी' तथा 'मत्स्य-पुराण ११४ । ३२ आदिमें 'पाशिनी' पाठ है।

४६-पारा—७. कौशिकी या कोसी नदीकी एक शाखा नदी (म० भा० १।७१।३२)।

४७-पिप्पला—८. नन्दलाल देके अनुसार यह मालवाकी 'पार्वती' नदी है। 'मालती-माधव' ९, ब्रह्माण्ड-पुराण १ । ४९।२०, देका भूगोल पृ० १४९।

४८-पिशाचिका—८. गोण्डवानाके पासकी एक नदी।

४९-पुष्पावती—११. मलयगिरिसे निकली रामेश्वरम्के पासकी एक नदी (महा० वन० ८५।१२), नामान्तर 'पुष्पवती' 'पुष्करावती' तथा 'पुष्कलावती' पाणिनि ४।२।८५, ६।१।२१९, ६।३।११९—'काशिका'।

५०-वालुवाहिनी—८. गोण्डवानाके पासकी एक नदी।

५१-बाहुदा—६. गोरखपुरके दक्षिण बहनेवाली राप्तीके ऊपरले भागकी एक सहायक नदी।

५२-भीमरथी—१०. यह महाराष्ट्रकी प्रसिद्ध भीमा नदी है, जो कृष्णामें मिलती है (गरुडपु० १।५५)। पण्ढरपुर इसीके तटपर है। 'देका भू० पृ० ३३।

५३-मणिजाला—९. मध्यप्रदेशकी एक नदी (भीष्म-पर्व ११ । ३२)

५४-मन्दगा—१३. दक्षिण विहारकी एक नदी।

५५-मन्दगामिनी—१३. यह भी शुक्तिमान् पर्वतसे प्रसूत दक्षिण विहारकी ही एक नदी है।

५६-मन्दाकिनी—८. यह चित्रकूटकी प्रसिद्ध नदी है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥

(द्रष्टव्य मानस २ । १३१ । ३, १३७ । ३ आदि भी)

५७-यमुना—६. उत्तर भारतकी प्रसिद्ध नदी। इसके तटपर मथुरा है। वराहपुराणमें मथुरा-माहात्म्यके ३० अध्यायोंमें इसका बहुधा उल्लेख है।

५८-रात्रि—८. गोण्डवाना जिलेकी एक नदी।

५९-लाङ्गलिनी—१२. यह आधुनिक लांगूलीया है जो मद्रासके 'श्रीकाकुलम्'के उत्तरमें बहती है।†

६०-लोहिता—६. आसामकी प्रसिद्ध ब्रह्मपुत्र नदी।

६१-वञ्जुका—८. गोण्डवानाकी प्रसिद्ध नदी। (महा० भीष्म० ९ । ३४)

६२-वञ्जुला—१०. पश्चिमघाट-पर्वतमालासे निकली 'मंजीरा' नदी, जो गोदावरीमें मिलती है। महाभा० ६ । ९ । ५ में इसका नाम मञ्जुला है।

६३-वपन्ती—८. ऋक्षमान् पर्वतसे निकली मध्य-प्रदेशकी एक नदी।

६४-वंशधरा—१३. कलिङ्गपट्टमके दक्षिण चिकाकुलके पास बहनेवाली उड़ीसाकी एक प्रसिद्ध नदी।

६५-वितस्ता—६. पंजाबकी व्यास नामक प्रसिद्ध नदी

६६-विदिशा—६. भेलसाके पासकी नदी। (महा० सभाप० ९ । १८, भीष्मपर्व ९ । २८)

६७-विमला—१२. दक्षिणभारतकी एक नदी। (हरि० १०९ । ३३)

६८-विशाला—८. सरस्वतीकी एक शाखा नदी। (महाभा०, शल्यपर्व ३८ । २०)

६९-विरजा—८. उड़ीसामें जगन्नाथपुरीके पास बहनेवाली प्रसिद्ध नदी।

* पयोष्णी नदीका उल्लेख श्रीमद्भागवत ५ । १९ । १७, पद्मपुराण ६ । ४१, मत्स्यपुराण २२ । २३में भी है। महाभारत, वनपर्व अ० ६१, ८५ । ४०, ८८ । ४—६, १२० । १ ३-३२, १२१ । ३ आदिमें इसकी बड़ी महिमा है।

† Langulini is the modern Languliya, running past Chicacole (Sri Kakulam) in the Madras. (Indian Historical Quarterly, xxvii. 3. p. 227)

इन्होंने भी 'देग'को ही देविका माना है, जो ठीक लगता है।* पर वराहपुराण अ० १४४-४५की 'देविका' तो यह ही 'मुक्तिनाथपर्वत'की एक छोटी नदी है, जो आगे जाकर त्रिवेणीमें मिलती है। श्रीविष्णु-धर्मोत्तरमहापुराण १। १६७। १७ का भी यही मत है।

२७—ज्योतीरथा (या ज्योतिरथा)—गद्य ७ में इस नदीका उल्लेख है। इसका उल्लेख महाभारत ३। ८५। ८ ६।९।२६, हरिवंश २।१०९।२६, मार्कण्डेयपुराण ५७ (पार्जिटर पृष्ठ २९४) आदिमें भी है। नन्दगीकर डॉ० अग्रवाल एवं रेवाप्रसाद द्विवेदीके अनुसार पहलेके रघुवंशके सभी संस्करणोंमें (७। ३६ के मूलपाठ एवं संस्कृत व्याख्याओंके अनुसार भी) 'ज्योतिरथा' पाठ ही था। 'भागीरथी' पाठसे यहाँ कोई भी अर्थ या हल नहीं निकलता; क्योंकि ज्योतीरथा शोणकी सहायक नदी है और गङ्गासे १७५ मील दूर दक्षिणमें निर्दिष्ट है। कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि अज-युद्धके बहाने कालिदासने यहाँ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके दिग्विजय या 'कृत्स्नापृथ्वीजय'का वर्णन किया है। इसी प्रसङ्गमें उक्त राजाने उदयगिरि-गुफामें भगवान् महावराहकी भी एक प्रतिमा अङ्कित करायी थी, जिसके चारों ओर समुद्र प्रदिष्ट हैं। इसका व्याज-निर्देश रघुवंश ७। ५६के 'निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः' इन शब्दोंमें भी मिलता है। कहते हैं—इसी 'कृत्स्ना पृथ्वीविजय'का उल्लेख उदयगिरिके शिलालेखमें भी—

कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन राज्ञैव च सहागतः।
भक्त्या भगवतः शम्भोर्गुहामेतामकारयत्॥

इस प्रकार हुआ है। प्रसिद्ध है कि उसने अपनी कन्या प्रभावती गुप्ताका विवाह भी वाकाटकनरेशके साथ इसी यात्राक्रममें सम्पन्न कर, इस प्रकार साम-दानादिसे सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा एवं समग्र दक्षिण भारतको भी क्रमसे अपने पूरे वशमें किया था। अतः 'वराहपुराण'का यह पाठ बड़े महत्त्वका है। यहाँ श्राद्ध करनेकी बड़ी ही महिमा है—

शोणस्य ज्योतिरथ्याश्च सङ्गमे निवसञ् शुचिः।
तर्पयेद्यः पितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत्॥
(महाभारत, वनपर्व ८५। ८)

पार्जिटर तथा नन्दलाल देके अनुसार आज इसका नाम 'जोतिका' है। सागरसे सोहागपुर और बिलासपुरकी ओर जानेवाली रेल सिंहवाड़ाके पास 'ज्योतीरथा'को पार करती है। यह प्रायः मध्यप्रदेशके मानचित्रोंमें अक्षांश २३। ५ और देशान्त० ८१के पास दिखायी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त वराहपुराणके २१४ वें अध्यायमें 'अजिरवती' या 'अचिरवती'का उल्लेख है, जो गोरखपुरकी 'राप्ती'नदी है। ('देका भूगोल' पृ० १) वराहपुराणके २१५–१६वें नेपालकी बागमतीकी भी विस्तृत महिमा है, जो उपर्युक्त अनुक्रमणीमें 'गिरा' नामसे परिगणित हुई है।

वराहपुराणपर समीक्षात्मक पाश्चात्त्य दृष्टिकोण तथा उसका समुचित समाधान

यद्यपि 'अचल'-दान, रत्न-'तिल'-'गुड'-'धेनु'आदि दान, विविध व्रतोंके अनुष्ठान एवं दान 'मत्स्य,' 'पद्म,' भविष्यादि सभी अन्य पुराणों तथा महाभारत अनुशासनपर्वके भी विषय हैं, पर हाजरा आदि आधुनिक विद्वानोंने 'वराहपुराण'के इस

* Pāṇini mentions the river Devikā and what grew on its banks (VII. 3. 1), which Patañjali describes to be śali rice—'दाविकाकूलाः शाल्यः'. Pargiter rightly identified it with river Deg (Mark. Purāṇa, P. 292). According to the Viṣṇu Dharmottara Purāṇa (1. 167. 17). the Devikā flowed through the Madra Country and joint the river Rāvi. According to Vāman Purāṇa chapter 84 rising in Jammu Hills, the Deg flows through the Shyalkot and Sheikhpura districts and joint the Rāvi. In each rainy season it deposits on its banks layers of alluvium soil, which produce rice of fine quality that are famous all over the Punjab and exported from Murdke and Komeke towns (identification of Devika, Journal of U. P. Historical society, 1944 page 76 to 79,— 'India as known to Pāṇini' P. 46).

७०-वेत्रपती— ७. वेत्रा नदी।

७१-वेदवती या वेदश्रुति— ६. (महाभा० ६। ९। १७) यह आजकी विसुई नदी है, (वाल्मी० रा० २। ४९। १०)

७२-वेदस्मृति— ६. ,, गोमती एवं तमसाके बीच बहती है।

७३-वैतरणी— ९. उड़ीसाकी प्रसिद्ध नदी।

७४-वैदीपाला— ९. विंध्याचलसे निकलकर मध्य-प्रदेशमें बहनेवाली नदी।

७५-शतद्रु— ६. पंजाबकी प्रसिद्ध सतलज नदी।

७६-शिप्रा— ७. किसी-किसीमें क्षिप्रा-शिप्रा दो अलग नदियाँ हैं। किसीमें यह उज्जैनकी शिप्रा है।

७७-शुचिष्मती—८. गोण्डवाना जिलेकी एक नदी।

७८-शुभा— १२. केरल प्रदेशकी एक नदी।

७९-शोण— ८. बिहारमें पटनाके पास गङ्गामें मिलनेवाला प्रसिद्ध सोन नद।

८०-सदानीरा— ८. यह 'करतोया'का ही नामान्तर है। (अमरकोश)

८१-सरयू— ६. पाणिनि ६।४।१७४, महाभा० १।१६९।२०, ३।८४।७०-७१, २२।२२२; १३।१५५। २३-२४ तथा वाल्मी० रामायण, अयोध्याके उत्तरमें बहनेवाली रामायणकी प्रसिद्ध नदी।

८२-सरस्वती— ६. भारतमें इस नामकी* १३ नदियाँ हैं। (विविधपुराण) कुरुक्षेत्रकी विशेष प्रसिद्ध है।

८३-सिन्धु— ६. पाणिनि अ० ४।३।९३ आदिमें निर्दिष्ट पंजाबकी सिन्धु नदी।

८४- ,,— ७. मध्य भारतकी काली सिन्धु।

८५-सुरसा— ८. उड़ीसाकी एक छोटी नदी।

८६-सुप्रयोगा—१०. केरल प्रदेशकी एक नदी।

स्थल-निर्देश (Location)की समस्या

यद्यपि गङ्गा आदि नदियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं, तथापि कुछ नदियोंके स्थल-निर्देश (Location) की समस्या अभी पर्याप्त जटिल है, जैसे देविका नदीकी। इसकी वराहपुराणमें बड़ी ही महिमा है। इसकी प्रार्थनासे अद्भुत कार्य हो जाते हैं। सत्यतपाकी प्रार्थनापर यह महर्षि दुर्वासाकी कुटियातक चेतनरूपमें मुड़ जाती है (अध्याय ३८। २४–३०)। इसके तटपर श्राद्धके लिये आकाशसे एक दिव्य थालीका गिरना, वृक्षोंसे दिव्य पुरुषोंको निकलकर भिक्षा देना, सब आश्चर्यकर ही हैं। इसके तटपर साधना-भजन-तप एवं श्राद्धादि करनेकी अपार महिमा है।

श्रीनन्दलाल देके अनुसार भारतमें 'देविका' नामकी चार नदियाँ हैं, एक तो यह तथा दूसरी अवधकी सरयू, तीसरी सरयूका दक्षिण भाग, चौथी गोमती-सरयूके बीचकी कोई नदी (कालिकापुराण २३) और पाँचवीं 'मुक्तिनाथ'-पर्वतकी। पर अधिकांश पुराणोंमें देविकाके साथ सरयूका नाम भी परिगणित है, अतः द्विरुक्ति ठीक नहीं। पाणिनि ७। ३। १ पर महाभाष्यकारने पतञ्जलिके देविका-तटवर्ती चावलकी बड़ी प्रशंसा की है। अतः पार्जिटर, डॉ० अग्रवाल आदि विद्वान् इसे पंजाबकी 'देग' नदी मानते हैं, जो जम्मूसे निकलकर स्यालकोट, शेखपुरा जिलोंके बीचसे बहती हुई रावीमें गिरती है (वामनपुराण ८४)।

* यह कैलासपर्वतसे निकलकर ८०० मीलतक पर्वतपर बहती हुई ... हुई, गान्धार, आदिमें ... गिरती है। (ब्रह्माण्ड)

कोने भी 'देग'को ही देविका माना है, जो ठीक लगता है।* पर वराहपुराण अ० १४४-४५की 'देविका' तो यह ही 'भुक्तिनाथपर्वत'की एक छोटी नदी है, जो आगे जाकर त्रिवेणीमें मिलती है। श्रीविष्णु-धर्मोत्तरमहापुराण १।१६७।१७ का भी यही मत है।

२७—ज्योतीरथा (या ज्योतिरथा)—गद्य ७ में इस नदीका उल्लेख है। इसका उल्लेख महाभारत ३।८५।९ ६।९।२६, हरिवंश २।१०९।२६, मार्कण्डेयपुराण ५७ (पार्जिटर पृष्ठ २९४) आदिमें भी है। नन्दगीकर डॉ० अग्रवाल एवं रेवाप्रसाद द्विवेदीके अनुसार पहलेके रघुवंशके सभी संस्करणोंमें (७।३६ के मूलपाठ एवं संस्कृत व्याख्याओंके अनुसार भी) 'ज्योतिरथा' पाठ ही था। 'भागीरथी' पाठसे यहाँ कोई भी अर्थ या हल नहीं निकलता; क्योंकि ज्योतीरथा शोणकी सहायक नदी है और गङ्गासे १७५ मील दूर दक्षिणमें निर्दिष्ट है। कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि अज-युद्धके बहाने कालिदासने यहाँ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके दिग्विजय या 'कृत्स्नापृथ्वीजय'का वर्णन किया है। इसी प्रसङ्गमें उक्त राजाने उदयगिरि-गुफामें भगवान् महावराहकी भी एक प्रतिमा अङ्कित करायी थी, जिसके चारों ओर समुद्र प्रदिष्ट हैं। इसका व्याज-निर्देश रघुवंश ७।५६के 'निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः' इन शब्दोंमें भी मिलता है। कहते हैं—इसी 'कृत्स्ना पृथ्वीविजय'का उल्लेख उदयगिरिके शिलालेखमें भी—

> कृत्स्नपृथ्वीजयार्थेन राज्ञैव च सहागतः।
> भक्त्या भगवतः शम्भोर्गुहामेतामकारयत्॥

इस प्रकार हुआ है। प्रसिद्ध है कि उसने अपनी कन्या प्रभावती गुप्ताका विवाह भी वाकाटकनरेशके साथ इसी यात्राक्रममें सम्पन्न कर, इस प्रकार साम-दानादिसे सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा एवं समग्र दक्षिण भारतको भी क्रमसे अपने पूरे वशमें किया था। अतः 'वराहपुराण'का यह पाठ बड़े महत्त्वका है। यहाँ श्राद्ध करनेकी बड़ी ही महिमा है—

> शोणस्य ज्योतिरथ्याश्च सङ्गमे निवसञ्शुचिः।
> तर्पयेद्यः पितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत्॥
> (महाभारत, वनपर्व ८५।८)

पार्जिटर तथा नन्दलाल देके अनुसार आज इसका नाम 'जोतिका' है। सागरसे सोहागपुर और बिलासपुरकी ओर जानेवाली रेल सिंहवाड़ाके पास 'ज्योतीरथा'को पार करती है। यह प्रायः मध्यप्रदेशके मानचित्रोंमें अक्षांश २३।५ और देशान्त० ८१के पास दिखायी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त वराहपुराणके २१४ वें अध्यायमें 'अजिरवती' या 'अचिरवती'का उल्लेख है, जो गोरखपुरकी 'राप्ती'नदी है। ('देका भूगोल' पृ० १) वराहपुराणके २१५–१६वें नेपालकी वागमतीकी भी विस्तृत महिमा है, जो उपर्युक्त अनुक्रमणीमें 'गिरा' नामसे परिगणित हुई है।

वराहपुराणपर समीक्षात्मक पाश्चात्त्य दृष्टिकोण तथा उसका समुचित समाधान

यद्यपि 'अचल'-दान, रत्न-'तिल'-'गुड'-'धेनु'आदि दान, विविध व्रतोंके अनुष्ठान एवं दान 'मत्स्य,' 'पद्म,' भविष्यादि सभी अन्य पुराणों तथा महाभारत अनुशासनपर्वके भी विषय हैं, पर हाजरा आदि आधुनिक विद्वानोंने 'वराहपुराण'के इस

* Pāṇini mentions the river Devikā and what grew on its banks (VII. 3. 1), which Patañjali describes to be śali rice—'दाविकाकूलाः शाल्यः'. Pargiter rightly identified it with river Deg (Mark. Purāṇa, P. 292). According to the Viṣṇu Dharmottara Purāṇa (1. 167. 17), the Devikā flowed through the Madra Country and joint the river Rāvi. According to Vāman Purāṇa chapter 84 rising in Jammu Hills, the Deg flows through the Shyalkot and Sheikhpura districts and joint the Rāvi. In each rainy season it deposits on its banks layers of alluvium soil, which produce rice of fine quality that are famous all over the Punjab and exported from Murdka and Komeke towns (Identification of Devika, Journal of U. P. Historical society, 1944 page 70 to 79,— 'India as known to Pāṇini' P. 46).

दृष्टिकोणकी आलोचना की है। और कुछने इन्हें प्रक्षिप्त माना है। उन्होंने लिखा है—
'The methods of making the artificial cows, hillocks etc. in the ceremonial gifts testify to their highly expensive nature.......One of the intentions underlying the above story is to raise the position of the Brāhmaṇas in the public eye.' (Hazra, Purāṇic Records on Hindu Rights & customes P. 247—257)

किंतु ये विद्वान् सत्ययुग, त्रेतादिके भारतीय वैभवोंको भूल जाते हैं।

महाभारतका भी कहना है कि रत्नदानका पुण्य अत्यन्त महान् है—

रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप।
(अनुशासन० दान० ६८। २१)

भारतवर्षमें पहले रत्नों तथा धन-धान्यका कैसा बाहुल्य था, यह 'मत्स्यपुराणादि'के रत्नाचलवर्णनसे ही स्पष्ट होता है। वहाँ कहा गया है कि हजार मोतियोंका एक जगह ढेर करे। इसके पूर्वमें वज्र और गोमेदका ढेर रक्खे, इनमें प्रत्येककी संख्या २५० होनी चाहिये। इतनी ही संख्याकी इन्द्रनील और पद्मराग मणियोंको दक्षिण दिशाकी ओर रखकर गन्धमादनकी कल्पना करे। पश्चिममें वैदूर्य और प्रवाल (विद्रुम या मूँगों) का विमलाचल बनाये एवं उत्तरमें पद्मराग और सोनेके ढेर रक्खे। धान्यके पर्वत भी सर्वत्र बनाये एवं जगह-जगहपर सोनेके वृक्ष एवं देवताओंकी रचना करे, फिर इनकी पुष्प-गन्धादिसे पूजा करे एवं 'यदा देवगणाः सर्वे' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर इस रत्नाचलको विधिपूर्वक ऋत्विजों या आचार्य आदिको दान कर दे—

मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः।
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समन्ततः॥
पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः।
पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः॥
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात्सम्मिश्रो विमलाचलः।
पद्मरागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत्॥
धान्यपर्वतवत्सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्।
तद्वदावाहनं कुर्याद् वृक्षान् देवांश्च काञ्चनान्॥
पूजयेत्पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः।
पूर्ववद् गुरुऋत्विग्भ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत्॥
अनेन विधिना दद्याद् रत्नाचलमनुत्तमम्।
(मत्स्यपुराण ९०। १–६)

महाभारतका कहना है कि जो इन रत्नोंको बेचकर सौम्य प्रकारके यज्ञ करता है या प्रतिग्रह लेकर इन्हें किसी अन्यको दान कर देता है, उन दोनोंको ही अक्षय पुण्य होता है।

यत्तान् विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयङ्करम्।
यद्वै ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै॥
उभयोः स्यात्तदक्षय्यं दातुरादातुरेव च।
(महा० अनु०६८। २९-३०)

'गरुडपुराण', 'युक्तिकल्पतरु', 'शैवरत्नाकर' आदिमें धर्माचरण तथा देवानुग्रहको दिव्य रत्नोंकी प्राप्तिका कारण माना है।

महर्षि वाल्मीकिने अयोध्यापुरीका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और विमानाकार गृहोंसे सुशोभित थी—

गीतावलीमें गोस्वामीजीने भी इसका खूब चित्रण किया है—

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजूके तीर।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर॥
× × ×
गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच सुढार।
चित्र बिचित्र चहू दिसि परदा फटिक-पगार॥
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर॥
मरकत भँवर डाँडी कनक मनि-जटित दुति जगमगति रही।
पटुली मनहु बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही॥
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव-सुमन-माल-सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा॥
(उत्तर० १९। १, ३)

कनकपुरीकी शोभा भी आपने ऐसे ही वर्णित की है। मणिस्तम्भरचनाकी शोभामें तो आपने अपने अनूठे रत्नविज्ञानका ज्ञान प्रदर्शित किया है—

हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे।
सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई।
बिच बिच मुक्ता दाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

—आदिका वर्णन तत्कालीन भारतीय वैभवका सूचक है, कोरा काव्य नहीं। वाल्मीकिका लङ्का-वर्णन भी ऐसा ही है।—

सचमुच भारतकी अन्तिम अलौकिक विभूतिकी बात पढ़-सुनकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। अतः उस समय इस प्रकार दान देनेकी बात साधारण थी। उस समय देनेवाले बहुतेरे थे, पर लेनेवाले बहुत कम थे। इस सम्बन्धमें 'मनुस्मृति' आदिके (१२।१) तथा इन्हीं वराहादि पुराणोंमें 'दानग्रहण' एवं 'श्राद्ध-भोजन' की निन्दाके प्रकरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें कहा गया है कि काम चलनेसे अधिक धन लेनेपर ब्राह्मण नरकमें जाता है और ब्राह्मणत्वसे भी च्युत हो जाता है—

'प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात्', 'प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्।' प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति।'

(मनु० ४। १८६), आदि तथा

धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मण्यादेव हीयते॥
(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ५७। ४२)।

वराहपुराणके मार्मिक उपदेश

'वराहपुराण'में भगवद्भक्ति तथा आत्मज्ञानकी प्रशंसा प्रायः सर्वत्र है। तीर्थ, श्राद्ध एवं क्षमा, दान, दया आदिकी महिमा भी बहुत जगहोंपर है। इस सम्बन्धमें कथाएँ तथा उदाहरण भी प्रचुर हैं। वृक्षारोपणकी महिमा भी अनन्त है। एक स्थानपर कहा गया है—

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलुङ्गे पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति॥
(वराहपु० १७२। ३९)

अर्थात्—एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस मालती या अन्य फूलदार लतावृक्ष, दो अनार, दो नारंगी तथा पाँच आम्रवृक्षोंको रोपनेवाला मनुष्य कभी नरकमें नहीं जाता।

इसमें धर्मकार्यकी प्रशंसामें कहा गया है—

क्रियातः स्वर्गवासोऽस्ति नरकस्तद्विपर्ययात्।
पुण्यरूपं तु यत्कर्म दिशो भूमिं च संस्पृशेत्॥
यावत् स शब्दो भवति तावत् पुरुष उच्यते।
पुरुषश्चाविनाशी च कथ्यते शाश्वतोऽव्ययः॥
(वराहपु० १७७। ९-१०)

अर्थात्—धर्मक्रियासे स्वर्ग और पापसे नरक मिलता है। पुरुषके पुण्य-कर्म पृथ्वीसे स्वर्गतक व्याप्त हो जाते हैं। जबतक पुरुषकी प्रशंसा है, तबतक वह पुरुष है और उसकी निन्दा उसके नरकका रूप है।

अध्याय १६-१७ तथा १८०-८१की श्राद्धतर्पणविधि अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसमें विधिहीन श्राद्धतर्पणकी बलि त्रिजटा आदिको प्राप्त होनेकी बात निर्दिष्ट है। (१८०। ६५-८०) २०७वें अध्यायमें आधिदैविक एवं आध्यात्मिक कर्मोंके श्रेष्ठ फल हैं। यहाँ कहा गया है कि तपस्याद्वारा स्वर्ग, यश, आयु, भोग, ज्ञान, विज्ञान, रूप, सौभाग्य सब कुछ मिलता है। अहिंसासे सौन्दर्य एवं दीक्षासे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, गुरु-सेवासे विद्या और श्राद्धसे संततिकी प्राप्ति होती है—(२०७। ३६-४१)

अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च।
गुरुशुश्रूषया विद्या श्राद्धदानेन संततिः॥

इसके उपदेश अन्य पुराणोंकी अपेक्षा भी कहीं-कहीं मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं विशेष महत्त्वके हैं। इस प्रकार यह पुराण धर्म-ज्ञान, श्रद्धाभक्तिवर्धक, त्रिवर्गदायक तथा मोक्ष-प्राप्तिमें परम सहायक है।

श्रीवराहावतार-संदेह-निराकरण

(लेखक—पण्डित श्रीदीनानाथजी शर्मा सारस्वत, शास्त्री, विद्यावागीश, विद्याभास्कर)

यह कलियुगका समय बड़ा अद्भुत है । इसमें लोग वेद-पुराणादिपर भी अनेक आशङ्काएँ करते हैं । कहा जाता है कि वराहभगवान्की मूर्तिको पेड़ा, बर्फी आदिका भोग लगाना उचित नहीं; क्योंकि उनका वह भोजन नहीं है । इसपर हम 'कल्याण'के पाठकोंके समक्ष इसका वास्तविक रहस्य बतानेका प्रयत्न कर रहे हैं। पाठक ध्यान देंगे । अवतारोंके लिये यह एक पद्य प्रसिद्ध है—

वनजौ वनजौ खर्वो रामो रामः कृपोऽकृपः ।
अवतारा दशैते स्युः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥*

दो अवतार वनज—वन्य हैं। वन जलको भी कहते हैं, जंगलको भी । अतः जलीय अवतार तो मत्स्य और कूर्म हैं, अन्य वनज-अवतार वन्य होते हैं । उनमें एक वन्य-अवतार वराह, दूसरा नृसिंह है—ये चार अवतार हुए । खर्वः—वामनको कहते हैं। इसे लेकर पाँच अवतार हुए । फिर तीन हैं—राम—परशुराम, रामचन्द्र और बलराम—ये इस प्रकार कुल आठ हुए । 'कृपः'—कृपाका अवतार बुद्ध नौवाँ हुआ । अकृपः—म्लेच्छोंके लिये कृपारहित दसवाँ अवतार कल्किका है ।

जिस वराहको लक्ष्य कर इस प्रकारकी बात कही जाती है, वह वन्य नहीं होता, किंतु ग्राम्य होता है। वनोंमें तो कन्दमूल-फल ही होते हैं । इसलिये प्राचीनतम ग्रन्थ 'निरुक्त'में उसको वर-आहार अर्थात् अच्छे भोजनवाला कहा गया है। पुराणोंमें इन्हें 'आदिवराह' कहा गया है। अर्थात् ये सृष्टिके आदिमें हुए थे। ये आदिवराह ही पृथ्वीके उद्धारकर्ता हैं । आदिवराहने पृथ्वीको दंष्ट्रापर रखा था। वह सूँड़-जैसी दंष्ट्रा वन्य-सूकरमें ही होती है, ग्राम्यमें नहीं । इस आदिवराहने अपनी उसी दंष्ट्रासे हिरण्याक्ष-दैत्यको भी विदीर्ण कर दिया था । अन्य बात यह है कि प्रलयमें तो केवल जल-ही-जल रहता है। साथ ही उस समय पृथिवी उसके ऊपर नहीं होती, बल्कि वह उस प्रलय-जलके भीतर डूबी रहती है । जलको कम करनेवाला होता है ताप, जो सूर्यसे उत्पन्न होता है, पर सूर्य भी उस समय नहीं रहते । तब यज्ञाग्निरूप 'यज्ञ-वराह'की आवश्यकता पड़ती है । वेदोंमें कहा गया है—

'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय'
(अथर्ववेदसं० १२ । १ । ४८ पृथिवीसूक्त)

यहाँ वराहद्वारा पृथिवीकी प्राप्ति कही गयी है। फिर उसे 'मृग' अर्थात् सूकर—जंगली पशु भी कहा गया है।

पहले बताया जा चुका है कि वन्य-सूकरको आदिवराह कहा जाता है । पुराणोंमें उसके ब्राह्मणको दान देनेकी विधि भी निर्दिष्ट है—

आदिवराहदानं ते कथयामि युधिष्ठिर ।
धरण्यै तत् पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥
(भविष्यपुराण अ० १९४)

अतः उस 'आदिवराह'का तात्पर्य—भगवान् विष्णुके 'वराहावतार'से ही है ।' यह अवतार सृष्टिके आदिमें—प्रलय-जलमें निमग्न पृथ्वीके उद्धारार्थ—पृथ्वीदेवीको जलके ऊपर कर देनेके लिये हुआ था। उस समय मानुषी सृष्टि हुई ही नहीं थी । तब यहाँ मानुषी-मलभक्षणकी आशङ्काके लिये स्थान नहीं। यह वराह तो महाकवि कालिदासकी—'विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले' (अभिज्ञानशाकु० २ । ६)—इस उक्तिके अनुसार मुस्ता 'नागरमोथा' आदिकी जड़ें खाता है ।

---

* गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी एक दोहेमें कहा है—
दुइ बनचर दुइ बारिचर चारि विप्र दो राउ । तुलसी दस अघ गाइके भवसागर तरि जाउ ॥

इसे निरुक्तकार श्रीयास्कने भी 'वराह'—के अर्थमें उसे 'वराहारः' (५ । १ । ४) कहकर उत्तम अच्छा आहार ही माना है। श्रीयास्कने—'वृहति मूलानि वरं वरं मूलं वृंहति' (५ । १ । ४) कहकर उसका आहार—अच्छी जड़ें खाना माना है*।

यद्यपि यहाँ तो अवतार खानेके उद्देश्यसे हुआ नहीं था, वह तो पृथिवीके उद्धारके उद्देश्यसे ही हुआ था। दिव्य होनेसे उसे लौकिक भोजनकी आवश्यकता भी क्या थी! इसी प्रकारकी दूसरी शङ्का है—पुराणमें वराहका ब्रह्माजीकी छींकसे आविर्भूत होनेकी, जिससे उनकी अयोनिज उत्पत्ति भी सिद्ध होती है। पर अयोनिज-शरीरकी सिद्धि तो श्रीकणादमुनिकृत 'वैशेषिक-दर्शन' (४ । २ । ५–११) तथा 'प्रशस्तपाद-भाष्य' (द्रष्टव्य—पृथिवी आदि निरूपण)में भी देखी जा सकती है। इस अयोनिज-उत्पत्तिमें असम्भावना भी क्या है!—'निरुक्त'में तो 'नासत्यौ नासिकाप्रभवौ बभूवतुः' (६ । १३)—अश्विनीकुमारोंकी नाकसे स्पष्ट ही अयोनिज उत्पत्ति मानी गयी है।

हम पहले लिख चुके हैं—'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय' (अथर्ववे० १२।१।४८)। इस मन्त्रमें वराहको स्पष्ट करनेवाला 'सूकर' शब्द भी साथ पड़ा है। और फिर सूकरका विशेषण पशुवाचक 'मृग' शब्द भी साथ पड़ा है, अतः इसमें वेदमें 'वराहावतार'का सुस्पष्ट संकेत है।

'सृष्टिके आदिमें वेदमें पीछेके वराहावतारका संकेत कैसे आया', यहाँ यह शङ्का भी नहीं करनी चाहिये। वराहावतारने प्रलयके बाद सृष्टिसे पूर्व जलके भीतर पड़ी हुई पृथिवीको जलके ऊपर कर दिया था। अतः वेदमें पृथिवी जल-सूर्य आदि सृष्टिके पदार्थोंका वर्णन आनेसे सृष्टिकी पूर्व-अवस्थामें आविर्भूत वराहावतारका संकेत क्यों न आये! वस्तुतः इस वेदमन्त्रमें वेद एवं पुराणका समन्वय होनेसे उक्त 'पृथिवीसूक्त'का मन्त्र पृथिवीके आदि उद्धारक 'वराहावतार'का ही मूल है—यह स्पष्ट हो रहा है।

वेदमें लिखा है—'येत् (या इत्) आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः। यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्' (अथर्ववेद ११ । ८ । ७) 'जो अबसे पूर्व पृथिवी थी, जिसे पुराने विद्वान् भलीभाँति नाम-रूपसे जानते हैं—उसका वर्णन करनेवाले विद्वान्को वेदानुसार 'पुराणवित्' माना जाता है। अतः वेदके इस संकेतसे तथा पूर्वके लिखे 'वराहावतार' (अथर्व० १२ । १ । २८)के मन्त्रसे वेदों तथा पुराणोंमें पृथिवीकी पूर्वावस्था सूकरावतारसे उद्धृत होनेसे वेद-पुराणकी एकवाक्यता भी सिद्ध हो गयी।

'प्रोद्धीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ... जहास चाहो वनगोचरो मृगः' (श्रीमद्भा० ३।१८।२)। इत्यादि वेद-पुराणादिके उद्धरणसे भी यह 'वन्य वराहावतार'का ही वर्णन सिद्ध होता है, ग्राम्यका नहीं। वन्य सूकरकी ही बाहर बढ़ी हुई दंष्ट्रा होती है, जिसपर वराहने पृथिवीको धारण रखा था, ग्राम्यकी वह नहीं होती। तभी तो 'दुर्गासप्तशती'में भी कहा है—

> तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
> वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥
> (८ । ३६)

अतः प्रतिपक्षका कथन ग्राम्य-सूकरमें ही सम्भव है, वन्य सूकरमें नहीं। पर यह वराहावतार तो (जंगली)वन्यसूअर भी नहीं, किंतु 'दिव्य वराह' है। यहाँ तो वराहकी आकृतिमात्र ही थी, वस्तुतः वे तो साक्षात् विष्णुभगवान् थे। तब इसमें प्रतिपक्षके सभी आक्षेप धराशायी हो जाते हैं।

विष्णुका भोजन पैदा-करना होना ही है। 'यज्ञवराह' होनेसे 'यज्ञो वै देवानां मन्त्रम्' (शतप० २।४।२।१) यज्ञहवि—पायस भी भोजन हो सकता है। शेष है 'वराहभगवान्'को प्रतिपक्षका भोग लगाना कहना; इसपर यह स्मरण रखना चाहिये कि—मनुष्यका जो

* 'निरुक्त' (मोर स०)के भाग १, पृष्ठ ८२ तथा भाग २, पृष्ठ ४८१-८६ तक ७ पृष्ठोंमें 'वराह' शब्दपर बड़ा सुन्दर विवेचन है।

उत्तम भोजन होता है, भगवान्‌को भी वह वही अर्पण करता है। जैसे कि वाल्मीकि-रामायणमें कहा है—

इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥
(२।१०३।३०)

यह साक्षात् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामका कथन है—'पुरुष जिस उत्तम अन्नका प्रयोग करता है, देवताओंके लिये भी वह वही समर्पण करता है।' तब प्रतिपक्षकी अपवित्र शङ्का निरस्त हो गयी।

'यजुर्वेद-काठक' संहितामें भी देखिये—

'आपो वा इदमासन् सलिलमेव। स प्रजापतिर्वराहो भूत्वा उपन्यमज्जत्। तस्य यावन्मुखमासीत्, तावतीं पृथिवीमुदहरत्। सा इयम् (पृथिवी) अभवत्। यद् वराहविहतं भवति, वराहोऽस्यामन्नं पश्यति। तस्मै इयं विजिहीते, तदेव अप्रमभवत्, यत् तद् भवति, तद् भवितिः। यद् प्रथते, तत् पृथिवी। यद् अभवत्, तद् भूमिः।
(८।२।४)

यही बात अन्य मन्त्रभागोंद्वारा भी सूचित होती है। प्रलयके समय अग्नितत्त्वके नष्ट हो जानेसे सम्पूर्ण पृथिवी जलमग्न हो गयी थी। जल भी बर्फके रूपमें था, उसके उद्धारार्थ यज्ञाग्निरूप वराहने अवतार धारण किया (वराहपुराण ६। १५-२७)। उस दिव्याग्निरूप वराहने जलका शोषण कर पृथिवीको प्रलयके जलसे बाहर निकाला (ब्रह्मपुराण ३६। १९-२१)। प्रजापतिने वराहरूप धारणकर अपनी दिव्याग्निमें अपार जलराशिद्वारा दिव्ययज्ञ सम्पादित किया। उसने इस प्रकार पृथिवीपरसे लुप्त अग्नितत्त्वको पुनः प्रतिभासित किया। इसीकी स्मृतिके लिये मन्दिरोंमें उस वराहमूर्तिकी स्थापना होती है।

उसी वराहमूर्तिका दान पूर्वके पुराणपत्रमें बतलाया गया है। वेदोंमें भी आया है—

शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्— (ऋग्वे॰ ८। ७७।१०) 'वराहो वेद वीरुधं' (ऋग्वेद)। यहाँ सूअरका एक जड़ी-बूटीको जानना कहा है— जिससे वैद्यलोग लाभ उठा सकते हैं। विशेष जानकारीके लिये 'सनातनधर्मालोक' भाग ९ देखना चाहिये।

वेदोंमें भगवान् श्रीवराह

(लेखक—डॉ॰ [illegible] शास्त्री, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

ओंकाराकारदंष्ट्राय क्रीडते भुविपल्वले।
स्थिरां धारयते क्षोणिं नमः प्रथमपोत्रिणे[1]॥
पातु वो मेदिनीदोला बालेन्दुद्युतिसुन्दरी।
दंष्ट्रा महावराहस्य पातालगृहदीपिका॥

जयति धरण्युद्धरणे घन-
घोणाघातघूर्णितमहाब्धिः।
देवो वराहमूर्तिस्त्रैलोक्य-
महागृहस्तम्भः॥

---

१. (एकलवद? ११०५वां ताम्रलेख-एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ३) ओंकाररूपी दाढ़ोंसे सम्पन्न, [illegible] क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीको धारण किये हुए आदिवराहको नमस्कार है।

२. (सुभाषितरत्न ३०, 'वराहदेवता')—

पृथ्वीके लिये झूलाकी भाँति बनी हुई, बालचन्द्रमाकी द्युतिसे [illegible], पातालरूपी घरकी दीपिका, भगवान् महावराहकी दाढ़ (दंष्ट्र) आपलोगोंकी रक्षा करे।

३. [illegible]

ऋग्वेद, प्रथम मण्डलके ११४वें सूक्तके पाँचवें मन्त्रमें रुद्रवाचक 'वराह' शब्द मिलता है। मन्त्र इस प्रकार है—

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत्॥
(ऋक्० १।११४।५)

मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—

वराह—'(वराहार) श्रेष्ठ आहारसे सम्पन्न अथवा वराहके सदृश दृढ़ अङ्गोंवाले, सूर्यके सदृश प्रकाशमान, जटाओंसे युक्त तेजस्वी रूपवाले रुद्रको हवि देकर अथवा नमनद्वारा हम द्युलोकसे यहाँ आनेके लिये उनका आह्वान करते हैं। वे अपने हाथमें वरणीय ओषधियोंको लिये हुए हमारे लिये आरोग्य-रूप, सुख, रक्षा, कवच और आवास प्रदान करें।'

'वराह' शब्द ऋग्वेदमें 'मेघ', अङ्गिरस (अग्निपुत्र) और तन्नामक असुरके अर्थमें भी पाया जाता है।

वराहो मेघो भवति वराहारः।
वरमाहारमाहार्षीरिति च ब्राह्मणम्[1]॥
(निरुक्त, नैगमकाण्ड ५।१।४)

यहाँ 'निरुक्त'के नैगमकाण्डमें वर अर्थात् जलका आहरण करनेवाले—मेघको ही 'वराह' कहा गया है। (दुर्गाचार्य)।

विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता।
(ऋ० ६१।७)

'वज्रके क्षेपण करनेवाले इन्द्रने मेघपर प्रहार किया' 'ऋग्वेद' १०।६७में अङ्गिराके पुत्र भी 'वराह' कहे गये हैं—

'अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते।'
(निरुक्त, नैगमकाण्ड ५।१।४)

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः।
(ऋग्वेद १०।६७।७)

'वर्षा करनेवाले अङ्गिरसोंके साथ बृहस्पतिने मेघका विदारण किया। 'असुर' अर्थमें यह निम्नाङ्कित मन्त्रमें प्रयुक्त हुआ है—

'वराहमिन्द्र एमुषम्।' (ऋग्वेद ८।७७।१०)

'समस्त असुरोंके मध्यमें 'एमुष'—'मोहस्थानीय' वराहाकार असुरको इन्द्रने नष्ट किया। सर्वप्रथम वराहावतारसे सम्बद्ध विवरण 'शतपथ-ब्राह्मण' १४।१।२।११ में उपलब्ध होता है—

'इयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री, तामेमूष इति वराह उज्जघान।'

सायणाचार्य इसका अर्थ करते हुए जो लिखते हैं, उसका भाव यह है—

"सृष्टिसे पहले सम्पूर्ण पृथ्वी जलके बीच निमग्न थी। प्रजापतिने वराह बनकर उसका दाँतोंसे उद्धार किया। उस स्थितिमें यह दृश्यमान समस्त पृथ्वी वराहके दाँतके अग्रभागमें समाविष्ट प्रादेशमात्र (बित्तिमात्र) परिमित थी। 'ओ, पृथिवी! तुम चौरादिके समान क्यों छिप रही हो'—ऐसा कहते हुए इसके पतिरूप महीवराहने उसे जलके बीचसे ऊपर उठाया।"

'तैत्तिरीयसंहिता', काण्ड ७, प्रपाठक १, अनुवाक ५में वराह भगवान्के सम्बन्धमें कहा गया है—

'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्, स इमामपश्यत्। तां वराहो भूत्वाऽहरत्। तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्ट्। साऽप्रथत सा पृथिव्यभवत्। तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम्।'

---

[1] लोकप्रसिद्ध वराह (सूअर) को इसीलिये 'वराह' कहते हैं कि वह वर—श्रेष्ठ मुस्तादि (नागरमोथा आदि दूर्वादि) के मूल—जड़का आहार करता है, अथवा कसेरू आदि मूलोंको खोदकर निकालता है— 'वरं श्रेष्ठं मूलवन्तं मुस्तादीनामाहारमाहरत्येव। वरं वरं मूलं वृहति-उद्यच्छति (धातुपाठ २८।५७) इति वराहः।' ('निरुक्त' ५।१।४ की व्याख्यामें आचार्य दुर्ग)

पृथ्वीको खोदकर मुस्ता (नागरमोथा) नामक जड़ खानेका वराहका स्वभाव होता है। यथा—

'विस्रब्धं क्रियतां वराहततिभिः (पङ्क्तिभिः) मुस्ताक्षतिः पल्वले।'

—कालिदासके 'अभिज्ञानशाकुन्तल', अङ्क २, श्लोक ६में निर्दिष्ट है।

सृष्टिसे पूर्व यह सब जलरूप था। प्रजापति ब्रह्मा वायुरूप धारण करके उसमें विचरण कर रहे थे। उन्होंने उसमें पृथ्वीको देखा। वे वराह बनकर उसे ऊपर ले आये। तदनन्तर विश्वकर्मा या देवशिल्पी होकर उन्होंने उसे स्वच्छ किया। अब वह विस्तृत होकर पृथिवी बन गयी। प्रथन (विस्तार) ही पृथिवीका पृथिवीत्व है।

इसी प्रकार तैत्तिरीयब्राह्मण (१ । १ । ३)-में वराहभगवान्के अवतरणकी निम्नाङ्कित कथा प्राप्त होती है। सृष्टिके पहले चारों ओर केवल जल था। फिर प्रजापतिने सृष्टि करनेका विचार किया। उसी समय उन्होंने लम्बे नालपर विद्यमान एक पुष्करपर्णको देखा। उसे देखकर प्रजापतिने सोचा कि इस पुष्करपर्णका कोई आधार होना चाहिये। उसकी खोजके लिये उन्होंने वराहका रूप धारणकर कमलनालके निकट ही जलमें डुबकी लगायी। नीचे जानेपर उन्हें पृथ्वी मिली। उसकी गीली मिट्टीको अपने दाँतसे उद्धृत करके वे ऊपर आये और उसे पुष्करपर्णपर फैला दिया। फैलानेके कारण ही वह पृथ्वी कहलायी। पश्चात् प्रजापतिने कहा कि यह चराचर प्राणियोंका आधार हो जाय। ऐसा कहनेके कारण वह 'भवनाद्—भूमिः' कहलायी।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड)में महर्षि वसिष्ठने रामचन्द्रजीसे कहा है कि ब्रह्माजीने वराहका रूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार किया था—

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयम्भूर्दैवतैः सह॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः॥
(श्रीवाल्मी० रामा० २ । ११० । ३-४)

विष्णुपुराण, अंश १, अध्याय ४ में कहा गया है कि नारायणरूपी ब्रह्माने वेद-यज्ञमय वाराहरूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार किया था।

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षे-
महावराहस्य महीं विगृह्य।
विधुन्वतो वेदमयं शरीरं
रोमान्तरस्था मुनयः स्तुवन्ति॥

जलसे भीगी हुई कुक्षिवाले वे महावराह जिस समय अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए महीको लेकर बाहर निकले, उस समय उनकी रोमावलीमें स्थित मुनिजन स्तुति करने लगे।

महाभारत (वनपर्व), वायुपुराण (अध्याय ६), मत्स्यपुराण (अध्याय २४८), श्रीमद्भागवत (प्रथम स्कन्ध), लिङ्गपुराण (पूर्वखण्ड), अग्निपुराण (अ० ४), गरुडपुराण (पूर्वखण्ड, अ० १४२), पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अ० २६४) और वराहपुराणमें वराहका विशेषण 'यज्ञ' उपलब्ध होता है—'भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः स प्राविशत् प्रभुः।'

वैदिक साहित्यमें (१) एमूषं या एमूषवराह। पौराणिक साहित्यमें (२) यज्ञवराह, आगम-साहित्यमें आदिवराह[2], नृवराह[3], भूवराह[4], प्रलयवराह और यज्ञवराह[5]की मूर्तियोंकी चर्चा मिलती है।

---

१. आ+इम्+उष (वस निवासे) इसका पृथ्वीको चारों ओरसे घेरनेवाला—ऐसा कुछ लोग अर्थ करते हैं।
२. आदिवराहं चतुर्भुजं शङ्खचक्रधरं शश्यश्यामनिभम्। (वैखानसागम, पटल ५६)
३. नृवराहं प्रवक्ष्यामि शूकरास्येन शोभितम्। (शिल्परत्न, पटल २५)
४. नाराङ्गो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत्। (अग्निपुराण, अ० ५०, श्रीवेंकटेश्वर-संस्करण)
५. [illegible] दक्षिण प्रसार्य सिंहासने प्रसन्नीनम्। ('भूर्त्य[illegible]-अनुशीलन' नामक ग्रन्थमें उद्धृत)

श्वेतवराह, कृष्णवराह और धर्मवराह—ये नाम इनके कल्पोंके लिये प्रयुक्त हुए हैं। यह कल्प श्वेतवराहके नामसे प्रसिद्ध है।

रसातलादादिभवेन पुंसा
भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः[1]।
—कुमार०, सर्ग ६, श्लोक ८

कालिदासके इस श्लोककी व्याख्यामें 'मल्लिनाथ'ने तैत्तिरीयारण्यक १०।१।२०से एक पद्य उद्धृत किया है, जिसमें कृष्णवराहका उल्लेख है। यथा तदुक्तम्—उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। 'वराहपुराण'के मथुरामाहात्म्यमें भी 'श्वेतवराह'की विस्तृत महिमा वर्णित है।

मार्कण्डेयपुराणके 'देवीमाहात्म्य'में भी एक श्लोक प्राप्त होता है—

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१८॥

यज्ञके अङ्गोंसे समन्वित वराहाकार रूप धारण करनेवाले श्रीहरिनारायणकी शक्ति भी वाराहीतनुको धारण किये हुए उपस्थित हुई। प्रायः सर्वत्र वराहको 'यज्ञ-वराह' अथवा वेदमय वराह कहा गया है। इस रूपमें वराहत्व और यज्ञत्व दोनों होना चाहिये। 'शतपथब्राह्मण' (५।४।३।१९)में भी कहा गया है।

'अग्नौ ह वै देवा घृतकुम्भं प्रवेशयांचक्रुः। ततो वराहः सम्बभूव। तस्माद्वराहो मेदुरो घृताद्धि सम्भूतः तस्माद्वराहे गावः संजानते स्वमेवैतत्समभि संजानते।'

प्राचीन कालमें देवताओंने घृतकुम्भको अग्निमें डाला था। उससे वराह उत्पन्न हुआ। घृतसे उत्पन्न होनेके कारण यह अधिक मेदासे युक्त होता है; इसमें किरणें विद्यमान रहती हैं। अथवा स्वकीय रसभूत घृतसे उत्पन्न होनेके कारण इसकी तुलना गायोंसे की जा सकती है। अथर्ववेद (१२।१।४८) में स्पष्ट किया गया है कि पृथिवी वराहसे स्नेह करती है। अतः शूकररूप पशुके समक्ष यह अपनेको पूर्णरूपसे प्रकट कर देती है—'वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।' इसके अतिरिक्त पशुओंका क्रोध ही वराहरूपमें प्रकट है, ऐसा भी कहा गया है—

पशूनां एव मन्युर्यद्वराहः।
(तैत्तिरीय-ब्राह्मण १।७।९।४)

यज्ञके सम्बन्धमें कहा गया है कि—

पुरुषसम्मितो वै यज्ञः। यज्ञो वै विष्णुः॥

व्यष्टिपुरुषकी रचनामें जितनी सामग्री अपेक्षित है, उतनी ही बाह्य यज्ञमें भी देखी जाती है; इसीलिये यज्ञको पुरुषसम्मित कहा जाता है। लोक या समष्टि-पुरुष ब्रह्मा भी नारायणात्मक यज्ञ हैं। वे ही सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त होनेके कारण विष्णु (वेवेष्टि इति) हैं। देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान ही यज्ञत्व है। वराहत्व और यज्ञत्वको स्वीकार करनेके कारण पृथिवीके उद्धारक आदिवराहको 'यज्ञ पुमान्' या पुरुष कहा जाता है—

पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र
दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि
दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव॥
(विष्णुपुराण १।४।३२)

यूप (यज्ञस्तम्भ) रूपी दाढ़ोंवाले हे प्रभो! आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें चितियाँ हैं, यज्ञाग्नि आपकी जिह्वा है और आपकी रोमराजि कुश हैं; इस प्रकार आप ही यज्ञपुरुष हैं।

---

१. जिस समय आदिवराह भगवान् रसातलसे पृथ्वीका उद्धार कर रहे थे, उस समय प्रलय-दशामें बढ़ा हुआ समुद्र-का निर्मल जल क्षणभरके लिये उन्हें पृथ्वीके घूँघट सा जान पड़ा।

वराहपुराणमें भक्तियोग

(लेखक—श्रीरतनलालजी गुप्त)

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासकी प्रतिभाके समक्ष जो पुराण-वाङ्मय प्रतिभासित होकर लोकसमाजमें प्रचलित हुआ, उसमें वराहपुराणका स्थान अन्यतम है । भगवान् आदिवराह और उनकी परम प्रियतमा भगवती भूदेवीके संवादरूप इस महापुराणमें स्वयं भगवान्‌के श्रीमुखसे अपने ऐश्वर्य एवं माधुर्यका प्रकाश हुआ है, उनके अवतारोंका तथा उनके अंशरूप देवताओंकी ललित कथाओंके साथ इसमें क्रियायोगका भी विशद वर्णन हुआ है । यद्यपि पुराणोंकी परम्पराके अनुसार सृष्टिरचना, सृष्टिविस्तार, सृष्टिकी आदि वंश-परम्परा, मन्वन्तर एवं राजवंशोंका वर्णन भी इसमें विस्तारपूर्वक किया गया है, किंतु रोचक कथाओंसे अलंकृत इस पुराणकी सरस एवं सुबोध शैली अन्य पुराणोंकी अपेक्षा इसको एक पृथक् वैशिष्ट्य एवं वैचित्र्य प्रदान करती है । नारदपुराणके अनुसार यह प्रधानतः विष्णुके माहात्म्य-वर्णनसे सम्बन्धित है—

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम् ।
भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम् ॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा ।
निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके ॥
(४ । १९)

वत्स ! अब मैं वराहपुराणके विषयमें बतलाता हूँ । यह सनातन ग्रन्थ भगवान् विष्णुके माहात्म्यका वर्णन करनेवाला है । मानवकल्पका जो प्रसङ्ग पूर्वकालमें मेरे द्वारा उपदिष्ट हुआ था, वही प्रसङ्ग व्यासदेवने इस पुराणमें चौबीस हजार श्लोकोंमें ग्रथित किया है । परंतु इस चौबीस हजार श्लोकवाले वराहपुराणके उपलब्ध न होनेसे वर्तमान संस्करणको मनीषीजन इसका पूर्वभाग मात्र मानते हैं; किंतु प्रस्तुत निबन्धके लघु कलेवरमें इस विषयकी आलोचना युक्तिसङ्गत नहीं होगी । अस्तु !

इस पुराणकी समन्वयात्मक शैलीके कारण स्कन्द-पुराण केदारखण्डके प्रथम अध्यायमें इसको शैव पुराण मानकर वर्णित किया गया है, किंतु सूक्ष्मतासे विचार करनेपर यह वैष्णव पुराणोंकी ही श्रेणीमें मानने योग्य प्रतीत होता है । क्योंकि इसमें वराहदेवने अन्य देवताओंमें भगवान् नारायणकी सर्वोत्कृष्ट सत्ताको स्पष्टरूपसे उद्घोषित किया है—

नारायणात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ।
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां च सत्तम ॥
(व० पु० ५२)

'नरश्रेष्ठ ! भगवान् नारायणसे उत्तम कोई देवता न हुआ है, न होगा । वेदों एवं पुराणोंका सारभूत रहस्य यही है ।' भगवान् नारायणके निर्गुण-निराकार रूपकी सर्वव्यापकता एवं वैष्णव अवतारोंके रूपमें उनकी सगुण-साकार अभिव्यक्तिका इसमें चित्रण हुआ है—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ॥
इत्येताः कथितास्तस्य मूर्तयो भूतधारिणि ।
दर्शनं प्राप्तुमिच्छूनां सोपानानि च शोभने ॥
यत्तस्य परमं रूपं तन्न पश्यन्ति देवताः ।
अस्मदादिस्वरूपेण पूरयन्ति ततो धृतिम् ॥
(व० पु० ४ । २-४)

'भूतधात्रि ! मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—भगवान् नारायणकी ये दस मूर्तियाँ कही गयी हैं । शोभने ! जो लोग इनका दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये ये सोपानरूप हैं; क्योंकि जो उनका निर्गुण-निराकार परमोत्तम रूप है, उसे देवता भी नहीं देख सकते । इसीलिये मेरे एवं अन्य अवतारोंके स्वरूप-का दर्शन करके ही वे अपनी उत्कण्ठाको शान्त करते हैं ।' इसके अतिरिक्त मुनिवर गौरमुखपर प्रसन्न

भगवान् विष्णु अपने जिस रूपका उनको दर्शन हैं, वह महाभारत-युद्धमें अर्जुनके समक्ष प्रदर्शित पसे सर्वथा अभिन्न है, यहाँतक कि उस रूपके प्रयुक्त शब्दावली भी श्रीमद्भगवद्गीताकी भाषासे र हो उठी है—

रा शङ्खगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः।
रुडस्थोऽपि तेजस्वी द्वादशादित्यसुप्रभः॥
देवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
दि भाःसदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥
त्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
दर्श स मुनिर्देवि विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥
(वराहपु० १९। २४-२६)

पृथ्वीदेवि! उस समय भगवान् नारायण शङ्ख-गदा आयुधोंसे सुशोभित हो रहे थे, उनके श्रीअङ्गोंमें म्बर फहरा रहा था, वे गरुड़की पीठपर विराजमान वे महातेजस्वी बारह सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशित हे थे। और तो क्या, यदि आकाशमें हजारों एक साथ उदित हो जायँ तो भी शायद उनका म्मिलित प्रकाश उन परमात्माकी प्रभाके समान हो । मुनिवर गौरमुखने उन परमेश्वरके उस विराट् पमें सम्पूर्ण जगत्को अनेक रूपोंमें विभक्त होते भी एक स्थानपर स्थित देखा। इससे उनके नेत्र श्चर्यसे खिल उठे।'

इस प्रकार विष्णुपरक होते हुए भी यह पुराण ष्णु और शिवमें, लक्ष्मी और गौरीमें अभेददर्शनका देश करता है। स्थान-स्थानपर ऐसे प्रकरण आये , जिनमें विष्णु-शिवको अभिन्न सिद्ध किया गया है।

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते॥
(व० पु० ५७। ३-४)

अहं यत्र शिवस्तत्र शिवो यत्र वसुंधरे।
तत्राहमपि तिष्ठामि आवयोर्नान्तरं क्वचित्॥

'जो लक्ष्मी हैं, वही हैमवती उमा हैं, जो विष्णु हैं, वे ही त्र्यम्बक महेश्वर हैं, ऐसा सभी शास्त्रों और पुराणोंमें कहा गया है। पृथ्वि! जहाँ मैं हूँ, वहीं शिव हैं और जहाँ शिव हैं, वहाँ मैं भी विराजमान हूँ, हम दोनोंमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है।' अस्तु!

वराहपुराणमें भगवद्भक्तिके सभी अङ्ग-उपाङ्गोंका विस्तृत वर्णन हुआ है। निम्नाङ्कित उदाहरणोंसे इसको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया जायगा।

श्रवणात्मिका भक्ति

गायन् मम यशो नित्यं भक्त्या परमया युतः।
मत्प्रसादात् स शुद्धात्मा मम लोकाय गच्छति॥
(व० पु० १३९। २८)

गीयमानस्य गीतस्य यावदक्षरपङ्क्तयः।
तावद् वर्षसहस्राणि इन्द्रलोके महीयते॥
(व० पु० १३९। २४)

'उत्तम भक्तिसे युक्त होकर नित्य-निरन्तर मेरे यशका गान करता हुआ मेरा भक्त शुद्ध अन्तःकरणवाला होकर मेरे कृपाप्रसादसे मेरे लोकको प्राप्त होता है। उसके द्वारा गाये हुए गीतके जितने अक्षर-समूह होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक वह इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है।'

एतत्ते कथितं देवि गायनस्य फलं महत्।
यस्य गीतस्य शब्देन तरेत् संसारसागरम्॥
वादित्रस्य प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे।
प्राप्तवान् मानवो येन देवेभ्यः समतां स्वयम्।
नववर्षसहस्राणि नववर्षशतानि च॥
कुबेरभवनं गत्वा मोदते वै यदृच्छया।
कुबेरभवनाद् भ्रष्टः स्वच्छन्दगमनालयः॥
सम्यादितालसम्पातैर्मम लोकं स गच्छति।
नृत्यमानस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे।
मानवो येन गच्छेत्तु छित्त्वा संसारबन्धनम्॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च।
पुष्करद्वीपमासाद्य स्वच्छन्दगमनालयः।
फलं प्राप्नोति सुश्रोणि मम कर्मपरायणः॥

…! जो ऐसे भक्तको पुण्योंसे, जपसे या व्रत-…से क्या लेना-देना है ! उस भक्तको …न्न होकर मैं स्वयं ही मनोरम दिव्य भोग …वाञ्छित द्रव्य-सामग्री प्रदान करता हूँ।

…तः स्वपतो वापि शृण्वतः पश्यतोऽपि वा।
…विधे चिन्तयति मच्चिन्तस्य च किं भयम्॥
…दिवं मुहूर्तं वा क्षणं वा यदि वा कला।
…मेषं वा त्रुटिं वापि देवि चित्तं समं कुरु॥
…व्रतः सततं यो मां भजेत नियतमतः।
…लोकं प्राप्य परमं मद्भावायोपपद्यते॥
(व० पु० अ० १४२)

…देवि ! सोते-जागते, देखते-सुनते—सभी समय जो …में मेरा चिन्तन करता है, उस मेरे चिन्तनमें …हुए भक्तको क्या भय है ! रात-दिन, घड़ी, क्षण, …, निमेष या क्षणभर चित्तको साम्यभावमें स्थित …के मुझमें लगाओ। जो दृढ़व्रती भक्त निरन्तर चित्तको …में लगाकर मेरा भजन करता है, वह मेरे समीप …लोकमें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है।

पादसेवनात्मिका भक्ति

पादसेवनका अर्थ है भगवत्परिचर्या, श्रीभगवान्को …कर झुलाना, उनके निमित्त पर्व-महोत्सव इत्यादि मनाना …दि इसके अनेक रूप हैं। वराहपुराणमें इस पर्व-…त्सवादिरूप पादसेवन भक्तिका अत्यन्त विस्तारसे …उल्लेख है। 'कुमुदद्वादशी'के प्रसङ्गमें श्रीभगवान्के …प्रबोधनोत्सवका यह मन्त्र देखिये—

ब्रह्मणा रुद्रेण च स्तूयमानो
भवानृषिवन्दितो वन्दनीय
प्राप्ता द्वादशीयं ते प्रबुध्यस्व
जागृस्व मेघा गताः।
पूर्णश्चन्द्रः शारदानि पुष्पाणि
लोकनाथ तुभ्यमहं …
… ब्रह्मा

करते हैं, यह आपकी द्वादशी तिथि आकर प्राप्त हो गयी है। आप प्रबोधको प्राप्त होइये, जागिये। इस समय आकाश मेघोंसे मुक्त होकर पूर्णचन्द्रकी किरणोंसे आलोकित हो रहा है। मैं आपको शरत्कालमें विकसित होनेवाले पुष्प समर्पित करता हूँ।

अर्चनात्मिका भक्ति

स्वनाममन्त्रेण सुगन्धपुष्पै-
र्धूपादि नैवेद्यफलैर्विचित्रैः।
अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे
संस्थाप्य मालासितवस्त्रयुक्तम्॥
समन्दरं कूर्मरूपेण कृत्वा
संस्थाप्य ताम्रे घृतपूर्णपात्रे।
पूर्णं घटस्योपरि संनिवेश्य
तद् ब्राह्मणं पूज्य तथैव दद्यात्॥
एवं कृते विप्र समस्तपापं
विनश्यते नात्र कुर्याद् विचारः।
संसारचक्रं स विहाय शुद्धं
प्राप्नोति लोकं च हरेः पुराणम्॥

अपने इष्टदेवके नाम-मन्त्रसे श्रीभगवान्की चित्र-विचित्र गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और फलोंसे अर्चना करके उनके सम्मुख कलशकी स्थापना करे। कलशको माला और श्वेत वस्त्रसे आवृत करके मन्दरपर्वत एवं कूर्मकी आकृतिका निर्माण करके ताम्र-पात्रको घृतसे पूरित करके उस पूर्ण कलशपर रक्खे। तदनन्तर ब्राह्मणकी पूजा करके वैसे-का-वैसा दे दे। भूदेव ! ऐसा करनेसे सारे पापोंका नाश हो जाता है, इसमें किसी प्रकारका सोच-विचार न करे। वह पूजक जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर श्रीहरिके परम निर्मल सनातन धामको प्राप्त हो जाता है।

वन्दनात्मिका भक्ति

पूजयेद् देवदेवेशं ज्ञानी भागवतः शुचिः।
निपतेद् दण्डवद्भूमौ सर्वकर्मसमन्वितः॥
कायं निपतितं कृत्वा प्रसादेति जनार्दनम्।
शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥

मन्त्रैर्लब्ध्वा संज्ञां त्वयि नाथ प्रसन्ने
त्वदिच्छातो ह्यपि योगिनां चैव मुक्तिः।
यतस्त्वदीयः कर्मकरोऽहमस्मि
त्वयोक्तं यत्नेन देवः प्रसीदतु॥
इति मन्त्रविधिं कृत्वा मम भक्तिव्यवस्थितः।
पृष्ठतोऽनुपदं गत्वा यावन्न दृश्यते॥

(व० पु० अ० ११८)

'ज्ञानी भगवद्भक्त भगवान्‌से सम्बन्धित सब कर्मोंको करता हुआ पवित्र होकर देवाधिदेव श्रीहरिका पूजन करे। उनके सम्मुख भूमिपर दण्डवत् लेट जाय। शरीरको भूमिष्ठ करके 'भगवान् जनार्दन प्रसन्न हों' ऐसा कहता हुआ सिरपर अञ्जलि बाँधकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

"लोकनाथ! मन्त्रोंके अनुष्ठानसे आपके प्रसन्न होनेपर योगिजन चैतन्य-लाभ करके आपके कृपा-प्रसादसे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। मैं आपका कर्मकर दास हूँ, अतएव आप अपने वचनके अनुसार प्रसन्न हों।' इस प्रकार मन्त्रपूर्वक प्रणामविधिसे सम्पूर्ण करके मेरी भक्तिमें लगा हुआ मनुष्य पीछेकी तरफ एक-एक कदम उठाता हुआ वहाँतक चले, जहाँसे मेरी प्रतिमाका दर्शन न होता हो।'

दासभक्ति

दास्यका अर्थ है मिथ्यादित अर्थात् जिस प्रकार लोकमें दासकी समस्त मिर्यादें स्वामीके लिये होती हैं, अपने लिये नहीं, उसी प्रकार दास्यभक्तिका उपासक केवल भगवदर्थ ही कर्म करता है। भगवान् वराह ऐसे भक्तके लिये कहते हैं—

कर्मणा मनसा वाचा मद्भक्तो यो नरो भवेत्।
तस्य व्रतानि वक्ष्येऽहं त्रिविधानि निबोध मे॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि तु धराधरे॥
एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासादिकं च यत्।
तत्सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा॥

वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषण
अपैशुन्यं हितं धर्मं वाचिकं व्रतमुत्तम

धरे! मन-कर्म और वाणीसे जो मनुष्य मेरे हो जाता है, उसके लिये मैं त्रिविध व्रतोंको हूँ, सुनो। अहिंसा, सत्य, अस्तेय एवं ब्रह्मच मानस व्रत कहे गये हैं। 'एकभुक्त', 'नक्तभुक्त' तथा आदि—ये सभी कायिक व्रत कहे गये हैं। वे व्यर्थ नहीं जाते। वेदोंका स्वाध्याय, श्रीहरिका सं सत्यभाषण, किसीकी चुगली न करना, परोपकार वाणीके व्रत हैं।

सख्य-भक्ति

कृष्णक्रीडासेतुबन्धं महापातकनाशनम्।
बालानां क्रीडनार्थं च कृत्वा देवो गदाधरः॥
गोपकैः सहितस्तत्र क्षणमेकं दिने दिने।
तत्रैव रमणार्थं हि नित्यकाले च गच्छति॥
बलिह्रदं च तत्रैव जलक्रीडाकृतं शुभम्।
यस्य सन्दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(व० पु० १६०। १२—१

भगवान् गदाधरने अपने साथी ग्वालबालोंके जो कृष्णक्रीडा-सेतुबन्धकी रचना की थी, जहाँ गोपोंके साथ प्रतिदिन मुहूर्तभर खेला करते थे जहाँ वे रमणके लिये अब भी नित्य जाते हैं, वह मह महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। वहींपर 'बलि ह नामक सुन्दर सरोवर है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने जल-क्रीडा की थी, उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

आत्मनिवेदनात्मिका भक्ति

आत्मा अर्थात् अपना शरीर, उसका भगवान्‌के प्रति समर्पण एवं चारों वर्णोंकी विशुद्धिके प्रसङ्गमें आत्म-निवेदनका उपदेश देते हुए वाराहदेव कहते हैं—

एवं धरित्रि यस्य शिभायां सर्वं समाप्य यत्नतः।
धरणीं मम संगृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्।

...कानि विष्णो शस्त्राणि त्यक्तं
मया क्षत्रियकर्म सर्वम्।
...म्या देवं विष्णुं प्रपन्नोऽथ
संसाराद्वै जन्मनां तारयस्व।
(व० पु० अ० १२८)

...स प्रकार क्षत्रिय दीक्षाके समय अन्य सारी विधिका ...पूर्वक सम्पादन करके मेरे चरण पकड़कर इस ...का उच्चारण करे—'भगवन् विष्णो! मैंने समस्त ...शस्त्रोंका परित्याग कर दिया है, यही नहीं, मैंने क्षत्रियके लिये विहित सभी कर्मोंका त्याग कर दिया है। मै सब कुछ त्याग करके आप भगवान् श्रीहरिके शरणागत हो रहा हूँ। मेरा इस जन्म-मरणरूप संसारसे उद्धार कीजिये।'

अतएव सभी लोग येन-केन-प्रकारेण भक्तिके किसी भी मार्गका अवलम्बन करके मनको भगवान् नारायणमें निवेश करके मानव-जीवनकी धन्यता सम्पादन करें, यही वराहपुराणका तात्पर्यार्थ है।

उज्जयिनीकी वराह-प्रतिमाएँ

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेन्द्रकुमारजी आर्य)

श्रीमन्नारायणके श्रीवराह-अवतारकी अवधारणा अति ...चीन है। 'ऋग्वेद'के १। ६१। ७में भगवान् ...विष्णुके वराहरूपका उल्लेख है—'विध्यद् वराहं तिरो ...द्रिमस्ता'। 'तैत्तिरीय-आरण्यक'का कथन है कि जलमें ...धँसी हुई पृथ्वीको सौ भुजाओंवाले सूकरने निकाला ...'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना' (तैति० आ० ...१०।१।३० अरुणारा; याज्ञिक्युपनिषद् १।३०) ...वाल्मीकिरामायण ६।११७।१३में पृथ्वीको उठानेवाला एक ...शृङ्गके वराहरूपका वर्णन है। महाभारतमें कहा गया है कि ...लोकका हित करनेके लिये विष्णुने वराहरूप धारणकर ...हिरण्याक्षका वध किया—

वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः।
(महा० वन०)

...रसातलमें प्रविष्ट पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ...वराहरूपमें अवतरित हुए। 'श्रीमद्भागवत'में ...वर्णन आता है कि प्रलयकालमें जलमें डूबी हुई ...पृथ्वीको निकालनेकी चिन्तामें लगे हुए ब्रह्माजीके नासा-...छिद्रसे अँगूठेके बराबर एक वराहशिशु निकल पड़ा, जो ...देखते-ही-देखते आकारमें हाथी-सदृश हो गया। इस ...रूपको देखकर सभी मरीचि, सनकादि ऋषिगण चकित हो गये। वे यह न समझ पाये कि वह उत्पन्न होकर तत्क्षण इतना विशाल कैसे हो गया। वराहके भीषण गर्जनसे सभी लोक स्तुति करने लगे। रसातलमें धँसी पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया—

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽऽप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम्।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त॥
स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः॥
(श्रीमद्भा० ३।१३।३०-३१)

'विष्णुपुराण'में वराहको शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाला, कमलके समान नेत्रवाला, कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय और खुरोंवाला कहा गया है। 'विष्णुधर्मोत्तर'में वराहकी प्रतिमाको अनेक रूपोंमें बनानेका आदेश दिया गया है, जिनमें 'नृ-वराह', 'भू-वराह', 'यज्ञ-वराह' एवं 'प्रलय-वराह' प्रमुख हैं।

उज्जयिनीका प्राचीन इतिहास अति गौरवमय है। महाकालकी नगरीके रूपमें यह सर्वधर्मसमन्वयकी स्थली थी और पुराणोंमें इसे 'प्रतिकल्पा', 'कुमुद्वती', 'अवन्तिका', 'अमरावती', 'अलका'-पुरी और 'विशाला' भी कहा गया

है। इसकी प्रधान सप्तपुरियोंमें परिगणना थी। यहाँकी पुरातात्त्विक सम्पदाएँ असंख्य देव-देवियोंकी प्रस्तरनिर्मित प्रतिमाएँ लिये हैं, जो ईसाके दो सहस्र वर्ष पूर्वसे बारहवीं ईसी शताब्दीतक निर्मित होती रहीं। यहाँ विक्रम आदिके समयमें शैव एवं वैष्णवधर्म समानरूपसे प्रचलित थे।* यहाँ 'महाकालवन', 'कालभैरव', 'ओखलेश्वर', 'कालियदह', 'अंकपात', 'हरसिद्धि', 'गढकालिका', 'मङ्गलनाथ', 'भर्तृहरिगुहा', 'मत्स्येन्द्रनाथ-समाधि' आदि ऐसे स्थान हैं, जहाँपर प्राचीन मूर्तियाँ सुरक्षित रूपमें रखी गयी हैं। १९५०में 'विक्रम विश्वविद्यालय'की स्थापना हुई और तबसे इस विश्वविद्यालयमें पुरातत्त्वसंग्रहालय निर्मित हुआ, उसमें लगभग १७५३ प्रतिमाएँ अवस्थित हैं, जो प्रस्तरकी हैं। शेष मृत्पात्र, आभूषण, सिक्के, मणि, ताम्रपात्र, प्रस्तर उपकरण आदि भी लगभग ५० हजारकी संख्यामें हैं। यहाँपर उज्जैनके विभिन्न स्थानोंमें वराह-प्रतिमाओंके कलात्मक सौन्दर्यको ही लिया गया है।

सन् १९७४ ई० में ही शिप्रासे प्राप्त यहाँकी एक वराह-प्रतिमा अपने लक्षणोंमें 'पशुवराह'रूपमें है। यह प्रतिमा ३ फीट ९ इंच लम्बी एवं एक फुट ४ इंच चौड़ी तथा एक फुट ६ इंच ऊँची है। प्रतिमाका पादस्थल भग्न है। पशुवराहके शरीरपर १३ वीं आवृत्तिमें मुनि, देवता एवं दिक्पाल अङ्कित हैं। यह वही रूप है, जिसका विधान 'विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण'के ३।४।२९में किया गया है। प्रतिमा भग्न होते हुए भी अत्यन्त विशाल है। शरीरके पुनीत अंकनमें कलात्मक कार्य है। वर्तमानमें यह महाकाल-मन्दिर-प्राङ्गणमें सुरक्षित है।

'विक्रमविश्वविद्यालय'के मूर्तिसंग्रहालयकी 'वैष्णव-दीर्घा'-में एक पशुवराहकी सुन्दर प्रतिमा है। इस प्रतिमाका अङ्कन वैष्णव पुराणोंके नियमके अनुसार है। पशुवराहके नीचे शेषशायी विष्णु और लक्ष्मी हैं और दोनोंपर सप्तमुखी सर्पकी छाया है। 'वराह'के शरीरमें गर्त है एवं शरीरपर मुनिगण एवं देवताओंका अङ्कन है। चारों चरणोंको थामे चार आयुधपुरुष हैं, जिनके पैरोंपर क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म अङ्कित हैं। यह मूर्ति आकारमें ३ फीट ३ इंच लम्बी, एक फुट २ इंच चौड़ी तथा २ फीट २ इंच ऊँची है और उज्जैनके समीपके १४ कि० मी० दूर ग्राम कायथा (वराहमिहिरकी जन्मस्थली 'कपित्थपुर')से प्राप्त हुई है। इसका आनुमानिक निर्माणकाल ९वीं शताब्दी है।

तीसरी 'वराह'-प्रतिमा 'नृवराह'की है, जो भग्न है। इसका केवल शीर्षभाग बचा है। इस प्रतिमाके दन्ताग्रपर पृथ्वी सहारा लिये अङ्कित है। आकार १ फुट २ इंच× १ फुट ४ इंच। यह निकटके सौदंग ग्रामसे आयी है। मूर्ति क्रमाङ्क १७३में पशुवराह है और आकार भी प्रथम प्रतिमाकी भाँति है।

'परमारकाल'में निर्मित पशुवराहकी एक सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिमा उज्जैनके 'ओखलेश्वर' स्थानपर स्थित है। इसमें देवताओं तथा मुनिगणका शरीरपर स्पष्ट अङ्कन है। ये पशुवराह अपने दन्ताग्रपर लक्ष्मीको उठाये हुए हैं। पृथ्वी नारीरूपा है और उसकी मुखाकृति यह सूचना देती है कि वह वराहके इस रक्षाकारी कार्यके प्रति आभारी है। कलाकृति भावात्मक है तथा एक विशिष्ट शिल्प-कलाको प्रकट करती है।

इसके अतिरिक्त उज्जैनके 'रामघाट', 'कालियदह', 'हरसिद्धि' तथा 'अङ्कपात' स्थानोंपर १७ वराह-प्रतिमाएँ और हैं, जो प्रायः ऊपरके वर्णनके अनुसार ही हैं। विष्णुके दशावतारमें वराह-अवतारके अङ्कनकी लगभग ३२ प्रतिमाएँ उज्जैनमें सुरक्षित हैं। उज्जयिनीकी उपर्युक्त वराह-प्रतिमाएँ मूर्तिशिल्पके आधारपर लगभग ८वीं से १४वीं शताब्दीके मध्यके समयमें निर्मित हुई जान पड़ती हैं।

* यहाँके 'महाकाल' आदि शैवक्षेत्रोंमें वराह-प्रतिमाएँ शैव-ग्रन्थों तथा सांदीपनी-आश्रम आदि वैष्णवक्षेत्रोंमें विष्णुधर्म आदिके अनुसार निर्मित हैं।

वराहपुराणकी रूपरेखा

(लेखक—डॉ० श्रीरामशंकरजी त्रिपाठी)

भारतकी वराह-प्रतिमाओंके तथा अनेक प्राचीन शिलालेखोंके इतिहास (Epigraphica Indica) के सर्वेक्षणसे पता चलता है कि कन्नौजके गहड़वाल नरेश तथा गुप्तराजगण 'भूमि-वराह'के विशेष उपासक थे। उन्होंने कई वराहतीर्थोंकी स्थापना कर भगवान् वराहकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कीं और 'वराहपुराण'का भी विशेषरूपसे प्रचार किया। (History of the Gahadwala Dynasty—Roa Niyogi, R. C. Magumdar. History of Indian people and Culture तीर्थ-विवेचन काण्ड 'कल्पतरु', Introduction—K. V. Rangaswami Aiyangar) वी०ए० स्मिथ, रायचौधरी, मजुमदार, हाजरा आदि अधिकांश आधुनिक ऐतिहासिक तथा रैप्सन आदि पौराणिक विद्वानोंके अनुसार गुप्तवंशी राजाओंमें चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने, जिसकी राजधानी उज्जैन थी—'पुराणों'पर अनेक टीकाएँ, निबन्धादि ग्रन्थ लिखवाये तथा शिव, विष्णु वराह आदि की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित कीं। सम्भव है, उन दिनों 'वराहपुराण'पर भी कुछ संस्कृतकी टीकाएँ भी रही हों तथा यह ग्रन्थ भी पूरे २० हजार श्लोकोंमें एकत्र प्राप्त रहा हो, जिनके आधारपर गोविन्दचन्द्रके आश्रित विद्वान् पं० लक्ष्मीधरके 'तीर्थविवेचन' काण्डकी रचना की हो; क्योंकि इस काण्डमें 'वराहपुराण'का ही अंश अनुपाततः सर्वाधिक है। यद्यपि यह एक विस्तृत एवं गम्भीर ऐतिहासिक विवेचन तथा गवेषणाका विषय है, तथापि निष्कर्ष यही है। साथ ही मार्कण्डेयपुराणके 'कोलाविध्वंसी' भूपोंसे भी क्या इनका कोई संकेत प्राप्त होता है—यह भी एक शोधका विषय है।

विषय-विश्लेषण

अस्तु! प्रस्तुत वराहपुराण आदिपर 'हाजरा' आदिके शोध बड़े गौरवपूर्ण हैं, पर वे प्रायः आजसे ४० वर्ष पूर्वके हैं। अतः इसपर विशेष श्रम अब भी अपेक्षित है। श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेससे प्रकाशित 'वराह पुराण'के आरम्भमें सर्वप्रथम सृष्टिका वर्णन है। इसके पश्चात् दुर्जनके चरित्रकी व्याख्या है, फिर सर्ग-प्रतिसर्ग वृत्तान्त तथा 'श्राद्धकल्पका' प्रसङ्ग है, जो धर्म काण्डके लिये परम उपयोगी है, और प्रायः इसी रूपमें विष्णुपुराणमें भी उपलब्ध होता है। आदि-वृतान्तमें सरमाकी वैदिक कथा आयी है। इसके बाद महातपाकी तथा अग्निकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग है। तत्पश्चात अश्विनीकुमारों, गौरी, विनायक, नागों, स्कन्द, सूर्य, कामादिकों तथा देवीकी उत्पत्ति एवं कुबेरकी उत्पत्तिका वर्णन है, जिनका स्पष्ट तात्पर्य ज्योतिषोक्त तिथियोंके कर्तव्य निर्देशसे है। इसके बाद धर्म, रुद्र तथा सोमकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है, यह सब भी तिथियोंके स्वरूप कार्यविधि आदि ज्योतिष विधिसे ही प्रभावित है पर और अपरके निर्णयका विषय है। पृथ्वीकी उत्पत्तिका रहस्य संक्षेपसे कहकर महातपाके प्राचीन उपाख्यानका पुनः उल्लेख हुआ है। इसके पश्चात् सत्यतपाकी कथा है। फिर मत्स्य-द्वादशी, कूर्मद्वादशी, वराहद्वादशी, नृसिंहद्वादशी, वामनद्वादशी, भार्गवद्वादशी, श्रीरामद्वादशी, श्रीकृष्णद्वादशी, बुद्धद्वादशी, कल्किद्वादशी तथा पद्मनाभद्वादशी आदि व्रतोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर 'धरणीव्रत' और 'अगस्त्यगीता'की कथा है। फिर पशुपालका उपाख्यान एवं भर्तृप्राप्तिव्रतका वर्णन है। इसके अनुसार पुनः शुभव्रत, धान्य-व्रत, कान्तिव्रत, सौभाग्यव्रत, अविघ्नव्रत, शान्तिव्रत, कामव्रत, आरोग्यव्रत, पुत्र-प्राप्तिव्रत, शौर्यव्रत और सार्व-भौमव्रतोंका कथन है। तत्पश्चात् भगवान् नारायणद्वारा रुद्रगीताका विवेचन होकर पुरुष एवं प्रकृतिका निर्णय किया गया है। फिर 'भुवनकोश'के वर्णनके अनन्तर जम्बूद्वीपकी मर्यादाका वर्णन तथा भारत आदि वर्षोंका उद्देश्य, सृष्टि-विभाग तथा नारदका महिषासुरके साथ संवाद वर्णित है। बादमें [illegible] का कथन, महिषासुरका वध, रुद्रमाहात्म्यका वर्णन

... है, जो बड़े ही भव्य एवं आकर्षक हैं। बादमें तिलधेनु, जलधेनु, रसधेनु, गुडधेनु, शर्कराधेनु, मधुधेनु, दधिधेनु, लवणधेनु, कार्पासधेनु तथा धान्यधेनु-के दानकी विधिका वर्णन किया गया है, जो मत्स्यपुराणादि अन्य पुराणोंमें भी वर्णित है। फिर भगवत्प्राप्तिके उपायके कथनकी महिमा बताकर यहाँके तीर्थोंकी महिमा एवं लोहार्गलतीर्थकी महिमाका वर्णन है। तदनन्तर 'मथुरा-तीर्थ'का माहात्म्य तथा उसका प्रादुर्भाव एवं यमुनातीर्थका माहात्म्य कहकर 'अक्रूरतीर्थ'का प्रसङ्ग वर्णित है। बादमें देवारण्य, गोवर्द्धनकी महिमा बताकर विश्रान्तिका परिचय बताया गया है। फिर गोकर्णक्षेत्र और सरस्वतीका माहात्म्य है। फिर यमुनोद्भेदकी महिमा, कालञ्जरकी उत्पत्ति, गङ्गोद्भेदकी महिमा तथा साम्बके शापके उपाख्यानद्वारा इस प्रकरण-का उपसंहार किया गया है। बादमें प्रतिमा-निर्माण तथा प्रतिमा-प्रतिष्ठा-विधिपर श्रेष्ठ प्रकाश है।

गुप्तकालीन 'प्रतिमाकला'के विषयमें डॉ० हैवेल, बनर्जी तथा मजुमदार आदिने लिखा है कि यह मूलतः भारतीय पुराणोंपर आधृत थी। इसमें ऋषि-मुनियोंकी पवित्रतम भावना, विश्वहितका सर्वोत्तम आदर्श, सूक्ष्म सौन्दर्यकी चरम सीमातक विकसित हुई प्रतिमा कला-योगियोंके ध्यान एवं लययोगकी साधना—इन सबका एकत्र सम्मिश्रण सुस्पष्ट है। इसपर विदेशी संस्कृतिका लेशमात्र भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यह यहाँकी मौलिक कला थी, जो विश्वके लिये एक अद्भुत देन है। (क्योंकि अरब तथा यूरोपके लोग प्रतिमा-विरोधी थे)। उस समय भारत विश्वका—विशेषकर एशियाका शिक्षक गुरु—'जगद्गुरु' था—'India was not then in a state of pupilage, but the teacher of whole Asia and she did not borrow any western suggetion to mould her way of thinking.' (Havel, Majumdar &c.)। श्रीविष्णुधर्मोत्तरमें यह प्रतिमा कला सांगोपांग निरूपित है। प्रस्तुत 'वराहपुराण'के भी १८१-८६ तकके अध्यायोंमें अत्यन्त गूढ रूपमें मधूकके काष्ठसे बनी हुई प्रतिमाकी प्रतिष्ठा-विधि निरूपणके बाद पाषाण और मिट्टीसे निर्मित विग्रहकी प्रतिष्ठाका विधान दर्शाया गया है। ताँबा, काँसा, चाँदी और सुवर्णकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके प्रकारका भी यहाँ सुन्दर वर्णन हुआ है। 'शिल्परत्नम्', 'मानसार', श्रीशिल्परत्नाकर आदिमें यह प्रसङ्ग तथा एतत्सम्बन्धी अन्य विवरण बड़े सुन्दर ढंगसे निरूपित हुए हैं।

वराहपुराणमें प्रतिमा-विधि निरूपणके बाद श्राद्धकी उत्पत्तिका कथन तथा पिण्डसंकल्प करनेका विधान है। पिण्डकी उत्पत्तिका विवेचन करके पितृयज्ञका निर्णय किया गया है। तत्पश्चात् मधुपर्कके दानका फल वर्णन करके संसार-चक्रका कथन तथा 'कर्मविपाक'का सुन्दर वर्णन किया गया है। इसके बाद यमराजके दूतका कथन, उनके किंकरों और नरकोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जिसने जैसा कर्म किया है, उसे वैसा ही फल इस लोकमें भी भोगना पड़ता है—यह स्पष्ट किया गया है। फिर अशुभकी शान्तिका कथन तथा शुभकर्म-फलके उदयका मार्ग प्रदर्शित किया गया है। इसके बाद 'पतिव्रता'की कथामें महाराज निमिका अद्भुत आख्यान आया है। तत्पश्चात् पाप-नाशकी दिव्य कथा, गोकर्णेश्वरका प्रादुर्भाव, नन्दीको वरदान, जलेश्वर, शैलेश्वर और शृङ्गेश्वरकी महिमा है। इस प्रकार यह पुराण प्राचीन भारतीय चिन्तन एवं विचारधाराकी अमूल्य थाती है, जो हमारी प्राचीन संस्कृति-आचार-विचारके साथ वर्तमान कर्तव्यका भी समुचित दिशा निर्देश करती है। वस्तुतः इसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गपर चलकर हम आजभी अपना तथा विश्वका परम श्रेयःसम्पादन कर सकते हैं।

पुराणोंकी उपयोगिता तथा वराह-पुराणकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—आचार्य पं० श्रीकालीप्रसादजी मिश्र, 'विद्यावाचस्पति')

पुराणोंकी प्रामाणिकता भारतीय परम्परामें अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित है। ये भी प्रायः वेदोंके समान ही मान्य हैं। इतिहास और पुराण वेदोंके ही उपबृंहण हैं। अतः यह निर्विवाद है कि जो रहस्य वेदोंमें निहित हैं, वे ही सरल-तरल, विस्तृत एवं परिष्कृत होकर इतिहास-पुराणोंके रूपमें प्रकट हुए हैं। पुराणोंकी प्रतिपादन-पद्धति बड़ी सुन्दर है। इनमें प्रतिपाद्य विषयके अनुरूप भाषा तथा परम्परागत शैलियोंकी विभिन्न प्रकारकी योजनाएँ हैं।

इनकी अव्याहत प्रामाणिकताको लक्ष्यकर श्रद्धालु स्मृतिकारोंने तर्कद्वारा इनके खण्डनको दोषजनक माना है—

पुराणं* मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥
(वृद्धगौतमस्मृ० ३।६० महाभारत १४।१०९।६० स्मृतिचन्द्रिका १। पृ० ४)

अर्थात् पुराण, मनुनिर्दिष्ट धर्म, षडङ्गोंके सहित (चारों) वेद और आयुर्वेद—ये चारों ही स्वतः-प्रमाण सिद्ध या ईश्वराज्ञासे मान्य हैं, अतः इनका 'क्यों और कैसे' इत्यादि कुतर्कोंद्वारा अनादर या खण्डन नहीं करना चाहिये।

इसीलिये चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रमको माननेवाले पुराणोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों, आचारों और विविध व्यवहारोपयोगी उपदेशों, निर्देशों किंवा शिक्षाओंका असंदिग्ध रूपसे श्रद्धापूर्वक पालन करते चले आ रहे हैं और करते रहेंगे। आवश्यकता इस बातकी है कि उनमें निहित तत्त्वों और रहस्योंकी छान-बीन श्रद्धा-भक्तिसे की जाय और आवश्यक ज्ञातव्य तथा आचरणीय विषयोंको यथार्थरूपमें प्रकाशित कर अधिकाधिक लोक-कल्याण किया जाय।

पुराण हमारी मूल सृष्टिको बताकर हमारी संस्कृति-का सजीव इतिहास प्रस्तुत करते हैं। पुराणोंसे ह[में ज्ञात होता है कि हम] जानते हैं कि यह दृश्य जगत् सृष्टि-क्रममें [कैसे] उत्पन्न हुआ, ब्रह्माने किस प्रकार भूतसर्ग [और] प्राणियोंको उत्पन्न किया। अष्टविधसृष्टिका [ज्ञान] हमें इन पुराणोंसे ही प्राप्त होता है। देव-यक्ष, कि[न्नर,] सिद्ध इत्यादिका परिचय भी हमें इन्हींसे मिलता [है।] हम अपने पूर्वजोंका परिचय पुराणोंसे ही पाते [हैं।] वे हमें बतलाते हैं कि ब्रह्माके मानसपुत्र कश्यप, अ[त्रि,] पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, वामदेवकी हम संतान [हैं] और हमारा उद्देश्य पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, का[म] और मोक्ष)की प्राप्ति करना है। वे यह [भी] सिखलाते हैं कि विश्व-प्रेम ही नहीं, 'भूतात्मवाद' भी हम[ारा] सिद्धान्त है। हमारा आचरण—'आत्मनः प्रतिकूला[नि] परेषां न समाचरेत्' पर आधृत है। (श्रीविष्णुधर्मोत्तर[) ...] संस्कृतिको उज्जीवित रखनेवाले ये पुराण हमें उन चक्रव[र्ती] राजाओंका इतिवृत्त बतलाते हैं, जिनके प्रजावात्सल्य, स्व[...] धर्मानुराग, उदात्त त्याग और गौरवान्वित आदर्श अनुकरणी[य] एवं विश्वविख्यात हैं। हमें अर्जुनकी वीरता, कर्णक[ी] दान-शीलता, भीमकी बलवत्ता, भीष्मपितामहकी पितृ[-] भक्ति, व्यासकी विशाल प्रतिभा, वाल्मीकिकी तपश्चर्या तथ[ा] परशुरामकी दृढ़-प्रतिज्ञता कौन बतलाते हैं? यज्ञ-याग, सत्र, इष्टपूर्तका विधान, देवतायतन-निर्माण, उनके पूजन-प्रकार, तीर्थोंका माहात्म्य, व्रतोंका विधि-विधान, तपश्चर्याके प्रकार—ये सब पुराणोंसे ही ज्ञात होते हैं।

पुराण भारतीय संस्कृतिके इतिहास एवं व्याख्यान हैं। वे ज्ञान-विज्ञानके भण्डार हैं। उनमें रहस्यात्मक तात्त्विक विषयोंकी उपाख्यानों एवं आख्यायिकाओंके माध्यमसे समीचीन विवेचनाएँ हैं। कहीं-कहीं भागवतादि ...

* पाठान्तर—भारतम् (महाभा० १४। १०९। ६०)।

है; क्योंकि एत्र—(यत्रत्य) सारी जनता व्रजवासिनी ही थी। यहाँकी भाषा 'व्रजभाषा'से मिलती है। आगरा, मथुरा, धौलपुर, मुरैना भी व्रजमें ही थे। आगराको ही लोग उस समय 'अग्रवन' कहकर पुकारते थे। अग्र शब्दका अर्थ है—प्रमुख—प्रधान वन। यथा—'प्रपर्याग्रमाहरचासपाऽग्रामीयमग्रियम्' (अमर-कोश, विशेष निघ्न्र ५८)

'रेणुका-क्षेत्र' (रुनकुता) जो इस समय आगरामें है, वह भी पहले मथुरामें ही था। क्योंकि संकल्पमें यहाँ अब भी पढ़ा जाता है—'मथुरामण्डलान्तर्गत-रेणुकासमीपक्षेत्रे' इत्यादि। प्राचीन युगमें वनोंमें भील जाति रहती थी। इस भील जातिका कथन 'रामचरित-मानस'में इस प्रकार है—

कोल किरात भिल्ल बनचारी।
(रामच० मान० २।१२०।१)

यह भील जाति भाण्डीरवनमें, किरात जाति 'किरात-वन'में रहती है, जो अग्रवनके समीप अविवन था, और अब आगरा मण्डलान्तर्गत किरातावली प्राकृत व्रजभाषामें 'किरावली' पुकारी जाती है। कोल अलीगढ़के पास है, वहाँ कोलजाति रहती है। कोलकाल-का अर्थ साहित्यमें इस प्रकार भी है—

'कोलं कुवल-फेनिले। सौवीरं बदरं घोण्टा' इस प्रकार बेरके फलका नाम कोल है तथा कोल सूअरका भी नाम है—

'वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरिः किटिः'

भाव स्पष्ट है कि अलीगढ़के पास कोल-ग्राममें जहाँ कोल वन था, कोल भील जाति, बेर-वनमें जहाँ जंगली सूअर घूमते थे, वहाँ रहती थी। 'किरातवन'के निकट स्थित हुआ 'दुरध्व-वन' था। 'दुरध्व'का अर्थ—

'व्यध्वो दुरध्वो विपथः कदध्वा कापथः समः'

—कण्टकाकीर्ण—खराब मार्ग है, जिससे इस वनको 'दुरध्ववन' पुकारते थे। वनमें महर्षि दुर्वासाका निवास था (मथुरामाहात्म्य १६४)। क्योंकि उन्होंने अपनी राशिके अनुसार ही वनका चयन किया था तभी तो—कहा गया है—

'बन दुरध्व मुनि करहिं निवासा। जग बिख्यात नाम दुर्बासा॥'

दुरध्वका अपभ्रंश प्राकृत व्रजभाषाका शब्द दूरा है। मुरैनाको उस काल (द्वापरयुग)में 'मयूरवन' पुकारते थे। इस वनमें मोरमुकुटधारी विपिनविहारी अपना शृङ्गार करते थे। व्रजमण्डलकी सीमाका प्रत्यक्ष प्रमाण 'गोहद' उपनगर है। यहाँतक भगवान् गोपगणोंके साथ गाय चराने आते थे। इस व्रजमण्डलकी सीमा किंवदन्तियोंके आधारसे इस प्रकार है। यथा—

कभी कभी भगवान से हो गई ऐसी भूल।
काबुलमें मेवा करी व्रजमें बोय बबूल॥

इसका—'काबुलमें मेवा करी व्रजमें कियो करील' ऐसा भी पाठान्तर है। जहाँतक बबूल-करील पाये जायँ, वहाँतक व्रजमण्डल है। एक किंवदन्ती भी मथुरा-मण्डलकी सीमा स्पष्ट करती है—

इत बरहद उत सोनहद, उत सूरसेनको ग्राम।
व्रज चौरासीकोसमें मथुरामण्डल श्याम॥

भाव है कि बरहद अलीगढ़के पास और सोनहद (सोननदी) किरावली (आगरा)के पास है, जो तहसीलके नकशेमें भी देखी जा सकती है। उधर शूरसेनके ग्राम 'बटेश्वर'तक मथुरामण्डल था। इसीलिये वराहपुराणके अनुसार भी माथुर-मण्डल-चतुरशीति कोशात्मक व्रजमण्डल ही था।

वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ

(लेखक—श्रीरामसुन्दरजी [illegible], [illegible])

मथुराके विषयमें लोकमें यह उक्ति अति प्रसिद्ध है—

'तीन लोक से मथुरा न्यारी।'

पुराणोंके अनुसार यह भूमि सृष्टि और प्रलयकी व्यवस्था (विधान)से परे दिव्य गोलोकभूमि है। गो-गोप-गोपीगण परिवेष्टित, कंदर्पकोटि कमनीय, निखिल रसामृतसिन्धु, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डपति, सर्वलोक-महेश्वर, अचिन्त्यसौन्दर्य-माधुर्यनिधि, मुरलीवादननिरत गोलोक-विहारी, श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी जो और जैसी लीलाएँ गोलोकधाममें होती हैं वे और वैसी ही लीलाएँ इस मथुरा-(व्रज-) मण्डलमें होती हैं'—ऐसा ब्रह्म-वैवर्तपुराण, गर्गसंहिता इत्यादि ग्रन्थोंमें उल्लेख है। मथुराकी महत्ताके विषयमें किसी एक भक्त शिरोमणि महात्माने तो अपना अनुभवजन्य अटपटा अभिमत, सहज निःसृत भावमय हृदयोद्गार इस प्रकार व्यक्त किया है—

> मथुरेति त्रिवर्णीयं ह्यर्वातोऽपि गरीयसी।
> सा धावति परं ब्रह्म ब्रह्म तामनुधावति ॥

'म-थु-रा' ये तीन वर्ण वेदत्रयीसे भी बढ़कर (श्रेष्ठ) हैं; क्योंकि वेदत्रयी तो ब्रह्मके पीछे दौड़ती और ब्रह्म मथुराके पीछे दौड़ता है।'

पद्मपुराण पातालखण्डमें उल्लेख है—

> मकारे च उकारे च अकारे चान्तसंस्थिते।
> माथुरः शब्दनिष्पन्नः ॐकारस्य ततः समः॥

अर्थात्—'मथुरा' शब्दमें मकार, उकार, अकार स्थित हैं। इन्हीं (अ उ म)से 'मथुरा' शब्द निष्पन्न हुआ है। इससे यह 'ओंकार' (ॐ) शब्दके सम प्राप्य है। मकारमें महारुद्र, उकार महाविष्णु तथा अकारमें विधुब्रह्मा स्थित हैं; अतएव देवत्रय महिमामयी मथुरा अतः श्रेष्ठ सम नित्य-निरन्तर स्थित है।*

'वराहपुराणमें भगवान्‌के वचन हैं—

> न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
> समानं मथुराया हि प्रियं मम वसुंधरे॥
> सा रम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम।
> (१५२।८।९)

'वसुंधरे! पाताल, अन्तरिक्ष (भूमिसे ऊपर स्वर्गादिलोक) तथा भूलोकमें मुझे मथुराके समान कोई भी प्रिय (तीर्थ) नहीं है। यह अत्यन्त रम्य प्रशस्त मेरी जन्मभूमि है।'

भारतवर्षमें अनेक तीर्थस्थान हैं, सबका माहात्म्य है और भगवान्‌के अनेक जन्मस्थान भी हैं, तथापि 'मथुरा'की बात ही निराली है, यहाँका आनन्द ही अनोखा है तथा महत्त्व ही कुछ और है। यहाँ नगर-ग्राम, मठ-मन्दिर, वन-उपवन, लता-कुञ्ज, सर-सरोवर, नदी, (यमुना) पर्वत आदिकी अनुपम शोभा भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे (नित्य मनोहारी) देखनेको मिलती है। अपनी जन्मभूमिसे सभीको प्रेम होता है, चाहे वह कैसी ही हो—उजाड़ खण्डहर, शून्य-वन्य प्रान्त या सुरम्य स्थान। वह जन्मस्थान है, यह विचार ही उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होनेके लिये पर्याप्त है। इसीलिये भगवान्‌का भी इससे प्रेम (एकात्मभाव।) होना स्वाभाविक है। श्रीमद्भागवत(१०।१।२८)में आया है—'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः।' भगवान्‌के इस नित्य संनिधानका वर्णन 'वराहपुराण'में इस प्रकार मिलता है—

---

* महारुद्रो मकारः स्यादुकारो ब्रह्मसंज्ञकः। अकारो ब्रह्मरूपः स्यात् त्रिशब्दं माथुरं भवेत् ॥
तथा वरः श्रेष्ठ उक्तः सम एवाभवत्ततः। सा त्रिदेवमयी मूर्ति माथुरी तिष्ठते सदा ॥
(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

मथुरायाः परं क्षेत्रं त्रैलोक्ये नहि विद्यते।
यस्यां वसाम्यहं देवि मथुरायां तु सर्वदा॥
(१६९। ११)

भगवान् श्रीहरिका नित्य सांनिध्य मथुराको ही प्राप्त है। इसीलिये इसकी उपमा तीन लोकमें कहीं है ही नहीं। (इसीसे यह पुरी तीन लोकसे न्यारी है) इस भूमिका साक्षात् भगवान्से नित्य सम्बद्ध होनेसे ही इसका माहात्म्य विशेष है। यहाँ सर्वसाधारण तथा सामान्य प्राणियोंकी तो बात ही क्या; इस पुरीका वास बड़े-बड़े पुण्यात्माओंको भी दुर्लभ है। इस दिव्य भूमिका सेवन कोई विरले भाग्यवान् भगवद्भक्त, भगवान्के विशेष कृपापात्रजन ही कर सकते हैं—

न तत्पुण्यैर्न तद्दानैर्न तपोभिर्न तज्जपैः।
न लभ्यं विविधैर्यज्ञैर्लभ्यं मदनुभावतः॥
(वराहपुराण)

'इस मथुरामण्डलका आवास न पुण्योंसे, न दानोंसे, न जपतप और न विविध यज्ञोंसे ही लभ्य है, वह तो केवल मेरे अनुग्रहसे ही प्राप्तव्य है।'

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥*

'यह मधुपुरी धन्य है और वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वैकुण्ठमें तो मनुष्य अपने पुरुषार्थसे पहुँच सकता है, पर यहाँ श्रीकृष्णकी कृपाके बिना एक क्षण भी उसकी स्थिति नहीं रह सकती।' इसीकी पुष्टि वराहपुराणमें इस प्रकार की गयी है।—

श्रीविष्णोः कृपया नूनं तत्र वासो भविष्यति।
विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥

'भगवान् श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) की कृपासे ही वहाँ (मथुरामें) निश्चय ही वास मिलता है, किंतु कोई मनुष्य श्रीकृष्णकी कृपाके बिना एक पल भी वहाँ नहीं ठहर सकता।'

आज यदि उस पुण्य-भूमिकी रही-सही नैसर्गिक छटाके दर्शनके लिये—उस छटाके लिये, जिसकी एक झाँकी, उस महनीय पवित्रयुगका, उस जगद्गुरु (कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्)का उसकी लौकिक रूपमें की गयी अलौकिक लीलाओंका अद्भुत प्रकारसे स्मरण कराती है, अनुभवका आनन्द देती तथा मलिन मन-मन्दिरको सर्वथा स्वच्छ करनेमें सदा सहायता प्रदान करती है—भावुक भक्त निरंतर तरसते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! यदि यहाँ कोई नैसर्गिक शोभा भी न होती, प्राचीन लीलाचिह्न भी न मिलते तो भी केवल साक्षात् परब्रह्मकी जन्मभूमि होनेके नाते ही यह स्थान हमारे लिये महान् तीर्थ ही है। यहाँकी भूमि जन-जनके लिये वन्दनीय है। यहाँकी पावन रजको ब्रह्मज्ञ उद्धवने अपने मस्तकपर धारण किया था। वे व्रजवासी भी दर्शनीय तथा पूजनीय हैं, जिनके पूर्वजोंके बीचमें साक्षात् भगवान् अवतरित हुए थे। उनके भाग्यकी सराहनाका मार्मिक विश्लेषण भक्तप्रवर सूरदासजीके शब्दोंमें देखिये—

व्रजवासी पटतर कोउ नाहिं।
ब्रह्म-सनक-सिव ध्यान न आवैं इनकी जूँठन लै लै खाहिं॥
हलधर कहत छाक जेवत सँग, मीठो लगत सराहत जाइ।
'सूरदास' प्रभु विश्वम्भर हरि, सो ग्वालन के कौर अघाइ॥
(सूरसागर १०८७)

जो तत्त्व बड़े-बड़े देवताओं, ऋषि-मुनियों (ब्रह्मा, शिव, सनकादि)का ध्येय और सेव्य (विषय) होकर भी उनकी ध्यान-समाधिद्वारा ग्राह्य (आकृष्ट) नहीं होता, वही (परात्पर परब्रह्म) जब व्रजमें (सगुण-साकार रूपमें) गोपबालकोंके मध्य बैठकर (प्रेम-पराधीन हो) उनका उच्छिष्ट खाने (भोग

* यह श्लोक भी सम्भवतः वराहपुराणका ही हो। वराहपुराणके उपर्युक्त श्लोकसे इसका प्रायः साम्य है। अन्तिम पाद तो समान है ही, अर्थ और भावकी दृष्टिसे भी समता है। दोनोंमें पाठ-भेदसे अन्तर प्रतीत होता है।

जाने) जाता है तो उस व्रजको सम्पूर्ण और अद्भुत पाकर वह (विधाता ब्रह्मा) व्रजवासियोंके, हाथोंके (भोग चढ़ानेके) उन पत्तोंसे स्पर्श पाके अपनी पूर्ण परितृप्ति हो नहीं मानता; और अपनेको धन्य भी मानता है। साथ ही उसके माधुर्य और आदरका गुणगान करते हुए भी वह नहीं थकता। ऐसे व्रजवासियोंके इस देवदुर्लभ, अनन्त सौभाग्यपर भला किसे ईर्ष्या न होगी! यदि ब्रह्मादि देवताओंको उनसे स्पृहा हो तो फिर इसमें आश्चर्य क्या है!

'व्रज' शब्दसे साधारणतया अभिप्राय मथुरा जिला और उसके आस-पासके भू-भागसे समझा जाता है। वर्तमान मथुरा तथा उसके आस-पासका प्रदेश प्राचीन कालमें 'शूरसेन'-जनपदके नामसे प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी मथुरा या मधुरानगरी थी। शूरसेन* जनपदकी सीमाएँ समय-समयपर बदलती रहीं। कालान्तरमें यह जनपद मथुरा नामसे ही विख्यात हुआ। नन्दके 'व्रज'का प्रयोग 'श्रीमद्भागवत'में बार-बार हुआ है, परंतु वैदिक-साहित्यमें भी इसका प्रयोग प्रायः पशुओंके समूह, उनके चरनेके स्थान (गोचरभूमि) उनके रहनेकी जगह (गोष्ठ या बाड़े) इत्यादिके अर्थमें मिलता है। सारांश-जिस स्थानमें पशु अधिक हों उसे 'व्रज' कहते हैं। अथवा 'व्रजन्ति अस्मिन् जनाः श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थमिति व्रजः' अर्थात् जिस प्रदेशमें भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये जीव आते हैं वह व्रज है। व्रजके सम्बन्धमें सबसे अधिक वर्णन पुराणोंमें मिलते हैं। जिन पुराणोंमें व्रजके उल्लेख अधिक मिलते हैं उनमें हरिवंश, विष्णु, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, भागवत आदि प्रमुख हैं। वराहपुराणमें तो मथुराको ही [illegible] तथा व्रजमण्डलके [illegible] विस्तृत वर्णन मिलता है।

यह व्रजभूमि मथुरा और वृन्दावनके आस-पास चौरासी कोसोंमें फैली हुई है। वराहपुराणमें [illegible] विस्तार बीस योजन (अस्सी कोस) माना गया है, जैसे कि—

विंशतियोजनानां हि माथुरं मम मण्डलम्।
पदे पदेऽश्वमेधानां फलं नात्र विचारणम्†॥
(१५८।१[illegible])

अर्थात् 'मेरा मथुरा-मण्डल बीस योजन है। [illegible] पग-पगपर अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संशय (विचार) नहीं है।'

उपर्युक्त बीस योजन (अस्सी कोस)में मथुरापुरी के चार कोस मिला देनेसे चौरासी कोस होते हैं। सूरदासजीने भी चौरासी कोसवाले व्रज-मण्डलका ही उल्लेख किया है—

'चौरासी व्रजकोस निरंतर खेलत हैं बलमोहन।' आदि।

मथुरामण्डलकी भौगोलिक स्थिति तथा परिसीमन

मथुरा व्रजके केन्द्रमें है। यह महान् मधुपुरी उस महान् विभुका जन्म-स्थान होनेके कारण धन्य हो गयी। मथुरा ही नहीं, समस्त शूरसेन जनपद या व्रज-मण्डल, आनन्दकन्द, व्रजचन्द, लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्र-की मनोहर लीला-भूमि होनेके कारण ही गौरवान्वित है

* हरिवंश, विष्णु आदि पुराणोंमें तथा परवर्ती संस्कृत साहित्यमें वसुदेवजी तथा श्रीकृष्ण आदिके लिये 'शौरि' विशेषण प्राप्त होता है, क्योंकि श्रीकृष्णके पितामहका नाम 'शूर' था। इसीलिये यह जनपद 'शूरसेन' कहलाया। ऐसा उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थोंमें देखनेमें आता है।

† पदे पदेऽश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यसंशयः। (वराहपु०)
तथा—
यत्र तत्र नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः। (वराहपु०)
विभिन्न प्रतियोंमें ऐसा पाठभेद भी मिलता है।

और न बाने आगे भी कितने (अनन्त) समयतक बने रहेगा।

वर्तमान मथुरा जिलेके उत्तरमें गुड़गाँव और अलीगढ़ जिलेके भाग हैं। पूर्वमें अलीगढ़* और एटा, दक्षिणमें आगरा तथा पश्चिममें भरतपुर तथा गुड़गाँवका कुछ भाग है। एक 'ब्रज-भाषा'के कविके अनुसार—

इत बरहदगाँव उत सोनहद, उत सूरसेन को गाम।
ब्रज चौरासी कोसमें मथुरा मंडल धाम॥

वराहपुराण (अध्याय १६५। २१)से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरापुरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके बीच बसी हुई थी और इनके बीचकी दूरी अधिक नहीं थी। हरिवंशपुराणमें भी कुछ इसी प्रकारका संकेत प्राप्त होता है—

'गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः।'

(हरिवंश० १। ५५। ३६)

वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुनासे पर्याप्त दूर है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुनाके बीच इतनी दूरी न रही होगी, जितनी कि आज है।

मथुरा अति प्राचीन नगर है। इसका नाम मधुरा या मधुवन भी है, जो मधु दैत्यके नामसे पड़ा हुआ प्रतीत होता है।‡ भगवान् श्रीकृष्णने तो यहाँ द्वापरके अन्तमें अवतार लिया था; किंतु यह क्षेत्र तो आदिकालसे परम पावन रहा है—'पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः।' इस परम पवित्र मधुवनमें श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।

ध्रुवने यहाँ तपस्या करके भगवद्दर्शन प्राप्त किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तरमें मधुराका परिवर्तित नाम 'मथुरा' प्रचलित हो गया।

मथुरा-मण्डल (ब्रजप्रदेश) अपनी प्राकृतिक छटा और वनोंके लिये प्रसिद्ध है। प्राचीन कालमें यहाँ अनेक बड़े वन थे, जिनके नाम प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं। इन उल्लेखोंके अनुसार ब्रजमें बारह वन और अनेक उपवन हैं। जो इस प्रकार हैं—

वन-उपवन

महावन—१—मधुवन, २—तालवन, ३—कुमुदवन, ४—बहुलावन, ५—काम्यवन, ६—खदिरवन, ७—भद्रवन, ८—भाण्डीरवन, ९—बेलवन, १०—वृन्दावन, ११—लोह-वन (लोहजङ्घवन) और १२—महावन।

उपवन—१—गोकुल, २—गोवर्धन, ३—नन्दगाँव, ४—बरसाना, ५—बच्छवन, ६—कोकिलावन, ७—रावल आदिबद्री आदि अनेक उपवन हैं।

वर्तमान समयमें बड़े वन तो नहीं रहे; किंतु उनकी स्मृतिके रूपमें अब भी महावन, काम्यवन, बेलवन, वृन्दावन, भाण्डीरवन आदि विद्यमान हैं। प्राचीन ब्रजमें कदम्ब, अशोक, चम्पा, नागकेसर आदिके वृक्ष बहुत होते थे। इसका प्रमाण ब्रजके विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुए उन कलावशेषोंसे मिलता है, जिनपर इन वृक्षोंके चित्र उत्कीर्ण हैं। वर्तमान ब्रजमें कदम्ब, करील, पीलू, शीशम, ढाक आदि वृक्ष अधिकतासे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इमली, नीम, जामुन, खिरनी, पीपल, बरगद, छोंकर बेल और बबूल आदिके वृक्ष भी विभिन्न स्थानोंमें उपलब्ध हैं। सुखद विषय है कि इधर शासन तथा जनताका ध्यान ब्रजकी प्राचीन वनस्पतियोंके पुनरुद्धारकी ओर गया है। उल्लेखनीय है कि इस समय न केवल पुराने वृक्षोंकी रक्षा की जा रही है, अपितु नये-नये वृक्ष लगाकर ब्रजप्रदेशकी सौन्दर्य-वृद्धि भी की जा रही है। ऐसा करनेपर ही पश्चिम (राजस्थान)की

* अलीगढ़ जिलेका बरहदगाँवसे तात्पर्य है।

† गुड़गाँव जिलेके सोन-नदीके किनारेतकका प्रदेश। विशेष द्रष्टव्य—'ब्रजका इतिहास' पृष्ठ-संख्या २-४

‡ हरिवंशपुराणमें उल्लेख है कि मधु नामक राजा गिरिव्रज या गिरिव्रजको अपनी राजधानी बनाकर राज्य करता था।

लगाने) लगता है तो उस कालमें समस्त जीव जगत्‌का पालक वह (विश्वम्भर प्रभु) व्रज-गोपकुमारोंके हाथोंसे (भोज्य पदार्थोंके) उन ग्रासोंको ग्रहण करके अपनी पूर्ण परितृप्ति ही नहीं मानता; अपितु अपनेको धन्य भी मानता है। साथ ही उसके माधुर्य और स्वादका गुणगान करते हुए ही वह नहीं थकता। ऐसे व्रजवासियोंके इस देवदुर्लभ, अनन्त सौभाग्यपर भला किसे ईर्ष्या न होगी ! यदि ब्रह्मादि देवताओंको उनसे स्पृहा हो तो फिर इसमें आश्चर्य क्या है !

'व्रज' शब्दसे साधारणतया अभिप्राय मथुरा जिला और उसके आस-पासके भू-भागसे समझा जाता है। वर्तमान मथुरा तथा उसके आस-पासका प्रदेश प्राचीन कालमें 'शूरसेन'-जनपदके नामसे प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी मथुरा या मथुरानगरी थी। शूरसेन* जनपदकी सीमाएँ समय-समयपर बदलती रहीं। कालान्तरमें वह जनपद मथुरा नामसे ही विख्यात हुआ। नन्दके 'व्रज'का प्रयोग 'श्रीमद्भागवत'में बार-बार हुआ है, परंतु वैदिक-साहित्यमें भी इसका प्रयोग प्रायः पशुओंके समूह, उनके चरनेके स्थान (गोचरभूमि) उनके रहनेकी जगह (गोष्ठ या बाड़े) इत्यादिके अर्थमें मिलता है। सारांश-जिस स्थानमें पशु अधिक हों उसे 'व्रज' कहते हैं। अथवा **'व्रजन्ति अस्मिन् जनाः श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थमिति व्रजः'**

अर्थात् जिस प्रदेशमें भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये जीव आते हैं वह व्रज है। व्रजके सम्बन्धमें सबसे अधिक वर्णन पुराणोंमें मिलते हैं। जिन पुराणोंमें व्रजके उल्लेख अधिक मिलते हैं उनमें हरिवंश, विष्णु, मत्स्य, श्रीमद्भागवत, पद्म, वराह ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रमुख हैं। वराहपुराणमें तो मथुर नामसे ही लगभग तीस अध्यायोंमें मथुरामण्डल और माहात्म्यका विस्तृत वर्णन मिलता है।

यह व्रजभूमि मथुरा और वृन्दावनके आस- चौरासी कोसोंमें फैली हुई है। 'वराहपुराण'में इ विस्तार बीस योजन (अस्सी कोस) माना गया है जैसे कि—

विंशतियोजनानां हि माथुरं मम मण्डलम्।
पदे पदेऽश्वमेधानां फलं नात्र विचारणम् †॥
(१६८। १

अर्थात् 'मेरा मथुरा-मण्डल बीस योजन है। जा पद-पदपर अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। इस कोई संशय (विचार) नहीं है।'

उपर्युक्त बीस योजन (अस्सी कोस)में मथुरापुरी के चार कोस मिला देनेसे चौरासी कोस होते हैं। सूरदासजीने भी चौरासी कोसवाले व्रज-मण्डलका ही उल्लेख किया है—

'चौरासी व्रजकोस निरंतर खेलत हैं बलमोहन।' आदि।

मथुरामण्डलकी भौगोलिक स्थिति तथा परिसीमन

मथुरा व्रजके केन्द्रमें है। यह महान् मथुरापुरी उस महान् विभुका जन्म-स्थान होनेके कारण धन्य हो गयी। मथुरा ही नहीं, समस्त शूरसेन जनपद या व्रज-मण्डल, आनन्दकन्द, व्रजचन्द्र, लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्र की मनोहर लीला-भूमि होनेके कारण ही गौरवान्वित है

---

* हरिवंश, विष्णु आदि पुराणोंमें तथा परवर्ती संस्कृत साहित्यमें वसुदेवजी तथा श्रीकृष्ण आदिके लिये 'शौरि' विशेषण प्राप्त होता है, क्योंकि श्रीकृष्णके पितामहका नाम 'शूर' था। इसीलिये यह जनपद 'शूरसेन' कहलाया। ऐसा उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थोंमें देखनेमें आता है।

† पदे पदेऽश्वमेधानां फलं प्राप्नोत्यसंशयः। (वराहपु०)
तथा—
यत्र तत्र नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः। (वराहपु०)
विभिन्न प्रतियोंमें ऐसा पाठभेद भी मिलता है।

और न जाने आगे भी कितने (अनन्त) समयतक परिवर्तित रहेगा।

वर्तमान मथुरा जिलेके उत्तरमें गुड़गाँव और अलीगढ़ जिलेके भाग हैं। पूर्वमें अलीगढ़* और एटा, दक्षिणमें आगरा तथा पश्चिममें भरतपुर तथा गुड़गाँवका कुछ भाग है। एक 'ब्रज-भाषा'के कविके अनुसार—

इत बरहद उत सोनहद†, उत सूरसेन को गाम।
ब्रज चौरासी कोसमें मथुरा मंडल धाम॥

वराहपुराण (अध्याय १६५। २१)से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरापुरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके बीच बसी हुई थी और इनके बीचकी दूरी अधिक नहीं थी। हरिवंशपुराणमें भी कुछ इसी प्रकारका संकेत प्राप्त होता है—

'गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः।'

(हरिवंश० १। ५५। २६)

वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुनासे पर्याप्त दूर है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुनाके बीच इतनी दूरी न रही होगी, जितनी कि आज है।

मथुरा अति प्राचीन नगर है। इसका नाम मधुरा या मधुवन भी है, जो मधु दैत्यके नामसे पड़ा हुआ प्रतीत होता है।‡ भगवान् श्रीकृष्णने तो यहाँ द्वापरके अन्तमें अवतार लिया था; किंतु यह क्षेत्र तो आदिकालसे परम पावन रहा है—'पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः।' इस परम पवित्र मधुवनमें श्रीहरि नित्य निवास करते हैं।

ध्रुवने यहाँ तपस्या करके भगवद्दर्शन प्राप्त किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तरमें मधुराका परिवर्तित नाम 'मथुरा' प्रचलित हो गया।

मथुरा-मण्डल (व्रजप्रदेश) अपनी प्राकृतिक छटा और वनोंके लिये प्रसिद्ध है। प्राचीन कालमें यहाँ अनेक बड़े वन थे, जिनके नाम प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं। इन उल्लेखोंके अनुसार व्रजमें बारह वन और अनेक उपवन हैं। जो इस प्रकार हैं—

वन-उपवन

महावन—१—मधुवन, २—तालवन, ३—कुमुदवन, ४—बहुलावन, ५—काम्यवन, ६—खदिरवन, ७—भद्रवन, ८—भाण्डीरवन, ९—बेलवन, १०—वृन्दावन, ११—लोह-वन (लौहजङ्घवन) और १२—महावन।

उपवन—१—गोकुल, २—गोवर्धन, ३—नन्दगाँव, ४—बरसाना, ५—वत्सवन, ६—कोकिलावन, ७—रावल आदिबद्री आदि अनेक उपवन हैं।

वर्तमान समयमें बड़े वन तो नहीं रहे; किंतु उनकी स्मृतिके रूपमें अब भी महावन, काम्यवन, बेलवन, वृन्दावन, भाण्डीरवन आदि विद्यमान हैं। प्राचीन व्रजमें कदम्ब, अशोक, चम्पा, नागकेशर आदिके वृक्ष बहुत होते थे। इसका प्रमाण व्रजके विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुए उन कलावशेषोंसे मिलता है, जिनपर इन वृक्षोंके चित्र उत्कीर्ण हैं। वर्तमान व्रजमें कदम्ब, करील, पीलू, शीशम, ढाक आदि वृक्ष अधिकतासे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इमली, नीम, जामुन, खिरनी, पीपल, बरगद, छोंकर बेल और बबूल आदिके वृक्ष भी विभिन्न स्थानोंमें उपलब्ध हैं। सुखद विषय है कि इधर शासन तथा जनताका ध्यान व्रजकी प्राचीन वनस्पतियोंके पुनरुद्धारकी ओर गया है। उल्लेखनीय है कि इस समय न केवल पुराने वृक्षोंकी रक्षा की जा रही है, अपितु नये-नये वृक्ष लगाकर व्रजप्रदेशकी सौन्दर्य-वृद्धि भी की जा रही है। ऐसा करनेपर ही पश्चिम (राजस्थान)की

* अलीगढ जिलेका बरहदगाँवसे तात्पर्य है।

† गुड़गाँव जिलेके सोन-नदीके किनारेतकका प्रदेश। विशेष द्रष्टव्य—'व्रजका इतिहास' पृष्ठ-संख्या २-४

‡ हरिवंशपुराणमें उल्लेख है कि मधु नामक राक्षस गिरिवर या गिरिव्रजको अपनी राजधानी बनाकर राज्य करता था।

ओरसे बढ़ते हुए सम्भावित रेगिस्तानके वेगको रोककर व्रज-प्रदेशकी सुरक्षा की जा सकती है।

सर-सरिताएँ

व्रजमण्डलमें पहले कई सरिताएँ थीं। अब यहाँकी प्रधान नदी यमुना है। धार्मिक दृष्टिसे समस्त मथुरा-मण्डल तथा उसके सुदूरवर्ती प्रदेशोंमें भी यमुनाका अत्यधिक महत्त्व है *। यमुनाके सहित यहाँ कृष्ण-गङ्गा, चरणगङ्गा और मानसीगङ्गा—ये चार नदियाँ ही प्रकट हैं। सरस्वती प्रकट नहीं हैं। मथुरामें जहाँ पहले सरस्वती बहती थीं †, वहाँ अब सरस्वती-नाला और जहाँ सरस्वती यमुनाजीमें मिलती थीं, वहाँ 'सरस्वती-सङ्गम'तीर्थ अब भी प्रसिद्ध है।

यहाँ सरोवर पाँच हैं—मानसरोवर, पानसरोवर, चन्द्र-सरोवर, हंससरोवर और प्रेमसरोवर। इनके अतिरिक्त अनेक कुण्ड और जलाशय (तालाब) हैं, जिनको भगवान् (श्रीकृष्ण) की व्रज-लीलाओंसे सम्बन्ध होनेके कारण विशेष धार्मिक महत्त्व प्राप्त है।

पर्वत

यहाँ मुख्य पर्वत चार हैं—(१) गोवर्धन, (२) बरसानु, (३) नन्दीश्वर, (४) चरणपहाड़ी। व्रजमें पहाड़ोंकी संख्या ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपमें तीन ही मानी जाती हैं। गोवर्धन विष्णुस्वरूप, बरसानु (बरस[illegible] ब्रह्मारूप तथा नन्दीश्वर (नन्दिग्राम) शिव (स्व[illegible] का प्रतीक है। चरण-पहाड़ीकी गणना साधारण पर्वतोंमें नहीं की जाती। व्रजमें प्राचीन वस्तुएँ [illegible] ही हैं—पर्वत, नदी और भूमि। अन्य प्राचीन व[illegible] या तो नष्ट हो गयीं या नष्ट कर दी गयीं और उ[illegible] स्थानपर नयी बन गयीं अथवा पुरानीका जीर्णो[illegible] हो गया।

मार्ग तथा गमनागमनके साधन—

मथुराके चारों ओर व्रजके तीर्थ हैं। इन तीर्थों[illegible] जानेके लिये (व्रजमण्डलके केन्द्रमें अवस्थित होनेके कारण) प्रायः मथुरा होकर ही जाना पड़ता है। अ[illegible] व्रजके सभी मुख्य तीर्थोंमें अधिकांशतः सड़कें हो गयी हैं और वहाँ मोटर-बसों तथा अन्य सवारियोंद्वारा जाया जा सकता है। मथुरा पक्के तथा प्रशस्त राजपथ (सड़कों) और रेलमार्गोंद्वारा, कई प्रमुख नगरों दिल्ली, आगरा, हाथरस, अलीगढ़, जलेसर, भरतपुर आदिसे भी संयुक्त है। मथुरा-जंक्शन तथा मथुरा-छावनी—ये दो मथुराके मुख्य स्टेशन हैं।

मथुरा-जंक्शन—

यह पूर्वोत्तर, मध्य तथा पश्चिम तीन रेलमार्गोंका प्रधान केन्द्र है। दिल्लीसे मथुरा-आगरा होकर (मध्य रेलवे

---

* प्राचीन साहित्यमें 'कलिन्दजा' सूर्यतनया' 'त्रियामा' आदि अनेक नामोंसे यमुनाका उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य—ऋग्वेद १०, ७५; अथर्व० ४, ९, १०; शतपथब्राह्मण १३, ५, ४, ११; ऐतरेय ब्राह्मण १३; रामायण, महाभारत, परवर्ती संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य तथा पुराण-साहित्यमें 'यमुना' की महिमाका वर्णन बहुत मिलता है। उदाहरणार्थ—

गङ्गा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले। यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा॥

(वराहपु० १५२ । ३०)

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर। कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥

(मत्स्यपु० युधिष्ठिर-मार्कण्डेयसंवाद)

यमुनाजलकल्लोले क्रीडते देवकीसुतः। तत्र स्नात्वा महादेवि सर्वतीर्थफलं लभेत्॥
अहो! अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम्। गो-गोपगोपिकासङ्गे यत्र क्रीडति कंसहा॥

(पद्मपु० पाता० हरगौरीसंवादे)

† कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि यमुना पहले सरस्वती नदीमें मिलती थी। प्रागैतिहासिक कालमें सरस्वती के मुख थानेसर यमुना गङ्गामें मिली (देखें—जर्नल आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९३ पृष्ठ ४९ और आगे)

(स्टेशन) बम्बई जाने और आनेके लिये यहाँसे मार्ग है। इसी प्रकार दिल्लीसे नागदा, रतलाम होते हुए भी (पश्चिमरेलवेद्वारा) बम्बई जानेका यह सीधा मार्ग है।

मथुरा छावनी (कैण्ट)—

यह स्टेशन पूर्वोत्तररेलवेकी छोटी लाइनपर है। यह लाइन अछनेरासे आरम्भ होकर, मथुरा-छावनी, हाथरस, कासगंज, फर्रुखाबाद होते हुए कानपुरतक गयी है। मथुरा जंक्शनसे इसी लाइनकी एक शाखा वृन्दावनतक गयी है। मथुरा-छावनी मथुरा नगरके समीप है। मथुरा जंक्शनसे मथुरा डेढ़ मील है। दोनों स्टेशनोंपर नगरतक जानेके लिये सवारी (रिक्शे, तांगे आदि)का प्रबन्ध है।

कलकत्ताकी ओरसे उत्तर रेलवेद्वारा मथुरा आनेवाले यात्रियोंको टूँडला या हाथरसमें गाड़ी बदलनी पड़ती है। टूँडलासे आगरा होते हुए तथा हाथरससे पूर्वोत्तर रेलवेकी छोटी लाइन होकर मथुरा आना पड़ता है।

मथुरा-दर्शन—

इसमें कोई संदेह नहीं कि मथुरा बड़ा ही स्वच्छ, सुन्दर तथा रमणीक नगर है। अयोध्या और काशीकी तरह यहाँ अनेक मन्दिर तथा पक्के घाट हैं। भव्य भवनों, सुरम्य घाटों तथा उच्च शिखरोंवाले विशाल और आकर्षक देवमन्दिरोंसे युक्त मथुराकी शोभा देखते ही बनती है। श्रीयमुना यहाँ अर्धचन्द्राकार (रूप)में बह रही हैं*, जिनके किनारे अनेक सुन्दर, पक्के तथा प्रशस्त घाट हैं। इन घाटोंका (क्रमबद्ध) सिलसिला बराबर एक दूसरेसे लगा है। जिससे यमुनासहित यहाँके घाटोंका दृश्य, बड़ा ही नयनाभिराम दृष्टिगोचर होता है।

यहाँके अधिकांश घाट (तीर्थ) यमुनाजीके दाहिने किनारे-पर ही हैं, जिनमें २४ घाट मुख्य माने जाते हैं। विश्रान्तिघाट या विश्रामघाट यहाँका सुप्रसिद्ध प्रमुख घाट है, जो सबके मध्यमें है। विश्रामघाटसे (गणना करनेपर) दक्षिणमें १२ तथा उत्तरमें १२ घाट अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(१) विश्रामघाट, (२) प्रयागघाट, (३) कनखलघाट, (४) तिन्दुघाट, (५) बंगालीघाट, (६) सूर्यघाट, (७) चिन्तामणिघाट, (८) ध्रुवघाट, (९) ऋषिघाट, (१०) मोक्षघाट, (११) कोटिघाट और (१२) बुद्धघाट—ये दक्षिणावर्ती हैं। उत्तरके घाट हैं—(१३) गणेशघाट, (१४) मानसघाट, (१५) दशाश्वमेधघाट, (१६) चक्रतीर्थघाट, (१७) कृष्णगङ्गाघाट, (१८) सोमतीर्थ-घाट, (१९) ब्रह्मलोकघाट, (२०) घण्टाभरणघाट, (२१) धारापतनघाट, (२२) सङ्गमतीर्थघाट, (संयमन या वासुदेवघाट), (२३) नवतीर्थघाट और (२४) असिकुण्डाघाट।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें हरगौरीसंवादमें वर्णन है कि 'यमुनाका तट परम पवित्र तथा श्रीकृष्णकी क्रीडा-स्थली है। जहाँ समस्त पापनाशिनी, परमपवित्र मथुरा (मधु) पुरी विद्यमान है'—

कृष्णक्रीडाकरं स्थानं यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्या मधुपुरी यत्र सर्वपापप्रणाशिनी॥
यथा तृणसमूहं तु ज्वलयन्ति स्फुलिङ्गकाः।
तथा महान्ति पापानि दहते मधुरापुरी॥
(पद्म० पा०)

'जिस प्रकार अग्निकण (तृणराशि) तिनकोंके समूहको जलाकर नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार मथुरापुरी

* प्राचीन पौराणिक वर्णनोंसे भी इसकी पुष्टि होती है कि मथुरा नगरी यमुना नदीके तटपर बसी हुई थी और उसका रूप—'अर्धचन्द्राकार' (अष्टमीके चन्द्रमा-जैसा) था। देखें—हरिवंश-पुराण (पर्व१ अ० ५४। ५७ से ६१) मथुरावर्णन। यथा—

'अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीर शोभिता।' (हरिवंश १। ५४। ६०)

घोर पापोंको जलाकर भस्म कर देती है।' 'वराहपुराण'में भगवान् वराह पृथ्वीसे कहते हैं—

> सर्वेषां देवतीर्थानां माथुरं परमं महत्।
> कृष्णेन क्रीडितं यत्र तच्च शुद्धं पदे पदे॥

इस प्रकार शास्त्रों तथा पुराणोंसे सिद्ध हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमि-मथुरापुरी सभी तीर्थोंमें अद्वितीय है। यह पद-पदपर परम पवित्र है। मथुरा आदि-वराह-भूतेश्वर-क्षेत्र कहलाती है। भूतेश्वर महादेव मथुराक्षेत्रके क्षेत्रपाल (रक्षक) रूपमें विराजमान हैं।*

मथुराके मन्दिर तथा देवस्थान—

मथुराके चारों ओर चार शिवमन्दिर हैं— पश्चिममें भूतेश्वर, पूर्वमें पिप्लेश्वर, दक्षिणमें रङ्गेश्वर और उत्तरमें गोकर्णेश्वर। चारों दिशाओंमें स्थित होनेके कारण भगवान् शंकरको मथुराका 'क्षेत्रपाल' या कोतवाल कहा जाता है।

असिकुण्डाघाटके ठीक सामनेकी गली मानिक-चौक मुहल्लेमें 'आदिवराह'के मन्दिरमें नीलवराह, तथा उसके निकट अन्य मन्दिरमें श्वेतवराहकी प्राचीन दर्शनीय मूर्तियाँ हैं। व्रजमें (मथुरामण्डलमें) भगवान् वराहके पाँच विग्रह अलग-अलग स्थानोंमें पाये जाते हैं। (१) आदिवराह या नीलवराह, (२) श्वेतवराह (मानिकचौक), (३) वराहदेव (भूतेश्वर), (४) गोपीवराहदेव (वराहघाट, रमणरेती, वृन्दावन) और (वराहजी (गोकुल)में हैं। लेकिन इनमें स प्राचीन, शास्त्रों तथा पुराणोंद्वारा आदिवराहदेव गये हैं, किंतु वराहपुराणके १६३वें अध्यायके 'कपि वराह'-माहात्म्यमें (आदिवराहके पासवाले) श्वेतवर देवका वर्णन है। यह प्राचीन प्रतिमा भी (मानि चौकमें) इस समय आदिवराह-मन्दिरके पास ही स्थि है। 'वराहपुराण'में कहा गया है कि यह प्रतिमा मह कपिलद्वारा सेवित तथा पूजित रही है। वे ही इसके आ प्रतिष्ठापक थे। कालान्तरमें यह इन्द्र, रावण त भगवान् रामद्वारा पूजित होकर, भगवान् रामकी कृपा लवणासुरवधके पश्चात् श्रीशत्रुघ्नजीको प्राप्त हुई औ उन्होंने ही इस वराही प्रतिमाको मथुरामें स्थापि किया था।†

आदिवराहदेवका स्वरूप—

श्यामवर्ण और शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मसे सुशोभित चतुर्भुजरूप है। दोनों पैरोंके नीचे दैत्य हिरण्याक्ष पड़ा हुआ है, भगवान् वराहकी दाढ़पर पृथ्वी और पृथ्वीपर छत्रवत् शेषनाग हैं।

श्वेतवराहका स्वरूप—

गौरवर्ण, चारभुजा—शङ्ख, चक्र, गदा तथा एक हाथमें हिरण्याक्ष दैत्यकी चोटी है एवं चरण उसके ऊपर स्थित हैं। दाढ़ोंपर पृथ्वी धारण किये हुए हैं।

(शेष पृष्ठ ५५४ पर)

---

* मथुरायां च देवत्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि। त्वयि दृष्टे महादेव। मम क्षेत्रफलं लभेत्॥ (वराहपुराण)

† इन्द्रेणाराधितो देवि कपिलो मुनिसत्तमः। तस्य प्रीतो ददौ देवं वराहं दिव्यविग्रहम्॥
ततः कालेन महता रावणो नाम राक्षसः। इन्द्रलोकं गतः सोऽथ स्वर्गं जेतुं महाबलः॥
[illegible] कपिलवाराहं [illegible]॥ तेन सम्पूजितो देवि रावणो लोकरावणः।
[illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]॥
(वराह० १६३। [illegible])

वराहपुराण-संकेतित वराहक्षेत्र—स्थिति और महत्त्व

(लेखक—प्रो० श्रीदेवेन्द्रजी व्यास)

वैदिक कालसे लेकर अबतककी सम्पूर्ण भारतीय आस्तिक विचारपरम्पराने एक मतसे स्वीकार किया है कि परमेश्वर धर्म-स्थापनार्थ और सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा विश्वको पाप-ताप एवं अनाचारसे मुक्त करनेके लिये समय-समयपर लीला-विग्रह धारण करते हैं। ईश्वरके इस लीला-शरीरको अवतारकी संज्ञा दी जाती है और इस तरहके तीसरे अवतार हैं—सूकर या वराह—'तृतीयः स तु वाराहः।' (वायुपु० ९७। ७४) सूकर या वराहावतारके पूर्ण चरितको लेकर 'वराहपुराण'-जैसा बृहत् पुराण ग्रन्थ लिखा गया।

ईश्वरने विभिन्न समयों और अनेकानेक प्रयोजनोंसे सूकर आदि अवतार धारण किये। ये सभी रूप लीला-वपु हैं। वराहके रूपमें ईश्वरने अनेक बार इस पृथ्वीकी रक्षा की और पुनः स्थापना की। ईश्वरने 'महावराह', 'श्वेत-वराह', 'यज्ञ-वराह' और 'नर-वराह'के रूप धारण किये। कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिताके ७। १। ५ अनुवाकमें 'महावराह'के विषयमें कहा गया है—

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्
तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।
स इमामपश्यत् तां वराहो
भूत्वाऽहरत्।

वायुपुराणके आठवें अध्यायमें भी इन्हीं महावराहका कथन है कि आदिविष्णु (आदिवाराह) सूकररूप धारणकर परमाणुरूप पृथ्वीकी खोज करने लगे और अनुमानतः भूमिके स्थानका संकेत पाकर उसके उद्धारमें संनद्ध हो गये। ऐसे महावाराहकी विशाल दंष्ट्रापर सम्पूर्ण पृथ्वी स्थित हुई है। पृथ्वीपर बड़े वेगसे १ मिनटमें ६ हजार उल्काएँ गिरती हैं, जिन्हें १०० मील ऊपर ही भगवान् वराहकी 'वाराही शक्ति' रोककर उन्हें चूर्ण कर देती है।

श्वेतवाराहकी कथा शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डके सप्तम अध्यायमें भी है, जहाँ शिवलिङ्गके परिमाणके ज्ञानहेतु ब्रह्माजीसे विवादमें पड़कर विष्णुने 'श्वेतवाराह'-का रूप धारण किया। उनके इस रूपकी प्रतिमा आज भी 'सूकरक्षेत्र'में प्रतिष्ठित और सुपूजित है। तीसरे 'यज्ञ'-वाराहका उल्लेख श्रीमद्भागवत महापुराण, तृतीय स्कन्धके त्रयोदश और चतुर्दश अध्यायोंमें है। इनका सम्बन्ध भी सूकरक्षेत्रसे है; क्योंकि धरित्रीके उद्धारके पश्चात् इन्होंने सूकरक्षेत्रमें ही स्वरूपका विसर्जन किया था।

चौथे 'नर-वाराह' आज सर्वाधिक सुपूजित हैं। नारायणके द्वारपाल जय-विजय जब सनकादिके शापवश प्रथम राक्षसयोनिमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें उत्पन्न हुए और जब दुर्धर्ष दैत्य हिरण्याक्षने पृथ्वीको जलमें अनिश्चित स्थानपर छिपा दिया, तब भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर इस दैत्यका वध किया और पृथ्वीको मुक्तकर पुनः स्थापित किया। दैत्यवधसे उत्पन्न खिन्नता और श्रमकी थकानको दूर करनेके लिये नर-वाराहने भागीरथीके तटपर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको जिसे मोक्षदा एकादशी कहते हैं, व्रत किया और भागीरथी-तटपर ही अवस्थित सूकरक्षेत्रमें दूसरे दिन द्वादशीको आत्मविसर्जन किया। जिस स्थानपर प्रभुने स्व दिव्य विग्रहको अन्तर्हित किया, वह स्थान 'हरिपदी'के नामसे 'सूकरक्षेत्र'में अबतक विद्यमान है। पर अब देखना यह है कि वह 'सूकरक्षेत्र' है कौन-सा!

भगवान् वाराहने पृथ्वीसे अपने विश्रामस्थल और निर्वाणस्थानकी स्थितिको बताते हुए निम्न श्लोक कहा है—

यत्र भागीरथी गङ्गा मम सौकर्य्ये स्थिता।
यत्र संस्था च मे देवि मुक्तोऽस्मि रसातलात्॥
(वराहपुराण १३७। ७)

इस श्लोकसे सूकरक्षेत्रकी स्थितिका किंचित् संकेत मिलता है। यहाँ सूकरक्षेत्र शब्दके स्थानपर 'सौकरव' शब्दका व्यवहार किया गया है। स्पष्ट बात यह है कि तबका 'सौकरव' अबके क्षेत्रसे किसी अन्य रूपमें ही रहा होगा, पर 'सौकरव' से सम्बन्धित अवश्य होगा। अतः आजके सूकरक्षेत्रको खोजनेके लिये गङ्गातटावस्थित सौकरवसम्बन्धित स्थानको खोजना होगा। इस श्लोकके आधारपर सौकरवक्षेत्रका निम्न रूप होना चाहिये।

१—यह गङ्गातटपर अवस्थित हो।

२—वाराहक्षेत्रके रूपमें प्रसिद्ध हो, यदि मन्दिर हो तो और अधिक प्रामाण्य है।

३—उस स्थानका अभिधान 'सौकरव' शब्दसे ही सम्बन्धित या विकसित हो।

इस समय भारतभूमिपर प्रसिद्ध दो-तीन सूकरक्षेत्र या वराहक्षेत्र हैं, पर इनमेंसे यदि किसीकी स्थिति गङ्गातटपर है तो वहाँ भगवान् वराहका मन्दिर नहीं है, या सौकरवसे कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि किसी स्थलपर वराह-मन्दिर है तो उसका 'सौकरव'से कोई सम्बन्ध नहीं और वहाँ गङ्गातट नहीं। इन तीनोंही बातोंकी पूर्ति करनेवाला कोई वास्तविक सूकर-क्षेत्र है तो वह उत्तरप्रदेश राज्यमें जिला एटाका 'सोरों' नगर है। यह एक प्रसिद्ध सूकरक्षेत्र नामक तीर्थ है, जिसका उल्लेख 'कल्याण'के तीर्थाङ्कमें भी दिया गया है।

पुराणकथित तीनों शर्तें यहाँ पूरी हो जाती हैं। यहाँ 'श्वेत-वाराह' और 'श्याम-वाराह' इन दोनोंके ही विशाल और भव्य मन्दिर हैं और वराह यहाँके सुपूजित क्षेत्राधीश हैं। गङ्गातटपर अवस्थित इस नगरके अभिधान 'सोरों'से सौकरवका सम्बन्ध है। 'सौकरव'से सोरों शब्दका विकास चान्द-प्राकृत-व्याकरणानुसार इस सूत्रसे प्रमाणित है— 'क, ग, च, ज, त, द, प, य, वा प्रायो लुक् इति'। —[illegible] सूकरसे सम्बन्धित होनेके कारण इस शब्दकी अन्य व्युत्पत्ति भी है, जो इसे सौकरव ही [illegible] करती है। सौकरव अर्थात् सूकरसम्बन्धी। सूक[illegible] अरबी और फारसीमें सूअर कहा जाता है। उसका बहुव[illegible] हिंदीमें बना सुअरों और इससे विकसित हुआ सोरों[illegible]

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी इसे ही 'सूक[illegible] क्षेत्र' सिद्ध करते हैं। सोरोंका गङ्गा-तटपर अवस्थि[illegible] होना, वाराह-मन्दिरका होना और सौकरवसे सम्बन्धित हो[illegible] आदि प्रमाण ऐसे हैं जो पुराणानुमोदित हैं। सोरों[illegible] तुलनामें कोई भी अन्य तथाकथित 'सूकरक्षेत्र' इतना प्रसि[illegible] नहीं है। सूकरक्षेत्र श्रीवराहका निर्वाणस्थल है, अतः य[illegible] सांसारिक मनुष्योंके अवसानोत्तर कर्मका भी क्षेत्र है। यह[illegible] कारण है कि भारतके—तीन पिण्डोदकार्थ तीर्थोंमें—प्रयाग[illegible] राज और गयाजीके साथ तीसरा नाम इस सोरोंका ह[illegible] है। यहाँ पिण्डोदक-कर्मद्वारा मुक्ति-प्राप्ति होनेका कारण श्रीवाराह-निर्वाण-क्षेत्र अथच सूकरक्षेत्रका होना ही है। जिस 'हरिपदी'-कुण्डमें भगवान्ने देहत्याग किया, भागीरथी से जुड़े उस कुण्डका अब भी यह चामत्कारिक वैशिष्ट्य है कि यहाँ विसर्जित अस्थि तीसरे दिन जलरूपमें परिणत हो जाती है।

यह सोरों सूकरक्षेत्र ही है जो गुजरात, मालवा, राजस्थान, सिंध, कच्छ, काठियावाड़ आदि सुदूरवर्ती प्रान्तोंमें 'गङ्गा-घाट'के नामसे प्रसिद्ध है और वहाँके लोग पिण्डदान-कर्मके लिये नित्य सैकड़ोंकी संख्यामें यहाँ आते रहते हैं।

भगवान् वाराहका मन्दिर, जिसमें 'श्वेत-वाराह'की प्रतिमा है, इसी स्थानपर है। केवल भारत ही नहीं अपितु इसके उत्तरवर्ती राष्ट्र नेपालसे भी इस मन्दिरका सम्बन्ध है। नेपालके राजवंशीय उत्तरा-धिकारियों और मन्दिरके महामण्डलेश्वर स्वामी कैलासा-नन्द गिरिजीका भव्य चित्र इस मन्दिरमें लगा है, जो इस बातका प्रमाण है। उसकी 'मुगलिया' कला-शैली उसे मध्यकालका सिद्ध करती है। प्रतिमाके ठीक

सामनेवाली कला-शैलीमें निर्मित एक अष्टधातुका विशाल घण्टा, जिसपर इसका स्पष्ट उल्लेख है कि यह घण्टा नेपाल राज्यके महामन्त्रीने अपने पुत्र-जन्मके उपलक्ष्यमें १६वीं शतीमें भेंट किया था। इन विविध प्रमाणोंसे सर्वतोविधि यह सिद्ध होता है कि पुराण-संकेतित सूकरक्षेत्र (सौकरव) सोरों ही है, अन्य नहीं।

अब थोड़ा-सा इसके महत्त्वपर भी विचार कर लिया जाय। यद्यपि इसकी अन्तारार्ष्ट्रिय ख्याति और स्थिति, अस्थियोंका जलरूपमें परिणत होना आदि अपने आपमें इसकी महत्ता प्रकट करते ही हैं, पर एक तीर्थ होनेके नाते पुराणसाहित्यने भी इसके महत्त्वको प्रकट किया है। 'वायुपुराणमें' उल्लेख है—

षष्टिवर्षसहस्राणि योऽन्यत्र कुरुते तपः।
तत्फलं लभते देवि प्रहरार्द्धेन सूकरे॥

'वराहपुराण'में इसके महत्त्वको बताते हुए स्वयं भगवान् वराहने कहा है कि "मेरा 'सौकरव' स्थान सर्वोच्च और सर्वोपरि है और मोक्ष प्रदान करनेकी दृष्टिसे तो सबसे अधिक महत्त्वका है"—

परं कोकामुखं स्थानं तथा कुब्जाम्रकं परम्।
परं सौकरवं स्थानं सर्वसंस्थानमोक्षणम्॥
(वराहपुराण, अ० १४५)

आये कर गर्जना वराह भगवान् हैं

(रचयिता—पं० श्रीउमादत्तजी सारस्वत, 'दत्त', कविरत्न)

चारों वेद जिनके हैं, चारों पद पूजनीय,
जिनके कराल दन्त कालके समान हैं।
प्रकट हुए जो चतुराननकी नासिकासे,
लघु-वपु-धारी, पर शौर्यमें महान हैं।
देखते-ही-देखते वे हुए गिरि-राज तुल्य,
तुण्ड है भयानक और विशाल दोनों कान हैं।
पृथ्वीको उबारने व लानेको रसातलसे,
आये कर गर्जना वराह भगवान् हैं।

× × × ×

ऊँची कर पूँछ, ग्रीव-बालोंको झटकके वे,
चोटसे खुरोंकी सिन्धु-वेग हरने लगे।
चारों ओर सूँघ-सूँघ पहुँचे, जहाँ थी 'भूमि'
'घुर-घुर' शब्दसे दिशाएँ भरने लगे।
दाढ़ों पै उठा 'वसुधा'को अति उछले शीघ्र,
गजराजके समान वे खेल करने लगे।
छातीके प्रहारसे 'हिरण्यनेत्र'-दानवका,
अन्त किया, 'प्रभु'ने, प्रसून झरने लगे।

वराह-महापुराणमें नेपाल

(लेखक—पं० श्रीसोमनाथजी शर्मा, घिमिरे, 'व्यास', साहित्याचार्य)

पृथ्वीके पार्थिव-शरीरकी व्याख्या करते हुए भगवान् वराह या वादरायणने नेपाल अथवा पर्वतराज हिमालयको पृथ्वीका शिरोभाग बताया है—

पौण्ड्रवर्धननेपाले पीठे नयनयोर्युगे ।
(वराहपु०)

जितनी भी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, सब सिरमें ही होती हैं। देखना-सूँघना, सुनना-बोलना, विचार करना शिरःस्थित इन्द्रियोंका ही कार्य है। हस्त-पादोदरादि इन्द्रियोंके विकृत हो जानेसे अथवा कट जानेसे भी मनुष्य यथाकथंचित् निर्वाह कर लेता है, पर सिर कटनेसे वह जीवित नहीं रह सकता। वैसे ही हिमालय पृथ्वीका सर्वोत्तम परमावश्यक 'शिरोदेश' है।

हिमालयसे निकलनेवाली 'सुवर्णकौशिकी,' 'ताम्र-कौशिकी,' 'कृष्णा', 'गण्डकी' आदि नदियोंके आसपासमें रहनेवाले ग्रामीण स्त्री-बाल-बच्चे नदीकी रेतीसे बालुओंको चालकर सुवर्णके परमाणु एकत्र करते हैं। इस प्रकार सुवर्णको गर्भमें धारण करनेवाला यह पर्वतराज हिमालय एक प्रकारसे द्वितीय 'हिरण्यगर्भ' ही है, जो प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रके अनुसार (**भूतस्य**) समस्त भूत-प्राणियोंका (**एकः पतिः**) एकमात्र पितास्वरूप, मालिकस्वरूप, संरक्षकस्वरूप (**आसीत्**) बन गया था। (**स पृथ्वीं दाधार**) उस हिमालय पर्वतने पृथ्वीसे लेकर स्वर्गलोक-तकको, जिसे 'त्रिविष्टप' भी कहते हैं, धारण किया है। (**कस्मै देवाय**) पृथिवीका शिरोभाग मुकुटमणि देवतात्मा हिमालय नामक किसी देवताको,* हम (**हविषा**) हवि-हवनीय पूजनीय समस्त पदार्थोंसे (**विधेम**) विधिपूर्वक पूजा करते हैं, हवन करते हैं। 'वराहपुराण'में कहा है—

'शिखरं वै महादेव्या गौर्यास्त्रैलोक्यविश्रुतम्
(अ० २१

महादेवी गौरी (गौरीशंकर या पार्वतीपर्वत) स्वर्ग-मर्त्य-पाताल तीनों लोकमें व्याप्त है। इससे पूर्व सर्वोच्च पर्वतशिखरको नेपाली भाषामें 'अभिसार' कहते हैं। इसी पर्वतको संस्कृतमें 'शंकरपर्वत' कह हैं। दोनों पर्वतोंका एक साथ समष्टि न 'गौरी-शंकर' पर्वत है। इसी पर्वतके नीचे समत भूभागमें (स्नानकुण्ड†) दुग्धकुण्ड है। उसी दूधकुण्ड उद्गम लेकर 'दूधसी' नदी प्रवाहित होती है। उ कुण्डमें जाकर श्राद्ध करे। इससे पितरोंका उद्धा तथा पुत्र-पौत्रोंका सुधार हो जाता है। यह 'दूधपोखरी' नामकी 'पुष्करिणी' 'नामचे'से कुछ ही दूरपर है।

मनु महाराजने पाश्चात्योंके लिये कहा था—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात्॥
(मनु० १० । ४३)

दैव-वशात् इन्हें कालान्तरमें जब पूर्व-पूर्वज उपयुक्त शुद्ध जलवायुका स्मरण आता है और वह जब विज्ञानके उपकरणोंसे भी उपलब्ध नहीं होता है तब विश्वकी तथा पाश्चात्य मानवजाति पुनः हिमालयमें आना प्रारम्भ करती है, कहा भी है—

कौशिकान् प्रतिपद्यन्ते देशान् क्षुद्भयपीडिताः।
(लिङ्गपु० ४० । ३७)

कलियुगमें जब अन्यत्र निस्तार न होगा तो क्षुधा-तृषासे व्याकुल मनुष्य कौशिकीयुक्त प्रदेश हिमालयमें पुनः जाना आरम्भ करेंगे।

---

* अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। इत्यादि कु० सं०

† स्नानकुण्डे उमायास्तु यः स्नायात् स्तु मानवः। इत्यादि (वराह २१५ । १००)

वराहपुराणमें कहा गया है—

गौर्यास्तु शिखरं पुण्यं गच्छेत् सिद्धनिषेवितम्।
तस्य सालोक्यमायाति दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥

काठमण्डप* (काठमाण्डू) नेपालकी राजधानी है। राजधानीसे पूर्व ३ नम्बरमें 'ओखलढुंगा' जिला है। इसी क्षेत्रमें 'नामचे बाजार' है। इसी क्षेत्रमें २९१४० फीट ऊँचे पर्वतसे 'दूधकोसी' (दुग्धकौशिकी अथवा 'कल्लिनी') नदी निकलती है। इसके पश्चिम भागमें रामेछाप (रामेछाप) पूर्व जिला पड़ता है। वर्तमान समयमें उस क्षेत्रका जनकपुर अंचल नामकरण हो गया है। इसी हिमालयके उत्तरी भागका उच्चतम पर्वत-शिखर वराहपुराणमें गौरीपर्वत (गौरा पार्वता) नामसे प्रसिद्ध है।

१८५७ सन्में जार्ज एवरेस्टने सर्वप्रथम इस पर्वतका सर्वेक्षण किया था। उसके बाद जार्ज एवरेस्टने उस पवित्र शंकर पर्वतका नाम बदलकर अपने नामपर 'Mount Everest' रख दिया।

जनकपुरधामसे ५० मील उत्तर 'छोसे मेगजेन' नामका बाजार है। वहाँ १९ मील लम्बा 'लौहमय' पर्वत है, जहाँ सर्वत्र लोह-पाषाण आदि धातुओंकी खानें भरी पड़ी हैं। आस-पासके ग्रामीण उसी फौलादसे कृषि-उपयोगी औजार (कुदाल, फाल, हर-हसिया-खुकुरी) बनाते हैं। उसी पर्वत-शृङ्खला-उच्चस्थलमें 'जटापोखरी' नामक षट्कोणाकार डेढ़ मील लम्बी एक पुष्करिणी है। तालाबके मध्यभागमें भूतभावन भगवान् नीलकण्ठ श्रीमहादेवके स्फटिक-जैसे शुक्लवर्ण विशालरूपका दर्शन होता है। मूर्तिके सिरमें लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं। यहाँका जल अत्यन्त स्वच्छ और अथाह है। कहते हैं 'कालकूट-विषपान करके विषमत्त होकर शंकरजीने यहाँ विश्राम किया था। श्रावणी पूर्णिमाको यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है।

वराहपुराणमें वर्णित 'श्वेतगङ्गा', 'गोकुलगङ्गा,' 'हिमगङ्गा' अब क्रमशः 'खिम्तिखोलो', 'चरगे खोलो', 'लिखु खोलो' नामसे प्रसिद्ध हैं। ये सब नदियाँ उसी पर्वतसे निकलती हैं।

पूर्वी नेपालमें विराटनगर धरानके पास 'सुवर्ण-कौशिकी' या कोकानदीके संगमपर 'वराहक्षेत्र' नामका तीर्थस्थल है। इसमें प्रसिद्ध 'आदि-वराह', 'भू-वराह' आदि वराहकी चार मूर्तियाँ विद्यमान हैं। लोग इन सभी मूर्तियोंको प्राचीन वैदिक युगमें स्थापित बताते हैं। उसके पास एक पर्वत-शृङ्खला पत्थरोंका भृगु-(भीर)-शिखर है। उसमें अपने-आप बनी एक कोकपक्षीकी मूर्ति है, उससे कुछ दूरपर वराहकी मूर्ति है। यहाँ पृथ्वी वराहके दाँतमें नहीं है, किंतु वह वराहके कन्धा कुहरपर उठी दीखती है।

नेपालकी राजधानीके पास 'धूम्रवराह' नामक एक मुहल्ला है। उसमें 'धूम्रवराह'की मूर्ति है। मन्दिर छोटा-सा है। उसमें एक प्राचीन शिलापत्र है, जिसपर—'विष्णोर्बाहुलताकफोणिशिखरेणोद्धारिता मेदिनी'—लिखा है। वराहपुराण एक प्रकारसे हिमालय-पर्वतका ही इतिहास है। हिमालय-पर्वतका अनुसंधान करना तथा उसका सच्चा इतिहास लिखना समाजमें उसका महत्त्व बोध कराना अब भी शेष है।†

---

* 'स्वयम्भू-पुराण' तथा 'Wright' के 'History of Nepal' में काठमाण्डूका 'काष्ठमण्डप' नाम आता है। राजा 'गुण-कामदेव'ने इस नगरकी ७२३ ई०में स्थापना की थी।

† 'हिमालय पर्वत', 'नेपाल' तथा वराहपुराण १४५, २१५ अध्यायोंसे सम्बन्धित तीर्थोंके विषयमें विशद वर्णन 'स्वयम्भू-पुराण', राइट (Wright)के 'History of Nepal' के अतिरिक्त बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है। इनका एकत्र संग्रह Hodgson के 'Literature and Religioun of Buddhist', तथा Monier Williams 'Rhys Davids' के 'Buddhism' में भी प्राप्त होता है। इनमें 'विष्णुमती', 'वाग्मती' आदि नदियों तथा इनके तटवर्ती प्रसिद्ध तीर्थोंका भी उल्लेख है। 'वराहपुराण'में 'वाग्मती'की तुलनामें गङ्गाकी उपमा दी गयी है और कहा गया है—

हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात्प्रोद्भूता वाग्म(ग्व)ती नदी। भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम् ॥
(वराहपुराण २१५। ५०-५१)

मध्यकालीन कवियोंकी दृष्टिमें भगवान् वराह

(लेखक—पं० श्रीललिताप्रसादजी शास्त्री)

महाकवि कालिदासने अपने परमप्रसिद्ध 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक २। ६ के 'विश्रब्धः क्रियतां वराहततिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले'में 'वराह' शब्दका प्रयोग वन्य वराहके ही लिये किया है; पर यह मम्मट (काव्यप्रकाश वामनी,पूना, पृष्ठ ३७३*), 'भोजराज'(सरस्वती कण्ठाभरण, पृष्ठ ५१), 'व्यक्ति-विवेक' 'साहित्यदर्पण' आदिके निर्माताओं तथा अलंकार-विवेचक-शेखरोंके लिये शिवजीका 'पिनाक' धनुष बन गया, जिसपर इन लोगोंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विशद विवेचन किया है। इसी प्रकार उन्होंने 'रघुवंश' ७। ५६में—

'निवारयामास महावराहः
कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः।'

'महावराह'का प्रयोग आदिवराह यज्ञ-पुरुष भगवान् नारायणके लिये किया है। पर यहाँ ऐतिहासिकोंके लिये मानो ऊपरसे आकाश टूट पड़ा है। इसमें लोगोंने गुप्त-साम्राज्यकी विजयपताका आदिकी अनेक कल्पनाएँ की हैं। (देखिये प्रस्तुत अङ्क, पृष्ठ ४०५)।

रघुवंश १३। ८में स्वयं भगवान् श्रीराम 'वराह-अवतार'के सम्बन्धमें अपना भाव इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव॥

'अनन्तरीसर'के अनुसार पुराके सर्वाधिक प्राचीन टीकाकार हेमाद्रि इस श्लोककी टीकामें लिखते हैं—

'अस्य अब्धेः अच्छं-प्रलयप्रवृद्धम् अम्भः मुहूर्तं वक्त्राभरणं बभूव। त्रिष्वगाधात् प्रसन्नोऽच्छः' (अमरकोश)। आदिभवेन-वराहरूपेण विष्णुना रसातलात् प्रयुक्ता उद्वहनक्रिया यस्याः तस्याः।'

'रघुवंश' के प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य मल्लिनाथका यहाँ कथन है—

—अत्र विवाहक्रिया च व्यज्यते। वक्त्राभरणं-लज्जारक्षणार्थं मुखावगुण्ठनं बभूव। तदुक्तम्-उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।' (तैत्तिरीयारण्य० १०।१।८)

अर्थात् आदिवराहने पृथ्वीका जब उद्धार कर उससे परिणय किया तो समुद्रका बढ़ा हुआ जल क्षणभरके लिये पृथ्वीका अवगुण्ठन बन गया। यहाँ 'वराहावतार' की सर्वप्रथमताके संकेतके साथ ही कालिदासकी थोड़ी शृङ्गारिक भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

इसी प्रकार महाकवि 'जयदेव'ने अपने गीतगोविन्दके- -'वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना। शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥ (१।२।३)में जो वराहको लक्ष्यकर स्तुति की, ठीक उसीके आधारपर कविवर 'भारतेन्दु'ने—

'कै वाराह विशाल-वदन के दाढ़ माहि इक।
चक्रदन्त द्युतिमन्त भन्ताकारक मम दया दिक॥' आदि

की कल्पना कर डाली।

सूरदासजीने भी—

हिरण्याक्ष जब पृथीकौं, लै राख्यो पाताल।
ब्रह्मा बिनती करि कह्यौ, दीनबंधु गोपाल॥
तुम बिनु द्वितीया और कौन, जो असुर संहारै।
तुम बिनु करुनासिंधु और को पृथी उधारै॥

---

* (क) आचार्य 'मम्मट' इसके कारण दोष दिखलाकर—

'विश्रब्धः रचयन्तु शूकरवरा मुस्ताक्षतिम्' ऐसा पाठ चाहते हैं तो इनके ही नागेश भट्ट आदि टीकाकार-प्रभृतियोंका [illegible] 'विश्रब्धाः क्रुध्यन्ति [illegible] मुस्ताक्षतिम्' इत्यादि पाठ चाहते हैं (काव्यप्रकाश ७। २०७की उद्योत एवं बालबोधिनी व्याख्याएँ)

(ख) सरस्वतीकण्ठाभरण, [illegible], पृष्ठ ५१।

तब हरि धरि वाराह बपु स्याए पृथी उठाई।
हिरण्याक्ष लेकर गदा तुरतहिं पहुँचे जाई॥
असुर युद्ध है कह्यौ, बहुत तुम असुर संहारे।
अब कैहौं यह दाऊँ, छाँड़िहौं नहिं बिनु मारे॥
यह कहिकै मारि गदा, हरिजू ताहि सँभारि।
गदा-युद्ध तासौं कियो असुर न मानै हारि॥
तब ब्रह्मा करि विनय, कह्यौ हरि, याहि सँहारो।
तुम तो लीला करन, सुरनि-मन परयौ खँभारो॥
मारयौ ताहि प्रचारि हरि सुर मन भयौ हुलास।
सूरदासके प्रभु बहुरि गए बैकुण्ठ निवास॥

(सूरसागर ३ । ३९२)

इन शब्दोंमें वराहावतार एवं हिरण्याक्ष-वधका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपनी 'विनयपत्रिका'में 'निगमागम-सारभूत'—

'सकल यज्ञांस-मय उग्र विग्रह क्रोड मर्दि दनुजेस दसरन उर्वी' (विनय० ५२ । २)

लिखा तो इसपर पीयूषकार आदिने कई पृष्ठ रँग डाले। मानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने—बराहँ (२ । २९६ । ४), बराह (१ । १२१ । ७), (बराहा—२ । २३५ । ३), बराह (१ । १५६), बराह—(१ । १५५ । ५) आदिमें सात बार 'वराह' शब्दका प्रयोग किया है। एक जगह—

'मीन कमठ सूकर नरहरी'में—

'सूकर' शब्द भी अवतारार्थमें प्रयुक्त है।

अवतार-अर्थमें 'धरि बराहबपु एक निपाता' (रा० च० १ । १२२ । ४)में परम सात्त्विकरूपमें वराह अवतारका वर्णन है तो 'भरत बिबेक बराहँ 'बिसाला' (रा० च० २ । २९६ । ४)की 'परम्परित-रूपक'के रूपमें कल्पना उससे भी अद्भुत है। 'मानसपीयूष'कारने यहाँ सभी शब्दोंपर प्रायः २० प्राचीन टीकाकारोंके मत उद्धृत किये हैं, जो अत्यन्त हृदयाह्लादक एवं मननीय हैं।

वस्तुतः 'श्रीमद्भागवत' १ । २ । ११के—'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'—से 'विशुद्धबोध' ज्ञान ही परमात्मा 'श्वेतवराह' है। निर्गुण ब्रह्म भी यह 'विवेक' या 'वराह' ही है—

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्।
अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा॥

वही शब्दधर्मी ज्ञान अर्थरूपसे विश्वप्रपञ्चके रूपमें प्रकट है।

यह विशुद्ध बोधरूपी श्वेतवराह समस्त पापोंके क्षयपूर्वक कुण्डलिनी-जागरण आदिके द्वारा प्रकट होता है—'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।' 'तद्वास्य विजज्ञौ।' यही सबका प्रकाशक या अव-भासक भी है—

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(मुण्डकोपनि० २ । २ । १०, कौषीतकिब्राह्मणोप० २ । ५ । १५, ब्र० सू० शा० भा० १ । १ । २४, ३ । २२ आदिमें उद्धृत) ये ही गोस्वामी तुलसीदासजीके भगवान् राम हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

तथा—

'ग्यान अखंड एक सीताबर'।

'वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'।

वस्तुतः इसी दृष्टिसे ज्ञानमोक्षप्रद शुद्ध ब्रह्म भगवान् वराह विधिपूर्वक परमाराध्य हैं।

'श्रुतिस्मृतिपुराणप्रतिपादितो धर्मः सनातनधर्मः।'

...कर्मविपाक स्वर्ग और नरककी पौराणिक ...वर्णनमें अद्वितीय विश्वजनीनता प्राप्त कर चुका ...। पौराणिक स्वर्ग और नरकके वर्णन स्पृहाके ...त्र हैं।

पुराणोंने आख्यान, उपाख्यान और कथाओंके ...बिखरी वैदिक तत्त्वराशिको समेटा-सँवारा ...। उनसे हमें तत्त्वों, तात्त्विक विषयों और ...जिक, वैयक्तिक आचार-विचारोंकी दिशाका ...दर्शन मिलता है। फलतः हमारी संस्कृतिकी अनमोल निधियाँ सिद्धान्त और व्यवहारकी तुलापर ...न मानवाली सिद्ध होती हैं। पुराणोंने व्यवहारसंहिताके (धर्मशास्त्रीय) नियमोंको सटीक दृष्टान्त भेंट किये ..., जो हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। उनकी प्रवृत्त प्रवृत्तिका ...क उद्देश्य यही है। इनमें सिद्धान्तोंका विवेचन ...व्यवहारोंके आधाररूपमें हुआ है।

पुराणोंमें प्रतिष्ठित चार वर्ण और चार आश्रमसे ...भूषित सनातनधर्मकी प्रशस्त विशेषताओंमें सत्य, ...ान और दयाके विशिष्ट योगका विशेष महत्त्व है।

> श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तो वर्णाश्रमविभूषितः।
> सत्यज्ञानदयोपेतो धर्मः श्रेष्ठः सनातनः॥
>
> (म० मा०)

इनका जैसा सुष्ठु तथा सरल निदर्शन पुराणोंमें उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र कुत्रापि नहीं। अतः यह निर्विवाद है कि पुराण सनातनधर्मके मौलिक धार्मिक-तत्त्व-ग्रन्थोंका व्यापक प्रतिनिधित्व करते हैं। किंतु पुराणोंकी वर्णन-पद्धतिकी अवगतिके लिये हमें उनकी शैलीका परिचय कर लेना होगा। तभी हम पुराणोंके प्रकृत रहस्यको समझ सकेंगे। इसके समझे बिना पौराणिक रहस्योंको तत्त्वतः समझना सम्भव नहीं है। अतः अनुसंगतः उनकी अल्प चर्चा यहाँ अपेक्षित हो जाती है।

पुराण प्रायः समाधि-बोध्य दार्शनिक विषयोंका वर्णन अन्यापदेशात्मक शैलीसे करते हैं, यथा—धर्माधर्मका सूक्ष्म निर्णय, आत्मा, प्रकृति और कर्मके स्वरूपका निर्वचन इत्यादि। उदाहरणके लिये भागवतादि पुराणोंमें गुम्फित गज-ग्राहके दिव्य सहस्र वर्षोंके युद्धका अन्यापदेशात्मकरूपमें वर्णन उपन्यस्त किया जा सकता है, जो 'जीव' और मोहका शाश्वतिक संघर्ष है। यह समाधिभाषाके आद्यग्रन्थ श्रीमद्भागवतमें और वामनपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदिमें तो अनुस्यूत है ही, प्रकृतपुराणके १४४वें अध्यायमें भी है। किंतु जब समाधिगम्य आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्यको रूपकालंकारमें समेटकर प्रदर्शित करते हैं एवं श्रोताओंकी मति सत्य-तत्त्वमें पहुँचा देते हैं तो वहाँकी उस भाषाको लौकिकी भाषा कहना चाहिये। उदाहरणार्थ—हम जगज्जननीके जन्म, कर्म, विवाह, विकासादिके वृत्तान्तको पुराणोंमें गुम्फित होना कह सकते हैं। जगदम्बा-तत्त्व वस्तुतः अलौकिक एवं समाधिगम्य विषय है, पर पुराणोंमें मध्यमाधिकारियोंके लिये इसे लौकिक पद्धतिसे निरूपित किया गया है। वर्णनके मध्यकी तात्त्विक सूचनाएँ अलौकिकताका (समाधि-गम्यताका) संकेत करती जाती हैं। मनोयोगसे पुराणोंका अध्ययन करनेवालोंको विशेषणों और स्तुतियोंमें उनका वहाँ निदर्शन स्पष्ट प्रतीत होता जाता है। तृतीया परकीया भाषा वहाँ प्रयुक्त हुई है, जहाँ समाधिभाषा और लौकिक भाषाकी पकड़के विषयोंको दृढ़ करनेके लिये भिन्न-भिन्न युगों अथवा भिन्न-भिन्न कल्पोंकी घटनाएँ गाथारूपमें* अभिव्यक्त की गयी हैं। ऐसे स्थलोंपर परमार्थतः परकीयाभाषा-वर्णन ही ... उचित है। ऐसी गाथाएँ न तो लौकिक कथाएँ हैं और न इति-वृत्तात्मक 'इतिहास' ही। इसलिये दोनों दृष्टियोंसे गाथाओंका मर्म नहीं सूझ सकता। इसके लिये पर-

* १—'गाथास्तु पितृपृथिवीप्रभृतिगीतयः।' (विष्णुपुराण ३। ६। १५ की टीकामें श्रीधरस्वामी)

पुराण-परिवेशमें वराहपुराण

(लेखक—आचार्य पं० श्री[illegible] तिवारी, एम० ए०)

पुराणसाहित्य भारतीय संस्कृतिकी निधि है। इतिहास-पुराणोंमें अनुस्यूत पूर्णिमाकी प्रभाकी भाँति आख्यान और उपाख्यानों-के* द्वारा निहित जिन रहस्यात्मक तत्त्वोंका ज्ञान, पर विस्तार विवेचन किया गया है, वे मन्त्रद्रष्टा ऋषि-मुनियोंद्वारा अनिर्वच अथवा निर्विवाद प्रामाणिक हैं यह निर्विवाद है। पुराणोंमें जो कुछ है, वह सब प्रामाण्य है, सत्य है, मान्य है। पुराणोंसे साधारण जनताका जितना उपकार हुआ है और हो सकता है, उतना हमारे अन्य धार्मिक ग्रन्थोंसे नहीं। वेदोंकी अगम्यता, शास्त्रोंकी दुरूहता और स्मृतियों-की जटिलताके पीछे पर उनसे तात्पर्य निकालना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य ही है; और उनकी अगम्यता, दुरूहता और जटिलताको निरखकर स्वारस्य निकालना लोहेके चनेसे स्वाद निकालनेके समान है। फिर भी इतिहास-पुराणोंमें उन रहस्यात्मक तत्त्वों-का विश्लेषण अथवा विस्तार होनेसे उन्हें सुगमतया आत्मसात् करनेका अनुभव हमारी संस्कृतिमें व्याप्त हो चुका है। निदान, स्वयं भगवान् व्यासदेवने श्रीमद्भागवत (१। ४ । २९)में कहा है कि वेदोंका यथार्थ महाभारतके द्वारा दर्शित किया गया है।—

'भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।'

इसी प्रकार महाभारत (१ । १ । ८६)में कहा गया है कि इस महाभारतरूपी पूर्ण चन्द्रमाने श्रुतियोंकी चाँदनी छिटका दी है—ज्योत्स्ना प्रकाशित कर दी है और इसने मनुष्योंकी बुद्धिरूपी कुमुदों-को प्रकाशित कर दिया है :—

पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः।
नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत्प्रकाशनम् ॥

छान्दोग्य० (७ । १ । २)में 'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' तथा श्रीमद्भागवत(१ । ४ । २०)में 'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' कहकर इस तथ्यका स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है।

सच यह है कि वेदोंने जिसको कल्याणमय निश्चित कर दिया, परंतु पुराणोंने उस मार्गको सर्वसाधारणके प्रयोग और प्रचलित (प्रकाशित) किया—

वेदेन क्षुण्णं ह्यगमं हि मार्गः
पौराणधर्मोऽपि मता परिष्ठः।

इसी कारण महाभारतकारने आदिपर्व (१ । २६७) में 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुप-बृंहयेत्'- इतिहास और पुराणोंके द्वारा वेदोंका विस्तार—विवेचन करना चाहिये; इसका सिद्धान्त निर्दिष्ट कर दिया है।

पुराण और वेदोंमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेदोंमें सूक्तोंद्वारा देवताओंकी स्तुतियाँ हैं तथा यत्र-तत्र तत्त्व-जिज्ञासाके बोधके लिये आख्यायिकाओं अथवा उपाख्यानोंकी भी झलक मिलती है। वेदोंके 'ब्राह्मण-भागमें' यज्ञादिके संदर्भमें कहीं-कहीं कथा-पुराणका प्रसङ्ग संक्षेपमें आया है, परंतु मन्त्रोंके देवों तथा कथा-पुराणके तथ्योंको सुचारुताके साथ विशदता देनेका काम पुराणोंने ही किया है। उसके परिप्रेक्ष्यमें ही हमें पौराणिक वस्तु-विषयको देखने, सुनने और समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार पुराणोंकी सामान्य प्रवृत्ति ज्ञात कर ही वराहपुराणकी विशेष विवृति समझी जा सकती है। पुराणोंके धर्मग्रन्थ होनेसे सनातनधर्मकी यह परिभाषा परिनिष्ठित हो जाती है कि

---

* स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः। श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते ॥
(वि० पु० ३ । ६ । १५ की टीकामें श्रीधरस्वामी)

श्रुतिस्मृतिपुराणप्रतिपादितो धर्मः सनातनधर्मः।'
इनमेंका धर्मविपाक स्वर्ग और नरककी पौराणिक वर्णनमें अद्वितीय विश्वजनीनता प्राप्त कर चुका है। पौराणिक स्वर्ग और नरकके वर्णन स्पृहाके पात्र हैं।

पुराणोंने आख्यान, उपाख्यान और कथाओंके माध्यमसे बिखरी वैदिक तत्त्वराशिको समेटा-सँवारा है। उनसे हमें तत्त्वों, तात्त्विक विषयों और सामाजिक, वैयक्तिक आचार-विचारोंकी दिशाका दर्शन मिलता है। फलतः हमारी संस्कृतिकी अनमोल निधियाँ सिद्धान्त और व्यवहारकी तुलापर खरी उतरनेवाली सिद्ध होती हैं। पुराणोंने व्यवहारसंहिताके (धर्मशास्त्रीय) नियमोंको सटीक दृष्टान्त भेंट किये हैं, जो हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। उनकी प्रकृत प्रवृत्तिका मुख्य उद्देश्य यही है। इनमें सिद्धान्तोंका विवेचन व्यवहारोंके आधाररूपमें हुआ है।

पुराणोंमें प्रतिष्ठित चार वर्ण और चार आश्रमसे विभूषित सनातनधर्मकी प्रशस्त विशेषताओंमें सत्य, ज्ञान और दयाके विशिष्ट योगका विशेष महत्त्व है।

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तो वर्णाश्रमविभूषितः।
सत्यज्ञानदयोपेतो धर्मः श्रेष्ठः सनातनः॥
(म० मा०)

इनका जैसा सुष्ठु तथा सरल निदर्शन पुराणोंमें उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र कुत्रापि नहीं। अतः यह निर्विवाद है कि पुराण सनातनधर्मके मौलिक धार्मिक-तत्त्व-ग्रन्थोंका व्यापक प्रतिनिधित्व करते हैं। किंतु पुराणोंकी वर्णन-पद्धतिकी अवगतिके लिये हमें उनकी शैलीका परिचय कर लेना होगा। तभी हम पुराणोंके प्रकृत रहस्यको समझ सकेंगे। इसके समझे बिना पौराणिक रहस्योंको तत्त्वतः समझना सम्भव नहीं है। अतः अनुसंगतः उनकी अल्प चर्चा यहाँ अपेक्षित हो जाती है।

पुराण प्रायः समाधि-बोध्य दार्शनिक विषयोंका वर्णन अन्यापदेशात्मक शैलीसे करते हैं, यथा—धर्माधर्मका सूक्ष्म निर्णय, आत्मा, प्रकृति और कर्मके स्वरूपका निर्वचन इत्यादि। उदाहरणके लिये भागवतादि पुराणोंमें गुम्फित गज-ग्राहके दिव्य सहस्र वर्षोंके युद्धका अन्यापदेशात्मकरूपमें वर्णन उपन्यस्त किया जा सकता है, जो 'जीव' और मोहका शाश्वतिक संघर्ष है। यह समाधिभाषाके आप्तग्रन्थ श्रीमद्भागवतमें और वामनपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदिमें तो अनुस्यूत है ही, प्रकृतपुराणके १४४वें अध्यायमें भी है। किंतु जब समाधिगम्य आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्यको रूपकालंकारमें समेटकर प्रदर्शित करते हैं एवं श्रोताओंकी मति सत्य-तत्त्वमें पहुँचा देते हैं तो वहाँकी उस भाषाको लौकिकी भाषा कहना चाहिये। उदाहरणार्थ—हम जगज्जननीके जन्म, कर्म, विवाह, विकासादिके वृत्तान्तको पुराणोंमें गुम्फित होना कह सकते हैं। जगदम्बा-तत्त्व वस्तुतः अलौकिक एवं समाधिगम्य विषय है, पर पुराणोंमें मध्यमाधिकारियोंके लिये इसे लौकिक पद्धतिसे निरूपित किया गया है। वर्णनके मध्यकी तात्त्विक सूचनाएँ अलौकिकताका (समाधि-गम्यताका) संकेत करती जाती हैं। मनोयोगसे पुराणोंका अध्ययन करनेवालोंको विशेषणों और स्तुतियोंमें उनका वहाँ निदर्शन स्पष्ट प्रतीत होता जाता है। तृतीया परकीया भाषा वहाँ प्रयुक्त हुई है, जहाँ समाधिभाषा और लौकिक भाषाकी पकड़के विषयोंको दृढ़ करनेके लिये भिन्न-भिन्न युगों अथवा भिन्न-भिन्न कल्पोंकी घटनाएँ गाथारूपमें* अभिव्यक्त की गयी हैं। ऐसे स्थलोंपर परमार्थतः परकीयाभाषा-वर्णन ही उचित है। ऐसी गाथाएँ न तो लौकिक कथाएँ हैं और न इति-वृत्तात्मक 'इतिहास' ही। इसलिये दोनों दृष्टियोंसे गाथाओंका मर्म नहीं सूझ सकता। इसके लिये पर-

* १—'गाथास्तु पितृपृथिवीप्रभृतिगीतयः।' (विष्णुपुराण ३।६।१५ की टीकामें भी श्रीधरस्वामी)

... चाहिये। उनके मर्मकी दिशा भगवान् व्यासकी बहुशः व्यवहृत निम्नाङ्कित पद्धतिसे संकेतित है—

'अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।'

(भीवि० धर्म० १ । १११ । १)

इस विषयमें भी यह एक पुराना इतिहास—इति (ह) आस—सुना जाता है कि ऐसा था, उद्धृत किया जाता है।

'पुरातन'का तात्त्विक मर्म उपर्युक्त पद्धतिसे पुराभवं-पुराणम् अथवा पुरापि नवं पुराणम्' ही समझते और समझाते हैं[1]। इसीलिये वायुपुराणमें कहा गया है।

'यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥'

(वायुपु० १ । २०३)

अतः पुराण पुरानी परम्पराकी बातें कहते हैं; इसलिये इन्हें 'पुराण' कहते हैं। जो लोग इसकी इस निरुक्ति (निर्वचन) को जानते हैं, वे सभी पापोंसे छूट जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं। इसीलिये पुराणोंकी महिमा वे... से भी बढ़कर और अद्वितीय है। ऐसे निखि... महिमामय पुराणोंके परिवेशमें गणनागत बारहवीं संख्या... वाले वराहपुराणकी कतिपय विशेषताओंकी विवेच... नहीं, चर्चा-अपेक्षित प्रकृत शेष विषय है। अस्तु।

'मत्स्यपुराणके अनुसार, महावराहके माहात्म्य... अधिकृत कर विष्णुभगवान्ने पृथ्वीसे जो कुछ कह... है, वही वराहपुराण कहा जाता है'। उसीके अनुसा... उसकी श्लोकसंख्या चौबीस हजार होनी चाहिये थी। और नारदपुराणके अनुसार विष्णुके माहात्म्यवाले उस (वराहपुराण) के दो भाग—(१) पूर्व और (२) उत्तर होने चाहिये। गोकर्ण-माहात्म्यतक पूर्वभाग और पुलस्त्य तथा कुरुराजके संवादमें पौष्कर आदि सभी तीर्थोंका पृथक्-पृथक् विस्तारसे वर्णन प्रभृति उत्तरभाग में दर्शित हैं'। किंतु, खेद है कि सम्पूर्ण श्लोक और पृथक्-पृथक् अथवा साथमें भी दो भाग नहीं मिलते।

१—'पुराण' की अमरकोषकी प्रसिद्ध टीका रामाश्रमीमें ये व्युत्पत्तियाँ हैं—

पुराभवम् ('सायचिरम्—' पा० सू० ४ । ३ । २३) इति ट्युट्युलौ । पूर्वकालैक—(२ । १ । ४९) इति सूत्रे निपातनात्तुडभावः । यद्वा—पुरापि नवं पुराणम् । पुराणप्रोक्तेषु—'(४ । ३ । १०५) इति सूत्रे निपातितम् । यद्वा—पुरा अतीतानागतावर्थांवणति । 'अण् शब्दे(भ्वा० प० से०) पचाद्यच् ।'

पुराणको 'पञ्चलक्षणम्' भी कहते हैं—पुराणं पञ्चलक्षणम् । (अ० १ । ६ । ५)

२—श्रृणुष्वाहितो भूत्वा कथामेता पुरातनीम् । प्रोक्तां ह्यादिपुराणेषु ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्तिना ॥

(वराहपु० १ । २०)

तथा—

श्रृणुष्वादिपुराणेषु देवेभ्यश्च यथाश्रुतम् । (पद्मपु० १ । ३९ । ११)

३—नारदीयके अनुसार—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने । वेदाः प्रतिष्ठिता देवि पुराणेनात्र संशयः ॥

४—वराहपुराणके ११२वें अध्यायमें पुराणोंकी गणना है। उसके प्रसङ्गमें भी यह पुराण १२वाँ है।

५—महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च । विष्णुनाऽभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥

(मत्स्यपु० ५३ । ३८)

६—मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं तत्पुराणमिहोच्यते । (वही ३ । ३)

७—ब्रह्माने सनत्कुमारसे कहा है—

पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषं यदतोऽन्यन्महामुने । सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम् ॥
कुरुराज पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतो वने । (वराहपु० २१७ । ४ । ५)

...श्य पोथियोंमें १० हजारसे कुछ ऊपर श्लोक तथा ...७ अध्याय हैं। इनमें उक्त संवाद और पौष्कर ...माहात्म्यादिका वर्णन नहीं मिलता। लगता है, पूर्वार्द्ध ही ...ब्ध है—उत्तरार्द्ध नहीं। अन्तिम उपसंहाराध्याय ...र्वाचीन है। जिसे काशीके किन्हीं श्रीविश्वेश्वर माधव ...ने संकलित किया है। हाँ, परम्परामें वराहपुराणसे ...र्भित चातुर्मास्य, त्र्यम्बक, भगवद्गीता, वेंकटगिरि, ...ान, व्यतीपातके माहात्म्यवाली एवं मृत्तिका-शौच-...ान-प्रभृतिकी छोटी-छोटी पुस्तकोंके श्लोकोंको ...हपुराणाङ्ग मान लेना चाहिये। अनुमान होता है ... उत्तर भाग लुप्त है, उसीमें ये उपनिबद्ध रहे होंगे।

अन्तरङ्ग दृष्टिसे यह पुराण पद्मपुराणके अनुसार ...(प्रकृतिसे) सात्त्विक पुराणोंमें परिगणित है[2]। इसके ...ा स्वयं भगवान् वराह हैं और मुख्य श्रोत्री भगवती ...ी हैं, जिन्हें उन्होंने अनन्तजलौघसे उद्धृत किया ...। यह भगवत्-शास्त्र है।

पहले समयमें भगवान् नारायणके द्वारा एकार्णवकी ...नन्त जलराशिमें निमग्न पृथ्वीके उद्धार किये जानेपर ...्वीने उनसे विश्वकल्याणार्थ अनेक प्रश्न किये हैं ...र उन्होंने पृथ्वीके प्रश्नोंके सम्यक् समाधान प्रस्तुत ...िये हैं। ये ही प्रश्नोत्तर प्रकृत वराहपुराण हैं। ...श्नोत्तरक्रममें पुराणोंके पञ्चलक्षणोंके[3] अनुसार न्यूना-...धिक्य रूपमें पुराण-विषयोंके सरल और रोचक वर्णन ...ए हैं। फिर भी तिथि, पर्वों और तीर्थ-माहात्म्योंके ...र्णनमें विस्तार तथा अतिरञ्जकता विशेष है। पुराणके ...ारम्भमें ही पृथिवीको भगवान्के उदरमें विश्वब्रह्माण्ड-...का दर्शन एक अद्भुत घटना-वैशिष्ट्य है।

'गीता-माहात्म्य' यद्यपि प्रकृतपुराणमें अनुपलब्ध है, फिर भी हम उसे उत्तरभागसे संदर्भित और लुप्तांशका एक भाग मानते हैं। गीता-माहात्म्यके उपक्रमसे प्रकृत मान्यता स्पष्ट हो जाती है। उसके दो श्लोक ये हैं—

धरा—भगवन् ! परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी।
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो॥
विष्णुः-प्रारब्धं भुज्यमानो हि गीताभ्यासरतः सदा।
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते॥

पृथ्वीने पूछा—भगवान् परमेश्वर ! जन्म लेकर अपने प्रारब्ध कर्मका भोग करनेवाले (मनुष्य)को आपकी अनन्य भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ?'

श्रीविष्णुने कहा—'प्रारब्धका भोग करनेवाला यदि गीताभ्यासमें लगा हुआ है तो वह निष्काम कर्म-द्वारा हमारी अनन्य भक्ति ही करता है अतएव वह लोकमें सुखी रहता है तथा लौकिक कर्मोंसे लिप्त नहीं होता है; वह सदा मुक्त है।'

माहात्म्यकी मार्मिकता और महत्ता भी अन्तर्दर्शनीय है। यहाँ हम नमूनेके लिये एक श्लोकको उद्धृत कर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—

गीता मे हृदयं पृथ्वि ! गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

'पृथ्वि ! गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम गृह है। गीता-ज्ञानके ही सहारे मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ।'

गीता १५। १५के—'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः'के और १८। ६१ के 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'के अनुसार भगवान् सबके

१–एशियाटिक सोसाइटी कलकत्तेकी प्रकाशित पोथी में १०,७०० तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईवालीमें १०,५११ हैं।

२–वैष्णव नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्। गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै॥ (पद्मपु० २६। २-३)

३–सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (वराह० २। ४)

हृदयमें रहते हैं, किंतु भगवान्‌के हृदयमें गीता रहती है। यही नहीं, अपितु गीता ही भगवान्‌का हृदय है। हृदय भक्ति या उपासनाका आधार-प्रतीक है। **'गृह्णाति—इति गृहम्'** कर्मका प्रतीक है। गीतामें भगवान्‌का कर्म निष्काम कर्म है और गीताका 'ज्ञान' निष्कामताके साथ मोक्ष-प्रद है, जिससे तीनों लोकोंका, पूरे विश्वका पालन-पोषण होता है। कर्म, भक्ति और ज्ञान संसारके प्रतिष्ठापक, प्रतिपालक और संचालक हैं। इनका समुदित रूप गीता-ज्ञान है।

प्रकृत छोटे-से श्लोकमें भगवान्‌ने श्रीमुखसे उपासना, कर्म और ज्ञानके त्रिकाण्डके सुन्दर समन्वयवाली गीताकी उपादेयताका कैसा सरल सुन्दर चित्रण कर दिया है—इसे गीता-त्रिवेणीमें गोता लगानेवाले मनोरमरूपमें देखते हैं। वराहपुराणकी यह एक विशेषता है।

इस प्रकार पुराणोंमें वराहपुराणकी महिमा विशिष्ट है। यह भगवच्छास्त्र है। इसके उपसंहारके २१७ वें अध्यायमें स्वयं ब्रह्माने सनत्कुमारसे कहा है—"यह माङ्गल्य, शिव और श्री-विभूति-जनक है। यह धर्म, अर्थ, काम और यशका साधक, पुण्यप्रद, आयुष्यप्रद और विजयदायी है। कल्याणकारक है। यह पापोंको दूर कर देता है और इसको सुन लेनेपर कभी दुर्गति नहीं होती है। जो मनुष्य इसको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सभी पापोंसे छूटकर परमगति प्राप्त करता है।"

उपर्युक्त ब्रह्म-माहात्म्य-दर्शनको उपजीव्य मानकर पौराणिक सूतजीने भी शौनकादि ऋषियोंसे सम्पूर्ण तीर्थों, दानों, अग्निष्टोम और आतिरात्रप्रभृति यज्ञोंसे भी बढ़कर इसके पठन-श्रवणका फल कहा है। भगवान् वराहके हवालेसे यह भी कहा है कि इसका पढ़नेवाला यदि अपुत्र है तो पुत्रवान् और यदि पुत्रवान् है तो सुपौत्रवान् हो जाता है। सुननेवालोंके लिये विष्णुके समान गन्ध-पुष्पादिसे इस पुराणका पूजन भी विहित है। पुराण-वाचककी भी यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये। इससे मनुष्य सभी पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुसायुज्य प्राप्त करता है।

फलश्रुतिकी ऊपर वर्णित बातोंसे निदर्शित हो जाता है कि 'ब्रह्म' से ब्रह्माण्ड' तक १८ पुराणोंके परिवेशमें बारहवें स्थानपर सन्निविष्ट पूर्वापरके विषयोंको संक्षेपमें तत्त्वतः कुक्षिस्थ करनेवाला वराहपुराण भगवत्-शास्त्र होनेसे सर्वथा अद्वितीय है। इसका पठन-श्रवण और पूजन-अर्चन विश्वजनीन है।*

---

* इस लेखमें पृष्ठ ४४१ आदिपर 'परकीया' तथा 'अन्यापदेशात्मक' भाषा शैलीकी बात आयी है। अन्यापदेशका अर्थ अन्योक्ति है। श्रीकण्ठमत प्रतिष्ठापक चतुरधिकशत प्रबन्ध-प्रणेता 'अप्पय्य दीक्षित'के भ्रातृपुत्र 'नीलकण्ठ'के तथा उनके तीसरे पुत्र 'गीर्वाण दीक्षित'के विभिन्न 'अन्यापदेशशतक' प्रसिद्ध ही हैं। इनके कुछ श्लोक तो परस्पर मिलते भी हैं। 'भल्लटशतक' जिसका अधिकांश 'अप्पय्यजी'ने 'कुवलयानन्द' आदिमें, उद्धृत किया है, ऐसा ही है। इनमें 'अन्योक्तियाँ' हैं, पाश्चात्य विचारके लोग पुराणोंको भी myth (Purely fictitious, allegorical, Oxf. Dic. P. 798) या 'अन्यापदेश' युक्त भ्रमसे मिथ्या मान लेते हैं। पर 'शंकराचार्य'ने गीर्वाण दीक्षितके 'अन्यापदेशशतक'की भूमिकामें इस मतका खण्डन किया है। वस्तुतः पुराणोंकी गूढ़ता न समझनेके कारण ही भ्रम होता है; किंतु अब तो पाश्चात्य दार्शनिक, ऐतिहासिक विद्वान् भी उनकी कथाओंको रोचक होनेके साथ ही-साथ सुगम, बोधगम्य एवं उपदेशात्मक मानने लगे हैं।

संक्षिप्त वराहकोश

यास्कीय 'निरुक्त' तथा 'महेश्वर', 'मेदिनीकर', 'हेम' आदिके कोशोंमें 'वराह' शब्दकी अनेक व्युत्पत्तियाँ की गयीं एवं अर्थ दिये गये हैं। 'निरुक्त, नैघण्टुककाण्ड' १। १०। १३ तथा 'नैगमकाण्ड' ५। १। १के आरम्भमें 'वराह' शब्दकी प्रथम व्युत्पत्तिमें —हृञ् धातु (भ्वादि, परस्मै०)में पाणि० ३। ३। ५८ सूत्र—'ग्रह, वृ, दृ, निश्चिगमश्च' इस सूत्रसे अकार प्रत्ययसे निष्पन्न 'वर' अर्थात् जल लानेवाले 'मेघ' आदिको वराह कहा गया है। फिर वहीं श्रेष्ठ आहारवालेको भी वराह कहा गया है—'वरमाहारमाहार्षीः इति च ब्राह्मणम्' और इसके अनेक भेद तथा वराह अवतारादि अनेक अर्थ किये गये हैं—

'वाराहो नाणके किटौ।
मेघे, मुस्तौ, गिरौ विष्णौ वाराही गृष्टि भेषजे॥
मातर्यपि' (अनेकार्थ सं० ३। ८१२) आदिसे इसके वन्य-ग्राम-शूकर, श्रेष्ठ, वराहविष्णु, मेघ, वृषभ, भेंड़ा, वराह-व्यूह*, औषध, नागरमोथा, एक माप, इस नामका एक प्रसिद्ध राक्षस आदि अनेक अर्थ हैं*। वैसे इस नामके अनेक व्यक्ति, मुनि (महाभारत २। ४। १७), यक्ष तथा राक्षस भी हुए हैं। इस नामके एक 'कोश'-कार भी हुए हैं, जो 'शाश्वत-कोश'के रचयिताके सम-सामयिक थे। (Catalogus Catalogrum) पाणिनि 'उणादि-कोश' तथा 'व्याघ्रादिगण'में इसके उपमादिमें दूसरे भी अर्थ हैं। वराहद्वीप और वराहगिरि भी प्रसिद्ध हैं। विशेष जानकारीके लिये यहाँ संक्षेपमें उनका एक कोश दिया जा रहा है।

वराहक—(१) हीरा, २—शिशुमार (सूँस)
वराहकन्द—एक ओषधि, वाराही कन्द।
वराहकर्ण—(१) एक प्रकारका बाण (२) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवा करता है। (महाभा० २। १०। १६)
वराहकर्णिका—एक अस्त्र।
वराहकर्णी—अश्वगन्धा (Physalis flexuosa)
वराहकल्प—जिसमें भगवान्‌ने पृथ्वीका उद्धार कर उन्हें वराहपुराण सुनाया। वायुपुराण ६। ११, १३, २३ आदिके अनुसार यहीं 'श्वेत-कल्प' भी कहा गया है।†
वराहकवच—स्कन्दपुराणमें प्राप्त होनेवाला भगवान् वराहका एक प्रसिद्ध स्तोत्र।
वराहकान्ता—एक ओषधि (yam)।
वराहकाली—सूर्यमुखी फूल।
वराहाकान्ता—ओषधि, लजालू, लजांनी पौधा, शूकरी।
वराहक्षेत्र—नाथपुर या सोरों (द्रष्टव्य—वराहपुराण, अङ्क पृष्ठ ३४०)।
वराह-गायत्री—द्रष्टव्य—पृ० ४४९।
वराहगिरि—वेङ्कटगिरि पर्वत तथा मानसरका केसराचल। द्रष्टव्य—स्कन्दपुराणका भूमिवराह-खण्ड।
वराहगृह्यसूत्र—कृष्ण यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखाका धर्मग्रन्थ, जिसमें १६ संस्कारोंका वर्णन है। यह गायकवाड़ सी० सी० से प्रकाशित है।
वराह-ग्राम—महाराष्ट्रके वेल्गांव जिलेका एक कस्बा।
वराह तीर्थ—कूर्म तथा वराहपुराणमें प्रसिद्ध एक तीर्थ।
वराहदंष्ट्र—शूकरकी दाढ़।
वराहदन्, दन्त—ऐसा मनुष्य जिसके दाँत वराहके समान हों।
वराहदत्त—एक व्यापारी, जिसकी कथा 'कथासरित्सागर' (२७। १००)में आती है।
वराहदानविधि—भविष्यपुराणके उत्तरपर्वका १९४वाँ अध्याय, जिसमें २२ श्लोक हैं।

* (क) वराहः शूकरे विष्णौ मानभेदेऽद्रिमुस्तयोः। वराही मातृभेदे स्याद् विष्वक्सेनप्रियेऽपि च॥ (मेदिनी ११। ११)
(ख) वराही मातृभेदे स्यात् शृङ्गिनाम्नौषधेऽपि च॥ (विश्वकोश)

† Hazra—'Puranic Records on Hindu Rites and customs. Page 14. Foot. 15.

वराहदेव-राजतरङ्गिणीमें निर्दिष्ट एक राजा।
वराहद्वादशी-माघ शुक्ल द्वादशीका वराह जप। निर्णयसिन्धुमें ३ वराह-जयन्तियाँ हैं। द्रष्टव्य-वराहपुराणका ४१वाँ अध्याय, प्रस्तुत अङ्कका पृ० १००-१०२।
वराहद्वीप-वायुपुराणमें वर्णित एक द्वीप।
वराहनामाष्टोत्तरशतस्तोत्र-स्कन्दपुराणका एक स्तोत्र।
वराह नगर-बंगालके २४ परगनाका एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध व्यापारिक नगर, गङ्गा-भक्ति-तरङ्गिणीमें इसका वर्णन है।
वराहपर्णी-एक लता। (Physalis flexuosa)
वराहपुराण-प्रस्तुत ग्रन्थ।
वराहप्रतिमा-वराह-मूर्ति, द्रष्टव्य-पृष्ठ ४४९-५०
वराहमन्त्र-द्रष्टव्य-पृष्ठ ४४८-४९।
वराहमिहिर-भारतके परम प्रसिद्ध ज्योतिषी, जिन्होंने बृहत्संहिता, बृहज्जातक, पञ्चसिद्धान्तिका आदिकी रचना की थी।
वराहमूल-वह स्थान, जहाँ भगवान्‌ने पृथ्वीको समुद्रसे बाहर निकाला था।
वराहयद्रो-शूकरद्वारा खोदा गड्ढा।
वराहव्यूह-प्राचीन युद्धमें एक प्रकारकी सैन्यरचना।*
वराहशिम्बी-वराहभोज्य एक कंद।
वराहशृङ्ग-पशुपतिनाथ (वराहपुराण ११५)
वराहशैल-वराहगिरि पर्वत वेङ्कटाचल।

वराहस्तुति-ब्रह्माण्डपुराणका अध्याय।
वराहस्वामी-काश्मीर राज्यमें वर्णित एक औपदेशिक राजा।
वराहायु-भुअरके शिकारमें लगा रहने वाला ब्याध आदि।
वराहोपनिषद्-एक श्रेष्ठ उपनिषद्, जिसके अधिकतर श्लोक योगशास्त्रमें भी मिलते हैं—
वराहोपानह्-वराह-संज्ञक जूता।
वराही-भगवान् वराहसे उत्पन्न एक विशिष्ट दैवी शक्ति (द्रष्टव्य-दुर्गासप्तशती तथा सनत्कुमार)
वराहीनिग्रहाष्टक-अनुग्रहाष्टक आदि (तान्त्रिकों की परम प्रधान स्तुति)।

यहाँ वराहके पर्याय सूकर (शब्द० भा० १४।१।२।११†) कोल,‡ शूकर, क्रोड, घोणी आदिसे निर्मित समस्त शब्दोंका संग्रह नहीं किया गया है; क्योंकि—

वराहः सूकरो घृष्टिः कोलः पोत्री किरः किटिः।
दंष्ट्री घोणी स्तब्धरोमा क्रोडो भूदार इत्यपि॥

इस अमर २।५।२ तथा रत्नमाला आदिके अनुसार इसके प्रायः २५ पर्याय हैं; अतः इससे कोश बहुत बड़ा हो जायगा। इसी प्रकार कपिलवाराह, नृ-वराह, प्रलय-वराह, भू-वाराह, भूमि-वराह, यज्ञवाराह, श्वेत-वाराह आदि शब्द हैं, जिनमें कुछका विस्तृत वर्णन इस अङ्कमें है और कुछ कल्पों तथा वराह भगवान्‌की विशिष्ट प्रतिमाओंके नाम हैं। (Rao, Hindu Iconography 1-1 Pages 135–45)

* दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा। वाराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥
(मनुस्मृति ७। १९०)

कुल्लूकभट्टने इसकी टीकामें—'सूक्ष्ममुखपश्चाद्भागः पृथुमध्यो वराहव्यूहः' कहा है। अर्थात् जिस सेनाका मुखभाग तथा पिछला भाग पतले,—और बीचमें बहुत मोटा हो, उसे 'वाराहव्यूह' कहा गया है। 'कामन्दक-नीतिसार' १९में इनका विस्तार है। 'वैशम्पायन-नीतिप्रकाशिका' ६। ९में 'वराह' व्यूहको मुख्य 'प्रदरादि' ३० व्यूहोंसे भिन्न कहा है—
'वराहो मकरव्यूहो गारुडः क्रौञ्च एव च। पद्माधाश्चाङ्गवैकल्यादेतेभ्यस्ते पृथक् स्मृताः॥'
इससे सत्ययुग एवं द्वापरयुगके मतवैविध्यका भी संकेत प्राप्त होता है।
† यहाँ भी वराहावतारकी कथा आयी है।
‡ रामचरितमानस १। २६९। १के 'दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला' तथा १। २६०के छन्दमें 'अहि कोल कूरम कलमले'में भी पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३७। १८के—
पतितां धरणीं दृष्ट्वा दंष्ट्रयोद्धृत्य पूर्ववत्। संस्थाप्य धारयामास शेषे कूर्मवपुस्तदा॥
—के आधारपर (नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्) बतलाया गया है कि श्रीवराह भगवान्‌ने हिरण्याक्ष

है।

श्रीवराहपुराणकी अद्भुत विलक्षण महिमा

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ संतजी महाराजके चेतावनीयुक्त महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी उस दिन पिलखुवा हमारे स्थानपर एक बड़े ही महान् उच्चकोटिके वीतराग ब्रह्मनिष्ठ पुराणमर्मज्ञ संतजी महाराज कृपाकर पधारे थे और उन्होंने जो अपने महत्त्वपूर्ण चेतावनीमय सदुपदेश लिखवानेकी कृपा की थी, वे यहाँपर दिये जा रहे हैं। आशा है, 'कल्याण'के धार्मिक पाठक इन्हें ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे। इसमें जो भूलसे कुछ गलती रह गयी हो, वह सब हमारी ही समझें, पूज्यपाद संतजी महाराजकी नहीं।

पुराणोंको कैसे पढ़ना चाहिये ?

प्रश्न—पूज्यपाद महाराजजी! 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'श्रीवराहपुराण' प्रकाशित होने जा रहा है।

पूज्य संतजी—यह तो बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'श्रीवराहपुराण' रूपमें निकलने जा रहा है। परंतु साथमें यदि निम्नलिखित बातोंपर ध्यान दिया जाय तो यह श्रीवराहपुराणका प्रकाशित होना विशेष कल्याणकर एवं पुण्यप्रद कार्य होगा।

१—यह ध्यान रहे कि श्रीवराहपुराण कोई पुस्तक, किताब या Book नहीं है, कोई सामान्य ग्रन्थ भी नहीं है, अपितु यह श्रीवराहपुराण साक्षात् भगवान्‌का श्रीश्रीवाङ्मय-स्वरूप है। अतः इसे बड़ी श्रद्धा-भक्तिकी दृष्टिसे देखना चाहिये और हाथ जोड़कर इसके सामने नतमस्तक होना चाहिये।

२—श्रीवराहपुराणको भूलकर भी कभी गंदे, जूँठे या अपवित्र हाथोंसे नहीं छूना चाहिये। हाथ धोकर तब इसका स्पर्श करना चाहिये।

३—पुराणोंके सुनते-पढ़ते समय सामने उनकी ओर कभी भूलकर भी पैर करके नहीं बैठना चाहिये, अन्यथा बड़ा पाप लगता है।

४—श्रीवराहपुराणको पढ़ते समय भूलकर भी अपनी अँगुलीके ऊपर थूक लगाकर पन्ने नहीं पलटने चाहिये।

५—श्रीवराहपुराणको नीचे पृथ्वीपर नहीं डालना चाहिये, इसे उच्चासनपर विराजमान करना चाहिये।

६—श्रीवराहपुराणको अनधिकारीके हाथोंमें कभी नहीं देना चाहिये।

७—जो पुराण-निन्दक हैं, उन्हें कभी भूलकर भी श्रीवराहपुराण नहीं देना चाहिये।

८—श्रीवराहपुराणको रद्दी समझकर रद्दीमें बेचना बड़ा घोर पाप है और भीषण अपराध है और शास्त्रोंका घोर अपमान करना है।

९—श्रीवराहपुराणको बीड़ी, सिगार, सिगरेट, तम्बाकू पीते हुए कभी नहीं पढ़ना चाहिये।

१०—श्रीवराहपुराणकी बातोंमें कभी भी अविश्वास नहीं करना चाहिये।

११—श्रीवराहपुराणको पूज्य पुराणज्ञ महात्माओंके श्रीमुख-से सुननेसे महान् पुण्योंकी प्राप्ति होती है अतः उनके श्रीमुखसे श्रवण करना चाहिये।

१२—श्रीवराहपुराणको उपन्यासादि सांसारिक पुस्तकों तथा उर्दू, फारसी आदिकी किताबोंके साथ भी नहीं रखना चाहिये और उनके नीचे तो भूलकर भी नहीं।

१३–श्रीवराहपुराणको पढ़कर और सुनकर उनमें जो कुछ लिखा है, यथाशक्ति उसके अनुसार चलनेका प्रयत्न करना चाहिये और उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये।

१४–श्रीवराहपुराणको भूलकर उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये और उसे यों ही इधर-उधर नहीं डाल देना चाहिये और उसके ऊपर किसान-किताब भी नहीं रखना चाहिये।

१५–यदि श्रीवराहपुराण अपने पास न रखना हो तो उसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे देना चाहिये।

१६–श्रीवराहपुराणको सुन्दर रेशमी वस्त्रमें लपेटकर पूजाके स्थानमें रखना चाहिये और उसपर पुष्प-चन्दनादि चढ़ाना चाहिये।

१७–बन सके तो श्रीवराहपुराणको विद्वान् ब्राह्मणको दान देना चाहिये और बड़े उत्सवोंके साथ श्रीवराहपुराणकी कथा सुननी चाहिये।

१८ श्रीवराहपुराणके सुनने और पढ़नेका [illegible] करते हैं और जो इसे [illegible] पढ़कर पाता है और जो [illegible] भी अपशब्दोंका प्रयोग करता है, वह घोर पाप करता है।

१९–जो अण्डे, मांस, मछली, प्याज, लहसुन, शलजम, शराब आदिका सेवन करते हैं वे इस श्रीवराहपुराणके स्पर्श करनेके अधिकारी नहीं हैं, उन्हें इससे दूर रहना चाहिये।

२० श्रीवराहपुराणकी न कभी निन्दा करनी चाहिये और न कभी निन्दा सुननी चाहिये और न निन्दकोंको इसे सुनानी चाहिये।

२१–श्रीवराहपुराण घरपर आते ही मारे प्रसन्नताके फूला न समाना चाहिये और अपना परम भाग्योदय हुआ मानना चाहिये।

भगवान् 'यज्ञवराह'की पूजा एवं आराधन-विधि

[पृष्ठ १६का शेष]

नृसिंहार्कवराहाणां प्रासादप्रवणस्य च।
सपिण्डाक्षरमन्त्राणां सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥
स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते मालामन्त्रे च त्र्यक्षरे।
वैदिकेषु च मन्त्रेषु सिद्धादीन्नैव शोधयेत्॥
(सिद्धसारस्वत तन्त्र, तन्त्रसार १ । १०० १०१, चौखं० सं० पृ० ६)

वेदोंमें कई वराह-मन्त्र निर्दिष्ट हैं, यथा—

'एक दंष्ट्राय विद्महे महावराहाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।'

आगमोंमें वराहमन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—

'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये [illegible] स्वाहा।'

'शारदातिलक' १५ । १०८ में इस मन्त्रके परशुराम ऋषि तथा इसका छन्द अनुष्टुप् कहा गया है। इनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

आपादं जानुदेशाद्वरकनकनिभं नाभिदेशादधस्ता-
न्मुक्ताभं कण्ठदेशात्तरुणरविनिभं मस्तकान्नीलभासम्।
ईडे हस्तैर्दधानं रथचरणदरौ खड्गखेटौ गदाख्यां
शक्तिं दानाभये च क्षितिचरणलसद्दंष्ट्रमाद्यं वराहम्॥

'अर्थात् जिनका घुटनेसे पैरतकका शरीर सुनहले रंगका, नाभिसे नीचेका शरीर मुक्ताके रंगका (उजला लिये मटमैला), कण्ठसे ऊपर बालसूर्यके समान लाल और मस्तक नीले रंगका है तथा जो हाथमें चक्र, खड्ग, खेट, गदा, शक्ति इन अस्त्रोंको तथा अभय एवं वरद मुद्रा धारण

हुए हैं, मैं उन भगवान् वराहका ध्यान करता हूँ।'

इनके मन्त्रका एक लाख जप करनेपर पुरश्चरण पूरा होता है। पुरश्चरण पूरा होनेपर मधुमिश्रित खीरसे हवन करना चाहिये और पीठपर भगवान् वराह तथा अङ्गों एवं अष्टकोणोंमें चक्र, खेटक (ढाल), गदा, शक्ति, आदि अस्त्रोंकी पूजा करनी चाहिये। इससे साधकको अखण्ड पृथ्वीकी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार भगवान् वराहका स्कन्दपुराणके वराहखण्ड अध्याय २ में—'ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा'—यह मन्त्र बतलाया गया है। इसके ऋषि संकर्षण, देवता वराह, श्री बीज और पङ्क्ति छन्द निर्दिष्ट हैं। इसके दीक्षा-ग्रहणपूर्वक चार लाख जप करने और मधु-घृत-मिश्रित पायसद्वारा हवन करनेसे सार्वभौम तथा वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्रका ध्यान इस प्रकार है—

> शुद्धस्फटिकशैलाभं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
> वराहवदनं सौम्यं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
> श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम्।
> वामोरुस्थितया युक्तं त्वया मां सागराम्बरे॥
> रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम्।
> श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम्॥
>
> (२।२।१४-१६)

तात्पर्य यह कि भगवान् वराहके अङ्गोंकी कान्ति शुद्ध स्फटिक गिरिके समान श्वेत है। खिले हुए लाल कमलदलोंके समान उनके सुन्दर नेत्र हैं, उनका मुख वराहके समान है, पर स्वरूप सौम्य है। उनकी चार भुजाएँ हैं, मस्तकपर किरीट शोभा पाता है और वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। उनके हाथोंमें चक्र, शङ्ख, अभयदायिनी मुद्रा और कमल सुशोभित हैं। भगवान् वराहकी बायीं जाँघपर सागराम्बरा पृथ्वीदेवी बैठी हैं। भगवान् वराह लाल, पीले वस्त्र पहने तथा लाल रंगके ही आभूषणोंसे विभूषित हैं। श्रीकच्छपके पृष्ठके मध्यभागमें शेषनागकी मूर्ति है। उसके ऊपर सहस्रदल कमलका आसन है और उसपर भगवान् वराह विराजमान हैं।

भगवान् वराहकी प्रतिमा कैसी हो ?

पूजाके लिये प्रतिमा आवश्यक है। 'अग्निपुराण' अध्याय ४९के अनुसार पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराह (नृ-वराह)की आकृति मनुष्यके समान बनायी जानी चाहिये। उनके दाहिने हाथोंमें गदा और चक्र तथा बायीं ओरके हाथोंमें शङ्ख एवं पद्म सुशोभित हों। अथवा पद्मके स्थानपर पद्मा लक्ष्मी बायीं कोहनीका सहारा लिये हों और पृथ्वी तथा अनन्त उनके चरणोंके अनुगत हों। ऐसी प्रतिमाके संस्थापनसे प्रतिष्ठाताको राज्यकी प्राप्ति होती है और वह भवसागरसे पार पा जाता है—

> वराहो वाथ कर्तव्यो भूवराहो गदादिभृत्।
> दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा॥
> श्रीर्वामकूर्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ।
> वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत्॥
>
> (अग्निपु० ४९।२१)

'हरिभक्ति-विलास'में भी वराहमूर्तिका लक्षण प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है। यथा—'वराहमूर्तिके मुखका विस्तार अठकला, कर्ण द्विगोलक, हनुदेश सात अङ्गुल, मुखिकागी दो अङ्गुल, वदन सात अङ्गुल, दोनों दाँत डेढ़ कला, नासिका-शिर तीन जौ, दोनों नेत्र एक जौसे युक्त कल, मन्द मुसकानयुक्त मुख-मण्डल तथा दोनों कान दो कलाके समान होने चाहिये। कानका मध्यभाग चार कला और उसकी ऊँचाई दो कला होगी। मोटाई आठ अङ्गुल, ऊँचाई नेत्रके समान, अवशिष्ट सभी अङ्ग नृसिंहदेवके समान होंगे। शेषनाग नृ-वराहदेवके चरण पकड़े हुए हैं। वराह अपनी बाहुसे वसुंधराको धारणकर अवस्थित हैं। इनके बाम भागमें शङ्ख और पद्म, दक्षिण भागमें गदा और चक्र हों। इस प्रकार वराहदेव-मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेसे

भवबन्धन दूर होता है तथा इस लोकमें अनेक प्रकारकी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं।*

'भविष्यपुराण' उत्तरखण्डके १९४ वें अध्यायमें 'धराह-दान'का प्रकरण आया है। वहाँ सोनेसे वराहभगवान्‌का मुख, चाँदीसे उनकी दाढ़ बनाकर उनके हाथमें चक्र, गदा एवं पद्मयुक्त प्रतिमा बनानेकी बात निर्दिष्ट है।

यहाँ पृथ्वीको उनकी दाढ़पर ही स्थित बतलाया गया है—और दानके समय निम्नलिखित स्तोत्र पढ़नेका आदेश है—

वराहेश प्रदुघ्नानि सर्वपापफलानि च।
मर्द मर्द महादंष्ट्र भास्वत्कनककुण्डल॥
शङ्खचक्रादिहस्ताय हिरण्याक्षान्तकाय च।
दंष्ट्रोद्धृतधरामूर्ते त्रयीमूर्तिमते नमः॥
(भविष्योत्तर० १९४। १४-१५)

और इस प्रतिमादानके फलमें सिद्धलोक-प्राप्तिकी बात कही गयी है—

विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं
दत्त्वा तिलामलसुवर्णमयं सवस्त्रम्।
उद्धृत्य पूर्वपुरुषान् सकलत्रमित्रः
प्राप्नोति सिद्धभवनं सुरसाधुजुष्टम्॥
(वही २२)

'श्रीविष्णुधर्मोत्तर महापुराण' ३। ७८। १—११के अनुसार भगवान् 'धरणि-वराह', 'नृ-वराह' या 'वराह'-मूर्तिके ऊपर शेषनागको स्थित करना चाहिये। शेषकी आश्चर्ययुक्त दृष्टि धरणीदेवीपर हो तथा उनके हाथोंमें हल, मुसल धारण कराये। उनकी बायीं ओर धरणीदेवी हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई स्थित हों—

नृवराहोऽथ वा कार्यः शेषोपरिगतः विभुः।
शेषश्चतुर्भुजः कार्यश्चारुरत्नफणान्वितः।
आश्चर्योत्फुल्लनयनो देवीवीक्षणतत्परः।
कर्तव्यौ सीरमुसलौ करयोस्तस्य यादव।
सव्येऽञ्जलिगता तस्य योषिद्रूपा वसुंधरा॥

भगवान् वराहके बायें हाथमें शङ्ख, पद्म तथा दाहिनी ओरके हाथमें चक्र एवं गदा हो। साथ ही हिरण्याक्ष भी हो, जिसके सिरपर उनका चक्र चल रहा हो। अनैश्वर्य ही हिरण्याक्ष है, भगवान् इसका संहारकर भक्तको ऐश्वर्यसे पूर्ण करते हैं—

'ऐश्वर्येण वराहेण स निरस्तोऽरिमर्दनः। (वही...

T. A. Gopinath Rao ने Hindu Iconography 1-1 pages 128—45 में इस विस्तृत वर्णनके साथ महाबलीपुरम्, बदामी, राजिम, बेलूर, मद्रास आदिमें प्राचीन कांस्यादिनिर्मित प्रतिमाओंके ७ श्रेष्ठ सुन्दर चित्र भी दिये हैं। ऐसी प्रतिष्ठित मूर्तिकी आराधनासे वे धन-धान्य, पृथ्वी और लक्ष्मी-प्रदान करते हैं—'प्रयच्छेज्जपपूजाद्यैर्धनधान्यमहीश्रियः।'
(शारदातिल० १५। ११७)

'शारदा'में इसीके आगे राज्य एवं श्रीप्राप्तिके लिये वराहमन्त्र भी निर्दिष्ट है। (श्लोक—१३५) इसकी 'पदार्थदर्श'-व्याख्यामें अष्टाक्षर भूमि-वराह-मन्त्रकी पद्धति निर्दिष्ट है। मन्त्र है—'ॐ नमो भुवोवराहाय'। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, वराह देवता, 'भं' बीज एवं 'ॐ' शक्ति है। इसमें भगवान् वराहके ध्यानका स्वरूप यह है—

कृष्णाङ्गं त्वतिनीलवक्त्रनलिनं पद्मस्थितं स्वाङ्कगं
क्षोणीशक्तिमुदारबाहुभिरथो शङ्खं गदामम्बुजम्।
चक्रं बिभ्रतमुग्रकान्तिमनिशं देवं वराहं भजे
भूलक्ष्मीरतिकान्तिभिः परिवृतं चर्मासिसंदीप्तिभिः॥

'भगवान् धरणि-वराहका स्वरूप कृष्णवर्णका और उनका मुखमण्डल नीले वर्णका है। वे कमलपर आसीन हैं, उनके श्रीअङ्कमें क्षोणा शक्ति (भूदेवी) हैं। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए हैं। भूदेवी,

---

* 'मानसोल्लास' (अभिलषितार्थचिन्तामणि ३। १। ७३९—४०) में भी प्रायः ऐसा ही वर्णन है—
नृवराहं प्रवक्ष्यामि सूकरास्येन शोभितम्। गदापद्मधरं धात्रीं दंष्ट्राग्रेण समुद्धृताम्।
बिभ्राणं कूर्परे वामे विस्मयोत्फुल्ललोचनाम्। नीलोत्पलकरां देवीमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्।
नीलकदण्डाम्भोरुहं ... ॥

…सि, कान्ति ढाल-तलवार लिये उन्हें घेरे हुए हैं। हम ऐसे वराहका अहर्निश ध्यान करते हैं।'

तन्त्रग्रन्थोंमें एक 'चक्रवराह'-मन्त्र भी निर्दिष्ट है, जो इस प्रकार है—

परजातमहाराव वराहाङ्गायनेधव ।
वर्धते योऽन्यहं देवं वन्देऽहं वालिजाधवम् ।

साधक शुक्रवारको प्रातः जिस क्षेत्रकी मृत्तिकाको लेकर जल मिलाकर चरुके साथ पकाकर घी-दूधसे हवन करता है, वहाँकी पृथ्वी उसके अधिकारमें हो जाती है।

यज्ञ-वराहकी संक्षिप्त पूजाविधि

१–पाद्य

अर्घेमें जल लेकर भगवान् वराहका ध्यान करे और—

ॐ यज्ञक्लिेशासम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये ॥
ॐ भूर्भुवः स्वःश्रीमहावराहाय नमः, पाद्यं समर्पयामि ।

यह कहकर पाद्य-जल अर्पण करे।

२–अर्घ्य

ॐ तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीमहावराहाय अर्घ्यं समर्पयामि ।

कहकर अर्घ्य प्रदान करे।

३–आचमन

ॐ उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥
ॐ भू० आचमनीयं सम० ।

कहकर आचमन-जल अर्पण करे।

४–स्नान

ॐ गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्ति कुरुष्व मे ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः वराहाय नमः, स्नानं समर्पयामि ।

कहकर स्नान कराये।

५–वस्त्र

ॐ मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञानवासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥
ॐ भू० रक्तवस्त्रं समर्प० ।

उपवस्त्र, यज्ञोपवीत

ॐ नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ भू० यज्ञोपवीतं चोत्तरीयं समर्प० ।

६–आभूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय भूमिसत्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥
ॐ भू० भूषणानि समर्प० ।

७–गन्ध

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ भू० चन्दनं समर्प० ।

(यहाँ अङ्गुष्ठ तथा कनिष्ठिकाके मूलको मिलाकर गन्धमुद्रा दिखानी चाहिये ।)

अक्षत

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ भू० अक्षता० सम० ।

(अक्षत सभी अँगुलियोंको मिलाकर देना चाहिये ।)

८–पुष्प एवं पुष्पमाला

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ भू० पुष्पमाल्यं सम० ।

(तर्जनी-अङ्गुष्ठ मिलाकर पुष्पमुद्रा दिखानी चाहिये ।)

९–धूप

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ भू० धूपमाघ्रापयामि ।

(तर्जनी-मूल तथा अङ्गुष्ठके संयोगसे धूपमुद्रा बनती है। नासिकाके सामने धूप दिखाकर उसे भगवान् वराहकी बायीं ओर रख देना चाहिये।)

१०-दीप

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ भू० दीपं दर्शयामि ।

११-नैवेद्य

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि यज्ञेश सानुगाय गृहाण तत् ॥
ॐ भू० नैवेद्यं निवेदयामि ।

(अङ्गुष्ठ एवं अनामिका-मूलके संयोगसे ग्रासमुद्रा दिखानी चाहिये।)

(पानीय जल)

नमस्ते सर्वयज्ञेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
परमानन्दपूर्ण त्वं गृहाण जलमुत्तमम् ॥
ॐ भू० पानीयं सम० ।

१२-आचमन

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥
ॐ भू० नैवेद्यान्त आचमनीयं सम० ।

ताम्बूल

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतं
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यता
ॐ भू० ताम्बूलं सम० ।

१३-फल

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्त
तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि
ॐ भू० फलं सम० ।

१४-आरात्रिक

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपित
आरात्रिकमहं कुर्वे वराह ! वरदो भव
ॐ भू० आरात्रिकं सम० ।

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणे पदे पदे।

(भगवान् वराहकी चार बार प्रदक्षिणा क चाहिये।)

१५-पुष्पाञ्जलि

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ भू० पुष्पाञ्जलिं समर्प० ।

१६-स्तुति

तत्पश्चात् निम्नलिखित स्तोत्रसे स्तुतिकर साष्टा प्रणाम कर क्षमा-याचना करे।

सनकादिकृत भगवान् वराहकी स्तुति

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ १ ॥
रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ २ ॥
स्रुक् तुण्ड आसीत् स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३ ॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ४ ॥
सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसंधिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ५ ॥
नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ६ ॥
दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ७ ॥
त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ८ ॥
संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ९ ॥
कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ १० ॥
विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ११ ॥
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैषते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥ १२ ॥

। इति श्रीमद्भागवतान्तर्गतं वराहस्तोत्रं समाप्तम् ।

सनकादि ऋषियोंने कहा—भगवान् अजित ! आपकी जय हो, जय हो । यज्ञपते ! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है । आपके रोम-कूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ लीन हैं, आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है, आपको नमस्कार है । देव ! दुराचारियोंको आपके इस शरीरका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह यज्ञरूप है । इसकी त्वचामें गायत्री आदि छन्द, रोमावलीमें कुश, नेत्रोंमें घृत तथा चारों चरणोंमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारों ऋत्विजोंके कर्म हैं । ईश ! आपकी थूथनी (मुखके अग्रभाग) में स्रुक् है, नासिकाछिद्रोंमें स्रुवा है, उदरमें इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कानोंमें चमस है, मुखमें प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्रमें ग्रह सोमपात्र हैं । भगवन् ! आपका जो चबाना है, वही अग्निहोत्र है । बार-बार अवतार लेना यज्ञस्वरूप आपकी दीक्षणीय इष्टि है, गरदन उपसद (तीन इष्टियाँ) हैं, दोनों दाढ़ें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं, जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व किया जानेवाला महावीर नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और

(औषधात्मा) हैं तथा प्राण लिंग ([illegible]) हैं । देव ! आपका यही रूप है, आप ([illegible]
मतः सत्त्वादि तीन गुण हैं, आपके चार [illegible] अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, [illegible], [illegible], संकर्षण, [illegible]
[illegible] आपके [illegible] हैं तथा [illegible] ([illegible]) [illegible] हैं । इस प्रकार आप [illegible]
([illegible]) और [illegible] ([illegible]) रूप हैं । [illegible] आपके [illegible]
[illegible] हैं । [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] हो सकता है, आपके [illegible]
वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रताके बिना इसका अनुभव होना कठिन है, पर आपका [illegible] हो ही है [illegible]
सबके विधाता हैं, आपको पुनः पुनः प्रणाम है । पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवन् ! आपकी दाढ़ोंके [illegible]
रखी हुई यह पर्वतादिमण्डित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे जलसे निकलकर बाहर आये हुए [illegible]
गजराजके दाँतोंपर पत्रयुक्त कमलिनी रखी हो । आपके दाँतोंपर रखे हुए भूमण्डलके सहित आपका यह [illegible]
वराहविग्रह ऐसा सुशोभित हो रहा है, जैसे शिखरोंपर लगी हुई मेघमालासे कुलपर्वतकी शोभा होती है । [illegible]
चराचर जीवोंके सुखपूर्वक रहनेके लिये आप अपनी पत्नी इस जगन्माता पृथ्वीको जलपर स्थापित कीजिये । [illegible]
जगत्के पिता हैं और अरणिमें अग्निस्थापनके समान आपने इसमें धारणाशक्तिरूप अपना तेज स्थापित किया [illegible]
हम आपको और इस पृथ्वीमाताको प्रणाम करते हैं । प्रभो ! रसातलमें डूबी हुई इस पृथ्वीको निकालनेका सा[illegible]
आपके सिवा और कौन कर सकता था । किंतु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्योंके आश्रय हैं, आपके लिये यह [illegible]
आश्चर्यकी बात नहीं है । आपने ही तो अपनी मायासे इस अखिल चराचर विश्वकी रचना की है । जब आप अ[illegible]
वेदमय विग्रहको हिलाते हैं, तब हमारे ऊपर आपकी गर्दनके बालोंसे झरती हुई शीतल जलकी बूँदें गिरती हैं
ईश ! उनसे भीगकर हम जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें रहनेवाले मुनिजन सर्वथा पवित्र हो जाते हैं । [illegible]
पुरुष आपके कर्मोंका पार पाना चाहता है, अवश्य ही उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, क्योंकि आपके कर्मोंका
कोई पार ही नहीं है । आपकी ही योगमायाके सत्त्वादि गुणोंसे यह सारा जगत् मोहित हो रहा है । भगवन्
आप इसका कल्याण कीजिये ।

वराहपुराणोक्त मथुरामण्डलके प्रमुख तीर्थ

(पृष्ठ ५१२ का शेष)

केशवदेवजीका मन्दिर—

यह मथुराका सबसे प्राचीन मन्दिर है । भगवान् कृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभने भगवान् केशवकी यह मूर्ति स्थापित की थी । बादमें औरंगजेबके आक्रमणके समय (इस मन्दिरको नष्ट किये जानेके पहले) यह मूर्ति यहाँसे हटाकर कहीं अन्यत्र भेज दी गयी ।* प्राचीन केशव-मन्दिरके स्थानको 'केशव देव-कटरा' कहते हैं । ऐसी मान्यता है कि प्राचीन मथुरा इसी क्षेत्रमें (कटरा

* केशवदेवकी मूर्ति ही क्या, मथुरा (मण्डल)की अनेक मूर्तियाँ बाहर चली गयी हैं—श्रीनाथजी (गोवर्धनसे) मेवाड़में, गोविन्दजी, गोपीनाथजी (वृन्दावनसे)जयपुर, मदनमोहनजी (वृन्दावनसे) करौली, मथुरानाथ (मथुरेशजी)के विग्रहको कोटाके राजघराने वर्तमान पीढ़ियोंतक बड़े आदर तथा भक्तिपूर्वक रखा । अभी कुछ ही वर्षों पूर्व वल्लभ-सम्प्रदायके वर्तमान आचार्यश्रीने मथुरेशजीको पुनः गोवर्धन (जतीपुरा)-में मथुरेशजीकी हवेलीमें पधराया है । आजकल मथुरेशजी व्रजमें ही विराजमान हैं ।

केशव में बसा हुआ था । केशवदेव-मन्दिरको इसे क्रमशः सर्वश्रीमहाराज वज्रनाभ, विक्रमादित्य, विजयपाल आदिने निर्मित, पुनर्निर्मित; एवं जीर्णोद्धार कराया था । (Lord Sri Krsna and His Holy birth place, Pages 4—7) इसके अनन्तर श्रीचैतन्य महाप्रभुका यहाँ आगमन हुआ था तथा आपने भगवान् केशवदेवजीके समक्ष भावाविष्ट होकर विविध नृत्य-विनोद किये थे (चैतन्य-चरितामृत) । यवनोंद्वारा इस प्राचीन ऐतिहासिक केशवदेव-मन्दिरको नष्ट किये जानेके बाद उस स्थानपर एक विशाल मस्जिद खड़ी कर दी गयी, जिसे 'औरंगजेब-मस्जिद' कहते हैं । बादमें उस मस्जिदके पीछे केशवदेवजीका दूसरा नवीन मन्दिर बन गया है ।

श्रीकृष्णजन्म-भूमि—

केशवदेवके इस मन्दिरके पास ही वर्तमान कृष्ण-जन्मभूमि-मन्दिर है । (वास्तविक कृष्ण-जन्मभूमिके स्थानपर तो इस समय औरंगजेबद्वारा निर्मित मस्जिद बनी हुई है) जिसमें देवकी-वसुदेवजीकी मूर्तियाँ कंसके कारागृहमें हैं । इस स्थानको मल्लपुरा कहते हैं । इसी स्थानमें कंसके प्रसिद्ध मल्ल—चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोसल आदि रहा करते थे । इसके समीप ही पोतराकुण्ड है । प्रसन्नताकी बात है कि अब देशके कर्णधारों और धर्मप्राण धनी-मानी लोगोंके सत्प्रयाससे कुछ वर्षों पूर्व श्रीकृष्ण-जन्म-भूमिका पुनरुद्धार तथा नवनिर्माण-कार्य हुआ तथा हो रहा है, जो सर्वथा प्रशंसनीय है ।* यहाँ श्रीकृष्ण-सेवा-संस्थान-संघकी स्थापना भी हुई है, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण-चेतनाका प्रचार-प्रसार एवं व्रज-साहित्य, संस्कृतिकी रक्षा तथा शोध आदिका कार्य भी हो रहा है । श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-संघसे एक धार्मिक मासिक पत्रका प्रकाशन भी होता है जिसमें संस्थानकी गति-विधियोंका विवरण रहता है । जन्मभूमिके पार्श्व (बगल)में भव्य भागवत-मन्दिरका नव-निमार्ण-कार्य भी इस समय चल रहा है, जो कि पूर्ण हो जानेपर बड़े महत्त्वका और सर्वथा दर्शनीय होगा ।

कङ्काली-टीला—

भूतेश्वर महादेवके पास 'कङ्काली-टीलेपर 'कंकाली-देवी (कंसकाली)का मन्दिर है । कङ्कालीदेवी वह कही जाती हैं, जिसे देवकीकी कन्या समझकर कंसने मारना चाहा था, पर वह उसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी थी । कंकाली-टीलेकी खुदाईसे पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं ।

महाविद्या या विन्ध्येश्वरीदेवी—

मथुराके पश्चिममें जन्मभूमिसे थोड़ी दूरपर एक ऊँचे टीलेपर शिखरयुक्त मन्दिरके भीतर महाविद्या, महामाया और महामेधाकी मूर्तियाँ हैं । वराहपुराणके अनुसार ये देवियाँ श्रीकृष्णकी रक्षा करनेको सदा तत्पर रहती थीं । कंसको मारनेकी अभिलाषा रखनेवाले श्रीकृष्ण, बलराम और गोपोंने देवीके संकेतसे यहाँ मन्त्रणा की थी । तबसे इन्हें सिद्धिदा, भोगदा और 'सिद्धेश्वरी' भी कहा जाता है । इस मन्दिरके नीचे सरस्वतीनाला तथा आगे चलकर सरस्वती-कुण्ड है, जहाँ सरस्वतीजीका प्राचीन मन्दिर है ।

---

* पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजकी इच्छानुसार श्रीयुगलकिशोरजी बिड़लाने १९५१ ई० में 'श्रीकृष्णजन्मस्थान-ट्रस्टकी स्थापना की थी, जिसके अध्यक्ष श्रीगणेश वासुदेव मावलंकर बनाये गये । ट्रस्टका मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण-स्मारकका निर्माण करके 'कटरा-केशवदेव'का पुनरुद्धार करना तथा इस पावन स्थानपर एक ऐसी संस्थाकी स्थापना करना था, जो भारतीय धर्म-दर्शन और संस्कृतिके केन्द्रके रूपमें हो तथा भगवान् श्रीकृष्णके सार्वभौम जीवन-दर्शनसे अनुप्राणित हो ।

…जीका मन्दिर है। ये भी वज्रनाभके पधराये हैं। होलीबाजारमें गोपीनाथजी तथा त्रियामण्डीमें …रामजी तथा जानकीजीवनजीके मन्दिर हैं। आगे …र दीर्घविष्णुजीका मन्दिर है। यह राजा पटनी… बनवाया हुआ है।*

…सीतलापाइसामें मथुरादेवी और गजापाइसामें …जीके एक चरणका चिह्न है। रामदासकी मण्डीमें …नाथ भगवान् तथा मथुरानाथेश्वर महादेवके मन्दिर … बंगालीघाटपर वल्लभसम्प्रदायके चार प्रसिद्ध मन्दिर … बड़े मदनमोहनजी, छोटे मदनमोहनजी, दाऊजी … गोकुलेशजीके मन्दिर हैं। नगरके बाहर ध्रुवटीलेपर …जीका मन्दिर तथा चरणचिह्न हैं। यह स्थान …र्कसम्प्रदायका है। पहले यहाँ निम्बार्काचार्य… श्रीसर्वेश्वर तथा विश्वेश्वर शालग्राम भी थे, … एक विशेष घटनावश इस समय क्रमशः सलेमाबाद … छत्तीसगढ़में विराजमान हैं।

… सप्त-ऋषि टीलेपर अरुन्धतीसहित सप्तऋषियोंकी …माएँ हैं। यह स्थान विष्णुस्वामी सम्प्रदायके विरक्तों… है। आगे चामुण्डा-मन्दिर है, जो ५१ शक्तिपीठोंमें …गणित है। यहाँ सतीके केश गिरे थे, ऐसी मान्यता है। आगे अम्बरीष-टीला है। जहाँ राजा अम्बरीषने तप किया था। टीलेपर हनुमान्‌जीका मन्दिर है।

श्रीभगवद्गीता-मन्दिर—

मथुरा वृन्दावन मार्गपर (मथुरासे लगभग २ मील दूर उत्तर) विस्तृत क्षेत्रमें 'बिड़ला शैली'में (सेठ युगलकिशोरजी बिड़लाद्वारा) बनवाया हुआ भव्य गीता-मन्दिर है। 'बिड़ला-मन्दिर'के नामसे इसकी प्रसिद्धि है। इसमें गीतागायक (भगवान् श्रीकृष्ण)की संगमरमरकी विशाल तथा सुन्दर मूर्ति है तथा सम्पूर्ण गीता, सुन्दर (संगमरमर) शिलाओंपर स्थान-स्थानपर उत्कीर्ण है। मन्दिरके प्राङ्गणमें लाल पत्थरका ऊँचा और विशाल गीतास्तूप है, उसपर भी बहुत सुन्दर अक्षरोंमें पूरी गीताजी लिखी हुई हैं। मन्दिर दर्शनीय तथा मथुराके मन्दिरोंमें नवीनतम है। मन्दिरके ठीक सामने ही 'बिड़ला-धर्मशाला' है, जिसका प्रबन्ध इस मन्दिरसे ही होता है।

मथुरा-प्रदक्षिणा—

मथुरामें स्नान, देवदर्शन तथा परिक्रमा - ये तीन ही मुख्य कर्म हैं, जिनके विषयमें पुराणोंमें बड़ी महिमा मिलती है।† प्रत्येक एकादशी और कार्तिकमें अक्षय…

---

* वराहपुराणमें मथुराके जिन मन्दिरोंका वर्णन है, उनमेंसे कालवश अधिकांश नष्ट हो गये हैं। बादमें कितनोंको राजा पटनी… …ने सं० १८९५ वि०में पुनः बनवाया था, जैसा कि चौबच्चास्थित 'वीरभद्रेश्वर'के प्राचीन मन्दिर (के पुनर्निर्माणकार्य)की …शस्तिमें लिखा है—

सुविश्रुतं यद्वराहपुराणे श्रीवीरभद्रेश्वरमन्दिरं यत्। अदृश्यतां कालवशादवाप्य [illegible] नवं तत्पटनीम[illegible]॥
निर्माणधर्मं [illegible] भूयः कृत्वा प्रतिष्ठां विधिपूर्वकं हि।
बाणाङ्कनागेन्दुक (१८९५) मिते च वर्षे। [illegible] (१३) म[illegible]॥

† स्नान—
यमुनासलिले स्नातः शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः। [illegible] सम्यक् प्राप्नोति परमां गतिम्॥
([illegible] १८७। ५)

अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्। ([illegible])
अहो ! अभाग्यं लोकस्य न पीतं यमुनाजलम्। गोगोपगोपिकासङ्गे यत्र क्रीडति कंसहा॥
यमुनाजलकल्लोले क्रीडते देवकीसुतः। तत्र स्नात्वा [illegible]॥
([illegible])

नवमीको मथुराकी परिक्रमा सामूहिक रूपसे की जाती है। देवशयनी और देवोत्थानी एकादशीको मथुरा वृन्दावनकी सम्मिलित परिक्रमा होती है। कोई-कोई इसमें गरुड़-गोविन्दको भी सम्मिलित कर लेते हैं। वैशाख शुक्ल पूर्णिमाको भी रात्रिमें प्रदक्षिणा की जाती है। परिक्रमाके स्थानोंमें चौबीस घाट भी सम्मिलित हैं. परिक्रमाका क्रम इस प्रकार है—

विश्रामघाट, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, कंसखार, सती-बुर्ज, चर्चिकादेवी, योगघाट, पिप्पलेश्वर महादेव, योगमार्ग वटवृक्ष, प्रयागघाट, वेणीमाधवमन्दिर, श्यामघाट, दाऊजी मदनमोहनजी, गोकुलनाथजीके मन्दिर, बलभद्रतीर्थ, सिन्दूरतीर्थ, सूर्यघाट, ध्रुवक्षेत्र, ध्रुवटीला, सप्तर्षिटीला, (इसमेंसे श्वेत यज्ञीय भस्म निकलता है) कोटितीर्थ, रावणटीला, बुद्धतीर्थ, बलिटीला, (इसमेंसे काला यज्ञभस्म निकलता है) यहाँ राजा बलि और वामन भगवान्‌के दर्शन हैं। रंगभूमि, रङ्गेश्वर महादेव, सप्तसमुद्र कूप, शिवताल*, बलभद्रकुण्ड, भूतेश्वर महादेव, पोतराकुण्ड, ज्ञानवापी, अम्बकुण्ड, केशवदेवमन्दिर, कृष्णकूप, कुब्जाकूप, महाविद्या (सिद्धपीठ) सरस्वती नाला, सरस्वती-कुण्ड, सरस्वती मन्दिर, चामुण्डा-सिद्धपीठ, उत्तरकोटितीर्थ, गणेशतीर्थ, गोकर्णेश्वर महादेव, गौतमऋषिकी कुटी, विघ्नराजघाट, कंसका गढ़, दशाश्वमेध घाट, अम्बरीषटीला, चक्रतीर्थ, कृष्णगङ्गा, कलिञ्जर महादेव, सोमतीर्थ, कैलास, घण्टाभरणक (घण्टाभरण) मुक्तितीर्थ, धर्मक्षेत्र, असकुण्ड, वैकुण्ठघाट, धारापतन, वसुदेवघाट† असिकुण्डा, वराह-क्षेत्र, द्वारकाधीशका मन्दिर, मणिकर्णिका घाट, महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकी बैठक‡ विश्रामघाट। अब लोग उत्तर-दक्षिणके कई तीर्थोंको दूरस्थ होनेके कारण प्रायः छोड़ देते हैं। बस, मथुरामें बड़े-बड़े दर्शनीय मन्दिर और स्थान ये ही हैं। छोटे-छोटे तो बहुत हैं।

मथुरापुरीके कुछ विशिष्ट तीर्थ और उनका माहात्म्य

विश्रान्तितीर्थ—विश्रान्तितीर्थ या विश्रामघाटका परिचय पिछले पृष्ठोंमें (मथुराके मन्दिर तथा दर्शनीय

यमुनासलिले स्नातः पुरुषो मुनिसत्तम। ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः॥ (विष्णुपु० ८ । ३३)

दर्शन—

दीर्घविष्णुं समालोक्य पद्मनाभं स्वयम्भुवम्। मथुरायां मुकुन्देति सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्॥
विश्रान्तिसंज्ञकं दृष्ट्वा दीर्घविष्णुं च केशवम्। सर्वेषां दर्शनं पुण्यमेभिर्दृष्टैः फलं लभेत्॥ (वराहपुराण)
ऊर्जस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले। मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम्॥ (विष्णुपुराण)

प्रदक्षिणा—

मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा॥
(वराहपुराण १५९ । १४)
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा। मथुरां तु परिक्रम्य पूतो भवति मानवः॥
(वराहपुराण १५८ । ३६)
एवं प्रदक्षिणां कृत्वा नवम्यां शुक्लकौमुदे। सर्वं कुलं समादाय विष्णुलोके महीयते॥
(वराहपु० १६० । ८०)

* शिवताल भी राजा पटनीमलका बनवाया हुआ है। पहले यह एक साधारण कुण्ड था। अब पाषाणका बना हुआ बहुत विशाल है।

† इसको ही स्वामी घाट कहते हैं।

‡ श्रीवल्लभाचार्यजीने जिन जिन स्थानोंपर श्रीमद्भागवतके सप्ताहका पारायण किये हैं, उन स्थानोंको आचार्योंकी बैठक संज्ञा दी गयी है।

...के संदर्भमें) दिया जा चुका है । यहाँ केवल विश्रान्तितीर्थकी महिमापर प्रकाश डालना ही अभीष्ट है । वराहपुराणमें भगवान् वराह पृथ्वीके प्रति कहते हैं—

विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यस्मिन् स्नाते नरो देवि मम लोके महीयते ॥

'हे देवि ! विश्रान्ति नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें अति प्रसिद्ध (प्रशंसनीय) है । जहाँ स्नान करनेपर मनुष्य मेरे लोकमें पूजित होता है ।'

विश्रामघाटपर स्नान, तर्पण, पिण्डदान तथा गोदान-का विशेष महत्त्व है । इतना ही नहीं, यदि मनुष्य प्रमादवश पापकर्मोंमें लिप्त होता है तो विश्रान्तितीर्थमें स्नानमात्रसे ही उसके पाप तत्क्षण भस्म हो जाते हैं ।* इस प्रकार यह समस्त सिद्धियोंका देनेवाला भगवान् हरिका त्रैलोक्य-उजागर अनुपम तीर्थ है† ।

श्रीब्रज-मण्डल मूल है, मथुरा तीरथकान्त ।
तीन लोकमें गाइये जै जै श्री विश्रान्त ॥

असिकुण्ड-तीर्थ—एक तो यहाँ वराह-सञ्ज्ञा, दूसरी नारायणी, तीसरी वामनी और चौथी लांगुली शुभमयी शक्तियाँ हैं । जो मनुष्य असिकुण्डमें स्नान करके इन देवताओं (यहींपर वराहजी, नृसिंहजी, गणेशजी तथा हनुमान्‌जीके सुन्दर मन्दिर हैं) का दर्शन करता है वह चतुःसमुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता तथा मथुराके समस्त तीर्थोंका फल प्राप्त करता है ।‡ असिकुण्डका वर्तमान नाम असकुंडा है ।

संयमन-तीर्थ—(स्वामीघाट)—इसका दूसरा नाम वसुदेव घाट भी है । सुनते हैं, इसी मार्गसे वसुदेवजी श्रीकृष्णको मथुरासे गोकुल ले गये थे । यह मथुराके सामने है । इसीसे इसको व्रज-भाषामें समुझघाट भी कहते हैं, जिसका नाम अब 'स्वामीघाट' प्रचलित हो गया है ।

तीर्थश्रेष्ठ संयमन तीनों लोकमें प्रसिद्ध तीर्थ है । वराहपुराणमें उल्लेख है कि वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य भगवान्‌के धामको प्राप्त करता है ।§

कृष्णगङ्गा तीर्थ—कृष्णगङ्गा-घाटपर कलिंजर महादेवजी, गङ्गाजी तथा दाऊजी महाराजके मन्दिर हैं । इसे 'कृष्णगङ्गोद्भवतीर्थ' भी कहते हैं । मनुष्य पञ्चतीर्थ-अभिषेकसे जो फल प्राप्त करता है, उस फलसे प्रतिदिन दसगुना अधिक कृष्णगङ्गातीर्थ प्रदान करता है । यथा—

पञ्चतीर्थाभिषेकाच्च यत्फलं लभते नरः ।
कृष्णगङ्गा दशगुणं दिशते तु दिने दिने ॥
(वराहपुराण)

चक्रतीर्थ—मथुरामण्डलमें यह तीर्थ अत्यन्त विख्यात है । इसमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य ब्रह्म-

* यदि कुर्यात् प्रमादेन पातकं तत्र मानवः । विश्रान्तिस्नानमात्रेण भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥
(स्कन्दपु० मथुरामा०)

† ब्रजभाषाके कविवर हरलालजीने विश्रामघाटकी महिमाके विषयमें (मथुरामाहात्म्यके अनुसार) वर्णन किया है—

प्रगट मधुपुरी धाममें कालिन्दीके कूल ।
तीरथ श्रीविश्रान्तजू सकलसिद्धि को मूल ॥
कंस मारि, कुल-सोक हरि, लियो तहाँ विश्राम ।
सोई क्लान्तमन शान्त करि, भ्रान्ति हरो घनश्याम ॥
प्रात समै अरु साँझको नित प्रति आरति होइ ।
तहँ आवत सब देवता, अति आनंद-समेद ॥
भूरि-कोटके मध्यमें, मथुरापुरी प्रमान ।
ता मधि श्रीविश्रामजू, रहैं सदा भगवान् ॥

‡ एका वाराहसंज्ञा च तथा नारायणी परा । वामनी च तृतीया वै चतुर्थी लाङ्गली शुभा ॥
चतुःसागरपर्यन्ता कान्ता तेन धरा भुवम् । तीर्थानां मथुरायां च सर्वेषां फलमाप्नुयात् ॥
(वराहपुराण)

§ ततः संयमनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । तत्र स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते ॥
(वराहपुराण)

आधुनिक ढंगका, सुरुचिपूर्ण 'अतिथि-गृह' है दूर-दूरसे (विदेशोंसे भी) आये हुए यात्रियोंको रहनेकी सुविधा देता है।

इसके अतिरिक्त पण्डोंके यहाँ ठहरनेका भी प्रबन्ध रहता है। यहाँके पण्डे चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं, जो 'चौबे' कहलाते हैं।

पुरातत्त्व-विभागका संग्रहालय—मथुरा तथा व्रजप्रदेशके इतिहासपर प्रकाश डालनेवाला यह भी एक विशिष्ट और दर्शनीय स्थान है। इसमें मथुरा व उसके आस-पासकी खुदाईसे प्राप्त अनेक ऐतिहासिक मूर्तियों तथा वस्तुओंका अच्छा संग्रह है। इसे अजायबघर (म्यूजियम) कहते हैं। इतिहासके विद्यार्थियों तथा शिल्प-कला-प्रेमियोंके अध्ययनके लिये यहाँ पर्याप्त सामग्री है।

मथुरा अति प्राचीन नगर होनेपर भी नया-सा प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि विदेशी आक्रमणोंके समय यह दो बार उजाड़ा जा चुका है। जिस स्थानपर वर्तमान नगर बसा है, वहाँ पहले पुराना नगर था। यह अबकी बार तीसरी बार बसाया गया है। यवनों और विदेशी आक्रमणकारियों (शक, हूण, कुषाण आदि)ने इस नगरीको निर्ममतापूर्वक कई बार खूब लूटा और तोड़ा-फोड़ा है। उन दुर्विचारी लोगोंने यहांकी उस विश्ववन्द्य महान् संस्कृतिको (जिसने भारतको ही नहीं, अपितु समस्त विश्वको संसारके अन्यतम दर्शन, ज्ञान, भक्ति और भारतकी शान्तिदायक सनातन चिन्तन-परम्पराका परमोज्ज्वल, शीतल प्रकाश देकर अन्ततः संसारका हित-साधन ही किया) आघात पहुँचाकर स्वयं अपना ही अहित किया है। देश, धर्म और संस्कृतिके द्रोही उन अविवेकी लोगोंने धर्म और संस्कृतिके प्रति जो अन्याय (अक्षम्य अपराध) किया है, उसके लिये इतिहासने उन्हें कभी क्षमा नहीं किया। मथुराको नष्ट करनेवाले उन विदेशी लुटेरों और आततायियोंके अस्तित्व और अवशिष्ट-चिह्नोंका आज कहीं भी कोई पता नहीं है उन (शक, हूण आदि)के वे बड़े-बड़े महान् साम्राज्य अब न जाने पृथ्वीके किस गर्तमें समाकर सदाके लिये वहाँ विलीन हो गये! कोई नहीं जानता। किंतु मथुरा या व्रजप्रदेश तो आज भी वही है। उसकी स्थिति भी वही है। अपने उसी स्थानपर अवस्थित भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृतिके सुयशकी धवल ध्वजा भी आज उसी गौरव और महिमाके साथ फहरा रही है। यह भूमि जिस प्रकार आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व गौरवमयी और वन्दनीय थी, उतनी ही आज भी है। आज व्रज-संस्कृति और साहित्य दिन-प्रतिदिन उन्नयनकी ओर है। क्यों न हो; जिसको स्वयं भगवान् चाहते हैं—उसे फिर कौन नहीं चाहता—सभी चाहते हैं। भगवान्‌की उस प्रिय वस्तुको मिटानेकी असफल चेष्टा या दुःसाहस तो कदाचित् कोई अज्ञानी ही कर सकता है। पद्मपुराण पातालखण्डमें भगवान्‌के वचन हैं—

> अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः
> पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
> सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां
> मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम्॥
> (७३।४१)

'आश्चर्य है कि दुष्ट हृदयके लोग मेरी इस परम सुन्दर, सनातन-पुरी (मथुरा-नगरी)को नहीं जानते, जिसकी सुरेन्द्र, नागेन्द्र तथा मुनीन्द्रोंने स्तुति की है और जो मेरा ही स्वरूप है।'

वस्तुतः मथुरा और व्रजको जो असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वह लीलापुरुषोत्तम भगवान्

श्रीकृष्णकी जन्मभूमि और क्रीडाभूमि होनेके कारण ही। श्रीकृष्ण भगवान्‌के महान् प्रतिपादक, रक्षक और प्रसारक हुए। समस्त विश्वके लिये उन्होंने गीताके उद्घोषद्वारा शान्ति और मनुष्यताके आत्मकल्याणको जो दिव्य संदेश दिया, वह प्रत्यक्ष-भावकी ओर निरन्तर विश्वके जनमात्र मार्गदर्शन करता रहेगा।

श्रीकृष्णके इस आदर्श (भागवत एवं भारतीय धर्मने कोटि-कोटि नरनारियोंका अनुरंजन किया, इस ही नहीं वरं विदेशी भी इसके द्वारा प्रभावित हो और होते जा रहे हैं*। उसके लोकरञ्जक चमत्कारिक भावनाओंकी जो छाप जन-मानसपटल पर पड़ी है, वह अमिट है। (क्रमशः)

मथुराकी तात्त्विक महिमा

मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥
(अथर्ववेदीय गोपालतापनी-उपनिषद्)

'जिस ब्रह्मज्ञान [एवं भक्तियोग-]से समस्त जगत् मथा जाता है अर्थात् ज्ञानी [और भक्तों]का जहाँ संसार क्षय हो जाता है, वह सारभूत ज्ञान [और भक्ति] जिसमें सदा विद्यमान रहते हैं, वह (पुरी) मथुरा कहलाती है।'

समस्त विश्वका मथा हुआ जो सारभूत 'ज्ञान-नवनीत' (मक्खन) अर्थात् 'ब्रह्मज्ञान' है—वही मथुरा है। अथवा भक्ति उक्त ज्ञान जहाँ हो, वह ब्रह्मज्ञानमयी पुरी मथुरा है। मथुराका नामान्तर 'मधुरा' है। ब्रह्मविद्या या आत्मविद्याकी वैदिक संज्ञा 'मधु-विद्या' है; क्योंकि जो रस व मिठास इस (विद्या)में है, वह अन्यत्र नहीं। उस देवमधु-(ब्रह्मविद्या या पराभक्ति-)का माधुर्य जहाँ प्रभूतमात्रामें प्रादुर्भूत हो, वही मधु देश—मधुप्रदेश है। इसीलिये मथुराको 'मधुरा' या 'मधुपुरी' भी कहा जाता है।

---

* वर्तमानमें 'हरे राम हरे कृष्ण'का उद्घोष विदेशोंमें सुननेको मिल रहा है। यूरोप और अमेरिकाके अनेक प्रमुख देशोंमें (स्वामी ए० सी० भक्तिवेदान्ततीर्थकी प्रेरणाद्वारा) श्रीकृष्ण भावना प्रचार-अन्ताराष्ट्रिय-संघ (International Shri Krishna Conscious Organisation)की अनेक केन्द्रीय शाखाएँ (Centers) स्थापित हो चुकी हैं। इन केन्द्रोंके द्वारा श्रीकृष्ण भक्ति तथा भगवन्नाम-संकीर्तनका प्रचार प्रसार विदेशोंमें हो रहा है। प्रत्येक केन्द्रमें श्रीकृष्ण मन्दिरोंकी स्थापनाएँ भी हुई हैं। उदाहरणार्थ एक मन्दिर वृन्दावनमें रमणरेतीके पास 'श्रीकृष्ण-बलराम मन्दिर'के नामसे अभी कुछ वर्षों पूर्व ही बना है। यहाँके प्रायः सभी कार्यकर्ता विदेशी (यूरोपियन) हैं। इस कारण इसकी प्रसिद्धि 'अंग्रेजोंके मन्दिर'के नामसे है। यहाँ रहनेवालोंका भारतीय संस्कृतिके अनुरूप रहन-सहन, वेष-भूषा, परिचर्या, सद्भाव और संयमपूर्ण साधनारत जीवन देखकर बड़ा सुखद आश्चर्य और साथ ही अपनी संस्कृतिके प्रति गौरवका अनुभव होता है—अपने देशके सर्वथा विपरीत धर्म, दर्शन और परिस्थितिमें जीनेवाले, इन लोगोंने (भारतीय संस्कृति-से अत्यधिक प्रभावित एवं उसपर न्योछावर होकर ही) अपनेमें [illegible] परिवर्तन कर लिया है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और दर्शनके प्रति किसीकी भी सच्ची अनन्य निष्ठा होनेपर, ऐसा [illegible] म्भव नहीं है।

भगवान् श्रीवराहका अवतार

(लेखक—पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

अनन्त ब्रह्माण्डोंके अभिन्न निमित्तोपादानकारण, सच्चिदानन्द चैतन्य, प्रज्ञानघन, भगवान् श्रीविष्णु लोककल्याणार्थ रचित प्रपञ्चकी उचित स्थितिके लिये अनेक विविध रूपोंसे अवतीर्ण होकर विपद्ग्रस्त दीन-हीन जीवोंकी रक्षा करते हैं। अशान्त व्याकुल जीवोंको अभय देकर सृष्टिकी स्थितिमें बाधक उपद्रवी, उद्दण्ड, दुर्दान्त, अभिमानी जीवोंका दमन करते हैं। करुणावरुणालय भगवान्‌की यह जीवोंपर अकारण करुणा उनकी भगवत्ता एवं सर्वसमर्थताका परम प्रमाण है। सर्वसामर्थ्यसम्पन्न भगवान्‌का अवतरण, विविध विचित्र अचिन्त्य अतर्क्य कारणोंको लेकर ही होता है। उनके अवतरणका स्पष्ट प्रयोजन उनकी लीलाओंका सूक्ष्म रहस्य योगीन्द्र-मुनीन्द्र विवेकी चतुर पुरुषोंको भी बुद्धिगम्य नहीं है। सत्-श्रद्धा, सद्विश्वास ही भगवत्प्राप्तिमें एक सम्बल है। किस कार्यके लिये किस रूपका धारण करना उचित है, यह सब भगवदिच्छापर आधारित है। जिस कार्यके लिये जो रूप अपेक्षित है, सर्वान्तर, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वकर्मसाक्षी श्रीभगवान् उसी रूपमें सम्मुखीन हो जाते हैं। प्रलयमें राजा सत्यव्रतकी रक्षाके लिये मत्स्यावतारसे अतिरिक्त क्या अवतार उचित होता, सर्वप्रथम जलमें निमग्न पृथ्वीके समुद्धारके लिये वराहरूपसे श्रेष्ठ कौन अवतार उपयुक्त होता। सूकरमें घ्राणशक्तिकी तीक्ष्णता सर्वविदित है और दर्शनोंमें [illegible] गन्धवती बताया गया है। गन्धतत्व [illegible] स्पर्श, रूप, रस, गन्ध— [illegible] गुण है। जलमें [illegible] अन्य रूपोंकी अपेक्षा पृथ्वीको छिन्न-भिन्न करनेको समुद्यत हिरण्याक्ष-जैसे दुर्दान्त, असत्यविक्रम, महाभिमानी दैत्यके विनाशके लिये श्रीवराहरूप कितना हृदयंगम तथा उपयुक्त है, यह विचारणीय है। श्रीवराह-रूपधारी श्रीभगवान्‌ने पृथ्वीका उद्धार कर जलके ऊपर उसे स्थापित कर उसमें अपनी आधारशक्तिका सञ्चार किया—'स गामुदस्तात् सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात् स्वसत्त्वम् ।' (श्रीमद्भा० ३ । १८ । ८) इसीलिये संसारके कल्याणके लिये सम्पूर्ण यज्ञोंके अध्यक्ष उन भगवान्‌ने ही रसातल पहुँची हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सूकररूप धारण किया—

> द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ।
> उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥
> (श्रीमद्भा० १ । ३ । ७)

अनन्त भगवान्‌ने प्रलयके जलमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सम्पूर्ण यज्ञमय वराह-शरीर धारण करते हुए महासमुद्रके भीतर ही पार्थिव शक्तिका उद्धार करते हुए लड़नेके लिये आये हुए आदिदैत्य हिरण्याक्षको अपनी दाढ़ोंसे उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जिस प्रकार इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पङ्खोंका छेदन किया था—

> यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्
> क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
> अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं
> तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥
> (श्रीमद्भा० २ । ७ । १)

प्रमुख दस अवतारोंमें भगवान्‌का वराहावतार जगत्‌के संरक्षणको लेकर विशिष्ट महत्त्व रखता है। जगत्‌की स्थिति पृथ्वीके बिना कैसे सम्भव है और गन्धगुणवती पृथ्वीका समुद्धार भगवान् वराहने छोड़कर

और कौन करेगा । [illegible] भगवान् वराहके [illegible] दिये हैं । [illegible] इन ऋषियोंके [illegible] दर्शन पाकर हम सब [illegible] होंगे । ये सब सनातनधर्मके [illegible] प्रचारके [illegible] प्रवृत्त [illegible] 'कल्याण' [illegible] हैं ।

भगवन् ! अजित ! आपकी जय हो ! जय हो ! [illegible] आपने [illegible] आपको नमन है । आपके रोमकूपोंमें समस्त वैदिक यज्ञ [illegible] पंक्तियोंमें आपको हमारा नमस्कार है —

> जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन
> त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
> यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा-
> स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥
> (श्रीमद्भा० ३ । १३ । ३४)

ऋषियोंके इन शब्दोंमें हम भी भगवान् [illegible] श्रीचरणोंमें जीवनके [illegible] एकमात्र जिसका नमन हो जाता है ।

सनातन आदि ऋषियोंद्वारा की गयी भगवान् श्रीवराहकी स्तुति

जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक् ।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम् ॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे ।
हुताशजिह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥
विलोचने रात्र्यहनी महात्मन् सर्वाश्रयं ब्रह्म परं शिरस्ते ।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राणं समस्तानि हवींषि देव ॥
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसंधे ।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद ॥
पदक्रमाक्रान्तभुवं भवन्तमादिस्थितं चाक्षर विश्वमूर्ते ।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि परावरस्य ॥
दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद् भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते ।
विगाहतः पद्मवनं विलग्नं सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम् ॥
द्यावापृथिव्योरतुलप्रभाव यदन्तरं तद्वपुषा तवैव ।
व्याप्तं जगद्व्याप्तिसमर्थदीप्ते हिताय विश्वस्य विभो भव त्वम् ॥
परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते । तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम् ॥
यदेतद् दृश्यते मूर्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव । भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः ॥
[illegible] बुद्धयः । अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसम्प्लवे ॥

ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् । ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर ॥
प्रसीद सर्व सर्वात्मन् वासाय जगतामिमाम् । उद्धरोर्वीममेयात्मञ् शं नो देह्यब्जलोचन ॥
सत्त्वोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथिवीमिमाम् । समुद्धर भवायेश शं नो देह्यब्जलोचन ॥
सर्गप्रवृत्तिर्भवतो जगतामुपकारिणी । भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शं नो देह्यब्जलोचन ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । ४ । ३१—४४)

'हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर ! हे केशव ! हे शङ्ख-गदाधर ! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो ! आपकी जय हो ! आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं, वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है । हे यूपरूपी दाढ़ोंवाले प्रभो ! आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें (श्येन, चित आदि) चितियाँ हैं । हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं । हे महात्मन् ! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधार-भूत परब्रह्म आपका सिर है । हे देव ! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकलाप (स्कन्धके रोम-गुच्छ) हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं । हे प्रभो ! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सत्र आपके शरीरकी संधियाँ हैं । हे देव ! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं । हे नित्यस्वरूप भगवन् ! प्रसन्न होइये । हे अक्षर ! हे विश्वमूर्ते ! अपने पादप्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करनेवाले आपको हम विश्वके आदिकारण समझते हैं । आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के परमेश्वर और नाथ हैं, अतः प्रसन्न होइये । हे नाथ ! आपकी दाढ़ोंपर रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है, मानो कमलवनको रौंदते हुए गजराजके दाँतोंसे कोई कीचड़में सना हुआ कमलका पत्ता लगा हो । हे अनुपम प्रभावशाली प्रभो ! पृथिवी और आकाशके बीचमें जितना अन्तर है, वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है । हे विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेजयुक्त प्रभो ! आप विश्वका कल्याण कीजिये । हे जगत्पते ! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एकमात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है । यह आपकी ही महिमा (माया) है, जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है । यह जो कुछ भी मूर्तिमान् जगत् दिखायी देता है, ज्ञानस्वरूप आपका ही रूप है । अजितेन्द्रिय लोग भ्रमसे इसे जगत्-रूप देखते हैं । इस सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप जगत्‌को बुद्धिहीन लोग अर्थरूप देखते हैं । अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागरमें भटका करते हैं । हे परमेश्वर ! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञान-वेत्ता हैं, वे इस सम्पूर्ण संसारको आपका ज्ञानात्मक स्वरूप ही देखते हैं । हे सर्व ! हे सर्वात्मन् ! प्रसन्न होइये । हे अप्रमेयात्मन् ! हे कमलनयन ! संसारके निवासके लिये पृथिवीका उद्धार करके हमको शान्ति प्रदान कीजिये । हे भगवन् ! हे गोविन्द ! इस समय आप सत्त्वप्रधान हैं, अतः हे ईश ! जगत्‌के उद्भवके लिये आप इस पृथिवीका उद्धार कीजिये और हे कमलनयन ! हमको शान्ति प्रदान कीजिये । आपके द्वारा यह सर्गकी प्रवृत्ति संसारका उपकार करनेवाली हो । हे कमलनयन ! आपको नमस्कार है, आप हमको शान्ति प्रदान कीजिये ।'

भद्रमतिद्वारा भगवान् वराहकी स्तुति

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय ॥
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नमः पुण्यगतागताय ॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥
नमो नमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय ॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने । श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥

(स्कन्दपुराण २ । २० । ७५, ७७-८१)

'सबके कारणरूप भगवान् आपको नमस्कार है! नमस्कार है । सबका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है । समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है । दैत्योंका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है । जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण नारायण कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शार्ङ्गधनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हमारा बार-बार नमस्कार है । क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है । अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है । जिनके अनन्त तेजकी तुलना सूर्य आदिसे भी नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्य-कर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है । सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है । जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है । अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है । मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको हमारा नमस्कार है । यज्ञवराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है । हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है । वामनरूपधारी आपको नमस्कार है । क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है । रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है । कमलाकान्त ! आपको नमस्कार है । सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है । भगवन् ! आप शरणागतोंकी पीडाका नाश

पृथ्वीद्वारा भगवान् यज्ञ-वराहकी प्रार्थना

'उत्तर-कुरु'वर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करके विराजमान हैं । वहाँके निवासियोंके सहित साक्षात् पृथ्वीदेवी उनकी अविचल भक्तिभावसे उपासना करती और परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई स्तुति करती हैं—

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ।

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥
द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥
करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥
प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥

(श्रीमद्भागवत ५ । १८ । ३५–३९)

'जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं—उन ओङ्कारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको हमारा बार-बार नमस्कार है ।'

'ऋत्विजगण जिस प्रकार अरणिरूप काष्ठखण्डोंमें छिपी हुई अग्निको मन्थनद्वारा प्रकट करते हैं, उसी प्रकार कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे परमप्रवीण पण्डितजन अपने विवेकयुक्त मनरूप मन्थनकाष्ठसे शरीर एवं इन्द्रियादिको बिलो डालते हैं । इस प्रकार मन्थन करनेपर अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है । विचार तथा यम-नियमादि योगाङ्गोंके साधनसे जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है—वे महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रिया (इन्द्रियोंके व्यापार), हेतु (इन्द्रियाधिष्ठाता देवता), अयन (शरीर), ईश, काल और कर्ता (अहंकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको बार-बार नमस्कार है । जिस प्रकार लोहा जड होनेपर भी चुम्बककी संनिधिमात्रसे चलने-फिरने लगता है, उसी प्रकार जिन सर्वसाक्षीकी इच्छामात्रसे—जो अपने लिये नहीं, बल्कि समस्त प्राणियोंके लिये होती है—प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करती रहती है, ऐसे सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार है । आप जगत्के कारणभूत आदि सूकर हैं । जिस प्रकार एक हाथी दूसरे हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार गजराजके समान क्रीडा करते हुए आप युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्ष दैत्यको दलित करके मुझे अपनी दाढ़ोंकी नोकपर रखकर रसातलसे प्रलयपयोधिके बाहर निकले थे । मैं आप सर्वशक्तिमान् प्रभुको बार-बार नमस्कार करती हूँ ।'

दशावतारस्तोत्रम्

आदाय वेदाः सकलाः समुद्रान्निहत्य शङ्खासुरमत्युदग्रम्।
दत्ताः पुरा येन पितामहाय विष्णुं तमाद्यं भज मत्स्यरूपम्॥
दिव्यामृतार्थं मथिते महाब्धौ देवासुरैर्वासुकिमन्दराभ्याम्।
भूमेर्महावेगविघूर्णितायास्तं कूर्ममाधारगतं स्मरामि॥
समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुंधरा मेरुकिरीटभारा।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकोलं शरणं प्रपद्ये॥
भक्तार्तिभङ्गक्षमया धिया यः स्तम्भान्तरालादुदितो नृसिंहः।
रिपुं सुराणां निशितैर्नखाग्रैर्विदारयन्तं न च विस्मरामि॥
चतुःसमुद्राभरणा धरित्री न्यासाय नालं चरणस्य यस्य।
एकस्य नान्यस्य पदं सुराणां त्रिविक्रमं सर्वगतं स्मरामि॥
त्रिःसप्तवारं नृपतीन् निहत्य यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः।
चकार दोर्दण्डबलेन सम्यक् तमादिशूरं प्रणमामि भक्त्या॥
कुले रघूणां समवाप्य जन्म विधाय सेतुं जलधेर्जलान्तः।
लङ्केश्वरं यः शमयांचकार सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या॥
हलेन सर्वानसुरान् विकृष्य चकार चूर्णं मुसलप्रहारैः।
यः कृष्णमासाद्य बलं बलीयान् भक्त्या भजे तं बलभद्ररामम्॥
पुरा पुराणानसुरान् विजेतुं सम्भावयन् चीवरचिह्नवेषम्।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम्॥
कल्पावसाने निखिलैः खुरैः स्वैः संघट्टयामास निमेषमात्रात्।
यस्तेजसा निर्दहतीति भीमो विश्वात्मकं तं तुरगं भजामः॥
शङ्खं सुचक्रं सुगदां सरोजं दोर्भिर्दधानं गरुडाधिरूढम्।
श्रीवत्सचिह्नं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदि विष्णुमीडे॥
क्षीराम्बुधौ शेषविशेषतल्पे शयानमन्तःस्मितशोभिवक्त्रम्।
उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्बुजाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत्स्मरामि॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम्॥

इति श्रीशारदातिलके सप्तदशे पटले दशावतारस्तवः।

इससे [illegible] पूर्व (जनवरी १९७१ में) 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण' (सम्मिश्रित) विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् क्रमशः 'श्रीरामाङ्क', 'श्रीविष्णु-अङ्क', 'श्रीगणेश-अङ्क', 'श्रीहनुमान्-अङ्क', 'श्रीभगवत्कृपा-अङ्क' आदि स्वतन्त्र स्फुट विषयोंपर ही विशेषाङ्क प्रकाशित होते रहे। इस प्रकार विगत पाँच वर्षोंमें पुराण विषयपर कोई विशेषाङ्क प्रकाशित न हो सका। इस अन्तरालमें 'कल्याण'पर प्रीति रखनेवाले कृपालु महानुभावों, शुभचिन्तकों तथा प्रेमीपाठकोंकी ओरसे किसी पुराणपर विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका प्रेमाग्रह (पत्रोंद्वारा) बराबर बना रहा। 'श्रीवराहपुराण'की गणना परम सात्त्विक पुराणोंमें है। यह विचारकर एवं 'कल्याण'के प्रेमी पाठकों तथा हितैषियोंकी कृपापूर्ण प्रेरणासे उत्साहित होकर जन-साधारणके लिये दुर्लभ इस पुराण-रत्नको कल्याणके ५१वें वर्ष (सन् १९७७) के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया।

इस प्रकार कल्याणकी पूर्वपरम्परानुसार ही वराह-पुराणका यह संक्षिप्त रूप आपकी सेवामें प्रस्तुत है।

इस अङ्कद्वारा श्रीवराहरूपधारी साक्षात् भगवान् नारायणका जैसा भी बन पड़ा है, स्तवन-अर्चन मात्र किया गया है। यह अर्चना कितने विधि-विधानपूर्वक, कितनी सरस, कितनी सुवासित और कितनी भावपूर्ण हुई है, इसका निर्णय हमारे ('कल्याण'के) विज्ञ, सहृदय पाठक-पाठिकाएँ ही करेंगे।

इस अङ्कमें जो कुछ त्रुटियाँ हैं वे सब हमारी अल्पज्ञताके कारण ही हैं, जो अच्छाइयाँ और उपयोगिता है, उसका श्रेय भगवान्के पावनचरित्रों, दिव्य लीलाओं और इस पुराणकी लोक-कल्याणकारी कथा-वस्तुओं एवं 'कल्याण'को अपना माननेवाले, उदार सन्त अपनी प्रीति और कृपा रखनेवाले उन पूज्यपाद आचार्यों, संत-महात्माओं तथा विद्वान्-मनीषियोंको है, जिनका अनु[illegible] भरा सत्परामर्श तथा आशीर्वादपूर्ण मार्गदर्शन हमें अनायास सुलभ होता रहा है। इसके लिये हम उन उदारमना पूज्यजनों एवं आदरणीय महानुभावोंके चर[illegible] सादर नमनपूर्वक अपनी हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त कर[illegible]

वस्तुतः, 'कल्याण'का काम भगवान्का काम [illegible] इसीलिये 'कल्याण' सबकी अपनी वस्तु है, सभीका इ[illegible] अधिकार है। सब कुछ करने या करानेवाले तो ए[illegible] मात्र स्वयं भगवान् ही हैं। हम लोग तो निमित्तमात्र [illegible] सौभाग्यसे इस कार्यमें हमें जो थोड़ा समय लगाने [illegible] रुचि लेनेसे भगवत्स्मृति हो जाती है, वही हमारे लिये प[illegible] लाभ है। इसे हम भगवान्की अहैतुकी कृपा मानते हैं।

'कल्याण'पर कृपा-प्रेम रखनेवाले कई विद्वानों लेखकों और विचारकोंने विषयानुरूप अपनी अमूल्य रचनाएँ (लेख, निबन्ध, कविता आदि) भेजकर इस अङ्कको और अधिक उपयोगी बनानेमें जो सहयोग किया है, इसके लिये हम उन सभी महानुभावोंके प्रति अत्यन्त आभारी हैं और जिन सम्मान्य लेखकोंके लेख, निबन्धादि विलम्बसे प्राप्त होने अथवा स्थानाभावके कारण, चाहते हुए भी विशेषाङ्कमें नहीं दिये जा सके, इस हेतु हम उन सभी मान्यजनोंसे विनीत क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

इसके प्रस्तुतीकरणमें हमारे सम्पादन-विभागके विद्वानों-ने जो परिश्रम किया है उसीका प्रतिफलन इस रूपमें आपके समक्ष है।

अन्तमें हम अत्यन्त विनम्रभावसे भगवान्की यह वस्तु—पुराणपुरुषोत्तमरूप (भगवान्वराहका पुराणरूपी श्रीविग्रह) 'संक्षिप्त श्रीवराह-पुराणाङ्क' वराह-वपुधारी भगवान् श्रीहरि-विष्णुको ही समर्पित करते हैं—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'